समयसार वैभव

भाग-२

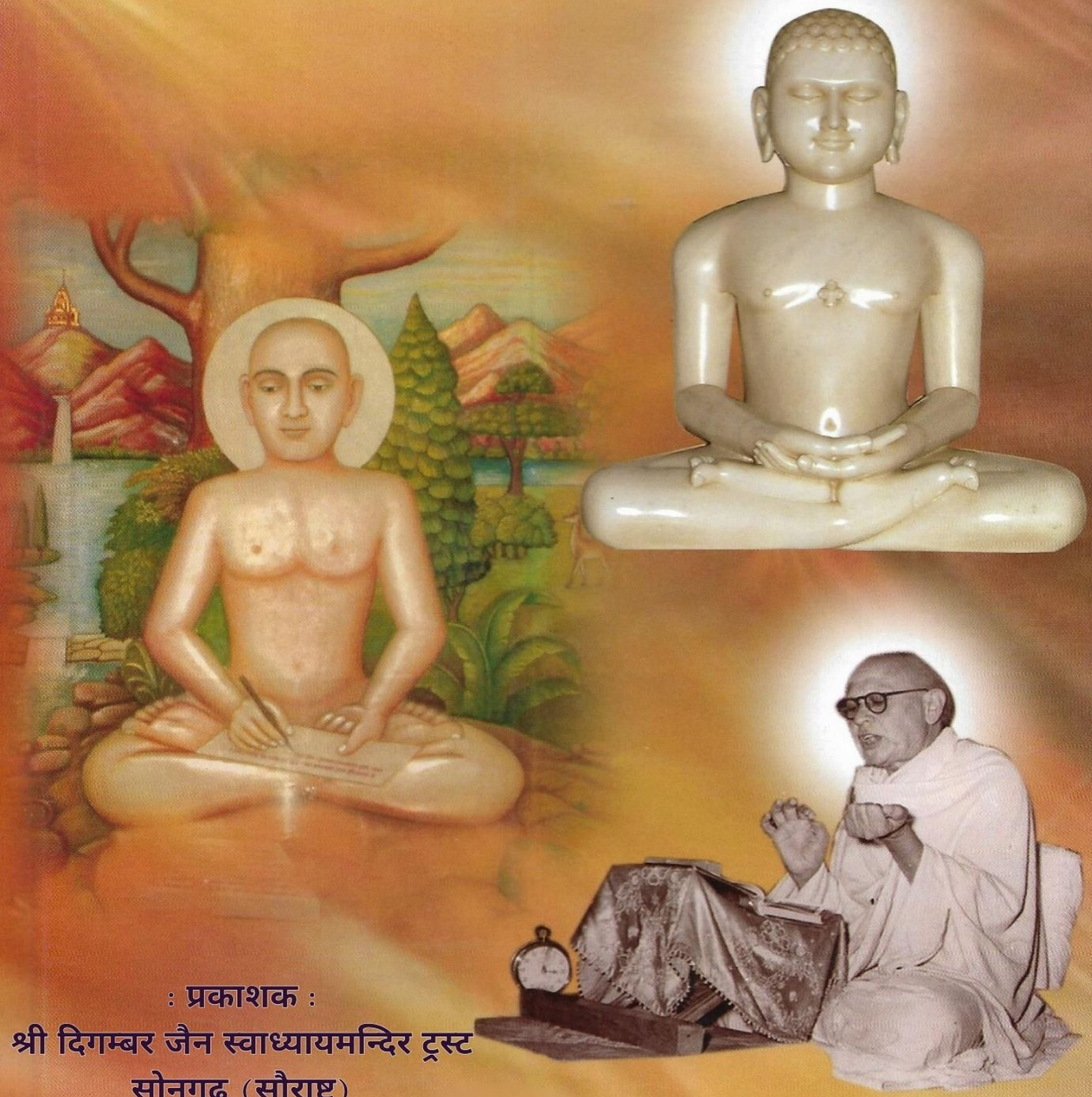

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई

ॐ

परमात्मने नमः

समयसार वैभव

परमपूज्य श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव रचित समयसार परमागम पर
अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
15वीं बार के धारावाही शब्दशः प्रवचन
(गाथा 8 से 13, कलश 4 से 10, प्रवचन 30 से 62)
[भाग - 2]

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

—: प्रकाशन :—

अष्टाह्निका महापर्व

(कार्तिक शुक्ल 7 से कार्तिक शुक्ल 15)

दिनांक 29 अक्टूबर से 5 नवम्बर 2025

के शुभ अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

विवेक कम्प्यूटर

अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

महाविदेहक्षेत्र में विराजमान त्रिलोकनाथ वीतराग-सर्वज्ञ परम देवादिदेव श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यदेशना का अपूर्व संचय करके भरतक्षेत्र में लानेवाले, सीमन्धर लघुनन्दन, ज्ञान साम्राज्य के सम्राट, भरतक्षेत्र के कलिकालसर्वज्ञ, शुद्धात्मा में निरन्तर केलि करनेवाले, चलते-फिरते सिद्ध - ऐसे आचार्यश्री कुन्दकुन्ददेव हुए, जो संवत् 49 में सदेह महाविदेहक्षेत्र में गये और आठ दिन वहाँ रहे थे। महाविदेहक्षेत्र में त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव के श्रीमुख से प्रवाहित श्रुतामृतरूपी ज्ञानसरिता का तथा श्रुतकेवलियों के साथ हुई आध्यात्मिक सूक्ष्म चर्चाओं का अमूल्य भण्डार लेकर भरतक्षेत्र में पधारकर पंच परमागम आदि आध्यात्मिक शास्त्रों की रचना की। उनमें से एक श्री समयसारजी, द्वितीय श्रुतस्कन्ध का सर्वोत्कृष्ट अध्यात्म शास्त्र है। जिसमें श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने 415 मार्मिक गाथाओं की रचना की है। यह शास्त्र सूक्ष्म दृष्टिप्रधान ग्रन्थाधिराज है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य के पश्चात् एक हजार वर्ष बाद अध्यात्म के प्रवाह की परिपाटी में इस अध्यात्म के अमूल्य खजाने के गहन रहस्य को स्वानुभवगत करके श्री कुन्दकुन्ददेव के ज्ञानहृदय को खोलनेवाले श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव ने सिद्धपद-साधक मुनिसम्पदा को आत्मसात करके, निजस्वरूप के अलौकिक अनुभव से, सिद्धान्त शिरोमणि शास्त्र समयसार की 415 गाथाओं की टीका करने का सौभाग्य प्राप्त किया है। उन्होंने श्रीसमयसारजी में निहित सूक्ष्म और गम्भीर रहस्य को, अपूर्व शैली से आत्मख्याति नामक टीका बनाकर, स्पष्ट किया है; साथ ही 278 मंगल कलश तथा परिशिष्ट की रचना भी की है।

इस शास्त्र का भावार्थ जयपुर निवासी सूक्ष्म ज्ञानोपयोगी पण्डित श्री जयचन्दजी छाबड़ा ने किया है।

वर्तमान इस काल में मोक्षमार्ग प्रायः लुप्त हो गया था, सर्वत्र मिथ्यात्व का घोर अन्धकार छाया हुआ था, जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्त का अभ्यास छूट गया था, परमागम विद्यमान होने पर भी उनके गूढ़ रहस्यों को समझानेवाला कोई नहीं था - ऐसे विषम काल में जैनशासन के गगन मण्डल में एक महाप्रतापी वीर पुरुष, अध्यात्ममूर्ति, अध्यात्मदृष्टा, आत्मज्ञ सन्त, अध्यात्म युगपुरुष, निष्कारण करुणाशील, भवोदधि तारणहार, भावी तीर्थाधिनाथ परमपूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का उदय हुआ। जिन्होंने इन आचार्यों के ज्ञानहृदय में संचित गूढ़ रहस्यों को अपने ज्ञान-वैभव द्वारा

रसपान करके आचार्यों की महा सूक्ष्म गाथाओं में विद्यमान अर्थ गाम्भीर्य को स्वयं के ज्ञान प्रवाह द्वारा सरल सुगम भाषा में चरम सीमा तक मूर्तिवन्त किया।

मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान के घोर तिमिर को नष्ट करने के लिए एक तेजस्वी अध्यात्म दीपक का स्वर्णमय उदय हुआ, जिसने अपनी दिव्यामृत चैतन्य रसीली वाणी द्वारा अध्यात्म सिन्धु के अस्खलित सातिशय शुद्ध प्रवाह को आगे बढ़ाया। आपश्री जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों को अति स्पष्टरूप से, अति दृढ़तापूर्वक भवताप विनाशक और परम शान्ति प्रदायक प्रवचन गंगा द्वारा फैलाते रहे; विरोधियों के विरोध का भी, जंगल में विचरते केशरी सिंह की तरह, अध्यात्म के केशरी सिंह बनकर निडररूप से, तथापि निष्कारण करुणावन्त भाव से झेलते रहे। विरोधियों को भी 'भगवान आत्मा' है – ऐसी दृष्टि से देखकर जगत् के जीवों के समक्ष अध्यात्म के सूक्ष्म न्यायों को प्रकाशित करते रहे।

श्री समयसारजी शास्त्र, पूज्य गुरुदेवश्री के कर-कमल में विक्रम संवत् 1978 के फाल्गुन माह में आया था। इस समयसारजी शास्त्र के हाथ में आते ही कुशल झवेरी की पारखी नजर समयसार के सूक्ष्म भावों पर पड़ी और सहज ही अन्तर की गहराई में से भावनाशील कोमल हृदय बोल उठा – 'अरे! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।' अनादि का अप्रतिबुद्ध जीव प्रतिबुद्ध कैसे हो? – उसका सम्पूर्ण रहस्य और शुद्धात्मा का सम्पूर्ण वैभव इस परमागम में भरा है।

इस शास्त्र का रहस्य वास्तव में तो अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के हाथ में यह शास्त्र आने के पश्चात् ही चरम सीमा से प्रकाशित और प्रदर्शित हुआ है। पैंतालीस वर्ष तक स्वर्णपुरी / सोनगढ़ में अध्यात्म की मूसलधार वर्षा हुई है जो सर्व विदित है। पूज्य गुरुदेवश्री ने विक्रम संवत् 1978 से 1991 – इस तरह तेरह वर्षों तक गूढ़ मन्थन करके जिनवाणी का सम्पूर्ण निचोड़ इस शास्त्र में से ढूँढ़ निकाला और फरमाया है कि —

- समयसार तो द्वितीय श्रुतस्कन्ध का सर्वोत्कृष्ट / सर्वोच्च आगमों का भी आगम है।
- समयसार तो सिद्धान्त शिरोमणि, अद्वितीय अजोड़ चक्षु और अन्धे की आँख है।
- समयसार तो संसार विष-वृक्ष को छेदने का अमोघ शस्त्र है।
- समयसार तो कुन्दकुन्दाचार्य से कोई ऐसा शास्त्र बन गया; जगत् का भाग्य कि ऐसी चीज भरतक्षेत्र में रह गयी। धन्य काल!
- समयसार की प्रत्येक गाथा और आत्मख्याति टीका ने आत्मा को अन्दर से डुला दिया है। समयसार की आत्मख्याति जैसी टीका दिगम्बर में भी दूसरी किसी शास्त्र में

नहीं है। इसके एक-एक पद में इतनी गम्भीरता (कि) खोलते-खोलते पार न आये - ऐसी बात अन्दर है।

- समयसार तो सत्य का उद्घाटक है! भारत का महारत्न है!! समयसार.... जिसके थोड़े शब्दों में भावों की अद्भुत और अगाध गम्भीरता भरी है!
- समयसार तो भरतक्षेत्र का प्रवचन का सर्वोत्कृष्ट बादशाह है, यह सार शास्त्र कहलाता है।
- समयसार तो जगत् का भाग्य.... समयसाररूपी भेंट जगत् को दिया, स्वीकार नाथ! अब स्वीकार! भेंट भी दे वह भी नहीं स्वीकारे?
- समयसार तो वैराग्य प्रेरक परमात्मस्वरूप को बतलानेवाली वीतरागी वीणा है।
- समयसार में तो अमृतचन्द्राचार्य ने अकेला अमृत बहाया है, अमृत बरसाया है।
- समयसार एक बार सुनकर ऐसा नहीं मान लेना कि हमने सुना है, ऐसा नहीं बापू! यह तो प्र... वचनसार है अर्थात् आत्मसार है, बारम्बार सुनना।
- समयसार भरतक्षेत्र की अन्तिम में अन्तिम और उत्कृष्टतम सत् को प्रसिद्ध करनेवाली चीज है। भरतक्षेत्र में साक्षात् केवलज्ञान सूर्य है। समयसार ने केवली का विरह भुलाया है।
- समयसार की मूलभूत एक-एक गाथा में गजब गम्भीरता! पार न पड़े ऐसी चीज है। एक-एक गाथा में हीरा-मोती जड़े हैं।
- समयसार में तो सिद्ध की भनकार सुनायी देती है। यह तो शाश्वत् अस्तित्व की दृष्टि करानेवाला परम हितार्थ शास्त्र है। समयसार तो साक्षात् परमात्मा की दिव्यध्वनि / तीन लोक के नाथ की यह दिव्यध्वनि है।

ऐसे अपूर्व समयसार में से पूज्य गुरुदेवश्री ने अपने निज समयसाररूपी शुद्धात्मा का अनुभव करके फरमाया कि आत्मा आनन्द का पर्वत है; ज्ञायक तो मीठा समुद्र / आनन्द का गंज और सुख का समुद्र है। न्यायों का न्यायाधीश है, धर्म का धोध ऐसा धर्मी है, ध्रुव प्रवाह है, ज्ञान की धारा है, तीन लोक का नाथ चैतन्यवृक्ष-अमृत फल है, वास्तविक वस्तु है। सदा विकल्प से विराम ही ऐसी निर्विकल्प जिसकी महिमा है - ऐसा ध्रुवधाम ध्रुव की धखती धगश है। भगवान आत्मा चिन्तामणि रत्न, कल्पवृक्ष और कामधेनु है, चैतन्य चमत्कारी वस्तु है, अनन्त गुणों का गोदाम, शक्तियों का संग्रहालय और स्वभाव का सागर है।

सनातन दिगम्बर मुनियों ने परमात्मा की वाणी का प्रवाह जीवन्त रखा है। जैनधर्म सम्प्रदाय-बाड़ा-गच्छ नहीं; अपितु वस्तु के स्वरूप को जैनधर्म कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री ने शास्त्र का अर्थ करने की जो पाँच प्रकार की पद्धति — शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ, और भावार्थ है, उसे अपनाकर कहाँ, किस अपेक्षा से कथन किया जाता है – उसका यथार्थ ज्ञान अपने को–मुमुक्षु समुदाय को कराया है। इस प्रवचन गंगा से बहुत से आत्मार्थी अपने निजस्वरूप को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करते हैं, बहुत से स्वरूप के निकट आये हैं और इस वाणी के भाव ग्रहण करके बहुत से आत्मार्थी अवश्य आत्मदर्शन को प्राप्त होंगे ही – यह सुनिश्चित है।

पूज्य गुरुदेवश्री समयसार में फरमाते हैं कि समयसार दो जगह है – एक अपना शुद्धात्मा है वह समयसार है और दूसरा उत्कृष्ट निमित्तरूप समयसारजी शास्त्र है। इस शास्त्र में अपना निज समयसाररूपी शुद्धात्मा बतलाया गया है। प्रत्येक गाथा का अर्थ करते हुए पूज्य गुरुदेवश्री ऐसे भावविभोर हो जाते हैं कि उसमें से निकलना उन्हें सुहाता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री समयसार पर प्रवचन करते हुए फरमाते हैं कि पंचम काल के अन्त तक जो कोई जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करेगा, उसे यह वीतराग की वाणी निमित्त होगी, यह सीधी सीमन्धर भगवान की वाणी है, इसमें एक अक्षर फिरे तो सब फिर जायेगा।

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन, अपने वचनामृत में पूज्य गुरुदेवश्री के सम्बन्ध में फरमाती हैं कि पूज्य गुरुदेवश्री का द्रव्य तो अलौकिक और मंगल है; उनका श्रुतज्ञान और वाणी आश्चर्यकारक है। आपश्री मंगलमूर्ति, भवोदधि तारणहार और महिमावन्त गुणों से भरपूर हैं। उन्होंने चारों ओर से मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उनका अपार उपकार है, वह कैसे भूला जाये? पूज्य गुरुदेवश्री को तीर्थंकर जैसा उदय वर्तता है। पूज्य गुरुदेवश्री ने अन्तर से मार्ग प्राप्त किया, दूसरों को मार्ग बतलाया; इसलिए उनकी महिमा आज तो गायी जाती है परन्तु हजारों वर्षों तक गायी जाएगी।

पूज्य निहालचन्दजी सोगानी, जिनको पूज्य गुरुदेवश्री का एक ही प्रवचन सुनते हुए भव के अभावरूप सम्यग्दर्शन की प्राप्ति सोनगढ़ / स्वर्णपुरी में हुई – वे फरमाते हैं कि पूज्य गुरुदेव के एक घण्टे के प्रवचन में पूरी–पूरी बात आ जाती है। सभी बात का स्पष्टीकरण पूज्य गुरुदेवश्री ने तैयार करके दिया है; इस कारण कोई बात का विचार नहीं करना पड़ता, वरना तो साधक हो तो भी सब तैयारी करनी पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री ने सभा में समयसार उन्नीस बार पढ़ा और एकान्त में तो सैंकड़ों बार पढ़ा है, तो उन्हें इसमें कितना माल दिखता होगा! कभी ड़ेढ़ वर्ष, कभी दो वर्ष, कभी ढाई वर्ष; इस प्रकार उन्नीस बार पैंतालीस वर्षों में सार्वजनिक पढ़ा है। प्रस्तुत ग्रन्थ में पूज्य गुरुदेवश्री के पन्द्रहवीं बार के प्रवचन अक्षरशः प्रकाशित किये जा रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री के उपलब्ध 9500 प्रवचनों में समयसार परमागम पर 13, 15, 16, 17, 18, 19वीं बार के प्रवचन उपलब्ध हैं। सर्वप्रथम तो इन प्रवचनों को रिकॉर्डिंग कराने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई सी. झवेरी, जो कि उस समय सोनगढ़ ट्रस्ट में प्रमुखरूप से थे, उनका बहुत-बहुत आभार मानते हैं। प्रस्तुत 15वीं बार के 591 प्रवचन 21 भागों में प्रकाशित करने की भावना श्री सुधीरभाई शाह (डेलीवाला) परिवार, सूरत को हुई। उनकी भावना अनुसार उन्होंने अक्षरश: प्रवचन कम्प्यूराईज्ड करवाये। इन प्रवचनों को उन्होंने स्वयं निज स्वाध्याय के अर्थ जाँचा और फिर से जाँचने का कार्य सुनीलभाई शाह, भायंदर तथा अतुलभाई जैन, मलाड द्वारा गुजराती भाषा में किया गया। प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का यह दूसरा भाग है।

सम्पूर्ण प्रवचनों को हिन्दी भाषा में अनुवादित करके तथा सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) ने किया है। तदर्थ संस्था सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करती है।

ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन — ग्रन्थ के टाईप सेटिंग के लिए श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अनादि काल से मोह अग्नि में सुलग रहे जीवों को यह प्रवचन ग्रन्थ के निमित्त से समाधि सुख और शाश्वत् परमानन्द की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त हो, ऐसी हमारी भावना है। अन्ततः पूज्य गुरुदेवश्री के भवताप विनाशक प्रवचनों का प्रत्येक मुमुक्षु लाभ लेकर आत्महित साधे यही भावना है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ ... www.vitragvani.com तथा vitragvani app पर उपलब्ध हैं।

निवेदक

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

एवं

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव

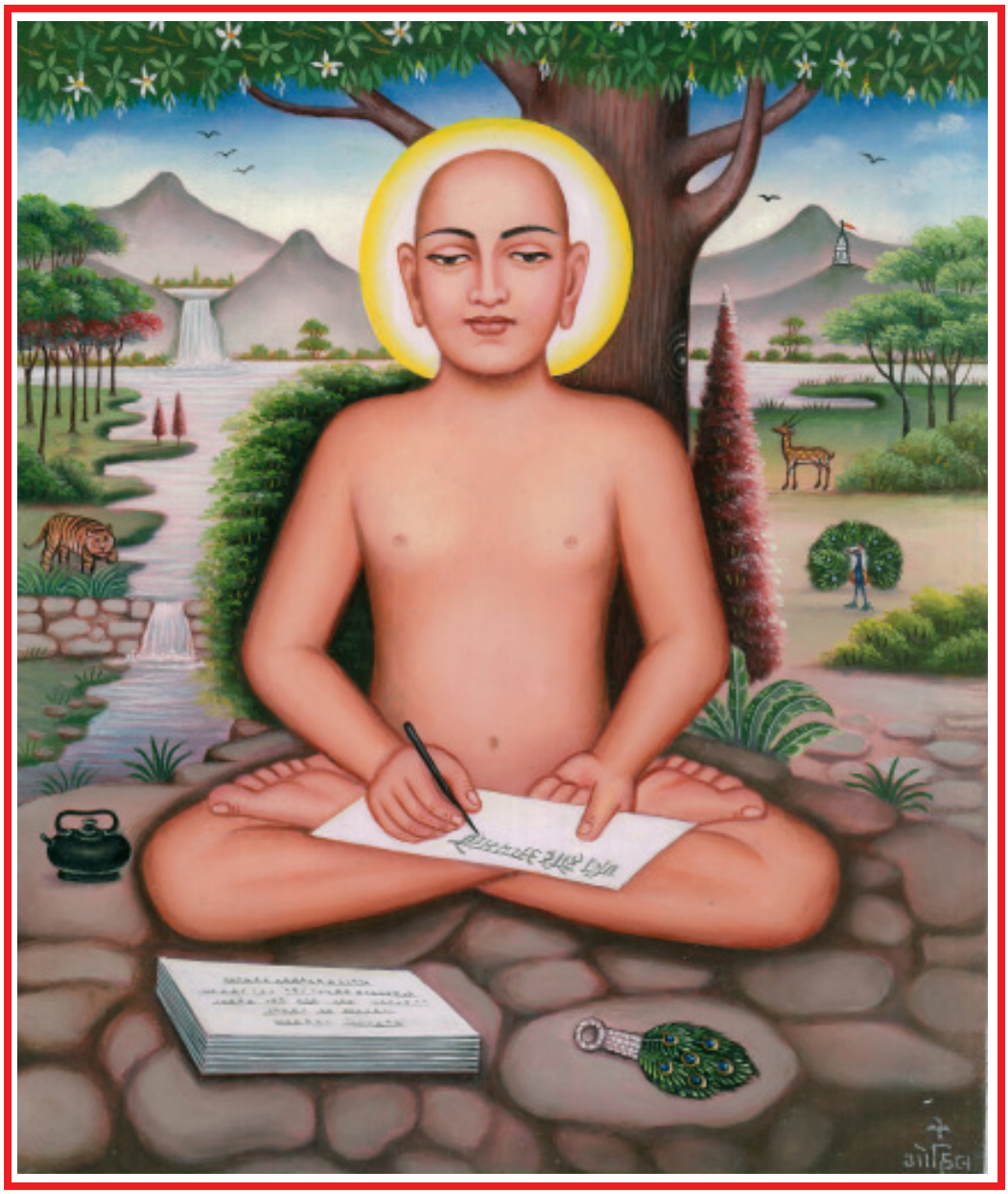

ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव॥६॥

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य

विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार

ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-

निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	श्लोक / गाथा	पृष्ठ संख्या
३०	२८-०८-१९६६	गाथा-८	००१
३१	२९-०८-१९६६	गाथा-८, ९-१०	०२०
३२	३०-०८-१९६६	गाथा-९-१०	०४२
३३	३१-०८-१९६६	गाथा-९-१०, ११	०६०
३४	०१-०९-१९६६	गाथा-११	०८२
३५	०२-०९-१९६६	गाथा-११	१००
३६	०३-०९-१९६६	गाथा-११	११८
३७	०४-०९-१९६६	गाथा-११, १२	१३७
३८	०५-०९-१९६६	गाथा-१२	१६१
३९	०६-०९-१९६६	गाथा-१२	१८१
४०	०७-०९-१९६६	गाथा-१२	१९९
४१	०८-०९-१९६६	गाथा-१२	२१८
४२	०९-०९-१९६६	गाथा-१२	२३७
४३	१०-०९-१९६६	गाथा-१२	२५५
४४	११-०९-१९६६	गाथा-१२	२७७
४५	१२-०९-१९६६	गाथा-१२, श्लोक-४	२९९
४६	१३-०९-१९६६	श्लोक-४	३२१
४७	१४-०९-१९६६	श्लोक-४	३४०
४८	१५-०९-१९६६	श्लोक-४-५	३६०
४९	१६-०९-१९६६	श्लोक-५	३८१

५०	१७-०९-१९६६	श्लोक-६	४००
५१	१८-०९-१९६६	श्लोक-६	४२०
५२	१९-०९-१९६६	श्लोक-६	४४०
५३	२०-०९-१९६६	श्लोक-७, गाथा-१३	४६१
५४	२१-०९-१९६६	गाथा-१३	४८३
५५	२२-०९-१९६६	गाथा-१३	५०३
५६	२३-०९-१९६६	गाथा-१३	५२२
५७	२४-०९-१९६६	गाथा-१३, श्लोक-८	५४१
५८	२५-०९-१९६६	श्लोक-८	५६४
५९	२६-०९-१९६६	श्लोक-८	५८३
६०	२७-०९-१९६६	श्लोक-८	६०४
६१	२८-०९-१९६६	श्लोक-९	६२४
६२	३०-०९-१९६६	श्लोक-९-१०	६४५

ॐ

परमात्मने नमः

समयसार वैभव

(भाग-2)

(श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत परमागम समयसार पर
अध्यात्म युगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
15वीं बार के धारावाही प्रवचन)

गाथा - ८

तर्हि परमार्थ एवैको वक्तव्य इति चेत् –

जह ण वि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसण–मसक्कं ।।8।।

यथा नापि शक्योऽनार्योऽनार्यभाषां विना तु ग्राहयितुम्।
तथा व्यवहारेण विना परमार्थोपदेशनमशक्यम् ।।8।।

यथा खलु म्लेच्छः स्वस्तीत्यभिहिते सति तथाविधवाच्यवाचकसम्बन्धाव–बोधबहिष्कृतत्वान्न किञ्चिदपि प्रतिपद्यमानो मेष इवानिमेषोन्मेषितचक्षुः प्रेक्षत एव। यदा तु स एव तदेतद्भाषासम्बन्धैकार्थज्ञेनान्येन तेनैव वा म्लेच्छभाषां समुदाय स्वस्तिपदस्याविनाशो भवतो भवत्वित्यभिधेयं प्रतिपाद्यते तदा सद्य एवोद्यदमन्दा–नन्दमयाश्रुझलज्झलल्लोचनपात्र–स्तत्प्रतिपद्यत एव।

तथा किल लोकोऽप्यात्मेत्यभिहिते सति यथावस्थितात्मस्वरूपपरिज्ञान–बहिष्कृतत्वा किञ्चिदपि प्रतिपद्यमानो मेष इवानिमेषोन्मेषितचक्षुः प्रेक्षत एव। यदा तु स एव व्यवहारपरमार्थ–पथप्रस्थापितसम्यग्बोधमहारथरथिनान्येन तेनैव वा व्यवहारपथमास्थाय दर्शनज्ञानचारित्राण्य–ततीत्यात्मेत्यात्मपदस्याभिधेयं प्रतिपाद्यते तदा सद्य एवोद्यदमन्दानन्दान्तः सुन्दरबन्धुरबोध–तरङ्गस्तत्प्रतिपद्यत एव।

एवं म्लेच्छस्थानीयत्वाज्जगतो व्यवहारनयोऽपि म्लेच्छभाषास्थानीयत्वेन परमार्थ–

प्रतिपादकत्वादुपन्यसनीयः, अथ च ब्राह्मणो न म्लेच्छितव्य इति वचनाद्व्यवहारनयो नानुसर्तव्यः ।।8।।

अब यहाँ पुनः यह प्रश्न उठता है कि – यदि ऐसा है तो एक परमार्थ का ही उपदेश देना चाहिए; व्यवहार किसलिए कहा जाता है? इसके उत्तरस्वरूप गाथासूत्र कहते हैं:–

भाषा अनार्य बिना न, समझाना यों शक्य अनार्य को।
व्यवहार बिन परमार्थ का, उपदेश होय अशक्य यों।।8।।

गाथार्थ : [यथा] जैसे [अनार्यः] अनार्य (म्लेच्छ) जन को [अनार्यभाषां विना तु] अनार्यभाषा के बिना [ग्राहयितुम्] किसी भी वस्तु का स्वरूप ग्रहण करने के लिए [न अपि शक्यः] कोई समर्थ नहीं है [तथा] उसी प्रकार [व्यवहारेण विना] व्यवहार के बिना [परमार्थोपदेशनम्] परमार्थ का उपदेश देना [अशक्यम्] अशक्य है।

टीका : जैसे किसी म्लेच्छ से यदि कोई ब्राह्मण 'स्वस्ति' ऐसा शब्द कहे तो वह म्लेच्छ उस शब्द के वाच्यवाचक सम्बन्ध को न जानने से कुछ भी न समझकर उस ब्राह्मण की ओर मेंढे की भाँति आँखें फाड़कर टकटकी लगाकर देखता ही रहता है, किन्तु जब ब्राह्मण की और म्लेच्छ की भाषा का–दोनों का अर्थ जाननेवाला कोई दूसरा पुरुष या वही ब्राह्मण म्लेच्छभाषा बोलकर उसे समझाता है कि 'स्वस्ति' शब्द का अर्थ यह है कि ''तेरा अविनाशी कल्याण हो'', तब तत्काल ही उत्पन्न होनेवाले अत्यन्त आनन्दमय अश्रुओं से जिसके नेत्र भर जाते हैं, ऐसा वह म्लेच्छ इस 'स्वस्ति' शब्द के अर्थ को समझ जाता है; इसी प्रकार व्यवहारीजन भी 'आत्मा' शब्द के कहने पर 'आत्मा' शब्द के अर्थ ज्ञान न होने से कुछ भी न समझकर मेंढे की भाँति आँखें फाड़कर टकटकी लगाकर देखते रहते हैं, किन्तु जब व्यवहार–परमार्थ मार्ग पर सम्यग्ज्ञानरूपी महारथ को चलानेवाले सारथी की भाँति अन्य कोई आचार्य अथवा 'आत्मा' शब्द को कहनेवाला स्वयं ही व्यवहारमार्ग में रहता हुआ आत्मा शब्द का यह अर्थ बतलाता है कि – ''दर्शन, ज्ञान, चारित्र को जो सदा प्राप्त हो, वह आत्मा है'', तब तत्काल ही उत्पन्न होनेवाले अत्यन्त आनन्द से जिसके हृदय में सुन्दर बोधतरंगें (ज्ञानतरंगें) उछलने लगती हैं, ऐसा वह व्यवहारीजन उस ''आत्मा'' शब्द के अर्थ की

अच्छी तरह समझ लेता है। इस प्रकार जगत तो म्लेच्छ के स्थान पर होने से, और व्यवहारनय भी म्लेच्छभाषा के स्थान पर होने से परमार्थ का प्रतिपादक (कहनेवाला) है इसलिए, व्यवहारनय स्थापित करने योग्य है; किन्तु ब्राह्मण को म्लेच्छ नहीं हो जाना चाहिए – इस वचन से वह (व्यवहारनय) अनुसरण करनेयोग्य नहीं है।

भावार्थ : लोग शुद्धनय को नहीं जानते, क्योंकि शुद्धनय का विषय अभेद एकरूप वस्तु है; किन्तु वे अशुद्धनय को ही जानते हैं क्योंकि उसका विषय भेदरूप अनेकप्रकार है; इसलिए वे व्यवहार के द्वारा ही परमार्थ को समझ सकते हैं। अत: व्यवहारनय को परमार्थ का कहनेवाला जानकर उसका उपदेश किया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि यहाँ व्यवहार का आलम्बन कराते हैं, प्रत्युत व्यवहार का आलम्बन छुड़ाकर परमार्थ से पहुँचाते हैं – यह समझना चाहिए।

द्वितीय श्रावण शुक्ल १३, रविवार, दिनांक - २८-०८-१९६६
गाथा - ८, प्रवचन - ३०

यह समयसार, जीव-अजीव अधिकार चलता है। उसमें सात गाथा चली। छह और सात में ऐसा चला, उसमें से शिष्य को प्रश्न उठता है। शिष्य को आठवीं गाथा का प्रश्न कैसे उठा? महाराज! आप तो कहते हो कि एक आत्मा अभेद वही वस्तु है। उसमें पर्यायभेद भी नहीं लेना और गुण-गुणी भेद भी नहीं लेना। समझ में आया? अकेला ज्ञायक चैतन्य ध्रुव स्वरूप, उसे हम आत्मा कहते हैं और उसकी दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। अकेला अभेद... अभेद... अभेद... तुमने तो बहुत सिद्ध किया। तो हमारा प्रश्न है कि **यदि ऐसा है तो एक परमार्थ का ही उपदेश देना चाहिए;...** हमारा प्रश्न है कि ऐसे अभेद का ही अकेला उपदेश देना चाहिए। समझ में आया?

छठवीं गाथा में कहा कि गुणस्थानभेद, पर्यायभेद सब उसमें नहीं। फिर सातवीं में कहा कि उसमें गुण-गुणी का भेद भी नहीं। एक अभेद शुद्ध शुद्धनय का विषय, वही ज्ञायकभाव, वही ध्रुवभाव, कारणपरमात्मा। उसे ही तुम्हारे आत्मा कहना है तो वह एक ही बात कहो न परमार्थ की। **एक परमार्थ का...** भाषा है न? देखो! पाठ में है। एक।

एक परमार्थ का ही उपदेश देना चाहिए;... व्यवहारनय का उपदेश किसलिए देते हो? समझ में आया? आप तो परमार्थ की बात करते हो कि आत्मा अभेद एक शुद्ध ध्रुव है। उसमें कोई गुण-गुणी का भेद नहीं और पर्याय-फर्याय का भेद तो है ही नहीं। ऐसी बात आप करते हो तो आपको एक परमार्थ का ही उपदेश करना चाहिए। समझ में आया? ऐसा पाठ है न? '**तर्हि परमार्थ एवैको वक्तव्य इति चेत्-**' ऐसा प्रश्न है। 'व्यवहार किसलिए कहते हो?' तुम्हारे सिद्ध तो अभेद करना है और अभेद का आश्रय कराना है और आप अभेद वही वस्तु है, ऐसा कहते हो। समझ में आया? शिष्य ने इतना तो पकड़ा है न! अकेला परमार्थ ही कहना चाहिए, दूसरे व्यवहार की आवश्यकता क्या है? सेठी! **व्यवहार किसलिए कहा जाता है?** इसमें से निकाला है, हों! पाठ तो इतना है। '**परमार्थ एवैको**' है न? तो इसका अर्थ दूसरे व्यवहार का क्या काम है? भाई! इसमें से निकाला। समझ में आया? इसमें से निकाला है, हों! घर का कुछ नहीं, अर्थ करनेवाले ने पाठ में है, उसमें (निकाला है)। '**परमार्थ एवैको**' परमार्थ भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध अभेद अखण्डानन्द प्रभु है, उसे ही आपको कहना था। परमार्थ ही कहना था, व्यवहार किसलिए कहा? **इसके उत्तरस्वरूप गाथासूत्र कहते हैं :-** ऐसी जिज्ञासा है, उसे समझाने की गाथा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जह ण वि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसण-मसक्कं॥ ८॥

भाषा अनार्य बिना न, समझाना ज्यु शक्य अनार्य को।
व्यवहार बिन परमार्थ का, उपदेश होय अशक्य यों॥८॥

टीका लेनी है न टीका सीधी? टीका। विशिष्टता इतनी है कि पाठ में अनार्य शब्द पड़ा है और अमृतचन्द्राचार्य ने निकाला हुआ है म्लेच्छ शब्द। समझ में आया? क्योंकि कुन्दकुन्दाचार्य के समय २००० वर्ष पहले की बात है और लगभग १००० वर्ष बाद अमृतचन्द्राचार्य हुए। भाषा में भी यहाँ म्लेच्छ भाषा आयी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान कहते हैं, ऐसा हम कहते हैं। समझ में आया?

यहाँ दूसरी बात करते हैं कि पहले भाषा है अनार्य — '**अणज्जभास**' और अमृतचन्द्राचार्य ने म्लेच्छ शब्द प्रयोग किया है। इसका अर्थ है कि काल थोड़ा हीन आया न! पहले जो अनार्य भाषा थी, उसे म्लेच्छ भाषा (कही)। भाषा में भी इतना अन्तर हो गया। समझ में आया? किसी भी शब्द में... यह वह अध्यात्म शास्त्र है और महा सन्तों का कहा हुआ है। यह कहीं साधारण कथा-वार्ता नहीं। इसके एक-एक शब्द में कैसे अन्तर पड़ा, उसका भी कोई इतिहास है। उसमें कुछ इतिहास है। समझ में आया?

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने पहले ऐसा शब्द कहा कि '**जह ण वि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदु**' भगवान अमृतचन्द्राचार्य १००० वर्ष बाद अर्थ करते हैं, **जैसे किसी म्लेच्छ से...** किसी म्लेच्छ से। सब म्लेच्छ नहीं, कोई म्लेच्छ। म्लेच्छ शब्द है न? पण्डितजी! हल्की चीज़ हो गयी। अनार्य से म्लेच्छ हल्का हो गया। और शब्द में अनार्य इतना है। यहाँ म्लेच्छ है। म्ले—मल... मल। मल को इच्छनेवाला। भाषा की स्थिति ऐसी हो गयी है। यह तो सहज भाषा निकलती है, करनी पड़े ऐसी भाषा नहीं। यह शैली ही सहज ऐसी निकल जाती है।

कहते हैं कि **जैसे किसी म्लेच्छ से...** कदाचित्। कोई म्लेच्छ और कदाचित्। **कोई ब्राह्मण 'स्वस्ति' ऐसा शब्द कहे... स्वस्ति तो वह म्लेच्छ उस शब्द के वाच्यवाचक सम्बन्ध को न जानने से कुछ भी न समझकर....** वाच्य-वाचक सम्बन्ध। स्वस्ति वाचक है तो उसका वाच्य क्या? भाव क्या? समझे नहीं? जैसे शक्कर शब्द है, शक्कर शब्द शक्कर पदार्थ को बताता है। उसी प्रकार स्वस्ति क्या बताता है, इसकी खबर नहीं। पात्र श्रोता कैसा होना चाहिए, यह भी उसमें लेंगे। यह गाथा तो आचार्य की है। श्रोता कैसा होना चाहिए और उसे धर्मात्मा उपदेश देते हैं। दोनों बातें उसमें समाहित हो जाती हैं। जैसे पहली गाथा में कहा कि हम सर्व सिद्धों को हमारे ज्ञान में स्थापित करके, हे श्रोताओं! तुम्हारे ज्ञान में सर्व सिद्धों को स्थापित करके समयसार कहते हैं। देखो! ऐसे तो श्रोता लिये हैं। और... समझ में आया? निकटवर्ती लिये, भाई! समझ में आया? अन्तेवासी लिया न? आया न? ७ में। अन्तेवासी है, समीप में है, समीप में है। क्षेत्र से

समीप, भाव में समझने के योग्य है, सुनने के योग्य है। समझ में आया?

५वीं गाथा में (ऐसा कहा कि), मैं कहूँगा। **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।' 'तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण' 'जदि दाएज्ज'** मैं कहूँगा। तो अनुभव प्रमाण करना। अनुभव प्रमाण से मानना। ऐसा शिष्य ही सामने रखा है। समझ में आया? पहले श्रोता के (आत्मा में) सिद्ध को स्थापित किया। सुनो! तुम सिद्ध हो। हम स्थापित करते हैं। सर्व अनन्त सिद्धों को पर्याय में (स्थापित किये)। इसका अर्थ कि तेरा लक्ष्य ज्ञायक के ऊपर होना चाहिए। अब समयसार सुन। हम कहते हैं। पाँचवीं में ऐसा लिया, हम जो तुमको कहेंगे उसका प्रमाण करना। **'जदि दाएज्ज पमाणं' 'पमाणं'** अनुभव प्रत्यक्ष से प्रमाण करना। दूसरा तर्क नहीं करना। **'छलं ण घेत्तव्वं'।** कोई शब्द आदि में स्खलना हो जाये और तुझे ख्याल में आ जाये, तुझे ऐसा क्षयोपशम हो और ख्याल में आवे तो जागरूक नहीं होना। **'जागरूक'** नहीं होना, ऐसा लिया है। उस ख्याल में नहीं रुकना। हमारा जो कहना है अनुभव का भाव, उसे तू ख्याल में लेकर अनुभव करना। ७वीं गाथा में ऐसा कहा कि निकटवर्ती शिष्य को कहते हैं। शिष्य, एक धर्मी ऐसे द्रव्य को समझता नहीं, उसे असाधारण धर्म के नाममात्र भेद करके, नाममात्र भेद, हों! वस्तु में भेद नहीं पड़ते। सुनाते हैं। ऐसा कहकर अभेद को सिद्ध किया। तो शिष्य ने ऐसा प्रश्न किया कि अभेद ही तुम्हारे स्थापित करना था तो अकेला अभेद कहो न। सुन तो सही!

जैसे म्लेच्छ को स्वस्ति शब्द कहे तो वह **वाच्यवाचक सम्बन्ध को न जानने से...** शब्द सुना, परन्तु उसका भाव क्या कहते हैं? तेरा अविनाशी कल्याण—स्वस्ति—तेरा कल्याण, ऐसा भाव वह समझता नहीं। समझे? **न जानने से कुछ भी न समझकर...** भाषा ऐसी ली है। कुछ समझा नहीं, कुछ समझा नहीं। स्वस्ति शब्द सुना, परन्तु कुछ समझा नहीं। **ब्राह्मण के सामने...** अब यहाँ विशिष्टता देखो। परन्तु वह स्वस्ति सुननेवाले की योग्यता ऐसी है कि **ब्राह्मण के सामने मेंढे की भाँति...** मेंढा होता है न? मेंढ़ा कहते हैं न? वह अनुसरण करे। एक मेंढ़ा दूसरे मेंढ़ा के पीछे ऐसे चलता है, अनुसरण करता है। ऊँचे नहीं देखता। पहला कुएँ में गिरे तो यह भी कुएँ में गिरे। यहाँ इतना लेना है कि

अनुसरण करनेवाला शिष्य लिया है। वह भी सुननेवाला, धर्म बाद में।

ब्राह्मण के सामने मेंढे की भाँति... इसमें क्या लिया? कि जो कहते हैं, उसमें उसे उकताहट नहीं लगती। यह क्या कहते हैं? ऐसा कैसे कहा? ऐसा नहीं। मैं तो समझता नहीं, ऐसा कैसे कहा? ऐसा नहीं। परन्तु **मेंढे की भाँति आँखें फाड़कर टकटकी लगाकर... 'इवानिमेषोन्मेषितचक्षुः'** समझ में आया? लौकिक जो दृष्टान्त दिया है, उसमें भी कहनेवाले का अनुकरण करनेवाला (लिया है) कि यह क्या कहते हैं? क्या कहते हैं? बस, इतना। यह क्या कहते हैं, वह सुनने की इच्छा है। समझ में आया? आहाहा! **ब्राह्मण के सामने मेंढे की भाँति...** घेंटा हमारे (गुजराती में) कहते हैं, घेंटा। मेंढ़ा की भाँति... घेंटा कहते हैं न अपने? काळा को बकरा कहते हैं। काळा बकरा की अपेक्षा मेंढ़ा बहुत अनुकरण वृत्तिवाला होता है। **आँखें फाड़कर टकटकी...** आँखें मीचे नहीं। अनिमेष। क्या कहते हैं? क्या कहते हैं? **देखता ही रहता है,...** टकटकी लगाकर देखता ही रहता है।

किन्तु जब ब्राह्मण की और म्लेच्छ की भाषा का-दोनों का अर्थ जाननेवाला... अब आया। ब्राह्मण कहता है, वह भाषा और यह क्या कहते हैं, उसे किस प्रकार से समझना, कौनसी भाषा है। **ब्राह्मण की और म्लेच्छ की भाषा का-दोनों का अर्थ जाननेवाला कोई दूसरा पुरुष या वही ब्राह्मण...** अन्य कोई पुरुष अथवा वही ब्राह्मण **म्लेच्छभाषा बोलकर उसे समझाता है...** म्लेच्छभाषा बोलकर समझा है **'स्वस्ति' शब्द का अर्थ यह है कि 'तेरा अविनाशी कल्याण हो',...** स्वस्ति का अर्थ यह है, भाई! तेरा अविनाशी कल्याण हो, यह स्वस्ति शब्द का अर्थ है।

तब... भाषा देखो! **तत्काल ही...** तत्काल—अन्तर पड़े बिना। ओहो! क्या कहते हैं! **तत्काल ही...** उसमें पाठ है न? समझ में आया? **'सद्य' 'सद्य'** शब्द है न अन्दर? **तत्काल ही उत्पन्न होनेवाले अत्यन्त आनन्दमय...** हर्ष आ गया। उस सम्बन्धी हर्ष, हों! अपने अतीन्द्रिय आनन्द की बात नहीं। यह बात समझा, उसका हर्ष आ गया। ओहोहो! आँख में आँसू आ जाये, हर्ष के आँसू हो गये, हर्ष के आँसू हो गये। आहाहा! स्वस्ति का अर्थ — तेरा अविनाशी कल्याण होओ। आँख में से आँसू प्रवाहित हो जाते हैं।

अत्यन्त आनन्दमय अश्रुओं से जिसके नेत्र भर जाते हैं, ऐसा वह म्लेच्छ... ऐसा वह म्लेच्छ, इस दशा में **इस 'स्वस्ति' शब्द के अर्थ को समझ जाता है;...** यह तो दृष्टान्त दिया। समझ में आया?

इसी प्रकार व्यवहारीजन... अब व्यवहारीजन भी सुननेवाला कैसा होता है, उसकी योग्यता—उसकी पात्रता—सुननेवाले की योग्यता, समझानेवाले को अनुसरण करने की, अनुवृत्ति करने की उसकी योग्यता कैसी है! पूरे शास्त्र में बहुत भर दिया है। समझ में आया? **व्यवहारीजन...** उसमें म्लेच्छ था, यह व्यवहारीजन। **'आत्मा' शब्द के कहने पर...** उसमें स्वस्ति कहा था, यह आत्मा कहा। आत्मा! **'आत्मा' शब्द के अर्थ ज्ञान न होने से...** क्या कहते हैं यह आत्मा? क्या कहते हैं? उकताहट नहीं, हों! उसका भाव नहीं समझता कि यह क्या कहना चाहते हैं? आत्मा कहकर क्या कहना चाहते हैं? हम तो कुछ समझे नहीं।

कुछ भी न समझकर... कुछ भी न समझकर। देखो! आत्मा शब्द कान में पड़ा, कुछ नहीं समझा। **मेंढ़ा की भाँति...** आत्मा कहनेवाले की ओर **मेंढ़ा की भाँति...** मेंढ़ा की अनुकरण वृत्ति है। यह क्या कहते हैं? क्या कहते हैं? क्या कहते हैं? बस। अपनी कोई बात अन्दर है नहीं। समझ में आया? **मेंढ़ा की भाँति...** अनुकरण करने की दृष्टि। **आँखें फाड़कर...** बाहर में आँखें फाड़ता है और अन्दर में क्षयोपशमभाव हुआ है ऐसा। क्या कहते हैं? **टकटकी लगाकर (देखता रहता है)** साथ में विकल्प भी आया, क्या कहते हैं? सुनो! पाँच लब्धि है न? तो चार लब्धि इसमें समाहित कर दी है। क्षयोपशम—यह क्या कहते हैं, ऐसा क्षयोपशम हुआ है, विकल्प है कि यह क्या कहते हैं। प्रायोगलब्धि हो गयी तो सामने एकटक टगटग देखता है कि क्या कहते हैं आत्मा? और देशना तो वाणी है, करण तो बाद में करना है उसे। समझ में आया? आहाहा! **मेंढ़ा की भाँति...** सरल व्यक्ति है। सरलता से अनुकरण करने की जिज्ञासा है। क्षयोपशम बराबर करके टगटगी लगाकर। शुभ विकल्प में जिज्ञासा है **देखता ही रहता है,...** देखता ही रहता है। क्या कहते हैं यह? समझ में आया?

किन्तु जब व्यवहार-परमार्थ मार्ग पर सम्यग्ज्ञानरूपी महारथ को चलानेवाले...

क्या कहते हैं अब? **जब व्यवहार-परमार्थ...** परमार्थ का तो भान है, परन्तु जब उसे समझाने का विकल्प आया तो व्यवहार आ गया। समझानेवाले के निश्चय, व्यवहार दोनों आ गये। अभेद अनुभव तो है, दृष्टि परमार्थ है, विकल्प आया कि उसे सुनाऊँ। भेद करके सुनाऊँ। यह व्यवहार आ गया। यह व्यवहार आया, परन्तु आगे कहेंगे कि उसको भी अनुसरण करनेयोग्य नहीं। और सुननेवाले को कहेंगे, व्यवहार से भेद पाड़कर अभेद कहेंगे तो तुझे भी व्यवहार का अनुसरण करनेयोग्य नहीं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है।

व्यवहार-परमार्थ मार्ग पर सम्यग्ज्ञानरूपी महारथ को चलानेवाले... अन्दर में विकल्प आया है। भेद पाड़कर समझाना, वही विकल्प व्यवहार हो गया। अन्तर में अभेद अनुभव है, अभेद दृष्टि है, स्थिरता है, अभेद है। कहते हैं कि **व्यवहार-परमार्थ मार्ग पर सम्यग्ज्ञानरूपी महारथ को चलानेवाले...** महारथ को चक्र होता है न? परमार्थ भी है और धर्म के लोभी को समझाने का व्यवहार का विकल्प भी आया। **सारथी की भाँति अन्य कोई आचार्य...** कहनेवाले आचार्य अथवा दूसरे आचार्य, ऐसा कहते हैं। शब्द सुना तो यह शब्द कहनेवाले ने कहा अथवा कोई दूसरे ने आकर उसका अर्थ किया। दो बातें ली हैं। **कोई आचार्य अथवा 'आत्मा' शब्द को कहनेवाला...** यह क्यों लिया है? कि उसे समझाने में थोड़ा काल लग गया। फिर कहनेवाले नहीं थे तो दूसरे ने आकर उसे समझाया। समझ में आया? ऐसी भी जीव की योग्यता (होती है)। कोई तत्काल समझता है और कोई न समझा तो दूसरे ने उसका अर्थ किया। वह अर्थ समझा। समझ में आया?

अन्य कोई आचार्य अथवा 'आत्मा' शब्द को कहनेवाला स्वयं ही व्यवहारमार्ग में रहता हुआ... देखो! विकल्प में आये हैं, भेद करके बताना है, वह व्यवहार हो गया। आहाहा! **व्यवहारमार्ग में रहता हुआ... 'आत्मा' शब्द का अर्थ समझता है।** आत्मा शब्द का ही अर्थ समझाते हैं। कौन? थोड़े में थोड़ा इतना तो कहना पड़े, ऐसा कहते हैं। राग करे, वह आत्मा, राग करे, वह आत्मा — यह नहीं। समझ में आया? अशुद्धता, वह आत्मा... भाई! वह नहीं। अन्त में उसे इतना व्यवहार करना पड़ता है। प्ररूपक को,

उपदेश देनेवाले को (सामनेवाला) आत्मा समझता नहीं, अभेद आत्मा समझता नहीं, अभेद स्वरूप जो ६-७ गाथा में कहा, ऐसा अकेला ज्ञायक समझता नहीं, तो परमार्थ और व्यवहार में रहनेवाले श्रोता को '**दर्शन, ज्ञान, चारित्र को जो सदा प्राप्त हो, वह आत्मा है**',... इतना भेद करना पड़ा। भगवान आत्मा... 'अतति गच्छति इति आत्मा'। आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। इतना भेद पड़ गया। दर्शन, ज्ञान... सातवीं में अन्त में लिया न? '**ववहारेणुवदिस्सदि**'। यह अन्तिम बोल लिया इतना। समझ में आया? इतना उसे थोड़े में थोड़ा, पूरा-पूरा परमार्थ बतलाने में अन्त में इतना शब्द आया, भाई! दर्शन-श्रद्धा अथवा देखना, जानना और स्थिरता को जो सदा प्राप्त हो, सदा सहित हो, सदा प्राप्त हो 'गच्छति' वह आत्मा। 'दर्शन-ज्ञान-चारित्र को जो (हमेशा) प्राप्त हो, वह आत्मा है' बस, इतना संक्षेप में कहा। यह उपदेश। लोग कहते हैं कि यह धवल (शास्त्र) नहीं था, जयधवल नहीं था, महाधवल नहीं था। इसलिए वे लोग बराबर समझ नहीं सके थे, अब हम बराबर समझते हैं। धवल का बहुत अभ्यास किया, जयधवल, महाधवल का किया तो हम बराबर समझते हैं। टोडरमलजी को ऐसा मिला नहीं था। अरे! भाई! शब्द में क्या है?

इतना व्यवहार आया, बस। कुन्दकुन्दाचार्य ने भी पाँचवीं गाथा में ऐसा ही कहा। भगवान सर्वज्ञ परगुरु, अपरगुरु गणधर से लेकर हमारे गुरुपर्यन्त, हमारे ऊपर कृपा करके '**प्रसादीकृत अनुशासनजन्मा**'। मेहरबानी करके भगवान से लेकर हमारे गुरुपर्यन्त आत्मा का, शुद्ध आत्मा का उपदेश हमको दिया। एक ही शब्द। समझ में आया? एक ही शब्द। शुद्ध आत्मा का उपदेश हमको हमारे गुरु ने कृपा करके... विनय है न! बहुत विनय है। अनुशासन करके हमको अनुसरकर (कहा), भाई! यह शुद्धात्मा, वह आत्मा है, ऐसा कहा। वहाँ ऐसा लिया, भाई! शुद्धात्मा। यहाँ कहा कि... साधारण प्राणी को समझाना है तो व्यवहारीजन ऐसे हैं तो वे थोड़े में थोड़ा इतना भेद करना पड़े। पर को करे, वह आत्मा, ऐसा नहीं। राग-व्यवहाररत्नत्रय राग को करे, वह आत्मा, ऐसा नहीं। वह आत्मा नहीं। अशुद्ध, वह आत्मा नहीं। परन्तु एकरूप जो भगवान आत्मा है, वह तीन को प्राप्त होता है, श्रद्धा को... विश्वास कौन करता है? ज्ञान कौन करता है? स्थिरता कहाँ होती है? ऐसे श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो — **सदा प्राप्त हो, वह आत्मा है...**

आहाहा! देखो! इतने शब्द में देशनालब्धि आ गयी। समझ में आया? पहले क्षयोपशम था, सुनने का विकल्प था, (कर्म की) स्थिति घटी थी, प्रायोग्यलब्धि थी, देशना मिल गयी अन्दर। ओहो! समझ में आया? अब अन्तर में लक्ष्य करके आनन्द उत्पन्न होता है, ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं?

तब तत्काल ही... भाषा देखो! आहाहा! दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा, ऐसा जब सुना... लक्ष्य तो आत्मा का कराना है, भाई! भेद का नहीं, भेद का नहीं। भेद से अभेद का (लक्ष्य कराना है कि) यह आत्मा। दर्शन-श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र को सदा प्राप्त हो। यह बतलाना है व्यवहार से, भेद से, बतलाना है अभेद। व्यवहार बतलाना नहीं है। व्यवहार द्वारा—भेद द्वारा निश्चय बतलाना है। भगवान आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। ऐसा बतलानेवाले का जो आशय था, भेद पाड़कर अभेद बतलाने का आशय था, वह भेद को लक्ष्य में लेकर अभेद में चला गया। समझ में आया?

तब तत्काल ही उत्पन्न होनेवाले... ऐसे यहाँ समीप में अनुभव हुआ, यह बात करते हैं, भाई! अधिगम की बात करते हैं। आहाहा! समझ में आया? **तत्काल ही उत्पन्न होनेवाले अत्यन्त आनन्द से...** अत्यन्त आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द आया। यह गुरु कहते हैं कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। यह श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त वह आत्मा, ऐसा आत्मा के ऊपर दृष्टि हुई, एकत्व हुआ (वहाँ) भेद से सुनना हुआ था, उसका भी भेद पड़ गया। उसे छोड़कर। समझ में आया? इन तीन बोल का लक्ष्य भी छोड़ दिया। आहाहा!

अत्यन्त आनन्द से... पाठ है न अन्दर? '**अमन्दानन्द**' '**अमन्दानन्द**' '**अमन्दानन्द**'। '**सद्य अमन्दानन्द**' ऐसा है न? '**सद्य**' अर्थात् तत्काल। समझ में आया? **उत्पन्न होते...** आहाहा! यह आत्मा, यह आत्मा। भेद से बताया कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा। उसमें ऐसा नहीं कहा कि हमको सुनता है, वह आत्मा। अन्त में इतना कहा, भगवान! अन्दर भगवान विराजता है न! वह दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होता है। वह भेद से अभेद बतलाया। भेद, भेद को नहीं बतलाता। भेद से अभेद को बतलाया। आगे

कहेंगे कि व्यवहार स्थापन करनेयोग्य है। व्यवहार है सही, परन्तु आदरणीय नहीं। समझ में आया? सुननेवाले को और कहनेवाले को विकल्प आया। सुननेवाले को भेद का लक्ष्य हुआ। वह है, यह बराबर है परन्तु आश्रय करनेयोग्य नहीं। समझ में आया? यह टीका में है। आगे लेंगे।

अत्यन्त आनन्द से जिसके हृदय में सुन्दर... देखो! उसमें (दृष्टानत में) आँख में था। समझ में आया? उसकी आँख में हर्ष के आँसू आये। बाहर की बात की न। यह तो अन्तर हृदय में—ज्ञान में। अन्दर हृदय अर्थात् ज्ञान में **सुन्दर बोधतरंगें (ज्ञानतरंगें) उछलने लगती हैं...** आनन्द और ज्ञान दोनों साथ उठते हैं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो दो बात कहनी है। अकेला ज्ञान भी नहीं। आनन्द पहले लिया। फिर बोधतरंग उठती है ज्ञान की। यह ना पाड़ते हैं या नहीं? चौथे गुणस्थान में आनन्द न हो, स्वरूपाचरण न हो। अरे! भगवान! तू क्या कहता है? अरे! भगवान! तेरी चीज़ की तुझे खबर नहीं, प्रभु! वह चीज़ ऐसी है कि वह चीज़, वह चीज़, वह अभेद चीज़। भेद का लक्ष्य कराकर लक्ष्य तो अभेद का कराया। ऐसे अभेद के ऊपर दृष्टि जाने से श्रोता को—व्यवहारीजन को। **अत्यन्त आनन्द से जिसके हृदय में...** उसमें आँख का (था)। **सुन्दर (मनोहर) बोधतरंगें...** यह ज्ञान की व्याख्या है। सुन्दर। अत्यन्त आनन्द, अत्यन्त आनन्द। उस आनन्द में अत्यन्त आनन्द लिया। जिसके हृदय में **सुन्दर (मनोहर) बोधतरंगें...** ज्ञान की कला जगी। 'ज्ञानकला उपजी अब मोकू, कहूं गुण नाटक आगम केरो।' समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो तत्काल। राजमलजी! वायदा नहीं, वायदा समझे? ऐसे श्रोता ही नहीं लिये। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आया है, छापने में अन्तर है। सुधारा आया है। शुद्धि में है, खबर है। समझ में आया? यह तो छापने में कोई शब्द रह गया हो। यह टीका में है न, देखो न! '**तदा सद्य एवोद्यदमन्दानन्द**' क्या कहते हैं? बहुत सार और बहुत अल्प काल। एक शब्द कान में पड़ा इतना। बस, हो गया समाप्त! बारह अंग और ग्यारह अंग नहीं पढ़ा हो। भगवान आत्मा वस्तु यह वस्तु है, वह दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भेद से

अभेद बताते हैं। यह भेद से अभेद बताते हैं। आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा है। उसकी दृष्टि आत्मा के ऊपर गयी। आत्मा के ऊपर जाने से अत्यन्त आनन्द उत्पन्न हुआ। देखो! यहाँ पहले आनन्द लिया है। अमरचन्दजी! सम्यग्ज्ञान हुआ और आनन्द साथ में आया। वरना सम्यग्ज्ञान है नहीं। समझ में आया? मिथ्याज्ञान में दुःख था, आकुलता थी, मिथ्याज्ञान में आकुलता थी। तो सम्यग्ज्ञान में कुछ अनाकुलता न आवे तो वह ज्ञान कैसा? आहाहा! समझ में आया? एक-एक शब्द में कितना स्पष्ट किया है! परन्तु समझे नहीं और अपनी पकड़ छोड़े नहीं तो उसे कौन समझावे? तीर्थंकर की भी सामर्थ्य नहीं कि किसी को समझा सके। भगवान! तू तुझसे समझ तो दूसरे को निमित्त कहलाये। आहाहा!

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, '**ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं**' तो परमार्थ शब्द (कहा) तो पा गया, ऐसा अर्थ इसमें लिया है। ऐसा अर्थ इसमें से निकाला है। व्यवहार बिना परमार्थ का उपदेश अशक्य है। व्यवहार भेद पाड़कर कहता है कि भाई! प्रभु! तू आत्मा है न! अकेला आत्मा शब्द न समझ में आये तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह अभेद आत्मा, वह आत्मा है। पाठ में से ऐसा निकाला है, हों! परमार्थ को कहनेवाला जो व्यवहार कहा तो परमार्थ समझ गया। पा गया परमार्थ, ऐसा यहाँ पाठ में लिखा है, भाई! ओहोहो! '**तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं**' भाषा अनार्य बिना वह नहीं समझे। इसी प्रकार यह भेद बिना समझ नहीं सकता। इतना भेद तो आता है, भाई! यह भेद ऐसा नहीं कि कषाय मन्द करो तो अभेद लक्ष्य में आवे। समझ में आया? मात्र इतना कि भगवान आत्मा पूरे अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप अभेद वस्तु है। तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त इतना भेद लक्ष्य में लेकर अभेद में गया। समझ में आया? कषाय की मन्दता करते-करते अभेद में गया, वह वस्तु की स्थिति में नहीं है। ताराचन्दजी! पाठ क्या कहता है? देखो! इतना उसके लक्ष्य में आया और गुरु ने कहा कि सम्यग्ज्ञानरूपी रथ में निश्चय-व्यवहार में चलता है। निश्चय का भान है, विकल्प उठा है भेद पाड़ने का, वह अनुसरण करनेयोग्य नहीं परन्तु आया है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र बस, तीन ही गुण हैं? गुण तो अनन्त हैं। सुन न! मुख्य असाधारण गुण तो कहे। सातवीं में कहा था, असाधारण के नाममात्र कहकर व्यवहार से कहा।

भगवान आत्मा अभेद चैतन्य एकरूप वस्तु है। ओहोहो! यह तो भाई! रात्रि में प्रश्न उठा था न? तुमको रात्रि में थोड़ा कहा था। कहा, यह तो सामनेवाले का प्रश्न था, इसलिए असंख्य प्रदेश समान विकार के हैं। वास्तव में तो विकार के प्रदेश भिन्न हैं, लो! यह विकार के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चारों ही भिन्न है। ऐई! सेठी! उसकी तो यहाँ बात ही की नहीं। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा... डालचन्दजी! समझ में आया? संवर अधिकार में आता है न? कि विकार का क्षेत्र भिन्न है।

मुमुक्षु : वहाँ द्रव्य से भी भिन्न लिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह द्रव्य अर्थात् वस्तु। वह वस्तु, ऐसा। दो वस्तु भिन्न है। अन्तिम शब्द यह है। अज्ञान, वह पुण्य-पाप के भाव अज्ञान है। अज्ञान का अर्थ उसमें चैतन्य का नूर-तेज नहीं। अन्त में यह लिया है। भाई! अन्दर अज्ञान लिया है। कितना था? (१८१-१८३ गाथा की टीका में) अन्त में है, देखो! **वस्तुओं से भिन्न ही है। इस प्रकार ज्ञान और अज्ञान में...** ऐसा लिया है। समझ में आया? है न नीचे? **इस प्रकार ज्ञान और अज्ञान में (क्रोधादिक को) आधार-आधेयपना नहीं है।** कहाँ आया है? यह अज्ञान आया। '**स्वभावभेदाच्च वस्तुभेद एवेति**' (२८८ पृष्ठ पर) '**स्वभावभेदाच्च वस्तुभेद एवेति नास्ति ज्ञानाज्ञानयोरा-धाराधेयत्वम्**'। देखो! भाषा अज्ञान ली। टीका है। २८८ पृष्ठ संस्कृत टीका है। पुण्य-पाप के भाव, दया, दान के भाव, शुभाशुभभाव '**स्वभावभेदाच्च**'। वस्तुभेद, वस्तुभेद। '**एवेति नास्ति**' दोनों एक नहीं। ज्ञान और अज्ञान को आधार-आधेयपना नहीं। **नास्ति ज्ञानाज्ञानयोराधाराधेयत्वम्**'। यहाँ तो विकार को अज्ञान कहा। आहाहा! ...अज्ञान कहा।

भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव वस्तु, उससे (भिन्न) विकल्प आदि है, उनमें ज्ञान के तेज का-नूर का द्रव्य-गुण-पर्याय का अभाव है। इसलिए कहा कि... अन्त में कहा, भाई! 'ज्ञान और अज्ञान को (क्रोधादिक को) आधाराधेयपना नहीं है।' और अन्त में आया, वस्तुभेद है। वस्तु एक है ही नहीं, ऐसा आया न?

मुमुक्षु : 'इस प्रकार से स्वभाव भिन्न होने से वस्तुएँ भिन्न ही हैं।'

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु भिन्न है। ऊपर है न? ऊपर है, देखो! '**स्वभावभेदेनोद्वा-**

भसमानत्वात्'। वस्तुभेद-वस्तु भी भिन्न ही है। ओहोहो! इस व्याख्यान में बहुत बात आ गयी है। पुण्य-पाप की अशुद्धता... भगवान! सुन तो सही। उसकी तो बात ली ही नहीं यहाँ, भाई! यहाँ तो उसके क्षेत्र में जो गुण-गुणी के भेद हैं, वह लिये। वह तो लिये ही नहीं। अज्ञान निकाल डाल। भगवान ज्ञानस्वभाव से भिन्न। अब, ज्ञानस्वरूपी भगवान में अभेद बतलाने को उसमें से तीन भेद कहे। दर्शन, ज्ञान, चारित्र को सदा प्राप्त हो, वह आत्मा। समझ में आया? विकार को प्राप्त हो, वह आत्मा, अशुद्धता को प्राप्त हो वह आत्मा, यह तो बात ही यहाँ नहीं। आहाहा! समझ में आया? समयसार की अन्तर की अनुभव की शैली की बात है। समझ में आया? एक-एक शब्द...

और एक-एक टीका गजब बात है! भरतक्षेत्र में सर्वज्ञ का विरह भुलावे ऐसी यह टीका है। समझ में आया? सर्वज्ञ का विरह भुला दे। ऐसे मुनि कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, आहाहा!

कहते हैं, भगवान! आत्मा विकार से भिन्न है, ऐसा नहीं कहा, भाई! आहाहा! गुरु ने वह आत्मा कहा। आत्मा नहीं समझा, न समझे और वह कहनेवाला कदाचित् चला गया तो उसकी योग्यता-पात्रता है न, ऐसा कहते हैं। उसे दूसरा मिल जायेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वे आत्मा के कहनेवाले धर्मात्मा कदाचित् चले गये और कदाचित् रहे हों, परन्तु सुननेवाले की योग्यता है न, जिज्ञासा है न कि क्या कहते हैं? यही कहनेवाले मिले और चले गये तो दूसरे मिले बिना रहे नहीं। उसकी पात्रता है तो मिले बिना रहे ही नहीं। ऐसा निकाला है। पण्डितजी! दोनों है न? श्रोता की योग्यता की तीव्रता की बात बताते हैं। शिष्य को समझना है न। क्या कहते हैं यह? क्या कहते हैं? कदाचित् ऐसा आत्मा कहनेवाला चला गया, उसका अर्थ किये बिना... समझे? दूसरे आये। भाई! दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त, (वह आत्मा)। विकार से भिन्न आत्मा है, ऐसा नहीं कहा, कर्म से भिन्न आत्मा है ऐसा नहीं कहा। बस, अन्त में इतना कहना पड़ा, दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्रभु आत्मा उसे प्राप्त होता है। वह आत्मा। उसका लक्ष्य आत्मा के ऊपर गया। समझ में आया?

बात निमित्त की नहीं, हों! यह तो वीतरागी बात है, वीतरागी कथा है, भाई!

जिसमें आत्मा की सत्यता प्रगट हो, उसका नाम धर्मकथा है। जिसमें राग का स्थापन हो, कि राग पहले करो तो आत्मा मिल जायेगा, वह स्थापना भगवान के शास्त्र का नहीं। विकथा है। समझ में आया? आहाहा! परन्तु इतना व्यवहार विकल्प आता है। सुननेवाले को भी इतना तो व्यवहार समझाने में आता है, भाई! भगवान आत्मा है न, चैतन्य प्रभु वह दर्शन, ज्ञान, चारित्र को सदा प्राप्त है। सदा, हों! सदा प्राप्त हो।

सुनकर, **अत्यन्त आनन्द से...** तत्काल उत्पन्न हुआ। आहाहा! रोकड़िया धन यहाँ तो है। उधार-बुधार नहीं। ऐ.. डालचन्दजी! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने पंचम काल में तीर्थंकर जैसा काम किया है। अमृतचन्द्राचार्य ने कुन्दकुन्दाचार्य की गणधर जैसी टीका की है। यह कोई पक्षपात (नहीं है)। वस्तुस्थिति अन्दर में समझे तो खबर पड़े, बाकी ऐसा का ऐसा ऊपर से देखे तो क्या खबर पड़े? समझ में आया? कहते हैं, तुरन्त ही, **तब तत्काल ही...** समझ में आया? यह आत्मा है, तब तत्काल। **तत्काल ही...** निश्चय से तुरन्त। तुरत कहते हैं न? **उत्पन्न होते हुए...** आनन्द नहीं था, आनन्द नहीं था तो पर्याय में आनन्द उत्पन्न हुआ, ऐसा कहते हैं। त्रिकाल में तो आनन्द है। परन्तु यह आत्मा ऐसा जहाँ अभेददृष्टि हुई, नया अतीन्द्रिय आनन्द उत्पन्न हुआ। पर्याय में आनन्द नहीं था। समझ में आया? तब तक राग की एकता में पड़ा था, (तब तक) आनन्द नहीं था, अकेला दुःख था। चाहे तो नौवें ग्रैवेयक गया, मुनि होकर पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पालन करके द्रव्यलिंगी (हुआ) परन्तु उसकी पर्याय में तो दुःख ही था। समझ में आया? तत्काल ही। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर है, प्रभु! ज्ञान और आनन्द दो लिये हैं यहाँ तो, भाई! दो हैं न? प्रवचनसार की पहली गाथा है न? उसमें ज्ञान और आनन्द लिये हैं। उसमें भी दो लिये हैं। ज्ञान और आनन्द, बस। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ भी यह लिया। आचार्यों की शैली, दिगम्बर सन्तों की शैली कोई अलौकिक है! यह तो भावलिंगी सन्त थे। यह कहीं बाहर की वस्तु नहीं। अन्तर से सहज आ गया, वह आ गया। भाषा के भी कर्ता नहीं। भाषा वह आनेवाली पर्याय का परिणमन है ... विकल्प भी आ गया, वह आ गया। कर्ता कौन है विकल्प का? समझ में आया?

कहते हैं, **अत्यन्त आनन्द से जिसके हृदय में...** हृदय अर्थात् अन्दर ज्ञान में, हों! मनोहर, सुन्दर और मनोहर। आहा! मन को हरनेवाला। **बोधतरंगें (ज्ञानतरंगें) उछलने लगती हैं...** विशेष समझाने की शक्ति पहले कम थी। निजस्वरूप को समझने की सम्यग्ज्ञान की कला उत्पन्न हो गयी और अतीन्द्रिय आनन्द आ गया। बस, उससे उपास्यमान हो गया। जो छठवीं गाथा में कहते थे वह। परद्रव्य के भाव से भिन्न उपास्यमान। बस, निज द्रव्य के ऊपर लक्ष्य हुआ तो पर्याय में उपास्यमान हुआ। अति आनन्द और ज्ञान की तरंग पर्याय में उत्पन्न हुई। समझ में आया? ऐसी चीज़—शास्त्र जिसके पास पड़ी है, उसका वाच्यार्थ समझने की योग्यता हो तो उसमें से बहुत चीज़ निकलती है। समझ में आया? परन्तु यहाँ की बात करे तो कहे, एकान्त है... एकान्त है। ताराचन्दजी! अरे! भगवान! सुन तो सही! व्यवहार से लाभ माने तो अनेकान्त है? निश्चय से लाभ माने और व्यवहार (से भी माने), यह अनेकान्त है? अरे! भगवान! यह दोनों वस्तु है।

अभी कहेंगे, व्यवहार स्थापने योग्य है; है, परन्तु आदरणीय नहीं, अनुसरण करनेयोग्य नहीं। यह क्या कहा? स्थापन नहीं किया? व्यवहार नहीं है, ऐसा नहीं है। व्यवहार का विषय नहीं? है, इतना स्थापन—जाननेयोग्य है। ४६वीं गाथा में कहा न? व्यवहार। समयसार ४६। व्यवहार है, स्थापन करनेयोग्य है। वहाँ ४६ में ऐसा कहा है। स्थापन करनेयोग्य है। ४६ गाथा है, ४६, हों! ऐसा ही कहे न! दूसरा किसलिए कहे? जैसा हो, वैसा कहे या दूसरा कहे? देखो, ४६। ४६ समझे? चार और छह। 'अपरमार्थभूत होने पर भी, धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करने के लिये व्यवहारनय दर्शाना न्यायसंगत ही है।' पाँचवीं लाईन है, देखो!

यह सब अध्यवसानादि भाव जीव हैं, ऐसा जो भगवान सर्वज्ञदेव ने कहा है वह, यद्यपि व्यवहारनय अभूतार्थ है,... देखो! **तथापि व्यवहारनय को भी बताया है; क्योंकि जैसे म्लेच्छों की म्लेच्छभाषा...** देखो! यहाँ भाषा आयी, लो! **म्लेच्छों की म्लेच्छभाषा वस्तुस्वरूप बतलाती है,...** देखो! यहाँ यह आया। देखो! अपने यहाँ म्लेच्छ है न? यह यहाँ आया। **उसी प्रकार व्यवहारनय व्यवहारी जीवों को परमार्थ का**

कहनेवाला है... हों! **इसलिए अपरमार्थभूत होने पर भी, धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करने के लिए वह (व्यवहारनय) बतलाना न्यायसंगत ही है।** बतलाना न्यायसंगत है। आदरना न्यायसंगत है, ऐसा नहीं। है या नहीं? न्यायसंगत है। समझ में आया?

परन्तु यदि व्यवहारनय न बताया जाये तो, परमार्थ से (-निश्चयनय से) शरीर से जीव को भिन्न बताया जाने पर भी, जैसे भस्म को मसल देने से हिंसा का अभाव है उसी प्रकार... नहीं रहे, तेरा अशुभभाव छूटेगा नहीं। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध को लक्ष्य में लेकर मारने का भाव होता है। व्यवहार है सही, परन्तु आदरणीय नहीं। समझ में आया? वहाँ भी म्लेच्छभाषा आयी। ओहोहो! यह अमृतचन्द्राचार्य की टीका है। ४६ (गाथा) में व्यवहार स्थापित किया है। क्या व्यवहार नहीं? भाई! व्यवहार यह आया, वह भी ... कहेंगे, हों! देखो! अन्त में है, देखो! **व्यवहारनय स्थापित करने योग्य है; किन्तु ब्राह्मण को म्लेच्छ नहीं हो जाना चाहिए - इस वचन से वह (व्यवहारनय) अनुसरण करनेयोग्य नहीं है।** ८वीं गाथा में अन्तिम शब्द है। समझ में आाय? आहाहा! यह तो अभी चलता है, अपने थोड़ा-थोड़ा चलता है न! एक-एक शब्द का अर्थ होना चाहिए न! एकदम कहाँ वाँच जाते हैं।

भगवान आत्मा... अन्तिम में अन्तिम व्यवहार बता दिया। आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त। बस, यह अन्तिम व्यवहार आया। ऐसा सुनने से **अत्यन्त आनन्द से जिसके हृदय में सुन्दर (मनोहर) बोधतरंगें (ज्ञानतरंगें) उछलने लगती हैं ऐसा वह व्यवहारीजन...** देखो! **उस 'आत्मा' शब्द के अर्थ की अच्छी तरह समझ लेता है।** लो! आत्मा का वाच्य जो है, उसे बराबर समझ लेता है। ओहो! परिणमन हो गया अभेद यह आत्मा, अभेद यह आत्मा। आहाहा! समझ में आया? **शब्द का अर्थ...** शब्द का अर्थ अर्थात् वस्तु। आत्मा तो शब्द है। उसके अर्थ को—भाव-आत्मा अभेदस्वरूप-अभेद को **अच्छी तरह समझ लेता है।** बराबर सम्यग्ज्ञान में वस्तु आ जाती है। समझ में आया? **अर्थ की अच्छी तरह समझ लेता है।** भगवान आत्मा दर्शाया तो पकड़ लिया।

इस प्रकार जगत तो म्लेच्छ के स्थान पर होने से,... देखो! पूरा जगत म्लेच्छ के स्थान में है। **और व्यवहारनय भी म्लेच्छभाषा के स्थान पर होने से...** आहाहा! व्यवहारनय

भी। भी लिया न? जगत म्लेच्छ के स्थान पर है और व्यवहारनय भी। ऐसे दोनों इकट्ठे। **म्लेच्छभाषा के स्थान पर होने से परमार्थ का प्रतिपादित (कहनेवाला) है...** परमार्थ का कहनेवाला है, परमार्थ को बतलानेवाला है। इसलिए **व्यवहारनय स्थापित करने योग्य है;...** है—ऐसे स्थापन करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? व्यवहारनय भेद विकल्प है। वहाँ अभेद का लक्ष्य करने का है। व्यवहारनय है इतना सही, आदरणीय नहीं। आहाहा! समझ में आया? भेद का आदर, वह तो विकल्प है, वह तो विकल्प हुआ। अभेद में भेद पड़ा, वह तो विकल्प हुआ। वह तो सातवीं में आ गया। उसका ही परमार्थ यहाँ है। वहाँ जा। हम तो संक्षिप्त में बतलाते हैं, यह दर्शन, ज्ञान, चारित्र को (प्राप्त हो, वह आत्मा)। इतना अकेला आत्मा न समझे तो इतना भेद पाड़कर समझाते हैं। परन्तु समझनेवाले को भेद के ऊपर लक्ष्य नहीं करना। भेद को छोड़कर अभेद पर दृष्टि देना। तब व्यवहारनय स्थापनेयोग्य कहा।

किन्तु ब्राह्मण को म्लेच्छ नहीं हो जाना चाहिए... ब्राह्मण को भले विकल्प आया और कहे, (परन्तु उसे) म्लेच्छ नहीं हो जाना चाहिए। **इस वचन से वह (व्यवहारनय) अनुसरण करनेयोग्य नहीं है।** व्यवहारनय स्थापनेयोग्य है, ऐसा कहने में आया है। परन्तु अनुसरण योग्य नहीं। इसी प्रकार भगवान त्रिलोकनाथ (और) सन्तों का उपदेश है। इसका भावार्थ में विशेष स्पष्ट आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण शुक्ल १४, सोमवार, दिनांक - २९-०८-१९६६
गाथा - ८ तथा ९-१०, प्रवचन - ३१

... आठवीं गाथा का हुआ। आठवीं में क्या कहा? उसके भावार्थ में प्रचलित भाषा में पण्डितजी ने कहा है। भावार्थ है न आठवीं का?

भावार्थ - लोग शुद्धनय को नहीं जानते,... सुनो! सामान्य जनता अनादि से शुद्धनय को नहीं जानती? क्यों? किसलिए नहीं जानते? **शुद्धनय का विषय अभेद एकरूप वस्तु है;...** भगवान आत्मा एक समय में अभेद है। रागादि पर्याय तो नहीं, परन्तु गुण-गुणी भेद भी नहीं, ऐसा एक समय में अभेद चीज़ सामान्य वस्तु, ध्रुव वस्तु अभेद, वह शुद्धनय का विषय है। अभेद एकरूप वस्तु। उसे तो अज्ञानी अनादि से जानते नहीं। उसका कभी उसने भान किया नहीं। समझ में आया? **लोग शुद्धनय को नहीं जानते,...** शुद्धनय कहो या शुद्धनय का विषय... यहाँ दो भेद पाड़ दिये हैं। शुद्धनय को अर्थात् यहाँ विषय और विषयी का दो भेद किया है परन्तु वास्तव में एक ही है। आत्मा एक समय में शुद्ध चैतन्य ज्ञानानन्दस्वरूप अभेद, उसका नाम शुद्धनय। वह सम्यग्दर्शन का विषय। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का विषय-ध्येय अभेद शुद्धनय कहो या सम्यग्दर्शन का विषय कहो, वह भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण अनन्त गुण का एकरूप, वह शुद्धनय स्वरूप है। उसे तो अनादि से अज्ञानी जानते नहीं। क्योंकि शुद्धनय का विषय अभेद एकरूप वस्तु, एकरूप वस्तु है, उसका तो अनादि से अज्ञानी को पता नहीं कि एकरूप वस्तु क्या है? समझ में आया? और एकरूप वस्तु का अन्तर भान किये बिना उसे कभी सम्यग्दर्शन होता नहीं और सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान और चारित्र उसके पास कभी नहीं होते। समझ में आया?

भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध ध्रुव चैतन्यद्रव्य, एकरूप अभेद वह शुद्धनय अथवा शुद्धनय का विषय। यह तो व्यवहारनय से कथन है। वरना शुद्धनय कहो।

'भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो' वहाँ **'भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ'।** ११वीं गाथा में आयेगा। भूतार्थ भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण स्वरूप, अभेद स्वरूप, एक वस्तु गुण-गुणी के भेद का भी लक्ष्य छोड़कर राग का, पर्याय का, निमित्त का लक्ष्य छोड़कर अपने एकरूप स्वभाव में दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? लोग तो अभेद को समझते नहीं। अनादि काल से ग्यारह अंग पढ़ गया, नौ पूर्व भी जाने और नौवें ग्रैवेयक भी अनन्त बार (गया)। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' आत्मा एक समय में क्या चीज़ है, उसे अनन्त काल में कभी दृष्टि में अज्ञानी ने मिथ्यादृष्टि ने अनादि काल से लक्ष्य में, दृष्टि में, ध्येय में लिया नहीं। शशीभाई!

मुमुक्षु : कुछ समझता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी कहेंगे अधिक, अभी कहाँ छोड़ देते हैं। एक बात छोड़ दें, ऐसा नहीं, यहाँ तो पूरा घोंटन करके (कहते हैं)। पहिचानते हो न? यह प्रोफेसर। वड़ोदरा के प्रोफेसर हैं। समझ में आया?

यहाँ तो आठवीं गाथा में कहा... संस्कृत में गूढ़ है। तो पण्डित जयचन्द्रजी ने सामान्य प्रचलित भाषा में क्या कहा, उसे स्पष्ट करते हैं। समझ में आया? यहाँ शुद्धनय का विषय, सम्यग्दर्शन का विषय भगवान आत्मा एक स्वरूप है। एक स्वरूप वस्तु को तो अनादि से अज्ञानी ने जाना नहीं। परन्तु **वे अशुद्धनय को ही जानते हैं...** अज्ञानी तो अनादि से... आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह अशुद्धनय, हों! अभी तो इतना। भाई! समझ में आया? आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र सम्पन्न, ऐसा जो भेद वह अशुद्धनय का विषय है। उसका अर्थ कि दर्शन, ज्ञान भेदवाला आत्मा, ऐसा कहते हैं परन्तु दर्शन, ज्ञान, चारित्र भेद के ऊपर लक्ष्य जाये तो अशुद्धनय का कथन है। क्योंकि भेद के आश्रय से तो राग ही उत्पन्न होता है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। यह चीज़ ऐसी है कि अनन्त काल में इसने क्या चीज़ है, उसे रुचिगत किया ही नहीं। बाकी अन्तर सम्यक् अनुभव बिना अनन्त बार ऐसे क्रियाकाण्ड करके मर गया, सूख गया। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, परन्तु एक जन्म-मरण के भव का अन्त आया नहीं।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य यह कहते हैं कि भाई! लोग अभेद वस्तु को तो जानते नहीं। वस्तु अनन्त गुण का एकरूप वस्तु जो चीज़ है, जो शुद्धनय का विषय है कि जिसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसी चीज़ को तो अज्ञानी जानते नहीं। किन्तु **अशुद्धनय को ही जानते हैं क्यों...** भाई! दोनों में क्यों कहा है। देखो! **उसका विषय भेदरूप अनेकप्रकार है;...** समझ में आया? दोनों कारण बताते हैं। लोग शुद्धनय को जानते नहीं। क्यों? शुद्धनय का विषय अभेद एकरूप वस्तु है। परन्तु **अशुद्धनय को ही जानते हैं क्योंकि उसका विषय भेदरूप अनेकप्रकार है;...** समझ में आया?यह ज्ञानवाला आत्मा, दर्शनसम्पन्न आत्मा, चारित्रसम्पन्न आत्मा, वे सब अनेकरूप भेद अशुद्धनय का विषय है। समझ में आया? जाने, वह आत्मा; श्रद्धा करे, वह आत्मा, यह तो भेद हो गया। समझ में आया? कहते हैं कि अज्ञानी तो, ज्ञान जाने वह आत्मा, (ऐसा) एक गुण का भेद पाड़कर (समझता है)। श्रद्धा करे, वह आत्मा अथवा अन्दर में एकाग्र हो, स्थिर हो, वह आत्मा। तो यह तो तीन भेद हो गये। तीन भेद हुए, वह अशुद्धनय का विषय है। अर्थात् वह आत्मा को आश्रय करनेयोग्य नहीं। भेद आत्मा को आश्रय करनेयोग्य नहीं। क्योंकि भेद का आश्रय करता है तो राग उत्पन्न होता है और वह भेद अशुद्धनय का विषय है। शुद्धनय त्रिकाल जो विषय है, वह अशुद्धनय के विषय में नहीं आता। सूक्ष्म विषय है। यह पहली गाथा यह है।

अनन्त काल में इसने कभी सुना ही नहीं। चौथी गाथा में आ गया। 'श्रुत परिचित अनुभूत कामभोग कथा।' इसने तो राग करना, राग को भोगना, विकल्प करना, विकल्प को भोगना—यह बात तो अनन्त काल से सुनी है, परन्तु विकल्प से पार चिदानन्द प्रभु एक समय में अभेद अखण्डानन्द का आश्रय करना और उसके आश्रय से धर्म होता है, यह बात इसने अनन्त काल में सुनी नहीं। समझ में आया?

तो कहते हैं, **उसका विषय...** अशुद्धनय का विषय। यह ज्ञान, यह दर्शन, यह चारित्र। यह, हों! अभी तो यह कहना है, भाई! रागवाला, यह बात अभी नहीं कहनी। यहाँ तो इतना लेना है। अभी इसमें से एक निकाल डालेंगे। एक ही रहेगा अन्त में। समझ में आया? भगवान आत्मा कर्मवाला तो नहीं, शरीरवाला तो नहीं, विकारवाला नहीं, परन्तु उसमें गुण-गुणी का भेद करना कि यह आत्मा ज्ञानवाला है, दर्शन सम्पन्न

है, चारित्र सम्पन्न है। ऐसे भेद, वह अशुद्धनय का विषय है। अशुद्धनय का अभेद, वह विषय नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई! उसे सम्यग्दर्शन क्यों नहीं हुआ, उसकी बात करते हैं। सम्यग्दर्शन का विषय शुद्धनय का विषय अभेद अखण्ड आनन्दकन्द का उसने आश्रय किया नहीं। समझ में आया? अनन्त काल में उसने आश्रय किया नहीं। नौवें ग्रैवेयक गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार' अट्ठाईस मूलगुण पालन किये। शुक्ललेश्या। शरीर के खण्ड-खण्ड करे तो भी कषाय न करे, ऐसे क्रियाकाण्ड स्वभाव का, आत्मा के आनन्द का आश्रय किये बिना ऐसी क्रियायें कीं, उसमें कुछ आत्मा का लाभ हुआ नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : था कब माहात्म्य! कौन कहता है? बाबूभाई? यह तो बात करते हैं। यहाँ तो भेद का माहात्म्य नहीं। सुनो! राग की क्रिया का तो माहात्म्य है ही नहीं, निमित्त का संयोग का माहात्म्य है ही नहीं, यहाँ तो भेद आत्मा को ऐसा कहना कि यह ज्ञान वह आत्मा; श्रद्धा करे वह आत्मा, स्थिर हो वह आत्मा, यह भेद है, उस भेद का भी यहाँ माहात्म्य नहीं। बाबूभाई!

वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल,
औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।

नपुंसक जैसे वीर्यवाले को भगवान के तत्त्व का भाव प्रतिकूल पड़ता है। यह! ऐसा? समझ में आया?

कहते हैं, देखो! पण्डित जयचन्द्रजी ने स्पष्टीकरण किया कि भगवान आत्मा अन्तर में एकरूप वस्तु शुद्ध चिदानन्दमूर्ति प्रभु, वह शुद्धनय का विषय, वही सम्यग्दर्शन का ध्येय, उसका आश्रय-अभेद का लक्ष्य करने से ध्येय बनाने से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र उत्पन्न होता है। परन्तु अज्ञानी को तो कभी अभेद का लक्ष्य नहीं, अभेद का ज्ञान नहीं, उसने कभी अभेद लक्ष्य में लिया नहीं। तो **लोग शुद्धनय को नहीं जानते,...** अभेद चीज़ क्या है, उसे तो जानते नहीं। क्योंकि उसका विषय अभेद और एकरूप है। किन्तु **अशुद्धनय को ही जानते हैं...** अशुद्धनय को जानते हैं, इसकी व्याख्या कि **उसका विषय**

भेदरूप अनेकप्रकार है;... यह ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसे भेद करके भेद जानते हैं, भेद को जानते हैं। वह भेद ही आत्मा है, ऐसा मानते हैं। उस भेद को ही आत्मा मानते हैं। वह अशुद्धनय का विषय है। समझ में आया?

इसलिए वे व्यवहार के द्वारा ही परमार्थ को समझ सकते हैं। देखो! इसलिए। यह कारण दिया। कारण क्या दिया? दो कारण दिये। एक कारण ऐसा है कि वे शुद्धनय को—अभेद भगवान को (जानते नहीं)। निमित्त तो नहीं, राग भी नहीं और एक समय की पर्याय का भी लक्ष्य नहीं। और गुणी आत्मा है और उसमें अनन्त गुण हैं, ऐसे भेद का भी लक्ष्य नहीं। ऐसी अभेद एकरूप वस्तु, वह शुद्धनय का विषय-ध्येय है। समझ में आया? उसे तो कभी जाना नहीं। सुना नहीं, खबर नहीं क्या चीज़ है। किन्तु **अशुद्धनय को ही जानते हैं क्योंकि उसका विषय भेदरूप अनेकप्रकार है;...** समझ में आया? ज्ञान करता है, दर्शन करता है, श्रद्धा करता है, स्थिरता करता है, ऐसे एकाग्र होता है, ऐसे-ऐसे वीर्य स्फुरित करता है, ऐसे एक-एक गुण का भेद करके जानता है कि यह आत्मा। समझ में आा? भेद को जानता है। **इसलिए...** इस कारण से **वे व्यवहार के द्वारा ही...** अशुद्धनय द्वारा ही, अशुद्ध द्वारा ही। अशुद्ध द्वारा ही कहो या व्यवहारनय द्वारा ही कहो (दोनों एकार्थ हैं)। समझ में आया? **परमार्थ को समझ सकते हैं।**

ऐसा कहे, देखो प्रभु! जाने-देखे-श्रद्धे, उसे प्राप्त हो, वह आत्मा। भेद द्वारा अभेद का ख्याल कराया। ख्याल तो कराना है अभेद का। परन्तु भेद से उसे बतलाया है। क्योंकि भेद को जानता है। अभेद को कभी जाना नहीं। तो उसे आचार्यदेव खास असाधारण धर्म को लक्ष्य में लेकर (कहते हैं), भाई! आत्मा उसे कहते हैं कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा। दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त तो भेद हो गया। समझ में आया? अभी वह भेद है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र भेद है। उसे प्राप्त हो, वह आत्मा। ऐसा कहकर अभेद आत्मा का लक्ष्य कराया है। ऐसी बात, भाई! मूल चीज़ की अभी खबर नहीं होती। इसके बिना अंक रहित शून्य। समझ में आया? ऐकड़ा बिना के मींडा समझते हो? एक नहीं, शून्य लाख, करोड़। इसी प्रकार वास्तविक अभेद दृष्टि क्या है, सम्यग्दर्शन कैसे उत्पन्न होता है, उसकी खबर नहीं। सम्यग्दर्शन तो बाद में रहा। कहो, समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं... यह तो अपने कल आ गया है, हों! यह तो पण्डित जयचन्द्रजी प्रचलित भाषा में कहते हैं कि भाई! अज्ञानी प्राणी अकेले भेद को जानता है, अनेक को जानता है, एक को अभेद को जानते नहीं। उसके सामने लिया, भाई! अभेद एकरूप वस्तु है, उसे जानते नहीं। भेद अनेकरूप है। सामने-सामने लिया है। भगवान आत्मा एक समय में अभेद वस्तु है। अनन्त गुण का एकरस पी गया है, अनन्त गुण जो द्रव्य पी गया है। यह सातवीं गाथा में आ गया है। अनन्त गुण जो पी गया है, (ऐसा) भगवान आत्मा, ऐसा द्रव्य सामान्यस्वरूप ध्रुवस्वरूप ज्ञायकभाव अभेदभाव एकभाव की दृष्टि अज्ञानी को अनादिकाल से नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह ठीक कहा। परन्तु भेद को समझाकर अभेद में ले जाने के लिये भेद कहे हैं। अकेला भेद का ज्ञान करे, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है, ऐसा है। ठीक। नेमचन्दभाई प्रश्न करते हैं। नेमचन्दभाई! यहाँ तो दूसरी बात है। ज्ञान, दर्शन गुणभेद जानता है। बस। परन्तु यह जानना मिथ्यात्व है। भेद से आत्मा को देखना, वह मिथ्यात्व है। भेद द्वारा अभेद में दृष्टि ले जाना, भेद भेद के लिये नहीं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र को सम्पन्न कौन? वह आत्मा। ऐसे अभेद पर दृष्टि ले जाने के लिये भेद से कथन किया है। भेद में रुक जाये तो मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है। यह अभी कहेंगे। समझ में आया? आहाहा! भारी कठिन! अभी तो राग पुण्य, दया, दान के भाव मेरे हैं, वह तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि है ही। नरसीभाई! उसमें घुसे हुए थे न, दया में और... दरियापरी उपाश्रय है न इन्हें? प्रोफेसर है, प्रोफेसर। पन्द्रह वर्ष पहले प्रोफेसर थे। ९५० का वेतन था। फिर छोड़ दिया। परन्तु अभी यह दरकार बहुत नहीं अन्दर। समझ में आया? धूल की दरकार है, उतनी यह दरकार नहीं। नरसीभाई!

मुमुक्षु : धूल के बिना चलता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल बिना ही चलता है। कौन कहता है नहीं चलता? निर्णय करो। स्वद्रव्य में परद्रव्य का अभाव तीनों काल है। निज द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव (चारों का) अभाव है। अपना टिकना पर के अभावरूप से टिक रहा है। बराबर है नरसीभाई! क्या कहा?

मुमुक्षु : अभेद में....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभेद नहीं, यह नहीं। यह तो पीछे से कहा है। रामजीभाई ने कहा उसका।

प्रत्येक पदार्थ... आत्मा जो है निज द्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड; क्षेत्र अर्थात् अवगाहना; काल अर्थात् पर्याय और भाव अर्थात् शक्ति, यह निज द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है और अनन्त परद्रव्य के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उसमें है ही नहीं। तो निज द्रव्य पर के अभाव से ही निभता है। आहाहा!

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों काल। समझ में आया या नहीं? क्या कहते हैं?

आत्मा किसे कहा? अपना आत्मा, हों! निज आत्मा द्रव्य। गुण-पर्याय का पिण्ड। क्षेत्र-अवगाहन। अवगाहन कहते हैं? क्या कहते हैं? कद—चौड़ाई, चौड़ाई शब्द कहते हैं तुम्हारे में? चौड़ाई। काल—उसकी एक समय की पर्याय। भाव—उसकी अनन्त शक्तियाँ। यह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है। और अपने अतिरिक्त अनन्त सिद्ध आदि या परमाणु आदि या दूसरे जीव, उनके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उसमें है ही नहीं। समझ में आया? तो निज आत्मा ने पर से रहित ही निभाया है। निभाया कहते हैं? टिक रहा है। हमको बहुत ऐसी हिन्दी नहीं आती। समझ में आया? प्रत्येक पदार्थ परपदार्थ के अभाव से ही अपना द्रव्य टिक रहा है। पर के कारण से द्रव्य टिक रहा है, ऐसा वस्तु में है ही नहीं। समझ में आया? यह बात तो कहीं रह गयी। यहाँ तो इससे आगे दूसरी बात है। समझ में आया? यह बात तो कहीं रह गयी। यह तो इससे दूसरी बात है।

भगवान आत्मा निज द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है। तो अपने काल में जो विकार है—राग, द्वेष, दया, दान, काम, क्रोध, उसे भी यहाँ निकाल डालना है। वह निज स्वभाव है ही नहीं। और एक समय की पर्याय जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र की, वीर्य की विकसित हुई पर्याय है, उस पर्याय का भी लक्ष्य छुड़ाना है और निज आत्मा अनन्त गुणरूप वस्तु है। (उसे) मुख्य गुण द्वारा (कहते हैं कि) आत्मा श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त, वह आत्मा, ऐसा भेद करके बतलाना, वह भेद करके बतलाना है अभेद; भेद में

रुकने के लिये बतलाते नहीं। भेद से भेद को नहीं बतलाते। आहाहा! भगवान आत्मा उस अभेद को कभी समझता नहीं तो ऐसा कहा कि देख भाई! जानता है, श्रद्धता है, मानता है, विश्वास करता है, ऐसे गुण, वह आत्मा। ऐसा भेद बतलाकर अभेद में ले जाना है। तो भेद में रोकना नहीं। भेद में तो अनादि से पड़ा है। यह तो कहा, उसका विषय भेद तो अनेक प्रकार से कर ही रहा है। मिथ्यादृष्टि अपने आत्मा को गुणभेदरूप मानकर, भेदरूप मानकर व्यवहारदृष्टि का आश्रय करके अनादि से पड़ा है। नया क्या किया इसने? समझ में आया? भाई! सूक्ष्म बात है, हों! बहुत सूक्ष्म पड़ेगी थोड़ी पहले, नये हैं न, नये। ऐई! लालचन्दजी! अरे! जैन में पड़े हों वाड़ा में जैन की खबर नहीं होती। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, जैन परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ वीतरागदेव की दिव्यध्वनि में आया, ऐसा सन्त कुन्दकुन्दाचार्य ने अनुभव किया। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ भगवान के पास आठ दिन गये थे। सीमन्धर प्रभु के पास। समझ में आया? आठ दिन रहकर यहाँ आकर यह शास्त्र बनाये। भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर ऐसा कहते हैं। ज्ञानी थे, चारित्रवन्त थे, परन्तु विशेष स्पष्टता बहुत हुई (पश्चात्) शास्त्र बनाये। भगवान ऐसा कहते हैं कि अज्ञानी लोग अभेद को जानते नहीं। क्योंकि वस्तु एकरूप चिदानन्द सामान्य ध्रुव है, उस ओर अज्ञानी की दृष्टि है नहीं। भेद को जानता है। राग को जानता है, यह बात निकाल दी, भाई! राग आत्मा और धूल आत्मा... दया, दान के विकल्प तो आस्रवतत्त्व है। आस्रवतत्त्व वह आत्मा है? यह शरीर, वाणी, मन अजीवतत्त्व है। शरीर, वाणी, मन जड़ अजीवतत्त्व है। वह आत्मा है? दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के परिणाम आस्रवतत्त्व हैं। वे आत्मा हैं? वह तो आस्रवतत्त्व में गये। यहाँ तो निज आत्मा में अभेद में भेद करना, वह भी मिथ्यादृष्टि भेद करके रुकता है, उसकी बात करते हैं। आहाहा! समझ में आया? कठिन-बठिन कुछ नहीं, परन्तु इसने कभी सुना नहीं, कभी यह मार्ग लिया नहीं। सिरपच्ची करके मर गया। त्यागी होकर साधु होकर। ग्यारह अंग पढ़ गया, नौ पूर्व पढ़-पढ़कर पढ़ डाले। क्या कहते हैं, उसका आशय पकड़ में लिया नहीं। सादी भाषा में तो पण्डित जयचन्द्रजी ने कहा है। पाठ में तो कल आ गया है।

अशुद्धनय को जानता है, मात्र भेद को जानता है। इतनी बात यहाँ लेनी है। अज्ञानी को तो ज्ञान आत्मा (समझ में आता है)। वस्तु तो एकरूप है, अभेद है। समझ में आया? यह लकड़ी देखो। यह सूखड़ की है। एकरूप है। मुलायम है, गोल ऐसी एकरूप है। उसमें से ऐसा कहना कि देख भाई! यह सूखड़ है। मुलायम। सुंवाळी समझते हो? मुलायम। मुलायम वह सूखड़। तो क्या उसमें मुलायम अलग पड़ता है? समझे? वजन वह सूखड़। तो क्या वजन शक्ति अलग पड़ती है उसमें? उसमें जो ऊपर मैल है और जो डिब्बी में रखी है, वह डिब्बी अलग, मैल अलग। अब रही वह चीज़। उसमें से भी तीन बोल निकालना — मुलायम, सुगन्ध और वजन। उसमें तो अभेद में तो सब एकसाथ पड़ा है। परन्तु अज्ञानी अभेद को नहीं जानता तो बतलाते हैं कि यह लकड़ी अलग है, यह शीशपैन अलग है। उसमें सुगन्ध नहीं। उसे भिन्न बतलाने के लिये (कहते हैं कि), सुगन्ध वह सूखड़, सुगन्ध वह सूखड़। ऐसा है नहीं। बतलानी है सुगन्धवाले पूरे सूखड़ की एकता। समझ में आया? मैल से नहीं, जिस डिब्बी में रखा है, वह डिब्बी नहीं। इसी प्रकार यह शरीर डिब्बी है, वह नहीं। और पुण्य-पाप के भाव मैल-आस्रव है, उनसे नहीं। समझ में आया? गजब बात! वीतराग की बात ऐसी हो पड़ी, लोक को प्रतिकूल हो पड़ी, ऐसी है। यह बात सुने तो कहे, अरर्र! यह तो अकेला निश्चय... निश्चय... निश्चय है। अब सुन न! निश्चय। तुझे निश्चय की भी खबर नहीं और व्यवहार की भी खबर नहीं। समझ में आया?

यह तो अपने आया न? यह कहना है। सवेरे नहीं आया था? 'विद्वानजन निश्चय तजी...' पण्डितजी! अपने को शब्द बराबर (याद नहीं)। १५६ गाथा है न? 'व्यवहार में वर्तन करे'। है न? १५६ गाथा है न? पुण्य-पाप अधिकार, १५६। पुण्य-पाप (अधिकार) की गाथा। उसमें से निकालो। तुम्हारे पास समयसार है न!

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण विदुसा पवट्टंति।
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ विहिओ॥१५६॥

'**मोत्तूण णिच्छयट्ठं**' निश्चय का अर्थ भूलकर विद्वत्जन। ऐसा लिया है। '**मोत्तूण णिच्छयट्ठं**' अपने यह चलते समयसार में है। उसमें ही है। परन्तु मानो वह नियमसार पढ़े न, ऐसा हो गया। १५६ गाथा है, देखो! २४३ पृष्ठ।

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण विदुसा पवट्टंति।
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ विहिओ॥१५६॥

नीचे अर्थ, हरिगीत।

विद्वान् जन भूतार्थ तज, व्यवहार में वर्तन करे।
पर कर्मनाश विधान तो, परमार्थ-आश्रित सन्त के॥१५६॥

विद्वान व्यवहार व्यवहार करके निश्चय को छोड़ देते हैं। उस समय ऐसा होता था। २००० वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य के काल में विद्वत्जन भूतार्थ तजकर। निज अभेद भगवान चैतन्य का आश्रय छोड़कर व्यवहार में वर्तन करे। समझ में आया? उसमें आत्मा का कुछ लाभ है ही नहीं, व्यवहार में वर्तन करने से (कुछ लाभ नहीं)। ऐई.. ताराचन्दजी! **परन्तु कर्मक्षय का विधान तो...** भगवान ने कर्मक्षय का—मिथ्यात्व का नाश, कर्मक्षय शब्द से मिथ्यात्व का नाश, राग का नाश वह **परमार्थ आश्रित...** भगवान अभेद चैतन्यमूर्ति के आश्रय से मिथ्यात्व का नाश होता है, उसके आश्रय से ही कर्म का क्षय होता है। व्यवहार क्रियाकाण्ड से कभी भी तीन काल में कर्मों का नाश या संवर, निर्जरा नहीं होते। परन्तु विद्वान निश्चय को भूलकर पढ़े कि शास्त्र में तो ऐसा लिखा है और ऐसा लिखा है और ऐसा लिखा है, निकाल-निकालकर व्यवहार को स्थापित करते हैं। समझ में आया? ताराचन्दजी! उस समय में कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

श्वेताम्बर में यशोविजय हुए न? यशोविजय हुए हैं। यहाँ पुस्तक रखी थी। और आज सवेरे (हाथ आया)। लिखा है? क्या लिखा है? दिग्पट। उसमें ८४ भूलें निकाली हैं। दिगम्बर की ८४ भूलें निकालें हैं। श्वेताम्बर में यशोविजय ३५० वर्ष पहले हुए। कहते हैं, ५८५ है। क्या कहते हैं? तुम दिगम्बर लोग... उन्हें ख्याल आ गया था श्वेताम्बर को दिगम्बर ऐसा कहते हैं। क्योंकि पण्डित हेमराज हुए न? पण्डितजी! प्रवचनसार का बालाबोध करनेवाले। उन हेमराज ने पहले श्वेताम्बर के विरुद्ध ८४ बोल निकाले थे। सब हमारे पास है। इस ओर के हैं, इस ओर के हैं। हमारे पास सब संग्रह है। श्वेताम्बर विरुद्ध ८४ बोल निकाले। तो यशोविजय ने ८४ बोल दिग्पट (में निकाले)। पाठ है, देखो!

उपाध्याय यशोविजय दिग्पट ८४। दिगम्बर के ८४ बोल की भूल। उसमें एक भूल ऐसी निकाली है, 'निश्चयनय पहला कहे और फिर ले व्यवहार, भाषा क्रम जाने नहीं, जैनमार्ग को सार।' श्वेताम्बर कहते हैं कि तुम दिगम्बर लोग निश्चय... निश्चय... निश्चय... होवे तो व्यवहार होता है, निश्चय पहले और व्यवहार बाद में। तुम्हारी भूल है। ताराचन्दजी! सबने यही पकड़ लिया। अपने यहाँ जब विद्वत् परिषद थी न? तब ३२ पण्डित आये थे। देखो! यह कहते हैं, तुम दिगम्बर पहले निश्चय और बाद में व्यवहार कहते हो। हम कहते हैं कि पहले व्यवहार है और बाद में निश्चय है। तुम भी कहते हो, व्यवहार हो तो निश्चय होगा। तुम भी श्वेताम्बर हो गये। डालचन्दजी! यह तो हमने बहुत वर्ष पहले सब देखा है न। श्वेताम्बर के करोड़ों शास्त्र (श्लोक) देखे हैं। उनके लेख-बेख सब देखा। फिर दिगम्बर के (संवत्) १९७८ के वर्ष से सब देखे। १९७८ के वर्ष। ४४ वर्ष हुए। उससे पहले यह सब देखा था। उसमें यह लिखा है कि 'निश्चयनय पहला कहे'। बात तो सच्ची है उनकी, उन्होंने पकड़ लिया था। दिगम्बर अनादि से ऐसा कहते आये हैं '**भूदत्थमस्सिदो खलु**'। भूतार्थ का आश्रय करो तो धर्म होगा। इसके बिना व्यवहार से होता नहीं। यह उनके ख्याल में आ गया। निश्चय पहले या बाद में। 'भाषाक्रम जाने नहीं' भाषा जैनमार्ग का सार है? यह कहते हैं कि जैनमार्ग का सार भाषा है। ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? यह कहते हैं उस समय में। अमोलखचन्दजी! समझ में आया या नहीं? तुम भी ऐसी गड़बड़ करते थे। तुम अर्थात् यह... यह तो एक दृष्टान्त है।

यह कहते हैं कि, अनादि जैनदर्शन दिगम्बर जो कहते हो, अनादि से माने नहीं, वह तो अर्वाचीन माने, नया हुआ है, तुम्हारे मार्ग में तो निश्चय मार्ग हो तो फिर राग की मन्दता को व्यवहार कहा जाता है। तुम तो पहले निश्चय लेते हो, हमारे पहले व्यवहार चाहिए। समझ में आया? यही बात अभी सब लेते हैं। राग करो, राग की मन्दता करो, व्यवहार हो तो निश्चय होता है। यह दृष्टि ही जैनदर्शन की है ही नहीं। समझ में आया? ऐ... ज्ञानचन्दजी! आहाहा! भारी कठिन जगत को।

यहाँ कहते हैं, यहाँ अपने चलते विषय में। चलता विषय क्या है? वह भी १५६ में कहा। हमारे नेमचन्दभाई ने कहा न कि इतना तो भेद का लाभ हुआ न! विद्वान कहा,

उसे मूढ़ कहा। विद्वान पढ़कर ऐसा तूने निकाला? भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा वस्तु का स्वरूप अभेद चैतन्य अखण्डानन्द द्रव्य सामान्य है, उसके आश्रय से प्रथम सम्यग्दर्शन होता है। इसके बिना तीन काल में होता नहीं। ऐसी तो दृष्टि (निश्चय) निकाली नहीं और जहाँ-तहाँ तुम (ऐसा कहते हो कि), यह लिखा है, देखो! साधन लिखा है, व्यवहार को साधन लिखा है, निश्चयनय का हेतु कहा है। आता है न छहढाला में? वह तो व्यवहार से कथन है। परमार्थ कथन दूसरा है। समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, अज्ञानी व्यवहार को जानता है। निश्चय अभेद को जानता नहीं तो उसे इतना बतलाना... क्या? देखो! **परमार्थ को समझ सकते हैं... व्यवहार के द्वारा ही परमार्थ को समझ सकते हैं।** समझाने की बात है, हों! भेद पाड़कर बतलाना कि देख भाई! भगवान आत्मा जाने, वह आत्मा, प्रतीति करे, (वह आत्मा), ऐसा करके अभेद के ऊपर ले जाना है। भेद द्वारा अभेद के ऊपर ले जाना है। तो व्यवहार द्वारा निश्चय बतलाना है। यहाँ व्यवहार क्रियाकाण्ड की बात नहीं। भेदरूप ज्ञान में भेद उपजाकर कहना, इसका नाम व्यवहार। यह व्यवहार अभेद को बतलाता है। आहाहा! समझ में आया? यह तीनों शब्द एक है, हों! अशुद्धनय कहो या व्यवहार कहो, भाई! अशुद्धनय ही जानता है, ऐसा कहो या व्यवहार द्वारा ही जानता है, ऐसा कहो। व्यवहार के द्वारा परमार्थ को समझ सकता है। भगवान! आत्मा अभेद है, एकरूप चैतन्य है, हों! यह ज्ञान, दर्शन, चारित्र को प्राप्त (हो, वह आत्मा), यह भेद से तुझे कहा। तुझे भेद के ऊपर लक्ष्य नहीं रखना। समझ में आया? तेरा लक्ष्य द्रव्य के ऊपर रखना। अभेद के ऊपर जाना। आहाहा! सुरेन्द्रभाई!

मुमुक्षु : अभेद के अर्थ में विवाद।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभेद के अर्थ में विवाद-फिवाद है नहीं। यह हो, पहले ख्याल में... जाये, हो जाये। ऐई! उसका कुछ नहीं। एक बात की छनावट रह गयी। यह नियमसार का अधिकार पूरा होगा। तीन गाथायें हैं। उपयोग का अधिकार चले तो कल दूसरी भी स्पष्टता हो जाये। ज्ञान पर को जाने, दर्शन स्व को जाने, इसका भी स्पष्टीकरण हो जाये। वह चले तो। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, अरे! भगवान! तुझे सत्य समझना है या आग्रह रखना है? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने कहा हुआ सन्त कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, भाई! अज्ञानी अभेद वस्तु आत्मा को कभी स्पर्शा नहीं, एक के ऊपर दृष्टि दी नहीं तो एक को—अन्तर एकरूप स्वरूप को—तो समझते नहीं तो उस भेद को समझते हैं तो उसे भेद द्वारा बतलाना कि देख, भाई! यह ज्ञान है, वह आत्मा; जानता है, वह आत्मा; स्थिर होता है, वह आत्मा। अन्दर एकाग्र होता है, वह आत्मा। ऐसा करके भेद द्वारा अभेद को दर्शाया है। व्यवहार द्वारा परमार्थ को समझ सकता है, ऐसा। समझाना है परमार्थ, परन्तु भेद पाड़कर समझता है, इस अपेक्षा से व्यवहार द्वारा परमार्थ को समझता है, ऐसा कहा गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आयेगा, स्पष्टीकरण अभी आयेगा। यह भी स्पष्टीकरण (आयेगा)। यह अपने कल आ गया है, भाई! प्रश्न तो होता है न? देखो!

अतः व्यवहारनय को परमार्थ का कहनेवाला जानकर... इस कारण से व्यवहारनय को, भेद द्वारा अभेद आत्मा को बतलाना है तो उसे कहा कि भगवान अभेद चैतन्य यह एक वस्तु है। राग तो नहीं, पुण्य-पाप तो नहीं परन्तु ज्ञान, दर्शन, चारित्र—ऐसे भेद भी अन्दर में नहीं। भेद से अभेद बतलाना है। **व्यवहारनय को परमार्थ का कहनेवाला जानकर उसका उपदेश किया जाता है।** उपदेश क्या करे? यह अभेद में समझे नहीं; इसलिए उसे भेद से समझाते हैं। **इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए...** भाई! ताराचन्दजी! **इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि यहाँ व्यवहार का आलम्बन कराते हैं,...** ऐई! नेमिचन्दजी! ऐसा अर्थ नहीं समझना कि व्यवहार का अवलम्बन, भेद का अवलम्बन कराते हैं। ऐसा नहीं समझना। राग की तो यहाँ बात भी नहीं, निमित्त की तो बात भी नहीं। परन्तु भेद गुणी अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप वस्तु, उसे नहीं समझता तो तीन भेद पाड़कर बतलाना, वह तीन भेद व्यवहार है। परन्तु व्यवहार द्वारा बतलाना है निश्चय। परन्तु ऐसा नहीं समझना कि व्यवहार के अवलम्बन से भेद का अवलम्बन कराते हैं। ऐसा नहीं समझना। लालचन्दजी! गाथा तो बहुत अच्छी आयी है यहाँ। ओहोहो!

प्रत्युत व्यवहार का आलम्बन छुड़ाकर परमार्थ से पहुँचाते हैं... दर्शन, ज्ञान,

चारित्र के एक स्वरूप में तीन भेद डालना, वह व्यवहार है। उस व्यवहार द्वारा निश्चय में पहुँचाते हैं। व्यवहार का आलम्बन करने का नहीं बताते। आहाहा! गजब बात भाई! वाद-विवाद... वाद-विवाद ऐसे हो गये। वीतरागमार्ग रह गया एक ओर। ऐ... नरसीभाई! यह सब तुम्हारे जैसे प्रोफेसर जड़ जैसे। है या नहीं? एकदम जड़ जैसे, ये स्वयं कहते थे, हों! यह स्वयं कहते हैं। पन्द्रह वर्ष पहले ९०० रुपये वेतन (था), अब छोड़ दिया। कुछ भान नहीं होता। नरसीभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब दुनिया सब वेतन बहुत मूरख को देती है। पूर्व का पुण्य हो तो मिले, उसमें क्या वेतन आया? पैसा क्या चतुराई से मिलता है? डहापन को क्या कहते हैं? होशियारी से मिलता है? रामजीभाई को मिलते थे न? उनकी होशियारी से मिलते थे? होशियारी नहीं, तुम्हारा पुण्य था, इसलिए देते थे। होशियारी से क्या पैसा मिले धूल में। बुद्धि बिना के बारदान, बुद्धि के बारदान नहीं दिखते? बारदान समझे? खाली बोरियाँ। बुद्धि के बारदान को अभी पाँच-पाँच, दस-दस लाख की आमदनी महीने की हो। पैदाश समझे? आमदनी। ऐई! कितनी बुद्धि है? तुम्हारी बुद्धि है? बुद्धि से कमाते हो? धूल में भी बुद्धि नहीं। यह लड़के बैठे इनके। यह तो पूर्व के पुण्य के कारण पाँच-पचास लाख इकट्ठे हो जाये। इसमें धूल इकट्ठी हुई, उसमें तेरी होशियारी क्या काम करे? समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : कोई धन्धा-व्यापार नहीं करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता है? कर सकता है कोई पर का धन्धा? किसने किया है? राग करता है, बस। राग को उल्लंघकर जड़ की क्रिया कभी किसी ने तीन काल तीन लोक में की नहीं। धन्धा-बन्धा कौन करता है? पोपटभाई!

कहते हैं, यहाँ तो आचार्य को इतना कहना है, वह यहाँ पण्डित जयचन्दजी स्पष्ट करते हैं। भाई! व्यवहार अर्थात् दर्शन, ज्ञान, चारित्र। परन्तु यह (व्यवहार), हों! राग नहीं, पुण्य नहीं, दया अशुद्ध परिणाम नहीं। एकरूप वस्तु को नहीं जानते, अभेद को नहीं जानते तो उसे भेद द्वारा (बतलाते हैं कि) यह जानता है, वह आत्मा; देखता है,

वह आत्मा, ऐसा कहकर अभेद में ले जाना है। भेद को बतलाकर अभेद को बतलाना है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं। क्योंकि अभेद को जानते नहीं। उसकी दृष्टि, अभेद क्या वस्तु है, वह कभी सुनने को मिली नहीं। जिससे सम्यग्दर्शन होता है। पहली सीढ़ी, धर्म की पहली सीढ़ी। अभेद चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा का अन्तर आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। तीन काल में भेद के आश्रय से, राग के आश्रय से, निमित्त के आश्रय से सम्यग्दर्शन धर्म की पहली सीढ़ी उत्पन्न नहीं होती। खबर नहीं क्या सम्यग्दर्शन का विषय है और कहाँ से उत्पन्न होता है ? समझ में आया ? तो अज्ञानी को समझाने के लिये (भेद पाड़कर समझाते हैं)।

उसमें भी आया न ? भाई ! तुम्हारे आ गया न ? पुरुषार्थसिद्धिउपाय में। अबुद्धस्य बोधनार्थं। पण्डितजी ! अभूतार्थं। अज्ञानी को बतलाने के लिये अभूतार्थ द्वारा बतलाना है। क्या करे ? अज्ञानी को बताते हैं कि भाई ! यह ज्ञान। गुण का पिण्ड एकरूप अभेद है पूरा। उसमें तीन गुण के भेद करना कि यह ज्ञान, यह दर्शन ऐसे उसमें भिन्न पड़ते हैं ? परन्तु अनन्त गुण के एकरूप में, (उसे) नहीं जानते, इसलिए नामभेद से कथन करके भेद द्वारा कथन करके अभेद को समझाना है। इतना व्यवहार किये बिना, भेद किये बिना अभेद समझता नहीं। तथापि उसका अर्थ ऐसा नहीं समझना कि व्यवहार का आलम्बन कराते हैं। भेद का आलम्बन कराते हैं, ऐसा नहीं समझना। समझ में आया ? दर्शन, ज्ञान, चारित्र भेदरूप आत्मा, ऐसा आलम्बन करनेवाले को तो राग ही उत्पन्न होता है, सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं होता। समझ में आया ? माणेकलालभाई ! कैसी यह गर्मी है ? पैसे की गर्मी बहुत लगती है। धूल में भी नहीं वहाँ अब वहाँ। करोड़, दो करोड़ धूल इकट्ठी की, उसमें तुझे क्या ? वह तो मिट्टी धूल है। तुझे क्या मिला ? तेरे पास आये हैं ? तेरे पास क्या आया ? ममता आयी।

मुमुक्षु : तिजोरी में रुपये आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में तिजोरी उसके बाप की कहाँ थी ? उसकी ही थी। सही बात है ? उसके पुत्र के पास दो करोड़ रुपये हैं, लो। तुम्हारे पास है यहाँ ? धूल में भी नहीं। पैसे पैसे में रहे। वह अजीवतत्त्व है। उसके पास ममता आयी, वह आस्रवतत्त्व

है। भगवान तो अजीव और आस्रवतत्त्व से भिन्न है। आहाहा! कुछ खबर नहीं होती। क्या कहते हैं और क्या मानते हैं। मारे गप्प ही गप्प। और दुनिया बेचारी भोली।

मुमुक्षु : सस्ते में माल चाहिए है।

पूज्य गुरुदेवश्री : माल सस्ता है परन्तु अन्दर में आवे तो सस्ता न! बाहर से घूँअे तो क्या मिले? कहो, सेठी! यह है या नहीं? अन्दर लिखा है या नहीं? भगवान!

मुमुक्षु : दूसरे शास्त्र में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे शास्त्र में इससे विरुद्ध होता नहीं। अपने पण्डितजी... आते हैं, आते हैं। निमित्त से कथन, व्यवहार से कथन आता है। परन्तु व्यवहार से कथन आने का फल तो संसार है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दो सस्ते नहीं, एक ही सस्ता है। समझ में आया? यह तो कहते हैं, आ गया। आ गया न? व्यवहार अभूतार्थ है, असत्यार्थ है। एक सत्यार्थ निश्चय त्रिकाल है। व्यवहार नहीं, ऐसा नहीं; है। स्वभाव का आश्रय करनेयोग्य नहीं, इसलिए अभूतार्थ है।

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा में दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भेद करना, वह व्यवहार आश्रय करनेयोग्य नहीं, अवलम्बन करनेयोग्य नहीं। क्या कहा? **इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि यहाँ व्यवहार का आलम्बन कराते हैं,...** इन तीन भेद का आश्रय कराते हैं, ऐसा नहीं समझना। तीन भेद द्वारा तो अभेद की दृष्टि कराते हैं कि वहाँ जा। व्यवहार का लक्षण ही यह है, भेद करना। यह तो आनन्दघनजी ने कहा, हों!

व्यवहारे लखि जे रहै तेना भेद अनेक रे,
शुद्ध नय थापना सेवतां, नवि रहै दुविधा साथ रे।

शब्द तो ऐसे ही कहे हैं, हों! श्वेताम्बर में एक आनन्दघनजी हो गये।

व्यवहारे लखि जे रहै तेना भेद अनेक रे,
परमारथ पंथ जे कहे ते रंजे इक तंत रे।

उसमें उन्होंने कहा, हों! उनमें नहीं था परन्तु सिद्धान्त पकड़ लिया था। समझ में आया? वहाँ है। अरनाथ की स्तुति है। भगवान! अरनाथ कितने (नम्बर के भगवान) हैं? यह आया। चौबीस स्तुति की है।

'परमारथ पथ जे कहे ते रंजे इक तंत रे।'

एकरूप स्वरूप भगवान परमानन्द की मूर्ति अभेद। 'परमार्थ पथ जे कहे ते रंजे एक तंत रे।' यह एक आया न इसमें? भाई! 'व्यवहारे लक्ष जे रहे तेना भेद अनन्त रे।' यह भेद कहा न? 'व्यवहारे लख दोहिलो कांई न आवै हाथ रे', राग, पुण्य, दया, दान के विकल्प से आत्मा को कुछ लाभ नहीं होता।

व्यवहारे लख दोहिलो कांई न आवै हाथ रे,
शुद्धनय थापना सेवतां, नहीं रहे दुविधा साथ रे।

समझ में आया? यह सब शास्त्र तो हमने सबके देखे हुए हैं न। सब देखे हुए। यह समयसार एक चीज़ अभी भरतक्षेत्र में केवलज्ञान का विरह भुलावे ऐसी यह चीज़ है। समयसार और इसकी टीका अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त... भरतक्षेत्र में ऐसी कोई चीज़ नहीं। जिसे समझ में आये तो खबर पड़े। समझ में आया? क्या कहा? उसमें पुनरुक्ति नहीं लगती। क्या कहा?

व्यवहारनय को परमार्थ का कहनेवाला... हों! प्रगट करानेवाला, ऐसा नहीं। भेद करके बतलाना है न कि भाई! यह भगवान एक स्वरूप है। परन्तु कौन? यह ज्ञान, दर्शन, चारित्र को प्राप्त है, वह आत्मा। ऐसा भेद करके अभेद बतलाया। बस। इतना व्यवहार उपदेश करनेयोग्य है। **इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि यहाँ व्यवहार का आलम्बन कराते हैं,...** दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भेद का भी अवलम्बन कराते हैं, ऐसा नहीं समझना। राग और पुण्य का आलम्बन कराते हैं, यह बात तो है ही नहीं। ऐ... चन्दुभाई! आहाहा! वीतराग के मार्ग से समाज बहुत विमुख हो गया। नाम धराता है कि हम दिगम्बर हैं, जैन हैं। व्यवहार का आलम्बन कराते हैं, ऐसा नहीं समझना।

प्रत्युत व्यवहार का आलम्बन छुड़ाकर परमार्थ से पहुँचाते हैं - यह समझना चाहिए। इतनी सादी भाषा में (कहा है)। अन्दर है, इनके घर का कहाँ कहते हैं। है

उसका स्पष्टीकरण किया, साधारण जनता इतनी-इतनी टीका पड़ी है, इतने-इतने भाव पड़े हैं, इतने वर्ष से समयसार है, परन्तु कोई समझता नहीं। कितने वर्ष से समयसार है? यह कहीं नया नहीं है। यह तो दो हजार वर्ष पहले बना है। और संस्कृत टीका अमृतचन्द्राचार्य ने हजार वर्ष पहले की है। नहीं थी? कौन समझता था? किसे खबर है क्या है? समझ में आया? इतना स्पष्ट करके कहा (तो कहते हैं), ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। व्यवहार का लोप हो जायेगा। अरे! सुन तो सही! तुझे धर्म करना है या नहीं? व्यवहार का लोप हो जायेगा। व्यवहार अर्थात् संसार, उसको लोप करके अन्दर निश्चय में जाना है। वरना जा सकेगा नहीं। भेद का नाश करके अन्दर अभेद के ऊपर दृष्टि देनी है। आहाहा! अमरचन्दजी!

त्रिकाल सत्य। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ' वीतरागमार्ग में दूसरा पंथ हो नहीं सकता। दूसरे में तो है ही कहाँ भगवान के सिवाय। ... अन्य-फन्य में सब गप्प ही गप्प है। समझ में आया? वेदान्त को एक आत्मा और... सब गप्प ही गप्प है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग ने कहा, ऐसे अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, अनन्त द्रव्यों—उनमें से एक द्रव्य अभेद आत्मा भेद करके दिखलाना, भेद का आलम्बन छोड़कर अभेद में लक्ष्य देना — इसलिए बतलाये हैं। आहाहा! क्या रहा? एक भाग तो समझे या नहीं? नेमिचन्दजी!

मुमुक्षु : पचास प्रतिशत।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी प्रतिशत नहीं। व्यवहार का आलम्बन मान ले तो मिथ्यादृष्टि है। पचास प्रतिशत क्या, सौ में सौ प्रतिशत मिथ्यात्व हुआ। आहाहा! लो, इतना भावार्थ हुआ, हों! भावार्थ ... हुआ। अब यह गाथा पूरी हुई। ९-१० गाथा। ९ और १० गाथा अभी पाँच मिनिट हैं न!

★ ★ ★

गाथा - ९-१०

कथं व्यवहारस्य प्रतिपादकत्वमिति चेत् –

जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा।।9।।

जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुदकेवली तम्हा।।10।।जुम्मं।।

यो हि श्रुतेनाभिगच्छति आत्मानमिमं तु केवलं शुद्धम्।
तं श्रुतकेवलिनमृषयो भणन्ति लोकप्रदीपकराः।।9।।

यः श्रुतज्ञानं सर्वं जानाति श्रुतकेवलिनं तमाहुर्जिनाः।
ज्ञानमात्मा सर्वं यस्माच्छ्रुतकेवली तस्मात्।।10।।युग्मम्।।

यः श्रुतेन केवलं शुद्धमात्मानं जानाति स श्रुतकेवलीति तावत्परमार्थो, यः श्रुतज्ञानं सर्वं जानाति स श्रुतकेवलीति तु व्यवहारः।

तदत्र सर्वमेव तावत् ज्ञानं निरूप्यमाणं किमात्मा किमनात्मा? न तावदनात्मा समस्तस्याप्यनात्मनश्चेतनेतरपदार्थपञ्चतपस्य ज्ञानतादात्म्यानुपपत्तेः। ततो गत्यन्त–राभावात् ज्ञानमात्मेत्यायाति। अतः श्रुतज्ञानमप्यात्मैव स्यात्। एवं सति यः आत्मानं जानाति स श्रुतकेवलीत्यायाति, स तु परमार्थ एव। एवं ज्ञानज्ञानिनोर्भेदेन व्यपदिशता व्यवहारेणापि परमार्थमात्रमेव प्रतिपाद्यते, न किञ्चिदप्यतिरिक्तम्।

अथ च यः श्रुतेन केवलं शुद्धमात्मानं जानाति स श्रुतकेवलीति परमार्थस्य प्रतिपादयितुम शक्यत्वाद्यः श्रुतज्ञानं सर्वं जानाति स श्रुतकेवलीति व्यवहारः परमार्थप्रतिपादकत्वेनात्मानं प्रतिष्ठापयति।।9–10।।

अब, प्रश्न यह होता है कि व्यवहारनय परमार्थ का प्रतिपादक कैसे है? इसके उत्तर–स्वरूप गाथासूत्र कहते हैं:–

इस आत्म को श्रुत से नियत, जो शुद्ध केवल जानते।
ऋषिगण प्रकाशक लोक के, श्रुतकेवली उसको कहें।।9।।

श्रुतज्ञान सब जानें जु, जिन श्रुतकेवली उसको कहे।
सब ज्ञान सो आत्मा हि है, श्रुतकेवली उससे बने।।10।।

गाथार्थ : [यः] जो जीव [हि] निश्चय से (वास्तव में) [श्रुतेन तु] श्रुतज्ञान के द्वारा [इमं] इस अनुभवगोचर [केवलं शुद्धम्] केवल एक शुद्ध [आत्मानं] आत्मा को [अभिगच्छति] सम्मुख होकर जानता है, [तं] उसे [लोकप्रदीपकराः] लोक को प्रगट जाननेवाले [ऋषयः] ऋषीश्वर [श्रुतकेवलिनं] श्रुतकेवली [भणंति] कहते हैं; [यः] जो जीव [सर्वं] सर्व [श्रुतज्ञानं] श्रुतज्ञान को [जानाति] जानता है [तं] उसे [जिनाः] जिनदेव [श्रुतकेवलिनं] श्रुतकेवली [आहुः] कहते हैं, [यस्मात्] क्योंकि [ज्ञानं सर्वं] ज्ञान सब [आत्मा] आत्मा ही है [तस्मात्] इसलिए [श्रुतकेवली] (वह जीव) श्रुतकेवली है।

टीका : प्रथम, ''जो श्रुत से केवल शुद्ध आत्मा को जानते हैं, वे श्रुतकेवली हैं'' वह तो परमार्थ है; और ''जो सर्व श्रुतज्ञान को जानते हैं, वे श्रुतकेवली हैं'' यह व्यवहार है। यहाँ दो पक्ष लेकर परीक्षा करते हैं–उपरोक्त सर्व ज्ञान आत्मा है या अनात्मा? यदि अनात्मा का पक्ष लिया जाये तो वह ठीक नहीं है, क्योंकि जो समस्त जड़रूप अनात्मा आकाशादिक पाँच द्रव्य हैं, उनका ज्ञान के साथ तादात्म्य बनता ही नहीं (क्योंकि उनमें ज्ञान सिद्ध नहीं है)। इसलिए अन्य पक्ष का अभाव होने से 'ज्ञान आत्मा ही है' यह पक्ष सिद्ध हुआ। इसलिए श्रुतज्ञान भी आत्मा ही है। ऐसा होने से 'जो आत्मा को जानता है, वह श्रुतकेवली है' ऐसा ही घटित होता है; और वह तो परमार्थ ही है। इस प्रकार ज्ञान और ज्ञानी के भेद से कहनेवाला जो व्यवहार है, उससे भी परमार्थ मात्र ही कहा जाता है, उससे भिन्न कुछ नहीं कहा जाता। और ''जो श्रुत से केवल शुद्ध आत्मा को जानते हैं, वे श्रुतकेवली हैं,'' इस प्रकार परमार्थ का प्रतिपादन करना अशक्य होने से, ''जो सर्व श्रुतज्ञान को जानते हैं, वे श्रुतकेवली हैं'' ऐसा व्यवहार परमार्थ के प्रतिपादकत्व से अपने को दृढ़तापूर्वक स्थापित करता है।

भावार्थ : जो शास्त्रज्ञान से अभेदरूप ज्ञायकमात्र शुद्ध आत्मा को जानता है, वह श्रुतकेवली है, यह तो परमार्थ (निश्चय कथन) है। और जो सर्व शास्त्रज्ञान को जानता है, उसने भी ज्ञान को जानने से आत्मा को ही जाना है, क्योंकि जो ज्ञान है, वह आत्मा ही है; इसलिए ज्ञान–ज्ञानी के भेद को कहनेवाला जो व्यवहार, उसने भी परमार्थ ही

कहा है, अन्य कुछ नहीं कहा। और परमार्थ का विषय तो कथञ्चित् वचनगोचर भी नहीं है, इसलिए व्यवहारनय ही आत्मा को प्रगटरूप से कहता है, ऐसा जानना चाहिए।

गाथा - ९-१० पर प्रवचन

अब, प्रश्न यह होता है कि व्यवहारनय परमार्थ का प्रतिपादक कैसे है ? इसके उत्तरस्वरूप गाथासूत्र कहते हैं :- देखो! प्रश्न का रूप पहले समझना, हों! प्रश्न का रूप ऐसा है, शिष्य का प्रश्न है। पाठ में है न? '**कथं व्यवहारस्य प्रतिपादकत्वमिति**' व्यवहार अभेद का प्रतिपादन किस प्रकार से करता है? समझ में आया? व्यवहार निश्चय को किस प्रकार से बतलाता है? किस प्रकार से बतलाता है? उसकी पद्धति क्या है, यह हमको कहो। समझ में आया? ओहोहो! **व्यवहारनय परमार्थ का प्रतिपादक कैसे है ?** कहनेवाला, हों! कहनेवाला। **इसके उत्तरस्वरूप गाथासूत्र कहते हैं :-**

जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा॥९॥

जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुदकेवली तम्हा॥१०॥ जुम्मं॥

नीचे हरिगीत।

इस आत्म को श्रुत से नियत, जो शुद्ध केवल जानते।
ऋषिगण प्रकाशक लोक के, श्रुतकेवली उसको कहें॥९॥

श्रुतज्ञान सब जानें जु, जिन श्रुतकेवली उसको कहे।
सब ज्ञान सो आत्मा हि है, श्रुतकेवली उससे बने॥१०॥

बड़ी गाथा है। अलौकिक! ९-१०, ११, १२, १३, १४ आदि सब। आहाहा! एक शब्द की शुरुआत करनी है। एक मिनिट है न? फिर तो कल सवेरे वे आयेंगे, टेप रिकॉर्डिंग। दोपहर में चलेगा। कल सवेरे टेप रिकॉर्डिंग चलेगा। श्रावणी पूनम है न? आज दोपहर में नियमसार चलेगा। कल सवेरे टेप रिकॉर्डिंग, दोपहर में समयसार चलेगा।

टीका - प्रथम, 'जो श्रुत से केवल शुद्ध आत्मा को जानते हैं, वे श्रुतकेवली हैं' यह एक पंक्ति। क्या कहते हैं ? पहले तो यह बात है कि भावश्रुतज्ञान द्वारा, भावश्रुतज्ञान द्वारा केवल शुद्ध आत्मा को जानता है, वह श्रुतकेवली है। भावश्रुत, हों! विकल्प नहीं, शरीर नहीं, वाणी नहीं। अब यहाँ तो वे तीन भेद भी निकाल डालेंगे। यहाँ तो ज्ञान वह आत्मा, यह भी व्यवहार कहेंगे। यहाँ पहली पंक्ति में यह लिया कि भावश्रुतज्ञान से, भावश्रुतज्ञान से आत्मा को जानता है, वह श्रुतकेवली—सम्यग्दृष्टि श्रुतकेवली है। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सरल कर देंगे अपने गूँथ-गूँथकर। यह आटा को गूँथते हैं न ? आटा को। नहीं ? ऐसी की ऐसी कहीं रोटी नहीं होती। आहाहा! बाई ऐसे करती है न ? फिर रोटी होती है। उसी प्रकार जरा गूँथन करके (स्पष्ट) करेंगे। यह इतने शब्द आये। समय हो गया....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण शुक्ल १५, मंगलवार, दिनांक - ३०-०८-१९६६
गाथा - ९-१०, प्रवचन - ३२

आठवीं गाथा में ऐसा कहा कि यह आत्मा अनन्त गुण सम्पन्न शुद्ध चैतन्य ध्रुव तत्त्व है। उसमें से भेद पाड़कर उसे समझाया कि देख भाई! आत्मा उसे कहते हैं कि जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र को सदा प्राप्त हो, उसे आत्मा कहते हैं। ऐसा भेद पाड़कर अभेद को दिखलाया। अभेद का अनुभव करना, वही सम्यग्दर्शन, ज्ञान और धर्म है। समझ में आया?

शिष्य को प्रश्न हुआ। प्रश्न है कि **व्यवहारनय परमार्थ का प्रतिपादक कैसे है?** प्रतिपादक कैसे है? पहले तीन से कहा था न? यह आत्मा शरीरवाला है, कर्मवाला है, रागवाला है, यह बात तो है ही नहीं। थोड़े में थोड़ा... थोड़े में थोड़ी भाषा है? कम से कम। एक आत्मा अखण्ड अनन्त गुणरूप चैतन्य को असाधारण दर्शन, ज्ञान, चारित्र के नाम लेकर उसे भेद पाड़कर कहा कि यह आत्मा। उसकी अन्तर अनुभव दृष्टि कर। ऐसे भेद से अभेद बतलाया। तो प्रश्न हुआ कि **व्यवहारनय परमार्थ का प्रतिपादक कैसे है?** समझ में आया? व्यवहारनय, सत्य परमार्थ अभेद भगवान आत्मा को कहनेवाला कैसे है? प्रतिपादक कैसे है? ऐसा प्रश्न शिष्य को हुआ। रचना ही ऐसी की है। उसका उत्तर देते हैं। गाथा कल बोल ली गयी है। टीका।

कथनपद्धति जरा सूक्ष्म है, थोड़ी सूक्ष्म है। अभी आधे घण्टे हिम्मतभाई को बुलाकर चर्चा हुई। मुश्किल से कथन पद्धति मुझे थोड़ी पकड़ में आयी है। समझ में आया? विशेष होवे तो रात्रि में हिम्मतभाई स्पष्ट करेंगे। सेठी! समझो यहाँ।

प्रथम... '**तावत**' शब्द पड़ा है न पहला? संस्कृत में '**तावत**' शब्द है। प्रथम तो यह बात कहनी है और यह है कि **जो श्रुत से केवल शुद्ध आत्मा को जानते हैं...** देखो! श्रुतकेवली किसे कहते हैं? निश्चय और व्यवहार श्रुतकेवली किसे कहते हैं और

व्यवहार-निश्चय का प्रतिपादक किस प्रकार से है, वह यहाँ कहा गया है। पहली तो यह बात है कि जो श्रुत अर्थात् भावश्रुतज्ञान से, विकल्प से नहीं, पर से नहीं, अन्तर भावश्रुतज्ञान से। शब्द शैली ऐसी सूक्ष्म है कि वह भावश्रुतज्ञान जो पर्याय निर्मल है, उससे केवल शुद्ध, अकेला शुद्ध भगवान आत्मा को जानता है। अर्थात् भावश्रुतज्ञान द्वारा भगवान आत्मा को प्रत्यक्षरूप से अनुभवता है।

राग और निमित्त और विकल्प का आश्रय छोड़कर निज भावश्रुतज्ञान द्वारा। ऐसा है न? सन्मुख होकर जानता है। पहला शब्द है न? '**अभिगच्छति**'। मूल में। यहाँ उसका साधारण शब्द कहा है। मूल शब्द तो ऐसा है कि जो जीव निश्चय से '**श्रुतेन**' श्रुतज्ञान द्वारा, श्रुतज्ञान द्वारा। भावश्रुतज्ञान द्वारा। '**इमं**' अनुभवगम्य। भगवान आत्मा अन्तर आनन्द से, स्ववेदन से—स्वसंवेदन से अनुभव में आनेयोग्य। इसमें तो दिक्कत नहीं, जरा व्यवहार में भाषा में अटपटी होती है। निश्चय तो ठीक है, व्यवहार में जरा अटपटी कथनपद्धति है। यह तो बराबर है।

भावश्रुतज्ञान द्वारा अन्तर में अनुभवगम्य केवल एक शुद्ध आत्मा के सन्मुख होकर जानता है। अर्थात् भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप अभेद चैतन्य पदार्थ को भावश्रुतज्ञान द्वारा अन्तर सन्मुख होकर निज आत्मा प्रत्यक्ष मति-श्रुतज्ञान में प्रत्यक्ष करके, स्वसंवेदन आत्मा के अनुभव से-आनन्द से जो आत्मा को जानता है, उसे निश्चय श्रुतकेवली कहते हैं। यह तो ठीक, इस बात में बहुत विशेष (दिक्कत नहीं)। व्यवहार में जरा भाषा ऐसी है। समझ में आया? समझ में आया?

सम्यग्दर्शन होने में या भावश्रुतज्ञान प्रगट होने में जो अन्तर में ज्ञान की निर्मल दशा-भाव, उसे अन्तर में भगवान आत्मा अभेद स्वरूप के सन्मुख होकर उसका अनुभव करना, आत्मा का अभेद अनुभव करना, स्वसंवेदन द्वारा निर्विकल्प शान्ति और समाधि द्वारा... समझ में आया? निर्विकल्प शान्ति। श्रुतज्ञान में राग बिना अन्तर शान्ति और भावश्रुतज्ञान द्वारा सन्मुख होकर आत्मा का वेदन आनन्द का प्रत्यक्ष करना, इसका नाम निश्चय सत्य श्रुतकेवली कहा जाता है। समझ में आया? सेठी! **वह तो परमार्थ है।** यह तो परमार्थ है। वह तो सत्य वस्तु है। आहाहा! समझ में आया?

बाह्य लक्ष्यवाला ज्ञान नहीं। भाई! बाह्य लक्ष्यवाली व्यवहार श्रद्धा भी नहीं। कषाय की मन्दता का भी साधन नहीं। सीधे भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ सहज स्वाभाविक प्रभु, उसे अन्तर में भावश्रुतज्ञान द्वारा सन्मुख होकर प्रत्यक्ष होना, आत्मा में सम्यग्दर्शन के काल में मति-श्रुतज्ञान से आत्मा को प्रत्यक्ष होना और आनन्द के वेदन के साथ उसका अनुभव होना, उसका नाम आत्मा का अनुभव हुआ, उसे यहाँ निश्चय श्रुतकेवली कहते हैं। बहुत सूक्ष्म है। तुम्हारे पत्थर में से मुश्किल से आये हैं। झट समझ में आये ऐसा नहीं, बहुत ध्यान दे तो समझ में आये, ऐसा है।

मुमुक्षु : पर्याय को ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभेद द्रव्य की ओर लक्ष्य करके अनुभव किया, वह निश्चय। भावश्रुतज्ञान से वहाँ अभेद हो गया। अन्तर में अनुभव करके। समझ में आया?

श्रुतज्ञान-भावश्रुतज्ञान द्वारा अन्तर्मुख द्रव्य को लक्ष्य में लेकर एक स्वरूप शुद्ध प्रभु आत्मा, उसका भेद—यह ज्ञान है और यह आत्मा है—ऐसा भेद भी नहीं करके, सीधे ज्ञान द्वारा आनन्दस्वरूप का वेदन करना, प्रत्यक्ष अनुभव करना, प्रत्यक्ष आत्मा को श्रुतज्ञान में लेना, प्रत्यक्ष आनन्द जैसा अन्तर में है, वैसे आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द से, समाधि से, शान्ति निर्विकल्प स्वसंवेदन से, समाधि से यह आत्मा है — ऐसा अनुभव करना, इसका नाम सत्य परमार्थ निश्चय श्रुतकेवली कहते हैं। समझ में आया?

और... अब दूसरी गाथा का अर्थ चलता है। यह पहली गाथा हुई। **जो सर्व श्रुतज्ञान को जानते हैं...** जो अपनी पर्याय में भावश्रुत जो है कि जो भावश्रुत स्वरूप को पकड़ने की योग्यतावाला है, वह यहाँ द्रव्यश्रुत को जानता है, वह भावश्रुत लिया है। उसे जानते हैं, **वे श्रुतकेवली हैं' यह व्यवहार है।** सुनो! समझ में आया? भगवान आत्मा अन्तर्मुख द्रव्य को पकड़कर प्रत्यक्षरूप से वेदन करना, वह तो निश्चय परमार्थ हुआ। परन्तु यहाँ कहते हैं, सर्व शब्द पड़ा है और श्रुतज्ञान शब्द पड़ा है। जो वर्तमान ज्ञानपर्याय है, भावश्रुत, हों! उसे यहाँ सर्व श्रुत कहा। क्यों? वह (संवत्) १९९९ में राजकोट में कहा था कि यह सर्व शब्द क्यों कहा है? कहा था... उस कमरे में... अन्यत्र कहीं व्याख्यान दिया था न? कमरे के ऊपर वह टूट गया था। तब। वह मकान टूट गया था

न? फिर एक कमरे के ऊपर कहीं दिया था। वही यह कमरा। वांकानेर। तब तो था नहीं। वहाँ दिया था। वहाँ कमरे पर। .....

यह सर्व श्रुत जो शब्द पड़ा है, वह अन्तर में श्रुतज्ञान की इतनी सामर्थ्य है कि स्वद्रव्य को पकड़े, सम्पूर्ण द्रव्य को पकड़ने की सामर्थ्य है तो भावश्रुतज्ञान को सर्व श्रुत कहा गया है। ज्ञान का विकास भले थोड़ा हो, उसका यहाँ अर्थ नहीं। समझ में आया? परन्तु जो ज्ञान भावश्रुतज्ञान है, उसे यहाँ सर्वश्रुत कहा है। समझ में आया? क्योंकि उस श्रुतज्ञान में भगवान आत्मा अभेद चैतन्य पूर्ण प्रभु को जानने की सामर्थ्य है अथवा उसके सन्मुख होकर उसका अनुभव करने की भावश्रुतज्ञान में सामर्थ्य है तो उस भावश्रुतज्ञान को सर्व श्रुत कहा गया है। नरसीभाई! यह बहुत सूक्ष्म है, हों! तुम प्रोफेसर होकर सूक्ष्म? समझ में आया?

जो सर्व श्रुतज्ञान को जानते हैं... भगवान आत्मा को पकड़नेयोग्य जो भावश्रुत है, भावश्रुत, हों! स्वभाव को पकड़ने की सामर्थ्यवाला, उस भावश्रुत को सर्व कहा गया है। उसे जानते हैं, **वे श्रुतकेवली हैं' यह व्यवहार है।** क्योंकि उसका भाग, पूरे द्रव्य का एक श्रुतज्ञान पर्याय उसे जानती है, उसे व्यवहार कहा गया है। व्यवहार कहकर बतलाना तो यह है। समझ में आया? ज्ञान, सर्व श्रुतज्ञान को जानता है, वह व्यवहार। क्योंकि उस ज्ञान द्वारा यह आत्मा है, यह ज्ञान ही आत्मा है, ऐसी पकड़ने की योग्यता है तो भावश्रुतज्ञान को जानता है तो वास्तव में तो वह आत्मा को ही अन्दर में जानता है। परन्तु यहाँ भावश्रुत को जानता है, उसे व्यवहार कहा गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में आयेगा। अभी इतना है। यह बाद में। देखो! यहाँ तो इतना है '**श्रुतकेवलीति तावत्परमार्थो; श्रुतज्ञानं सर्व जानाति स श्रुतकेवलीति तु व्यवहारः**' अभी इतने का अर्थ चलता है। संस्कृत में इतना है। उसका अर्थ ऐसा है। '**श्रुतज्ञानं सर्व जानाति स श्रुतकेवलीति तु व्यवहारः**' बस, इतना है। पहले (ऐसा कहा), '**यः श्रुतेन केवलं शुद्धमात्मानं जानाति त श्रुतकेवलीति तावत्परमार्थो**'। यह पहली लाईन का अर्थ। '**यः श्रुतज्ञानं सर्व जानाति**' अब यहाँ। श्रुतज्ञान से आत्मा को

जाना, सीधे अनुभव किया, वह तो निश्चय श्रुतकेवली-परमार्थ। यहाँ अब व्यवहार सिद्ध करना है। '**श्रुतज्ञानं सर्व जानाति**' ऐसे शब्द पड़े हैं। जो अन्दर ज्ञान—श्रुतज्ञान है, उसे जानता है... क्यों? कि वह श्रुतज्ञान आत्मा है, श्रुतज्ञान आत्मा है और श्रुतज्ञान में आत्मा को पकड़ने की सामर्थ्य है। तो जो श्रुतज्ञान पर्याय है, उसे जानता है, सर्व अर्थात् यह शब्द, स्वरूप को पकड़ने की सामर्थ्य को श्रुतज्ञान कहते हैं, '**स श्रुतकेवलीति तु व्यवहारः**'। बस इतना। अब यह ज्ञान, श्रुतज्ञान जो है, वह व्यवहार सिद्ध करने के लिये... समझ में आया? सूक्ष्म है। पकड़ में नहीं आता, वहाँ कहीं दवा नहीं बेचनी अकेली। माणेकलालभाई! सूक्ष्म है, भाई! व्यवहार है, परन्तु जरा शैली व्यवहार की कथनपद्धति ऐसी है कि धीरे से आता है, पकड़ो। फिर विशेष रात्रि में हिम्मतभाई स्पष्ट करेंगे। रात्रि में आना पड़ेगा यहाँ। कहो, समझ में आया इसमें? यह व्यवहार की अन्दर में (जरा अटपटी बात है)। यह तो बराबर है यहाँ तक। परन्तु अब यह व्यवहार कैसे कहा, यह बात सिद्ध करते हैं। पहली बात तो इतने में आयी।

अब कहते हैं, **यहाँ दो पक्ष लेकर परीक्षा करते हैं-उपरोक्त सर्व ज्ञान...** यह श्रुतज्ञान की बात है, भाई! सर्व (अर्थात्) उसकी बात चलती है। सर्व ज्ञान। ज्ञान है न श्रुतज्ञान? श्रुतज्ञान है न? भावश्रुतज्ञान है न? यह **ऊपर कहा हुआ...** ऊपर कहा हुआ श्रुतज्ञान। दूसरी गाथा का, यहाँ दूसरी लाईन का। **ऊपर कहा हुआ सर्व ज्ञान...** भावश्रुतज्ञान **आत्मा है या अनात्मा?** भाई, पहले कहा था, कल रखा था। आज सवेरे तो... दोपहर में कल एक साधारण बात चली थी। भावश्रुत बताते हैं यह। इसलिए इतना व्यवहार प्रतिपादन करने में उसे कहा। परन्तु सीधे अनुभव कर ले, वह तो निश्चय है। वह निश्चय समझे नहीं। आत्मा का अनुभव निश्चय, आत्मा का अनुभव निश्चय। परन्तु आत्मा का अनुभव ... उसे कहते हैं कि, सुन! जो तेरी पर्याय में भावश्रुत है, उस भावश्रुत को सर्व श्रुत कहा। उसे जाने, उसको व्यवहार कहा। अभी सर्व श्रुत को यहाँ सिद्ध करते हैं। सर्व श्रुत को।

उपरोक्त सर्व ज्ञान आत्मा है या अनात्मा? यदि अनात्मा का पक्ष लिया जाये तो वह ठीक नहीं है,... क्योंकि ज्ञान पाँच द्रव्यों में है नहीं। समझ में आया? जो ज्ञान,

भावश्रुतज्ञान पर्याय है, वह चार अरूपी में नहीं और कर्म के उदय में नहीं, मन में नहीं, वाणी में नहीं। वह ज्ञान की पर्याय जो भावश्रुत को जानती है, उसे व्यवहार कहा, वह ज्ञान पाँच द्रव्यों में नहीं। इस ओर पाँच द्रव्य रह गये। समझ में आया? **यदि अनात्मा का पक्ष लिया जाये तो वह ठीक नहीं है, क्योंकि जो समस्त जड़रूप अनात्मा आकाशादिक पाँच द्रव्य हैं, उनका ज्ञान के साथ तादात्म्य बनता ही नहीं...** यहाँ तो भाई! उन रागादि सब पर में ले लिया। रागादि है, उनके साथ ज्ञान को तादात्म्य नहीं। शरीर, कर्म, व्यवहार विकल्प के साथ ज्ञान का तादात्म्य नहीं। भावश्रुतज्ञान है, उसे जाने, उसको व्यवहार कहा, वह अब यहाँ सिद्ध करते हैं। कहते हैं कि जो ज्ञान है वह...

यदि अनात्मा का पक्ष लिया जाये तो वह ठीक नहीं है, क्योंकि जो समस्त जड़रूप अनात्मा आकाशादिक पाँच द्रव्य हैं, उनका ज्ञान के साथ तादात्म्य बनता ही नहीं... कहो, समझ में आया? ज्ञान का तादात्म्य सम्बन्ध आत्मा के साथ है। ज्ञान का तादात्म्य सम्बन्ध पाँच द्रव्य और राग के साथ भी नहीं। समझ में आया? **(क्योंकि उनमें ज्ञान सिद्ध नहीं है)।** रागादि और मनादि, वाणी आदि, कर्म आदि, पाँच द्रव्य आदि सबमें ज्ञान की अस्ति है नहीं। समझ में आया? **इसलिए अन्य पक्ष का अभाव होने से...** रागादि और पर है, उनमें ज्ञान नहीं, उसका तो सिद्ध करने में अभाव हो गया। **ज्ञान आत्मा ही है, यह पक्ष सिद्ध होता है।** तो यह ज्ञान आत्मा ही है, ऐसा सिद्ध हुआ। अभी तो तर्क से सिद्ध करते हैं। भावश्रुतज्ञान, उसे जानना व्यवहार है तो ज्ञान क्या वस्तु है? समझ में आया?

अन्य पक्ष का अभाव होने से 'ज्ञान आत्मा ही है' यह पक्ष सिद्ध हुआ। तो वह श्रुतज्ञान जो भाव है, भावश्रुतज्ञान जो है, वह आत्मा ही है। **इसलिए श्रुतज्ञान भी आत्मा ही है।** समाहित कर दिया अब। ज्ञान आत्मा ही है। वह भावश्रुत जो सर्व कहा था, वह आत्मा ही है। इसलिए श्रुतज्ञान भी आत्मा है। श्रुतज्ञान अर्थात् सर्व श्रुत। भाई! भावश्रुत जो सर्व है, जो कहा था कि भावश्रुत को जाने, ऐसा कहा था तो भावश्रुतज्ञान भी आत्मा ही है। सर्व की बात चलती है न यहाँ तो? व्यवहार को सिद्ध करके व्यवहार बताता है क्या? यहाँ लक्ष्य कराता है। व्यवहार, व्यवहार को नहीं बतलाता, ऐसा कहते हैं। श्रुतज्ञान श्रुतज्ञान व्यवहार (कहा परन्तु) वह व्यवहार को (नहीं बतलाता), यहाँ बताते

हैं, यह है। श्रुतज्ञान, यह आत्मा है, ऐसा प्रतिपादन क्यों करते हैं? क्योंकि वह श्रुतज्ञान दूसरे में नहीं। इसलिए श्रुतज्ञान भी आत्मा ही है।

ऐसा होने से 'जो आत्मा को जानता है,... यह ले लिया। **'जो आत्मा को जानता है, वह श्रुतकेवली है' ऐसा ही घटित होता है;...** भावश्रुतज्ञान बताता है आत्मा को। भावश्रुतज्ञान को तादात्म्य सम्बन्ध आत्मा के साथ है। यह निश्चय तो एकदम समझता नहीं। तो भावश्रुतज्ञान भावश्रुतज्ञान भावश्रुतज्ञान यह आत्मा। यह आत्मा के साथ तादात्म्य सम्बन्ध है। समझ में आया? **ऐसा होने से 'जो आत्मा को जानता है, वह श्रुतकेवली है'...** तो वास्तव में भावश्रुतज्ञान द्वारा आत्मा जाना। ज्ञान और ज्ञानी इतना भेद भले किया परन्तु भेद करके... वास्तव में तो यहाँ जो ज्ञान लक्षण है, उसे घटित करके लक्ष्य में ले जाना है। समझ में आया? लक्षण जो भावश्रुत है, वह राग में नहीं, पुण्य में नहीं, दया, दान, व्रत में, शरीर में वह ज्ञान नहीं। वह ज्ञान श्रुतज्ञान ही आत्मा है। ज्ञान की पर्याय है, वह आत्मा है। क्योंकि अन्दर देखो तो श्रुतज्ञान की पर्याय... व्यवहार कहा तो उसका लक्ष्य तो वहाँ अभेद में जाता है। **'जो आत्मा को जानता है, वह श्रुतकेवली है' ऐसा ही घटित होता है;...** उसमें से भी यह ही घटित हुआ कि श्रुतज्ञान जो है, गुलाँट खाकर उसने भी यही बताया कि यह आत्मा। श्रुतज्ञान द्वारा, हों! श्रुतज्ञान द्वारा यह आत्मा। भावश्रुतज्ञान व्यवहार कहा, उससे भी घटित तो यही हुआ कि ज्ञान, वह आत्मा। श्रुतज्ञान, वह आत्मा—ऐसा घटित हुआ। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बताते हैं (अभेद)। अकेली ज्ञान की पर्याय को बताता नहीं, ज्ञान बताता है उसे—अभेद को। समझ में आया? थोड़ी विशेष चर्चा रात्रि में हिम्मतभाई अधिक लेंगे। अपने तो हो ऐसा कहते हैं न! मुझे भी आधे घण्टे तो कठिन पड़ा। ऐसी बात करते हैं। इनका क्षयोपशम तो बहुत है। हिम्मतभाई का क्षयोपशम और दूसरी आड़ी-टेढ़ी बात आवे, वह चलावे नहीं। ऐसा तो बोलते हैं बहुत बात परन्तु मूल पकड़ होकर आनी चाहिए। समझ में आया? यह तो कथनपद्धति क्या है, वह शैली पकड़नी है न!

कहते हैं, **ऐसा होने से 'जो आत्मा को जानता है, वह श्रुतकेवली है' ऐसा ही घटित होता है;...** भावश्रुत को जाना तो उसका लक्ष्य कहाँ जाता है? आत्मा के ऊपर जाता है। यह ज्ञान आत्मा, यह ज्ञान। अर्थात् व्यवहार से भी निश्चय को सिद्ध किया। व्यवहार का प्रतिपादन करके भी निश्चय को सिद्ध किया। यहाँ निश्चय आत्मा ही सिद्ध होता है। समझ में आया? व्यवहार सिद्ध नहीं होता, भाई! आहाहा! ८वीं गाथा में व्यवहार से जैसे अभेद बतलाया था, यह ज्ञान एक गुण से भेद करके बतलाया तो यही। आहाहा! अन्तर की बात है न, बहुत सूक्ष्म है।

कहते हैं, **'जो आत्मा को जानता है, वह श्रुतकेवली है' ऐसा ही घटित होता है;...** वह तो वहाँ ज्ञान श्रुतकेवली, ज्ञान श्रुतकेवली, वह सीधे न समझे, इस आत्मा को जाने, वह श्रुतकेवली। यहाँ से लिया, देख भाई! यह ज्ञान है या नहीं? जानता है न जिसके अस्तित्व में, वह श्रुतकेवली है। क्योंकि उसकी जानने की सामर्थ्य है। ज्ञान वह आत्मा, श्रुतज्ञान वह आत्मा, वह श्रुतज्ञान वह आत्मा। ऐसा करके व्यवहार श्रुतज्ञान को आत्मा स्थापित करके व्यवहार से निश्चय को ही सिद्ध किया है। व्यवहार से निश्चय का प्रतिपादन किया है। चन्दुभाई! अन्तर की बात! विकल्प और शरीर और वाणी कहीं निकाल दिये। अनात्मा में है। व्यवहार राग और व्यवहाररत्नत्रय भी अनात्मा में है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं, भाई! आहाहा!

ऐसे वस्तु ज्ञानस्वरूप सीधे अनुभव-वेदन से करे, वह तो निश्चय है। वह निश्चय सीधा नहीं समझता तो यहाँ जैसे आत्मा... आत्मा करने से आत्मा है, यह आत्मा है, आत्मा है, श्रुतकेवली वह आत्मा, आत्मा श्रुतकेवली। समझ में आया? उसे समझे नहीं तो (कहते हैं) यह ज्ञान नहीं? यह जानता है न? जानता है... जानता है... जानता है... भावश्रुत है न? तो भावश्रुत जो सर्व है, वही आत्मा। उसने बतलाया तो परमार्थ आत्मा को। समझ में आया? तो उसे ख्याल में आ सकता है। व्यवहार से निश्चय को बताया तो प्रतिपादक शैली से।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका भाव तो अभी क्षयोपशम ही है न। वह भावश्रुतज्ञान

क्षयोपशम ही है। श्रुतज्ञान क्षायिक होता ही नहीं। भावश्रुतज्ञान उदय नहीं होता, उपशम नहीं होता, क्षायिक नहीं होता। समझ में आया? परन्तु यहाँ यह बात नहीं है।

यहाँ तो ज्ञान का जो अंश है, उसे श्रुतकेवली कहा, उसे व्यवहार कैसे कहा? ज्ञान द्वारा 'यह आत्मा है', सम्बन्ध उसके साथ है, ऐसे नहीं इतना बतलाने के लिये व्यवहार निश्चय का प्रतिपादक (कहा है)। व्यवहार ने बतलाया तो यही बतलाया कि यह आत्मा निश्चय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अवक्तव्य क्या? वक्तव्य तो वचन में आता है परन्तु अनुभव में तो वक्तव्य है ही नहीं। समझ में आया? यहाँ अवक्तव्य का अर्थ, यहाँ वाणी की बात नहीं।

यहाँ तो आत्मा विकल्प से रहित निर्विकल्प ज्ञान द्वारा आत्मा को सीधे अनुभव करे, वह निश्चय श्रुतकेवली। ऐसा इसे ख्याल में नहीं आता कि यह आत्मा निश्चय, निश्चय क्या? तो उसे श्रुतज्ञान से बतलाया। भावश्रुतज्ञान है, वह किसमें है? राग में है? शरीर में है? पर में है? अनात्मा में है? अब रहा यहाँ। वह भावश्रुतज्ञान है, उसमें क्या हुआ? कि श्रुतज्ञान भी आत्मा है। तो वह भावश्रुतज्ञान आत्मा ही है। अनात्मा नहीं, वह तो आत्मा ही है। **ऐसा होने से 'जो आत्मा को जानता है,...** सिद्ध हो गया। **'जो आत्मा को जानता है, वह श्रुतकेवली है'...** क्योंकि श्रुतज्ञान का तादात्म्य सम्बन्ध आत्मा के साथ है। तो यहाँ आत्मा को (जानने गया), वहाँ यह श्रुतज्ञान, वह आत्मा (ऐसा ही आता है)। समझ में आया? उसका लक्ष्य श्रुतज्ञान का लक्ष्य पर के ऊपर तो गया नहीं और पर में है नहीं। तो जिसके साथ सम्बन्ध है, उसमें लक्ष्य गया तो भावश्रुतज्ञान, यह बताता है तो निश्चय को ही, परन्तु भावश्रुतज्ञान द्वारा स्थापन किया, वह एकदम पकड़ सकता नहीं सीधा। अकेला आत्मा, अकेला आत्मा श्रुतकेवली, श्रुतकेवली (ऐसा समझ सकता नहीं)। (इसलिए कहते हैं), देख भाई! यह भावश्रुतज्ञान है न? वह आत्मा में है। वह आत्मा, वही आत्मा। ऐसा बताकर व्यवहार द्वारा निश्चय का प्रतिपादन किया है। जो सब पड़ा है अन्दर में, सब पड़ा है। **'अतः श्रुतज्ञानमप्यात्मैव स्यात्। एवं सति यः**

आत्मानं जानाति स श्रुतकेवलीत्यायाति, स तु परमार्थ एव।' समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय द्वारा ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जाने तो वह, परन्तु पर्याय द्वारा जाने, 'द्वारा जाने' यह भी भेद हो गया। इसलिए उसे व्यवहार कहा। यह ज्ञान, ज्ञानी को ही बताता है। अकेला ज्ञान, ज्ञान को बताता है, ऐसा नहीं। यह श्रुतज्ञान आत्मा है, यह श्रुतज्ञान आत्मा है। समझ में आया? व्यवहार ने भी निश्चय को ही बतलाया है, ऐसा कहते हैं। व्यवहार ने व्यवहार को बतलाया और व्यवहार व्यवहार को स्थापित करता है, ऐसा नहीं। निश्चय को बतलाने में व्यवहार को स्थापित करता है। समझ में आया?

और वह तो परमार्थ ही है। श्रुतज्ञान, वह आत्मा। श्रुतज्ञान, वह अनात्मा में नहीं तो श्रुतज्ञान, वह आत्मा—ऐसा कहकर निश्चय श्रुतकेवली को सिद्ध किया। तो उसमें निश्चय श्रुतकेवली साबित हुआ। समझ में आया? **इस प्रकार ज्ञान और ज्ञानी के भेद से कहनेवाला जो व्यवहार है, उससे भी परमार्थ मात्र ही कहा जाता है,...** ज्ञान वह आत्मा, उसने भी परमार्थ ही कहा है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म बात। अकेला निरालम्बन भगवान आत्मा सीधे भावश्रुतज्ञान से अन्तर में आत्मा का अनुभव करे, वह तो निश्चय। परन्तु इतना सीधा समझे नहीं... समझ में आया? इसलिए इतना व्यवहार कहकर बतलाया कि भाई! देख, यह श्रुतज्ञान है न? श्रुतज्ञान है, सर्व श्रुत, हों! यह सर्व श्रुत है, वह सर्व श्रुत ही है। क्योंकि बारह अंग में पकड़ने का जो ज्ञान हुआ आत्मा को, उस ज्ञान को सर्व श्रुत ही कहने में आया है। समझ में आया? वह ज्ञान (बाहर) नहीं, यहाँ है। तादात्म्य सम्बन्ध यहाँ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा था, मैंने कहा था, निश्चय करने से यह व्यवहार में (कथन पद्धति अटपटी है)। यह कहते कहते, आधा घण्टा कहते परन्तु मुझे अभी मुश्किल से पकड़ में आया। व्यवहार भाषा। अपने तो स्पष्ट बात करते हैं, भाई! यह कहेंगे विशेषरूप से। फिर रात्रि में सुनना। कथन की पद्धति की जो शैली है, वह क्षयोपशम की विशेषता हो वह ... वास्तविक आना चाहिए न, वापस उसमें जरा भी अन्तर नहीं आना चाहिए।

यहाँ... कहा था न कि व्यवहार में क्या कहते हैं, उसमें बहुत कठिन है। समझ में आया? पहली तो सीधी बात है। परन्तु सीधी न समझे, इसलिए व्यवहार (द्वारा बताते हैं)। प्रश्न तो ऐसा था न? व्यवहारनय परमार्थ का प्रतिपादक किस प्रकार से है, उसका उत्तर है। प्रश्न है। **'कथं व्यवहारस्य प्रतिपादकत्वम'** यह शब्द है। समझ में आया? उतना आता है, उसे भावश्रुतज्ञान है, सर्व श्रुतज्ञान है, वह आत्मा है, अनात्मा नहीं। तो भावश्रुत को जाने, उसे व्यवहार कहा। तो उसे भावश्रुत जानने में आत्मा ही आया वापस। यह नहीं आया—पर तो आया नहीं। निश्चय श्रुतकेवली आत्मा ही उसमें आया है। समझ में आया?

पहले तीन से समझाया, यह एक से समझाते हैं। आठवीं (गाथा में) तीन से समझाया—दर्शन, ज्ञान और चारित्र। और यह एक से समझाया—श्रुतज्ञान से। मात्र श्रुतज्ञान, हों! श्रुतज्ञान से ही स्वरूप का अनुभव होता है, समाधि-शान्ति आदि होते हैं। सम्यग्दर्शन भी होता है, तब पहले तो भावश्रुत को अन्दर (में) लगाया तो शान्ति और समाधि होती है। निर्विकल्प आनन्द की दृष्टि ध्यान में होकर समाधि-शान्ति होती है, तब आत्मा का भान होता है। ऐसी बात है। समझ में आया? कठिन भाई! लालचन्दजी!

क्षयोपशमज्ञान है, वह प्रश्न नहीं। यहाँ तो यह ज्ञान है... यहाँ केवली की बात है कहाँ? यहाँ तो ज्ञान जो है, उसे सर्व श्रुत कहा और उसे केवली कहा। व्यवहार केवली कहा न? यहाँ जाने, वह निश्चय केवली। परन्तु वह व्यवहार श्रुतज्ञान की जो पर्याय है, वह श्रुतज्ञान है, वह किसका अंश है? आत्मा का। तो उस ज्ञान से आत्मा को बतलाया। तो ज्ञानी और ज्ञान का भेद करनेवाला व्यवहार... देखो! **कहनेवाला जो व्यवहार है, उससे भी परमार्थ मात्र ही कहा जाता है,...** भावश्रुतज्ञान कहा, परन्तु उसके द्वारा आत्मा है, ऐसा कहा है। समझ में आया? गजब बात, भाई! **उससे भिन्न कुछ नहीं कहा जाता।** अभेद चीज़ थी, उसे व्यवहार से कही है। श्रुतज्ञान, श्रुतज्ञान सर्व आत्मा। वह ज्ञान और ज्ञानी का भेद करके भी बताया तो परमार्थ को ही। समझ में आया? **उससे भिन्न कुछ नहीं कहा जाता।**

और 'जो श्रुत से केवल शुद्ध आत्मा को जानते हैं... अब कहते हैं कि ऐसा

परमार्थ तो झट समझ में आये नहीं। कथन में आये नहीं। **'जो श्रुत से केवल शुद्ध आत्मा को जानते हैं, वे श्रुतकेवली हैं,' इस प्रकार परमार्थ का प्रतिपादन करना अशक्य होने से,...** इस प्रकार से समझ सकता नहीं। परमार्थ को सीधे समझ सकता नहीं। एक तो हिन्दी करने का है और फिर सूक्ष्म बात है। वह परमार्थ को सीधे समझ नहीं सकता। तो कहते हैं कि परमार्थ का प्रतिपादन अशक्य है। सीधा वह समझ सकता नहीं। **'जो सर्व श्रुतज्ञान को जानते हैं, वे श्रुतकेवली हैं' ऐसा व्यवहार परमार्थ के प्रतिपादकत्व से अपने को दृढ़तापूर्वक स्थापित करता है।** लो। व्यवहार स्थापित किया। स्थापित किया अर्थात् है इतना। व्यवहार से प्राप्त होता है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

ज्ञान, श्रुतज्ञान, श्रुतज्ञान वह व्यवहार। निश्चय सीधा समझ सकता नहीं। ज्ञान, वह आत्मा। भावश्रुतज्ञान, वह आत्मा। समझे? ज्ञान है, ज्ञान समझता है? ज्ञान है या नहीं? ज्ञान, वह आत्मा। ऐसे **'जो सर्व श्रुतज्ञान को जानते हैं, वे श्रुतकेवली हैं' ऐसा व्यवहार परमार्थ के प्रतिपादकत्व से अपने को...** अपने को अर्थात् व्यवहार। **दृढ़तापूर्वक स्थापित करता है।** व्यवहार है, ऐसा स्थापित करता है। आदरणीय है, ऐसा नहीं। समझ में आया? ज्ञान ज्ञानी को बतलाता है, ऐसा व्यवहार है। परन्तु वह व्यवहार आदरणीय नहीं। समझ में आया? आहाहा! अभी तो राग के विकल्प आदरणीय नहीं, यह तो कहीं रह गया, भाई! आहाहा! विकल्प आता है न? दया, दान, मन्द कषाय, व्यवहार-फ्यवहार आदरणीय, वह तो कहीं रह गये, धूल में। वे तो आदरणीय हैं ही नहीं। परन्तु भगवान स्वरूप अभेद में एक ज्ञान द्वारा बतलाना, इतना व्यवहार स्थापित करता है कि, है। आदरणीय नहीं है। फिर यह प्रश्न है, परमार्थ का प्रतिपादक है तो व्यवहार को कैसे अंगीकार नहीं किया जाये? ११ वीं गाथा में... क्या कहलाता है ऊपर का? समझ में आया? उत्थानिका, उपोद्घात, यह ११वीं गाथा उसके साथ सम्बन्ध रखती है। ११वीं गाथा सारे जैनशासन का सार है। समझ में आया? अब देखो ११वीं आयेगी। परन्तु ११वीं गाथा से पहले जो लिया।

मुमुक्षु : ऐसा ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही होता है। ज्ञान आत्मा। इतना भेद करके कहा न? ... यह व्यवहार। क्यों व्यवहार? कि भेद से बतलाया यहाँ। ज्ञान ... आत्मा को जानता है। आत्मा के साथ सम्बन्ध है। व्यवहार से भी परमार्थ का प्रतिपादक होने से व्यवहार है, ऐसा दृढ़तापूर्वक साबित होता है। है न? '**श्रुतकेवलीति व्यवहारः परमार्थप्रतिपादकत्वे-नात्मानं प्रतिष्ठापयति**'। बस, उसे स्थापित करता है। व्यवहार स्थापन व्यवहार है। भावश्रुतज्ञान है? है। किसमें है? मुझमें। कहाँ है? यह तादात्म्य सम्बन्ध तो आत्मा के साथ है। समझ में आया? यह व्यवहार ने भी निश्चय का प्रतिपादन किया। तो व्यवहार बीच में आता है, आदरणीय नहीं। यह तो पहले ८वीं गाथा में भी कह गये कि व्यवहार से तीन भेद करके बतलाया। परन्तु वह भेद कहनेवाले को भी अनुसरण करनेयोग्य नहीं, सुननेवाले को भी अनुसरण करनेयोग्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? सुननेवाले को और कहनेवाले को अभेद चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा को उपादेय करना। केवलचन्दजी! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! लोग ऊपर-ऊपर से (मानते हैं कि) धर्म करते हैं, धर्म करते हैं। भाई! धर्म की चीज़ बहुत अमूल्य है, अमूल्य है। समझ में आया?

कहते हैं, यह दूसरी गाथा चलती है न? पहली में (ऐसा कहा), ऋषिश्वर केवली, निज अनुभव करते हैं, उन्हें श्रुतकेवली कहते हैं। उन्हें लोकप्रदीपकरा, यह शब्दार्थ में है, इसलिए इसमें लिया नहीं। परन्तु लोकप्रदीपकरा ऋषिश्वर श्रुतकेवली कहते हैं। किसे? जो भगवान आत्मा अन्तर भावश्रुत द्वारा जो अन्तर में अनुभव करता है, निश्चय द्रव्य को, उसे लोक के प्रदीप करनेवाले जिनेश्वर केवली उसको श्रुतकेवली कहते हैं।

जरा अन्वयार्थ का लेते हैं। **जो जीव सर्व श्रुतज्ञान को जानता है ...** सर्व श्रुत अर्थात् भावश्रुत। जिसे जिनदेव श्रुतकेवली व्यवहार से कहते हैं। क्यों? **क्योंकि ज्ञान सब आत्मा ही है...** ज्ञान द्वारा लक्ष्य आत्मा में ले गया, तादात्म्य सम्बन्ध है। **इसलिए (वह जीव) श्रुतकेवली है।** व्यवहार श्रुतकेवली है। क्योंकि श्रुतज्ञान आत्मा है, ऐसा बतलाकर व्यवहार से व्यवहार सिद्ध किया है कि, श्रुतज्ञान एक अंश है, भाग है, वह आत्मा है। ऐसा व्यवहार सिद्ध किया। निश्चय सिद्ध किया कि निश्चय आत्मा वह सर्वज्ञ ने कहा। व्यवहार उसे कहते हैं, वह भी (कहा)। ऋषिश्वर उसे व्यवहार कहते हैं।

समझ में आया? अन्तर श्रुतज्ञान द्वारा यह श्रुतज्ञान है। वहाँ लक्ष्य नहीं कराते। राग में, निमित्त में, संयोग में, अनात्मा में लक्ष्य नहीं कराते, क्योंकि वह ज्ञान नहीं। तो वह ज्ञान है, (उसके द्वारा) यहाँ लक्ष्य कराते हैं। समझ में आया? तादात्म्य सम्बन्ध आत्मा के साथ है तो अकेला परमार्थ उसे समझ में नहीं आता, इसलिए उसे व्यवहार से समझाया कि व्यवहार श्रुतज्ञान जो है, वही आत्मा है। उसके द्वारा आत्मा को पकड़ो। समझ में आया? तो व्यवहार श्रुतकेवली, ऐसा अनुभव किया तो उसमें श्रुतज्ञान को व्यवहार कहा। वरना तो व्यवहार भी नहीं है। समझ में आया?

रात्रि में प्रश्न आया था न? नेमचन्दभाई ने प्रश्न नहीं किया था? इन तीन को भेद को जाने इतना भाग तो सच्चा है या नहीं? नहीं। इस भेद से अभेद में दृष्टि ले जाकर अनुभव करे तो फिर भेद रहे, विकल्प आदि, वे जाननेयोग्य रहे। समझ में आया? ओहोहो! पोपटभाई! बहुत सूक्ष्म है, हों! अभी झट एकदम समझ सके, ऐसा नहीं। यह समझे बिना सुलझाव नहीं, हों! कहीं। संसार में लाख क्रियाकाण्ड करके मर जाये। दान, दया, भक्ति, पूजा और व्रत। क्योंकि उनमें आत्मा नहीं, उनमें ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा अकेला चैतन्यसूर्य अभेद, वही यहाँ बतलाना है। व्यवहार से व्यवहार नहीं बतलाना है। निश्चय यह भगवान सीधा समझता नहीं तो व्यवहार द्वारा समझाया। उसे कहा, ज्ञान जानता है, वह आत्मा। समझ में आया? तो व्यवहार भी परमार्थ का ही कहनेवाला हुआ। व्यवहार, व्यवहार को कहनेवाला नहीं रहा। समझ में आया? आहाहा! ऐसे आत्मा का अन्तर अनुभव करना, उसका नाम निश्चय श्रुतकेवली, भावश्रुतज्ञानी और उसे जैनशासन कहा जाता है। यह १५वीं गाथा में लेंगे। भावश्रुत से आत्मा का अनुभव करता है तो उस भावश्रुतज्ञान को ही जैनशासन कहा। भाई! ऐसा आया। पर्याय जैनशासन है। आहाहा! पर्याय ने अनुभव किया अभेद द्रव्य का। समझ में आया? '**जो पस्सदि अप्पाणं**' १५वीं गाथा आयेगी। भगवान अभेद एकरूप सामान्य ध्रुव चीज़। पर्याय से लक्ष्य यहाँ किया। उसका अनुभव हुआ तो पर्याय में भावश्रुत रहा, उस भावश्रुत को वहाँ जैनशासन कहा। यहाँ भावश्रुत से अन्दर में जाता है तो उसे

व्यवहार कहा। द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय भेद है न और पर्याय शासन है, वह पर्याय है। शासन कोई द्रव्य नहीं। मोक्षमार्ग है न? तो मोक्षमार्ग तो पर्याय है। पर्याय में जिनशासन रहता है, द्रव्य तो त्रिकाली है। परन्तु उस त्रिकाली अभेद का अनुभव करता है (और) जो दशा प्रगट हुई, (उस) भावश्रुत को ही यहाँ भगवान ने जैनशासन कहा है। जैनशासन आत्मा की निर्मल पर्याय के अतिरिक्त बाहर कोई नहीं रहता। समझ में आया? और वह जैनशासन कोई राग में, बाह्य देह की क्रिया में, कोई पहाड़ में, पर्वत में, सम्मेदशिखर में जैनशासन नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। न्यालभाई!

मुमुक्षु : आज तो व्यवहार कठिन हो गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : आज व्यवहार कठिन है। प्रश्न यह करेंगे रात्रि में। समझ में आया? आधे घण्टे बुलवाया था, भाई! यहाँ अभी सवेरे। कहा, शब्द में किसे सर्व कहना और किसे... शब्द की शैली जरा ऐसी है न!

यहाँ तो ऐसा कहना है, शिष्य ने ऐसा प्रश्न किया कि व्यवहार परमार्थ का प्रतिपादक किस प्रकार से है? बस। यह बतलाओ। इतना उसका प्रश्न है। उसके उत्तर में पहले कहा, पहली गाथा में ऐसा कहा, सीधा अनुभव करे, उसकी तो बात है नहीं। परन्तु वह सीधा समझ सकता नहीं, इसलिए दूसरी गाथा ली। समझ में आया? भगवान! अन्दर ज्ञान है न, ज्ञान? ज्ञानदशा है न? वह कौनसा ज्ञान? वह सर्व श्रुत है, हों! ज्ञान। क्योंकि आत्मा को पकड़ने की सामर्थ्य (रखता है)। भगवान परिपूर्ण है, उसे पकड़नेवाले ज्ञान को ही सर्व श्रुत कहा है। चाहे तो अल्प विकास हो। समझ में आया? ओहोहो! ऐगं जाणई सव्वं जाणई। ऐसे भगवान आत्मा को जिसने जाना, उसने सर्व को जाना। और उस ज्ञान को सर्व ज्ञान हम कहते हैं। आहाहा! उस सर्व ज्ञान को भी व्यवहार कहा। क्योंकि ज्ञान वह आत्मा है (इतना भेद पाड़कर कहा)। अमरचन्दजी! आहाहा! भाई! तेरा अन्तर मार्ग तो ऐसा है कि उसे पकड़े बिना उसका आत्मा अनुभव में आता नहीं। समझ में आया?

भावार्थ में थोड़ा स्थूल कर दिया है। भाई! पण्डित जयचन्द्रजी ने। शास्त्रज्ञान से अभेदरूप ज्ञायक आत्मा को (जाने), ऐसा ले लिया है। द्रव्यश्रुत लिया है न! भाषा

वापस ऐसी ली है कि द्रव्यश्रुत को व्यवहार कहना, परन्तु द्रव्यश्रुत के आधार से जो भावश्रुत उत्पन्न होता है, ऐसा भी बाद में ले लिया। यहाँ पण्डित जयचन्द्रजी ने थोड़ा ऐसा अर्थ लिया है। मूल अमृतचन्द्राचार्य की शैली में तो भावश्रुतज्ञान से आत्मा को अनुभव करे उसका नाम निश्चय केवली है। यह शास्त्रज्ञान जो कहते हैं, वह तो अभी परलक्ष्यीज्ञान है। शास्त्रज्ञान परलक्ष्यी है, उससे आत्मा का भान नहीं होता। परन्तु शास्त्रज्ञान में से अपना भावश्रुतज्ञान निकाला, भावश्रुत निज चैतन्य के अवलम्बन से (हुआ), ऐसे **अभेदरूप ज्ञायकमात्र...** देखो! वाडीलालभाई! यह तुम्हारे मुम्बई का आता है। यह तो बात आवे। **अभेदरूप ज्ञायकमात्र...** समझ में आया? **शुद्ध आत्मा को जानते हैं...** एकरूप वस्तु अभेद। जाननेवाली पर्याय जानती है, परन्तु पर्याय जानती है अभेद को। समझ में आया? देवीलालजी! आहा! ऐसी शैली से पहले कहा वह ... समझ में आया? रात्रि में विशेष चर्चा करना। यह कहा है न! रात्रि में अधिक आयेगा। यह अधिक स्पष्टीकरण करेंगे। इनके क्षयोपशम की शक्ति तो बहुत है, बहुत है। समझ में आया?

वह श्रुतकेवली है, यह तो परमार्थ (निश्चय कथन) है। भगवान आत्मा अन्तर भावज्ञान से... शास्त्रज्ञान से (कहा), परन्तु शास्त्रज्ञान से कहा हुआ ऐसा ज्ञान परिणमा है, ऐसा ज्ञान परिणमा है। परन्तु वह आगमज्ञान... समझ में आया? आगम में कहा, वैसा ज्ञान में आया। वह तो अपने वहाँ आया न? ३४ गाथा में नहीं आया? प्रवचनसार में। श्रुत जो है, उसमें ऐसा आया है कि जानना वाणी की उपाधि है। वह उपाधि निकाल डाल। वाणी-श्रुत सुना वह उपाधि है, वह अधिक की वस्तु है, निकाल डाल तो अकेला श्रुतज्ञान ही रहेगा। ३४ है न? पण्डितजी! और ३३ में ऐसा लिया है कि मुनि कहते हैं कि हम श्रुतकेवली हैं। लो, यह पंचम काल के। समझ में आया? ३३वीं गाथा में है। ३३ गाथा है न प्रवचनसार की?

जैसे भगवान, युगपद् परिणमते हुए समस्त चैतन्य विशेषोंवाले केवलज्ञान द्वारा... केवलज्ञान द्वारा। भगवान **अनादिनिधन...** द्रव्य। **निष्कारण...** कारण बिना **असाधारण...** साधारण नहीं, दूसरे किसी द्रव्य में नहीं, **स्वसंवेद्यमान...** वेदाता-अनुभव

में आता हुआ **चैतन्यसामान्य जिसकी महिमा है...** सामान्य ध्रुव **तथा चेतकस्वभाव द्वारा एकपना...** वापस स्वभाव लिया। वह भी एकरूप त्रिकाल दर्शन-ज्ञान। अकेला अखण्ड जो है, ऐसे आत्मा को, आत्मा से, आत्मा में अनुभव करता है, वह केवली है। **उसी प्रकार हम भी,...** हम भी। ऐसा कहा। मुनि अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। तुम तो छद्मस्थ हो न, तुमको खबर पड़ गयी कि यह श्रुतकेवली है? पंचम काल है न? हमको खबर पड़ती नहीं। अरे! भगवान! खबर नहीं पड़ती? स्वसंवेदन हो, अनुभव हो, वह खबर नहीं पड़ती? मुझे अनुभव हुआ, मैं सम्यग्ज्ञानी हूँ, सम्यग्दृष्टि हूँ, ऐसी खबर नहीं पड़ती? क्या अन्धा है? समझ में आया?

हम भी... गुजराती है, हों! **क्रम से परिणमते कितने ही चैतन्यविशेषवाले श्रुतज्ञान द्वारा, अनादिनिधन-निष्कारण....** वस्तु तो वही है। **स्वसंवेद्यमान चैतन्यसामान्य जिसकी महिमा है तथा चेतकस्वभाव द्वारा एकपना होने से जो केवल (निर्भेळ) है...** उसमें कोई राग-द्वेष आदि का मैल (नहीं), गुण-पर्याय के भेद बिना का। गुण-पर्याय के भेद बिना का। समझ में आया? **आत्मा को आत्मा से आत्मा में अनुभव करने के कारण श्रुतकेवली हैं,...** पंचम काल के अमृतचन्द्राचार्य को तो अभी ९०० वर्ष हुए। भगवान के पश्चात् तो बहुत वर्ष में (हुए)। १६०० वर्ष बाद हुए। अन्दर शुद्ध का अनुभव होता है तो वस्तु उसे ख्याल में आ जाती है कि यह आत्मा। प्रत्यक्ष ज्ञान का अनुभव हो, तब उसने आत्मा जाना, ऐसा कहने में आता है। तो उसे खबर नहीं पड़ती? आनन्द का वेदन होता है न! समझ में आया? क्या कहते हैं?

देखो! छठवें गुणस्थान में मुनि पंचम काल में (कहते हैं), हम श्रुतकेवली हैं, हम श्रुतकेवली हैं। तुमको यह बारह अंग का ज्ञान नहीं न? जयसेनाचार्य में आया है, जयसेनाचार्य में लिया है, तुम निश्चय श्रुतकेवली कहते हो तो स्वसंवेदन से निश्चय श्रुतकेवली हो सकता है, ऐसा हो सकता है। परन्तु उसकी तो श्रुतकेवली की तो इनकार किया है। भाई! वह तो शुक्लध्यान की अपेक्षा से जो स्ववेदन है और बहुत श्रुत का ज्ञान, वह अभी नहीं। धर्मध्यान योग्य श्रुतकेवली तो अभी हैं। समझ में आया?

यहाँ तो आचार्य कहते हैं, **विशेष आकांक्षा के क्षोभ से बस होओ; स्वरूपनिश्चल**

ही रहते हैं। आहाहा! ... है न, प्रभु! अरे! सुन तो सही। भगवान आत्मा शुद्ध ब्रह्म आनन्दकन्द में स्वरूप में निश्चल ही रहते हैं, निश्चल ही रहते हैं, ऐसी टीका है। देखो! **'स्वरूपनिश्चलैरेवावस्थीयते'।** अरे.. भाई! भगवान आत्मा केवलज्ञान लेने की सामर्थ्य जिसमें है, ऐसे द्रव्य का जिसे अनुभव हुआ तो उसे भान होता है। ओहोहो! छद्मस्थ मुनि हैं। अभी तो कहते हैं कि यह अपने को कुछ खबर नहीं पड़ती। निश्चय सम्यग्दर्शन होगा या नहीं, उसकी खबर नहीं पड़ती। वह तो भगवान जाने। यह तो कहते हैं कि, हम जानते हैं, भगवान जाने क्या। ऐ.. अमरचन्दजी! समझ में आया? हम जानते हैं। स्वरूपनिश्चल रहते हैं। ऐसे आत्मा का अन्तर का अनुभव होना, वह निश्चय। परन्तु उसे पकड़ न सके तो ज्ञान, वह आत्मा—ऐसा कहकर स्वभाव को समझाया है। समझनेवाले की सामर्थ्य कम है, इस कारण उसे व्यवहार कहा गया है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण कृष्ण १, बुधवार, दिनांक - ३१-०८-१९६६
गाथा - ९-१० तथा ११, प्रवचन - ३३

९-१० गाथा का भावार्थ चलता है। जो यह आत्मा है आत्मा, उस आत्मा को जानना, अकेला आत्मा (जाने), उसे तो निश्चय से श्रुतकेवली कहा जाता है। आत्मा शास्त्रज्ञान से अर्थात् अन्तर भावज्ञान हुआ, भावज्ञान से आत्मा जाना, भावज्ञान से उस **शुद्ध आत्मा को जानता है,...** अभेद हो गया तो द्रव्य को जाना, तो वह श्रुतकेवली है। यह तो परमार्थ (हुआ)। जो सर्व शास्त्रज्ञान अर्थात् वहाँ ज्ञान लेना। भावज्ञान को जानता है,... शास्त्र के ज्ञान का अर्थ ज्ञान है न! भावज्ञान की बात है। उसमें भाव की बात है। सर्व अन्तर में भावश्रुतज्ञान... थोड़ा सूक्ष्म है, रात्रि में भाई ने बहुत स्पष्ट किया था, हमारे पण्डितजी ने। गुजराती भाषा में कहा और हमको तो हिन्दी बराबर आती नहीं। थोड़ा-थोड़ा समझ लेना, भाई! क्या करे? समझ में आया?

मुमुक्षु : पण्डितजी ने हिन्दी में....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बराबर है। ... मुझे भाषा आती नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कहता है? परन्तु यह कथन पद्धति की पद्धति अपने को बराबर आती नहीं। कथन पद्धति रीति में कैसे कहना, वह अपने को बराबर पकड़ में नहीं आता। बात कहते हैं, वह बराबर है। क्योंकि भाषा एक तो गुजराती और उसका अभ्यास बहुत। उसमें और यह हिन्दी, अभ्यास नहीं मात्र वाँचन करते-करते थोड़ा (बोलते हैं)। उसमें चिन्तवन अन्दर चले और भाषा निकले, वैसा हिन्दी में नहीं निकलता। अन्दर साथ में चले वह गुजराती में जितना स्पष्ट होता है, उतना हिन्दी में नहीं आता। हिन्दी जितने भाव पहले पकड़े हैं, वही हिन्दी में आते हैं। गुजराती में तो चलते... चलते... चलते... व्याख्यान में अन्दर से नयी बात आती है। भाषा के ऊपर

विशेष लक्ष्य करना नहीं पड़ता। हमारे पण्डितजी जैसे करते नहीं तो हम तो भाषा जानते नहीं। रामजीभाई से इतना कहा तो भी चार-छह दिन नहीं नहीं करते हैं। रामजीभाई ने ऐसा कहा कि तुम चार-छह दिन का निर्णय करो और हिन्दी में सीख जाओ थोड़ा-थोड़ा। अपने को हिन्दी आती नहीं। यह तो साधारण भाषा है, इतनी आती है। परन्तु यहाँ से सार समझो न!

आत्मा अन्दर एकाकार है, वह शुद्धात्मा का अनुभव, वह तो केवल आत्मा, केवल आत्मा, एक आत्मा का भान होना, उसे निश्चय से श्रुतकेवली कहते हैं। और ज्ञान से आत्मा का जाना, ज्ञान को जाना, भावज्ञान; वह सर्व शास्त्रज्ञान भावज्ञान है, हों! **उसने भी ज्ञान को जानने से आत्मा को ही जाना है,...** भावज्ञान जाने तो आत्मा ही जाना। उसने भेद से भी आत्मा को ही जाना। **क्योंकि जो ज्ञान है वह आत्मा ही है;...** ज्ञान कहीं परवस्तु नहीं। **इसलिए ज्ञान-ज्ञानी के भेद...** सिद्धान्त यहाँ है। मात्र भावश्रुतज्ञान, वह आत्मा—ऐसे ज्ञान और ज्ञानी अर्थात् आत्मा, निश्चय श्रुतकेवली, उसने भेद को कहनेवाला **व्यवहार उसने भी परमार्थ ही कहा है,...** परमार्थ वस्तु स्वरूप है, उसे बतलाया। **अन्य कुछ नहीं कहा। और परमार्थ का विषय तो कथञ्चित् वचनगोचर भी नहीं है,...** बहुत न आ सके, आवे तो सही। अभेद अभेद कहते हैं न? कथंचित् न आवे। **इसीलिए व्यवहारनय ही...** सिद्धान्त तो थोड़ा यहाँ है। रात्रि में चला था न? व्यवहारनय ही वास्तव में तो... इस गाथा में परमार्थ और व्यवहार को सिद्ध करना है। तो श्रुतकेवली का दृष्टान्त देकर परमार्थ श्रुतकेवली, व्यवहार श्रुतकेवली जानने से वहाँ गया वह, इतना सिद्ध करना है। यहाँ अन्त में अमृतचन्द्राचार्य प्रभु ने ऐसा लिया कि '**परमार्थप्रति-पादकत्वेनात्मानं प्रतिष्ठापयति**'। व्यवहारनय जो ज्ञान है, वह आत्मा—ऐसा व्यवहारनय अपने को बलजोरी से स्थापित करता है। भाई! वहाँ पंचाध्यायी में आता है न? ज्ञान, आत्मा। ज्ञान को जानना, श्रुतज्ञान को जानना, श्रुतज्ञान को जाना उसने यह जाना, इतना व्यवहार बलजोरी से आये बिना रहता नहीं। तो व्यवहारनय अपने को स्थापित करता है इतना। है, इतना, हों! उससे लाभ है या ऐसी कोई बात नहीं। समझ में आया? आत्मा को अर्थात् व्यवहारनय अपने को सिद्ध करके। ज्ञान भावश्रुतज्ञान, वह आत्मा। भावश्रुतज्ञान,

वह आत्मा। इतना भेद करके भी बताया तो अभेद निश्चय श्रुतकेवली को। समझ में आया? यहाँ श्रुतकेवली की बात है न। फिर पण्डित जयचन्द्रजी ने ऐसा निकाला, सिद्धान्त निकाला अन्त में, भाई!

इसलिए व्यवहारनय ही आत्मा को... ऐसा उन्होंने लिया है। टीका में तो व्यवहारनय अपने को स्थापित करता है। ऐसा करके निश्चयश्रुत और व्यवहार श्रुतकेवली का समास किया। परन्तु उसमें से ऐसा निकाला कि **व्यवहारनय ही आत्मा को प्रगटरूप से कहता है,...** भेद पाड़कर भी आत्मा को ही कहता है। **ऐसा जानना।**

लो! अब ११वीं। अब थोड़ा समय विशेष रहता है न भाई कहे तो बहुत अच्छा। रामजीभाई शिक्षा करते हैं, ठीक करते हैं। कहो, समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ११

कुतो व्यवहारनयो नानुसर्तव्य इति चेत् -

ववहारो भूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।।11।।

व्यवहारोऽभूतार्थो भूतार्थो दर्शितस्तु शुद्धनयः।
भूतार्थमाश्रितः खलु सम्यग्दृष्टिर्भवति जीवः।।11।।

व्यवहारनयो हि सर्व एवाभूतार्थत्वादभूतमर्थं प्रद्योतयति, शुद्धनय एक एव भूतार्थत्वात् भूतमर्थं प्रद्योतयति।

तथा हि - यथा प्रबलपंकसम्वलनतिरोहितसहजैकाच्छभावस्य पयसोऽनुभ-वितारः पुरुषाः पंकपयसोर्विवेकमकुर्वन्तो बहवोऽनच्छमेव तदनुभवन्ति। केचित्तु स्वकरविकीर्णकतक-निपातमात्रोपजनितपंकपयोविवेकतया स्वपुरुषकाराविर्भावित-सहजैकाच्छभावत्वादच्छमेव तदनुभवन्ति।

तथा प्रबलकर्मसम्वलनतिरोहितसहजैकज्ञायकभावस्यात्मनोऽनुभवितारः पुरुषा आत्मकर्मणोर्विवेकमकुर्वन्तो व्यवहारविमोहितहृदयाः प्रद्योतमानभाववैश्वरूप्यं तमनुभवन्ति।

भूतार्थदर्शिनस्तु स्वमतिनिपातितशुद्धनयानुबोधमात्रोपजनितात्मकर्मविवेक-तया स्वपुरुषकाराविर्भावितसहजैकज्ञायकभावत्वात् प्रद्योतमानैकज्ञायकभावं तमनुभवन्ति।

तदत्र ये भूतार्थमाश्रयन्ति त एव सम्यक् पश्यन्तः सम्यग्दृष्टयो भवन्ति, न पुनरन्ये, कतकस्थानीयत्वात् शुद्धनयस्य। अतः प्रत्यगात्मदर्शिभिर्व्यवहारनयो नानु-सर्तव्यः।।11।।

अब, यह प्रश्न उपस्थित होता है कि पहले यह कहा था कि व्यवहार को अङ्गीकार नहीं करना चाहिए, किन्तु यदि वह परमार्थ को कहनेवाला है तो ऐसे व्यवहार को क्यों अङ्गीकार न किया जाये? इसके उत्तररूप में गाथासूत्र कहते हैं-

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है।
भूतार्थ आश्रित आत्मा, सदृष्टि निश्चय होय है।।11।।

गाथार्थ : [व्यवहारः] व्यवहारनय [अभूतार्थः] अभूतार्थ है [तु] और [शुद्धनयः] शुद्धनय [भूतार्थ] भूतार्थ है, ऐसा [दर्शितः] ऋषीश्वरों ने बताया है; [जीवः] जो जीव [भूतार्थ] भूतार्थ का [आश्रितः] आश्रय लेता है, वह जीव [खलु] निश्चय से (वास्तव में) [सम्यग्दृष्टिः] सम्यग्दृष्टि [भवति] है।

टीका : व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ है, इसलिए वह अविद्यमान, असत्य, अभूत अर्थ को प्रगट करता है; शुद्धनय एक ही भूतार्थ होने से विद्यमान, सत्य, भूत अर्थ को प्रगट करता है। यह बात दृष्टान्त से बतालते है :- जैसे प्रबल कीचड़ के मिलने से जिसका सहज एक निर्मलभाव तिरोभूत (आच्छादित) हो गया है, ऐसे जल का अनुभव करनेवाले पुरुष-जल और कीचड़ का विवेक न करनेवाले (दोनों के भेद को न समझनेवाले)-बहुत से तो उस जल को मलिन ही अनुभवते हैं, किन्तु कितने ही अपने हाथ से डाले हुवे कतकफल के पड़ने मात्र से उत्पन्न जल-कादव के विवेकता से, अपने पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत किये गये सहज एक निर्मलभावपने से उस जल को निर्मल ही अनुभव करते हैं; इसी प्रकार प्रबल कर्मों के मिलने से जिसका सहज एक ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है, ऐसे आत्मा का अनुभव करनेवाले पुरुष-आत्मा और कर्म का विवेक (भेद) न करनेवाले, व्यवहार से विमोहित हृदयवाले तो, उसे (आत्मा को) जिसमें भावों की विश्वरूपता (अनेकरूपता) प्रगट है, ऐसा अनुभव करते हैं; किन्तु भूतार्थदर्शी (शुद्धनय को देखनेवाले) अपनी बुद्धि से डाले हुवे शुद्धनय के अनुसार बोध होनेमात्र से उत्पन्न आत्मा और कर्म के विवेक से, अपने पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत किये गये सहज एक ज्ञायकभावत्व के कारण उसे (आत्मा को) जिसमें एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है, ऐसा अनुभव करते हैं। यहाँ, शुद्धनय कतकफल के स्थान पर है, इसलिए जो शुद्धनय का आश्रय लेते हैं, वे ही सम्यक् अवलोकन करने से सम्यग्दृष्टि हैं, दूसरे (जो अशुद्धनय का सर्वथा आश्रय लेते हैं वे) सम्यग्दृष्टि नहीं हैं। इसलिए कर्मों से भिन्न आत्मा के देखनेवालों को व्यवहारनय अनुसरण करने योग्य नहीं है।

भावार्थ : यहाँ व्यवहारनय को अभूतार्थ, और शुद्धनय को भूतार्थ कहा है। जिसका विषय विद्यमान न हो, असत्यार्थ हो, उसे अभूतार्थ कहते हैं। व्यवहारनय को अभूतार्थ कहने का आशय यह है कि शुद्धनय का विषय अभेद एकाकाररूप नित्य द्रव्य है, उसकी दृष्टि में भेद दिखायी नहीं देता; इसलिए उसकी दृष्टि में भेद अविद्यमान,

असत्यार्थ ही कहना चाहिए। ऐसा न समझना चाहिए कि भेदरूप कोई वस्तु ही नहीं है। यदि ऐसा माना जाये तो जैसे वेदान्त मतवाले भेदरूप अनित्य को देखकर अवस्तु मायास्वरूप कहते हैं और सर्वव्यापक एक अभेद नित्य शुद्ध ब्रह्म को वस्तु कहते हैं, वैसा सिद्ध हो और उससे सर्वथा एकान्त शुद्धनय के पक्षरूप मिथ्यादृष्टि का ही प्रसङ्ग आये, इसलिए यहाँ ऐसा समझना चाहिए कि जिनवाणी स्याद्वादरूप है, वह प्रयोजनवश नय को मुख्य-गौण करके कहती है। प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही है और इसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं। और जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्बन (सहायक) जानकर बहुत किया है; किन्तु उसका फल संसार ही है। शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं और उसका उपदेश भी विरल है-वह कहीं कहीं पाया जाता है। इसलिए उपकारी श्रीगुरु ने शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष जानकर उसका उपदेश प्रधानता से दिया है कि - ''शुद्धनय भूतार्थ है, सत्यार्थ है; इसका आश्रय लेने से सम्यक्दृष्टि हो सकता है; उसे जाने बिना जब तक जीव व्यवहार में मग्न है, तब तक आत्मा का ज्ञान-श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व नहीं हो सकता।'' ऐसा आशय समझना चाहिए।

गाथा - ११ पर प्रवचन

अब अपने सार में सार ११वीं गाथा है। यह भेद इतने किये कि ज्ञान गुणी को बताता है। इतना भी अनुपचार व्यवहार भी अभूतार्थ है। ११वीं गाथा जैनशासन का प्राण। समझ में आया? प्रश्न करता है। **अब, यह प्रश्न उपस्थित होता है...** बात तो इतनी है, '**कुतो व्यवहारनयो नानुसर्तव्य**' आप जब ऐसा कहते हो कि व्यवहारनय अपने को स्थापित करता है। निश्चय को बताने में स्थापित करता है तो '**व्यवहारनयो नानुसर्तव्य**'। क्यों अंगीकार नहीं करना? व्यवहार परमार्थ का प्रतिपादक है तो व्यवहार को क्यों अंगीकार नहीं करना? समझ में आया? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। केवलचन्दजी! समझ में आया या नहीं? रात्रि में तो गुजराती में नहीं चलता। तुम बोले थे, खबर है। चिन्तवन चलता हो और हिन्दी खोजने जायें तो चिन्तवन रुक जाये। अन्दर से बात चलती हो (तो रुक जाये)। गुजराती में चलता हो तो नया-नया कोई चिन्तवन अन्दर से निकलता हो। हिन्दी में तो भाषा में आवे, इतना लक्ष्य वहाँ रह जाता है थोड़ा। क्या कहते हैं?

शिष्य का प्रश्न है। 'पहले ऐसा कहा था कि व्यवहार को अंगीकार नहीं करना, परन्तु यदि वह परमार्थ का कहनेवाला है तो ऐसे व्यवहार को क्यों अंगीकार नहीं करना?' '**कुतो व्यवहारनयो नानुसर्तव्य**' ऐसा शब्द है न? मूल संस्कृत ऐसी है। '**कुतो व्यवहारनयो नानुसर्तव्य**'। इतना व्यवहार अपने को जोर से स्थापित करता है तो किसलिए अंगीकार नहीं करना? उसका उत्तर है। गाथा बहुत अच्छी और बराबर तुम्हारी कक्षा के समय में आ गयी है।

ववहारो भूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो॥११॥
व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है।
भूतार्थ आश्रित आत्मा, सदृष्टि निश्चय होय है॥११॥

टीका :- व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ है,... सब शब्द से चार नय यहाँ अध्यात्म में सिद्ध करना है। व्यवहारनय चार प्रकार के हैं। एक असद्भूतव्यवहार, एक सद्भूतव्यवहार। असद्भूत के दो प्रकार—उपचार और अनुपचार। सद्भूत के दो प्रकार—उपचार और अनुपचार। चारों ही नय यहाँ अभूतार्थ बतलाना है। छठवीं गाथा में पहले बात आ गयी है। प्रमत्त-अप्रमत्त भगवान आत्मा नहीं है। क्योंकि आत्मा ज्ञायकभाव ध्रुव त्रिकाल शुभ-अशुभभाव से हुआ ही नहीं। त्रिकाल ध्रुव स्वरूप है वह... शुभ-अशुभभाव वास्तव में अचेतन हैं, शुभ-अशुभभाव में चेतन का अंश नहीं। समझ में आया? ज्ञायकभाव ध्रुवभाव अभेदभाव एकरूप स्वभाव, वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं। क्यों नहीं? ज्ञायकभाव शुभ-अशुभभावरूप हुआ नहीं। कोष्ठक में कहा है कि वह जड़ हुआ नहीं। अर्थात् चैतन्य का अंश, निज ज्ञायक त्रिकाल चैतन्यपुर चैतन्यनूर ध्रुव, वह शुभाशुभभावरूप हुआ नहीं, इसलिए प्रमत्त-अप्रमत्त हुआ नहीं। यह सिद्धान्त रखा है। और प्रमत्त-अप्रमत्त हुआ नहीं तो आत्मा अप्रमत्त-प्रमत्त रहित, भेदरहित अकेला ज्ञायक चैतन्य अभेद शुद्ध चैतन्य है। ध्रुव, अकेला ध्रुव। पर्याय को तो प्रमत्त-अप्रमत्त चौदह गुणस्थान के भेद में चौदह पर्यायें निकाल डालीं। समझ में आया? वह शुभाशुभ जो निकाल दिये, उसमें असद्भूत-व्यवहारनय के दो भेद निकाल दिये।

शुभ-अशुभ जो विकार है, उसमें ख्याल में आनेवाले को उपचार असद्भूत कहते हैं, ख्याल में नहीं आनेवाले को असद्भूत अनुपचार कहते हैं। निकाल दिये, दो नय निकाल दिये। तीसरा (नय), वह आत्मा राग को जानता है, ज्ञेय को जानता है तो भी अपने ज्ञान को ही जानता है। राग और ज्ञेय को जानना, वह सद्भूत उपचारनय है। सद्भूत (अर्थात्) क्योंकि अपना ज्ञान अपने को जानता है और पर को जानता है। स्वपरप्रकाश। तो प्रमाणज्ञान है, वह सद्भूत उपचारनय का विषय है। है प्रमाण, परन्तु प्रमाण पर्याय अंश है। समझ में आया? अरे! गजब बात, भाई! और प्रमाण को व्यवहारनय (कहा)। भाई! द्रव्य जो त्रिकाल स्वरूप है ध्रुव ज्ञायक, उसमें प्रमाण जो है, वह श्रुतज्ञान की पर्याय है, प्रमाण पर्याय है। त्रिकाल वस्तु का प्रमाणज्ञान एक भेद है। प्रमाण है अखण्ड द्रव्य-गुण-पर्याय को जाननेवाला, परन्तु वह पर्याय है, इस अपेक्षा से प्रमाण को सद्भूत उपचारनय का विषय कहा है। पंचाध्यायी में कहा और यहाँ यह सिद्ध किया। पंचाध्यायी में इसमें से निकाला है। बारह गाथा में से सब निकाला है। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुभाशुभभावरूप हुआ नहीं तो इसका अर्थ हुआ कि आत्मा प्रमत्त-अप्रमत्त हुआ ही नहीं। इसका अर्थ हुआ कि असद्भूत उपचार, अनुपचारनय उसमें है नहीं। अभूतार्थ हो गया, वस्तु में है नहीं। और ज्ञान जो अपनी पर्याय में ज्ञेय को जानता है, अपने को जानता है, पर को जानता है, ऐसा जो उपचार लागू पड़ता है, वह भी नहीं। ज्ञान, ज्ञान को जानता है, ज्ञायक की दृष्टि से देखने से, स्वरूप निर्विकल्प अनुभव से देखो तो स्वप्रकाश में अपना ही आत्मा ज्ञायक भासित होता है। परज्ञेय को जानता है, इस बात का निषेध हो गया। सद्भूत उपचार प्रमाण का जो विषय है, उसे निकाल दिया। सद्भूतव्यवहारनय का।

अब रहा सद्भूत अनुपचार। यह सातवीं गाथा में (कहा)। गुण और यह गुणी, गुण और गुणी, यह भेद है, वह भी सद्भूत अनुपचार है। गुण-गुणी भेद भी वस्तु में नहीं। वस्तु अखण्ड ध्रुव है। ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक। समझ में आया? कहते हैं कि जो द्रव्य है द्रव्यार्थिकनय का विषय। द्रव्यार्थिकनय का विषय। द्रव्यार्थिकनय कहो या

द्रव्य सामान्य कहो, वह द्रव्य अर्थात् पर्याय और द्रव्य दो होकर एक नहीं। द्रव्यार्थिक अर्थात् द्रव्य अर्थात् जो सामान्य ध्रुव ज्ञायक है, उसका जो विषय है, वह ज्ञायक शुभाशुभ परिणामरूप है नहीं, पर को जाननेरूप है नहीं तथा गुणी और गुण के भेद भी अकेले ज्ञायक में नहीं।

कहते हैं, **व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ...** है। इन चारों को ही अभूतार्थ कहा। देखो! जरा सुनना। उसकी पर्याय है न पर्याय? वर्तमान, उसे भी यहाँ तो अभूतार्थ कह दिया है। वर्तमान पर्याय, हों! भाई! क्योंकि त्रिकाल द्रव्य का एक पर्याय अंश-भेद है। भेद है, वह व्यवहारनय का विषय हुआ। पर्याय भी व्यवहारनय का विषय हुआ। यहाँ अभूतार्थ कह दिया। भूतार्थ अर्थात् त्रिकाल का आश्रय करनेवाला जो भूतार्थ शुद्धनय है, भूतार्थ कहो या शुद्धनय कहो, दोनों एक हैं। यहाँ नय और विषय दो भिन्न नहीं पड़ते। भूतार्थ जो है, शुद्धनय जो है, शुद्धनय का विषय-बिषय की यहाँ बात नहीं, यहाँ ऐसे भेद नहीं लेना। यहाँ तो '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' भूतार्थ ज्ञायक ध्रुव एकरूप, जिसमें उत्पाद-व्यय की पर्याय का अभाव है। समझ में आया? उत्पाद-व्यय व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पूरा द्रव्य सामान्य। सामान्य द्रव्य, ध्रुव द्रव्य। पर्यायसहित नहीं। पर्यायसहित प्रमाण का विषय हो जाता है। समझ में आया?

कहते हैं कि व्यवहार... यह स्पष्टीकरण पण्डित जयचन्द्रजी करेंगे, हों! कि व्यवहारनय अभूतार्थ कहा है तो पर्याय भी अभूतार्थ — नहीं, ऐसा हो गया, भाई! पर्याय नहीं, ऐसा हो गया। वेदान्त हो जायेगा। किस अपेक्षा से कहा है? अभूतार्थ किस अपेक्षा से कहा है? त्रिकाल चीज़ नहीं, आश्रय करनेयोग्य नहीं, इस अपेक्षा से पर्याय को उसमें होती उत्पाद पर्याय है... है... है... विद्यमान होने पर भी, अभूतार्थ कहते हैं, असत्यार्थ कहते हैं, नहीं — ऐसा कहते हैं, झूठी है, कहते हैं। समझ में आया? किस कारण से? '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' एकरूप ज्ञायक ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... परमपारिणामिक स्वरूप ध्रुव ज्ञायक। उसके आश्रय से अपना प्रयोजन सिद्ध होता है। आश्रय करनेवाली

पर्याय है, परन्तु पर्याय का विषय त्रिकाल ध्रुव है। समझ में आया? ध्रुव एक समय अनन्त गुण के पिण्डरूप अभेद, भेद भी नहीं, गुण-गुणी के भेद भी नहीं, वह तो निकाल दिया। यह तो ९-१० (गाथा में) चार दृष्टान्त दिये। श्रुतकेवली और निश्चय और व्यवहार स्थापित किये। उसमें से सिद्धान्त निकाल लेना कि गुण-गुणी का भेद भी उसमें नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभेद निश्चय हुआ। पर्याय व्यवहार हुई। व्यवहार अर्थात् झूठी हुई। झूठी अर्थात् है नहीं। किस अपेक्षा से? त्रिकाल में नहीं, इस अपेक्षा से झूठी हुई। अपनी पर्याय में है—अपने में है।

मुमुक्षु : त्रिकाल की अपेक्षा से असत्यार्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : असत्यार्थ कहने में आया है। त्रिकाल की अपेक्षा से असत्यार्थ कहे। वर्तमान पर्याय ही नहीं, ऐसा कहे तो रहा क्या? वेदान्त हो गया। ऐसी वस्तु है नहीं। समझ में आया?

यहाँ पहला शब्द उठाया है। टीका है न? '**व्यवहारनयो हि सर्व एवाभूतार्थत्वाद-भूतमर्थं प्रद्योतयति**'। संस्कृत थोड़ा-थोड़ा आता है, हों! पण्डितजी! अपने तो भाव निकालना है। '**व्यवहारनयो हि सर्व एव**' देखो! '**सर्व एव**' सर्व शब्द से अनुपचार सद्भूत, उपचार सद्भूत, अनुपचार असद्भूत और उपचार असद्भूत। यहाँ मुख्य तो अध्यात्म में चार नय लिये हैं। पंचाध्यायी में उसमें से... आगम के नय। सात नय है न? नैगम और संग्रह। यह आगम के व्यवहारनय हैं। व्यवहारनय का यहाँ निषेध किया है। पंचाध्यायी में भी स्पष्टीकरण किया है। पंचाध्यायी में भी निकाला है इसमें से, हों! उसमें घर का कुछ कहा नहीं।

कहते हैं, **व्यवहारनय सब ही...** सर्व शब्द पड़ा है न? संस्कृत में '**सर्व**' शब्द पड़ा है। '**सर्व**' ही कहने से वह पर्याय है, जो सद्भूत वर्तमान अनुपचार विषय है, पर्याय और गुणी, पर्याय और गुणी, ऐसे जो पर्याय के भेद हैं, उन्हें भी व्यवहार कहकर समस्त अभूतार्थ (कहा है)। अभूत—वह पर्याय है ही नहीं। द्रव्य में नहीं। ... एक

पर्याय में प्रमाणज्ञान लिया और एक लिया गुण-गुणी का भेद। ऐसा जो भेद है, वह असत्यार्थ है। वस्तु में है नहीं, ध्रुव में वह चीज़ है नहीं। समझ में आया? यह गाथा तो वस्तु का प्राण है। जैनशासन क्या वस्तु का प्राण है। एक समय के उत्पाद-व्यय हैं, उनसे रहित जो द्रव्य है, वही भूतार्थ है। आहाहा! समझ में आया? एक समय की वर्तमान प्रगट पर्याय जो है, वह तो व्यवहारनय का विषय है, पर्यायनय का विषय है। उससे रहित अकेला ध्रुव। वर्तमान पर्याय के अतिरिक्त का अकेला ध्रुव, वह भूतार्थ है, विद्यमान पदार्थ है। छतो को क्या कहते हैं? विद्यमान है, वही सत्य है, वही सत्य है, पर्याय असत्य है। इस अपेक्षा से, हों! पर्याय असत्य है। पर्याय, पर्याय की अपेक्षा से है। समझ में आया?

कहते हैं, **अविद्यमान,...** है। आत्मा के द्रव्य में पर्याय है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ध्रुव कहो या द्रव्य कहो। यहाँ द्रव्यार्थिकनय का विषय लेना है न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। उत्पाद-व्यय-ध्रुव तो प्रमाण का विषय हो गया। वह तो प्रमाण हो गया। उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं प्रमाण हो गया। यहाँ तो उत्पाद-व्यय नहीं। ध्रुव में उत्पाद-व्यय है ही नहीं। समझ में आया? असत्यार्थ, अविद्यमान है। भगवान आत्मा जो दृष्टि का विषय है, सम्यग्दर्शन का विषय है, उसमें पर्याय है ही नहीं। पर्याय विद्यमान नहीं। चार नय विद्यमान नहीं। आहाहा! यह समझे नहीं तो उसमें वेदान्त हो जाये ऐसा है। लो, यह तो असत्यार्थ कही। पर्याय है नहीं, अकेला कूटस्थ है। ऐसा नहीं। समझ में आया?

अविद्यमान, दूसरी भाषा से अभूत, अभूत, असत् असत्य है। देखो! ध्रुव भगवान आत्मा जिसे द्रव्य-वस्तु कहते हैं, द्रव्य कौन सा? उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला द्रव्य नहीं। वह तो प्रमाण के विषयभूत द्रव्य हुआ। परन्तु जो द्रव्यार्थिकनय का द्रव्य है, द्रव्यार्थिकनय है न यहाँ? नय है, वह एक अंश को पकड़ता है, नय पूरे दो को पकड़े तो प्रमाण हो जाये। नय का विषय एक अंश है। चाहे तो सामान्य अंश हो, चाहे तो विशेष अंश हो। यहाँ सामान्य अंश कहने में विशेष अंश को असत्यार्थ कहने में आया है। समझ में

आया? यह भाषा कहीं बहुत ऐसी सूक्ष्म नहीं, समझ में आये ऐसी है। राजमलजी!

व्यवहारनय सब ही... भेद पाड़कर कहना, सभी पर्याय को बताते हैं, वह अभूतार्थ है, इसलिए अविद्यमान है, इसलिए झूठी है। झूठी है। पर्याय झूठी है, व्यवहारनय झूठा है। वह त्रिकाल सत् की अपेक्षा से। समझ में आया? जैसे निज द्रव्य की अपेक्षा से सभी द्रव्य अद्रव्य हैं। निज द्रव्य की अपेक्षा से दूसरे द्रव्य अद्रव्य हैं। दूसरे (क्षेत्र) निज क्षेत्र की अपेक्षा से अक्षेत्र हैं। निज काल की अपेक्षा से पर अकाल हैं, निज भाव की अपेक्षा से अभाव हैं। निज वस्तु की अपेक्षा से परवस्तु अवस्तु है। सातवीं गाथा। समझ में आया? शिष्य ने प्रश्न किया था न कि महाराज! गुण-गुणी भेद अवस्तु है? परवस्तु है कि तुम उसे 'नहीं' ऐसा कहते हो? समझ में आया? क्या गुण उसमें नहीं है? वस्तु में है या नहीं? तो उसे व्यवहार क्यों कहा? व्यवहार तो अवस्तु को कहो। अवस्तु अर्थात् उसमें न हो, ऐसी परचीज़ को व्यवहार कहो। उसे तुम व्यवहार क्यों कहते हो? अरे! सुन तो सही, प्रभु! अवस्तु किस अपेक्षा से कहते हैं? अभेद की दृष्टि कराने के लिये भेद उसमें हैं, तथापि दिखते नहीं। गुण हैं, गुण हैं, तथापि दिखते नहीं। पर्याय रह गयी एक ओर। समझ में आया? भेद दिखते नहीं। इस अपेक्षा से अभेद को बराबर भलीभाँति देखने में भेद को व्यवहारनय कह दिया है। समझ में आया? भेद उसमें नहीं, ऐसा नहीं, परन्तु दिखते नहीं। अभेद एकाकार अनन्त गुण के एकरूप में अनन्त गुण ऐसे दिखाई दे तो भेद हो गया। समझ में आया? अभेद में भेद दिखाई दे तो अभेद रहता नहीं और अभेद एकरूप की भलीभाँति दृष्टि करना, उसमें और यह गुण और यह गुणी, आत्मा आधार और गुण आधेय, यह तो भेद हो गया, व्यवहार हो गया। एकत्व नहीं होगा, उसमें एकत्व नहीं होगा। समझ में आया?

कहते हैं, **अभूत, अर्थ को प्रगट करता है;...** पाठ है या नहीं? '**अभूतमर्थं प्रद्योतयति**'। झूठे अर्थ को कहता है। कौन? व्यवहारनय झूठे पदार्थ को कहता है, झूठे भाव को कहता है। परन्तु है सही वह भाव। समझ में आया? त्रिकाल सत्य की अपेक्षा से एक समय की पर्याय को झूठा, झूठा, झूठा, झूठा को प्रगट करता है, ऐसा कहने में आया है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन का ही विषय लिया है, हों! पाठ में इतना आया,

'व्यवहारनयो हि सर्व एवाभूतार्थत्वाद' असत्य होने से असत्य अर्थ को कहता है, असत्य अर्थ को कहता है। तुम्हारे दोपहर में चलता है, वह उसमें से ही निकाला है। टोडरमलजी ने घर का कहीं ही नहीं कहा। प्रचलित भाषा में शास्त्र में से सामान्यरूप से रहस्यरूप हो, उसे खोलकर कहा है। समझ में आया?

अब, **शुद्धनय एक ही भूतार्थ होने से...** शुद्धनय... यहाँ नय कहा। नय तो श्रुतज्ञान का अंश है। नय तो श्रुतज्ञान का अंश है, परन्तु यहाँ ऐसा नहीं लेना। यहाँ शुद्धनय कहने से त्रिकाल ध्रुव, उसे यहाँ शुद्धनय कहा है। नय और नय के विषय को एकरूप कहकर अध्यात्म में भूतार्थ को शुद्धनय कहा गया है। समझ में आया? **शुद्धनय एक ही भूतार्थ...** सत्य अर्थ, सच्चा अर्थ, विद्यमान अर्थ होने से। विद्यमान त्रिकाल ध्रुव विद्यमान, त्रिकाल ध्रुव भूतार्थ, त्रिकाल ध्रुव सत्यार्थ, सत्यरूप भगवान एकरूप ऐसा विद्यमान, ऐसा सत्य, ऐसा होनेवाला **भूत अर्थ को प्रगट करता है।** शुद्धनय भगवान अकेले शुद्ध ध्रुव को बताता है अथवा भूतार्थ को ही बताता है, भूतार्थ को ही शुद्धनय को कहा गया है। ओहोहो! समझ में आया? पहले शब्दार्थ ले लिया। **'ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ'।** परन्तु इसका न्याय आगे लेंगे। दूसरे दो पद का। दो पद है न बाकी? पहले अर्थ कहा। **'ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ'।** बस। अब दृष्टान्त कहेंगे। पश्चात् **'भूदत्थमस्सिदो खलु'** सामान्य ज्ञायक भगवान आत्मा का आश्रय करता है, वही सम्यग्दृष्टि होता है। भेद के आश्रय से, निमित्त के आश्रय से, राग के आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। स्थिर वस्तु हो, स्थिर वस्तु हो, ध्रुव वस्तु हो, उसका आश्रय करने से स्थिर दृष्टि होती है, नयी पर्याय (शुद्ध) उत्पन्न होती है। समझ में आया? नेमचन्दभाई! वे कहे, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, वह सम्यग्दर्शन है। नौ तत्त्व की भेद की श्रद्धा करो, (वह) सम्यग्दर्शन है। छह द्रव्य की श्रद्धा करो, (वह सम्यग्दर्शन है)। यहाँ इनकार करते हैं। अकेला भूतार्थ त्रिकाल ध्रुव का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है।

मुमुक्षु : पहले से बहुत ऊँची बात की....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं। परन्तु यही वस्तु है, भाई! मूल वस्तु यह है।

ठीक है, केवलचन्दजी प्रश्न बराबर करते हैं। पहले यह लो, पहले यह लो, सीधे ऐसी ऊँची... गुण-गुणी का भेद नहीं, ऐसे अभेद के ऊपर एकरूप वस्तु है, समझे? एकरूप है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। अनेक के आश्रय से सम्यग्दर्शन किस प्रकार होता है? उसमें तो विकल्प उत्पन्न होता है। समझ में आया? चाहे तो परलक्ष्यी छह द्रव्य का ज्ञान करो, शास्त्र का ज्ञान करो, नौ तत्त्व के भेद की श्रद्धा करो, परन्तु वह समकित है ही नहीं, वह तो राग है, वह तो राग है। नौ तत्त्व के भेद की श्रद्धा, वह भी राग है। समझ में आया? छह द्रव्य के भेद की श्रद्धा भी राग है। परम आवश्यक में आ गया। निज द्रव्य, गुण, पर्याय तीन का विचार करना, वह राग है। परम आवश्यक में आया। अपने और पर के द्रव्य-गुण-पर्याय। द्रव्य-गुण-पर्याय, द्रव्य-गुण-पर्याय — यह तो भेद हो गया, विकल्प उठता है। समझ में आया?

जिसकी खान में ध्रुवरूप अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं, उनका आश्रय करने से पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया? **शुद्धनय एक ही...** एक ही। इसीलिए पंचाध्यायी में कहा है न? निश्चयनय को दो कहता है, वह सर्वज्ञ की आज्ञा से बाहर है। पण्डितजी! यह पंचाध्यायी में ऐसा कहा है। निश्चयनय के दो भेद करता है, वह सर्वज्ञ की (आज्ञा से बाहर है)। वह यह लिया है। '**शुद्धनय एक एव**' संस्कृत में है न? वह सब यहाँ से लिया है। अशुद्धनय आदि बहुत भेद दूसरे आगम में हैं। परन्तु वास्तव में अध्यात्म की दृष्टि में सब व्यवहार है। अशुद्धनिश्चय कहो तो वह भी व्यवहार है। समझ में आया? एक समय की पर्याय व्यवहार है; मति, श्रुत, केवलज्ञान भी सद्भूतव्यवहारनय का विषय है, केवलज्ञान सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। निश्चयनय का विषय नहीं। केवलज्ञान गुण का एक अंश पर्याय है। तो पर्याय, वह द्रव्यार्थिकनय का विषय है ही नहीं। द्रव्य का वह विषय ही नहीं। सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। अपने को तो केवलज्ञान नहीं, जिसे केवलज्ञान है, उसका लक्ष्य करने जाता है तो विकल्प उठते हैं। अपने में केवलज्ञान नहीं तो मैं केवलज्ञान उत्पन्न करूँ, ऐसा लक्ष्य करता है तो विकल्प उत्पन्न होते हैं। समझ में आया? आहाहा!

शुद्धनय एक... अपने वजन यहाँ एक के ऊपर देना है। पंचाध्यायी में ऐसा लिया

है तो (लोग कहते हैं), झूठ लिया है, झूठ लिया है। मक्खनलालजी ने दो अर्थ किये हैं। नीचे किया है कि स्वसमय की अपेक्षा से यह बात है। वहाँ तो उन्होंने अर्थ ठीक किया है। बाद में सब बदल गया। पहले बराबर किया है उन्होंने। नीचे, हों! सब देखा है न! (संवत्) १९८२ के वर्ष से देखते हैं। पंचाध्यायी ८२ के वर्ष से देखते हैं। उन्होंने नीचे नोट में लिखा है कि यह सर्वज्ञ की आज्ञा के बाहर निश्चय को कहता है, यह स्वसमय की अपेक्षा से कहते हैं। ऐसा लिखा है। समझ में आया? यह भगवान आत्मा एक शुद्धनय भूतार्थ त्रिकाल ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... जिसमें पर्याय का लगाव नहीं। समझ में आया? ऐसा पर्याय का लगाव तो व्यवहार हो गया, असत्यार्थ हो गया। सत्यार्थ एक ही त्रिकाल चीज़ है। **एक ही...** शब्द पड़ा है न? **'शुद्धनय एक एव'** ऐसा शब्द है। **'एक एव'।** अमृतचन्द्राचार्य ने कहा न? शुद्धनय के दो भाग करेगा तो व्यवहार हो जायेगा। शुद्धनय के दो भाग हैं ही नहीं। देवीलालजी! शुद्धनय **'एक एव' एक ही...**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और दूसरी बात है। यह और व्याख्या उसकी... यह दूसरी बात है, यह तो नय की व्याख्या है। शुद्धनय के दो भेद करे, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। एक और अनेक तो निषेध में जाते हैं, यह दूसरी बात है, वह दूसरी बात है। वह तो गुण है? नहीं। पर्याय है? नहीं। ... बहुत चर्चा हो गयी है, यहाँ तो बहुत चर्चा चलती है। समझ में आया? यहाँ तो सामान्य एकरूप। पंचाध्यायी में लिया है। निश्चयनय का विषय।

यहाँ कहते हैं, **शुद्धनय एक ही...** एक ही। एक ही कहते हैं न हिन्दी में? एक ही। यह लिखा है तत्प्रमाण। **भूतार्थ होने से...** शुद्धनय एक ही सत्य होने से, सत्य एक ही होने से। त्रिकाल वस्तु ध्रुव एक ही सत्य होने से, **विद्यमान, सत्य, भूत अर्थ को...** ऐसे सत्य को **प्रगट करता है।** समझ में आया?

यह बात दृष्टान्त से बतलाते है - लो। **जैसे प्रबल कीचड़ के मिलने से...** अब दृष्टान्त देते हैं, हों! जल का। प्रबल शब्द पड़ा है, हों! देखो! कर्म में भी प्रबल लेंगे। **जैसे प्रबल कीचड़ के मिलने से जिसका...** जिसका अर्थात् पानी का। **सहज एक**

निर्मलभाव... सहज एक निर्मलभाव **तिरोभूत (आच्छादित) हो गया है,...** पानी का जो निर्मलभाव है, वह कीचड़ के निमित्त के मिलने से अपनी पर्याय में मलिन हो गया है, निर्मलता ढँक गयी है। **ऐसे जल का अनुभव करनेवाले पुरुष...** ऐसे जल का—मल सहित जल का। निर्मलता तिरोभूत हो गयी है, ऐसे जल का। **अनुभव करनेवाले पुरुष-जल और कीचड़ का विवेक न करनेवाले...** जल और कीचड़ का विवेक—भेद नहीं करनेवाले, दोनों के भेद को नहीं समझनेवाले। नहीं समझनेवाले **बहुत से तो...** बहुत से तो। विवेक करते हैं, इसलिए बहुत लिये हैं, सब नहीं। **बहुत से तो उस जल को मलिन ही अनुभवते हैं,...** समझ में आया? पानी मलिन ही है। हम कुकड़ा गये थे न? कुकड़ा। अकेला मलिन पानी। कुकड़ा है। मूळी के पास कुकड़ा (गाँव) है। पूरे गाँव में मलिन पानी। क्यों (स्वच्छ) पानी नहीं? तो कहे, यहाँ तो तालाब मैला है। यहाँ लावे, भरे, दो-चार-छह घण्टे रखे फिर मैल नीचे बैठ जाये तो जल पीवे। हम तो तुरन्त गये हुए। मलिन पानी मिला। मैलवाला पानी, हों! फिर थोड़ा ठार्युं तो मैल नीचे बैठ गया। पूरे गाँव को मलिन पानी आवे। तालाब है न, तालाब। कुआँ नहीं। वहाँ तालाब में सब मलिन ही पानी। बारह महीने कीचड़वाला पानी। भरकर लावे फिर ठारे। कितने ही तो ऐसा ही पीवे, कहते हैं। सीधा मैलवाला पानी पीते हैं। **विवेक नहीं करनेवाले...** हों! विवेक नहीं करनेवाले बहुत से। **विवेक न करनेवाले-बहुत से तो उस जल को मलिन ही अनुभवते हैं, किन्तु कितने ही अपने हाथ से डाले हुवे कतकफल...** किसी दूसरे के द्वारा नहीं। दूसरे किसी ने डाला हो... खिचड़ी में ऐसा होता है न? खिचड़ी कहते हैं? खिचड़ी में एक महिला ने नमक डाला हो और दूसरी महिला को खबर नहीं हो तो दूसरा डाल आवे। घर में दो-तीन महिलायें हों। नहीं डाला हो, डालो दूसरा। खाये वहाँ खारा लगे। ऐसा कैसे? किसने डाला है? मैंने तो एक बार डाला था, दूसरी कोई डाल गयी होगी। खबर नहीं हो और डाले दूसरा धोबा एक।

यहाँ **कितने ही अपने हाथ से...** पानी में मैल है तो दूसरे किसी ने तो अन्दर डाला नहीं। **कितने ही अपने हाथ से डाले हुवे कतकफल (निर्मली औषधि)...** जिससे कीचड़ नीचे बैठ जाता है। **पड़नेमात्र से...** जहाँ पड़ा, **पड़ने मात्र से उत्पन्न जल-कादव के विवेकता से,...** लो। जल और कादव भिन्न पड़ गये। मैल नीचे बैठ जाता है, पानी

नितर जाता है। **अपने पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत किये गये...** पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत करने में आये हुए—प्रगट करने में आये हुए। निर्मल पानी मैल में जो आच्छादित था, मैल में ढँक गया था, उसे प्रगट किया। **पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत किये गये सहज एक निर्मल-भावपने से...** सहज एक निर्मलभावपने के कारण **उस जल को निर्मल ही अनुभव करते हैं;...** कहो, बराबर है? यह तो दृष्टान्त हुआ।

इसी प्रकार प्रबल कर्मों के मिलने से... देखो! चाहे तो प्रबल कर्म हो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? लोग कहते हैं न कि कर्म मन्द पड़े तो विवेक हो सकता है, कर्म मन्द पड़े तो भेदज्ञान हो सकता है। इसके बिना पुरुषार्थ काम नहीं करता। तो आचार्य ने पहले से लिया है।

मुमुक्षु : आचार्य के समय में ऐसा होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : आचार्य के समय में (क्या), तीनों काल ऐसा है। समझ में आया? केवलचन्दजी!

इसी प्रकार प्रबल कर्मों के मिलने से... कर्म का तीव्र उदय हो, उसमें जुड़ान हो गया है। **मिलने से जिसका सहज एक...** मिलने से का अर्थ ऐसा नहीं कि कर्म का उदय तो जड़ पर्याय है, ज्ञान की पर्याय में एक हो गया है, ऐसा है नहीं। मिट्टी के परमाणु भी पानीरूप हो गये हैं, ऐसा नहीं। परन्तु जड़कर्म के उदय में लक्ष्य करके एकाकार हो गया है, मलिन हो गया है। समझ में आया?

हमारे एक थे। ऐसा दृष्टान्त देते थे। हम जब पुरुषार्थ की बात करते थे कि पुरुषार्थ से अपना काम होता है। तब वे कहते थे कि विकार भी पुरुषार्थ से होता है, ऐसा नहीं। क्यों? जैसे एक रुपयाभार मिश्री हो, रुपयाभार मिश्री, उसका स्वाद सीधा बहुत आता है। और मिश्री में एक रुपयाभार चने का आटा... चने का आटा हो न? बेसन, बेसन। एक रुपयाभार डाल दो, आधी मिठास टूट जायेगी। मिश्री का सीधा पूरा स्वाद नहीं आयेगा। उसी प्रकार आत्मा में कर्म का थोड़ा जड़ का भाग आ जाता है और आत्मा का... ऐसा विकार करता है, ऐसा कहते हैं। हमारे बहुत चर्चा हुई है। (संवत्) १९८३ के वर्ष पहले १९७६ से बहुत चलती है। बात तो १९७१ से चलती है। विकार

है वह थोड़ा जड़ का भाग है और थोड़ा आत्मा का, ऐसा विकार है? नहीं, ऐसा नहीं। जड़ की पर्याय का तो चैतन्य की विकारी पर्याय में अभाव ही है। समझ में आया? परन्तु अपनी पर्याय जड़ के लक्ष्य से मिली हुई है तो कर्म के उदय से मिली हुई है तो अपना स्वरूप ढँका हुआ है, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया?

इसी प्रकार प्रबल कर्मों के मिलने से... देखो न! आचार्य की भी शैली तो देखो! ओहोहो! पंचम काल के... कहते हैं, भले प्रबल कर्म हो, परन्तु आत्मा विवेक कर सकता है। अपने पुरुषार्थ की जागृति से विवेक भेदज्ञान राग से-मैल से, पर से भेद कर सकता है। ऐसा न समझो कि अरे! कर्म मन्द पड़े तो (होगा)। ऐसा कितने ही कहते हैं। समझ में आया? कर्म जब मन्द पड़ जाये... एकेन्द्रिय में बेचारा क्या करे? अरे! एकेन्द्रिय में अपनी भूल से रहा है, वहाँ कर्म से रहा है? समझ में आया? यहाँ पंचेन्द्रिय प्राणी को समझाने की बात है। एकेन्द्रिय का ... क्षयोपशम है परन्तु आगे बढ़े नहीं।

यहाँ कहते हैं, **प्रबल कर्मों के मिलने से जिसका...** अर्थात्? आत्मा का। **सहज एक ज्ञायकभाव...** समझो। **सहज एक ज्ञायकभाव...** सहज एक ज्ञायकभाव, भाई! सहज एक ज्ञायकभाव त्रिकाल। समझो। क्या कहते हैं? **सहज एक ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है,...** सहज एक ज्ञायकभाव दृष्टि में आया नहीं। दृष्टि में आता नहीं (उसे कहते हैं कि) तिरोभूत हो गया। ज्ञायकभाव ढँक जाता नहीं। भाषा क्या है? देखो! **जिसका सहज एक ज्ञायकभाव...** शब्द तो ऐसे पड़े हैं। ढँक गया। सहज एक भाव है, वह यहाँ कर्म के लक्ष्य में राग-द्वेष का अस्तित्व लक्ष्य में आता है तो यहाँ सहज एक ज्ञायकभाव, मिथ्यादृष्टि को सहज एक ज्ञायकभाव ढँक गया है। ज्ञायकभाव ढँकता नहीं, ज्ञायकभाव तो एकरूप त्रिकाल है। परन्तु इसके ज्ञान में आता नहीं तो ढँक गया, ऐसा कहने में आता है। आहा! गजब अर्थ, भाई! शास्त्र के अर्थ करने में भी बड़ा अन्तर।

यहाँ कहते हैं, सहज एक ज्ञायकभाव तो जैसा है, वैसा है। शब्द देखो! वह तो त्रिकाल एकरूप है। उसे आवरण है? ज्ञायकभाव को आवरण है? नित्य निरावरण है, त्रिकाल निरावरण है। त्रिकाल अखण्ड एकरूप है। त्रिकाल शुद्धभाव ध्रुव एकरूप है।

परम स्वभावरूप ध्रुव एकरूप है, जिसमें आवरण-फावरण है नहीं। पाठ तो ऐसा लिया है। भाई! किस अपेक्षा से कहते हैं, यह तो सुनना पड़े या नहीं? आहाहा! छठवीं गाथा में आ गया है अपने। कहीं आया था। परद्रव्य से... क्या पण्डितजी! परद्रव्य से '**भिन्नत्वेनोपास्यमानः**'। परद्रव्य के लक्ष्य से छूटकर द्रव्य जो ज्ञायक शुद्ध एकरूप है, उसकी उपासना पर्याय में की। पर्याय में उपासना करने से यह शुद्ध है, ऐसा भान हो गया। शुद्ध तो ज्ञायक एकरूप वह शुद्ध है। परन्तु ज्ञायक का जब भान हुआ, '**उपास्यमानः**' ज्ञायक सन्मुख की सेवा करने से, (परसन्मुख से) लक्ष्य हटाने से राग की भी एकता दूट गयी, स्वभाव में एकता हुई। '**उपास्यमानः**' सम्यग्दर्शन, ज्ञान में वह विषय दृष्टि में आया। '**उपास्यमानः**' शुद्ध है। उसे शुद्ध कहा जाता है। अज्ञानी को भान नहीं, उसे शुद्ध कहाँ से आया? शुद्ध तो है ही। समझ में आया? आहाहा! '**उपास्यमानः**' ऐसा शुद्ध कहा जाता है। पर का लक्ष्य छोड़कर स्वद्रव्य का लक्ष्य किया तो ज्ञायक पर दृष्टि गयी तो पर्याय में शुद्धता उत्पन्न हुई तो सेवा की, तो शुद्धता के भान में यह शुद्ध है, ऐसी उसे प्रतीति हुई। यह तो द्रव्य सिद्ध करना है।

उसी प्रकार यहाँ एक ज्ञायकभाव अपनी दृष्टि में लिया नहीं और रागादि मैल को दृष्टि में लिया है तो एक ज्ञायकभाव ढँक गया है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! ताराचन्दजी! वापस कोई ऐसा कहे, भाई! कर्म के मिलने से। मिलने का अर्थ यह कि कर्म के उदय के ऊपर उसका लक्ष्य गया। जुड़ान किया, उसको मिलने से कहते हैं। कर्म के रजकण की पर्याय तो जड़ अचेतन है। कर्म की पर्याय तो अचेतन, उदय अचेतन जड़ अजीव रंग, गन्ध, रस, स्पर्श की वह तो पर्याय है। वह पर्याय क्या आत्मा में घुस जाती है? आती है? आत्मा उदय को कभी स्पर्शता ही नहीं।

मुमुक्षु : त्रिकाल भिन्न है।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल भिन्न है। उस कर्म के उदय को आत्मा पर्याय से कभी स्पर्शता ही नहीं। वह तो तीसरी गाथा में पहले आ गया। तीसरी गाथा में। प्रत्येक पदार्थ अपने अनन्त धर्म को चूमता है तथापि, प्रत्येक वस्तु अपने अनन्त धर्म को चूमती है, आलिंगन करती है, दृढ़रूप से रहती है, लीन है, तथापि अनन्त द्रव्यों को कभी स्पर्शते

नहीं, आलिंगन करते नहीं, चूमते नहीं। एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य की पर्याय को कभी छूती ही नहीं। स्पर्शी ही नहीं, स्पर्शेगी ही नहीं तीन काल-तीन लोक में। एकत्व निश्चयगत में सब स्पष्टीकरण किया है।

यहाँ कहते हैं, कर्म के मिलने का अर्थ उस ओर का लक्ष्य करने से अकेला कर्म मैं हूँ अथवा राग मैं हूँ, ऐसी जिसकी दृष्टि हुई, उसे रागादि भासने से अथवा कर्म के प्रदेश में स्थित है, ऐसा उसे भासने से ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है। समझ में आया? **जिसका...** आत्मा का **सहज एक ज्ञायकभाव...** आत्मा का सहज एक ज्ञायकभाव। सहज ज्ञायक ध्रुव शुद्धभाव। ध्रुवभाव, ध्रुवभाव तिरोभूत होता है? पाठ तो ऐसा लिया है, देखो! **सहज एक ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है, ऐसे आत्मा का...** ऐसे आत्मा का। शब्द तो ऐसे पड़े हैं। है, परन्तु ज्ञान में आया नहीं तो उसे तो तिरोभूत ही है। ज्ञायकभाव उसे तिरोभूत हो गया—ढँक गया। आहाहा! समझ में आया? आगे कहेंगे, एक ज्ञायकभाव प्रगट हो जायेगा। ऐसा कहेंगे। जैसे यहाँ तिरोभूत कहा, वहाँ आविर्भाव हो जायेगा (ऐसा कहेंगे)। आविर्भाव तो क्या ज्ञायकभाव एकरूप ध्रुव है, वह आविर्भाव होता है? पर्याय प्रगट होती है। पर्याय प्रगट हुई तो ज्ञायकभाव प्रगट हुआ, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? ओहोहो! समयसार तो बहुत गूढ़ गम्भीर भाषा है। भाव भी गम्भीर और इसकी कथनशैली भी बहुत गम्भीर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या सहन करने का? यहाँ सम्यग्दृष्टि की बात चलती है। स्वरूपचन्दजी! भाई! क्षायिक ही है। सुनो तो सही। आत्मा का कभी नाश होता है? उसकी दृष्टि हुई तो एक न्याय से क्षायिक ही हो गया। क्षायिक समकित क्या, क्षायिक और क्षयोपशम समकित के विषय में अन्तर नहीं। क्या कहा? उपशम और क्षयोपशम, क्षायिक समकित की पर्याय के विषय में अन्तर नहीं। वर्तमान में थोड़ी मलिनता है। उसके साथ सम्बन्ध नहीं। सहनन का क्या काम है? स्वरूपचन्दजी! ठीक है, यह तो जरा स्पष्ट कराते हैं न! बराबर स्पष्ट करना। समझकर जाना। वरना वहाँ जाकर गड़बड़ करोगे। वहाँ क्या समझकर आये? केवलचन्दजी! क्या तुमको सोनगढ़ की हवा लग गयी? ऐसा हुआ है, हों!

कहते हैं कि जैसे जल को मैलसहित पीनेवाले को एकरूप जल ढँक गया है। उसी प्रकार भगवान आत्मा अपने ज्ञायक शुद्ध ध्रुव की दृष्टि नहीं करने से और दृष्टि में राग-द्वेष और कर्म की अस्ति-मौजूदगी में लक्ष्य करने से मैल का अनुभव करता है। उसे सहज एक ज्ञायकभाव दृष्टि में ढँक गया है। समझ में आया? इस बार बहुत लोग आये हैं। थोड़ा-थोड़ा बराबर लेकर जाना, हों! थोड़ा-थोड़ा लो, भाई! बहुत तो बहुत बात है। सत्य बात यह है। त्रिकाल सत्य अमर बात है।

कहते हैं, आहाहा!

अब हम अमर भये न मरेंगे, या कारण मिथ्यात्व दियो तज
या कारण मिथ्यात्व दियो तज, क्युं कर देह धरेंगे? क्युं कर देह धरेंगे?
अब हम अमर भये न मरेंगे,....
मरा बिन समझ अनन्त बार प्राणी, उसको हम हरेंगे
अब हम अमर भये न मरेंगे,....

भगवान आत्मा ज्ञायक एकरूप स्वभाव की दृष्टि हुई। भगवान अमर है तो पर्याय में अमर की दृष्टि हुई तो अमर हो गया। समझ में आया? एकाध, दो भव हो, हो तो ज्ञान का ज्ञेय रह गया। वह ज्ञान का ज्ञेय रह गया। अपने ज्ञान में भव और भव का भाव है नहीं। आहाहा! यह तो सम्यग्दर्शन की बात चलती है, हों! भाई! ऐसा कहते हैं, इस काल में ऐसा नहीं होता, यह तो सम्यग्दर्शन की बात है। इस काल में ऐसा नहीं होता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु क्षायिक का अर्थ क्या? क्षयोपशम समकित में एक प्रकार ऐसा है, एक क्षयोपशम ऐसा है कि क्षायिक लेकर केवलज्ञान लेकर ही रहेगा। ऐसी चीज़ है। समझ में आया? स्वरूप से गिरे-पड़े की बात कहाँ करना?

यहाँ तो भगवान आत्मा एकरूप सहज एक ज्ञायकभाव, उस त्रिकाल की बात है, हों! सहज एक ज्ञायकभाव त्रिकाल, द्रव्य त्रिकाल, एकरूप त्रिकाल, ध्रुव त्रिकाल, सामान्य त्रिकाल तिरोभूत हो गया। सामान्य तिरोभूत हो गया। सामान्य तिरोभूत होता

है ? पर्याय के लक्ष्य में राग ही लक्ष्य में रहा, ज्ञायकभाव दृष्टि में आया नहीं तो उसकी दृष्टि में तिरोभूत हो गया। समझ में आया ?

ऐसे आत्मा का अनुभव करनेवाले पुरुष... ऐसे आत्मा का अनुभव करनेवाले। ऐसे, हों! कौन ? कर्म के उदय में मिलने से। ढँक गया, ज्ञायकभाव दृष्टि में रहा नहीं। ऐसा अनुभव करनेवाले पुरुष **आत्मा और कर्म का विवेक (भेद) न करनेवाले,...** आत्मा और कर्म, राग और भगवान ज्ञायकभाव दोनों का विवेक नहीं करनेवाले **व्यवहार से विमोहित हृदयवाले...** लो। राग और विकल्प और भेद में विमोहित जिसका हृदय है। बस, उसमें मूढ़ गये हैं। हमारी भाषा में। तुम्हारी भाषा में क्या है ? मूर्च्छित। मुंझाई गये, हमारी काठियावाड़ी भाषा में, मुंझाई गये। उसमें मूढ़ हो गये। अपने चैतन्य भगवान ज्ञायक को लक्ष्य में नहीं लेकर राग के परिणाम, भेद के परिणाम, मलिन परिणाम में विमोहित (होकर)। विमोहित भाषा है, हों! विशेष प्रकार से मोहित-मिथ्यात्व हो गया, ऐसा कहते हैं। हो गये हैं। **हृदयवाले तो, उसे (आत्मा को) जिसमें भावों की विश्वरूपता (अनेकरूपता) प्रगट है, ऐसा अनुभव करते हैं;...** आत्मा में विश्वरूपता—अनेक प्रकार। राग-द्वेष... राग-द्वेष, पुण्य-पाप... पुण्य-पाप अनेक हैं, उसका अनुभव करते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं। दूसरा कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण कृष्ण २, गुरुवार, दिनांक - ०१-०९-१९६६
गाथा - ११, प्रवचन - ३४

समयसार ११वीं गाथा चलती है। इसमें शिष्य ने ऐसा प्रश्न किया कि व्यवहारनय परमार्थ को बतलानेवाला है तो ऐसे व्यवहारनय को क्यों अंगीकार नहीं करना? समझ में आया? भगवान आत्मा अभेदस्वरूप एक समय में चैतन्य पदार्थ, उसे व्यवहारनय बतलाता है। परमार्थ को बतलानेवाला है तो उस व्यवहारनय को क्यों अंगीकार नहीं करना? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। उसके उत्तररूप यह गाथा है। यह गाथा तत्त्व की मूल—जड़ है।

पहले कहा, शब्दार्थ तो हो गया। व्यवहार सब ही असत्यार्थ है। समझ में आया? जैसे अपने स्वरूप की अपेक्षा से दूसरे सब पदार्थ असत्यार्थ है। उसी प्रकार भूतार्थ त्रिकाल सत्य वस्तु, ध्रुव वस्तु, एक समय में सत्य वस्तु, ध्रुव वस्तु परमभाव पारिणामिक ज्ञायकभाव की अपेक्षा से एक समय की उसकी जो पर्यायादि है, वह भी असत्य है। समझ में आया? असत्यार्थ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय असत्यार्थ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दूसरी बात। यहाँ तो त्रिकाल सत्य ध्रुव असल खरुं... खरुं शब्द है हिन्दी में? खरा। खरा कहते हैं न? खरा एक समय में ध्रुव एकरूप सदृश शान्त अकेला ज्ञायकभाव वह सत्य है, वह सत्य है। इस अपेक्षा से आश्रय करनेयोग्य ध्रुव आत्मा है, इस अपेक्षा से उसकी एक समय की दशा भी असत्यार्थ है।

दूसरी भाषा में कहें तो वस्तु एक समय में ध्रुव, वह सत्य है। तो पर्यायादि झूठ है। ऐई! वजुभाई! आहाहा! अपनी चीज़ अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से सत्य है।

अपनी अपेक्षा से पूरा जगत असत्य है। समझ में आया? ऐसे पर और स्व के बीच का भेद (हुआ)। अब पर्याय और द्रव्य के भेद में एक समय का ध्रुवस्वरूप, सत्यस्वरूप, परमार्थस्वरूप, असलस्वरूप, वही सत्य है और एक समय की पर्याय मलिन या अमलिन... समझ में आया? वह त्रिकाल सत् की अपेक्षा से असत्य है, यह सत्य है तो वह झूठ है; यह यथार्थ है तो वह मायाजाल है। ले! मायाजाल आया था। भाई! परमात्मप्रकाश में एक शब्द आया था। मायाजाल। वह अन्य का शब्द छोड़कर वे मायाजाल कहते हैं न? परन्तु ऐसा नहीं। त्रिकाल की अपेक्षा से एक समय की पर्याय मायाजाल अर्थात् असत्य है। इस अपेक्षा से। वे लोग तो सर्वथा मायाजाल कहकर पर्याय है ही नहीं, (ऐसा कहते हैं)। यह भावार्थ में आयेगा। (परन्तु) ऐसा नहीं है। समझ में आया? भगवान आत्मा का वास्तविक स्वरूप, असली स्वरूप, मूल स्वरूप, मूलभूत स्वरूप... यह शब्द आता है न? द्रव्यसंग्रह में आता है। वहाँ छापने में भूल हुई है। थलभूत ले लिया है। मूलभूत संस्कृत शब्द है। पीछे नहीं? जहाँ पुरुष का स्वरूप वर्णन किया है वहाँ। पुरुष का स्वरूप वर्णन किया है वहाँ। बन्धन मुक्त। एक पुरुष है। वर्तमान में बन्धन एक समय की एक अवस्था दिखती है। बन्धन छूटकर मुक्त हुआ तो एक समय में। वह कहीं वास्तविक पुरुष का स्वरूप नहीं। पूरे हाथ, पैर आदि अखण्ड स्वरूप है, वह पुरुष का स्वरूप है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा में शरीर, संयोग, कर्म तो है ही नहीं, उनकी तो बात यहाँ है ही नहीं। परन्तु अपनी वर्तमान दशा में परिणमनरूप मलिन-अमलिन जो पर्याय है, क्योंकि कितनी ही मलिन पर्याय है और अस्तित्व, वस्तुत्व आदि गुणों की निर्मल पर्यायें हैं... समझ में आया? वह त्रिकाल सत्य की अपेक्षा से एक समय की अवस्था को झूठ कहा है, असत्य कहा है, असत्य कहा है। क्योंकि वह आश्रय करनेयोग्य नहीं, इसलिए इस अपेक्षा से त्रिकाल ज्ञायक एक स्वरूप भगवान, जो सम्यग्दर्शन का विषय है, जो परमभाव परमभाव... यहाँ ज्ञान का परमभाव नहीं लेना, परमभाव अनादि-अनन्त एकरूप भाव की दृष्टि से भगवान आत्मा एकरूप है, वही सत्य है और पर्याय में अनेकता है, वह सत्य की अपेक्षा से असत्य है। है की अपेक्षा से वह नहीं है। उसमें

नहीं है तो इस अपेक्षा से वह नहीं है। नरसीभाई! यह तुमने वहाँ वाँचा है या नहीं?

इसलिए भगवान आत्मा एक समय में, उसमें क्षायिक पर्याय भी नहीं। समझ में आया? चार भाव जो है, उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिकभाव, वह चार एक समय की पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? स्वरूप द्रव्य ध्रुव एकरूप, एकरूप चिदानन्द भगवान आत्मा जो आश्रय करनेयोग्य है, जो सत्य है, त्रिकाल परमसत्य अनादि-अनन्त ध्रुव शाश्वत की अपेक्षा से वह वस्तु सत्य है, विद्यमान है, सदा स्वरूप है, सत्य ही वह है और एक समय की पर्याय अविद्यमान है, असत्य है, अभूतार्थ है, झूठी है, मायाजाल है। गजब बात, भाई! समझ में आया? ताराचन्दजी! यह गाथा तो (अलौकिक है)। कितने ही अज्ञानी को तो ऐसा लगे... यह भावार्थ में आयेगा, कि पर्याय है ही नहीं? है नहीं कौन कहता है? वह स्वरूप में नहीं। वहाँ नहीं तो यहाँ है, तो वहाँ नहीं की अपेक्षा से है नहीं, ऐसा कहा है। समझ में आया?

कहते हैं, व्यवहार सब असत्य, झूठा है। आहाहा! किसी को ऐसा लगे, कितने ही कहते हैं, वे कैसे? नाथूलाल प्रेमी। मुम्बई में थे न? उन्होंने तो ऐसा कहा कि यह कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार को वेदान्त की ओर ढालकर लिखा है। ऐसा लिखा है। वेदान्त के ढाला में ढाला है, ऐसा लिखा था एक बार। भगवान! तुझे खबर नहीं। वेदान्त के ढाला में नहीं ढाला है। समझ में आया? ऐसा लिखा था। उसकी कीमत क्या है, रहस्य समझे नहीं और अपनी दृष्टि से (अर्थ करे कि) वेदान्त के ढाला में ढाला है। अरे! वेदान्त कहाँ, आत्मा एक मानता है, वह सब आयेगा, सर्व क्षेत्र से एक ही मानता है, गुण से अनन्त गुण हैं, उसे नहीं मानते, पर्याय नहीं मानते। समझ में आया? अशुद्धता नहीं मानते। वेदान्त के ढाला में ढाला है, वह है ही कहाँ?

यहाँ तो भगवान एकस्वरूप प्रभु परमात्मा... परमात्मा... परमात्मा। परमात्मा अर्थात्? अर्थात् परम आत्मा—परमस्वरूप, परमस्वरूप। परमभाव परमभाव त्रिकाल परमभाव, इस अपेक्षा से चार भाव भी अपरमभाव है, भाई! समझ में आया? यह तो नियमसार में कहा। यह तो वस्तु की स्थिति कहते हैं। एक भाव, परमभाव, परमभाव की अपेक्षा से क्षायिकभाव भी सद्भूतव्यवहारनय का विषय है तो वह परमभाव की

अपेक्षा से, भले केवलज्ञान सादि-अनन्त हो, परन्तु है अपरमभाव। समझ में आया? चन्दुभाई! लालचन्द आ गये। आहाहा!

कहते हैं, वह **एक ही भूतार्थ होने से...** शुद्धनय का विषय अथवा शुद्धनय एकरूप जिसमें पर्याय का भी अभाव है। द्रव्य में पर्याय का अभाव और पर्याय में द्रव्य का अभाव। ऐसा आत्मा सत्यरूप एक ही है। उसका आश्रय करने से ही सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? तो सम्यग्दर्शन का विषय क्या है और सम्यग्दर्शन तो पर्याय है, वह त्रिकाल की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन भी असत्य है। अरे... अरे! कठिन बात, भाई! समझ में आया? अमरचन्दजी! जैनदर्शन और उसका समयसार मक्खन निकालकर रखा है। चौदह ब्रह्माण्ड और चौदह पूर्व का सार। एक गाथा '**ववहारोऽभूदत्थो**' ओहोहो! '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**'। भगवान एक समय में ध्रुव, जिसमें पर्याय का लगाव नहीं। एक समय की पर्याय का सम्बन्ध नहीं। समझ में आया? ऐसा भगवान, उसकी महिमा इसे कभी आयी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा सत्य, सत्य, सत्य, सत्, सत् सत् महा महाप्रभु सत्, एक स्वरूप सत्, वही सत्य है। इस अपेक्षा से पर्याय को असत्य कहा गया है। झूठी कहा जाता है। है नहीं, ऐसा कहा गया है, लो! है? आहाहा! अब दृष्टान्त देकर सिद्ध करते हैं। यह तो पहले गाथा का अर्थ कल किया था, ऐसा थोड़ा विशेष किया। समझ में आया?

कहते हैं कि अज्ञानी संसार का मूर्ख प्राणी, जैसे जल में कीचड़ मिश्रित हो, मैलरूप से पानी को अनुभव करता है, वह लौकिक मूर्ख है। समझ में आया? परन्तु लौकिक में लौकिक का होशियार मनुष्य... होशियार कहते हैं न? लौकिक सयाना, वह कतकफल डालकर—निर्मली औषधि डालकर मैल और निर्मल (जल) दोनों को भिन्न करके निर्मल पानी पीता है, निर्मल पानी पीता है। अपने पुरुषार्थ से निर्मल पानी पीता है। एकबार तो कोई ऐसा अर्थ भी किया था, अपना पुरुषार्थ दिखाये तब न! ऐसा भाई! अर्थ किया था। पानी निर्मल हो न? पुरुषाकार शब्द पड़ा है न? एक बार एक ऐसा कोई अर्थ लाया था। खबर है? इसे खबर है। ऐसा इसमें नहीं। यहाँ तो पुरुषार्थ द्वारा निर्मल किया, इतनी बात है। एक व्यक्ति कहे, देखो! इसमें आया या नहीं? ऊपर आया न?

'अपने हाथ से डाले हुए... अपने पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत किया गये...' पुरुषाकार आया न मूल हिन्दी में, इसलिए फिर उसने ऐसा लिया। जल में मैल हो, उसे निकाल डाला। तो अपना (स्वरूप) उसमें देखे। पुरुषाकार अन्दर देखे। यहाँ तो अनेक लोग आते हैं न! वास्तव में ऐसा नहीं। पुरुषाकार शब्द हिन्दी में पड़ा है। यहाँ तो पुरुषार्थ द्वारा, अपने पुरुषार्थ द्वारा जल और मैल के बीच निर्मल औषधि डालकर निर्मल जल पीते हैं।

इसी प्रकार प्रबल कर्मों के मिलने से... अब आया, देखो! प्रबल कर्म, हों! भले चाहे तो प्रबल हो, उसमें क्या हुआ? बहुत कर्म, विकारी पर्याय का बहुत जोर।

मुमुक्षु : .... हिलावे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन हिलावे? धूल में कोई हिलाता नहीं। यह तो प्रबल कर्म के लक्ष्य में अपने पुरुषार्थ की उल्टी गति से विकार का बहुत जोर है। समझ में आया? कर्म तो कर्म में रहे, जड़ में रहे, उन्हें तो आत्मा छूता भी नहीं। परन्तु कर्म का बहुत तीव्र उदय आता है, उसमें अपने पुरुषार्थ की गति जुड़ती है।

प्रबल कर्मों के मिलने से जिसका सहज एक ज्ञायकभाव... भगवानस्वरूप एक चैतन्य, जो भूतार्थ कहा, एकरूप भाव। देखो! एक लिया, उसके सामने अनेक लेंगे। जिसका सहज एकरूप भगवान ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया। अज्ञानी को राग की मलिनता की एकता के अनुभव के कारण से वह ज्ञायक एकरूप तिरोभाव दृष्टि में, ज्ञान में आड़ में, राग की एकता की आड़ में... आड़ कहते हैं? समझ में आया? ज्ञायकभाव दिखता नहीं। क्या भाषा कही? ओट। ओट... ओट में। राग और विकल्प की मलिनता का अंश तीव्र, उसकी आड़ में, उसकी एकता में भगवान आत्मा एकरूप ज्ञायकभाव है, वह तिरोभूत हो गया। तिरोभूत अर्थात् अपनी पर्याय में राग की मलिनता का अनुभव करने से ज्ञायकभाव दृष्टि में आया नहीं। नहीं आया, वह तिरोभूत हो गया—ऐसा कहने में आया है। आहाहा! आया?

ऐसे आत्मा का... ऐसे आत्मा का **अनुभव करनेवाले पुरुष...** कैसे हैं? ज्ञायकभाव ढँक गया और रागभाव की अनेकता, कषाय की अनेकता **आत्मा और कर्म का विवेक (भेद) न करनेवाले,...** आत्मा और विकार तथा कर्म के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ भाव,

उसे भिन्न नहीं करनेवाले **व्यवहार से विमोहित...** वर्तमान दशा में ही विशेष मोहित हो गया है। वह राग में, कषाय में, वर्तमान मलिन पर्याय में ही जिसका चित्त मिथ्यात्व से विमोहित हो गया है। समझ में आया? **विमोहित हृदयवाले...** भगवान एकरूप चैतन्य को नहीं देखते। विकार के अस्तित्व की ओर उनकी दृष्टि है। वह कर्म के ऊपर लक्ष्य है तो कर्म के साथ एक हुआ, ऐसा कहने में आया है। कर्म के साथ तो कभी एक होता ही नहीं। परन्तु कर्म में लक्ष्य करके, अपने स्वभाव को प्राप्त नहीं करके, विकार को वर्तमान में निमित्त के आधीन होकर विकार को प्राप्त होता है, वह विकार को आत्मा अनुभव करता है। वह मेरा स्वरूप है, ऐसा अज्ञानी विकार को अनुभव करता है, वह मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यादृष्टि विकार का ही अनुभव करता है। यहाँ अभी आयेगा।

जिसमें... यह शब्द पड़ा है। **भावों की विश्वरूपता (अनेकरूपता) प्रगट है...** ऐसा। ज्ञायकभाव अन्तर एकरूप है। उसरूप की दृष्टि नहीं की तो पुण्य-पाप के शुभ-अशुभभाव की अनेकता। यहाँ तो अन्त में ऐसी बात है, बहुत अन्दर विचार करने जाते हैं तो उसे शुभ विकल्प ही है। शुभराग की अनेकता है। एक-एक करके शुभराग की अनेकता है, मलिनता की अनेकता है। जिसमें भावों की अनेकता। विश्व शब्द से अनेकता। उसे प्रगट है। ज्ञायकभाव स्वभाव की दृष्टि नहीं, ज्ञायक की दृष्टि नहीं तो एकभाव प्रगट नहीं। तो विकार की दृष्टि है तो अनेक भाव उसमें प्रगट है। पर्याय में विकारी अनेक भाव प्रगट है। यह तो मूल गाथा है। जरा सूक्ष्म पड़े, परन्तु शान्ति से समझे तो समझ में आये ऐसी है। न समझ में आये ऐसी नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **जिसमें...** जिसमें कहने से अनुभव **भावों की विश्वरूपता...** विकल्प... विकल्प... विकल्प मलिन पर्याय, इतनी मलिनता की अनेकता **प्रगट है...** वह तो प्रगट है। ज्ञायकभाव प्रगट नहीं (अर्थात्) दृष्टि वहाँ रही। समझ में आया? एकरूप भगवान ज्ञायकस्वरूप सत्य जो है, सत्य जो है, सत्य है, वह दृष्टि में नहीं तो एकरूप प्रगट नहीं। असत्य जो है, जो वस्तु में नहीं है, ऐसे विकल्प की जाल पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत-भक्ति, काम-क्रोध इत्यादि विकल्प। उस विकल्प में एकता करके अपने को ऐसा अनुभव करता है। वजन यहाँ है। **भावों की विश्वरूपता...** वहाँ वजन है। भावों की

विश्वरूपता। भाव शब्द से यहाँ विकार है, हों! यहाँ गुण नहीं, द्रव्य नहीं। वर्तमान विकारी भाव जो है, शुभ-अशुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोधादि भाव, उन भावों की अनेकता है, पर्याय में प्रगट है। तो प्रगट हुआ, वही प्रगट हुआ, यह तो प्रगट नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! पोपटभाई के पुत्र को कहता हूँ। वहाँ टाईल्स फिराने जैसी बात नहीं यह। समझ में आया? वाडीलालभाई! पैसा पैदा हो जाये तो होशियार कहलाये। लो! दस लाख, पन्द्रह लाख इकट्ठे हों तो होशियार है। धूल में भी नहीं होशियार। ऐ... छोटाभाई! आहाहा! कहते हैं, प्रभु!....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मर जाता है ममता के लिये। ममता के लिये मर जाता है। धूल में क्या है? धूल तो उसे छूती नहीं, स्पर्शती नहीं, ममता स्पर्शती है। आहाहा! यही कहते हैं।

भगवान आत्मा समता का पिण्ड प्रभु, दूसरी भाषा में कहें तो वीतरागस्वरूप भगवान ध्रुव। आत्मा वीतरागस्वरूप ध्रुव है। उसमें राग की और वीतराग की पर्याय का अभाव है। ध्रुव वीतरागस्वरूप, जो एकरूप, उसकी दृष्टि नहीं करके, पर के ऊपर लक्ष्य करके कर्म के निमित्त में प्रबलरूप से जुड़ान होता है, विकार की अनेकता उत्पन्न होती है। ऐसे आत्मा को विकाररूप अनेकरूप अनुभव करता है। एक को अनेकरूप अनुभववाले, वे ही मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! समझ में आया? भारी सूक्ष्म बात, भाई! कहाँ गये तुम्हारे आये या नहीं? ... नहीं आये? वहाँ कैसे बैठे हो? नजदीक आओ। दूर क्यों बैठते हो? देरी से आवे तो अन्त में बैठ जाये। बेड़ी लगी। परन्तु इसमें बेड़ी लगी? समझ में आया? यहाँ आना। यहाँ ताराचन्दजी की पीठ पीछे। क्या कहा, समझ में आया? यह तो बहुत ध्यान रखे तो समझ में आये। वरना यह कहीं वार्ता-कथा नहीं। वार्ता तो है, परन्तु आत्मा की है। आहाहा!

जिसमें भावों की विश्वरूपता (अनेकरूपता) प्रगट है, ऐसा अनुभव करते हैं;... देखो! भगवान आत्मा एकरूप ज्ञायकभाव शुद्ध ध्रुवभाव, सत्‌रूप भाव, परमार्थरूप भाव की ओर दृष्टि है नहीं, सत्य का स्वीकार नहीं तो उसकी दृष्टि वर्तमान में कर्म के

निमित्त की ओर के अस्तित्व में रागादि के मलिन परिणाम शुभाशुभ परिणाम उत्पन्न होते हैं, वे अनेक हैं। अनेक उत्पन्न होते हैं, उन अनेक को अनुभव करना, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? डालचन्दजी! यह गाथा तो बराबर आयी है तुम्हारे। बहुत आये हैं तो उनके प्रमाण में आता है न! ओहोहो!

भगवान आत्मा सत्य प्रभु, उसका आश्रय लिया नहीं। परमानन्दस्वरूप भगवान आत्मा का आश्रय लिया नहीं तो निमित्त का आश्रय लिया, ऐसा कहते हैं। उसे खबर नहीं कि क्या (होता है)? यहाँ आश्रय नहीं लिया, अनादि से निमित्त की ओर का लक्ष्य-आश्रय लिया। उस आश्रय से अपनी पर्याय में अनेकरूप मलिनता उत्पन्न होती है, ऐसा आत्मा है, ऐसा मिथ्यादृष्टि अनुभव करता है। समझ में आया? आहाहा! थोड़ा अभ्यास करना पड़ेगा। वहाँ ऐसा नहीं चलेगा। यह पोपाबाई का राज नहीं। अवश्य करेंगे? ठीक। आहाहा!

क्या परन्तु वस्तु! आचार्य की प्रस्तुत करने की पद्धति, सत्य को प्रस्तुत करने की पद्धति। रीति कहते हैं न? पद्धति। व्यवहार अभूतार्थ है। भगवान! निमित्त के आश्रय से उत्पन्न होनेवाले विकारीभाव अभूतार्थ है। आहाहा! सत् स्वरूप में नहीं, ऐसे दया, दान, व्रत, भक्ति आदि (भाव)। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, जैन दिगम्बर साधु होकर, मिथ्यादृष्टि ऐसे अट्ठाईस मूलगुण पालन किये तो उसमें राग की अनेकता परलक्ष्य से उत्पन्न हुई, उसे ही अज्ञानी अनुभव करता है। आहाहा! समझ में आया? भगवान चैतन्यप्रभु ध्रुव एक समय में परमात्मा, उसका लक्ष्य, आश्रय किया नहीं। उसका आश्रय किया नहीं। उसका अवलम्बन लिया नहीं। एक समय की दशा में कर्म के निमित्त के आश्रय—अवलम्बन से अपनी पर्याय में विकार की अनेकता—भिन्नभिन्नता (प्रगट की), उसे आत्मा जानकर अज्ञानी अनुभव करता है। समझ में आया? वे **व्यवहार से विमोहित हृदयवाले...**

किन्तु... अब सुलटा लेते हैं। पहले उल्टा लिया। अनादि का उल्टा है न। अनादि का उल्टा है तो पहली यह बात बतायी। **किन्तु भूतार्थदर्शी (शुद्धनय को देखनेवाले)...** अर्थात् त्रिकाल ध्रुव सत् स्वरूप परमात्मा की दृष्टि में भूतार्थ आत्मा को लेने से वह

आत्मा भूतार्थ, वही शुद्धनय है। वह भूतार्थदर्शी **अपनी बुद्धि से...** देखो! **डाले हुए...** दूसरे कर्म मन्द पड़े, ऐसा नहीं, अपने पुरुषार्थ से, निज ज्ञान की तीव्रता से। समझ में आया? **शुद्धनय के अनुसार बोध होनेमात्र से...** भगवान ज्ञायकस्वरूप के आश्रय से जो ज्ञान हुआ, समझ में आया? **अनुसार बोध होनेमात्र से उत्पन्न...** ज्ञान उत्पन्न हुआ। स्वभाव के आश्रय से ज्ञान उत्पन्न हुआ।

आत्मकर्म के विवेकता से,... मलिन पर्याय निर्मलानन्द भगवान में है नहीं। आत्मा शुद्ध ध्रुव परम परम परमभाव ऐसा स्वरूप का आश्रय लेने से राग से भिन्न का बोध हुआ। **अपने पुरुषार्थ द्वारा...** देखो! अपने पुरुषार्थ द्वारा। स्वभाव-सन्मुख पुरुषार्थ किया। भूतार्थ एक समय में पूरा आत्मा एकरूप परमात्मा है, उस ओर दृष्टि लगायी तो अपने पुरुषार्थ द्वारा किया। समझ में आया? उसमें पाँचों ही समवाय आ जाते हैं। पुरुषार्थ की प्रधानता में चारों ही बोल आ जाते हैं। टोडरमलजी ने पुरुषार्थ प्रधान पाँच समवाय, ऐसा लिखा है न? मोक्षमार्ग के पुरुषार्थ की प्रधानता से। पुरुषार्थ द्वारा। समझ में आया?

अपना शुद्ध चैतन्यप्रभु एक समय का सत् परमेश्वर वह सत् परमेश्वर अपना, उसकी ओर दृष्टि लगाकर राग और पर की ओर का लक्ष्य छोड़कर यहाँ आया तो भेदज्ञान हुआ, ऐसा कहते हैं। **पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत किये गये...** अपने पुरुषार्थ द्वारा प्रगट किया। क्या प्रगट किया? अज्ञान में क्या प्रगट किया? अज्ञान में तो राग-द्वेष, पुण्य-पाप को प्रगट किया और प्रगट करके उनका ही अनुभव किया। वस्तु में नहीं, वस्तु में है नहीं—ऐसे पुण्य-पाप के विकल्प नये उत्पन्न किये। करके उनका अनुभव किया। अनेकपने के विकार को अनुभव करता है। अनादि के मिथ्यादृष्टि का यही लक्षण और स्वरूप है। राजमलजी! पकड़ में आता है या नहीं? थोड़ा बोले, धीरे बोले। समझ में आया? आहाहा!

आविर्भूत किये गये सहज एक ज्ञायकभावत्व के कारण... लो! **आविर्भूत किये गये सहज एक ज्ञायक...** देखो! एक ज्ञायकभाव प्रगट किया। प्रगट का अर्थ दृष्टि में लिया। वह तो वस्तु है। वह कहीं आविर्भाव और तिरोभाव ज्ञायकभाव में होता नहीं।

वह तो ध्रुवरूप सत्य परम परमेश्वर परमात्मस्वरूप है। समझ में आया? परन्तु जिसने पर का, राग का, विकल्प का लक्ष्य छोड़कर शुद्धनय अनुसार स्वभाव के अनुसार भेदज्ञान प्रगट करके अपने पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत किये सहज एक ज्ञायकभाव। **ज्ञायकभावत्वपने के कारण...** सहज एक ज्ञायकभाव है न? ज्ञायक स्वभावत्व— स्वभावपना। ज्ञायकस्वभावपना। आत्मा स्वभाववान है तो यह ज्ञायक स्वभावपना है। ऐसे एक ज्ञायकस्वभाव के कारण **उसे (आत्मा को)...** गजब बात, भाई! एक-एक शब्द में (गम्भीरता भरी है)। यहाँ ज्ञायकस्वभावत्व लिया है न? भाई! पना लिया है— भाव लिया है, भाव। द्रव्य है, वह भाववान है। ज्ञायकस्वभावपना उसका भाव है। त्रिकाली एकरूप, त्रिकाली एकरूप। आहाहा! समझ में आया? उसे अर्थात् आत्मा को **जिसमें एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है...** उसमें कहा था, भावों का विश्वरूपत्व प्रगट है, ऐसा अनुभव करता था।

दिशा पलटने से दशा पलट गयी। क्या कहा? राग और द्वेष की दिशा पर सन्मुख उसकी दृष्टि थी तो उसका अनुभव करता था तो दशा मिथ्यात्व की थी। समझ में आया? यहाँ तक उसकी दृष्टि में भगवान आत्मा आया नहीं तो उसकी दिशा पर के ऊपर है। उसकी दिशा ही पर के ऊपर है। कर्म के निमित्त के लक्ष्य में जोर गया है। उसमें दिशा अर्थात् पर आश्रय का भाव दिशा (थी) तो उसकी दशा में विकार की अनेकता अनुभव करता था, वह मिथ्यादृष्टि की दशा है। आहाहा! पोपटभाई! हाँ, आता है। परन्तु दिशा पलटाने से अर्थात् राग और द्वेष, वर्तमान पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प में जो दिशा परसन्मुख की है, वह दिशा स्वसन्मुख हुई। वे रागादि नहीं; मैं स्वरूप शुद्ध चिदानन्द हूँ। उसके अनुसार राग से भिन्न पड़कर पुरुषार्थ द्वारा ज्ञायकभाव प्रगट किया। अर्थात् दिशा अर्थात् द्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाने से उसकी दशा में ज्ञायकभाव एक समय में एकरूप ज्ञायकभाव प्रगट हुआ, भान में आया तो ज्ञायकभाव एक समय में प्रगट हुआ, ऐसे एकपने को सम्यग्दृष्टि अनुभव करता है।

फिर से, फिर से लेते हैं। ओहोहो! यह गाथा पूरे जैनदर्शन का प्राण है। कैलाशचन्द्रजी ने भी लिखा था। कोई गड़बड़ करते थे न सामने, उसमें लिखा है कि

यह तो प्राण है। तुम व्यवहार व्यवहार सत्य कहोगे तो यह तो व्यवहार को अभूतार्थ कहते हैं। व्यवहार पहले और व्यवहार ऐसा और व्यवहार वैसा और व्यवहार हो तो यह हो। व्यवहार तो असत्यार्थ है। क्या असत्यार्थ से सत्यार्थ ख्याल में आयेगा? समझ में आया? और व्यवहार पहले और निश्चय बाद में, यह इसमें कहाँ रहता है? असत्यार्थ पहले और पश्चात् सत्यार्थ, इसका अर्थ क्या? समझ में आया? सत्यार्थ भगवान आत्मा रागादि का व्यवहार जो विकल्प आदि कषाय मन्द है, उसे कोई व्यवहार कहे तो सुन तो सही। कषाय की मन्दता की अनेकता के ऊपर लक्ष्य करना और उसे अनुभव करना, वह तो मिथ्यादृष्टि की दशा और दिशा है। समझ में आया? समझ में आया, यह विश्राम है। (विश्राम का वाक्य है)।

कहते हैं, आहाहा! यह टीका और यह कुन्दकुन्दाचार्य की महा जैनशासन की प्राण गाथा है। सब झगड़े इसमें से निकल जाते हैं। पहले व्यवहार और पहले निमित्त हो तो होता है, निमित्त आवे तो नैमित्तिक होता है और व्यवहार हो तो निश्चय (होता है)। ...यह निमित्त है वास्तव में अन्दर। व्यवहार राग की मन्दता हो तो सम्यग्दर्शन होता है, यह सब बात उड़ जाती है। क्योंकि राग की मन्दता का लक्ष्य पर के ऊपर है और पर के ऊपर की अनेकता का अनुभव करना, वह तो मिथ्यादृष्टि की दिशा पर के ऊपर की है तो दशा मिथ्यात्व की है। जब पर के ऊपर से लक्ष्य हटाकर, रागादि अनेक प्रकार के थे वहाँ से लक्ष्य हटाकर द्रव्य के ऊपर लक्ष्य गया। परम सत्य भगवान आत्मा की दृष्टि हुई तो राग से पृथक् अपना बोध हुआ। राग जो मन्द कषाय है, उससे पृथक् निज बोध निज आश्रय से हुआ। निज आश्रय से बोध हुआ, वह अपने पुरुषार्थ से हुआ है। राग की मन्दता है तो हुआ है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

पुरुषार्थ (कैसा)? राग की एकता का अनुभव करता था, वहाँ से गुलाँट खाकर इस ओर दृष्टि की। समझ में आया? उसमें व्यवहार पहले और निश्चय बाद में आता ही कहाँ है? बहुत गड़बड़ी, बहुत गड़बड़ी। वे लोग—श्वेताम्बर कहते हैं, पहले व्यवहार, बाद में निश्चय। तुम दिगम्बर कहते हो कि 'निश्चयनय पहले कहे, बाद में ले व्यवहार'। निश्चय पहले होता है और बाद में व्यवहार कहते हो, ऐसा नहीं, ऐसा वे सामने कहते

हैं। तो यह तुम लोग भी ऐसा ही कहते हो। यह राग की मन्दता पहले करो, करते-करते सम्यग्दर्शन होगा—निश्चय होगा। पर की दिशा की ओर का राग का अनुभव करो, स्व की दिशा की ओर का सम्यग्दर्शन होगा, (यह तो ऐसी बात हुई)। ऐई... माणेकलालजी! यह गाथा क्या पुकारती है? देखो! समझ में आया? यह तो जैन सनातन दर्शन का प्राण और सत्त्व है। दिगम्बर दर्शन कोई वाड़ा नहीं है, सम्प्रदाय नहीं है। दिगम्बर दर्शन, वह जैनदर्शन है। जैनदर्शन यहाँ से शुरु होता है। समझ में आया? ऐसा नहीं कि हमारी मान्यता ऐसी है और तुम्हारी मान्यता ऐसी है। ऐसा नहीं। ऐसी चीज़ है।

एक समय में निज परमात्मा—निज स्वरूप वही सत्य है और विकार की पर्याय का अनुभव करना, वह असत्य है। अज्ञानी पर के लक्ष्य से अकेले पुण्य-पाप का, दया, दान, व्रत का अनुभव करता है। पर के लक्ष्य से, पर की दिशा की ओर अपनी दशा में अकेला विकार का अनुभव है, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? उस ओर का बहिर्मुख जो लक्ष्य था... वस्तु तो अन्तर्मुख है। पर्याय एक समय की, उसका लक्ष्य बहिर्मुख था। बहिर्मुख दिशा की ओर था। समझ में आया? उस दिशा में बहिर्मुख रहकर स्वरूप में नहीं ऐसे बहिर्मुख विकल्प विकार, मन्द कषाय, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम उत्पन्न होते हैं और उसका अनुभव करता है कि यह मेरी चीज़ है। क्योंकि आत्मा राग से भिन्न अन्दर में अन्तर्मुख पूरा आत्मा पड़ा है, उसकी दिशा अन्तर्मुख में जाये तो समझ में आये। बहिर्मुख से वह समझ में नहीं आता। समझ में आया? ओहो! गजब भाई!

व्यवहार मोक्षमार्ग है, दो मोक्षमार्ग है, ऐसा बड़ा लेख कल आया है। अरे! भगवान! तूने वीतरागमार्ग सुना नहीं। आहाहा! जैन गजट में बहुत आया है। सोनगढ़वाले दो मोक्षमार्ग नहीं मानते। एक ऐसा और एक ऐसा, दो मार्ग है? बहिर्मुख लक्ष्य, वह भी मोक्षमार्ग और अन्तर्मुख लक्ष्यवाली पर्याय भी मोक्षमार्ग, इसका अर्थ क्या? समझ में आया? ताराचन्दजी! न्याय से—लॉजिक से तो कहा जाता है। उसमें न्याय से सब बात भरी है। भगवान आत्मा वस्तु तो अन्तर्मुख चिदानन्द परमात्मा है और बहिर्मुख के लक्ष्य में तो अकेला राग उत्पन्न होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पश्चिम में चलता है और पूर्व में....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पश्चिम में चलते हुए पूर्व में पहुँचे ऐसा है। ऐसा यह कहते हैं और लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी। लहसुन होता है न? लहसुन। लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी? अरे! दो जाति भिन्न है। समझ में आया? ऐसा बहिर् लक्ष्य में बहिर् लक्ष्य से जो कषाय के मन्द परिणाम निमित्त के आधीन होकर हुए, पर के लक्ष्य के वश होकर (हुए), वह तो दिशा पर की बहिर्मुख दृष्टि है। उसमें जो राग की मन्दता का अनुभव करता है, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? वकील! यह दूसरे प्रकार की वकालत है। आहाहा!

भाई! तूने परमात्मा के मार्ग, परमात्मा का पंथ क्या है, वह सुना नहीं। परमात्मा की भेंट किस प्रकार से होती है, यह बात दूसरे प्रकार से रही है। कषाय की मन्दता का राग परसन्मुख का लक्ष्य है, वह बन्ध का भाव है। तो पर के लक्ष्य से और बन्ध के भाव से अन्तर्मुख होता है, ऐसा है नहीं। यहाँ तो कहा कि दो को भिन्न करके कहा है। ऐसा कहा है, देखो! **शुद्धनय के अनुसार बोध होनेमात्र से...** ऐसा कहा है। स्वभाव के अनुसार लक्ष्य करके राग से भिन्न पड़कर बोध उत्पन्न हुआ है। समझ में आया? **आत्मकर्म के विवेकता से, अपने पुरुषार्थ द्वारा...** अन्तर्मुख, अन्तर्मुख पूरा परमात्मस्वरूप अन्तर में है, उस ओर के आश्रय से, उस ओर के लक्ष्य से, अन्तर्मुख दृष्टि करने से **पुरुषार्थ द्वारा...** अपने पुरुषार्थ-वीर्य द्वारा निज त्रिकाल स्वभाव को स्पर्श किया। निज वर्तमान पुरुषार्थ द्वारा त्रिकाल स्वभाव को स्पर्श किया। आहाहा! समझ में आया?

आविर्भूत किये गये... प्रगट किया। क्या प्रगट किया? **सहज एक ज्ञायकभावत्व के कारण...** मैंने ज्ञायकस्वभाव प्रगट किया। ज्ञायकस्वभाव प्रगट किया। इसका अर्थ क्या? ज्ञायकस्वभाव प्रगट होता है? उसे विषय बनाकर—ध्येय बनाकर लीनता की तो लीनता में यह ज्ञायकभाव ऐसा प्रगट हुआ। ज्ञायकभाव प्रगट हुआ, वह तो पर्याय है। निर्मल सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट हुई तो उसमें भान हुआ कि यह ज्ञायकभाव है, तो वह ज्ञायकभाव प्रगट हुआ, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! अब तुम्हारे बारह दिन तो हो गये यहाँ। आठ दिन रहे। बारह हुए न?

बारह। बारहवाँ दिन। थोड़ा-थोड़ा कुछ ले जाना पड़ेगा या नहीं? माणेकलालभाई! पूरा तो इतना सब (ले जा नहीं सकते)। अभी तो बहुत गड़बड़ चलती है। बहुत चलती है। सोनगढ़ के ऊपर तो मानो झपट मारते हों, नाम आवे वहाँ (भड़के)। अरे! भगवान! मानो सोनगढ़ ने क्या कर डाला हो। जैनशासन का मानो लोप कर डाला। आहाहा! अरे! भगवान! प्रभु! तूने सुना नहीं, हों! भगवान! तूने तेरा रास्ता सुना नहीं, प्रभु! शान्त हो, शान्त हो, भाई! ऐसे आक्षेप करने से तुझे बहुत नुकसान होगा। उस नुकसानी का क्या फल है, यह तुझे अभी ख्याल में नहीं आयेगा। समझ में आया?

भगवान आत्मा त्रिलोकनाथ का कहा हुआ कुन्दकुन्दाचार्य महाराज (कहते हैं), **'भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ'।** भगवान ध्रुव स्वरूप एक समय में परमानन्दमूर्ति एक स्वरूप, वही शुद्धनय। उसका लक्ष्य करने से, उसका आश्रय करने से। आश्रय (करनेवाली) तो पर्याय है। पर्याय ने आश्रय किया तो पर्याय में ज्ञायकभाव का भान हुआ, आनन्द का अनुभव हुआ, शान्ति का अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट हुई, स्वरूपाचरण की दशा प्रगट हुई, अनन्त गुण के अंश की (दशा प्रगट हुई)। आत्मा का अनुभव करने से, ज्ञायक की ओर दृष्टि करने से, जितने अनन्त गुण हैं, उतने गुण की एक समय में द्रव्य में अनन्त गुण अभेद होने से एक समय में अनन्त गुण की पर्याय शुद्धता का अंश सबका प्रगट हुआ। समझ में आया? सबका अनुभव प्रगट हुआ, उसके द्वारा यह ज्ञायक प्रगट हुआ, ऐसा कहने में आता है। कहाँ गये देवीलालजी! कहाँ बैठे हैं? यह सब विद्वान लोग कहलाते हैं। व्याख्यानी हैं न, व्याख्यानी हैं।

सबको बराबर समझना पड़ेगा न? सामने क्या कहते हैं और यह क्या वस्तु है। हल्ला तो बहुत आता है ऊपर से। आहाहा! मक्खनलालजी ने ४१ बोल निकाले हैं। दिल्ली में एक पण्डित है न? मक्खनलालजी। पण्डितजी! एक मक्खनलालजी (नाम के) एक पण्डित हैं न! दिल्लीवाले। वे आये थे। भजन बनाते हैं। वह कैसी कहलाती है बाई? मैना। मैनासुन्दरी ने ऐसा किया और आठ कर्म का नाश हुआ। धूल में भी नहीं होता, सुन न अब। मैनासुन्दरी ने ऐसा किया, भगवान की पूजा की, रोग मिट गया। वह तो असाता का उदय मिट गया तो मिटा है। उसकी पूजा से क्या मिटता है? सुन तो

सही। और उससे आठ कर्म का नाश होगा। भगवान की पूजा करते-करते। धूल में भी नहीं होगा। समझ में आया? पूजा तो शुभभाव है। शुभभाव का लक्ष्य तो पर के ऊपर है। अन्दर में निमित्त के ऊपर लक्ष्य है और बाहर में नोकर्म के ऊपर लक्ष्य है। समझ में आया? अन्तर स्वभाव के ऊपर लक्ष्य है ही कहाँ? निमित्त कर्म के वश होकर उसे शुभभाव अपने में उत्पन्न होता है। और नोकर्म भगवान सामने हैं। उनके आश्रय से क्या सम्यग्दर्शन होता है? समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : महा मिथ्यात्व का पाप, वही संसार है। भगवान की मूर्ति देखने से मिथ्यात्व का नाश होता है। भगवान! ऐसा नहीं है। सुन तो सही। समझ में आया? यह है न? धवल में ऐसा है। जिनबिम्ब के दर्शन करने से मिथ्यात्व के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। निकाचित कर्म ऐसा पाठ है। हाथी को जैसे सिंह थाप मारे, वैसे टुकड़े कर डालते हैं। भाई! जिनबिम्ब से नहीं। जिनबिम्ब आत्मा। वह तो निमित्त का कथन है। जिनबिम्ब के दर्शन करना, वह तो विकल्प है, परदिशा की ओर लक्ष्य है। परदिशा की ओर के लक्ष्य से अन्तर्मुख दृष्टि होती है? अभी अधःकरण, अपूर्वकरण के परिणाम भी पर के लक्ष्य से होते हैं? भले उसे ख्याल न आवे, परन्तु शुद्धात्माभिमुख, शुद्धात्माभिमुख परिणाम हुए बिना एकाग्रता होती नहीं और सम्यग्दर्शन कभी होता नहीं। समझ में आया? निमित्त-अभिमुख होने से मिथ्यात्व का नाश होता है? निमित्त-अभिमुख? भगवान ने तो शास्त्र में कहा, शुद्धात्माभिमुख। भगवान यह शुद्ध जो ध्रुव, यह जो कहा वह। ध्रुव शुद्ध अभिमुख। उसके सन्मुख। समझ में आया? जो यहाँ सन्मुख है, उस सन्मुख का अनुभव मिथ्यात्व है। फिर बारहवीं गाथा में कहेंगे, स्वसन्मुख होकर सम्यग्दर्शन हुआ, फिर रागादि मन्दता का भाव है, वह जाननेयोग्य है। जाना हुआ प्रयोजनवान है। यह स्पष्टीकरण आयेगा। समझ में आया? है तो सही, सम्यग्दृष्टि को भी पूजा, भक्ति का राग है, उसे भी है। परन्तु अज्ञानी अकेले राग की एकता में निमित्त की प्रधानता के वश होकर अकेला राग को अनुभव करता है, वह मिथ्यादृष्टि है। दिशा फेर है और दशा मिथ्यात्व की है। समझ में आया? ओहोहो!

यह बात तो तीनों काल दुर्लभ है और उसमें यह पंचम काल। ओहोहो! हलाहल काल आया। परन्तु उसे अनुभव करने के लिये काल कोई अवरोधक नहीं। समझ में आया? वह स्वतन्त्र भगवान आत्मा है। जब कर्ता होकर अपने पुरुषार्थ से राग को हटाकर, लक्ष्य हटाकर, हों! राग को हटाकर नहीं, लक्ष्य (बदलकर) अन्तर्मुख लक्ष्य हुआ तो शुद्ध अनुसार बोध हुआ। द्रव्यस्वभाव के अनुसार बोध हुआ, राग से भिन्न पड़ गया। अपने पुरुषार्थ द्वारा ज्ञायकभाव को प्रगट किया। **जिसमें एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है...** देखो! उसमें था, अनेक भाव प्रगट है, ऐसा कहा था। जिसमें भावों की अनेकता प्रगट है, विश्वरूप कहा था। यहाँ एकरूपता प्रगट है। भगवान आत्मा शुद्ध ध्रुव में एकत्व होता है तो निर्मल पर्याय का विषय ध्रुव है, तो निर्मल पर्याय एकरूप उत्पन्न हुई है। समझ में आया? श्रद्धा—सम्यग्दर्शन, ज्ञान की पर्याय में चैतन्य आया तो एकरूप का अनुभव हुआ, अनेक विकल्प का अनुभव उसे है नहीं। ओहोहो! समझ में आया?

जिसमें... अर्थात् आत्मा को **जिसमें एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है...** भगवान आत्मा को अकेला ज्ञायकभाव परमभाव ध्रुवभाव शुद्धभाव एकरूप भाव के सन्मुख दृष्टि होकर एक स्वरूप है, ऐसा अनुभव में आया, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! अभी सम्यग्दर्शन की कला किस प्रकार से प्रगट होती है, उस कला की खबर नहीं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन कला किस कला से उत्पन्न होती है, किस प्रकार से उत्पन्न होती है, उस पद्धति की खबर नहीं और कहे कि हमको सम्यग्दर्शन तो है, अब चारित्र करो, व्रत, नियम ले लो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वज्ञ को जानने में आवे। आहाहा! भान नहीं पड़ता, अन्धा है? अनुभव चैतन्यमूर्ति का आनन्दसहित हो और खबर न पड़े, तो क्या अन्धा है आत्मा? समझ में आया? अनादिकाल का दुःख का अनुभव था, गुलांट खाकर, ओहो! यह क्या कहते हैं?

ज्ञायकभावत्व के कारण उसे (आत्मा को) जिसमें एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है... आनन्द की पर्याय का अनुभव हुआ। एक का—ध्रुव का अनुभव नहीं। ध्रुव का

अनुभव है ? परन्तु ध्रुव के ऊपर एकाकार होने से ध्रुव का अनुभव है, ऐसा कहने में आया। अनुभव तो आनन्द का है। द्रव्य का कहाँ अनुभव है ? द्रव्य का अनुभव हो तो एक समय में अनुभव (हो), दूसरे समय में .... अनुभव पर्याय का होता है। समझ में आया ? परन्तु उस विकारी पर्याय का पर में एकत्व का अनुभव था, वह मिथ्यात्व था, संसार था, परलक्ष्यी भाव था, अनेकपने के भाव का वेदन करता था। भगवान आत्मा... उससे (परलक्ष्यी भाव से) हटकर आठ वर्ष की बालिका हो, अरे ! मेंढ़क हो, देडको— मेंढ़क, वह भी पर का लक्ष्य छोड़कर अन्तर शुद्धनय अनुसार (परिणमन करता है)। नय शब्द की खबर नहीं होती। ध्रुव यह है, ऐसे शब्द की खबर नहीं होती। परन्तु यह पर का लक्ष्य छोड़कर अन्तर स्वरूप आनन्दमूर्ति में आया, आनन्द के वेदन में आ गया कि भूतार्थ यह चीज़ आत्मा है। समझ में आया ?

ओहोहो ! कितनी बात की है उसमें ! व्यवहार पहले और निश्चय बाद में, यह भी उड़ जाता है। उड़ जाता है या नहीं इसमें ? निमित्त पहले और बाद में नैमित्तिक, यह भी इसमें उड़ जाता है। सेठी ! पहले भगवान दृष्टि में आया। बस, दृष्टि में आया, यह दृष्टि छूट गयी तो ज्ञायक का अनुभव (हुआ)। उसकी अनन्त आनन्द आदि शक्तियाँ हैं, वे प्रतीति में, ज्ञान में ज्ञेयरूप से आयी तो पर्याय में आनन्द का अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, स्वरूपाचरण हुआ, शान्ति स्थिरता वह स्वरूपाचरण में हुई, स्वच्छता हुई, प्रत्यक्षता हुई। क्योंकि आत्मा में प्रकाश नाम का अनादि गुण है। ४७ गुण में एक प्रकाश नाम का गुण है। समझ में आया ? ४७ शक्तियाँ हैं न ? ४७ शक्ति। अपने बाहर आ गयी है थोड़ी, अभी नयी आनेवाली है बहुत सरस। अभी प्रकाशित होगी, धीरे-धीरे। उसका काल आवे तब प्रकाशित हो न। तैयार होती है। जीवत्वशक्ति, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शित्व, सर्वज्ञत्व, स्वच्छत्व और प्रकाश। यह बारहवीं शक्ति है आत्मा में। जिसका स्वभाव प्रकाशत्व अर्थात् प्रत्यक्ष होना। द्रव्य का ज्ञायकभाव के अनुसार दृष्टि हुई तो अन्तर में प्रकाश नाम का गुण है कि जो गुण द्रव्य में व्याप्त है, गुण में व्याप्त है। अन्तर एकाग्र हुआ तो वह प्रकाशशक्ति पर्याय में व्याप्त हो गयी। पर्याय में व्याप्त हो गयी अर्थात् पर्याय में प्रत्यक्षपना हो गया। समझ में आया ?

ऐसा अनुभव करते हैं। इतना अकेला ज्ञायक ज्ञायक (ऐसा नहीं), परन्तु ज्ञायक

का अनुभव करता है। यह ज्ञायक ज्ञान में प्रत्यक्ष हो गया। आहाहा! समझ में आया? जो राग की आड़ में-एकत्व में आत्मा दिखता नहीं था, वह राग का लक्ष्य छोड़कर पर की दिशा को बदलकर अन्तर दिशा में गया तो पर्याय में पर्याय ने पूरे द्रव्य-गुण को प्रतीति में लिया। पर्याय ने पूरे द्रव्य-गुण को प्रतीति में लिया तो उसमें प्रकाश नाम का गुण भी प्रतीति में आ गया। वह प्रकाश नाम का गुण है, उसका कार्य क्या? कि पर्याय में आत्मा प्रत्यक्ष हो जाना, वह उसका कार्य है। राजमलजी! आहाहा! ऐसा नहीं कि आत्मा अन्दर खबर न पड़े। आत्मा कौन है, उसकी खबर नहीं। अरे! क्या कहते हैं? आत्मा किसे कहते हैं? समझ में आया? आत्मा में तो अनन्त गुण पड़े हैं। अनन्त गुण का एकरूप आत्मा है। सामान्य अनन्त गुण हैं तो उनका एकरूप सामान्य द्रव्य है, वह एकरूप है। एकरूप की जहाँ सन्मुख होकर ज्ञेय बनाकर प्रतीति हुई तो जितने गुण अन्दर हैं, उनकी पर्याय कार्य में आ गयी। पर्यायरूप कार्य में आयी, पर्याय हो गयी। गुण कारणरूप पड़े थे, द्रव्य कारणरूप पड़ा था। यहाँ प्रतीति, अनुभव हुआ तो सब गुण का कार्य (प्रगट हो गया)। प्रकाशगुण का कार्य पर्याय में प्रत्यक्ष होना, वह उसका कार्य है, वह पर्याय में आ गया। समझ में आया? गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : यही धर्म....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्म की पद्धति है। बाबूलालजी! सेठी!

एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है... प्रकाशमान ऊपर से वह आया? नहीं तो प्रकाश जानने में आनेवाला है, परन्तु वह जानने में सभी गुण आ गये। तब उसे आत्मा की सत्यार्थ भूतार्थ दृष्टि हुई, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। इस पद्धति बिना कभी सम्यग्दर्शन होता नहीं। विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण कृष्ण २, शुक्रवार, दिनांक - ०२-०९-१९६६
गाथा - ११, प्रवचन - ३५

(समयसार) शास्त्र, उसमें जीव-अजीव अधिकार। ११वीं गाथा चलती है। शिष्य का प्रश्न था कि व्यवहार जो परमार्थ का कहनेवाला है तो वह व्यवहार क्यों अंगीकार नहीं करना? आत्मा को, अभेद अखण्ड स्वरूप आत्मा है, उसे भेद से दिखानेवाला, भेद से दिखानेवाला व्यवहारनय आत्मा को दिखलाता है अथवा वह परमार्थ का प्रतिपादन करता है तो ऐसे व्यवहार को अंगीकार क्यों नहीं करना? ऐसा प्रश्न है। समझ में आया? उसका यह उत्तर चलता है। देखो! यहाँ तक आया है।

आत्म स्वभाव एकरूप चैतन्य ज्ञायकभाव, जिसमें पर्याय भी नहीं। रागादि तो नहीं, विकल्प निमित्त कर्म तो नहीं परन्तु वर्तमान पर्याय भी उसमें नहीं। ऐसा **एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है, ऐसा अनुभव करते हैं।** धर्मीजीव सम्यग्दृष्टि अपना स्वरूप एकरूप ज्ञायकभाव ध्रुवभाव है, ऐसा दृष्टि में लेकर ज्ञायकभाव का अनुभव करता है। कहो, समझ में आया नहीं? सेठी! नहीं समझ में आया। ऐसा कहते हैं, पहले दृष्टान्त आया न? जल का दृष्टान्त नहीं आया? जल में कादव का मैल है तो लौकिक मूर्ख है, वह मैल को ही पानी जानकर अनुभव करता है। और लौकिक विवेकी है, वह जल में कतकफल—निर्मली औषधि डालकर उसमें निर्मल जल-पानी है, ऐसा अनुभव करता है।

इसी प्रकार अनादिकाल का अज्ञानी भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप एकरूप परमानन्द की मूर्ति है, उसके ऊपर दृष्टि नहीं देकर कर्म की अस्ति-मौजूदगी है, उसके उदय के काल में उस ओर के अस्तित्व में जुड़ने से अनेक प्रकार के पुण्य-पाप, विकारादि होते हैं, तो अनेक प्रकार के विकार को ही अपने जानकर उसे अनुभव करता है। कहो, समझ में आया? यह तो माल की गाथा है। मूल। भगवान आत्मा एक स्वभावी अनन्त गुण का पिण्ड परन्तु एक स्वरूप है। उसे मिथ्यादृष्टि वर्तमान जिसकी राग, विकार पुण्य-पाप आदि विकल्प पर दृष्टि है, पर्यायदृष्टि है, अंश के ऊपर दृष्टि है, वह कर्म के

निमित्त के वश होकर अपने आत्मा को ज्ञायकभाव त्रिकाल है, उसे तिरोभूत करके, ढाँक कर वर्तमान मात्र पुण्य-पाप विकारभाव को अनुभव करता है। उसका नाम मिथ्यादृष्टि और अज्ञान संसार कहते हैं।

मुमुक्षु : प्रबल कर्म है तो क्या करें?

पूज्य गुरुदेवश्री : कल स्पष्टीकरण किया न? प्रबल कर्म उसके घर में रहे। कर्म के निमित्त में प्रबलरूप से जुड़ान हो, जुड़ान तो भी अपने स्वभाव के पुरुषार्थ द्वारा... आया न? अपने पुरुषार्थ द्वारा आत्मा और विकार को पृथक् शुद्धनय अनुसार ज्ञायक चैतन्यस्वरूप अनुसार बोध होनेमात्र से राग से भिन्न करके अपने सहज एक ज्ञायकभाव को धर्मीजीव अनुभव करता है। कहो, सेठी!

अब यहाँ तो मुझे इतना लेना है, एक ज्ञायकभाव आविर्भाव (किया)। एक ज्ञायकभाव पुरुषार्थ द्वारा आर्विभाव किया। सहज एक ज्ञायक स्वभाव। इसका अर्थ क्या? अपना ज्ञायक चैतन्यद्रव्य महाप्रभु, जो विकार की आड़ में, विकार वर्तमान विकृतदशा की आड़ में अपने आत्मा को तिरोभूत—ढाँक दिया था। वह अपने पुरुषार्थ से विकार और स्वभाव अनुसार ज्ञान करके विकार से पृथक् होकर, अपना ज्ञायकभाव आविर्भाव किया। ढँका हुआ था, वह प्रगट किया। प्रगट किया, इसका अर्थ वह तो है, वही है। समझ में आया? परन्तु पर्याय में उसका आश्रय करके ज्ञायकभाव प्रगट किया, इसका अर्थ कि जो दृष्टि में नहीं था, वह दृष्टि में लिया। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा अनुभव करते हैं। यहाँ भाषा जरा... ज्ञायकभाव एक ज्ञायकभाव प्रकाश और स्वानुभव करते हैं। उसमें ज्ञायकभाव का अनुभव नहीं होता, द्रव्य का अनुभव नहीं होता। अनुभव तो पर्याय का होता है। समझ में आया? परन्तु अनादि अज्ञानी राग-द्वेष, दया-दान, काम, क्रोध की अकेली वहाँ दृष्टि देकर जो अनुभव करता है तो विकार का—उदय का अनुभव था। यहाँ स्वभाव का अनुभव उसे कहते हैं कि ज्ञायक चैतन्यप्रभु एकरूप के अनुसार सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, उसके अनुसार सम्यग्ज्ञान हुआ तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का, आनन्द का अनुभव हुआ, वह ज्ञायक का अनुभव हुआ, ऐसा कहने में आया है। भारी सूक्ष्म, भाई! समझ में आया?

अलिंगग्रहण में है न? भाई! अलिंगग्रहण में है। अलिंगग्रहण है न? १७२ (गाथा प्रवचनसार)। अपने यह सब बोल प्रकाशित हो गये हैं। १८, १९, २० तीन बोल हैं। उनमें ऐसा कहा कि भगवान आत्मा अपने गुणभेद को स्पर्शता नहीं। आहाहा! पर्याय की बात बाद में। समझ में आया? भगवान आत्मा... १८वाँ बोल है। बीस बोल हैं न अलिंगग्रहण के? समझ में आया? यहाँ हिन्दी नहीं न? यहाँ तो गुजराती चले, यह तो तुम्हारी कक्षा (शिविर) है, इसलिए हिन्दी में चलता है, हों! वरना यहाँ गुजराती चलता है।

लिंग अर्थात् कि गुण ऐसा जो ग्रहण अर्थात् कि अर्थावबोध (पदार्थज्ञान)... ज्ञान तो एक उदाहरणरूप से कहा **वह जिसके नहीं...** भगवान आत्मा एकरूप स्वभाव में, जिसमें यह गुणी और ज्ञान, दर्शन, आनन्द गुण ऐसे भी जिसमें भेद नहीं। समझ में आया? **गुण ऐसा जो ग्रहण अर्थात् कि अर्थावबोध (पदार्थज्ञान) वह जिसके नहीं, वह अलिंगग्रहण है; इस प्रकार आत्मा गुणविशेष से नहीं आलिंगित ऐसा शुद्ध द्रव्य है...** आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध द्रव्य उसे कहते हैं कि जिसे यह गुण और गुणी, ऐसे भेद को शुद्ध द्रव्य स्पर्शता नहीं। छूता नहीं, आलिंगन करता नहीं, चूमता नहीं। गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : आनन्द आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा! समझ में आया? पत्थर के व्यापारी हैं। पैसा बहुत संग्रह करके बैठे हैं और अब आनन्द आता है।

मुमुक्षु : यहाँ का आनन्द।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ का आनन्द। यही कहा न! समझ में आया? अभी पैसे की बात नहीं। निश्चिन्तता से पड़ा है न, इसलिए यहाँ निवृत्ति से... क्या कहा?

देखो! यह भगवान अमृतचन्द्राचार्य अलिंगग्रहण भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा, उसमें १८वाँ बोल। एक-एक बोल (ऐसे) बीस बोल अध्यात्म से भरे हैं। सब व्याख्यान हो गये हैं। अलिंगग्रहण नाम की एक पुस्तक भी प्रकाशित हो गयी है। बहुत पुस्तकें बाहर प्रसिद्ध हुई हैं। १८वें बोल में... आत्मप्रसिद्धि का अलग, हों! यह दूसरा। लिंग

अर्थात् गुण। आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य और यह ज्ञान, दर्शन गुण, ऐसा भी जिसमें भेद नहीं। आहाहा! अलिंगग्रहण। गुणविशेष से नहीं स्पर्शित। भगवान आत्मा अभेद चैतन्यप्रभु एकरूप स्वभाव वह गुण की अनेकता को, विशेष को नहीं स्पर्शित हुआ, अकेला सामान्य द्रव्य को स्पर्शता है, ऐसे द्रव्य का अनुभव किये जाने पर निर्मल पर्याय प्रगट होती है। उसका धर्मी आनन्द का अनुभव करता है। समझ में आया?

फिर पर्याय की बात है। **लिंग अर्थात् पर्याय ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोधविशेष वह जिसके नहीं... आत्मा पर्यायविशेष से नहीं आलिंगित...** भगवान चैतन्य अभेद वस्तु, उसकी एक समय की अवस्था को स्पर्शता नहीं, अड़ता नहीं—छूता नहीं। समझ में आया? ११वीं गाथा में यह कहते हैं। यह तो विस्तार से प्रवचनसार है तो आत्मा ज्ञेय ज्ञेय ध्रुव शुद्ध किसे कहते हैं, उसका यह कथन है। वह यहाँ लिया है। पर्यायविशेष को भगवान आत्मा द्रव्य की दृष्टि में द्रव्य शुद्ध जिस दृष्टि में आया, वह द्रव्य पर्याय को भी स्पर्शता नहीं। परन्तु दृष्टि में आया तो पर्याय प्रगट हुई, परन्तु वह द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं। समझ में आया?

तीसरा बोल तो बहुत कड़क लिया है। समय में आया? पर्याय द्रव्य को स्पर्शती नहीं। बीसवाँ बोल ऐसा है। यहाँ यह लेना है जरा। अनुभव शब्द पड़ा है। **ऐसा अनुभव करता है।** इसके ऊपर से ख्याल आया कि वहाँ यह शब्द कहा है। यह सब व्याख्यान हो गये हैं। बीसवें बोल में ऐसा है कि भगवान आत्मा द्रव्य जो ध्रुव शुद्ध है, वह वर्तमान पर्याय का अनुभव होने से, शुद्ध आनन्द का पर्याय का अनुभव होने से उस पर्याय का अनुभव करनेवाला आत्मा द्रव्य को स्पर्शता नहीं। ऐ... नवरंगभाई! अरे! गजब बात, भाई! समझ में आया या नहीं? पर्याय और सामान्य और विशेष दो पदार्थ भिन्न हैं। सामान्य विशेष को स्पर्शता नहीं, विशेष सामान्य को स्पर्शता नहीं। अनुभव पर्याय का है तो वहाँ अन्त में यह सिद्ध किया है कि भगवान आत्मा अपने द्रव्य को नहीं स्पर्शता, अपनी पर्याय को शुद्ध आनन्द को, द्रव्य के लक्ष्य से उत्पन्न हुए ऐसी शान्ति सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को अनुभव करता है। वह अनुभव की पर्याय द्रव्य को स्पर्शती नहीं।

मुमुक्षु : एक ओर ... अभेद कहे, दूसरी ओर कहे, स्पर्शता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभेद किस अपेक्षा से ? यह तो प्रमाण का विषय ले तो अभेद है। समझ में आया ? बात बहुत (सूक्ष्म)।

भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति ध्रुव, उसका—अभेद का आश्रय करके जो निर्मल दशा उत्पन्न हुई, अनुभव करता है, वह अनुभव पर्याय में अनुभव होता है। भाषा ऐसी ली, 'एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है, ऐसा अनुभव करता है।' पाठ ऐसा है। पाठ ऐसा है परन्तु समझना चाहिए न! समझ में आया ? एक ज्ञायकभाव का अनुभव करता है। नवरंगभाई! क्या शब्द है ? व्याकरणवाले हों, उन्हें पूछो कि इसमें व्याकरण का अर्थ क्या होता है ? ये दो पण्डित रहे अपने। हिम्मतभाई है, बंशीधरजी। बड़े पण्डित के पण्डित हैं। दो ओर दो रखे हैं, देखो! समझ में आया ? शब्दार्थ करना हो तो क्या हो ?

एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है, प्रकाशमान है, ऐसा अनुभव करता है। ज्ञायकभाव एकरूप अभेद अभेद जो पर्याय को स्पर्शता नहीं, गुणभेद को छूता नहीं, ऐसा एकरूप द्रव्य-वस्तु का आश्रय करने से ज्ञायक प्रकाशमान हुआ। सम्यग्दर्शन, ज्ञान में आत्मा प्रकाशमान हो गया। तो ऐसा अनुभव करता है, ज्ञायक का अनुभव करता है। वह विकार का जो अनुभव था, उसमें ज्ञायक का अनुभव नहीं था। तो ज्ञायक का आश्रय करने से निर्मल पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुए तो ज्ञायक का अनुभव करता है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! गजब बात, भाई! मूल चीज़ अध्यात्म अर्थात् आत्म आश्रय से चीज़ जो है, वह क्या है, उसमें अनन्त काल से भूल में पड़ गया है। आहाहा!

आचार्यों ने मूल चीज़ को स्पर्श करने का सबमें कहा। द्रव्यस्वभाव... द्रव्यस्वभाव एकरूप भाव, जिसमें पर्यायभेद तो नहीं परन्तु गुण-गुणी भेद नहीं। ऐसा एक ज्ञायकभाव। वहाँ भी एक लिया, अलिंगग्रहण में। **प्रकाशमान ऐसा अनुभव करता है।** लो, समझ में आया ? अनुभव करता है, उसमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति का अनुभव आया। मोक्षमार्ग का अनुभव आया। त्रिकाल ज्ञायक सच्चिदानन्द प्रभु एक स्वरूप है, ऐसी दृष्टि करने से जो दृष्टि, ज्ञान और रमणता हुए, उनका अनुभव है। इसका नाम मोक्षमार्ग है, यह मोक्ष का कारण है। भारी सूक्ष्म बात! चन्दुभाई! सवेरे पूछा था कहाँ गये ? गये थे।

यह समझने जैसी चीज़ है। समझ में आया?

यहाँ, शुद्धनय कतकफल के स्थान पर है,... देखो! जैसे जल में और कादव में निर्मली औषधि डालकर जैसे जल को निर्मल किया जाता है, निर्मल होता है, किया जाता है, यह तो निमित्त से बात है। कथन की पद्धति में दृष्टान्त देना हो तो क्या कहे? वहाँ ऐसा कहे, निर्मली औषधि डाल नहीं सकता। यहाँ तो दृष्टान्त देना है। बाकी तो औषधि कौन डाल सकता है और कौन भिन्न कर सकता है, जड़ की पर्याय को-मैल को और (पानी को)। यहाँ तो दृष्टान्त का एक सिद्धान्त आत्मा में लेने को कहा है। दृष्टान्त का सर्व अंश आत्मा में मिलता नहीं। नहीं तो दृष्टान्त कहलाये नहीं।

यहाँ तो जल में मैल होने से निर्मली औषधि डालकर जैसे जल को और मैल को भिन्न करके जल को अनुभव करता है। उसी प्रकार शुद्धनय भगवान आत्मा एकरूप भूतार्थ **कतकफल के स्थान पर है...** उसका आश्रय किया तो राग से भिन्न पड़ गया। शुद्धनय अर्थात् भूतार्थ वस्तु त्रिकाल एकरूप है, उसका जहाँ लक्ष्य किया तो प्रगट हो गया। समझ में आया? पुण्य-पाप के विकल्प से भी पृथक् हो गया। **इसलिए जो शुद्धनय का आश्रय लेते हैं...** देखो! शुद्धनय के आश्रय का अर्थ, शुद्धनय तो ज्ञान का अंश है परन्तु शुद्धनय का विषय जो ध्रुव भूतार्थ एक समय में त्रिकाल एकरूप भगवान का जो आश्रय लेते हैं, **वे ही सम्यक् अवलोकन करने से...** पाठ में है न? भाई! '**सम्यक् पश्यन्तः**' '**सम्यक् पश्यन्तः**' यथार्थ वस्तु देखते हैं, ऐसा कहते हैं। जो कोई एक समय का आत्मा भगवान पूर्ण अभेद शुद्ध चैतन्यद्रव्य को देखता है, वही सम्यक् देखता है। समझ में आया? तथा राग और पर्याय को देखते हैं, वे सम्यक् देखते नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! '**पश्यन्तः**' सम्यक् अवलोकन करने से। वजन यहाँ है। '**सम्यक् पश्यन्तः सम्यग्दृष्टयो भवन्ति**'। और फिर '**न पुनरन्ये**' बाद में लेंगे। '**पश्यन्तः**' ऐसा देखते हुए सम्यग्दृष्टि होते हैं, ऐसा कहते हैं। '**पश्यन्तः**' शुद्धनय का सम्यक् आश्रय लेते हैं। भगवान आत्मा, सबका लक्ष्य छोड़कर अपना पूर्णानन्द प्रभु एक स्वरूपी भगवान का अन्तर आश्रय लेते हैं, **वे ही सम्यक् अवलोकन करने से...** क्यों? कि आत्मा उसे ही कहते हैं। आत्मा पूर्ण अभेद शुद्ध को ही आत्मा कहते हैं। वास्तव में आत्मा ही वह है।

आहाहा! एक समय की पर्याय व्यवहार आत्मा है। समझ में आया?

वास्तव में सत्यार्थ भूतार्थ सत् सत्रूप एकरूप सत् ध्रुव, एकरूप सत् ध्रुव का अवलोकन करने से, उसे देखने से सम्यग्दृष्टि होता है। **सम्यग्दृष्टि है...** इसके बिना सम्यग्दृष्टि होता नहीं। यह तो अभी चौथे गुणस्थान की बात करते हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवान एकरूप सच्चिदानन्द प्रभु में तीन भेद भी नहीं। है, ज्ञान है और आनन्द है, अनन्त गुण हैं, ऐसा नहीं। एकरूप को ही सत् कहा है। उसे ही वस्तु कही, उसे ही आत्मा कहा, वही यथार्थ सत्य जगत का आत्मा उसे कहते हैं। उसका सम्यक् अवलोकन करने से। क्योंकि पूर्ण स्वरूप भगवान आत्मा के ऊपर लक्ष्य होने से उससे सम्यक् आत्मा जैसा है, पूर्ण जैसा है, अभेद जैसा है, अखण्ड जैसा है, एकरूप जैसा है, उसका अवलोकन किया। समझ में आया? **सम्यग्दृष्टि है...** लो, वह सम्यग्दृष्टि है। ओहो! यहाँ तो देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा करो समकितदृष्टि है, नौ तत्त्व की (श्रद्धा सम्यग्दृष्टि)। आहाहा! लालचन्दजी!

भगवान आत्मा... लक्ष्य करनेवाली पर्याय है, परन्तु जिसके ऊपर लक्ष्य करना है, वह अकेला सामान्य ध्रुव है। '**पश्यन्तः**' है, वह पर्याय है। '**पश्यन्तः**' किसे '**पश्यन्तः**' करती है? सामान्य ध्रुव को। वह द्रव्य है। समझ में आया? एकरूप भगवान आत्मा, वह द्रव्य है। '**पश्यन्तः**' वह पर्याय है। परन्तु वह '**पश्यन्तः**' उसे देखती है। आत्मा वास्तव में भूतार्थ है, सत्यार्थ है, एक है, वही सत्य है, वही सत्य है। पर्याय, राग सब झूठ है। फिर स्पष्टीकरण करेंगे वापस, हों! सर्वथा झूठ है, ऐसा नहीं। पर्याय में पर्याय है। पर्याय में पर्याय है। पर्याय विषय किसे करे? यदि पर्याय न हो तो द्रव्य को विषय करे कौन? आनन्द का अनुभव कौन करे? अनुभव कहीं द्रव्य का नहीं होता, अनुभव पर्याय का होता है। तीनों काल में। संसारदशा में भी विकारी पर्याय का अनुभव, मोक्षमार्ग में कुछ अविकारी और कुछ विकारी, मोक्ष में मात्र अविकारी पर्याय का अनुभव होता है। द्रव्य का और गुण का अनुभव नहीं होता। द्रव्य-गुण तो ध्रुव है। समझ में आया? ओहोहो!

सम्यक् **आश्रय लेते हैं वे ही...** वे ही, ऐसा है न? '**त एव**' '**तदत्र ये भूतार्थमाश्रयन्ति**

त एव'। जो भगवानस्वरूप प्रभु सामान्य एकरूप आत्मा अभेद एकरूप प्रभु, उसे ही यहाँ सत् कहा जाता है। वही जगत का आत्मा सत् आत्मा है। ऐसे सब आत्मा का ध्रुव स्वभाव, वही सत् आत्मा है। इस अपेक्षा से पर्याय और राग भी असत् कहकर व्यवहारनय के विषय में डालकर, उसे असत्यार्थ कह दिया। वह त्रिकाल सत् की अपेक्षा से। समझ में आया? आहाहा! पाठ में तो इतना है। **दूसरे सम्यग्दृष्टि नहीं हैं।** पाठ तो इतना है। फिर थोड़ा स्पष्टीकरण (किया)। **(जो अशुद्धनय का सर्वथा आश्रय लेते हैं वे)...** अर्थात् पर्याय लक्ष्य में लेकर, पर्याय है परन्तु आश्रय करनेयोग्य द्रव्य है। ऐसा लक्ष्य करके द्रव्य का आश्रय करता है, वह यथार्थ देखता है। परन्तु पर्याय है ही नहीं, ऐसे छोड़कर द्रव्य का आश्रय करे तो कौन द्रव्य का आश्रय करे? अशुद्धनय का सर्वथा आश्रय लेते हैं, अर्थात् एक समय की दशा का ही सर्वथा (अर्थात्) वही आत्मा है, राग ही आत्मा है, एक समय की अवस्था ही आत्मा, एक समय की दशा ही आत्मा, ऐसा जो लक्ष्य में लेता है, वह सम्यग्दृष्टि नहीं। समझ में आया? अनेकान्त किया। **'पश्यन्तः सम्यग्दृष्टयो भवन्ति, न पुनरन्ये'** नहीं है। यदि अकेली भगवान आत्मा की पर्याय / अवस्था का / हालत का आश्रय करते हैं, आश्रय-लक्ष्य करते हैं तो वह भेद का-अशुद्धनय का आश्रय करते हैं, वे सम्यग्दृष्टि नहीं, मिथ्यादृष्टि है। ओहो! श्रीनन्दनजी! बहुत सूक्ष्म बात है। परन्तु यह सब सेठिया आवे और सुने तो खबर पड़े या नहीं? वहाँ दूर-दूर (रहकर) ऐसा है और वैसा है, ऐसा करके उड़ा देते हैं। ऐई! ताराचन्दजी! परन्तु यहाँ आकर पन्द्रह दिन रहे, सुने, क्या है, क्या नहीं (समझे तो खबर पड़े)। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से लाभ होता है, ऐसा तीन काल-तीन लोक में नहीं। व्यवहार है नहीं, ऐसा नहीं। व्यवहार है नहीं, ऐसा नहीं। व्यवहार है।

मुमुक्षु : व्यवहार से लाभ हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ धूल में भी नहीं था। इसीलिए तो यह चला है।

मुमुक्षु : हम करते हैं, वह बराबर करते हैं और आप हमारी भूल निकालते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यक्ति बुद्धिवाला है या नहीं? कुछ तुलना करेगा या नहीं कि

क्या सत्य है ? कैसे, ताराचन्दजी ! ताराचन्दजी तो बहुत प्रमोद व्यक्त करते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमेश्वर की दिव्यध्वनि में, दिव्यध्वनि में—प्रधान आवाज में आया, वही मुनि अपना अनुभव करके कहते हैं। समझ में आया ? साक्षात् कुन्दकुन्दाचार्य प्रभु लगभग संवत् ४९ में वहाँ भगवान के पास गये थे। साक्षात् परमात्मा विराजते हैं। ओहो ! समझ में आया ? वहाँ विराजते हैं, वे गये थे। आठ दिन रहे थे। मुनि थे, भावलिंगी सन्त थे। वहाँ नहीं गये थे तो भी भावलिंगी सन्त थे। समझ में आया ? परन्तु ऐसा कोई पुण्य का योग और पवित्रता, दोनों का योग कुन्दकुन्दाचार्य को (बन गया कि) साक्षात् भगवान के (दर्शन हुए)। भरतक्षेत्र में जन्म और महाविदेहक्षेत्र की यात्रा ! आहाहा ! समझ में आया ? ऐसे भगवान के पास रहकर समवसरण में आठ दिन रहकर भगवान के समीप सुनकर, कितने ही श्रुतकेवली महाराज श्रुतकेवली सन्त विराजते थे, उनके पास कितना ही समाधान करके यहाँ आये। आहाहा ! समझ में आया ? और यह गाथा, गाथा, गाथा अमृत की धारा बहायी। पौन्नूर हिल। पौन्नूर हिल न ? पौन्नूर हिल—सोना की टेकरी कहते हैं वहाँ। मद्रास से अस्सी मील इस ओर है। वन्देवास छोटा गाँव है। लगभग दस हजार की आबादी है। वहाँ से पाँच मील दूर पौन्नूर हिल है। वहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज विराजते थे। वहाँ ध्यान में रहते थे। वहाँ विचार करते... करते... करते...

अहो ! सीमन्धरनाथ का विरह पड़ा इस भरत में।
अरे रे ! सीमन्धरनाथ का विरह पड़ा इस भरत में...

अन्दर में ध्यान करते हुए भगवान को वन्दन किया। भगवान ने कहा, सत् धर्म वृद्धि हो ! दिव्यध्वनि में आवाज आयी, सत् धर्म वृद्धि हो ! कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये। तीन काल-तीन लोक में सर्वज्ञ ने कहा हुआ यह तत्त्व है। समझ में आया ? वहाँ से लाकर यहाँ शास्त्र बनाये। ११वीं गाथा में पुकार करते हैं। भगवान ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

जो कोई एक समय में परमात्मा अपना शुद्ध ध्रुवस्वरूप, पर्याय का लक्ष्य भी

नहीं, गुणभेद का भी लक्ष्य नहीं, ऐसे भगवान आत्मा को '**पश्यन्त**' देखता है, वह यथार्थ सम्यग्दृष्टि है। समझ में आया? अकेले गुणभेद को, पर्याय को, राग को, निमित्त को, अशुद्धनय के विषय का आश्रय लेता है, वह सम्यग्दृष्टि नहीं। 'सर्वथा' क्यों लिया है? कि अपने स्वरूप में दृष्टि होकर पर्याय है, उसका ज्ञान करता है तो उसका सर्वथा आश्रय है, ऐसा कहा नहीं। आश्रय नहीं। परन्तु है, ऐसा जानना। परन्तु वस्तु में वह पर्याय नहीं, अशुद्धनय का विषय वस्तु में नहीं। ऐसी दृष्टि अन्दर ध्रुव चिदानन्द भगवान की '**पश्यन्तः**' बिना सम्यग्दृष्टि होता नहीं। अकेले गुणभेद को देखे, अकेली पर्याय को—एक समय की दशा को देखे... समझ में आया? वह अशुद्धनय को देखे तो एकान्त मिथ्यादृष्टि है। लक्ष्य करके स्वभाव को देखे तो पर्याय है सही। नहीं—ऐसा नहीं, अशुद्धनय का विषय है परन्तु उसका आश्रय, लक्ष्य छोड़कर अकेला अभेद चिदानन्द भगवान को '**पश्यन्तः**' द्रव्य को '**पश्यन्तः**'। '**पश्यन्तः**' है पर्याय, (परन्तु वह) द्रव्य को देखती है, सामान्य ध्रुव को देखती है। वह सम्यग्दृष्टि है, दूसरे सम्यग्दृष्टि नहीं। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो।' छहढाला में दौलतरामजी ने लिया है न? परद्रव्य से भिन्न, आता है न? 'परद्रव्य से भिन्न रुचि सम्यक् भला है।' यह रुचि, हों! क्योंकि परद्रव्य से भिन्न जब लक्ष्य छूट गया तो अपने अभेद स्वभाव का अनुभव हुआ। समझ में आया? ओहोहो!

इसलिए कर्मों से भिन्न आत्मा के देखनेवालों को व्यवहारनय अनुसरण करनेयोग्य नहीं है। लो, योगफल। ... जानना, वह बारहवीं गाथा में आयेगा। है अवश्य, परन्तु अनुसरण करना नहीं। पर्याय का अनुसरण करना नहीं। राग का अनुसरण करना नहीं, अनुकरण करना नहीं। अनुकरण भगवान द्रव्य की ओर का करना। ओहोहो! कर्मों से एक देखनेवाले को तो आत्मा तिरोभूत होकर विकार का अनुभव करता है। कर्म से भिन्न आत्मा देखनेवाले को... उसमें अभिन्न लेना। भाई! कर्म से अभिन्न आत्मा देखनेवाले को। अभिन्न अर्थात् एक। वह अशुद्धनय का विषय हुआ। कर्म से आत्मा एक है, विकार और स्वभाव द्रव्य एक है, ऐसा अनुभव करनेवाला मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? परन्तु कर्म से भिन्न, (अन्य) द्रव्य से भिन्न अपने द्रव्यस्वभाव की दृष्टि हुई तो

पर्याय में निर्मल दशा हुई। ऐसे देखनेवाले को व्यवहारनय अनुसरण करनेयोग्य नहीं। लो, यहाँ कहते हैं कि, व्यवहार मोक्षमार्ग, वह भी अनुसरण करनेयोग्य (नहीं) है। आहाहा!

मुमुक्षु : आठवें से....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! चौथे से। आठवें की कहाँ बात है? प्रश्न का जवाब आ गया। क्या पूछा था?

व्यवहारनय परमार्थ का प्रतिपादक है तो उस व्यवहारनय का क्यों अनुसरण नहीं करना? अंगीकार क्यों नहीं करना? प्रतिपादक है तो वहाँ लक्ष्य जाता है, परन्तु उसका अनुसरण करना नहीं। एक अभेद को बताता है, अभेद को बताता है, भेद को नहीं। उसका अनुसरण करना नहीं। समझ में आया? यह और आ गये न? मुश्किल से आये, कितने दिन से। यह सब कितने दिन से आये हैं, देखो न! बाहर से। अब भावार्थ देखो। भावार्थ कितना सरस किया है।

भावार्थ :- यहाँ व्यवहारनय को अभूतार्थ,... देखो! यहाँ व्यवहारनय को झूठा— पर्याय को झूठा कहा। क्या कहा? एक द्रव्य में पर्याय झूठी, पर्याय असत्य। व्यवहारनय को अभूतार्थ, असत्यार्थ अथवा झूठा कहा। और शुद्धनय को सच्चा कहा, भूतार्थ कहा। भूतार्थ त्रिकाल एकरूप वह सत्य। और पर्याय वह झूठ है, ऐसा यहाँ कहा है। समझ में आया? इसका आशय बतलाते हैं, हों! अज्ञानी को एकान्त न हो जाये कि पर्याय में पर्याय है ही नहीं। वह तो द्रव्य की दृष्टि करने से द्रव्य में पर्याय नहीं। परन्तु पर्याय है ही नहीं, (ऐसा नहीं है)। पाठ तो ऐसा लिया है कि व्यवहार झूठा है। अर्थात् एक समय की आत्मद्रव्य में अवस्था झूठी है। ऐसा यहाँ कहा। एक समय की अवस्था आत्मा में असत्य है, अभूतार्थ है, झूठी है।

और शुद्धनय को भूतार्थ कहा है। सुनो! पहला शब्द। एकरूप द्रव्यस्वभाव को ही सत्य कहा। ध्रुव ध्रुव को सत्य कहा, पर्याय को असत्य कहा। ध्रुव को भूतार्थ कहा, पर्याय को अभूतार्थ कहा। ध्रुव को सत्य कहा, पर्याय को असत्य कहा। समझ में आया? **जिसका विषय...** अब देखो। **जिसका विषय विद्यमान न हो,...** विद्यमान न हो।

असत्यार्थ हो, उसे अभूतार्थ कहते हैं। जिसका विषय जगत में है ही नहीं और झूठा हो, उसे अभूतार्थ कहते हैं। **व्यवहारनय को अभूतार्थ कहने का आशय यह है कि शुद्धनय का विषय अभेद एकाकाररूप नित्य द्रव्य है,...** देखो, अब। समझ में आया? व्यवहारनय को झूठा कहने का आशय, व्यवहारनय को असत्य कहने का आशय, व्यवहारनय को अभूतार्थ कहने का आशय, व्यवहारनय का विषय है ही नहीं, ऐसा कहने का आशय... समझ में आया? आहाहा! व्यवहारनय को... धीरे से समझना, हों! यहाँ उतावल नहीं। यहाँ कथा-बथा नहीं, यहाँ तो आत्मा की बात है न! एकदम न समझ में आये तो धीरे-धीरे उसका मनन करके ख्याल में लेना।

भगवान आत्मा परमात्मा ने ऐसा कहा कि व्यवहार तो अभूतार्थ है, प्रभु! अभूतार्थ का अर्थ जिसका विषय ही जगत में है ही नहीं, जिसके विषयभूत वस्तु जगत में है ही नहीं, उसे असत्यार्थ और झूठा कहते हैं। (अभूतार्थ) **कहने का आशय यह है कि शुद्धनय का विषय...** शुद्धनय का विषय, यहाँ भेद किया, हों! भेद किया। पाठ में एक था, भाई! यहाँ समझाना है। पहला व्यवहार का विषय और निश्चय का विषय बतलाने के लिये (भेद डालकर कहा है)। **शुद्धनय का विषय अभेद एकाकाररूप...** वस्तु एकरूप। गुणभेद नहीं, पर्यायभेद नहीं। **नित्य द्रव्य है,...** ध्रुव नित्य द्रव्य, वह शुद्धनय का विषय है। समझ में आया? उसमें पर्याय नहीं आती। एक समय की पर्याय को यहाँ झूठा कहा। समझ में आया? **शुद्धनय का विषय...** लक्ष्य अभेद एकरूप अभेद एकाकार, एक स्वरूप (जिसमें) पर्याय का भेद नहीं, ऐसा नित्य द्रव्य है। शुद्धनय का विषय नित्य द्रव्य है। पर्याय नहीं, राग नहीं, गुणभेद नहीं, निमित्त नहीं। समझ में आया?

उसकी दृष्टि में... सम्यग्दर्शन का विषय अभेद, शुद्धनय का विषय अभेद एकाकारस्वरूप नित्य द्रव्य, नित्य वस्तु, नित्य ध्रुव है। **उसकी दृष्टि में भेद दिखायी नहीं देता;...** भेद दिखता नहीं। अन्तर में अनन्त गुण हैं, तथापि एकाकार दृष्टि है, एकरूप दृष्टि में भेद दिखता नहीं। समझ में आया? नित्य द्रव्य है, अनन्त गुण है। परन्तु अभेद दृष्टि शुद्धनय की दृष्टि तो एकरूप के ऊपर है। अभेद का लक्ष्य करनेवाले सम्यग्दृष्टि को, शुद्धनय का विषय करनेवाले, नित्य द्रव्य देखनेवाले को भेद नहीं दिखता। समझ में

आया ? एकाकार दृष्टि हो, उसका नाम नित्य द्रव्य शुद्धनय का विषय कहा जाता है। **उसकी दृष्टि में भेद दिखायी नहीं देता; इसलिए उसकी दृष्टि में भेद अविद्यमान,...** है। इस अपेक्षा से गुणभेद, पर्याय, राग सब नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? समझ में आया या नहीं यह ? प्रोफेसर है परन्तु अब....

उसकी दृष्टि में... भेद अविद्यमान है। भेद का अर्थ क्या ? कि गुण-गुणी भेद झूठा है। पर्याय झूठी है, राग झूठा है, निमित्त भी झूठा है। आहाहा! **अविद्यमान, असत्यार्थ ही कहना चाहिए।** त्रिकाल द्रव्य नित्य द्रव्य की दृष्टि की अपेक्षा से गुणभेद को, पर्याय को... समझ में आया ? राग को असत्यार्थ—है ही नहीं, विद्यमान ही नहीं, उसकी अस्ति ही नहीं, भेद की अस्ति नहीं, अभेद में भेद की अस्ति नहीं, अभेद दृष्टि में पर्याय की अस्ति नहीं, अभेद दृष्टि में राग की अस्ति नहीं। भेद देखने से तो व्यवहार हो गया, विकल्प हो गया। राग ही उत्पन्न होता है। समझ में आया ? ओहोहो! **असत्यार्थ ही कहना चाहिए।** स्पष्टीकरण भी बहुत सरस! गाथा में कोई एकान्त न ले जाये, वेदान्त न हो जाये कि यह वेदान्त कहता है कि आत्मा एक ही है, क्षेत्र व्यापक है, पर्याय है ही नहीं, अशुद्धता है ही नहीं — ऐसा नहीं। यह दृष्टि का और शुद्धनय का विषय नहीं। इसलिए उसे असत्यार्थ (कहा)। चन्दुभाई! शुरुआत है न, हल्की शुरुआत है। एक अभेद, एक अभेद, एक अभेद... ऐसा है नहीं। यह तो दूसरे प्रकार से कहा।

उसकी दृष्टि में... किसकी दृष्टि में ? शुद्धनय की दृष्टि में **भेद दिखायी नहीं देता; इसलिए उसकी दृष्टि में...** (भेद) नहीं। भेद है ही नहीं। भेद झूठा ही कहना चाहिए, भेद असत्य ही कहना चाहिए। **ऐसा न समझना चाहिए कि भेदरूप कोई वस्तु ही नहीं है।** अब स्पष्टीकरण करते हैं। शुद्धनय का विषय, सम्यग्दर्शन का विषय तो नित्य द्रव्य अभेद एक ही है। परन्तु पर्याय है ही नहीं, अनन्तगुणरूप एक द्रव्य में अनन्त गुण है ही नहीं, राग है ही नहीं—ऐसा नहीं। समझ में आया ? **ऐसा न समझना चाहिए कि भेदरूप कोई वस्तु ही नहीं है।** वस्तु है ही नहीं। गुणी एकरूप की दृष्टि में गुण अन्दर में होने पर भी गुण है ही नहीं, ऐसा एकान्त नहीं। पर्यायनय का विषय भेद है, पर्यायनय का विषय भेद है। निश्चयनय की दृष्टि में भेद है ही नहीं, अविद्यमान, झूठा है भेद।

यदि ऐसा माना जाये तो जैसे वेदान्त मतवाले... यह बहुत समझने की वस्तु है। क्योंकि भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने तो ऐसा भी कहा कि एक सत् द्रव्य वही सत् है। पर्याय-फर्याय असत् है, ऐसा यहाँ तो कह दिया। समझ में आया? वस्तु एकरूप त्रिकाल ध्रुव एकरूप सामान्य, वही सत्य है, ऐसा कहा। उसकी पर्याय, अनन्त गुण अन्दर है, उनका भी अभाव हो जाता है। समझ में आया? **वेदान्त मतवाले भेदरूप अनित्य को देखकर...** देखो! अनन्त गुण और एक समय की पर्याय वह है ही नहीं। ऐसा **अनित्य को देखकर...** अनित्य को देखकर, पर्याय को देखकर **अवस्तु...** पर्याय को अवस्तु कहते हैं। वेदान्त एक समय की पर्याय को अवस्तु कहता है। नित्य को ही वस्तु कहता है। समझ में आया? नित्य द्रव्य को ही वस्तु कहता है, पर्याय को अवस्तु कहता है। जो एकान्त शुद्धनय का विषय द्रव्य है और वस्तु में पर्यायनय से पर्याय है ही नहीं, ऐसा करने जायेगा तो पर्याय अवस्तु हो जायेगी, वेदान्त कहता है वैसे, परन्तु ऐसा है नहीं। समझ में आया?

यदि ऐसा माना जाये तो जैसे वेदान्त मतवाले भेदरूप अनित्य को... माया कहते हैं वे। माया-यामा। या—वह, मा—नहीं। चन्दुभाई! यह पर्याय और अनेक द्रव्य और एक द्रव्य में अनन्त गुण और अनन्त द्रव्य, वह सब है ही नहीं, सब माया है, ऐसा कहते हैं। यामा—वह नहीं, वह नहीं, वह नहीं, वह नहीं। मा—नहीं... नहीं... नहीं... ऐसा नहीं है। समझ में आया? **अनित्य को देखकर अवस्तु मायास्वरूप कहते हैं...** परमात्मप्रकाश में मायाजाल लिया। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार सब मायाजाल है, मायाजाल है। मायाजाल भी वस्तु है या नहीं? भगवान आत्मा एक ध्रुव को ही सत् कहा। वही सत्य है, बाकी असत्य है, ऐसा कहा। एक सच्चा है, बाकी सब झूठा है, ऐसा कहा। तो उसका आशय एकान्त वस्तु कोई है ही नहीं, पर्याय जगत में है ही नहीं, व्यवहारनय का विषय पर्याय नहीं, व्यवहारनय का विषय पर्याय है ही नहीं, राग है ही नहीं, निमित्त है ही नहीं—ऐसा माननेवाला वेदान्त की भाँति अनित्य देखकर अवस्तु मायास्वरूप कहता है। वह तो अवस्तु है।

अब जरा पाँच बोल में देखो! पाँच बोल में विशिष्टता है। वे लोग सर्वव्यापक

कहते हैं। द्रव्य को क्षेत्र से व्यापक (कहते हैं)। सर्वव्यापक कहते हैं तो ऐसा है नहीं। यदि अकेले भूतार्थ को सत्य कहो और पर्याय है ही नहीं कहो तो अनित्य को मायाजाल कहकर उड़ा देते हैं। आत्मा सर्वव्यापक—क्षेत्र से सर्वव्यापक हो जायेगा। समझ में आया? एक, द्रव्य से एक ही है, ऐसा कहते हैं। वस्तु से एक ही आत्मा कहते हैं। समझ में आया? किस अपेक्षा से एक कहते हैं? पहले एक ज्ञायकभाव आया न? वस्तु अपनी एकरूप है, इस अपेक्षा से एक है। सभी द्रव्य एक है, ऐसा नहीं। सब आत्मा एक है, ऐसा नहीं। इसलिए स्पष्टीकरण किया है। समझ में आया? सर्वव्यापक (कहते हैं)। आत्मा इतने में रहे? अरे! यह तो खण्ड हो गया। नहीं, नहीं। शरीर प्रमाण अखण्ड गुण का पिण्ड प्रभु शरीर प्रमाण रहता है। और उसे ध्यान करना हो तो ऐसा करता है। ऐसे (बाहर देखकर) करता है? ऐसा करता है। सर्वव्यापक हो तो ऐसा करे तो एकाग्र हो। जितने क्षेत्र में है तो उसका क्षेत्र इतना है, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? परन्तु दो मानना और लम्बा मानना हो तो वह तो मानते नहीं। इतना संक्षिप्त (शरीर प्रमाण) मानते नहीं। नहीं, सर्वव्यापक हो, वह वस्तु है। ऐसा नहीं। समझ में आया? अपना अनुभव इतने क्षेत्र में दिखता है। अनन्त गुण का पिण्ड, उसमें एकाग्रता होने से, इतने क्षेत्र में एकाग्र होने से, जितने में है उतने में एकाग्र होने से, तो आत्मा इतने क्षेत्र में है। सर्वव्यापक क्षेत्र में नहीं। समझ में आया?

यह एक कहते हैं, सर्वथा एक ही द्रव्य है, ऐसा नहीं। अनन्त द्रव्य है। अनन्त आत्मा है त्रिकाल। अनन्त रजकण हैं त्रिकाल। यहाँ तो पाठ में यह कहा, एक आत्मा भूत ध्रुव ही सत्य है, बाकी सब असत्य कह दिया। समझ में आया? यह पर्यायनय के विष्य को त्रिकाल की अपेक्षा से असत्य कहा। परन्तु पर्यायनय का विषय है ही नहीं जगत में, भेद है ही नहीं जगत में, ऐसा नहीं। परन्तु भेद और पर्यायनय के आश्रय से लाभ होता है, ऐसा भी नहीं है। अरे! गजब बात, भाई! समझ में आया? दो बोल आये। सर्वव्यापक हो जायेगा। एक ही सत् कहोगे, एक ही सत् कहोगे तो सर्वव्यापक क्षेत्र हो जायेगा। एक ही सत् कहोगे तो द्रव्य एक ही हो जायेगा, द्रव्य अनन्त नहीं रहेंगे। अभेद एक ही कहोगे तो अनन्त गुण आत्मा में हैं, वे गुण नहीं रहेंगे। अनन्त गुण आत्मा में है,

अनन्तानन्त गुण है। अनन्तानन्त गुण है। एक ही लोगे एकान्त से और अनन्तानन्त गुण है ही नहीं, भेदरूप व्यवहारनय का विषय है ही नहीं, (ऐसा लोगे) तो आत्मा अनन्त गुणरूप है, वह सिद्ध नहीं होगा। वह अभेद कहते हैं। गुण और गुणी, ऐसा कुछ है ही नहीं। तो गुण नहीं रहेंगे। समझ में आया? और अनित्य पर्याय नहीं माने तो अकेला नित्य रहेगा। सर्वव्यापक नित्य हो गया। क्षेत्र से सर्वव्यापक, द्रव्य से एक, गुण से एकरूप अभेद और पर्यायरहित उसने नित्य माना। नित्य, नित्य माना। पर्याय निकल गयी। पर्याय है ही नहीं, ऐसा मानता है। पर्याय नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया? पर्याय है। शुद्धनय का विषय नहीं। समझ में आया? द्रव्यदृष्टि का विषय नहीं। सामान्य के विषय में वह पर्याय आती नहीं। परन्तु पर्याय पर्याय में नहीं है, (ऐसा मानने से) एकान्त हो जायेगा, मिथ्यादृष्टि हो जायेगा। और शुद्ध। कितने शब्द लिये हैं? एक, दो, तीन, चार और पाँच।

सर्वव्यापक में क्षेत्र आ गया। एक ही सत्य है, ऐसा कहो तो सर्वव्यापक हो जायेगा, क्षेत्र एक हो जायेगा। एक ही सत् कहो तो द्रव्य एक हो जायेगा। एक ही सत् कहो तो अनन्त गुण नहीं रहेंगे। द्रव्य अकेला रहेगा, अनन्त गुण नहीं रहेंगे। एक ही सत् कहो तो नित्य ही रहेगा, पर्याय नहीं रहेगी। और शुद्धनय एक ही रहेगा, अशुद्ध पर्याय नहीं रहेगी। समझ में आया? भारी सूक्ष्म, भाई! कितना सरस कहा। यहाँ तो कहा न? भाई! **अनित्य को देखकर...** पर्याय है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब। शुद्ध और अशुद्धपर्याय सब अनित्य, सब अनित्य। पर्याय शुद्ध, अशुद्ध सब अनित्य। समझ में आया? पर्याय को ही अनित्य कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ इनकार किया? कब इनकार किया? वह तो द्रव्य में नहीं, ऐसे इनकार किया। बाबूलालजी! द्रव्य में पर्याय है? द्रव्य में पर्याय हो तो विषय करनेवाला कौन रहा? समझ में आया? यह द्रव्य है, उसका चिन्तवन करनेवाला कौन रहा? यह द्रव्य है, ऐसी दृष्टि करनेवाला कौन रहा? पर्याय उसमें घुस गयी तो चिन्तवन

करनेवाला कौन रहा ? यह कहते हैं। द्रव्य में पर्याय है ही नहीं। समझ में आया ?

पाँच बोल लिये। गाथा में व्यवहार असत्यार्थ है, ऐसा कहा है, ऐसा सर्वथा मान लेगा... तो द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय को झूठी कहा। द्रव्य की अपेक्षा से गुणभेद को झूठा कहा। द्रव्य की अपेक्षा से राग है नहीं, ऐसा कहा। निज द्रव्य की अपेक्षा से दूसरे निमित्त भी है नहीं, ऐसा कहा। निमित्त अर्थात् दूसरे द्रव्य ही है नहीं, ऐसा। समझ में आया ? वह तो त्रिकाल ज्ञायकभाव की दृष्टि कराने को पर्याय को गौण करके, व्यवहारनय के विषय को गौण करके मुख्य द्रव्य को मुख्य करके निश्चय कहकर उसका आश्रय कराया है। समझ में आया ? सर्वथा असत्य जो गाथा में कहा कि व्यवहार अभूतार्थ है। उसमें एकान्त ले जायेगा, तब तो वेदान्त जो सर्वव्यापक कहता है, क्षेत्र में भेद नहीं कहता कि इतना आत्मा इतने में रहता है और दूसरा इतने में रहता है और तीसरा इतने में रहता है। ऐसा भेद हुआ तो उसकी दृष्टि में व्यवहार हो गया। समझ में आया ? ऐसा नहीं है। एक ही द्रव्य है, ऐसा नहीं। भूतार्थ की अपेक्षा से एक ही द्रव्य रहेगा। दो द्रव्य तो व्यवहार हो गया। दो द्रव्य, अनन्त द्रव्य तो व्यवहार हो गया। ऐसा नहीं। एक द्रव्य की अपेक्षा से सब व्यवहार अवस्तु है। पूरा लोक अपनी अपेक्षा से है ही नहीं। समझ में आया ?

यह बड़ी चर्चा (संवत्) १९८५ में हुई थी। वीरजीभाई के साथ। नारणभाई ने दीक्षा ली न ! वीरजीभाई आये हुए। रात्रि में प्रश्न हुआ। (संवत्) १९८५। ३७ वर्ष हुए। यह वस्तु कैसे है ? स्वरूप की अपेक्षा से सब मायाजाल है। सती का नहीं ? क्या कहलाता है वह ? बाहर। वढवाण। धर्मशाला, लालचन्द की धर्मशाला में नारणभाई को दीक्षा दी तो रात्रि में चर्चा हुई थी। वीरजीभाई के साथ। १९८५ में। कहा, इस चीज़ की अपेक्षा से सर्व वस्तु अवस्तु है। वेदान्त कहता है उस अपेक्षा से नहीं। वह तो पर से भी वस्तु नहीं, ऐसा कहता है। इस अपेक्षा से एक ही आत्मा जगत में है, अपना। इस अपेक्षा से अवस्तु है। समझ में आया ? द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय अवस्तु है। आहाहा ! दूसरी तो अवस्तु है ही, परन्तु एकरूप सामान्य की अपेक्षा से पर्याय अवस्तु है, ऐसा यहाँ कहते हैं। परन्तु पर्याय की अपेक्षा से पर्याय वस्तु है। समझ में आया ? भेद की अपेक्षा

से भेद है, व्यवहारनय की अपेक्षा से व्यवहार का विषय है।

एकान्त **सर्वव्यापक एक अभेद नित्य शुद्ध ब्रह्म को वस्तु कहते हैं, वैसा सिद्ध हो...** ऐसा सिद्ध होगा। पर्याय है ही नहीं पर्यायनय के विषय में, गुणभेद है ही नहीं व्यवहारनय के विषय में, राग है ही नहीं व्यवहारनय के विषय में, है ही नहीं तो ऐसा हो जायेगा। **और उससे सर्वथा एकान्त शुद्धनय के पक्षरूप मिथ्यादृष्टि का ही प्रसंग आये,...** लो! समझ में आया? **उससे सर्वथा एकान्त...** पर्याय बिना का अकेला द्रव्य है, अनन्त गुण अन्दर है ही नहीं, एक ही द्रव्य है, अन्दर गुण है ही नहीं, समझ में आया? राग है ही नहीं, कर्म है ही नहीं, संसार है ही नहीं, ऐसा एकान्त माननेवाले शुद्धनय के पक्षरूप, **एकान्त शुद्धनय के पक्षरूप मिथ्यादृष्टि का ही प्रसंग आये,...** समझ में आया? इसलिए ऐसा है नहीं। पर्याय है, द्रव्य की अपेक्षा से अवस्तु कही। गुणभेद है, अभेद की अपेक्षा से अवस्तु कहा। अशुद्धता है, त्रिकाल की अपेक्षा से इनकार किया। पर्याय है, त्रिकाल नित्य की अपेक्षा से पर्याय का इनकार किया। नहीं, ऐसा कहा। समझ में आया? वरना एकान्त मिथ्यात्वी का प्रसंग आयेगा। **इसलिए यहाँ ऐसा समझना चाहिए...** ऐसा समझना चाहिए, यह बात लेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण कृष्ण ३, शनिवार, दिनांक - ०३-०९-१९६६
गाथा - ११, प्रवचन - ३६

सर्वथा एकान्त शुद्धनय के पक्षरूप मिथ्यादृष्टि का ही प्रसंग आये,... यहाँ तक आया है ? क्या कहा इसमें ? बाद में लेंगे, **इसलिए यहाँ ऐसा समझना चाहिए...** यहाँ ११वीं गाथा में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा कि यह आत्मा जो है, उसमें भेद है, गुणभेद है, पर्याय है, रागादि बाद में। ये जितने भेदभाव हैं, वे सब अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं, झूठ है। एक त्रिकाल ज्ञायकभाव सत् परमेश्वर परमानन्दमूर्ति एक स्वरूप को यहाँ सत्य कहा गया है। समझ में आया ? यह सत्य परमस्वरूप सत्य एक समय का, उसके ऊपर दृष्टि देने से दृष्टि में सम्यक् अवलोकन किया, ऐसा कहा जाता है। उसे सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया ?

एक समय में पूर्णानन्द प्रभु एक स्वरूप आत्मा, उसे यहाँ सत्य कहकर, शुद्धनय कहकर, सम्यग्दर्शन का विषय कहकर, वही आत्मा का स्वरूप है, वास्तव में वही आत्मा है, ऐसा कहने में आया है। मुख्य चीज की दृष्टि कराने के लिये। परन्तु कोई ऐसा समझ ले कि यहाँ ऐसा सत्य द्रव्य ही कहा है तो पर्याय है ही नहीं, उसमें गुणभेद है ही नहीं, पर्यायदृष्टि से रागादि है ही नहीं, अनेक आत्मा है ही नहीं, एक आत्मा सर्व क्षेत्र व्यापक है, ऐसा यहाँ कहा है, ऐसा कोई मान ले तो कहते हैं कि ऐसा कहा नहीं। समझ में आया ?

कल पाँच बोल कहे थे न ? **सर्वव्यापक एक अभेद नित्य शुद्ध ब्रह्म को वस्तु कहते हैं,...** वेदान्त एकान्त एक ही वस्तु, एक ही क्षेत्र, एक ही चीज़ में गुणभेद नहीं, एक चीज़ में पर्याय नहीं, एक चीज़ में अशुद्धता नहीं—ऐसा एकान्त जो अज्ञानी कहता है, ऐसा यदि यहाँ मान ले कि आत्मा एक ही है, सर्वव्यापक है, भेदरहित है, गुणरहित है, पर्यायरहित है, अशुद्धतारहित है। ऐसा पर्याय में है, ऐसा नहीं मानकर आत्मा अकेला ऐसा मान ले तो मिथ्यादृष्टि हो जायेगा।

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में है, उसके एक अंश को छोड़ दिया। लक्ष्य में है, उसका तो ख्याल किया नहीं, ज्ञान किया नहीं। और अकेला भूत एकान्तस्वरूप एक है, उसे ही स्वीकार किया। तो स्वीकार करनेवाली पर्याय तो है तो पर्याय को जिसने स्वीकारा नहीं (तो वह) एकान्त मिथ्यादृष्टि हो जाता है। समझ में आया?

वैसा सिद्ध हो और उससे सर्वथा एकान्त शुद्धनय के पक्षरूप... एकान्त शुद्धनय। यह तो यहाँ कहेंगे। **मिथ्यादृष्टि का ही प्रसंग आये, इसलिए यहाँ ऐसा समझना चाहिए कि जिनवाणी स्याद्वादरूप है,...** वीतराग वाणी में मुख्य प्रयोजन (सिद्ध करने) के लिये गौण करना, ऐसा स्याद्वाद कथन आता है। **प्रयोजनवश...** देखो! वीतराग की वाणी प्रयोजनवश वस्तु द्रव्य है, (उसे मुख्य करती है)। एक समय का पूर्ण स्वरूप सत्यस्वरूप है और उसमें पर्याय... पर्याय... पर्याय... पर्याय... पर्याय... पर्याय... एक समय की पर्याय भी है। परन्तु पर्याय को गौण करके प्रयोजन सिद्ध करने के लिये मुख्य द्रव्यार्थिक द्रव्य विद्यमान भूत पदार्थ, उसे मुख्य करके (कहा है)। क्योंकि उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। इसलिए पर्याय को गौण करके प्रयोजन सिद्ध करने के लिये, एक समय में ध्रुव सामान्य परमात्मा एकरूप आत्मा है, ऐसा आश्रय कराने (से) उसमें से धर्म की लब्धि होती है। समझ में आया? प्रयोजन अर्थात् धर्म की प्राप्ति, शान्ति की प्राप्ति, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की प्राप्ति (होती है)। उस प्राप्ति के प्रयोजन के कारण से एक स्वरूप त्रिकाल को भूतार्थ अर्थात् सत्यार्थ कहा और पर्याय को असत्यार्थ कहा। समझ में आया? केवलचन्दजी!

यथार्थ प्रयोजन सिद्ध करने के लिये यह कथन है। नय उलझन उत्पन्न करता है, ऐसा है नहीं। अज्ञानी अपनी कल्पना दृष्टि से देखता है कि यह व्यवहार है, पर्याय है। है, तो पर्याय के लक्ष्य से आत्मा का लाभ होता है? नहीं। पर्याय है। द्रव्य में पर्याय एक-एक अंश... अंश... अंश पर्याय है। परन्तु पर्याय के आश्रय से धर्म लब्धि की प्राप्ति नहीं होती। समझ में आया? इसलिए एक समय की पर्याय को गौण करके व्यवहार कहा। त्रिकाली मुख्य एक चीज़ को मुख्य करके भूतार्थ कहा, यह प्रयोजन—धर्म की

प्राप्ति के लिये। समझ में आया? आहाहा!

जिनवाणी स्याद्वादरूप है, वह प्रयोजनवश... प्रयोजनवश। द्रव्य सामान्य और पर्याय एक समय की, दोनों का अकेला ज्ञान करना, ऐसा नहीं। दो का ज्ञान किया उसमें क्या हुआ? उसमें प्रयोजन क्या सिद्ध हुआ? समझ में आया? सामान्य भी है (और) एक समय की अवस्था विशेष (भी है)। लो, जाना। जाना उसमें क्या हुआ? प्रयोजन क्या सिद्ध हुआ? प्रयोजन सिद्ध करने को—अपनी शान्ति की धर्म लब्धि प्राप्ति के प्रयोजन के लिये एकरूप त्रिकाल को मुख्य करके भूतार्थ कहा, पर्याय को गौण करके असत्यार्थ कहा। समझ में आया? समझ में आया या नहीं? समझ में आता है। यह तो समझ में आये ऐसा है। बालक को भी समझ में आये ऐसा है। यह भाषा ऐसी कोई कठिन नहीं।

भगवान आत्मा... दूसरी बात छोड़ दो, दूसरा आत्मा उसके घर रहा। एक आत्मा वस्तु। आत्मा के दो अंश। एक त्रिकाली ध्रुव और एक वर्तमान विशेष दशा। बस। उस त्रिकाली ध्रुव में सब गुण आ गये, अभेद। एक समय की अवस्था (और) यह आत्मा। यह आत्मा, एक समय की अवस्था और सामान्य-दो। ज्ञान करके रुक जाना कि यह है और यह है। ऐसा नहीं है। ज्ञान करके रुक जाना कि सामान्य है, उसका ज्ञान किया और विशेष का ज्ञान (किया)। परन्तु उसका प्रयोजन सिद्ध करना है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो मोक्षमार्ग मोक्ष का कारण, ऐसे कारण को उत्पन्न करना है। मोक्ष के कारण को उत्पन्न करना है। कारण उत्पन्न होवे तो मोक्षकार्य उत्पन्न होगा। तो मोक्ष का कारण उत्पन्न करना है अर्थात् यहाँ तो सुख चाहिए न? तो सुख कहीं शरीर में है? राग में है? एक समय की पर्याय में सुख वर्तमान में है?

मुमुक्षु : निरोगपने में....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी निरोगता में सुख नहीं। निरोगता उसके घर रही—शरीर में, आत्मा में कहाँ आयी? रोग होवे तो जड़ में है, निरोग होवे तो भी जड़ में, आत्मा में क्या आया? ऐ... भाई! यह पक्षघात हुआ तो शरीर को, तुमको क्या हुआ है अन्दर? वह तो जड़ की पर्याय को कहा। जान सकते नहीं?

यहाँ आत्मा को आनन्द की प्राप्ति के हेतु, अब धर्म के ठिकाने आनन्द। प्राप्ति तो आनन्द की प्राप्ति करनी है, सम्यग्दर्शन प्राप्त करना है, इसका अर्थ उसमें आनन्द आता है। सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आनन्द आता है। आत्मा सामान्य त्रिकाल वस्तु और एक समय की दशा। दो अंश है। दो अंश में एक को मुख्य करके, वही है—ऐसा सिद्ध किया है। दूसरी अवस्था वर्तमान है। (उसे) गौण करके 'नहीं है', असत्यार्थ है—ऐसा कहा है। समझ में आया? समझ में आया या नहीं इसमें? छोटाभाई!

यह तो भाई ने इसमें भी लिया है। वह नहीं? आनन्दघनजी। कल रात्रि में याद नहीं आया था? स्वसमय का भाई का याद आया न? कि स्वसमय तो तेरहवें में ही होता है। यह श्वेताम्बर है, वे भी कहते हैं और अपने तो १६४ गाथा से आता है। १६४ से १७०। स्वसमय-परसमय। वहाँ बहुत आता है। सम्यग्दृष्टि हो उसे थोड़ा राग हो, वह परसमय है। वह सूक्ष्म परसमय लिया है। और इतने को यदि अपना माने तो स्थूल परसमय है। यह अधिकार वहाँ बहुत लिया है। स्वसमय तेरहवें में होता है, ऐसा नहीं। स्वसमय अर्थात् शुद्ध चैतन्य के आश्रय से आनन्द के अनुभव की उत्पत्ति चौथे गुणस्थान से है। समझ में आया? यह आनन्दघनजी भी लिखते हैं। अरनाथ का है न? कितनी स्तुति है वह? चौदहवीं। चौदहवाँ 'अरनाथ' न? अठारहवें। देखो!

धरम परम अरनाथनो, केम जाणुं भगवंत रे,
स्व-पर समय समझावीये...
हे भगवान! स्व-पर समय को समझाओ।
स्व-पर समय समझावीये, महिमावन्त महंत रे।

यह सादा गुजराती है। समझ में आता है या नहीं?

शुद्धातम अनुभव सदा, शुद्धातम अनुभव सदा, स्व समय अेह विलास रे...

यह भूतार्थ कहा वह। एक समय में शुद्धात्म अनुभव ध्रुव एकरूप चैतन्य पर दृष्टि देने से शुद्ध अनुभव होता है।

शुद्धातम अनुभव सदा, स्व समय अेह विलास रे...

यह चौथे गुणस्थान से है। क्या कहते हैं? पण्डितजी! पण्डितजी रात्रि में नहीं

थे। कोटा... कोटा। कोटा में चर्चा हुई। रतनचन्दजी के साथ। अपने जुगलकिशोर हैं न? रतनचन्दजी के साथ चर्चा हुई। स्वसमय तो तेरहवें में है, नीचे नहीं। वह तो पूर्ण स्वसमय की अपेक्षा से तेरहवें में कहा है। समझ में आया? अरे! भगवान! क्या होता है यह? समझ में आया? यहाँ तो वह श्वेताम्बर में थे, परन्तु जरा मध्यस्थ थे तो उन्हें सिद्धान्त तत्त्व का ख्याल आ गया था। समझ में आया?

शुद्धातम अनुभव सदा, स्व समय अेह विलास रे...

इन्हें मुखाग्र है। हमारे भूराभाई हैं न? यह अन्ध हैं। इन्हें पूरी चौबीसी कण्ठस्थ है।

परबडी छांहडि जे पडै, ते पर समय निवास रे...

राग के आधीन हो तो परसमय हो जाता है, ऐसा कहते हैं। चन्दुभाई! भगवान आत्मा एक समय का... यह तो अमुक सिद्धान्त ख्याल में आ गये, हों! बाकी उसमें बहुत अन्तर था। समझ में आया? यह जो बात है कुन्दकुन्दाचार्य की, यह तो अलौकिक बात! जिसमें देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा यथार्थ, छह द्रव्य की श्रद्धा यथार्थ... समझ में आया? एक समय की पर्याय में छह द्रव्य की श्रद्धा यथार्थ न हो, छह द्रव्य की प्रतीति न हो तो उसे आत्मा की एक समय की पर्याय की प्रतीति नहीं। क्या कहा, समझ में आया? जिसे छह द्रव्य की प्रतीति नहीं, उसे आत्मा के एक ज्ञानगुण की एक समय की पर्याय की प्रतीति नहीं। एक गुण की प्रतीति इतनी है, एक समय की पर्याय इतनी है कि छह द्रव्य का निश्चय करे, एक समय में जाने, ऐसी एक समय की पर्याय में सामर्थ्य है। तो यदि कोई छह द्रव्य को न जाने, अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और आकाश—छह द्रव्य को न जाने, न माने, वह आत्मा के ज्ञानगुण की एक पर्याय को मानता नहीं। समझ में आया? और इतना माने तो भी भेददृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? वह पर्याय की मान्यता... यहाँ भेदबुद्धि लेनी है न? भाई! भेद कहेंगे यहाँ। पर्याय को भेद कहा है। त्रिकाल द्रव्य का एक अंश वर्तमान पर्याय को मानना, वह भेदबुद्धि है, मिथ्याबुद्धि है। यह आयेगा। उसमें है। देखो! क्या कहते हैं?

भारी पीला चिकना... सोना का दृष्टान्त दिया है। अपने १४वीं गाथा में आता है

न? विशेष। सोना के तीन बोल—पीलापन, चिकनापन... सामान्य। समयसार की १४वीं गाथा। उन्हें कितने ही सिद्धान्त कहीं से मिल गये। 'भारी पीलो चीकणो, कनक अनेक तरंग रे...' सोना के तीन भेद। '**परजाय दृष्टि न दीजिये, एकज कनक अभंग रे...**' पर्यायदृष्टि न दीजिए। सोना में तीन भेद, परन्तु वह पर्यायदृष्टि है। 'दृष्टि न दीजिये,...' अभंग अखण्ड एकरूप सोना को देखना। सोना को ... देखा, देखने में आया। ऐसे 'दरसण ज्ञान चरण थकी,...' भाई! अपने यह सातवीं में आया था न? सातवीं गाथा। '**ववहारेणुवदिस्सदि।**' '**ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्तं दंसणं णाणं**' यह बात ली है इन्होंने। अरनाथ की स्तुति में लिया है।

'दरसण ज्ञान चरण थकी, अलख सरूप अनेक रे...' अलख भगवान आत्मा इन्द्रिय से लक्ष्य में आवे नहीं, विकल्प से जाना न जाये, ऐसा भगवान आत्मा।

दरसण ज्ञान चरण थकी, अलख सरूप अनेक रे...
निरविकलप रस पीजिये, सुद्ध निरंजन एक रे।

तीन का लक्ष्य छोड़कर, दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भेददृष्टि है, पर्यायदृष्टि है, उसे छोड़कर... 'सुद्ध निरंजन एक, निरविकलप रस पीजिये।' भगवान आत्मा तीन भेदरूप नहीं। एकरूप एकरूप शुद्ध ध्रुव की दृष्टि करने से निर्विकल्प रस पीजिये। आत्मा का निर्विकल्प आनन्द का अनुभव करिये। यह अभेददृष्टि हो तो हो सकता है, भेददृष्टि में ऐसा अनुभव नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया? विषय सूक्ष्म है परन्तु यही पदार्थ का स्वरूप है। समझ में आया?

'परमारथ पंथ जे कहै, ते रंजे इक तन्त रे...' अभेद अभेद शुद्ध एकाकार। पर्याय भी नहीं। समझे? यह पहले आ गया 'परजाय दृष्टि न दीजिये।' यह तो बहुत वर्ष पहले सब देखा था न! सब साहित्य श्वेताम्बर का, दिगम्बर का, टीका, करोड़ों (श्लोक) सब देखा है। यह समयसार चीज़ अन्तर की अनुभव की चीज़ है। समझ में आया? 'परमारथ पंथ जे कहै, ते रंजे इक तन्त रे...' अभेद अभेद अखण्डानन्द प्रभु शुद्धनय का भूतार्थ विषय। 'व्यवहारे लखि जे रहै, तेना भेद अनन्त रे...' भाई! यहाँ भेद है। 'तेना भेद अनन्त रे...' ज्ञान, दर्शन, आनन्द और पर्यायभेद करे तो अनन्त भेद हैं। उन्हें कोई सीख लेता है।

'व्यवहारे लख दोहिलो, कांई न आवै हाथ रे...' पर्याय का लक्ष्य करने से, गुण-गुणी भेद का लक्ष्य करने से कुछ तेरे हाथ में नहीं आवे, भगवान! समझ में आया? आहाहा! 'व्यवहारे लख...' यह सब चिह्न पहले के किये हुए हैं, हों! तब वाँचा हुआ न। यह लाल चिह्न सब। बारम्बार कहाँ वाँचना। 'व्यवहारे लखि जे रहै, तेना भेद अनन्त रे... व्यवहारे लख दोहिलो, कांई न आवे हाथ रे... शुद्धनय थापना सेवतां, नवि रहे दुविधा साथ रे...' भगवान आत्मा... देखो! यहाँ अपने शुद्धनय कहा। '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ... भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' यही बात आनन्दघनजी ने वहाँ ली है। 'शुद्धनय थापना सेवतां, नवि रहे दुविधा साथ रे...' एक समय में भगवान आत्मा पूर्ण-पूर्ण एक स्वभावरूप दृष्टि देने से दुविधा न रहे। पर्याय के भेद लक्ष्य में न रहे। भेद लक्ष्य में न रहे, तब अभेद दृष्टि होने से आत्मा में निर्विकल्प आनन्द का अनुभव होता है। केवलचन्दजी! समझ में आया या नहीं? यह तो सादी भाषा है।

यहाँ कहते हैं कि **जिनवाणी स्याद्वादरूप है, वह प्रयोजनवश...** अपना आनन्द का अनुभव प्रगट करना है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर प्रभु है। अतीन्द्रिय आनन्द से परिपूर्ण प्रभु, छलाछल कहते हैं, तुम्हारे ठसाठस कहते हैं? ठसाठस। लबालब। भगवान आत्मा... जैसे तालाब में लबालब पानी भरा हो न? बड़ा सरोवर हो न? सरोवर। मान सरोवर। मानसरोवर के हंस मोती का चारा चरे, वे ज्वार नहीं खाते। समझ में आया? यह मानसरोवर के हंस मरे तो भी मोती खाये, मरे तो भी ज्वार खाये नहीं। ज्वार समझते हो? यह ज्वार। बाजरी ज्वार होती है न? भाई! यह मोती के दाने जैसी ज्वार होती है। ज्वार में लोग ऐसा कहते हैं, नहीं? मोती के दाने जैसी। परन्तु उसे हंस नहीं खाते। वे मानसरोवर के हंस मोती को चरते हैं। ऐसा कहते हैं कि भगवान आत्मा भेद के ऊपर लक्ष्य रखने से तो अपना कार्य कभी सिद्ध नहीं होता। भगवान मानसरोवर का हंस आत्मा है। समझ में आया?

भगवान आत्मा... **प्रयोजनवश नय को मुख्य-गौण करके...** मुख्य किया। सत्यस्वरूप परमात्मा एकस्वरूप भाई! प्रभु! तू पूर्ण एकरूप है। उसे मुख्य करके उसके अनुभव का चारा चराया है। समझ में आया? ऐ... पोपटभाई! सब बातें दूसरे प्रकार की हैं। कभी वाड़ा में सुनी न हो ऐसी।

मुमुक्षु : इसीलिए तो यहाँ सुनने के लिये आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची। आहाहा! आहाहा!

भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर की वाणी में प्रयोजनवश... बस, इसमें सिद्धान्त है। प्रयोजनवश—अपना प्रयोजन आनन्द की प्राप्ति करना, वह प्रयोजन है। सुख की प्राप्ति करना। दुःख का नाश करना, वह तो नास्ति से है। आनन्द की प्राप्ति करना, वह आत्मा का प्रयोजन है। तो भगवान की वाणी में प्रयोजनवश आनन्द की प्राप्ति के हेतु **मुख्य-गौण करके कहती है।** भगवान की वाणी त्रिकाल ध्रुवस्वरूप अभेदस्वरूप को मुख्य करके आत्मा वही है, ऐसा भगवान की वाणी में कहते हैं। और पर्याय है, है। (उसे) गौण करके, लक्ष्य छुड़ाया है। क्योंकि पर्याय में लक्ष्य रहेगा तो राग की और दुःख की उत्पत्ति होगी। क्या कहा, समझ में आया? माणेकलालभाई! निर्मल पर्याय का लक्ष्य करेगा तो विकल्प और दुःख उत्पन्न होगा। समझ में आया? यह तो दोपहर में बहुत चलता है। चार भाव। अभी सवेरे-दोपहर सब सरीखा चलता है। यह ११वीं गाथा तो सहज आयी और वह तो अपने खींचकर ली, पहला छोड़कर। समझ में आया?

भगवान आत्मा... भाई! यह कहीं बातें नहीं करने की। यह तो प्रयोजन सिद्ध करना है। ऐसा भगवान कहते हैं। प्रयोजन अर्थात् शान्ति की प्राप्ति करनी है, वीतराग सुख की प्राप्ति करनी है। संसारी सुख जो दुःख है, वह तो अनादि से प्राप्त है। वह पर्यायबुद्धि में है। पर्याय अर्थात् एक समय के अंश में लक्ष्य रहने से दुःखी है। राग को उत्पन्न करता है, दुःखी है। '**पज्जय मूढा हि परसमया**'। यह आया न? पण्डितजी! ९३ गाथा, प्रवचनसार। '**पज्जय मूढा हि परसमया**'। '**अत्थो खलु दव्वमओ**' भाषा की कथनपद्धति अलौकिक! '**अत्थो खलु दव्वमओ**' पदार्थ, वह द्रव्यस्वरूप है। द्रव्य, वह गुणस्वरूप है और '**तेहिं पुणो पज्जाया**' द्रव्य और गुण के आश्रय से पर्याय उत्पन्न होती है। पर्याय उत्पन्न होती है द्रव्य और गुण के आश्रय से। निमित्त से-पर से नहीं। और '**पज्जय मूढा हि परसमया**' वहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, एक समय के अंश में जो मूढ़ है, वह परसमय है, मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? तो वह परसमय एक समय की अवस्था होने पर भी गौण करके, आनन्द की प्राप्ति के हेतु त्रिकाल स्वरूप में वह

एक समय की पर्याय नहीं। ध्रुव का आश्रय लेने उसे ही सत्य कहा। मुख्य करके सत्य कहा। प्रयोजन सिद्धि करने के लिये उसे ही आगे किया, आगे किया और पर्याय को पीछे रख दिया। समझ में आया? आहाहा! समझ में आया? यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! उसमें महिलाओं को, लड़कों को न समझ में आये, ऐसी बात नहीं। बहुत सादी भाषा है। समझ में आया? ऐ... नवरंगभाई!

जिनवाणी स्याद्वाद... अपेक्षा से कहनेवाली वाणी है। वह वाणी **प्रयोजनवश नय को...** नय को, हों! **मुख्य-गौण करके कहती है।** क्यों? क्यों? अब न्याय देते हैं। भले कारण कि नहीं लिखा परन्तु वह न्याय देते हैं। मुख्य-गौण समझे? द्रव्य को मुख्य करते हैं, उसे ही सत्य कहते हैं और पर्याय को गौण करके 'नहीं' ऐसा कहते हैं। प्रयोजन सिद्ध करने के लिये। अनुभव निर्विकल्प आनन्द की प्राप्ति के लिये। समझ में आया? पर्याय लक्ष्य में दुःखी होगा। यह अभी कहेंगे, हों! **प्राणियों को भेदरूप...** देखो! भाषा ऐसी ली है। व्यवहार का पक्ष, ऐसा नहीं लिया, भाई! **प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष...** ऐसा शब्द लिया है। इसमें बहुत न्याय भरे हैं। व्यवहार का पक्ष, ऐसा नहीं, भेदरूप व्यवहार का पक्ष। अर्थात् भगवान आत्मा त्रिकाल एकरूप है, उसकी एक समय की अवस्था भेद है। तो कहते हैं कि भेद को तो लोग जानते हैं। भाई! आहाहा! यह तो आस्तिक्य की बात ली है, हों! न माने उसकी तो बात यहाँ ली ही नहीं। आस्तिक प्राणी है। प्रगटरूप एक समय की अवस्था है, उसे मानता है। हाँ, है हों! आत्मा है, ज्ञान है। वह एक समय भेदरूप है, त्रिकाल वस्तु जो एकरूप अभेद है, उसमें अंश है, वह भेदरूप वस्तु है। समझ में आया?

भेदरूप व्यवहार का पक्ष... ऐसी भाषा ली है। राग का पक्ष, ऐसा नहीं। यहाँ तो सीधे भेदरूप पक्ष, ऐसा लिया है। राग का पक्ष, ऐसा भी नहीं। भगवान आत्मा एक समय में भूतार्थ, भूतार्थ, भूतार्थ अखण्ड अभेद एक... एक... एक... एक, वह अभेद। उसे छोड़कर अनादि प्राणी को एक समय की दशा का पक्ष, भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो है। मैं इतना हूँ, मैं इतना हूँ, मैं ऐसा हूँ। क्योंकि प्रगटरूप दशा का भेदरूप अंश का पक्ष है। अप्रगट त्रिकाल द्रव्यस्वभाव क्या है, उसकी दृष्टि है नहीं। आहाहा! समझ में

आया ? स्वामी कार्तिकेय में भी ऐसा लिया है, पण्डित जयचन्द्रजी ने। समझ में आया ? यह और रह गया।

यहाँ तो कहते हैं **प्राणियों को...** जीवों को **भेदरूप व्यवहार का पक्ष...** अंशरूप भाव वर्तमान पर्याय अंशरूप भाव। भाई! उसमें यह लिया है। स्वामी कार्तिकेय में। जीव पर्याय... पर्याय... पर्याय... पर्याय को मानता है परन्तु अनादि-अनन्त एकरूप चैतन्य को कभी स्वीकार नहीं किया। आहाहा! समझ में आया ? पर को मानता है, उसका काम नहीं, राग का यहाँ काम नहीं, यहाँ तो एक अंश जो वस्तु प्रगट है, उतना तो मानता है। आहाहा! क्योंकि प्रगट है न! अंश ज्ञान की पर्याय, दर्शन की पर्याय, समझे न ? वीर्य की पर्याय... आहाहा! ऐसा **भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही है...** दिगम्बर जैन साधु होकर नौवें ग्रैवेयक गया, परन्तु उसकी दृष्टि रह गयी भेद के ऊपर। समझ में आया ? अट्ठाईस मूलगुण लिये। कहा न ? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' यह कहते हैं कि भाई! अनन्त बार अनन्त काल... क्योंकि वस्तु-द्रव्य जो है चैतन्यसृष्टि महा... क्या कहा ? श्रीमद् का वाक्य नहीं ? चमत्कार! गुप्त चमत्कार (ऐसा) श्रीमद् का एक शब्द है। चैतन्य का गुप्त चमत्कार सृष्टि के ख्याल में नहीं। गुप्त चमत्कार एक समय का पूर्ण भगवान परमात्मा वह सृष्टि के ख्याल में नहीं। सृष्टि वर्तमान दशा प्रगट है, उसे ही मानती है। समझ में आया ?

कहते हैं, **भेदरूप व्यवहार का पक्ष...** यहाँ तो अनादि अज्ञानी है परन्तु पंचेन्द्रिय मनुष्य होकर भी यह पक्ष रहता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? शास्त्र में से ऐसा निकाले, देखो! है या नहीं ? भेद है या नहीं ? यह आत्मा को कहा या नहीं ? पर्याय को भी आत्मा कहा या नहीं ? परन्तु सुन तो सही। पर्याय को कहा, वह तो व्यवहारनय से कहा है। त्रिकाल नहीं, त्रिकाल पूरा आत्मा एक समय के अतिरिक्त का ध्रुव रह जाता है। परमब्रह्म भगवान आत्मा तेरा दृष्टि का विषय मुख्य है, वह तो रह जाता है और तेरी दृष्टि में पर्याय... पर्याय... पर्याय... पर्याय... पर्याय... रहती है। समझ में आया ? **भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही...** शब्द पड़ा है, हों! अनादि काल से अंश को

मानता है, अंश को मानता है। वह तो अनादि से मानता है। उसमें क्या? नयी वस्तु तो हुई नहीं। उसमें तो तुझे कुछ लाभ हुआ नहीं। भेदरूप पक्ष में तो दु:ख हुआ। क्या?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक अंश भी सच्चा नहीं। यह तो हमारे नेमचन्दभाई कहते थे, चले गये। भेद से देखे इतना तो सच्चा है या नहीं? एक भी प्रतिशत सच्चा नहीं। क्योंकि असर्वांश को सर्वांश माना। एक अंश है, सर्वांश नहीं। एक अंश है, असर्वांश है। सर्वांश तो द्रव्य त्रिकाल और एक समय की पर्याय दो होकर सर्वांश प्रमाण का विषय है। एक ही समय की पर्याय मान, उसने त्रिकाली ध्रुव को माना नहीं। क्योंकि वह प्रगट नहीं। महा चमत्कारी चीज़ जो महा शक्ति का भण्डार (है, उसकी) दृष्टि नहीं, ख्याल नहीं। अभेद चीज़ क्या है, उसका अवलम्बन लेने से लाभ (क्या, उसका) ख्याल भी नहीं। शास्त्र वाँचकर भी उसमें से ऐसा निकाले। समझ में आया?

भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही है... देखो! **और...** उसका पक्ष तो स्वयं से है, ऐसा कहते हैं, भाई! **और उसका उपदेश...** सुननेवाले और सुनानेवाले ऐसे मिले। एक तो उसका पक्ष है, अंश के ऊपर बुद्धि है। त्रिकाल ध्रुव अभेद की तो खबर नहीं। भेद का व्यवहार का पक्ष अनादि से है। **और उसका उपदेश भी...** उसका उपदेश भी। 'भी' क्यों लिया? वह पक्ष तो है, उसे दृढ़ करने को **बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं।** हाँ, भाई! क्या नहीं करना? ज्ञान की पर्याय अपनी है या नहीं? अंश है या नहीं? राग करना या नहीं? भक्ति करना या नहीं? पूजा करना या नहीं? यह करते-करते होगा या नहीं? उपदेश भी ऐसा मिला, पक्ष तो है। रोती थी और पिहरिया (पीहरवाले) मिले। समझते हो? रोती हो, उसमें उसके पिहरिया (मिले)। पिहरिया समझते हो? माता-पिता। माता-पिता मिले तो ठीक से चीख मचाये। ऐसा यह तो मानो पक्ष तो है। कहा न? भाई ने कहा न? देवचन्दजी।

द्रव्य क्रिया रुचि जीवडा जी, भाव धरम रुचि, उपदेशक पण तेहवा,
शुं करे जीव नवीन रे चन्द्रानन जिन, सांभळिये अरदास।

चन्द्रानन भगवान विराजते हैं। बीस तीर्थंकर में भगवान विराजते हैं। सीमन्धर

भगवान तो पहले। चन्द्रानन भगवान विराजते हैं। कितने नम्बर में हैं? बारहवें। बारहवें चन्द्रानन भगवान। यह सब अंक बहुत खबर हो। चन्द्रानन भगवान बीस तीर्थंकर के अन्दर वर्तमान में विराजते हैं। उनके लक्ष्य से स्तुति की है। हे नाथ! 'द्रव्यक्रिया रुचि जीवडा' मन्द कषाय करो, भक्ति करो, पूजा करो, दया करो, व्रत पालन करो, ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसे मूढ़ प्राणी द्रव्यक्रिया रुचि में पड़े हैं। 'उपदेशक पण तेहवा' भाव रुचि... भगवान चिदानन्द प्रभु कौन है, उसकी धर्म की दृष्टि तो है नहीं। 'उपदेशक पण तेहवा' पारस्परिक एक-दूसरे मिले तो भी ऐसा कहे, बात बराबर है। यही करने का है। अनादि से कुछ किया नहीं, इसलिए पहले कषाय मन्द करो, करते-करते धर्म हो जायेगा। ऐ... केवलचन्दजी!

कहते हैं, उपदेशक भी। 'भी' क्यों कहा? उसे तो मानते थे, (उसमें उपदेशक भी वैसे) मिल गये। बराबर है, हों! ऐसा होगा? यह तो निश्चयाभासी हो जाता है, फलाना हो जाता है। अकेला निश्चय... निश्चय... निश्चय... अरे! सुन तो सही। निश्चय, वह सत्य और व्यवहार, वह उपचार से सत्य है। यथार्थ में सत्य है नहीं। समझ में आया? यहाँ तो कल नहीं आया? ध्रुव आत्मा, वही वास्तव में आत्मा है; पर्याय आत्मा, वह वास्तव में आत्मा नहीं। सुन न! समझ में आया? राग तो कहाँ रहा, तेरी क्रिया दया, दान और व्रत के परिणाम तो (कहीं रहे), निमित्त तो कहीं रहा। निमित्त बदल डाला, ऐसे बदल डाला, दुकान छोड़ दी, स्त्री छोड़ दी। क्या छोड़ा है? सुन तो सही। अज्ञान जो पकड़ा है, उसे तो छोड़ा नहीं और बाहर की चीज़ क्या छोड़ी?

भगवान आत्मा 'भाव धर्म रुचि, उपदेशक पण तेहवा।' यहाँ भी कहते हैं, देखो! 'उपदेश भी बहुधा...' बहुधा, हों! सम्यग्ज्ञान का उपदेश देनेवाले बहुत थोड़े, बहुत थोड़े। यह कहेंगे। बाकी तो बहुधा में... आयेगा न? फिर स्पष्टीकरण करेंगे। बहुधा तो जहाँ देखो वहाँ यही बात। व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार... यह तो भेदरूप कहते हैं, वह तो अभी राग की बात करते हैं। क्रिया धर्म में, पुण्य में धर्म है। लक्ष्य आत्मा के ऊपर करना, यह बात तो रही नहीं। बस, करो, करो। करते... करते... करते अपने संसारी गृहस्थ हैं। गृहस्थ को पाप बहुत होता है तो पाप टालने के पहले यह करना। तो

आत्मा का क्रम-क्रम से मोक्ष हो जायेगा। सुधार करते-करते सम्यग्दर्शन हो जायेगा। समझ में आया? ऐसा नहीं होता, भाई! ऐसा नहीं। वह तो राग है। यहाँ तो भेद का पक्ष कहा है। त्रिकाली अभेद छोड़कर अकेली पर्याय को माना तो पर्याय को माननेवाले का लक्ष्य जाता है राग के ऊपर और बाह्य के ऊपर, क्रिया के ऊपर लक्ष्य तो जाता है। समझ में आया? आहाहा!

गजब गाथा है न! जैनदर्शन का मूल है, मूल यह। वस्तुदर्शन ऐसा है। जैनदर्शन कोई नयी कल्पित वस्तु नहीं। वस्तु ऐसी है। एक द्रव्य अखण्डानन्द प्रभु और एक समय की अवस्था। अवस्था का पक्ष और लक्ष्य अनादि से है। भगवान आत्मा का लक्ष्य और पक्ष और दक्ष है नहीं। त्रिकाल कौन है, अभेद कौन है। लक्ष्य ही नहीं, पक्ष ही नहीं और ज्ञान ही नहीं। समझ में आया?

इसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी... वापस। और **परस्पर...** वह कहे, ऐसा होगा, हों! (यह कहे), बराबर है। दोनों व्यक्ति हाँ वह हाँ। अमरचन्दजी! पक्का होता है, दृढ़ उल्टा। अधिक लोगों में चर्चा करने जाओ, वोट लो सबका तो उसके नम्बर में सब यह आता है। राजमलजी! सत् को संख्या की आवश्यकता नहीं। सत्य को यथार्थपने की आवश्यकता है। संख्या की आवश्यकता नहीं। इतने माने तो सत्य और इतने न माने तो असत्य। वह किसी के साथ सम्बन्ध है नहीं। सत्य को पुण्य की भी आवश्यकता नहीं। बहुत प्रसिद्धि हो तो उसका सत्य है, बहुत प्रसिद्धि न हो, उसका सत्य नहीं। ऐसी भी चीज़ नहीं। समझ में आया? दुनिया में बहुत प्रसिद्ध हुआ, बहुत प्रसिद्ध हुआ तो उसका सत्य है। उसके साथ सम्बन्ध नहीं। वह तो पुण्य के कारण से प्रसिद्धि हो जाती है। उसके साथ सत्य को सम्बन्ध नहीं। कदाचित् पुण्य मन्द हो और प्रसिद्धि न हो, इससे कहीं सत्य चला जाता है? सत्य को पुण्य की आवश्यकता नहीं, सत्य को प्रसिद्धि की आवश्यकता नहीं, सत्य को संख्या की आवश्यकता नहीं। लालचन्दजी! वहाँ भोपाल में बहुत प्रचार करते हैं। आस-पास में। समझ में आया? लालचन्दजी! वहाँ बहुत करते हैं। भोपाल आस-पास।

कहते हैं, अनादि काल से (पक्ष तो है और) **उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी**

परस्पर करते हैं। दो बातें आ गयीं। एक तो भेद का पक्ष था। उपदेश भी ऐसा मिलता रहा। मिलता रहा। पोषण वह मिलता रहा। केसरीचन्दजी! अब मिले वापस भगवान। परन्तु यह वापस अब भगवान मिले। **और जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश...** शास्त्र में देखो चार अनुयोग में तो **शुद्धनय का हस्तावलम्बन (सहायक) जानकर बहुत किया है;...** निमित्त का उपदेश, भेद के कथन बहुत हैं। भेद के ही कथन बहुत हैं। (निश्चय के) कथन तो बहुत अल्प आते हैं। अभेद... अभेद... अभेद... भेद के कथन, गुणभेद, पर्यायभेद, रागादि—ऐसे अनेक कथन जिनवाणी में आते हैं। कहा? शास्त्र में खोजने जाये तो यही मिले। व्यवहार के कथन बहुत (आते हैं)। वहाँ पकड़ जाता है। उसमें लिखा है न! ... लिखा है। भगवान दीक्षा लेते हैं। खबर नहीं? वस्त्र उतारते हैं या नहीं? उतारते हैं या नहीं? क्या लिखा है उसमें? नहीं लिखा? 'छोड़्या नवसर हार...' आता नहीं नेमिनाथ भगवान में? क्या आता है ऐई? 'तोड्या कंकण दोरडा, तोड्या नवसर हार,' राजमति को देखकर वैराग्य होकर फिर (चले जाते हैं)। 'तोड्या कंकण दोरडा, छोड्या नवसर हार।' छोड्या? लिखा है या नहीं? भाई! तोड़ा-फोड़ा नहीं। सुन तो सही। यह तो उसके कारण से क्रिया होती है। उसमें विकल्प आया। परन्तु विकल्प है और वह छूट गये। तो विकल्प कर्ता है और छूटने की क्रिया हुई, वह कर्म है—ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? अरे! शास्त्र के कथन इतने आते हैं।

एक व्यक्ति यहाँ कहता था। था न? चाँदमलजी थे न? अब तो गुजर गये इसलिए दिक्कत नहीं। चाँदमलजी थे न? बात तो... क्या कहा? अकाट्य बात है। और दो दिन हो (और कहे), परन्तु भगवान ने वस्त्र उतारे थे, हों! इसलिए यह बात खोटी नहीं। अरे भाई! वस्त्र तो पुद्गल है। पुद्गल की पर्याय यहाँ से नीचे उतरना, वह विकल्प का कार्य है?

मुमुक्षु : हाथ का कार्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाथ तो जड़ है। जड़ वह परवस्तु है। हाथ कर्ता और कपड़ा उतरना कार्य — ऐसा है नहीं। एक द्रव्य कर्ता और दूसरा कर्म, ऐसा है नहीं। अमरचन्दजी! आहाहा!

मुमुक्षु : कन्धा....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ कन्धा पकड़े ? धूल। कन्धा था कब आत्मा को ?

यहाँ तो कहते हैं, यह तो विशेष है। व्यवहार का उपदेश जिनवाणी में राग की प्रधानता से भी बहुत व्यवहार के कथन हैं। लो। चरणानुयोग में जितने कथन आवे, पंच महाव्रत इतने, इतने, उनमें दोष लगे, अतिचार दोष लगे तो प्रायश्चित्त लेना। वह व्रत तो राग है, जहर है। उसमें और दोष लगे अतिचार, उसका और प्रायश्चित्त लेना। ऐसे अधिकार के पार नहीं होते। समझ में आया ? ऐई ! माणेकलालजी ! आहाहा ! कथन ऐसा आवे। व्यवहार के कथन शास्त्र में बहुत (आते हैं)। पंच महाव्रत और वापस उनकी भावना और वापस उनके अतिचार, उनके प्रायश्चित्त... आहाहा ! कितने कथन ! समझ में आया ? ऐसे पालन करना, देखकर चलना, साढ़े तीन हाथ देखकर चलना। देखकर चलना ? चल सकता है ? ज्ञान पर्याय शरीर को चला सकती है ? समझ में आया ? और तुझे राग की मन्दता हो तो जीव की दया पलेगी। हिंसा नहीं होगी। ऐसा आवे। क्या तेरे राग से वहाँ दया पलती है ? व्यवहार के कथन निमित्त के देखकर जिनवाणी में शुद्धनय का हस्तावलम्ब (जानकर बहुत कहे हैं)। हस्तावलम्ब अर्थात् निमित्त। राग की मन्दता है। पर्याय का अंश है, वह भी निमित्त है। त्रिकाल ज्ञायक-स्वरूप में एक समय की पर्याय भी निमित्त है। समझ में आया ? 'शुद्धनय का हस्तावलम्ब (सहायक) जानकर...' सहायक जानकर (अर्थात्) निमित्त। 'बहुत किया है....'

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हस्तावलम्ब का अर्थ, है निमित्त। एक व्यक्ति चढ़ता था। चढ़े न ? कठोडा की लकड़ी होती है न ? कठोड़ा समझते हो ? ऊपर चढ़ते हैं, वहाँ रखते हैं न ? चढ़ते-चढ़ते हाथ ऐसे रखे। परन्तु वह चढ़ाता है ? समझ में आया ? निमित्त देखकर भगवान की वाणी में भी व्यवहार का, अंश का, राग का, निमित्त का, व्यवहार का बहुत उपदेश आया। अब तीन मिल गये। एक तो भेद का पक्ष था। परस्पर भी यह बात। हाँ, हाँ, वह कहे हाँ तो यह कहे, हाँ बराबर है, बराबर है। वे महाराज तो एक आत्मा... आत्मा (करते हैं)। कुछ साधन बतलाते नहीं। इसमें भी आया है न ? भाई ! यशोविजय

दिगम्बर के लिये कहते हैं, दिग्पट में (कहते हैं)। वे लोग—दिगम्बर लोग अध्यात्मी अकेला आत्मा... आत्मा। समझे? परन्तु साधन क्या, यह तो कहते ही नहीं। ऐसे ८४ बोल में लिखा है। दिग्पट ८४ बोल। आत्मा अखण्डानन्द प्रभु... समझे न? अध्यात्म की बात करते हैं परन्तु साधन-फाधन क्या, यह तो बतलाते ही नहीं। साधन, सुन न! अन्तर भगवान आत्मा में साधन नाम का गुण पड़ा है। गुण पड़ा है। गुणी का आश्रय करने से साधन अर्थात् करण होकर आत्मा की दशा प्रगट होती है। साधन-फाधन तेरे राग के निमित्त से कथन शास्त्र में है। केवलचन्दजी! क्या करना? (गृहस्थ तो) पाप में पड़ा है। चूल्हे का पाप, स्त्री का पाप, पानी का... पानी समझे न? जल।... का पाप। कितने पाप! तो उसे धर्म कुछ दूसरा होगा या नहीं? नहीं। गृहस्थ और मुनि के लिये धर्म तो एक ही है। कम, थोड़ा-बहुत... उसे तो आत्मा के आश्रय से दोनों को धर्म होता है। दूसरा, तीसरा कोई प्रकार है नहीं।

और जिनवाणी में... समझ में आया? **व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्बन (सहायक) जानकर बहुत किया है;...** कितना कथन आवे। ईर्यासमिति, भाषासमिति। ऐसे बोलना। समझ में आया? ऐसे आहार लेने जाना। यदि वहाँ कोई जीवांत दिखाई दे, चींटी आदि तो नहीं लेना। हरितकाय दिखाई दे तो नहीं लेना। देखो! लेना, न लेना। यह लेना, यह न लेना। कितने कथन शास्त्र में! क्या ले सकता है? क्या दे सकता है? छोड़ सकता है? परन्तु इसे राग की मन्दता की भूमिका में ऐसा सदोष आहार लेने का विकल्प होता नहीं। निर्दोष लेने का विकल्प (होता है)। उस विकल्प को बताने के लिये, ऐसा लेना और नहीं लेना कहा। उसे पकड़ ले कि हम कर सकते हैं, तो मूढ़ है। भेद व्यवहार का पक्ष करनेवाला मिथ्यादृष्टि है। यही बात चलती है। समझ में आया? परसमय। लो! भगवान ने कहा, ज्ञानचेतना तेरहवें में है। भाई! पंचास्तिकाय में आया। पंचास्तिकाय में ऐसा आया कि ज्ञानचेतना केवली को है। ऐसा आया है, लो। बस, तो नीचे ज्ञानचेतना है ही नहीं? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य पंचास्तिकाय में कहते हैं। यहाँ तो चौथे गुणस्थान में ज्ञानचेतना है। ज्ञानचेतना बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। ज्ञान अन्तर में एकाग्र हुए बिना अपने को चेतना... चेतना अर्थात् अनुभव करना, इसके बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। कहाँ मुख्यरूप से कौन सा कथन कहा (उसे समझे

नहीं)। पूर्ण ज्ञानचेतना को... जाओ! स्वसमय तेरहवें में पूर्ण होता है। नीचे होता नहीं। आहाहा! व्यवहार के पक्ष स्थापित करे। किसके साथ चर्चा इसमें करे? समझ में आया?

यह तो अपने नियमसार में आ गया। स्वसमय-परसमय के साथ वाद नहीं करना। भाई! यह तो अन्तर की बात है। किसे बैठेगी? और उस व्यक्ति के प्रति तो द्वेष है नहीं। सामने सब भगवान हैं। पर्याय में भूला है। प्रभु तो पूरा पड़ा है। किसी के प्रति समभाव इसका चला न जाये। वीतरागभाव है। वह आत्मा है और भूल का दुःख तो उसे सहन करना पड़ता है न! भूल का दुःख तो वह सहन करता है। उसके ऊपर तिरस्कार करना, ऐसा नहीं होता। एक तो विपरीत दृष्टि से दुःखी होता है, स्वयं से दुःखी है, उसे दुःखी करने का कारण नहीं। करुणाबुद्धि है। समझ में आया? परन्तु वाद-विवाद से पता लग जाये, ऐसा है नहीं। छोड़ दे। भाई! फिर ऐसा कहेंगे कि उसे आता नहीं इसलिए छोड़ा। लाख बार नहीं आता। कह न अब। उसमें क्या है? यहाँ कहाँ नाक छूटती है? नाक ही कहाँ है आत्मा को? कीर्ति आत्मा में है नहीं। कीर्ति-अकीर्ति सब पुद्गल की पर्याय की बात है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का...** शुद्धनय अर्थात् भूतार्थ त्रिकाल का निमित्त जानकर **बहुत किया है; किन्तु उसका फल संसार ही है।** तीनों का फल संसार। एक समय के अंश-पर्याय को मानना, वह भी मिथ्यादृष्टि, उसका फल संसार। राग से आत्मा को लाभ मानना, वह मिथ्यादृष्टि। (उसका फल) संसार। और परस्पर उपदेश में कहे कि व्यवहार बराबर है, बराबर है, उसका फल संसार। भगवान की वाणी में आया कि पंच महाव्रत और ऐसा और ऐसा शुद्ध अनुभव की दृष्टि हो, स्थिरता हो तो ऐसे पंच महाव्रत आते हैं। उनका फल भी संसार है। समझ में आया? संसार अर्थात् पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! यहाँ तो अभी वीतराग की मूर्ति देखकर समकित होता है और मिथ्यात्व के टुकड़े हो जाते हैं। ऐसा तो उपदेश (करे)। अरे! भगवान! भगवान साक्षात् विराजते हैं, हों! उनके दर्शन करने से तो अपने में शुभभाव होता है। उस शुभभाव से सम्यग्दर्शन हो, ऐसा तीन काल-तीन लोक में नहीं।

समझ में आया? ऐसा कहोगे तो लड़के पूजा, भक्ति नहीं करेंगे। ऐई... छोटाभाई! तुम तो करो, पीछे के नहीं करेंगे। अब नहीं करने की (कहाँ बात है)। और सत्य के कारण से असत्य करे, ऐसा कौन कहता है? सत्य तो सत्य ही रहेगा। तीन काल-तीन लोक में सत्य रहेगा। परमेश्वर के पास सत्य रहेगा, इन्द्र सत्य मानते हैं। गौतम गणधर आदि सन्त। सीमन्धर भगवान के गणधर हैं न अभी। सब मानते हैं। उसमें क्या है?

यहाँ तो जिनवाणी में व्यवहार कहा, उसका फल संसार (कहा)। चिल्लाहट मचा जाये। केवलचन्दजी! राड को क्या कहते हैं? पुकार... पुकार। भगवान ने किसलिए कहा? निमित्त देखकर कहा। यह तो पहले कहा। समझ में आया? निश्चय भगवान अपना आश्रय करके अनुभव करना, वह मोक्षमार्ग। उसमें व्यवहार आता है। भक्ति, पूजा, दान, दया का शुभभाव आता है। ऐसा निमित्त को देखकर व्यवहार को स्थापित किया, परन्तु उसका फल तो बन्धन ही है। समझ में आया? आहाहा!

अरे! वीतराग क्या कहते हैं, इसकी खबर नहीं और हम वीतराग के भगत हैं। समझ में आया? वीतराग कहे, उससे विरुद्ध कहे, गाली देता है। हम वीतराग को मानते हैं! अरे भगवान! माँ-बाप की माला गिने, माँ-बाप कहे उसे माने नहीं। संसार में हमारे वहाँ बात आती है। महाजन माँ-बाप सच्चे परन्तु मेरा खूँटा हटेगा नहीं। खिल्ली समझे? जमीन होती है न? जमीन। थोड़ी जमीन अपनी थी और थोड़ी महाजन की थी। महाजन होता है न? उसकी थोड़ी थी। उसमें जरा कीला मार दिया। उसकी जमीन में। मकान व्यवस्थित नहीं होता हो तो एकाध-दो सूत दूसरे की मिल गयी। महाजन माँ-बाप सच्चे परन्तु मैंने कीली लगायी जमीन से दो फीट दूर, वह नहीं हटेगी। परन्तु तेरे बाप की कहाँ थी तो (कीली) मारी? हे महाजन! आता है। पंचास्तिकाय में आता है। महाजन आता है, हे महाजन! यह कर। आत्मा की ओर ढल! आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि **उसका फल...** किसका फल? भेदरूप व्यवहार का। भेदरूप व्यवहार। यहाँ सूक्ष्म बात की है। अकेला व्यवहार कहे तो रागादि (पकड़े)। त्रिकाल में एक अंश है और उसका पक्ष करे तो उसका फल संसार है। पर्याय का पक्ष करे तो भी उसका फल संसार है। समझ में आया? पर्याय के आश्रय से दुःखी होता है, राग ही

उत्पन्न होता है। पर्याय के आश्रय से सम्यक्त्व कहाँ से हो? समझ में आया? कहते हैं,... वह तो यह कहा।

शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं... इसके सामने बात ली। **भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही है...** एक बात। इसके सामने **शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं...** चैतन्यमूर्ति अभेद अखण्डानन्द ध्रुव का लक्ष्य और पक्ष कभी किया नहीं। समझ में आया? दिगम्बर मिथ्यादृष्टि मुनि होकर भी नौवें ग्रैवेयक गया (परन्तु) शुद्धनय का पक्ष आया नहीं। एक चैतन्यप्रभु अखण्ड अभेद, अभेद, वही शरण लेने योग्य है, वही आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं।

और उसका उपदेश भी विरल है... उसमें कहा था, **और इसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं।** व्यवहार का। यहाँ उसका उपदेश विरल है—अभेद का उपदेश तो बहुत थोड़ा, बहुत थोड़ा। जहाँ देखो वहाँ दुकान में व्यवहार ही दिखता है, भेद ही दिखता है। अभेद की दुकान बहुत थोड़ी मिले, ऐसा कहते हैं। 'उपदेश भी विरल है-कहीं-कहीं है।' कोई-कोई सन्त मुनि ज्ञानी, किसी-किसी स्थान में, भगवान भूतार्थ सत्य है, एक समय का प्रभु आत्मा का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा कुछ-कुछ उपदेश कहीं-कहीं होता है। सर्वत्र नहीं। समझ में आया? उपदेश भी विरल, बहुत थोड़ा। 'तत्त्वरसिक जन थोडला, नव ... ऐ जाणो छो जिनराजजी, ऐ सघळो विषवाद रे चंद्रानन जिन, सांभळिये अरदास...' प्रभु! तेरे विरह में भरतक्षेत्र में तत्त्वरसिकजन थोड़े से रह गये। 'तत्त्वरसिक जन थोडला जी... ...' लाखों, करोड़ मनुष्य अकेले संवाद झगड़े और व्यवहार और निमित्त में पड़े हैं। 'जाणो छो जिनराजजी प्रभु'। यह झगड़ा भरतक्षेत्र का विसंवाद, आप तो ज्ञाता केवली हो। हम क्या कहें? हम भक्त तो प्रयोजन की पुकार करते हैं। समझ में आया? इसलिए भगवान ने क्या कहा है... यह बात भगवान करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण कृष्ण ४, रविवार, दिनांक - ०४-०९-१९६६
गाथा - ११, १२ प्रवचन - ३७

समयसार में ११वीं गाथा चली। उसका भावार्थ है, भावार्थ। उसमें क्या कहा है, यह प्रचलित भाषा में पण्डित जयचन्द्रजी ने लिखा है। देखो! व्यवहार और निश्चय दोनों का स्पष्टीकरण करते हैं। एक तो आत्मा एकरूप त्रिकाल स्वभाव है, उसका कभी पक्ष लिया नहीं। अनादि से। भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो जीव को अनादि से है। समझ में आया? यह भेदरूप का अर्थ, आत्मा में पर्याय जो होती है, नरकगति आदि चार गतियाँ वह पर्याय तो एक ओर रखो। वह भी पर्याय है। राग-द्वेष के परिणाम होते हैं, वह भी पर्याय है। दो। और तीसरी, मतिज्ञान आदि की पर्याय जो होती है, ऐसी भेदबुद्धि तो अनादि काल से अज्ञानी की है। समझ में आया? क्योंकि अज्ञानी को वह प्रगट प्रसिद्धि में देखने में आयी है। मैं नरकगतिवाला हूँ। एक। मैं रागवाला हूँ। दो। मैं एक समय की अवस्था जितना हूँ। तीन। समझ में आया? ऐसा व्यवहारनय का पक्ष... शब्द ऐसा लिया है, **प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष...** ये तीनों भेद हैं। समझ में आया? त्रिकाल द्रव्य एक स्वरूप है, उसमें से ज्ञान की एक पर्याय, दर्शन की पर्याय, चारित्र की पर्याय या कोई भी अस्तित्व आदि की एक-एक समय की पर्याय, वह पर्याय है, वह त्रिकाल की अपेक्षा से भेद है। अखण्ड अभेद एक स्वरूप में एक समय की पर्याय निर्मल हो, अस्तित्वगुण आदि की या रागादि की मलिन हो, या नरकगति आदि का उदयभाव हो, परन्तु सब पर्यायें त्रिकाल की अपेक्षा से भेदरूप है। तो भेद का पक्ष, भेदरूप व्यवहार का पक्ष जीव को अनादि काल से है। समझ में आया? एक (बात)।

दूसरा, उसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं।

मुमुक्षु : सर्व प्राणी का अर्थ क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्व (अर्थात्) एक ज्ञानी के अतिरिक्त। अज्ञानी प्राणी अनादि

काल से अपने को अंशरूप देखा है। त्रिकाल ज्ञायक चैतन्य ध्रुव अभेदस्वरूप की दृष्टि तो कभी की नहीं तो ऐसा उपदेश भी परस्पर करते हैं (कि) एक समय की अवस्था, वही आत्मा। समझ में आया? उसका आश्रय करने से आत्मा को लाभ होगा। ऐसे व्यवहार पक्ष का उपदेश अनादि काल से जीव कर रहे हैं। एक तो उसका पक्ष है और परस्पर में ऐसा ही उपदेश मिलता है। (पक्ष) दृढ़ हो जाता है। इसलिए तो कहते हैं। समझ में आया? दो (बातें)।

और जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्बन (सहायक) जानकर बहुत किया है;... जिनवाणी में भी व्यवहार का उपदेश शुभभाव का, अंश का स्पष्टीकरण, क्षयोपशम ज्ञान के अंश का (स्पष्टीकरण) ऐसी बहुत बात शास्त्र में की है। यह व्यवहार का उपदेश निमित्त जानकर बहुत किया। **किन्तु उसका फल संसार ही है।** तीनों का फल संसार है। भगवान आत्मा अपना एक स्वरूप अभेद, (उसका आश्रय कराने के लिये) यहाँ लिया है कि व्यवहार अभूतार्थ है। व्यवहार में ये तीन बोल आये। नरकगति आदि, गति। रागादि और निर्मल पर्याय। मति आदि की पर्याय तो क्षयोपशमभाव है न? निर्मल है। वह वस्तु नहीं, अभूतार्थ है। समझ में आया? और गुण-गुणी का भेद भी अभूतार्थ है। चौथा बोल है। समझ में आया? आत्मा आधार है और अनन्त गुण उसमें आधेय—रहते हैं। ऐसा भेद करना, वह भी व्यवहारनय है। समझ में आया? चन्दुभाई!

कहते हैं, एक तो उसका पक्ष है, उपदेश भी ऐसा ही मिलता है और जिनवाणी में भी व्यवहार का ही उपदेश बहुत चलता है। भेद करके बतलाना। समझ में आया? संयोग से उसे दिखलाना, ऐसी बात उपदेश में व्यवहार से बहुत आती है। परन्तु उसका फल संसार है। लो, जिनवाणी में शुद्धनय का निमित्त देखकर, उस निमित्त का लक्ष्य करे और व्यवहार का लक्ष्य करे और भेद के ऊपर दृष्टि रहे तो संसार ही है। समझ में आया? तीन बोल (हुए)। अब तीन के सामने (कहते हैं)।

शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं... भेदरूप व्यवहार का पक्ष अनादि से है। एक बात। सामने, **शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं...** भगवान भूतार्थ एक समय में

पूर्ण स्वरूप ज्ञायकभाव एकरूप शक्ति का पूरा तत्त्व अभेदरूप, उसका पक्ष तो कभी आया नहीं। उसका—व्यवहार का पक्ष अनादि का है, यह पक्ष आया नहीं। समझ में आया? व्यवहार का उपदेश बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं कि देखो, भाई! राग करो, पुण्य करो, दया, दान करो। विकास करो, राग मन्द पड़े तो ज्ञान का क्षयोपशम होने से आत्मा को लाभ होगा। ऐसा व्यवहार का उपदेश अज्ञानी प्राणी सर्व परस्पर करते हैं। यह शुद्धनय का उपदेश विरल है। सामने कहा। वह (व्यवहार का) उपदेश बहुत है, बहुधा करते हैं तो इसका उपदेश विरल है। कहीं-कहीं (पाया जाता है)। भगवान आत्मा अभेद भूतार्थ वस्तु सत्य वस्तु, सत्य वस्तु त्रिकाल सत्य, इस अपेक्षा से, हों! पर्याय असत्य त्रिकाल की अपेक्षा से। पर्याय है सही, परन्तु उस त्रिकाल स्वरूप का उपदेश—अभेद का आश्रय लेना, ध्रुव का अवलम्बन लेना, परम कारणप्रभु का आश्रय लेना, उससे लाभ है, ऐसा उपदेश विरल है।

मुमुक्षु : कब से?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से। राजमलजी! अनादि की बात करते हैं न!

दो बोल आये। व्यवहार का उपदेश सर्व प्राणी परस्पर करते हैं। उसका पक्ष है। क्यों देरी लगी? जयपुर के अभी रात्रि में आनेवाले हैं अभी क्या है? वे तो रात्रि में आनेवाले हैं। अभी हमारे आये या नहीं? मलूकचन्दभाई कहाँ गये? यहाँ नहीं दिखाई दिये इसलिए कहा, वहाँ रुके हैं या क्या? मलूकचन्दभाई को काम हो, तुम्हारे क्या है? समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा अनादि काल का अंश के प्रकार में अंशरूपी भेद, भेदरूपी व्यवहार, ऐसा कहा। अंशी जो त्रिकाल वस्तु है, उसका लक्ष्य किया नहीं। समझ में आया? पर्याय को अंश कहा है न? भाई! पर्याय है न। भले क्षयोपशमभाव की हो, अंश है। वह व्यवहार है। उसका—भेदरूप व्यवहार का पक्ष अनादि का है। समझ में आया? और उपदेश भी परस्पर करते हैं। जिनवाणी में भी भेद करके दिखलाना, ऐसा उपदेश बहुत आता है। उसका फल संसार है। क्या आया?

शुद्धनय का **उपदेश भी विरल है...** विरल की व्याख्या। 'कहीं कहीं पाया जाता

है।' कहीं-कहीं—विरल। भगवान आत्मा अभेद चिदानन्द प्रभु अनन्त गुण की खान है। उसमें गुणभेद भी नहीं। ऐसे अभेद चेतन का उपदेश विरल है। पक्ष नहीं, उपदेश विरल है। पक्ष नहीं, शुद्धनय का पक्ष नहीं, उपदेश विरल है। समझ में आया? अब तीसरा, **इसलिए...** इस कारण से। यह दो कारण दिये। **उपकारी श्रीगुरु ने...** आहाहा! भगवान सन्त कुन्दकुन्दाचार्य आदि महा उपकारी सन्तों ने। समझ में आया? **उपकारी श्रीगुरु ने...** कृपा करके। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है न? हमारे गुरु, परमगुरु सर्वज्ञदेव, अपरगुरु गणधरदेव से लेकर हमारे गुरु (पर्यन्त) हमारे ऊपर (कृपा करके), कृपा करके—अनुग्रह करके हमको अनुशासन किया। भाई! आत्मा शुद्ध है। हमको शुद्धात्म तत्त्व का उपदेश दिया। हमारे गुरु ने हमारे ऊपर मेहरबानी करके हमको यह उपदेश दिया। यहाँ यह कहते हैं, पण्डित जयचन्द्रजी स्पष्टीकरण करते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य आदि गुरु ने यह उपदेश दिया। समझ में आया?

उपकारी गुरु ने—श्रीगुरु ने **शुद्धनय के ग्रहण का...** देखो! **शुद्धनय के ग्रहण का फल...** उसमें व्यवहारनय के ग्रहण का फल संसार (था)। तो व्यवहारनय का विषय क्यों कहा? फल संसार होवे तो। भाई! भेद से बतलाने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं। भेद से बताते हैं। यह ज्ञान, यह दर्शन, यह आनन्द — ऐसा बतलाया परन्तु वह भेद है। भेद से भेद का लक्ष्य करेगा और भेद का आश्रय करेगा तो मिथ्यादृष्टि होगा। समझ में आया? एकान्त, हों! अभेद की दृष्टि होने के बाद भेद का ज्ञान, आश्रय करे तो वह तो व्यवहारज्ञान हुआ। समझ में आया? है न? भाई! पंचाध्यायी में। ऐसा कि किसी-किसी को... है न? आश्रय। क्योंकि वह किसी-किसी को आश्रय होता है। यह आयेगा इस १२ में। किसी-किसी का अर्थ, अपनी पर्याय पूर्ण न हुई हो, तब तक अशुद्धता है और शुद्धता के अंश में वृद्धि होती है, ऐसा ज्ञात होता है। समकिती को ज्ञात होता है कि ऐसा व्यवहार है। शुद्धता अल्प है, अशुद्धता है। अशुद्धता घटती है, शुद्धता बढ़ती है। इतना ज्ञान करना, वह भी व्यवहार है। तो वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। परन्तु जानने के लिये आश्रय किया (कहा)। निश्चयनय का ज्ञान है, उसके साथ व्यवहार ज्ञान करके प्रमाणज्ञान किया। समझ में आया? परन्तु उसका आश्रय करने से लाभ है, ऐसी बुद्धि नहीं।

पश्चात् कहते हैं, **श्रीगुरु ने शुद्धनय के ग्रहण का फल...** भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध ध्रुव के ग्रहण का फल—इसका अर्थ कि शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा है, उसे परद्रव्य से भिन्न करके अपने शुद्ध द्रव्य की उपासना करके, उपासना करके। राग से हटकर, पर से हटकर, परद्रव्य से हटकर स्वद्रव्य में—ध्येय में—द्रव्य में एकत्व हुआ तो अपनी पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान शुद्धि हुई तो उस पर्याय से द्रव्य की सेवा की, ऐसा कहा गया है। और उससे यह द्रव्य शुद्ध है, ध्रुव है, अभेद है, ऐसी दृष्टि हुई। ऐसे शुद्धनय के ग्रहण का फल **मोक्ष जानकर...** आहाहा! व्यवहारनय का फल संसार, शुद्धनय को ग्रहण करने का (फल मोक्ष)। भाई! ग्रहण शब्द पड़ा है। यह विषय ध्रुव है, यह पवित्र है, एकरूप है, ऐसी पर्याय उस ओर ढली, तब ग्रहण किया, तब अभेद उसकी दृष्टि में आया। ओहोहो! समझ में आया? उस **ग्रहण का फल मोक्ष जानकर उसका उपदेश प्रधानता से दिया है...** देखो! मुख्य करके शुद्धनय का विषय अभेद-अभेद अथवा शुद्धनय स्वयं निज अभेद। वह वस्तु सत्य। पर्याय असत्य इस अपेक्षा से। वस्तु को ग्रहण करने, अभेद का आश्रय करने के लिये उसे सत्य कहा है; व्यवहार का आश्रय छुड़ाने के लिये उसे असत्य कहा है। समझ में आया? गजब बात, भाई! आहाहा! समझ में आया या नहीं इसमें? अपने बात आ गयी है। यह तो प्रचलित भाषा में पण्डित जयचन्द्रजी ने (स्पष्ट किया है) .....

भाई! यह ध्रुव चैतन्यप्रभु एकरूप अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप का पक्ष कभी आया नहीं और बाहर के यह क्रियाकाण्ड (करता है)। तेरा पक्ष हो गया। उपदेशक ऐसे मिले और जिनवाणी में देखे तो जहाँ-तहाँ यह व्यवहार दिखता है। समझ में आया? १२वीं गाथा में अर्थ में जरा कहेंगे, ऐसा करना, ऐसा करना, ऐसा करना। करना... करना अर्थात् उस समय में होता है, ऐसा ज्ञान कराया है। समझ में आया? चरणानुयोग में तो ऐसा आवे कि देखकर चलना, ऐसे चलना। यदि कुछ भी दोष लगे तो (प्रायश्चित्त लेना)। चरणानुयोग में तो यहाँ तक आता है कि तेरा उपयोग बराबर हो किसी को नहीं मारने का। ऐसा होने पर भी शरीर के स्पर्श से कोई जीव मर जाये तो आलोचना करना। ओहो! प्रवचनसार में चरणानुयोग में आया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... यह तो दूसरी बात है। तेरा प्रमाद आया तो विकल्प उठा कि मैं चलूँ। ऐसा है। भले तेरा प्रयत्न दूसरे को मारने का नहीं। तुझे विकल्प क्यों उठा? वह प्रमाद है। चलने में ख्याल रखा तथापि, नहीं मारने का प्रयत्न होने पर भी देह से तू कर... यह नीम है न? नीम। इसके फूल। नीम के फूल कहते हैं न? ऊपर से गिरे। साधु निकले। बराबर समिति से (चलते हैं)। ऐसी हवा आयी (फूल गिरा)। शरीर को स्पर्शे तो अनन्त जीव मर जाये। फूल। क्या कहते हैं? कोर। कितनी कोर! ओहो! ... वहाँ ढ़ेर। ... कुछ नहीं हो। अभी तो कच्चे फूल हों। उसमें हवा निकले और नीचे साधु निकले। बराबर समितिपूर्वक, हों! विकल्प प्रमाद है। ऐसा नहीं कि मैं जैसे-तैसे चलूँ। ऊपर से गिरा। शरीर को स्पर्शे तो अनन्त जीव मर जाये। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सावधानी है, तथापि प्रवचनसार में चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में व्यवहार की प्रधानता से कथन है तो इतनी आलोचना करना। समझ में आया? शरीर से मरे तो उसमें उसे क्या है? भाव तो मारने का नहीं था। विकल्प आया, वह भी बन्ध का कारण है। समझ में आया? देखकर चलना, ऐसा विकल्प आया, वह भी बन्ध का कारण है। परन्तु व्यवहारनय के कथन में व्यवहार ऐसा होना चाहिए, उसका ज्ञान कराते हैं। फल तो संसार है। उस विकल्प का फल बन्ध है। आहाहा! गजब भाई! दूसरे जीव को नहीं मारने का भाव आया, वह बन्ध है। केवलचन्दजी!

कहते हैं, वह पक्ष तो अनादि का है और शास्त्र में से निकालता है। यह शास्त्र में लिखा, इस शास्त्र में लिखा। लिखा है। क्या कहना है तुझे? पर की अपेक्षा से जितने कथन हैं और अपने भेद की अपेक्षा से कथन हैं, वह सब व्यवहारनय छोड़नेयोग्य है। समझ में आया?

कहते हैं, शुद्धनय के **ग्रहण का फल मोक्ष जानकर उसका उपदेश प्रधानता से दिया है...** मुख्यता से पर्याय को असत्य कहकर। वह तो त्रिकाल को पकड़ाने के लिये असत्य कहा है। ऐसा नहीं कि पर्याय में पर्याय है ही नहीं। पर्याय में पर्याय है नहीं, ऐसा

नहीं। समझ में आया? प्रधानता से कहा कि, भगवान! तेरा सत्यस्वरूप तो ध्रुव है न। एकरूप है न, सामान्य है न! अभेद है न! उसका आश्रय करने से तुझे सम्यग्दर्शन होगा। तो वह सत्य है और पर्याय असत्य है, ऐसा गोण करके पर्याय को असत्य कहा है। पर्याय नहीं, ऐसा नहीं। तथा पर्याय है तो उसके आश्रय से लाभ होता है, ऐसा भी नहीं। ओहोहो! गजब तत्त्व की बात! जगत को जैनदर्शन यह वस्तुदर्शन पकड़ना महाप्रयत्न माँगता है।

शुद्धनय भूतार्थ है... देखो! आया। ऐसा प्रधानता से (उपदेश) दिया। किसलिए दिया? **शुद्धनय भूतार्थ है...** ऐसा कहा है, भाई! वस्तु वह सत्य है, ऐसा कहा। एक ही त्रिकाल सत्य है, उसकी प्रधानता से पर्याय को गौण कराने को, पर्याय का आश्रय छुड़ाने को त्रिकाल वस्तु वह सत्य है, ध्रुव वह सत्य है, ध्रुव वह विद्यमान पदार्थ एक है। पर्याय विद्यमान होने पर भी नहीं, नहीं। विद्यमान एक ही पदार्थ है। सेठी! आहाहा! **शुद्धनय भूतार्थ है...** शुद्धनय का अर्थ नय अकेला नहीं, नय का विषय और (नय) दोनों होकर भूतार्थ है। '**भूदत्थो देसिदो**' '**भूदत्थो देसिदो**' वस्तु ध्रुव वह सत्य है। उसकी प्रधानता से (कहा है)। लक्ष्य नहीं, पक्ष नहीं, उपदेश दूसरा चलता है, व्यवहार का उपदेश शास्त्र में बहुत है। उस सबकी दृष्टि छुड़ाने के लिये एकरूप स्वरूप भगवान वह सत्य है, (ऐसा कहा है)। सत् सत् साहेबो एक परमात्मा। वह एक ही सत्य है। पर्याय असत्य है। प्रधानता से इस सत्य की दृष्टि कराने के लिये यह सत्य कहा, पर्याय को असत्य कहा। समझ में आया? **सत्यार्थ है,...** ओहो! त्रिकाल... त्रिकाल भगवान आत्मा वही सत्यार्थ—सच्चा स्वरूप है, सच्चा स्वरूप है। प्रधानता से अन्तरदृष्टि किये बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन बिना लाख क्रियाकाण्ड कर-करके मर जाये। समझ में आया?

श्रीमद् कहते हैं। श्रीमद् राजचन्द्र हुए न?

यम नियम संजम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो,
वनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो।
मन पौन निरोध स्वबोध कियो, हठजोग प्रयोग सु तार भयो,

जप भेद जपे तप त्यौंही तपे, उरसेंहि उदासी लही सबपै।
सब शास्त्रनके नय धारि हिये, मत मण्डन खण्डन भेद लिये,
वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।

'यम नियम संजम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो।' केवलचन्दजी! धीरे-धीरे। केवलचन्दजी धीरे बोले अन्दर। धीरे नहीं, ऐसा कहते हैं। पंच महाव्रत अनन्त बार लिये—यम। नियम—अभिग्रह धारण किये। महा अभिग्रह धारण किये। कड़क-कड़क अभिग्रह। समझे? भिक्षा लेने जाऊँ तो मोतीबाई नाम हो, साड़ी में मोती हो। मोतीचूर साड़ी होती है न? लड्डू मोतीचूर के पड़े हों। उसके छोर में मोती के दाने हों, उसके हाथ से लूँ। वरना प्राण जाये तो भी न लूँ। ऐसे अभिग्रह भी अनन्त बार धारण किये।

मुमुक्षु : फल क्या आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : फल हुआ संसार। परलक्ष्यी विकल्प की मन्दता है, उसमें कोई धर्म-बर्म है नहीं।

मुमुक्षु : धीरे-धीरे....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या धीरे-धीरे? धीरे-धीरे नहीं होता। सीधे द्रव्य से होता है। धीरे-धीरे व्यवहार करते-करते होगा, वह मूढ़ है, ऐसा कहते हैं।

'यम नियम संजम...' संयम लिया, इन्द्रिय दमन किया। पंच महाव्रत अनन्त बार (पालन किये)। यह तो यम में आ गये। संयम में इन्द्रिय दमन किया। बहुत इन्द्रिय दमन, इतना इन्द्रिय दमन कि क्या है वह नजर न करे स्त्री के सामने। समझ में आया? दूसरे देवलोक की इन्द्राणी आवे तो भी चलित न हो। क्या है? वह तो परचीज़ का लक्ष्य, बुद्धि है। वह तो राग है, पुण्य है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इतना किया सब फोगट....

पूज्य गुरुदेवश्री : फोगट नहीं। लाभदायक हुआ संसार के लिये। पाठ है न? भाई! अपने आता है न? प्रवचनसार में आता है। सम्यग्दृष्टि का जितना पुरुषार्थ है, वह

अफल है। अफल का अर्थ उसे संसार का फल नहीं मिलेगा। और मिथ्यादृष्टि जितनी क्रिया करता है, वह सफल है, सफल है। समझ में आया? जितना अनादि से संसार फला है, वह संसार फलेगा। ऐसा पाठ है। श्वेताम्बर में यह पाठ आता है। समझे न? ... हे महाभागा! वीर्य अध्ययन में है। यह तो सब मुखाग्र था न। भूल गये, बहुत वर्ष हुए न। समझ में आया? महा भाग्यवान पुण्यवन्त जगत में प्रसिद्ध बहुत हो और मिथ्यादृष्टि हो, समझ में आया? जे बुधा... अब याद आया। 'जे बुधा महाभागा वीरा...' यह गाथा है। यहाँ से लिया न। (इसमें से) निकाले थे तो कोई-कोई बात तो ले न! दिगम्बर में से श्वेताम्बर निकले तो कोई बात तो डाली हो न। जैसे अपने प्रवचनसार में है, अफल सफल। ऐसे बोल हैं। 'जे बुधा महाभागा' है, शास्त्र को जाननेवाली कितनी ही बुद्धि। वह अबुधा। अबुधा अर्थात् सच्चा ज्ञान नहीं। परन्तु है महाभाग्यवान। दुनिया में प्रसिद्धि लाखों-करोड़ों लोगों में। ओहोहो! वीरा है। बहुत क्रियाकाण्ड करता है। मास मासखमण के अपवास। 'अबुधा महाभागा' है तत्त्वज्ञान रहित, परन्तु है भाग्यवान। गजब बात, भाई! अमरचन्दजी! 'जे अबुधा महाभागा पण वीरा असमत दंसिणो'। वीर और सम्यग्दर्शन, दोनों विरुद्ध। पुरुषार्थ बहुत, बहुत पुरुषार्थ। मास मास खमण की क्रिया। शरीर जीर्ण... जीर्ण... मौन... मौन... मौन। समझ में आया? परन्तु है अदंसिणो। सम्यग्दर्शन नहीं। स्वभाव का आश्रय नहीं, दृष्टि नहीं। 'वीरा अदंसिणो, अशुद्धं ...' जितना पराक्रम करता है, मन्द राग का पुरुषार्थ सब अशुद्ध है। सफल होई... सफल होगा उसका पराक्रम। कहाँ? अनादि काल से संसार मिलता है, वह ही मिलेगा। समझ में आया? फिर गुलाँट खाकर बात है।

'जे बुधा महाभागा, वीरा समतदंसिणो सुद्धं तेसिं...' समझ में आया? यह तो वीर्य अध्ययन है। सूयगडांग के सोलह अध्ययन हैं न। वे लोग... उनके सोलह अध्ययन हैं। उसका यह आठवाँ अध्ययन है। वीर्य अध्ययन। यह तो सब कण्ठस्थ किये थे न? (संवत्) १९७१ के वर्ष पहले, हों! छह-सात-आठ हजार श्लोक कण्ठस्थ थे। उसमें आया तो उस समय सब किया था। कहते हैं, 'वीरा जे बुधा' तत्त्वज्ञानी। आत्मा ज्ञानमूर्ति प्रभु आत्मा है। 'वीरा बुधा महाभागा' पुण्यवन्त भी है। सम्यग्ज्ञानी है, साथ में पुण्यवन्त भी है, प्रसिद्ध भी है। वीरा, स्वभाव सन्मुख का पुरुषार्थ करता है। और ... जितना वह

अन्दर पुरुषार्थ करता है, उसका फल अफल है। उसे संसार नहीं मिलेगा। समझ में आया?

यहाँ कहा,

यम नियम संजम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो,
वनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो।

'**जप भेद जपे तप त्यौंही तपे**' जप। भगवान... भगवान... भगवान... भगवान चौबीस घण्टे (करे)। '**जप भेद जपे तप त्यौंही तपे**' तप इतने किये। समझ में आया? '**मन पौन निरोध स्वबोध कियो, हठजोग प्रयोग सु तार भयो,**' हठ प्रयोग किये। बाहर कहीं विकल्प न जाये, इसलिए ऐसे हठ की। समझ में आया? **सब शास्त्रन के नय धारि हिये**' शास्त्र भी पढ़ा, बहुत पढ़ा। पढ़कर खण्डन-मण्डन, खण्डन-मण्डन, खण्डन-मण्डन। **सब शास्त्रन के नय धारि हिये, मत मंडन खंडन भेद लिये, वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।** वह साधन-फाधन हुआ नहीं। धीरे-धीरे हुआ नहीं। केवलचन्दजी! **अब क्यौं न विचारत है मनसें, कछु और रहा उन साधनसें।**' वह साधन-बाधन नहीं। ग्यारह अंग पढ़ना, वह साधन नहीं। यम, नियम, संयम साधन नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : इतना सब किया....

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना सब क्या किया? कौन कहता है? बाबूभाई! क्या किया? जगजीवनभाई! जगजीवन नागरदास। क्या इतना सब किया? शून्य लगाये सब कचरे के।

वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो। वह साधन है नहीं। निमित्त का साधन कहा। साधन अन्तर स्वभाव का करे तो उसे निमित्त कहा जाता है। साधन-बाधन है नहीं। समझ में आया?

अब क्यौं न विचारत है मनसें, कछु और रहा उन साधनसें।
बिन सद्गुरु कोय न भेद लहे, मुख आगल हैं कह बात कहे?

भगवान परमानन्द की मूर्ति ध्रुव स्वरूप वह साधन है। उसकी दृष्टि करना।

साधन, स्वभाव में साधन नाम का गुण पड़ा है। समझ में आया? ऐसा श्रद्धान, अपने स्वरूप का साधन अपने में है, ऐसा कभी किया नहीं। तो श्रीगुरु ने शुद्धनय भूतार्थ कहकर सब साधन को छुड़ाया है। **इसका आश्रय लेने से सम्यग्दृष्टि हो सकता है;...** देखो! एक भगवान पूर्णानन्द प्रभु का आश्रय करने से ही। पर्याय का नहीं, राग का नहीं, निमित्त का नहीं, देव-गुरु-शास्त्र का नहीं। सम्मेदशिखर यात्रा का नहीं। कोई कहे, सम्मेदशिखर की यात्रा एक-दो करें, जाओ (कल्याण हो जायेगा)। 'एक बार वंदे जो कोई' नरकगति नहीं होगी उसमें तेरा क्या भला हुआ? यहाँ तो चार गति न हो, उसकी बात है। तो चार गति कब नहीं मिलती? निज ध्रुव का आश्रय करने से चार गति का अभाव होता है, दूसरा कोई उपाय है नहीं।

आश्रय लेने से सम्यग्दृष्टि हो सकता है;... भगवान आत्मा... सबकी पर्याय, राग, भेद सबको छोड़कर एकाकार अभेद चैतन्यमूर्ति का आश्रय करने से सम्यग्दृष्टि हुआ जा सकता है। केवलचन्दजी! यह कभी किया नहीं, सुना ही नहीं। सुना तो रुचि हुई नहीं। **उसे जाने बिना...** देखो! उसे अर्थात्? त्रिकाल ज्ञायकभाव शुद्ध अभेद चैतन्यप्रभु को जाने बिना **जब तक जीव व्यवहार में मग्न है...** पर्याय में, राग में, निमित्त में संयोगी भाव में मग्न है, नौ तत्त्व की श्रद्धा विकल्प में, नौ तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा, हों! राग में, राग के ज्ञान में, पंच महाव्रत के परिणाम में व्यवहार में मग्न है। **जब तक जीव व्यवहार में मग्न है...** भेद में मग्न है, **तब तक आत्मा का ज्ञान-श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व नहीं हो सकता।** लो। आत्मा का ज्ञान, भान करके श्रद्धान, ऐसा कहते हैं। भान बिना श्रद्धान किसका? खरगोश के सींग का? आत्मा का ज्ञान करके श्रद्धा।

जब तक जीव व्यवहार में मग्न है... और व्यवहार का लक्ष्य, आश्रय नहीं छोड़ता और ध्रुव का आश्रय नहीं लेता, **तब तक आत्मा का ज्ञान-श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व नहीं हो सकता।** व्यवहाराभास रूपी समकित—राग हो, वह अनन्त बार किया। उससे आत्मा का साधन नहीं हुआ। समझ में आया? पंच महाव्रत अनन्त बार लिये, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा भी अनन्त बार की, राग हुआ, ग्यारह अंग का पढ़ना भी अनन्त बार हुआ। वह कोई साधन-फाधन नहीं। आहाहा! यहाँ तो एक अपवास करे तो तपस्या

और तपसा, वह निर्जरा। लो, सीधी बात। तत्त्वार्थसूत्र में आता है या नहीं? परन्तु तपसा निर्जरा शब्द नहीं आता? आता है या नहीं ताराचन्दजी? तपसा निर्जरा। अपवास करना, वह तपस्या। अपवास क्या बारह (प्रकार के) तप में णमो अरिहंताणं बोलना वह (सज्झाय है)। सज्झाय में नहीं आता? सज्झाय में आता है या नहीं? णमो अरिहंताणं। आता है सज्झाय में। सज्झाय वह तप और तप वह निर्जरा। बारह प्रकार में आता है या नहीं? अनशन, ऊनोदर, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, कायोत्सर्ग, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय। तो सज्झाय (स्वाध्याय) में बहुत आता है। ... णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरियाणं, णमो उवज्झायाणं.... यह सब स्वाध्याय में आता है। सुनना, कहना। स्वाध्याय में बहुत आता है। स्वाध्याय, ध्यान, मनन करना, वह सब तो विकल्प है। समझ में आया? वह स्वाध्याय हुई, तप हुआ, तप से निर्जरा हो गयी, निर्जरा से मोक्ष होगा। सीधी सट्ट बात। ऐसा है नहीं, सुन तो सही। तेरी सज्झाय-फज्झाय (कहीं रह गये)।

आत्मा ज्ञायकमूर्ति स्व-अध्याय। उसका अन्तर में अध्याय-अन्तर में अनुभव किये बिना तुझे कभी निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं होगा और सम्यग्दर्शन बिना तेरी अकेली स्वाध्याय और बारह प्रकार के तप, सब पुण्यबन्ध में जाता है। समझ में आया? जब तक व्यवहार में मग्न है, तब तक आत्मा का ज्ञान और श्रद्धानरूप निश्चय **सम्यक्त्व नहीं हो सकता। ऐसा आशय समझना चाहिए।** लो, बहुत सादी भाषा में भावार्थ में बहुत भर दिया है। यह ११ गाथा पूरी हुई। पूरी हुई न? ११वीं तो तुम्हारे यहाँ वाँची थी, नहीं? बारहवीं वहाँ नहीं वाँची थी।

★ ★ ★

गाथा - १२

अथ च केषाञ्चित्कदाचित्सोऽपि प्रयोजनवान्। यतः –

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।।12।।

शुद्धः शुद्धादेशो ज्ञातव्यः परमभावदर्शिभिः।
व्यवहारदेशिताः पुनर्ये त्वपरमे स्थिता भावे।।12।।

ये खलु पर्यन्तपाकोत्तीर्णजात्यकार्तस्वरस्थानीयं परमं भावमनुभवन्ति तेषां प्रथमद्वितीयाद्यनेकपाकपरम्परापच्यमानकार्तस्वरानुभवस्थानीयापरमभावानुभवन–शून्यत्वाच्छुद्धद्रव्यादेशितया समुद्योतितास्खलितैकस्वभावैकभावः शुद्धनय एवोपरितनैकप्रतिवर्णिकास्थानीयत्वात्परिज्ञायमानः प्रयोजनवान्।

ये तु प्रथमद्वितीयाद्यनेकपाकपरम्परापच्यमानकार्तस्वरस्थानीयमपरमं भाव–मनुभवन्ति तेषां पर्यन्तपाकोत्तीर्णजात्यकार्तस्वरस्थानीयपरमभावानुभवनशून्यत्वाद–शुद्धद्रव्यादेशितयोप–दर्शितप्रतिविशिष्टैकभावानेकभावो व्यवहारनयो विचित्रवर्ण–मालिकास्थानीयत्वात्परिज्ञाय–मानस्तदात्वे प्रयोजनवान्, तीर्थतीर्थफलयोरित्थमेव व्यवस्थितत्वात्।।12।।

उक्तञ्च–

''जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारणिच्छए मुयह।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं।।12।।''

अब, ''यह व्यवहारनय भी किसी–किसी को किसी काल प्रयोजनवान है, सर्वथा निषेध करने योग्य नहीं है; इसलिए उसका उपदेश है'' यह कहते हैं–

देखै परम जो भाव उसको, शुद्धनय ज्ञातव्य है।
ठहरा जु अपरमभाव में, व्यवहार से उपदिष्ट है।।12।।

गाथार्थ : [परमभावदर्शिभिः] जो शुद्धनय तक पहुँचकर श्रद्धावान हुए तथा पूर्ण ज्ञान–चारित्रवान हो गये, उन्हें तो [शुद्धादेशः] शुद्ध (आत्मा) का उपदेश (आज्ञा)

करनेवाला [शुद्धः] शुद्धनय [ज्ञातव्यः] जाननेयोग्य है; [पुनः] और [ये तु] जो जीव [अपरमे भावे] अपरमभाव में–अर्थात् श्रद्धा तथा ज्ञान–चारित्र के पूर्ण भाव को नहीं पहुँच सके हैं, साधक अवस्था में ही– [स्थिताः] स्थित हैं, वे [व्यवहारदेशिताः] व्यवहार द्वारा उपदेश करने योग्य हैं।

टीका : जो पुरुष अन्तिम पाक से उतरे हुए शुद्ध स्वर्ण के समान (वस्तु के) उत्कृष्ट भाव का अनुभव करते हैं उन्हें प्रथम, द्वितीय आदि पाकों की परम्परा से पच्यमान (पकाये जाते हुए) अशुद्ध स्वर्ण के समान जो अनुत्कृष्ट मध्यम भाव हैं, उनका अनुभव नहीं होता; इसलिए, शुद्धद्रव्य को कहनेवाला होने से जिसने अचलित एकस्वभावरूप एक भाव प्रगट किया है ऐसा शुद्धनय ही, सबसे ऊपर की एक प्रतिवर्णिका (स्वर्ण–वर्ण) समान होने से, जानने में आता हुआ प्रयोजवान है। परन्तु जो पुरुष प्रथम, द्वितीय आदि अनेक पाकों (तावों) की परम्परा से पच्यमान अशुद्ध स्वर्ण के समान जो (वस्तु का) अनुत्कृष्ट मध्यम भाव का अनुभव करते हैं, उन्हें अन्तिम ताव से उतरे शुद्ध स्वर्ण के समान उत्कृष्ट भाव का अनुभव नहीं होता; इसलिए, अशुद्ध द्रव्य को कहनेवाला होने से जिसने भिन्न–भिन्न एक–एक भावस्वरूप अनेक भाव दिखाये हैं ऐसा व्यवहारनय, विचित्र अनेक वर्णमाला के समान होने से, जानने में आता (–ज्ञात होता) हुआ उस काल प्रयोजनवान है। क्योंकि तीर्थ और तीर्थ के फल की ऐसी ही व्यवस्थिति है। (जिससे तिरा जाये वह तीर्थ है; ऐसा व्यवहार धर्म है और पार होना व्यवहारधर्म का फल है; अथवा अपने स्वरूप को प्राप्त करना तीर्थफल है।) अन्यत्र भी कहा है कि :–

अर्थ : आचार्य कहते हैं कि हे भव्य जीवो! यदि तुम जिनमत का प्रवर्ताना करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय–दोनों नयों को मत छोड़ो; क्योंकि व्यवहारनय के बिना तो तीर्थ–व्यवहार मार्ग का नाश हो जायेगा और निश्चयनय के बिना तत्त्व (वस्तु) का नाश हो जायेगा।

भावार्थ : लोक में सोने के सोलह वान (ताव) प्रसिद्ध हैं। पन्द्रहवें वान तक उसमें चूरी आदि परसंयोग की कालिमा रहती है, इसलिए तब तक वह अशुद्ध कहलाता है; और ताव देते–देते जब अन्तिम ताव से उतरता है, तब वह सोलहवान या सौटंची शुद्ध सोना कहलाता है। जिन्हें सोलहवानवाले सोने का ज्ञान, श्रद्धान तथा प्राप्ति हुई है,

उन्हें पन्द्रह-वान तक का सोना कोई प्रयोजनवान नहीं होता, और जिन्हें सोलह-वानवाले शुद्ध सोने की प्राप्ति नहीं हुई है, उन्हें तब तक पन्द्रह-वान तक का सोना भी प्रयोजनवान है। इसी प्रकार यह जीव नामक पदार्थ है, जो कि पुद्गल के संयोग से अशुद्ध अनेकरूप हो रहा है। उसका, समस्त परद्रव्यों से भिन्न, एक ज्ञायकत्वमात्र का-ज्ञान, श्रद्धान तथा आचरणरूप प्राप्ति-यह तीनों जिसे हो गये हैं, उसे पुद्गलसंयोगजनित अनेकरूपता को कहनेवाला अशुद्धनय कुछ भी प्रयोजनवान (किसी मतलब का) नहीं है; किन्तु जहाँ तक शुद्धभाव की प्राप्ति नहीं हुई, वहाँ तक जितना अशुद्धनय का कथन है, उतना यथापदवी प्रयोजनवान है। जहाँ तक यथार्थ ज्ञानश्रद्धान की प्राप्तिरूप सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हुई हो, वहाँ तक तो जिनसे यथार्थ उपदेश मिलता है - ऐसे जिनवचनों को सुनना, धारण करना तथा जिनवचनों को कहनेवाले श्री जिन-गुरु की भक्ति, जिनबिम्ब के दर्शन इत्यादि व्यवहारमार्ग में प्रवृत्त होना प्रयोजनवान है; और जिन्हें श्रद्धान-ज्ञान तो हुआ है किन्तु साक्षात् प्राप्ति नहीं हुई, उन्हें पूर्वकथित कार्य, परद्रव्य का आलम्बन छोड़नेरूप अणुव्रत-महाव्रत का ग्रहण, समिति, गुप्ति और पञ्च परमेष्ठी का ध्यानरूप प्रवर्तन तथा उसी प्रकार प्रवर्तन करनेवालों की सङ्गति एवं विशेष जानने के लिये शास्त्रों का अभ्यास करना इत्यादि व्यवहारमार्ग में स्वयं प्रवर्तन करना और दूसरों को प्रवर्तन कराना-ऐसे व्यवहारनय का उपदेश अङ्गीकार करना प्रयोजनवान है। *व्यवहारनय को कथञ्चित् असत्यार्थ कहा गया है; किन्तु यदि कोई उसे सर्वथा असत्यार्थ जानकर छोड़ दे तो वह शुभोपयोगरूप व्यवहार को ही छोड़ देगा और उसे शुद्धोपयोग की साक्षात् प्राप्ति तो नहीं हुई है, इसलिए उल्टा अशुभोपयोग में ही आकर, भ्रष्ट होकर, चाहे जैसी स्वेच्छारूप प्रवृत्ति करेगा तो वह नरकादि गति तथा परम्परा से निगोद को प्राप्त होकर संसार में ही भ्रमण करेगा। इसलिए शुद्धनय का विषय जो साक्षात् शुद्ध आत्मा है, उसकी प्राप्ति जब तक न हो, तब तक व्यवहार भी प्रयोजनवान है - ऐसा स्याद्वाद मत में श्रीगुरुओं का उपदेश है।

---

* व्यवहारनय के उपदेश से ऐसा नहीं समझना चाहिए कि आत्मा परद्रव्य की क्रिया कर सकता है, लेकिन ऐसा समझना कि व्यवहारोपदिष्ट शुभभावों को आत्मा व्यवहार से कर सकता है। और उस उपदेश से ऐसा भी नहीं समझना चाहिए कि शुभभाव करने से आत्मा शुद्धता को प्राप्त करता है, परन्तु ऐसा समझना कि साधकदशा में भूमिका के अनुसार शुभभाव आये बिना नहीं रहते।

गाथा - १२ पर प्रवचन

अब, 'यह व्यवहारनय भी किसी किसी को किसी काल प्रयोजनवान है,... क्या कहा ? देखो ! '**केषाञ्चित्कदाचित्**' यह व्यवहारनय भी किसी-किसी को अर्थात् जब तक उसकी अपूर्ण दशा है और **किसी समय...** अर्थात् अपूर्ण दशा के काल में जाननेयोग्य है। अनुभव हुआ, द्रव्य के आश्रय से शुद्ध चैतन्य का अनुभव होने के पश्चात् पूर्ण शुद्ध की प्राप्ति—चारित्र हो जाये तो पर्याय में शुद्धि की अपूर्णता और राग की रहती नहीं। तो उसे तो व्यवहार जाननेयोग्य रहा नहीं। परन्तु जब तक पूर्ण शुद्ध पर्याय प्रगट न हो, दृष्टि शुद्ध के ऊपर होने पर भी पर्याय में चारित्र की पूर्णता न हो, तब तक चारित्र की निर्मलता की अल्पता और राग की मन्दता रहती है, उसे उतने साधक काल में रहनेवाले को। किसी-किसी को अर्थात् साधक काल में। जब तक साधक काल है, तब तक **प्रयोजनवान है,...** जाननेयोग्य है। व्यवहार है, ऐसा जाननेयोग्य प्रयोजनवान है, ऐसा टीका में लेंगे। समझ में आया ? इस गाथा में बहुत गड़बड़ (अभी लोग करते) हैं। सब यह बात डालते हैं। यह १२वीं गाथा। '**अपरमे ट्ठिदा भावे**'। देखो ! पहले स्थानकवासी में उन्होंने ही रखा था। बहुत वर्ष पहले, शुरुआत में, कपूरभाई का पुत्र था, नहीं ? कपूरभाई का पुत्र। पहले यहाँ आया था। कपूरभाई दरियापरी। उनका पुत्र (कहे), ऐसा है, १२वीं गाथा में (ऐसा कहा है)। अरे ! परन्तु तुझे खबर नहीं, १२वीं गाथा में क्या कहा है। चारों ओर सब १२-१२ बोले। १२ में समझने जैसी बात है।

व्यवहारनय भी किसी किसी को... जब तक अपनी स्वाधीन पूर्ण दशा चारित्र की प्राप्त अथवा निर्विकल्प अनुभव में न हो, तब तक **किसी समय....** अर्थात् उतने काल में। निर्विकल्प अनुभव में स्थिर हो गया, अपरम दशा आदि में तो उसे फिर व्यवहार की अल्पता, अशुद्धता की अल्पता, शुद्धता की अल्पता ख्याल में लेने की रही नहीं। उतना काल। जब तक शुद्धता अल्प है, अशुद्धता है, उस काल में दृष्टि सम्यक् चैतन्य के ऊपर होने पर भी व्यवहार जाननेयोग्य रह जाता है। जाननेयोग्य प्रयोजनवान है। **सर्वथा निषेध करने योग्य नहीं है;...** पर्याय में भेद है ही नहीं, (ऐसा नहीं)। सम्यग्दर्शन हुआ और पर्याय में निर्मलता वीतरागी हो गया, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? दृष्टि चैतन्य भगवान

आनन्दकन्द की अनुभव दृष्टि हुई। ऐसा हुआ और थोड़ा आश्रय विशेष भी लिया। पाँचवाँ, छठवाँ गुणस्थान आया। तथापि पर्याय में अशुद्धता है, शुद्धि का पूर्ण अंश नहीं है, उसे उस काल में यह शुद्धता अल्प है, ऐसा जाना हुआ उस काल में जाना हुआ साधक जीव को दृष्टि निश्चय के ऊपर होने पर भी, वह व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। समझ में आया? देखो! **इसलिए उसका उपदेश है' यह कहते हैं —**

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे॥१२॥

देखै परम जो भाव उसको, शुद्धनय ज्ञातव्य है।
ठहरा जु अपरमभाव में, व्यवहार से उपदिष्ट है॥१२॥

इस व्यवहार के उपदेश में बहुत गड़बड़ है। व्यवहार का उपदेश तो वाचक है। परन्तु व्यवहार के उपदेश का अर्थ अपनी पर्याय में पूर्ण शुद्धता नहीं, पूर्ण द्रव्य के ऊपर दृष्टि होने पर भी पर्याय में पूर्ण शुद्धता नहीं हुई और राग का भाव व्यवहार का आता है, उसे यहाँ अपरमभाव कहा गया है। उसे बराबर जानना कि मेरी पर्याय अभी ऐसी अल्प है, शुद्धता, राग है—ऐसा जानना वह अपरमभाव में स्थित को व्यवहार जाननेयोग्य है, ऐसा यहाँ कहा गया है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : उपदेश करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश का अर्थ ही यह है। कहा न, उपदेश अर्थात् वाचक हुआ। उसका वाच्य क्या है? उसका स्पष्टीकरण अन्दर लेंगे। देखो! जाना हुआ। देखो! **'विचित्रवर्णमालिकास्थानीयत्वात्परिज्ञायमानस्तदात्वे प्रयोजनवान्'** इस टुकड़े का अर्थ है। **'अपरमे ट्ठिदा भावे'** की टीका है। किस शब्द की यह टीका है? **'अपरमे ट्ठिदा भावे'** समझ में आया? **व्यवहार का उपदेश है।** इसकी व्याख्या बाद में आयेगी। है न? **'तदात्वे'** शब्द में महा वस्तु पड़ी है। मुद्दा वहाँ है। **'तदात्वे'।** उस काल में अर्थात् जब आत्मा पूर्ण की दृष्टि की, ज्ञान भी किया परन्तु स्थिरता पूर्ण नहीं हुई। वीतराग की दशा अथवा निर्विकल्प अनुभव में नहीं है, तब तक व्यवहार में जाननेयोग्य राग की मन्दता, शुद्धता की अपूर्णता उस काल में वह जाननेयोग्य है। समय-समय का ज्ञान भिन्न-भिन्न

है। क्योंकि समय-समय का ज्ञान जितना आश्रय लेकर शुद्धि प्रगट हुई है, उतनी अशुद्धता घट गयी है। जितनी शुद्धि है, उसका ज्ञान करता है। दूसरे समय में जितनी शुद्धि बढ़ी है, उस समय में उसका ज्ञान करता है। '**तदात्वे**' उस-उस समय में, वह-वह प्रकार जाना हुआ प्रयोजनवान कहा गया है। यह बड़ी गड़बड़ है, इसलिए धीरे से अर्थ होता है। सुनो! समझ में आया? छोटाभाई! यह भारी गड़बड़ लोगों को।

एक ओर कहते हैं कि व्यवहार भूतार्थ है, वह सम्यग्दर्शन है और दूसरी ओर कहते हैं कि पर्याय में रागादि है, वह आदरणीय है और अल्प शुद्धता आदरणीय है, ऐसा कहाँ से आया? पहले तो आदरणीय त्रिकाल '**भूदत्थो देसिदो**' कहा। समझ में आया? और वहाँ तो सम्यग्दृष्टि हुआ, ऐसा कहते हैं। अभी तो चौथे गुणस्थान की बात करते हैं, भाई! वे कितने ही कहते हैं कि यह तो आठवें की बात है, कोई कहे, तेरहवें की (बात है)।

मुमुक्षु : कोई पन्द्रहवाँ कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पन्द्रहवाँ है नहीं, क्या करे?

परमभाव निर्विकल्प अनुभव हुआ, उसमें भेद लक्ष्य में नहीं आते तो, उसका नाम परमभाव। सातवें में परमभाव हो गया। निर्विकल्प आनन्द में पड़ा है। तेरहवें में या निर्विकल्प आनन्द में पड़ा है, भेद का लक्ष्य नहीं तो उसे भेद जानना है नहीं। समझ में आया? चौथे गुणस्थान में भी जब स्थिर होता है तो लक्ष्य नहीं। परन्तु अन्दर है, भेद है न। अनुभव दृष्टि हुई परन्तु तीन कषाय (चौकड़ी) का राग है, शुद्धि अल्प है, भले उपयोग के समय लक्ष्य नहीं परन्तु जहाँ बाहर आया तो उसका लक्ष्य हो गया (कि) मेरी शुद्धता अल्प है। राग है, ऐसा जानना, वह चौथे गुणस्थानवाले को भी प्रयोजनवान है। आहाहा! है न, परन्तु वह वस्तु ऐसी है।

११वीं गाथा में शुद्धनय कहा, वह सम्यग्दृष्टि कहा। तो सम्यग्दृष्टि हुआ। तो पर्याय में कोई व्यवहार का विषय रहता है या नहीं? व्यवहार है ही नहीं? या पूर्ण केवलज्ञानी हो गया? प्रमाणज्ञान हो गया? समझ में आया? इतना बतलाने के लिये १२वीं गाथा है।

मुमुक्षु : आश्रय....

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय करनेयोग्य नहीं। आश्रय करनेयोग्य तो तीनों काल ध्रुव का आश्रय निरन्तर लेना, यह एक ही बात है। समझ में आया? आहाहा! व्यवहार जाननेयोग्य है। आश्रय तो हुआ परन्तु पूर्ण आश्रय नहीं हुआ, तब तक अशुद्धता है। शुद्धता पूर्ण नहीं हुई तो उस काल में उतना जानना। आश्रय करनेयोग्य नहीं। पाठ क्या लिया? '**परिज्ञायमानस्तदात्वे प्रयोजनवान्**' जाना हुआ प्रयोजनवान है, आदर किया हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा है नहीं। बड़ी गड़बड़। अमरचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह और दूसरा।

यहाँ तो निश्चय के ज्ञान में व्यवहार का ज्ञान जोड़ना, वह प्रयोजन, जानना वह प्रयोजन है। वह प्रयोजन अपना दूसरा। आत्मद्रव्य का आश्रय लिये बिना शान्ति का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। समझ में आया? एकरूप भगवान आत्मा का आश्रय लिये बिना अपने आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। आनन्द की कहो या सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की कहो। आहा! भारी गड़बड़, भाई!

मुमुक्षु : यह सब समझे बिना धर्म नहीं होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझे बिना धर्म होता होगा? पूछो।

मुमुक्षु : लौकिक में....

पूज्य गुरुदेवश्री : लोकोत्तर धर्म में धर्म विरुद्ध हो। लौकिक में समझे बिना होता नहीं। सेठी! तुम्हारे दुकान में कुछ लेने आवे। लो, सेठी! यह दस हजार लो। हमको कुछ भी दो। क्या दे? यह मुझे खबर नहीं। हीरा, माणेक, मोती कुछ खबर नहीं। मूर्ख है, क्या लेने आया है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कहाँ इनकार किया जाये कि मैं यह पन्ना का बोल लेने आया हूँ या माणेक या यह (लेने आया हूँ)। ख्याल नहीं, कौन सी चीज़ और कौन सी

नहीं। कौन चीज़ और कौन सी नहीं। ख्याल बिना लेता है? चावल लेने जाये, लो। चावल। यह २५ रुपये हमारे पिताजी के, चावल दो। कौन से चावल? चावल की २५ जाति है। कुल्फा, वांसावड, रंगून बहुत आते हैं या नहीं? यह मुझे खबर नही। परन्तु तुझे (खबर नहीं) तो क्या लेने आया तू? ताराचन्दजी! क्या लेने आया? चावल लेने आया। परन्तु चावल किस जाति के? एक ठळिया जैसे आते हैं रंगून, एक पतले आते हैं। कुल्फा आते थे। बहुत पतले। अब वांसावड कहते हैं। बासमती। पहले कुल्फा के आते थे। वहाँ दुकान थी न तो हम कुल्फा के ही चावल पकाते थे। घर में सब ऊँची-ऊँची वस्तुएँ रखते थे। कुल्फा के बहुत पतले आते। खबर नहीं। किसकी खबर नहीं? क्या लेने आया? अनाज लेने आया हूँ। परन्तु अनाज में कौन सी चीज़? (उसका) क्या काम है? अनाज लाओ। मार डालेगा तेरा बाप। केवलचन्दजी! कपड़ा लेने जाये, कपड़ा। पचास रुपये हमारे पिताजी ने दिये हैं, कपड़ा दो। कौनसा कपड़ा? मुझे खबर नहीं। मूर्ख है। यहाँ तो पचास प्रकार का, सौ प्रकार का कपड़ा पड़ा है। कितना? पचास का। कौन सा प्रकार? मुझे खबर नहीं। कौनसी नहीं और कौनसी है, मुझे खबर नहीं। ऐसे यह चीज़ कौनसी है, और उसमें कौन नहीं, मुझे खबर नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ जानकर मिलता है और यहाँ जाने बिना मिलता है, ऐसा रामजीभाई कहते हैं न। लौकिक से यह विरुद्ध है। वहाँ जानने से मिले और यहाँ जाने बिना मिले, ऐसा होता है या नहीं? अरे! यह तो उदाहरण-दृष्टान्त है। कौनसी चीज़ ग्रहण करनेयोग्य है, कौनसी चीज़ जाननेयोग्य और छोड़नेयोग्य है, उसके ज्ञान बिना कहाँ दृष्टि करेगा और किसे छोड़ेगा? समझ में आया? ओहोहो! देखो! इसका शब्दार्थ लेते हैं पहले, हों! जहाँ हो वहाँ वे शब्दार्थ लेते हैं न। आहाहा! देखो! शब्दार्थ लिखा है।

'**परमभावदर्शिभिः**' जो शुद्धनय तक पहुँचकर श्रद्धावान, वह तो श्रद्धा हुई। शुद्ध द्रव्य का आश्रय लेकर श्रद्धावान हुआ और पूर्ण ज्ञान हुआ। उसका आश्रय लेकर पूर्ण ज्ञान हुआ और चारित्रवान भी हुआ। स्वरूप का आश्रय करके स्थिरता भी हुई। उनको

तो शुद्ध का उपदेश करनेवाला शुद्धनय जाननेयोग्य है। अर्थात् वास्तव में तो उन्हें अब नय रहे नहीं। परन्तु अभेद अनुभव हो गया, उसमें भेद रहे हैं, वे जाननेयोग्य रहे, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? पूरा आत्मा अखण्डानन्द का अनुभव हुआ, वही जाना हुआ प्रयोजनवान है। बस, इतना। समझ में आया? एक द्रव्य का स्वभाव ध्रुव शुद्ध है, उसका आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन हुआ। और विशेष आश्रय लेकर चारित्र हुआ। तो चारित्र जहाँ विशेष पूर्ण हो गया तो सारा अभेद हो गया। उसमें कोई भेद रहा नहीं। तो उसे अकेला शुद्धनय, द्रव्य शुद्धनय का विषय है, ऐसी ही पर्याय प्रगट हो गयी तो उसे व्यवहार रहा नहीं। पर्याय में शुद्धता अल्प और अशुद्धता, ऐसा व्यवहार तो रहा नहीं। समझ में आया? यह १२वीं गाथा समझने योग्य है। बहुत गड़बड़ी चलती है।

श्रद्धावान, ज्ञानवान, पूर्ण चारित्रवान हो गये। उनको तो शुद्ध आत्मा का उपदेश अर्थात् शुद्ध आत्मा ही अनुभव में आता है। उन्हें दूसरा है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ग्रहण (करना रहा नहीं), वह तो अनुभव में पड़ा है, बस। उसे जाननेयोग्य आत्मा ही रहा। दूसरा कोई भेद है नहीं। अनुभव की दृष्टि हुई, स्थिरता भी हो गयी, वीतरागता हुई अथवा सातवें गुणस्थान में निर्विकल्प अनुभव हुआ। उसमें कोई यह भेद, ऐसा जानना रहा नहीं। अकेला आत्मा ही जानता है और अनुभवता है, बस। उसे व्यवहार को जानने की आवश्यकता रही नहीं। क्योंकि व्यवहार भेद में रहा ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

पहले यहाँ कहते हैं, '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**'। भूतार्थ शुद्धनय। अर्थात् भूतार्थ शुद्धनय कहाँ आया? तेरहवाँ गुणस्थान हो तब? वह तो प्रमाणज्ञान हुआ, वहाँ नय कहाँ आये? यहाँ चौथे गुणस्थान में जब अपना शुद्ध ध्रुव आत्मा का अनुभव हुआ तो सम्यग्दर्शन हुआ। सम्यग्दर्शन हुआ तो श्रुतज्ञान हुआ। श्रुतज्ञान हुआ तो ज्ञान के दो भाग पड़ गये। नय। 'श्रुत विकल्पा नया'। श्रुतज्ञान हुआ, उसका भेद नय। इसके पहले तो नय होते नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : अभी तो आवश्यकता व्यवहार की....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ परन्तु व्यवहार धूल में आया? व्यवहार आया कहाँ से?

मुमुक्षु : ऐसा व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारमूढ़ है। यह तो कहा न? ४१३वीं गाथा में। ४१३ गाथा, समयसार। अनादिरूढ़ व्यवहारमूढ़ निश्चय अनारूढ़। तीन शब्द पड़े हैं। भगवान अमृतचन्द्राचार्य के (शब्द)। वे तो बहुत महा सिद्धान्त सब भरे हैं। ४१३ गाथा है न। यहाँ है। ४१३। हिन्दी है न, इसलिए पुस्तक चाहिए, ऐसा हो गया। गुजराती है न यह? ४१३। ४१३ गाथा है न? अर्थ लेते हैं। टीका है न?

जो वास्तव में 'मैं श्रमण हूँ, मैं श्रमणोपासक (-श्रावक) हूँ... देखो! दोनों की बात कहते हैं, हों! **इस प्रकार द्रव्यलिंग में ममत्वभाव के द्वारा...** द्रव्यलिंग विकल्प आदि में ममत्व द्वारा मिथ्या अहंकार करते हैं, **वे अनादिरूढ़ (अनादि काल से चले आये हुए) व्यवहार में मूढ़ (मोही) वर्तते हुए...** यह राग की मन्दता तो अनादि काल से चली आती है। मन्द तीव्र, मन्द तीव्र, मन्द तीव्र तो अनादि काल से होता है। उसमें व्यवहार कहे किसे? अनादिरूढ़ व्यवहार में मूढ़। व्यवहार का ज्ञाता नहीं। यहाँ '**परिज्ञायमानस्तदात्वे प्रयोजनवान्**' ऐसा कहेंगे। १२वीं में ऐसा कहेंगे, जाना हुआ प्रयोजनवान है। यह तो मूढ़ है। क्योंकि निश्चय का अनुभव हुआ नहीं, इससे पहले पर्याय में व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान आया कहाँ से? तू कहता है कि पहले व्यवहार। तो कहते हैं, मूढ़ है। अमरचन्दजी! आहाहा!

भगवान आत्मा अनादि-अनन्त मूल चैतन्य के अनुभव बिना व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान आया कहाँ से? तू कहता है कि पहले व्यवहार। कहते हैं, ऐसा अहंकार करता है कि मैं साधू हूँ और मैं श्रावक हूँ, मैं अट्ठाईस मूलगुण पालता हूँ, वह कहे, मैं बारह व्रत पालता हूँ, मैं ग्यारह प्रतिमा पालता हूँ, मैं आठ प्रतिमा पालता हूँ। मूढ़ है। तुझे व्यवहार कहाँ से आया? क्यों? वह तो अनादिरूढ़ है। अनादि की कषाय की मन्दता के परिणाम तो अनादि-अनन्त बार हुए हैं। व्यवहार में मूढ़ है। वह तो मूढ़ है। तत्त्वज्ञान दृष्टि हुई नहीं तो उसे जाननेवाला रहा नहीं। जाननेवाला हुए बिना व्यवहार का ज्ञान करे कौन?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही नहीं व्यवहार। मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। तेरे कषाय की मन्दता तो मूढ़... मूढ़। उसको जाननेवाला जगा....

मुमुक्षु : व्यवहार करते-करते होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या मूढ़ता करते-करते चतुराई होगी? केवलचन्द! क्या है? मूढ़ता घोंटते-घोंटते, मूढ़ता को घोंटते-घोंटते ज्ञान होता है।

मुमुक्षु : पहले व्यवहार, बाद में निश्चय।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी व्यवहार नहीं। वह जैनदर्शन का तत्त्व ही नहीं समझा। अनुभव सम्यग्दर्शन का हुआ, तब सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ। श्रुतज्ञान। श्रुतज्ञान विकल्पा नया। दो नय पड़े। निश्चय अभेद को जानता है, व्यवहार वर्तमान भेद पर्याय को जानता है। बस। समझ में आया?

बहुत वर्ष पहले यह गाथा चली हुई है। गड़बड़ बहुत हो गयी थी। श्वेताम्बर में... यहाँ तो कहते हैं, पहले अकेला व्यवहार कहे तो मूढ़ है। चाहे तो ग्यारह अंग पढ़नेवाला हो। व्यवहार कहाँ से आया? निश्चय का अनुभव होने के पश्चात् जो पर्याय में अशुद्धता अल्प रही, शुद्धता अल्प रही, उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है। जानता है। यहाँ तो मूढ़ है। चन्दुभाई! समझ में आया? आत्मदृष्टि अन्तर अनुभव बिना, द्रव्य के आश्रय बिना अकेले व्यवहार को व्यवहार कहे तो कहते हैं कि मूढ़ है। क्यों? अनादिरूढ़ है। और **प्रौढ़ विवेकवाले निश्चय (-निश्चयनय) पर अनारूढ़ वर्तते हुए...** देखो! राग की मन्दता जिसे तू व्यवहार कहता है, तो तू मूढ़ है। उससे भिन्न पड़कर राग का अभाव करके स्वभाव का आश्रय लेना, ऐसा भेदज्ञान तो तुझे है नहीं। प्रौढ़-बहुत। यह प्रौढ़ कक्षा चलती है। विशेष विवेकवाला, महा विवेकवाला, ऐसा कहते हैं। महाविवेकवाला। कैसा विवेक? निश्चय पर अनारूढ़। राग से भिन्न पड़कर भगवान आत्मा ध्रुव के ऊपर तो तू आरूढ़ नहीं। राग की मन्दता को तू व्यवहार कहता है। लालाचन्दजी! मूढ़ है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... झूठ कहते हैं ? समझ में आया ? पंच महाव्रतधारी सन्त हैं, भावलिंगी मुनि हैं, तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव है।

परमार्थ सत्य (- जो परमार्थ से सत्यार्थ है ऐसे) भगवान समयसार को देखते-अनुभवते नहीं। अकेला व्यवहार मन्द कषाय क्रियाकाण्ड में रुकते हैं और वह हमारा व्यवहार है। मूढ़ है। निश्चय (में) अनारूढ़ है, समयसार को नहीं जानते।

मुमुक्षु : परमार्थ सत्य कौन ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमार्थ सत्य आत्मा एक स्वरूप से त्रिकाल आनन्दकन्द। उसे जाने बिना तेरे व्यवहार को व्यवहार नहीं कहते। १२वीं में विशेष आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

द्वितीय श्रावण कृष्ण ५, सोमवार, दिनांक - ०५-०९-१९६६
गाथा - १२ प्रवचन - ३८

यह समयसार जीव-अजीव अधिकार चलता है। बारहवीं गाथा। शब्दार्थ फिर से। अन्वयार्थ। इस बारहवीं गाथा में अभी बहुत गड़बड़ चलती है। बारहवीं गाथा का आश्रय लेकर, व्यवहार से निश्चय होता है और व्यवहार आदरणीय है, ऐसा इसमें से निकालते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसा इसमें लिखा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें ऐसा है ही नहीं। यह जहाँ-तहाँ बारहवीं गाथा का आधार देते हैं। पहले से, बहुत वर्ष पहले से। स्थानकवासी में बारहवीं गाथा, मन्दिरमार्गी में बारहवीं गाथा, दिगम्बर में बारहवीं गाथा। सब यह बारहवीं गाथा का जहाँ देखो वहाँ आधार देते हैं। हमारे पहले से यह (चला आता है), देखो! इसमें व्यवहार कहा है। देखो, व्यवहार से निश्चय होता है, व्यवहार आदरणीय है। व्यवहार करते-करते निश्चय होता है। उसमें से निकालते हैं। बहुत काल से।

मुमुक्षु : अनादि काल से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अनादि से है परन्तु यह वर्तमान में तो अपने अनुभव में (इतना आता है)। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें नहीं और निकालते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे? अपनी दृष्टि से निकालते हैं। देखो! पहले शब्दार्थ। शब्दार्थ के बाद इसकी टीका।

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे॥१२॥

शब्दार्थ :- '**परमभावदर्शिभिः**' अर्थात् जो शुद्धनय तक पहुँचकर श्रद्धावान हुए। निज शुद्धस्वरूप अखण्ड... यह अपने चार शब्द हैं, भाई! अपने इसमें डाले नहीं। मूल में। शुद्ध, नित्य, एक ज्ञायकमात्र आत्मा जानना। यह पहला शब्द पण्डित जयचन्द्रजी में है। पहले जो आत्मधर्म आता है न, उसमें भी है। पहले यह प्रकाशित हुआ है न। समझ प्राभृत। सुनो!

यहाँ कहते हैं कि जिसे आत्मा के शुद्ध ज्ञायक नित्य एक भाव अन्तर अनुभव में दृष्टि में आया और दृष्टि उपरान्त उस स्वभाव के आश्रय से पूर्ण ज्ञान और आनन्द, चारित्र की प्राप्ति भी हो गयी। समझ में आया? भगवान शुद्ध नित्य एक ज्ञायकमात्र भाव, वह वस्तु। उसका प्रथम सम्यग्दर्शन हुआ, वह त्रिकाल ज्ञायक एक भावस्वरूप नित्य। शुद्ध नित्य एक ज्ञायकमात्र भाव। उसका आश्रय करके सम्यग्दर्शन हुआ। परन्तु अपनी ज्ञानपर्याय और चारित्रपर्याय पूर्ण नहीं हुई तो उसका दूसरा अधिक पद में लेंगे। परन्तु जिसे सम्यग्दर्शन हुआ और ज्ञान, आनन्द, चारित्र '**परमभावदर्शि**' '**परमभावदर्शि**'। परमभाव तो त्रिकाल वस्तु है, परन्तु उसके अनुभव में परमभाव अर्थात् पूर्ण उत्कृष्ट दशा प्रगट हो गयी। निर्विकल्प समाधि हो गयी। सप्तम गुणस्थान में या ऊपर अन्तर में पूर्ण स्वभाव ध्रुव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की परिपूर्णता से निज आत्मा को.... देखो! श्रद्धावान पूर्ण ज्ञान, चारित्रवान हो गये। पूर्ण स्वरूप की स्थिरता और ज्ञान अन्दर हो गये। निर्विकल्प समाधि। उसे तो शुद्ध आत्मा का उपदेश करनेवाला, उसे तो शुद्ध आत्मा की आज्ञा अर्थात् शुद्ध आत्मा ध्रुव है, ऐसा पर्याय में भी परिपूर्ण अनुभव हो गया। तो उसे शुद्धनय भानेयोग्य है। ज्ञातव्य का अर्थ वह पूर्ण स्वरूप का अनुभव करनेयोग्य है। समझ में आया? वह तो पूर्ण स्वरूप का अनुभव हो गया।

जैसा पूर्ण स्वरूप ध्रुव शुद्ध है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ और ज्ञान तथा चारित्र की उत्कृष्टता का पर्याय में अनुभव हो गया। उसे तो आत्मा ही अनुभव करनेयोग्य है। उसमें कोई व्यवहार-फ्यवहार है नहीं। समझ में आया? उसे तो आत्मा ही ज्ञातव्य है। शुद्धनय अकेला आत्मा ही अनुभव करनेयोग्य है। परिपूर्ण अनुभव होता है। अनुभव होता है, उसे भाता है तो उसे शुद्धनय जाननेयोग्य है अर्थात् भानेयोग्य है, ऐसा हो गया। समझ में आया? परन्तु... वहाँ तो पूर्ण हो गया।

और जो जीव अपरमभाव में स्थित है,... निज शुद्धस्वरूप एक ध्रुव नित्य ज्ञायक है, उसका अनुभव दृष्टि हुई, परन्तु स्थिरता पूर्ण नहीं हुई। स्वरूप में जो पूर्ण अभेद दशा चारित्र की पूर्ण दशा होनी चाहिए या ज्ञान की पूर्ण दशा एकाकार निर्विकल्प समाधि में रहना (चाहिए), वह रह नहीं सके तो अपरम अर्थात् निचली दशा में वर्तता है। समझ में आया? चौथे, पाँचवें, छठवें आदि गुणस्थान में निर्विकल्प अनुभव सातवें में है, वैसा नहीं। समझ में आया? अर्थात् पूर्ण पर्याय चारित्र की हुई, वह नहीं। अपना स्वभाव परमस्वभाव का अनुभव पूर्ण हो गया, उसे तो आत्मा अकेला अनुभव करनेयोग्य है, ऐसा जानना (योग्य है)। पाठ लेंगे। भाई! '**परिज्ञायमानः प्रयोजनवान्**' इतना शब्द टीका में लिया है। बस, वह जाना हुआ, भावना करनेयोग्य उसे प्रयोजनवान है। दूसरा कोई उसे भेद नहीं। अपनी पर्याय में चारित्र की अल्पता या शुद्धता की अल्पता, जो पूर्ण अनुभव है, वैसा उसे है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थंकर का कौन कहता है यहाँ? यहाँ तो निर्विकल्प अनुभव हो गया या केवलज्ञान हो गया या सप्तम गुणस्थान में निर्विकल्प अनुभव हुआ। अकेले आत्मा की भावना है। या पूर्ण आत्मा की दशा पूर्ण हो गयी। केवलज्ञान आदि की। समझे? तो उसे तो आत्मअनुभव ही है। उसे तो आत्मानुभव ही है, उसका नाम शुद्धनय का अनुभव है। शुद्धनय तो द्रव्य को कहते हैं। परन्तु जैसा द्रव्य था, वैसा पर्याय में एकाकार हो गया, उसे भेद रहा नहीं। अपूर्ण दशा चारित्र की, ज्ञान की दशा अपूर्ण रही नहीं तो उसे पूर्ण का अनुभव है, वही उसे भाने योग्य, अनुभवनेयोग्य अकेला आत्मा ही अनुभव करनेयोग्य रह गया। समझ में आया? हमारे मौके से आज पण्डितजी नहीं। उन्होंने यह आत्मा शब्दार्थ में डाला है। भाई! दूसरे में आत्मा नहीं। यह है न शुद्ध आत्मा? यह अपने भाई ने डाला है। क्योंकि वहाँ शुद्ध आत्मा... यह आत्मा (शब्द अपने) डाला है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तब सिद्ध है यह। और या निर्विकल्प समाधि अप्रमत्तदशा। जिसमें भेद रहा नहीं वहाँ। वह परमभाव में स्थित है। समझ में आया? दो प्रकार हैं।

अकेला निर्विकल्प अनुभव में सातवें में स्थित हो गया और या केवलज्ञान। वह तो आत्मा भानेयोग्य है। उसको आत्मा ही अनुभवना रहा। दूसरा भेद-भेद रहा नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभवनेयोग्य, भावित—भानेयोग्य हो गया। बस। भानेयोग्य हो गया, अर्थात् भानेयोग्य है, ऐसा इसका अर्थ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी ... यहाँ निचले की बात है। बारहवें में बाद में। यहाँ तो सविकल्प अवस्था की बात है।

यहाँ मुनि अथवा पंचम गुणस्थान में अनुभव में नहीं, (उसकी बात है)। निर्विकल्प अनुभव शान्त अप्रमत्तदशा निर्विकल्प अनुभव में है। उसमें भेद है सही, परन्तु लक्ष्य में नहीं, अकेला आत्मा का अनुभव करता है, केवलज्ञानी भी अकेला आत्मा का अनुभव करता है। भेद नहीं। अब रहे निचली दशा में अपना शुद्ध (आत्मा), वह ११वीं गाथा में कहा, ऐसा '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' भूतार्थ ज्ञायक भगवान एकस्वरूपरूप नित्य का आश्रय करके सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान अपूर्ण हुआ और स्वरूपाचरण भी अपूर्ण हुआ, अभी पूर्ण चारित्र नहीं हुआ। तो उसकी दशा में अपरमभाव में, वह अपरमभाव में है। मध्यम भाव में है, उत्कृष्ट भाव में नहीं। परम अर्थात् उत्कृष्ट, अपरम अर्थात् उत्कृष्ट नहीं। उत्कृष्ट भाव का अनुभव जिसे अन्तर पर्याय में है नहीं। श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र पूर्ण भाव को नहीं पहुँचे। पूर्ण दशा की पर्याय को प्राप्त नहीं हुए।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा हो गयी। ज्ञान, चारित्र पूर्ण नहीं हुए।

मुमुक्षु : श्रद्धा के साथ ज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह श्रद्धा साथ में ली है, साथ में ली है। तीनों एक में हुए। श्रद्धा के साथ ज्ञान, चारित्र की पूर्णता नहीं हुई। समझ में आया? श्रद्धा तो वहाँ ११वीं

गाथा में हो गयी। '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**'। फिर यहाँ बतलाना है कि ११वीं गाथा में तो अकेला भूतार्थ अकेला निश्चय, वही सत्य कहा था। तो कुछ बाकी रहा या नहीं? कोई व्यवहार है या नहीं? या अकेला सत्य त्रिकाल वही एक वस्तु रह गयी? समझ में आया? नहीं। जब तक स्वरूप में पूर्ण स्थिरता न हो, पूर्ण आनन्द की अभेद श्रद्धा के साथ, ज्ञान और चारित्र की पूर्ण एकता न हो, परमभाव न हो, वहाँ उसे दृष्टि अपने स्वरूप के ऊपर, अनुभव के ऊपर होने पर भी पर्याय में पूर्णता चारित्र की नहीं, ज्ञान की नहीं, शुद्धता पूरी नहीं, अशुद्धता का अंश साथ में रहा है, वह अपरमभाव में स्थित है, वह साधक अवस्था में स्थित है। समझ में आया?

वे... 'व्यवहारदेशिताः' अर्थात् ... लोगों को इसमें उलझन (होती है)। मूझवण क्या कहते हैं? उलझन, क्या अर्थ किया था? लोग यहाँ उलझते हैं। '**व्यवहारदेशिताः**'। यह तो पहले बन्धकथा एक आया था। बन्धकथा। तो बन्धकथा नुकसानकारी है। बन्धभाव, भाव। अन्दर आत्मा एकाकार स्वरूप है, उसके साथ राग का बन्धभाव नुकसानकारक है। विसंवाद खड़ा करते हैं। जैसे वहाँ बन्धकथा (कहा है), वहाँ बन्धभाव लेना। यहाँ आचार्य ने व्यवहार... पद्य है, पद्य, तो पद्य में '**व्यवहारदेशिताः**' शब्द रखा है वह पद को मिलाने के लिये। परन्तु इसका यह अर्थ है, टीकाकार अमृतचन्द्राचार्य ने उसमें से निकाला है कि वह जानने में आता हुआ उस काल में प्रयोजनवान है। यह उसका अर्थ है। '**व्यवहारदेशिताः**' अर्थात् व्यवहार का जो भाव-पर्याय में अपूर्ण शुद्धता और रागादि जो है, वह व्यवहार है, उसे '**देशिताः**' अर्थात् व्यवहारनय दिखलाता है कि है। इतनी अपूर्ण दशा है। उसे व्यवहार जानता है। उस काल में उस-उस प्रकार की शुद्धता का अंश और अशुद्धता का अंश जाना हुआ उस काल में प्रयोजनवान है। इतने शब्द परमभाव में उस काल नहीं, भाई! कारण है। परमभाव में एकरूप हो गया। परमभाव में पूर्ण आनन्द आदि, पूर्ण श्रद्धा, ज्ञान से अभेद हो गया। यह तो अकेला आत्मा ही भाव में एक हो गया उसे। '**परिज्ञायमानः प्रयोजनवान्**'। परमभाव में यह शब्द पड़ा है। और अपरमभाव में '**परिज्ञायमानस्तदात्वे प्रयोजनवान्**'। दोनों में अन्तर है। समझ में आया? वस्तुस्थिति ऐसी है। अन्दर इस प्रमाण बैठानी पड़ेगी।

भगवान आत्मा अपना निजस्वरूप ११वीं गाथा में कहा, नित्य ध्रुव एक वस्तु शुद्ध, उसका आश्रय, वही वस्तु सत्य है। वह शुद्धनय कहो, भूतार्थ कहो, त्रिकाल सत्य वस्तु वह सत्य है। उसका आश्रय लेने से वही सम्यग्दृष्टि होता है। सम्यग्दर्शन हुआ परन्तु परमभाव उत्कृष्ट भाव का अनुभव नहीं। उत्कृष्टभाव अर्थात् समाधि शान्त वीतरागभाव केवलज्ञान निर्विकल्प समाधि का अनुभव नहीं। और निचली दशा में वर्तता है तो उसे निश्चय का आश्रय तो है। समझ में आया? परन्तु पूर्ण आश्रय नहीं हुआ, पूर्ण आश्रय नहीं हुआ तो पर्याय में शुद्धता की अल्पता है और अशुद्धता का अंश साथ में है, उसे '**व्यवहारदेशिताः**'। '**देशिताः**' अर्थात् जाना हुआ। व्यवहार जाना हुआ उस काल में प्रयोजनवान है। समझ में आया? केवलचन्दजी!

मुमुक्षु : उपदेश ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। उपदेश की बात यहाँ नहीं। इसीलिए तो कहते हैं। उपदेश की बात ही है नहीं, वह है ही नहीं। यहाँ तो '**व्यवहारदेशिताः**' का अर्थ ही यह है कि व्यवहार जानता है, व्यवहारनय से जानता है, इसका नाम '**देशिताः**' कहते हैं। कथन शब्द है। जाना हुआ। अमृतचन्द्राचार्य ने उसमें से यह निकाला। यह ऐसा ही है, वरना किसी प्रकार मिलान नहीं खाता। उपदेश कौन दे? परन्तु अल्प भूमिका में उत्कृष्ट आनन्द का, शान्ति का अनुभव नहीं है, परमभाव का अनुभव नहीं है, मध्यमभाव का अनुभव है तो मध्यमभाव में वह मध्यमभाव जैसा है, उसे जाना हुआ उस काल में, समय-समय में जो मध्यभाव है, दूसरे समय में मध्यमभाव में शुद्धि की वृद्धि हुई है और अशुद्धि घट गयी है तो उस समय में उस प्रकार का जाना हुआ प्रयोजनवान है। इससे विशेष आगे बढ़ा, शुद्धि बढ़ी, अशुद्धि घटी तो उस समय में वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। काल भी लिया। समय-समय की शुद्धि और अशुद्धि है, उसको जाना हुआ, व्यवहारनय से जाना हुआ प्रयोजनवान उस काल में कहने में आया है। वस्तुस्थिति ऐसी है। समझ में आया? क्या कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लेंगे न अभी दो-तीन बार, ऐसे नहीं जाने देंगे। यह तो मूल वस्तु है।

'**देशिताः**' का अर्थ ऐसा नहीं, '**देशिताः**' का अर्थ कथन नहीं। '**देशिताः**' का अर्थ व्यवहार जानना, ऐसा इसका अर्थ है। टीका में कहा है, टीका में कहा है। उसका अर्थ यह है। उसका अर्थ यह है। शब्द '**देशिताः**' पड़ा है तो कथन क्या करे? परन्तु '**व्यवहारदेशिताः**' का अर्थ अमृतचन्द्राचार्य ने निकाला और ऐसा है। देखो! नीचे है। **जानने में आता (-ज्ञात होता) हुआ उस काल प्रयोजनवान है। 'परिज्ञायमानस्तदात्वे'** का अर्थ किया है। यह '**व्यवहारदेशिताः**' का अर्थ है। शब्द नहीं मिलते (इसलिए) उपदेश करे (ऐसा कहा)। कौन उपदेश करे? यहाँ तो अल्प भूमिका में अपने पूर्णानन्द का अनुभव नहीं तो परमभाव में स्थित नहीं। अपरमभाव में है तो व्यवहार उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है। जानना पड़ेगा कि व्यवहार ऐसा है। निश्चय पूर्ण नहीं हुआ। समझ में आया? ११वीं गाथा में तो एक ही सत्य कहा था। भूतार्थ सत्य। भूतार्थ सत्य त्रिकाल ज्ञायक सत्। वहाँ एक ही सत्य कहा तो पर्याय में कुछ अपूर्णता, कुछ शुद्धता, कुछ अशुद्धता है या नहीं? वह तो पूर्ण की बात पहले की। यह तो एक ही सत्य कहा। दूसरा व्यवहारनय का, पर्याय का सत्यपना पर्यायनय (है या नहीं)? निश्चय से असत्य है परन्तु वह पर्याय से व्यवहार से उस भूमिका में सत्यपना, अपूर्णता, शुद्धता की (अल्पता) है या नहीं? यह बताने के लिये १२वीं गाथा है।

मुमुक्षु : प्रयोजनवान....

पूज्य गुरुदेवश्री : जाना हुआ।

मुमुक्षु : जाना हुआ प्रयोजनवान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस। यह पाठ में है, देखो! '**परिज्ञायमानस्तदात्वे**' उस काल में जाना हुआ, जाना हुआ प्रयोजनवान है। वहाँ जाना हुआ अर्थात् अनुभव करनेयोग्य प्रयोजनवान। वहाँ काल नहीं। अकेला अनुभव। यहाँ जाना हुआ '**तदात्वे**' उस-उस समय में अपनी भूमिका में चौथा गुणस्थान, पाँचवाँ गुणस्थान, छठवें गुणस्थान में शुद्धि की वृद्धि, अशुद्धि घटी, वह सब पर्यायें हैं। पूर्ण नहीं हो गया। उस प्रकार से बराबर जानना, उसका नाम व्यवहार से उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह बड़ी गड़बड़ है। यह वस्तु इस प्रकार से नहीं समझे तो पूरी

उल्टी स्थिति ही हो जाये। निश्चय से व्यवहार असत्य कह दिया। सर्वथा असत्य है? पर्याय में अपूर्णता है या नहीं? चौदह गुणस्थान व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया? चौदह गुणस्थान व्यवहारनय का विषय है, निश्चय का नहीं। अमरचन्दजी!

'**ववहारोऽभूदत्थो**' जो कहा था और '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' कहा था और '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी**'। तो उसमें कोई व्यवहार तो आया नहीं। तो पर्याय है या नहीं? अपूर्ण पर्याय है या नहीं? अशुद्धता है या नहीं? कि बस, अकेला ज्ञायक हो गया। समझ में आया? ११वीं गाथा में भूतार्थ एक ही सत्य है, उसे बतलाया। परन्तु पर्याय में जब तक पूर्ण नहीं हुआ तो अकेला भूतार्थ है, ऐसी दृष्टि होने पर भी स्थिरता पूर्ण नहीं हो... आये, कहाँ से आये? कहो, समझ में आया? मैंने तो कहा, अपने आत्मा (शब्द) पण्डितजी ने डाला है। ऐसा कहा। यह '**शुद्धादेशः**' में आत्मा (शब्द)। यह बराबर है। इसका अर्थ किया,... सुनो फिर से!

जो '**परमभावदर्शिभिः**' शब्दार्थ करते हैं, भाई! जिसमें परमभाव का अनुभव हो गया है। दृष्टि में तो हुआ है, यहाँ तो पर्याय में उत्कृष्ट भाव का अनुभव हो गया। परमभाव पर्याय में उत्कृष्टभाव अभेदभाव पूर्णभाव भेदरहित भाव, ऐसा अनुभव हो गया है। ऐसे श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र, पूर्ण ज्ञान और चारित्रवान को शुद्ध आत्मा ही जाना हुआ '**ज्ञातव्य**' भानेयोग्य है। उसे तो अकेला आत्मा ही भानेयोग्य रहा। हिम्मतभाई! अकेला आत्मा भानेयोग्य रहा। उसे पर्याय में अपूर्णता नहीं कि ऐसे देखूँ कि यह पूर्णता देखनी है, पूर्ण हो गया। जैसा द्रव्य पूर्ण था, वैसी पर्याय भी पूर्ण अभेद हो गयी। तो '**परमभावदर्शिभिः**' उत्कृष्ट भाव का अनुभव करनेवाले को आत्मा अनुभव करनेयोग्य हो गया। अकेला आत्मा रहा। पर्याय में अभेद आत्मा रहा। उसे अपूर्णता रही नहीं। तो उसे तो शुद्धनय भानेयोग्य है अर्थात् पूर्णानन्द प्रभु का ही अनुभव करता है। अनुभव करता है, उसे भानेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। भाई! आहाहा! समझ में आया? पहले शब्दार्थ लेते हैं, इसलिए फिर उसमें मिलान होगा।

जो जीव अपरमभाव में (अर्थात्) परमभाव नहीं, उत्कृष्ट का अनुभव (नहीं)... टीका में आयेगा। उत्कृष्टभाव का अनुभव नहीं। दोपहर में आयेगा। ठीक। तार आया है। अहमदाबाद, रखियाल। कहो, समझ में आया? क्या कहा? देखो! यह गाथा बराबर

समझनेयोग्य है। इस गाथा के नाम से बहुत गड़बड़ चलती है। यह सूक्ष्म-सूक्ष्म करके... जैसा अन्तर में से आता है, वैसा कहते हैं। समझ में आया? उसका घोलन करके यही आया है।

भगवान आत्मा... आचार्य ये कहना चाहते हैं। ११वीं गाथा में जो ऐसा कहा कि शुद्धनय भूतार्थ, एक ही भूतार्थ है। तो द्रव्य ही भूतार्थ है तो पर्याय में कुछ है या नहीं? पर्यायभेद कोई गुण-अवस्था में न्यूनता, कुछ अल्प शुद्धता, अशुद्धता है या नहीं? या एक भूतार्थ वस्तु ही रह गयी? समझ में आया? उसमें व्यवहार अभूतार्थ कहा था। व्यवहार असत्य है, कहा था। अकेला भूत-विद्यमान पदार्थ सत्य कहा था। तो व्यवहार असत्य कहा था, वह व्यवहार कोई पर्याय में है या नहीं? यदि न हो तो अकेला वेदान्त सिद्ध हो जाता है। भूतार्थ किसकी अपेक्षा से? समझ में आया? और अभूतार्थ भी किसकी अपेक्षा से?

पर्याय को असत्य कहा, वह त्रिकाल की अपेक्षा से (कहा है)। स्वयं की अपेक्षा से है। तो अपनी अपेक्षा से है तो यहाँ परम उत्कृष्ट अनुभव हो गया, जैसा द्रव्य है, वैसी पर्याय अभेद पूर्ण हो गयी, उसे तो भेद रहा नहीं। उसे नय रहा नहीं। यहाँ भले कहा शुद्धनय, नय नहीं वहाँ। समझ में आया? अकेला आत्मा का अनुभव है। समझ में आया? केवलज्ञान लो तो भी उसमें अकेला आत्मा ही रहा। उसे नय-बय है नहीं। परन्तु यहाँ तो कहा है। वह तो आगे आता है न? केवलज्ञान शुद्धनय का विषय... नहीं आता? पण्डित जयचन्द्रजी ने डाला है न? शुद्धनय तो बताता है। केवलज्ञान पूर्ण हो गया, पश्चात् शुद्धनय कहाँ रहा? समझ में आया? श्रुतज्ञान की अपेक्षा से उसे कहा जाता है, केवलज्ञान सद्भूतव्यवहार। जहाँ पूर्ण हो गया, उसे तो कोई नय-फय है नहीं। नय तो श्रुतज्ञान में पड़ते हैं, केवलज्ञान में नय कहाँ आये? परन्तु यहाँ समझाना है कि जो भूतार्थ एक ही सत्य कहा था, ध्रुव... ध्रुव एकरूप ज्ञायक, वही सत्य, वही शुद्धनय, वही भूतार्थ। एक कहा था। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। भूतार्थ के आश्रय से। उसमें अभूतार्थ व्यवहार नहीं, ऐसा कहा था। व्यवहार नहीं, ऐसा कहा था। नय, व्यवहारनय। भाई! केवली को तो व्यवहार, निश्चयनय है नहीं। तो उन्हें परमभाव अनुभव करनेयोग्य अकेला आत्मा रह गया।

अब जिसे निश्चय है, उसे दृष्टि के विषय में भूतार्थ आ गया। परन्तु पर्याय में पूर्ण नहीं हुआ तो वहाँ त्रिकाल की अपेक्षा से असत्यार्थ कहा, परन्तु पर्याय की अपेक्षा से व्यवहारनय की अपेक्षा से वह है, अशुद्धता है, शुद्धता पूर्ण प्रगट हुई नहीं, ऐसा बराबर जानना, उसका नाम व्यवहारनय उस काल में, उस-उस समय में जाना हुआ प्रयोजनवान है। वस्तु यह है। विमलचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जाननेयोग्य अमृतचन्द्राचार्य ने निकाला है और ऐसा ही है। समझ में आया? यह चीज़ तो अन्तर की है।

यह चीज़ ऐसी है कि (गाथा) ११ में तो ऐसा ही कह दिया कि एक ही सत्य है, एक ही नय सत्य है अर्थात् भूतार्थ ही सत्य है। तो कोई पर्याय-फर्याय है या नहीं? वहाँ पर्याय से इनकार किया था। असत्य है। द्रव्य में नहीं, वस्तु में नहीं। यह तो ठीक है। परन्तु पर्याय है ही नहीं, ऐसा कहा था, पर्याय असत्य है, ऐसा कहा था। अन्तर में तो नहीं परन्तु पर्याय असत्य है, ऐसा कहा था। पर्याय असत्य है, इसका अर्थ क्या? त्रिकाल में है नहीं, इस अपेक्षा से एक समय की पर्याय को असत्य कहा। परन्तु यहाँ उसे वापस सिद्ध किया कि नहीं, जब तक उसे... आत्मा के स्वरूप की दृष्टि हुई, ज्ञान हुआ परन्तु जब तक स्थिरता नहीं हुई तो व्यवहार पर्याय है। शुद्धता का अंश है। उस गुणस्थान को जानना, यही व्यवहारनय है। उसे तीर्थ कहते हैं। समझ में आया? विमलचन्दजी! यह वस्तु ऐसी है, परन्तु क्या करे? ऐसी गड़बड़ करते हैं न! और गाथा बराबर तुम्हारे इसमें अभ्यास में आयी।

भाई! प्रभु तो कहते हैं, बापू! भगवान तो पूर्ण है न! एक स्वरूप से ध्रुव, उसे ही सत्य कहते हैं। व्यवहार को असत्य कहा, पर्याय को असत्य कहा, हों! द्रव्य में है नहीं, इस अपेक्षा से नहीं, परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से एक समय की पर्याय अभूतार्थ है, ऐसा कहा है। समझ में आया? कहो, वस्तु में पर्याय नहीं, यह बात नहीं। परन्तु त्रिकाल द्रव्य सत्य है, वस्तु सत्य है तो एक समय की अवस्था को वहाँ असत्य कहा था—झूठी कहा था। समझ में आया? उसमें है नहीं परन्तु पर्याय है, वह असत्य है, ऐसा कहा था।

समझ में आया? तो क्या पर्याय है ही नहीं? यहाँ १२वीं गाथा में स्पष्टीकरण किया कि जब तक पूर्ण अनुभव न हुआ हो, तब तक उसे चौथा गुणस्थान, पंचम गुणस्थान, छठवें गुणस्थान की जो शुद्धता की दशा है और साथ में अशुद्धता है, वह जाना हुआ '**तदात्वे**' का अर्थ यह है कि ज्ञान की पर्याय स्व को जानती हुई, पर को जानती हुई, ऐसा ही स्व-परप्रकाशक ज्ञान समय-समय में प्रगट होता है। कैसा? कि अपने को ज्ञायकरूप जानता है और पर्याय में जितनी शुद्धता है, जितनी अशुद्धता है, वैसा स्व-परप्रकाशकज्ञान जानता हुआ प्रगट होता है। तो जाना हुआ प्रयोजनवान है। वस्तु ऐसी है। चर्चा करे, वाद-विवाद करे। अमरचन्दजी! पण्डितजी! तुमको याद किया था अभी, हों! यह अभी कहाँ चले गये आज? हमारे पण्डितजी ने आत्मा (शब्द) डालकर बहुत स्पष्ट कर दिया है। शुद्ध आत्मा शब्द डालकर। वहाँ शुद्ध आत्मा भानेयोग्य है। वहाँ कोई नय-बय है ही नहीं। और जो अकेले आत्मा को ध्रुव को सत्य कहा था, ध्रुव को भूतार्थ कहा था तो क्या पर्याय सर्वथा असत्य है? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि अपरमभाव में स्थित। जब तक चौथे गुणस्थान में, पाँचवें, छठवें में है, तब तक अपरमभाव में स्थित है। छठवें में लो तो वहाँ आगे तीन कषाय (चौकड़ी) के अभाव की शुद्धि है और जरा से संज्वलन के रागादि हैं, तो इतनी पर्याय को भिन्न-भिन्न (जानता है)। टीका में आयेगा। अशुद्ध द्रव्य को कहनेवाला एक-एक भाव बताकर अनेक भाव बताते हैं, ऐसा व्यवहारनय उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है। यह आयेगा। वर्णमालिका की भाँति। क्योंकि भिन्न-भिन्न शुद्धता है, भिन्न-भिन्न अशुद्धता है, उन सबको जानना। एक-एक समय में जितनी शुद्धता और जितनी अशुद्धता, सबको जानना। वह व्यवहार, उस समय व्यवहार प्रमाणज्ञान करने के लिये व्यवहारनय प्रयोजनवान है। समझ में आया? कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु : .... निकल जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निकल गया। क्या कहा यह? यह हमारे दलाल हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह '**देशिताः**' आया, उसमें से निकाला। दिखाओ, व्यवहार

का उपदेश देना। उपदेश की बात नहीं यहाँ। सुन तो सही। यह तो पद की रचना में (ऐसा कहा है)। पहले कहा न? **'बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि'**। वह बन्धकथा विसंवाद खड़ा करती है? वार्ता कथा? भगवान अबन्धस्वरूप एकाकार एक चीज़ में भावबन्ध का कहना विसंवाद खड़ा करता है। समझ में आया? द्रव्यबन्ध के लक्ष्य में रुकना वह एक में विरोध करनेवाली कथा है। भाव ऐसा विरोध करनेवाला है। परन्तु शब्द में तो बन्धकथा लिया। ऐसा **'व्यवहारदेशिताः'** लिया। परन्तु **'व्यवहारदेशिताः'** का अर्थ कथन नहीं। परन्तु उसका भाव जो व्यवहार का है, समय-समय की दशा शुद्धि और अशुद्धि को जानना, वह **'व्यवहारदेशिताः'** व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। समझ में आया? धीरे-धीरे समझना चाहिए, भाई! बहुत गड़बड़।

यह पूरी गाथा जैनदर्शन की द्रव्यदृष्टि को सिद्ध करके, भूतार्थ को सिद्ध करके पर्याय में न्यूनता है, वह उतना तीर्थ है। आगे आयेगा। यदि व्यवहार को न माने तो तीर्थ का नाश हो जायेगा। इसका अर्थ कि व्यवहार है। चौथा गुणस्थान है, पाँचवाँ है, छठवाँ है। और छठवीं भूमिका में विशुद्धि थोड़ी है और अशुद्धता है, उसे न माने तो तीर्थ का नाश हो जायेगा। निश्चय को न जाने तो आश्रय करनेयोग्य की दृष्टि बिना सम्यग्दर्शन कहाँ से होगा? आहाहा! समझ में आया? सहज ही देखो न अधिक संख्या में यह आया। पण्डितजी! हमारे हिम्मतभाई है न। यह अधिक लोगों में यह (विषय) आया। समझने जैसा आया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जाननेमात्र व्यवहारनय। नय ज्ञान का अंश है या क्या है? तो नय विषयी है। तो उसे विषय है, वह जाननेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। बाबूलालजी! है ऐसा समझ में आता है या नहीं? देवानुप्रिया! देवानुप्रिया समझते हो? मनुष्यदेह देव को वल्लभ है। हमारे बारम्बार भाषा श्वेताम्बर में बहुत आती है। किसी को बुलावे न (तो ऐसा कहे), देवानुप्रिया! हे देव को वल्लभ। देव को मनुष्यदेह वल्लभ है। हे देवानुप्रिय! ऐसा कहकर नौकर को बुलावे तो भी सेठ ऐसा बोलावे। देवानुप्रिय! हे देव को वल्लभ! इतना काम करोगे? समझ में आया? यह मनुष्यदेह देव को वल्लभ है। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं, हे आत्मा! भगवान! उसमें लिया था न? भाई! वे चार बोल

अपने निकाल दिये। शब्द नित्य एक ज्ञायकमात्र आत्मा जानना। यह शब्द पड़े थे। पण्डित जयचन्द्रजी के। एक। तब कहा था, पहले वाँचा तब कहा था, यह है। इसमें भी है।

मुमुक्षु : ध्रुव नित्य एक ज्ञायकभाव मात्र जानना।

पूज्य गुरुदेवश्री : मात्र। मात्र। ज्ञायकमात्र आत्मा जान। समझ में आया? वह शब्द है, मूल में है। मूल में है और इसमें भी है। पण्डित जयचन्द्रजी में है। यह उस दिन की खबर है। यह निकाल दिया था, तब सहज कुछ कहा था। ऐसे शब्द निकाल डाले, ऐसा कहा होगा। कुछ कहा होगा। बारहवीं है न? उसमें है न। यह डाला है, उसमें है तब डाला है न! यह रहा, देखो! रहा। बारहवीं है न? 'इस प्रकार शुद्धात्मा कहा है।' देखो! 'परमभावदर्शि जो शुद्धनय तांहि पहुंची श्रद्धावान भये तथा पूर्ण ज्ञान, चारित्रवान भये,...' देखो! 'श्रद्धावान भये तथा पूर्ण ज्ञान, चारित्रवान भये...' ऐसा है, भाई! 'तिनही करी तो शुद्धता... जिनकी आज्ञा, उपदेश जामें ऐसा शुद्धनय...' उपदेश का अर्थ उस भाव का पूर्ण अनुभव है, उसे उपदेश कहते हैं। 'उपदेश जामे ऐसा शुद्धनय भावनेयोग्य है।' पूर्ण आनन्द करनेयोग्य है, बस! 'यहाँ प्रकरण...' अब आता है। 'शुद्ध आत्मा का है। सो नित्य एक ज्ञायकमात्र आत्मा जानो।' बस, इतना। इतने शब्द भाई ने अधिक डाले हैं। पण्डित जयचन्द्रजी ने। वे यहाँ तब निकाल दिये थे। कहा, यह एक आवश्यक है। उसमें था। तब कुछ छपाया अवश्य था। इस ओर ... भाई को नहीं? झाटकिया को। (संवत्) १९९५ में वहाँ। शब्द निकाले नहीं जाते। जो उसका मेल है, उस प्रमाण उसका मेल है। झाटकिया को ९५ में कहा था। राजकोट। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, शुद्धनय ज्ञातव्य है, इसका अर्थ यह कि अकेला शुद्ध का... शुद्धनय तो भूतार्थ पूर्ण, उसे शुद्धनय कहा। उसका अकेला आश्रय होकर पूर्ण हो गया, उसे शुद्धनय रहा नहीं। परन्तु शुद्धनय पूर्ण हो गया, उसे प्रमाण पूर्ण हो गया, उसे व्यवहार है नहीं। परन्तु जो अपरमभाव में है, श्रद्धा और ज्ञान-चारित्र के पूर्ण भाव को नहीं पहुँच सके। अर्थ में तो अर्थकार श्रद्धा करेंगे। तीन की एकता नहीं न! जब तक तीन की एकता पूर्ण न हो, तब तक मोक्षमार्ग की पूर्णता नहीं हुई। समझ में आया? तो

सम्यग्दर्शन क्षायिक होने पर भी ज्ञायक की चारित्र की पूर्णता न हो, तब तक तीन की एकता बिना मोक्षमार्ग पूर्ण हुआ नहीं। तो जहाँ पूर्ण नहीं है तो अपरमभाव में स्थित साधकदशा में चौथे, पाँचवें, छठवीं आदि भूमिका में सविकल्पदशा में, जयसेनाचार्यदेव की टीका में सविकल्पदशा में ऐसा लिया है। चौथे, पाँचवें, छठवें में प्रमत्त-अप्रमत्त शुभयोगवाली सविकल्पदशा, ऐसा लिया है। तीन तो ठीक, परन्तु मुझे तो दूसरा कहना है। प्रमत्त-अप्रमत्त लिया है तो प्रमत्त-अप्रमत्त आता-जाता है न, इससे प्रमत्त-अप्रमत्त लिया है। वास्तव में तो प्रमत्त सिद्ध करना है। परन्तु प्रमत्त-अप्रमत्त में आता-जाता है। जो अप्रमत्त होकर श्रेणी मांड देता है, उसकी बात नहीं। समकित, पाँचवाँ, छठवाँ और प्रमत्त-अप्रमत्त, शुभयोग वह प्रमत्त-अप्रमत्त सविकल्प अवस्था, ऐसा ले लिया है। तो वह प्रमत्त सविकल्प दशा में जाता है, तब तक उसकी अशुद्धता है, शुद्धता थोड़ी है, उस समय ज्ञानी... वास्तव में तो ऐसा है भाई! जो ज्ञान की दशा है न? ऐसी रहती है। ऐसी प्रगट रह जाती है। ध्रुव को अभेद जाने, ऐसा ज्ञान और पर्याय में अल्प शुद्धता है, ऐसा ज्ञान, पर्याय का जानने का, स्व-पर जानने की पर्याय ऐसी प्रगट सहज दशा रह जाती है। समझ में आया?

फिर से, फिर से। इसमें दूसरी बार अवरोधक नहीं, यह तो भावना है। भावना में पुनरुक्ति नहीं लगती। आहाहा! कहते हैं, अपना शुद्ध ध्रुव शुद्धनय, उसे ध्रुव कहा है, उसे भूतार्थ (कहा है)। उसका ज्ञान हुआ। ज्ञान हुआ। तो पर्याय में शुद्धता थोड़ी है, अशुद्धता है, उसका ज्ञान करनेयोग्य कोई पर्याय रह गयी या नहीं? तो वह ज्ञान जब अभेद का हुआ, उसके साथ ही थोड़ी शुद्धता है, अशुद्धता है, उसका ज्ञान स्व-परप्रकाशक ज्ञान का स्वभाव है। तो स्व का इतना और पर्याय इतनी है, ऐसा स्व-परप्रकाशक सहज ही प्रगट होता है। उसे कहा कि यह शुद्धता थोड़ी है, अशुद्धता थोड़ी है, उसे उस काल में, वह-वह ज्ञान, उस काल में उस प्रकार का जानता हुआ प्रगट होता है। थोड़ा सूक्ष्म तो पड़ता है। सूक्ष्म थोड़ा पड़ता है, भाई! अधिक लोगों में थोड़ा सूक्ष्म (लगे)। परन्तु अब यह बात ऐसी है, भाई! आहाहा! रतिभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निकल जाता है। कहा न? निकाला न, व्यवहार का निकाला न। व्यवहार नहीं? व्यवहार नहीं? व्यवहार स्थापनेयोग्य है, ऐसा नहीं आया ८वीं गाथा में? स्थापन करना योग्य है, स्थापित करता है कि है। है, ऐसा व्यवहार पुकार करता है। और व्यवहारनय है, वह विषयी है। उसका विषय, विषय को ही यहाँ व्यवहारनय कहा है। यहाँ तो भेद नहीं किया। त्रिकाल को शुद्धनय कहा तो भेद को व्यवहारनय कहा। समझ में आया? वरना तो भेद व्यवहारनय का विषय है। परन्तु यहाँ तो कहा कि व्यवहारनय '**देशिताः**'। '**देशिताः**' का अर्थ-जानता है, जानता है। परसन्मुख का स्व-परप्रकाशक ज्ञान जो प्रगट होता है, वह जानता है कि शुद्धता थोड़ी है, अशुद्धता है। यह गुणस्थान छठवाँ है। ऐसी पर्याय को जानना, उसका नाम व्यवहारनय से उस काल में उस-उस सयम में उस-उस प्रकार की शुद्धता को, जैसे-जैसे शुद्धता बढ़ती है, और अशुद्धता घटती है, उस-उस प्रकार की शुद्धता-अशुद्धता को उस-उस प्रकार का ज्ञान स्व-परप्रकाशक वह ज्ञान जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहा! समझ में आया? साधक अवस्था में है। साधक तो सम्यग्दृष्टि है। भाई! यह साधक अवस्था कहा है न? अर्थ में जरा थोड़ा लेंगे कि जब तक सम्यक् नहीं, तब तक भी उसे, जिसकी ओर से वीतराग का उपदेश, वीतरागी भाव का उपदेश प्राप्त हो, ऐसे गुरु के निकट तुझे सुनना। परन्तु उसमें वजन देंगे। समझ में आया? **यथार्थ ज्ञान-श्रद्धान की प्राप्तिरूप सम्यग्दर्शन की प्राप्ति न हुई हो, तब तक तो जिनसे यथार्थ उपदेश मिलता है...** यथार्थ उपदेश में वजन है। यथार्थ सत् का उपदेश जहाँ मिले, उसे सम्यग्दृष्टि हुए पहले भी यह सुनना। दूसरों के निकट सुनना नहीं। यह बात कहेंगे। इतनी जवाबदारी तो उसके ऊपर डालेंगे।

मुमुक्षु : श्रद्धा अपूर्ण क्यों बतायी?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, श्रद्धा की अपूर्णता नहीं। बात की न। श्रद्धा, सच्चा ज्ञान, चारित्र ... श्रद्धा अपूर्ण नहीं। तीनों की एकता नहीं न! ज्ञान, चारित्र की अपूर्णता के कारण अपूर्ण है, ऐसा। समझ में आया?

कहते हैं, लो... **अपरमभाव में...** नहीं पहुँच सके। पूर्ण दशा को अभेद करके

अनुभव न कर सके। अपनी पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण साधक अवस्था में धर्मात्मा साधकदशा में वर्तता है। तो दृष्टि में तो भूतार्थ एकरूप ही है। परन्तु पर्याय है या नहीं? पर्याय को वहाँ असत्य कहा तो पर्याय है या नहीं? वहाँ कहा था कि पर्याय असत्य है। व्यवहार अभूतार्थ है। असत्य, झूठा है। व्यवहार झूठा है, ऐसा कहा। वह व्यवहार झूठा कहा था, वह त्रिकाल की अपेक्षा से झूठा कहा। वह यहाँ सिद्ध किया कि पर्याय में जितनी शुद्धता और अशुद्धता है, वह व्यवहारनय है। उसे झूठा कहा, परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से झूठा कहा। वर्तमान की अपेक्षा से सत्य है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, अपरमभाव श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र के पूर्ण भाव को न पहुँच सके, साधकदशा में स्थित है तो '**व्यवहारदेशिताः**'। उस-उस समय में व्यवहार विचित्र अनेक वर्णमाला समान होने से... स्पष्टीकरण करेंगे। अशुद्ध द्रव्य को कहनेवाला। देखो! अशुद्ध द्रव्य (कहा)। पर्याय है न, अशुद्धता है न, पूर्ण शुद्ध कहाँ हो गया है? अशुद्ध द्रव्य को कहनेवाला होने से जिसने भिन्न-भिन्न एक-एक भावस्वरूप अनेक भाव दिखलाये हैं। एक-एक शुद्ध का अंश, अशुद्ध का अंश अनेक दिखलाता है। अनेक को देखना, वह अशुद्धनय का अर्थात् व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया?

जानने में आता हुआ प्रयोजनवान है। यह अमृतचन्द्राचार्य ने तो हृदय खोल दिये हैं। कुन्दकुन्दाचार्य का जो हृदय था, भाषा तो पद्य में आनेवाली हो, वह आवे, समझे? यह पद्य है। यह कोई गद्य नहीं कि अनेक शब्द उसके चले। वहाँ ऐसा शब्द आया परन्तु उसका भाव यह है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध ध्रुव चैतन्य, उसे ही सत्य कहा, वही सत्य कहा, व्यवहार को झूठा कहा। तो व्यवहार तो त्रिकाल की अपेक्षा से झूठा कहा। तो कहते हैं कि पूर्ण दशा का अनुभव हो गया, वहाँ तो आश्रय लेना रहा नहीं, अपूर्णता रही नहीं। आश्रय लेना रहा नहीं। पूर्ण हो जाने के बाद आश्रय किसका करना? अपूर्णता रही नहीं। परन्तु जब तक साधकदशा में दृष्टि तो हुई है, भूतार्थ की शुद्धनय की, शुद्धनय सत्य है ऐसी दृष्टि हुई है परन्तु पर्याय में अशुद्धता है, शुद्धता है, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, निश्चयरत्नत्रय

की शुद्धि, चारित्र की शुद्धि भी बढ़ती है तो अंश-अंश करके भेद को देखना, उस भेद को देखना, यही व्यवहारनय देखना और व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजवान कहा गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और बाद में नाशवान की बात। यहाँ तो जानते हैं। नाश तो स्वभाव के आश्रय से होगा। यह प्रश्न है नहीं। यह तो दृष्टि में आया है कि इसके आश्रय से नाश होता है। यह प्रश्न यहाँ है नहीं। यह तो बाद में समझाना हो तो समझाने की पद्धति है। वह तो है, ऐसा व्यवहार जानता है और निश्चय में यहाँ आश्रय करे तो नाश होगा, वह भी दृष्टि के विषय में आ गया है। अशुद्धता का नाश शुद्ध के आश्रय से होगा, वह तो दृष्टि में आ गया है। त्रिकाल ज्ञायक भगवान के आश्रय से दर्शन हुआ, उसके आश्रय से अशुद्धता का नाश होकर चारित्र होगा। यह तो दृष्टि के विषय में यह भान में आ गया है। समझ में आया? ऐ... चन्दुभाई! आहाहा! अरे.. भगवान! उसे रास्ता कहा। तो नय में विवाद (करे)। नय समझने के लिये कहा तो नय में गड़बड़ में डाल दिया। गुंचवण को क्या कहते हैं? गड़बड़। यह तो गड़बड़ निकालने के लिये कहा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में, यह बाद में। अभी कहाँ है? अभी सुनो।

मुमुक्षु : अंगीकार करना....

पूज्य गुरुदेवश्री : अंगीकार करने का अर्थ जानना। समझ में आया? अंगीकार करने का अर्थ जानना। ऐसा अर्थ है। व्यवहारनय का उपदेश जाननेयोग्य है। ऐसा जहाँ तक ज्ञानी न हो, वहाँ तक यथापदवी सम्यग्दृष्टि के पास अथवा जिन का उपदेश वीतराग का उपदेश मिले। फिर अर्थ होगा। अभी ... यहाँ तो अभी आचार्य की बात पहले करते हैं। पश्चात् अमृतचन्द्राचार्य यह कहना चाहते हैं, उसके साथ सन्धि करते हैं। पश्चात् वह क्यों कहते हैं, वह बाद में चलेगा। समझ में आया? छोटाभाई! ऐसा है मार्ग तो, बापू! 'वादविवाद करे सो अन्धा, सद्गुरु कहे सहज का धन्धा' बनारसीदास कहते हैं, हों!

भाई! प्रभु! तू पूर्ण है न, नाथ! उस पूर्ण को हम सत्य कहते हैं। भगवान कहते हैं, हों! उसे हम सत्य कहते हैं और बाकी पर्याय को असत्य कहते हैं, अभूतार्थ कहते हैं, झूठी कहते हैं। तो क्या महाराज! तो क्या पर्याय है ही नहीं? तो कहा, ११वीं गाथा में जिसे हमने सत्य कहा, पर्याय को असत्य कहा, वह निचली दशा में नय रहते हैं। पूर्ण में तो नय है नहीं। निचली दशा में पर्याय भूतार्थ है। पर्याय पर्याय की अपेक्षा से भूतार्थ है। वह पर्याय व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया? आहाहा!

अरे भगवान! शब्दार्थ भी अपनी कल्पना से करते हैं। समझ में आया? क्या करे? शब्द तो बोले नहीं। शब्द में क्या आशय है, नय का प्रयोजन क्या है, उसे समझे नहीं और अपनी कल्पना से अर्थ करे तो क्या करें? यशोविजय कहते हैं, एक बार कहा था न? 'जाति अन्ध का दोष नहीं आचरो...' जन्म अन्ध। 'जाति अन्ध का दोष नहीं आचरो, जो जाने नहीं अर्थ, मिथ्यादृष्टि इससे... करे अर्थ के अनर्थ...' अरे! जिस जगह जो प्रयोजन सिद्ध करना है, वह सिद्ध न करे और अपनी कल्पना से शास्त्र को भी अपनी कल्पना से ले जाये। शास्त्र को क्या कहना है, उसे अपनी दृष्टि में न ले जाये और शास्त्र को अपनी कल्पना से समझे। समझ में आया? शास्त्र में क्या कहा है, वह क्या कहता है, ऐसी अपनी दृष्टि वहाँ ले जाना, ऐसा नहीं करके, अपनी दृष्टि में शास्त्र को ले आना कि ऐसा कहते हैं और वैसा कहते हैं। चन्दुभाई! यह तो हमारे बहुत वर्ष पहले चर्चा हुई है। बहुत वर्ष (हुए)। ४० वर्ष पहले। यह शास्त्र के शब्दों के अर्थ क्या हैं, यह ऊपर से क्या कहना है, वह तुम्हारी दृष्टि ले जाओ। शास्त्र के अर्थ सुनने में तुम्हारी दृष्टि वहाँ नहीं लगाओ। शास्त्र को इस ओर न ले जाओ। समझ में आया? आहाहा! अनन्त काल ऐसा किया है न। यह आता है न? पीछे नहीं? भाई! समयसार। ऐसा अर्थ करते हैं। सर्वविशुद्धि अधिकार में। अपनी बुद्धि के दोष से ऐसा अर्थ करते हैं, हमारे सांख्यमति जैसे साधु। ऐसा अर्थ करते हैं, कर्म से होता है, कर्म से ज्ञान (होता है)। समझ में आया? प्रज्ञादोष इसमें आता है। देखो! समयसार में। अपनी प्रज्ञा के दोष से, यह (शब्द) है। (गाथा) ३३२-३४४। अपने दोष से निकालता है, ऐसा कहते हैं। यह रहा। गुजराती में चिह्न किये हों न। (गाथा ३३२-३४४)। **(आचार्यदेव कहते हैं कि):- इस प्रकार ऐसे सांख्यमत को, अपनी प्रज्ञा के (बुद्धि के) अपराध से**

सूत्र के अर्थ को नहीं जाननेवाले कितने ही श्रमणाभास प्ररूपित करते हैं,... अमृतचन्द्राचार्य ने लिया है। हिन्दी में ४७० पृष्ठ, **आचार्यदेव कहते हैं कि....** देखो! ऊपर आया था। ज्ञानावरणीय कर्म से ज्ञान रुकता है, ज्ञानावरणीय का उघाड़ हो तो क्षयोपशम रुकता है, ऐसी जो बात करते हैं, वे सांख्यमत को अपनी प्रज्ञा-बुद्धि के अपराध से **सूत्र के अर्थ को नहीं जाननेवाले कितने ही श्रमणाभास...** (श्रमणाभास अर्थात्) **मुनि के गुण नहीं होने पर भी अपने को मुनि कहलानेवाले। प्ररूपित करते हैं; उनकी, एकान्त से प्रकृति के कर्तापने की मान्यता से, समस्त जीवों को एकान्त से अकर्तापना आ पड़ता है, इसलिए 'जीव कर्ता है' ऐसी जो श्रुति, उसका कोप टालना अशक्य होता है...** आत्मा पर्याय में राग का कर्ता है। समझ में आया? अज्ञानभाव से पर्याय में राग का कर्ता आत्मा है। क्या कर्म कराता है? भेदज्ञान हुआ, पर से भिन्न करने की ज्ञान की योग्यता का, अल्पता का आवरण का अपनी दशा का कर्ता स्वयं आत्मा है। कर्म तो निमित्तमात्र है। समझ में आया? परन्तु ऐसा नहीं समझते तो अर्थ का अनर्थ करते हैं। प्रज्ञा के अपराध के कारण से। कोई कर्म के कारण से नहीं। उसकी प्रज्ञा-बुद्धि में दोष पड़ा है। इसलिए अर्थ का अनर्थ करता है। समझ में आया? आठों ही कर्म की बात ली है। यह तो आवे तब चले न। ज्ञानावरणीय कर्म का उदय हो तो आत्मा को ज्ञान आवृत्त हो जाता है। क्षयोपशम होवे तो (ऐसा होता है)। बस, उसके कारण से तुझमें पर्याय है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा न। ज्ञान की योग्यता से ज्ञान अपने क्षयोपशम में आता है, अपनी योग्यता से वहाँ अल्पता होती है। क्या सच्ची बात है? नहीं। ज्ञानावरणीय कर्म से होता है। ज्ञानावरणीय कर्ता और ज्ञान की हीनता कार्य। समझ में आया? ऐसा शास्त्र का अपनी प्रज्ञा के अपराध के कारण से ऐसा अर्थ निकालते हैं। एकान्त मानते हैं और अपना अपराध अपने से है, ऐसा मानते नहीं। समझ में आया? समयसार शास्त्र में तो बहुत भर दिया है। अनेक बातें। समझ में आया? प्रज्ञा का अपराध है। वे ऐसा निकालते हैं कि शास्त्र में ऐसा नहीं कहा। ऐसा कहते हैं। गोम्मटसार में ऐसा कहा नहीं कि ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुकता है। वह तो पर्याय में हीनता हो तो निमित्त है, ऐसा वहाँ

कहा था। तुम इसका अर्थ (ऐसा करते हो कि) देखो, ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुक गया, अन्तराय से रुक गया। अरे! भगवान! परद्रव्य से रुक गया, ऐसा शास्त्र का अर्थ है ही नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके प्रमाद के कारण से आता है। दर्शनावरणीय क्या धूल आवे। समझ में आया?

इसी प्रकार यहाँ व्यवहार आदरणीय है, ऐसा इसमें से निकालते हैं, वह झूठ अर्थ है। समझ में आया? यहाँ तो व्यवहार स्थापित करते हैं। जैसे ११वीं में व्यवहार उत्थापित किया था, व्यवहार को असत्य कहा था कि नहीं। वह तो त्रिकाल की अपेक्षा से असत्य कहा। परन्तु धर्मात्मा को पर्याय में शुभराग आता है। भक्ति आदि का भाव आता है, ऐसा व्यवहार है। है, इतना सिद्ध करते हैं। उससे लाभ होता है, ऐसी बात यहाँ है नहीं। समझ में आया? व्यवहार बलजोरी से सिद्ध करते हैं कि है। व्यवहार नहीं? ४६ गाथा में यह कहेंगे? ८वीं में यह कहा। व्यवहार बलजोरी से अपनी प्रतिष्ठा करता है। इसका अर्थ ऐसा नहीं कि व्यवहार से निश्चय होता है और व्यवहार लाभदायक है। यह बात नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। दृष्टि अभेद के ऊपर होने पर भी पर्याय में अपूर्णता है, शुद्धता थोड़ी है। बराबर बात है। बराबर, यही मेरी दशा-भूमिका है। मेरी भूमिका यह है। भूमिका से विशेष दूर नहीं। यह मेरी भूमिका की दशा है। ऐसा व्यवहारनय बराबर जानता है। उसे व्यवहारनय जाना हुआ उस-उस काल में प्रयोजनवान कहा जाता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण कृष्ण ६, मंगलवार, दिनांक - ०६-०९-१९६६
गाथा - १२ प्रवचन - ३९

यह समयसार शास्त्र चलता है। इसकी बारहवीं गाथा चलती है। ११वीं गाथा में पहले आ गया, क्या आया? कि आत्मा '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण ध्रुव शुद्ध ज्ञायक ध्रुव स्वभाव, उसे यहाँ शुद्धनय कहा है, निश्चयनय कहा है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। यह ११, १२ गाथा तो पूरे समयसार की मर्म गाथा है। पहले ११ में ऐसा कहा कि '**ववहारोऽभूदत्थो**'। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव सर्वज्ञदेव ने कहा हुआ (कहते हैं कि) व्यवहार असत्यार्थ है और निश्चय सत्यार्थ है। इसका क्या अर्थ हुआ? एक समय में आत्मा शुद्ध चैतन्य ज्ञायक ध्रुवभाव, वह ही सत्यार्थ है। और उसकी पर्याय रागादि, वह असत्यार्थ है, ऐसा कहा था। समझ में आया? व्यवहार अभूतार्थ है, ऐसा कहा था। '**ववहारोऽभूदत्थो**'।

'**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' पूरे जैनदर्शन की अथवा वस्तुदर्शन की महान मार्मिक गाथा है। भगवान आत्मा एक समय में सत्... सत्... सत्... ध्रुव ज्ञायकभाव, उसे यहाँ कुन्दकुन्दाचार्यदेव शुद्धनय कहते हैं, निश्चयनय कहते हैं। और एक समय की पर्याय-अवस्था-हालत को यहाँ व्यवहार कहकर असत्य है, ऐसा कहा है। समझ में आया? गुलाबचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाली, त्रिकाली। एक समय का त्रिकाली। सुनो!

एक समय में पदार्थ में दो अंश। आत्मा। परवस्तु नहीं। यहाँ कर्म, शरीर की बात नहीं। वे परद्रव्य हैं। भगवान आत्मा में एक समय में दो अंश। एक त्रिकाली सामान्य अंश-ध्रुव अंश और एक समय की वर्तमान उत्पाद-व्ययवाली अवस्था, एक समय की अवस्था, वह पर्याय अंश। दो अंश मिलकर प्रमाण का विषय है। परन्तु यहाँ सम्यग्दर्शन

किस प्रकार प्राप्त होता है, वह अनन्त काल में हुआ नहीं और उसे अनन्त काल में वह ध्रुव चीज़ क्या है, उसकी अन्तर में महिमा आयी नहीं। तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, वह तो सर्वज्ञ कहते हैं, वही कहते हैं, कि आत्मा में जो सामान्य ध्रुव ज्ञायक सत् पिण्ड अनन्त गुण का सदृश स्वरूप एकरूप ध्रुव, वह सामान्य। उसे निश्चय कहा, उसे शुद्धनय कहा। और एक समय की पर्याय है। है, उसकी पर्याय, परन्तु उसे असत्यार्थ कहा, अभूतार्थ कहा, व्यवहार कहा। क्यों? कि वह एक समय की पर्याय आश्रय करनेयोग्य है नहीं। आश्रय करनेयोग्य, अवलम्बन करनेयोग्य एक समय में प्रभु पूर्ण आनन्दकन्द चैतन्यपिण्ड, उसे शुद्धनय कहकर उसका अवलम्बन लेकर अपनी पर्याय में सम्यग्दर्शन अनन्त काल में नहीं हुआ, ऐसे प्रयोजन की सिद्धि त्रिकाल ध्रुव के आश्रय से होती है; इसलिए ध्रुव स्वभाव को सत्य कहा और पर्याय को असत्य कहा। समझ में आया? सूक्ष्म बात है जरा। यह तो ११ गाथा और १२ में क्या चलता है वह? ११वीं गाथा चली तो उसमें से प्रश्न निकला। समझ में आया? बहुत शान्ति से समझने की चीज़ है। व्यवहार असत्यार्थ है, ऐसा कहा और निश्चय सत्य है, ऐसा कहा। निश्चय सत्य है, निश्चय सत्य है और व्यवहार असत्य है, ऐसा कहा। ११वीं गाथा। तो इसका अर्थ यह हुआ कि जो त्रिकाल ज्ञायक शुद्ध चैतन्यपिण्ड परमस्वभाव पारिणामिकभाव ज्ञायकभाव ध्रुव भाव को सत्य कहा। और उसकी वर्तमान चलती पर्याय—अवस्था को असत्य कहा। है तो सही परन्तु उसे—पर्याय को गौण करके व्यवहार कहकर असत्यार्थ कहा गया है। और त्रिकाल को मुख्य करके निश्चय करके सत्यार्थ कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? क्यों? ऐसा क्यों कहा?

कि भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण अनन्त है। सिद्ध है न? सिद्ध। वह तो पर्याय है। सिद्ध है न मोक्ष? वह पर्याय है, द्रव्य-गुण नहीं। संसार, वह भी एक विकारी आत्मा के ऊपर पर्याय है। और मोक्ष भी एक निर्मल द्रव्य के ऊपर पर्याय है। समझ में आया? तो एक समय की सिद्ध की जो पर्याय है, वह भी यहाँ व्यवहारनय का विषय हो गया। सुनो शान्ति से। यह बात मूल के मर्म की है। अनन्त काल में यह मूल प्रयोजन किस प्रकार सिद्ध होता है, इस बात का इसमें पता लिया नहीं। कहते हैं कि भगवान आत्मा... यह भगवान आत्मा, हों! दूसरे भगवान, भगवान

के पास रहे। गुलाबचन्दजी! यह भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जो सिद्धदशा, सिद्धदशा है न? सिद्धदशा। कहाँ गये भाई? ताराचन्दजी! मोक्षदशा। अनन्त केवलज्ञान, अनन्त केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, परन्तु वह है पर्याय। समझ में आया? ऐसी एक समय की जो पर्याय है, अनन्त केवलज्ञान, अनन्त केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य आदि अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, अनन्त कर्ता, कर्म आदि जो अनन्त गुण की निर्मल एक समय की सिद्धदशा है, वह पर्याय है। द्रव्य-गुण नहीं। समझो। ऐसी पर्याय सादि-अनन्त जो प्रगट होती है, सिद्ध की पर्याय एक समय रहती है, दूसरे समय में दूसरी होती है, तीसरे समय में तीसरी होती है। केवलज्ञान भी एक समय में एक रहता है। केवलज्ञान की पर्याय दूसरे समय में वह नहीं रहती। वैसी होती है, वह नहीं होती। क्या कहते हैं, समझ में आया?

कहते हैं कि, सिद्ध की पर्याय केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि एक समय रहती है। दूसरे समय में उसका व्यय होकर दूसरा (नया) उत्पाद होता है। और दूसरे समय का उत्पाद तीसरे समय में व्यय होकर तीसरा उत्पाद होता है। ऐसे अनन्त सिद्ध भगवान, अनन्त सिद्ध भगवान जिस पर्याय में एक सिद्ध परमात्मा ऐसे अनन्त सिद्ध परमात्मा। जब से परमात्मदशा प्रगट हुई तो जितना सादि-अनन्त काल है, उतने जो परमात्मा हैं, अनन्त परमात्मा हुए, वे अनन्त परमात्मा आत्मद्रव्य में स्थित हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय का वर्तमान, उसमें अनन्त जो सिद्ध हुए, सिद्ध अनन्त गुण की पर्यायरूप से पूर्ण (परिणम गये), वह पर्याय तो एक समय की है। ऐसी-ऐसी अनन्त काल में अनन्त पर्याय जो परमात्मदशा की प्रगट है, उन सब पर्याय का पिण्ड अन्दर आत्मा में पड़ा है। आत्मा अनन्त परमात्मस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह भाषा सादी है। ऐसी कोई (कठिन नहीं)। आहाहा!

भगवान सामान्य प्रभु एक समय की अवस्था बिना ध्रुव प्रभु आत्मा में अनन्त परमात्मा स्थित हैं। समझ में आया? ऐसा जो ध्रुव स्वभाव, भगवान के मुख में आया कि उसे ही हम सत्य कहते हैं। उसे ही हम सत्य कहते हैं, विद्यमान कहते हैं, सच्चा कहते हैं और एक समय की वर्तमान प्रगट पर्याय है, उसे असत्य कहते हैं, अविद्यमान

कहते हैं, 'नहीं है'—ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्यों ऐसा कहा? कि अपना आत्मा एक समय में जो ध्रुव परमानन्द की मूर्ति अनन्त परमात्मा का पिण्ड... समझ में आया? उसका आश्रय करने से अपना प्रयोजन—शान्ति, सुख का, सम्यग्दर्शन का प्रयोजन उसके अवलम्बन से (सिद्ध) होता है। समझ में आया? भाई! यह लॉजिक कुछ ऐसा सूक्ष्म नहीं। है तो लॉजिक से बात, हों! ऐसी चीज़ है। ऐसा नहीं कि गड़बड़ करके मनवा ले। लॉजिक से—न्याय से सर्वज्ञ परमेश्वर... भगवान ने कहा है। न्याय से वस्तु से स्पष्ट तर्कणा से यह वस्तु सिद्ध होती है, ऐसा हमने—केवलज्ञानी ने देखा है, ऐसी स्पष्टता से, श्रुतज्ञानी को भी ऐसा स्पष्ट होता है। समझ में आया? परन्तु कभी उस जाति का प्रयत्न और पुरुषार्थ क्या चीज़ है और पुरुषार्थ किस ओर करना और कहाँ से हटना, यह खबर नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान आत्मा एक समय में ध्रुव अंश। जो एक समय का पर्याय अंश है, उसे व्यवहार कहकर, अभूतार्थ कहकर, असत्यार्थ कहकर आश्रय करनेयोग्य नहीं, ऐसा कहकर झूठा है—ऐसा कह दिया। और त्रिकाल ध्रुव स्वभाव को सत्य कहकर, निश्चय कहकर, यथार्थ कहकर, आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा कहकर उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है तो ध्रुव को सत्यार्थ कहा गया है। समझ में आया? तब शिष्य को प्रश्न हुआ। भगवान! आप तो ध्रुव वस्तु को सत्य कहते हो और पर्याय को असत्य कहते हो, झूठी कहते हो, विद्यमान नहीं, ऐसा कहते हो। समझ में आया? क्योंकि अपना प्रयोजन सम्यग्दर्शन-शान्ति का प्राप्त करना, प्रथम सम्यग्दर्शन जो प्राप्त करना, उसमें आनन्द प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शन के साथ आनन्द प्राप्त (होता है)। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव प्राप्त होता है। उसका नाम सम्यग्दर्शन है। तो सम्यग्दर्शन सम्यक् जो त्रिकाल वस्तु है, सामान्य चीज़ है, उसे '**पश्यन्त**'—उसे देखने से, देखने से जो भान हुआ और प्रतीति हुई तो प्रतीति में आनन्द के साथ वह प्रतीति उत्पन्न होती है। ऐसी आनन्द की पर्याय का प्रयोजन सिद्ध करने के लिये सामान्य को सत्य और ध्रुव कहा, विशेष को असत्य और झूठा कहा। समझ में आया? गुलाबचन्द! समझ में आया? तुम्हारी हिन्दी भाषा नहीं आती, हमारी साधारण भाषा है। हमारी तो काठियावाड़ी भाषा है न यहाँ तो! पण्डितजी! यहाँ तो थोड़ी-थोड़ी हिन्दी आती है। बहुत नहीं आती।

गुलाबचन्द बोलते हैं तो हम मुश्किल-मुश्किल से समझते हैं। यहाँ तो सादी साधारण भाषा है।

कहते हैं कि महाराज! **व्यवहारनय भी किसी किसी को किसी काल प्रयोजनवान है,...** ऐसा अब गुरु कहते हैं। व्यवहार को असत्य कहा था, झूठ कहा था, ध्रुव को सत्य कहा था तो अब कोई पर्याय है या नहीं? झूठ है, ऐसा कहा था, परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से एक समय की दशा को झूठी कहा था। परन्तु दशा की अपेक्षा से दशा है या नहीं? समझ में आया? तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि **वह व्यवहारनय भी...** इसका उपोद्घात है, १२वीं गाथा का उपोद्घात है ऊपर। उपोद्घात समझे न? सूचनिका। देखो! ऊपर दो लाईनें हैं। १२वीं गाथा के ऊपर दो लाईनें। **वह व्यवहारनय भी...** १२ गाथा के ऊपर। १२ गाथा चलती है, उसके अन्वयार्थ के ऊपर दो पंक्तियाँ। तो भगवान आचार्य ने जो ध्रुव को—सामान्य को सत्य कहा और पर्याय को असत्य कहा तो आचार्य स्वयं कहते हैं, स्वयं कहते हैं चले न? आचार्य स्वयं कहते हैं कि **व्यवहारनय भी किसी किसी को...** साधक अवस्था में **किसी समय...** जब तक साधक अवस्था है, तब तक **प्रयोजनवान है,...** प्रयोजनवान है। है, ऐसा जानने में प्रयोजनवान है। आदरणीय नहीं। समझ में आया? यह स्पष्टीकरण करेंगे।

यहाँ कहते हैं, व्यवहारनय भी, जैसे निश्चयनय जो सत्यार्थ कहकर आदरणीय कहा, आश्रय करनेयोग्य भगवान पूर्णानन्द प्रभु, वही सत्य परमेश्वर ध्रुव है, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र जो निर्विकल्प मोक्ष का मार्ग, वह निज भगवान आत्मा ध्रुव, उसकी अन्तर दृष्टि से—अवलम्बन से उत्पन्न होता है। तो पर्याय है या नहीं? आपने पर्याय को निकाल दिया झूठी कहकर। तो कहते हैं कि पर्याय है। भाई! उसमें चार बोल लिये हैं न? '**व्यवहारेण विकल्पेन भेदेन पर्यायेण**' जयसेनाचार्य की टीका में। भेद है या नहीं? पर्याय है या नहीं? विकल्प है या नहीं? व्यवहार है या नहीं? यह चार बोल संस्कृत में लिये हैं।... चौथे, पाँचवें, छठवें आदि गुणस्थानों में है, साधकदशा में है, वहाँ तक व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। ऐसा कहकर व्यवहारनय की सिद्धि करते हैं। जो अकेली निश्चय की सिद्धि की थी, वहाँ व्यवहार को

उड़ाया था, यहाँ व्यवहार है, इतना सिद्ध करते हैं। समझ में आया? अब गाथा। गाथा तो चल गयी है। फिर से थोड़ा (लेते हैं)। मूल गाथा, मूल श्लोक।

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे॥१२॥

नीचे हरिगीत, नीचे इसका हरिगीत।

देखै परम जो भाव उसको, शुद्धनय ज्ञातव्य है।
ठहरा जु अपरमभाव में, व्यवहार से उपदिष्ट है॥१२॥

इस गाथा में बड़ी गड़बड़ बहुत चलती है। थोड़ा अन्वयार्थ लेते हैं। अन्वयार्थ हैं न?

गाथार्थ :- '**परमभावदर्शिभिः**' है अन्वयार्थ-शब्दार्थ? कोष्ठक में है न? '**परमभावदर्शिभिः**' जो शुद्धनय तक पहुँचकर श्रद्धावान हुए और पूर्ण ज्ञान, चारित्र हो गये। निज ध्रुव स्वरूप का आश्रय लेकर अपनी पर्याय में निर्विकल्प अभेदरत्नत्रय की समाधि प्रगट हो गयी। पर्याय में शुद्धि की पूर्णता प्राप्त हो गयी। उसे तो शुद्धात्मा का उपदेश करनेवाला अथवा शुद्ध आत्मा का अनुभव करनेवाले शुद्धनय का ही उसे अनुभव है। जाननेयोग्य अर्थात् अनुभव है। भगवान आत्मा त्रिकाल ध्रुव का आश्रय लेकर पूर्ण शुद्ध पर्याय चारित्र की भी प्रगट हो गयी, अपने आश्रय से पूर्ण दर्शन, ज्ञान, चारित्र (प्रगट हो गये), उसे तो अकेला '**णादव्वो**' अर्थात् पूर्ण स्वरूप आत्मा है, उसका अनुभव करना-भाना, अनुभव करना, वही उसे जाननेयोग्य है। उसे व्यवहारनय नहीं। पूर्ण दशा हो गयी, पश्चात् व्यवहार है नहीं। समझ में आया? भाई ने कहा है न? दो-तीन जगह कहीं कहा है। केवलज्ञान और चारित्र पूर्ण यथाख्यात्। पूर्ण हो जाये, पश्चात् उसे आत्मा भानेयोग्य रह गया। करना-फरना कुछ नहीं रहा। आत्मा ही अनुभव करनेयोग्य रह गया। सुनो, अभी सुनो। तुम्हारे से... उसे शुद्ध आत्मा अनुभव करनेयोग्य है। '**णादव्वो**' अर्थात् अनुभव करनेयोग्य है।

और जो अपरमभाव में जहाँ तक पूर्ण दशा चारित्र की (नहीं हुई)... उसे श्रद्धा हुई है, आत्मा अखण्डानन्द प्रभु की प्रतीति हुई है, अनुभव हुआ है, निर्विकल्प भान

हुआ है, परन्तु ज्ञान और चारित्र उसे पूर्ण नहीं हुए। बीच में एक बात रह गयी। चलता हो न। शुद्धनय को... उन्होंने कहीं लिया है, हों! भाई! पृष्ठ-२७३-२७४ है। १२० कलश है न? कलश। **साक्षात् शुद्धनय तो केवलज्ञान होने पर होता है।** यह। यहाँ तो सिद्धान्त लेना है। २७४ पृष्ठ है। नीचे अन्तिम लाईन है। **साक्षात् शुद्धनय तो केवलज्ञान होने पर होता है।** (१२१ कलश, भावार्थ) **केवलज्ञान होने पर साक्षात् शुद्धनय होता है।** अन्तिम लाईन। क्या कहते हैं? देखो! पण्डित जयचन्द्रजी ने इसमें से न्याय निकाला है कि आत्मा अपने शुद्धस्वरूप को-शुद्धनय को, केवलज्ञान प्राप्त हुआ तो शुद्धनय को प्राप्त हो गये। है वह प्रमाण। परन्तु आत्मा पर्याय में पूर्ण हुआ, इस अपेक्षा से शुद्धनय का विषय केवलज्ञान ले लिया है। वरना केवलज्ञान है, वह तो सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। सूक्ष्म बात है, भाई! केवलज्ञान है, वह एक समय की अवस्था है। और त्रिकाल की अपेक्षा से एक समय की अवस्था व्यवहार है। सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। परन्तु यहाँ दूसरी बात कहनी है, भाई!

यहाँ अपने '**परमभावदर्शिभिः**' है न? वह परमभाव पर्याय जहाँ केवलज्ञान आदि पूर्ण हो गयी तो शुद्धनय की पर्याय, द्रव्य तो था ही ऐसा, परन्तु पर्याय में जो आश्रय करना था, वह आश्रय पूरा हो गया। पूर्ण केवलज्ञान हो गया, उसे शुद्धनय वहाँ पर्याय में प्राप्त हो गया, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! गाथा ऐसी सूक्ष्म आ गयी है। समझ में आया? शुद्धनय वहाँ पूर्ण हो गया। शुद्धनय तो ध्रुव है। वहाँ ग्यारहवीं गाथा में तो यह कहा। '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' भूतार्थ वह शुद्धनय। परन्तु उसकी पर्याय, शुद्धनय का आश्रय करने का था, वह आश्रय बारहवें गुणस्थान तक रहा। केवलज्ञान होने के पश्चात् वह आश्रय करना रहा नहीं। पूर्ण पर्याय हो गयी। शुद्धनय की जो पर्याय पूर्ण करने की थी, आश्रय करना रहा नहीं, उसे वहाँ शुद्धनय पूर्ण हुआ, ऐसा कहने में आया है। जरा सूक्ष्म बात है, भाई! यह गाथा मौके से आयी है। समझ में आया? पण्डित जयचन्द्रजी ने कहा न? शुद्धनय... केवलज्ञान हुआ तो शुद्धनय (पूर्ण हो गया)। अर्थात् केवलज्ञान तो व्यवहारनय है। परन्तु शुद्धनय अन्दर द्रव्य के साथ अभेद होकर, पूर्ण पर्याय अभेद हो गयी तो शुद्धनय पूर्ण प्राप्त हो गया, ऐसा कहने में आया है।

इसी प्रकार यहाँ... '**परमभावदर्शिभिः**'। परमभाव जिसे प्रगट हो गया। '**समुद्योति**'

पाठ है न संस्कृत में ? अर्थ में ऐसा कहेंगे कि एक-एक भाव प्रगट किया है। परन्तु बाद में भाई ने पूछा, प्रगट किये वह तो दिखलाये हैं, ऐसा कहो। '**समुद्योति**'। शुद्धनय तो द्रव्यार्थिक को कहते हैं, परन्तु उसका आश्रय जहाँ पूर्ण हो गया, उसे भी शुद्धनय का विषय पूर्ण हो गया, ऐसा कहा जाता है। वह परमभाव देखता है, पूर्णानन्द का अनुभव पूर्ण है। उसे शुद्धनय अनुभव करनेयोग्य अर्थात् आत्मा अनुभव करनेयोग्य रह गया। पर्याय में खण्ड और भेद उसे रहे नहीं। समझ में आया ? थोड़ा समझकर ख्याल में तो लो कि ऐसी चीज़ है अन्दर में। ऐसा का ऐसा पाठ पढ़ ले। समझ में आया ? ऐसा तो ग्यारह अंग में अनन्त बार पढ़ा। नौ पूर्व पढ़ डाले। पढ़ डाले। परन्तु भगवान आत्मा शास्त्र में क्या कहते हैं और किसे निश्चय कहते हैं और किसे व्यवहार कहते हैं, तो हेय कौन है और उपादेय कौन है, उसका यथार्थ भान इसने कभी किया नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं कि '**परमभावदर्शिभिः**' जो परमभाव पूर्ण प्रगट हो गया, प्रगट हो गया—उसे दिखाते हैं अर्थात् अनुभव कराते हैं। पूर्ण दशा का अनुभव है, उसे शुद्धनय ज्ञातव्य अर्थात् भावना करनेयोग्य है। उसमें भेद रहा नहीं, अपूर्णता रही नहीं। उसे द्रव्य का आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा रहा नहीं। पूर्ण दर्शा प्रगट हो गयी। उसे शुद्धनय भावना करनेयोग्य है, अनुभव करनेयोग्य है, ऐसा कहा गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में रात्रि में। अभी चलता है उसमें नहीं। यह तो अगम्य बात है। यह तो प्रवाह अन्दर की बात है। समझ में आया ? यह बात ऐसी है कि ऐसी धारणा करने से भी समझ में नहीं आती। पण्डितजी !

भगवान आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु एक समय का ध्रुव भगवान ज्ञायकपिण्ड परमात्मा, जिसमें अनन्त परमात्मा स्थित हैं। आहाहा ! उसे ही यहाँ सत्य कहा और एक समय की पर्याय को असत्य कहा, झूठी कहा। तो कहते हैं कि ऐसा कहने में हमारा प्रयोजन है। द्रव्य का आश्रय करने से ही पर्याय जब द्रव्य का आलम्बन लेगी, तब सम्यग्दर्शन होगा। इसलिए हमने उसे सत्य कहा और पर्याय को असत्य कहा है। परन्तु

पर्याय नहीं, ऐसा नहीं। तब तो वेदान्त हो जाये। तो भूतार्थ एक सत्य है, दूसरा कुछ सत्य है नहीं। समझ में आया? पर्याय है या नहीं, उसका कोई लक्षण तो रहा नहीं। तो कहते हैं, सुन! जब तक आत्मा की पर्याय पूर्ण शुद्ध नहीं हुई, ११ में तो द्रव्य का आश्रय सिद्ध किया। आश्रय लिया सम्यग्दर्शन हुआ, ज्ञान और चारित्र पूर्ण नहीं हुए। पूर्ण नहीं हुए तो .... क्या कहते हैं? साधक अवस्था में अपूर्ण ज्ञानदशा है, चारित्र की स्थिरता नहीं है और अभी साधक है तो राग भाग भी बाकी है, राग भी बाकी है। साधक है तो बाधक भी है। केवलज्ञान हुआ तो साधक पूर्ण हो गया, राग-बाग है नहीं।

मिथ्यादृष्टि को नय नहीं, केवलज्ञानी को नय नहीं। समझ में आया? क्योंकि मिथ्यादृष्टि को श्रुतज्ञान नहीं। श्रुतज्ञान नहीं तो श्रुतज्ञान का भेद नय है। श्रुतज्ञान विकल्पा नया। जहाँ श्रुतज्ञान नहीं वहाँ नय कैसा? परन्तु धर्मी जीव को अपना भूतार्थ भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य प्रभु ज्ञायकभाव का आश्रय करके जो सम्यग्दर्शन हुआ तो सम्यग्दर्शन में साथ में भावश्रुतज्ञान हुआ, प्रमाणज्ञान हुआ, भावश्रुतज्ञान हुआ। प्रमाणज्ञान हुआ तो उस प्रमाण में दो भाग पड़ गये। एक निश्चय और व्यवहार। समझ में आया? गजब बातें, भाई! यह सूक्ष्म बातें इसने कभी सुनी नहीं और इस बात का कभी प्रयोग (किया नहीं)। क्या चीज़ है, लक्ष्य में आयी नहीं तो प्रयोग कहाँ करना और कहाँ से हटना, खबर नहीं। ऐसा का ऐसा मूढ़रूप से अनन्त बार... 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' समझ में आया? मुनिव्रत धार। अट्ठाईस मूलगुण ऐसे (पालन किये कि) शरीर के खण्ड-खण्ड करे तो भी क्रोध न करे। दूसरे देवलोक की इन्द्राणी डिगाने आवे तो ब्रह्मचर्य में (से) चलित न हो, ऐसी जिसकी शुक्ललेश्या। पण्डितजी! शुक्ललेश्या। मिथ्यादृष्टि। शुक्लध्यान नहीं, हों! शुक्ललेश्या कहते हैं। शुक्ललेश्या अभव्य को भी होती है और मिथ्यादृष्टि को भी होती है। ऐसी शुक्ललेश्या शरीर के खण्ड-खण्ड हो जाये तो भी क्रोध न करे। परन्तु भगवान आत्मा अखण्डानन्द ध्रुव शुद्ध कौन है, उपादेय कौन है और पर्याय हेय कौन है, उसका विवेक नहीं किया। समझ में आया? विवेक कहो या भेदज्ञान कहो। आहाहा! कहते हैं, धन्नालालजी! समझ में आया?

जब तक पूर्ण न हो, पर्याय में पूर्ण दशा नहीं तो अपूर्ण है, ऐसी अवस्था में

स्थित। जो जीव साधक अवस्था में है, पूर्ण दशा की पर्याय की प्राप्ति हुई नहीं और सम्यग्दर्शन हुआ है। स्वरूप के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ है, परन्तु ज्ञान की पूर्णता और चारित्र की पूर्णता हुई नहीं तो मधबीच में है। उत्कृष्ट का अनुभव नहीं। मध्यम अनुभव है। उत्कृष्ट का अनुभव हो गया, उसे तो कुछ रहा नहीं। '**परमभावदर्शिभिः**'। समझ में आया? अपरमभाव मध्यभाव है। दृष्टि आत्मा में लग गयी, अनुभव हुआ कि आत्मा शुद्ध है, पवित्र है, ऐसा अनुभव हुआ। परन्तु पर्याय में पूर्णता नहीं। राग है। साधक की शुद्धता थोड़ी है। यह जैसी थोड़ी है और जैसा राग है, उस पर्याय को जानना, उसे व्यवहारनय कहा जाता है। समझ में आया? भाई! है तो इसके घर की बात। परन्तु कभी जानी नहीं, कभी प्रयत्न किया नहीं। इसके घर की बात है। मेंढ़क जैसा छोटा जीव भी अपने आनन्द का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। समझ में आया?

कहते हैं, जब तक आत्मा सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर भी... होने पर भी कहते हैं न? पर्याय में पुरुषार्थ की न्यूनता है। राग है और शुद्धि की अल्पता है तो उस पर्याय में स्थित, ऐसे मन्द पुरुषार्थ में स्थित है, अपरमभाव में स्थित है, परमभाव है नहीं, उसे व्यवहार जाननेयोग्य है। व्यवहार द्वारा उपदेश करनेयोग्य है, यह तो वाचक शब्द लिया है। अमृतचन्द्राचार्य ने इसमें से निकाला... पाठ में आयेगा, देखो! **जाना हुआ उस काल में प्रयोजनवान है।** संस्कृत टीका में है। उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है। बस, इतना है। '**देसिदा**' का अर्थ यह। '**देसिदा**' कथन है। परन्तु कथन का वाच्य जब अपरमभाव में आत्मा पूर्ण दशा को प्राप्त नहीं हुआ तो उस पर्याय में अपूर्णता है, राग है, उस काल में ऐसा है, ऐसा जाननेयोग्य उस काल में जानना प्रयोजनवान है। उस काल में जाना हुआ उस काल में प्रयोजनवान है। समझ में आया? आदरणीय-फादरणीय की यहाँ बात है नहीं। पाठ देखो अन्दर आयेगा। यह तो अभी ऊपर से अर्थ किया। टीका में यह लिया है। टीका में यह लिया है, **जाना हुआ उस काल में प्रयोजनवान है।** पाठ है, देखो! '**परिज्ञायमानस्तदात्वे प्रयोजनवान्**' संस्कृत में है, पण्डितजी! यह हमारे पण्डितजी बैठे हैं न, भवानीलालजी! है या नहीं संस्कृत में? समझ में आया? आहाहा!

क्या कहते हैं? व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान है, हों! आदरणीय हुआ नहीं, हेय है। परन्तु नय है तो उसका विषय है। विषय है। जैसे शुद्धनय का विषय पूर्ण है तो अशुद्धनय कहो, अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय कहो या व्यवहारनय कहो या पर्यायनय कहो। उसमें जो भेद रहता है अपूर्ण, उसे जानना वह व्यवहारनय का सहज विषय रह जाता है। ज्ञान निश्चय को जाने, ज्ञान स्व-परप्रकाशक है, तो जहाँ निश्चय को जानता है, वहाँ श्रुतज्ञान हुआ, प्रमाणज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ तो प्रमाणज्ञान हुआ। इसके अतिरिक्त प्रमाणज्ञान बिना नय नहीं। केवली को नय नहीं। केवलज्ञान हो गया। मिथ्यादृष्टि (को) नय नहीं, (क्योंकि) श्रुतज्ञान नहीं। तो कोई कहता है कि पहले व्यवहार, बाद में निश्चय, यह रहता नहीं। समझ में आया? अमरचन्दजी! अरे भगवान! विवाद... व्यवहार करो। व्यवहार कहाँ से आया? अभी नय नहीं, वहाँ व्यवहार कहाँ से आया? समझ में आया? व्यवहार और निश्चय तो नय है। तो नयज्ञान विषय को विषय करता हैं। नय विषयी है, सामने चीज़ विषय है। यहाँ तो अभेद ले लिया है। भगवान आत्मा ध्रुव स्वरूप शुद्धनय, शुद्धनय। उसे ही शुद्धनय कहा। नय और नय का विषय, ऐसा अध्यात्म में भेद नहीं। समझ में आया? '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**'। भूतार्थ-सत्यार्थ त्रिकाल को हम शुद्धनय कहते हैं और पर्याय, भेद, अवस्था को हम व्यवहारनय कहते हैं।

जब तक परमभाव में स्थित नहीं, उत्कृष्ट भाव में स्थित नहीं, अपरमभाव में स्थित है तो उस काल में जाना हुआ, ज्ञान उस काल में, उस काल में क्यों लिया? कि जितनी शुद्धता प्रगट हुई, जितनी अशुद्धता है, वह ज्ञान उसे जानता है। दूसरे समय में शुद्धता थोड़ी बढ़ी, अशुद्धता घटी तो उस काल में उसे जानता है। समय-समय में जैसे है, वैसे जानना, यह व्यवहारनय का प्रयोजन है। समझ में आया? इसमें सब गड़बड़ करते हैं। जहाँ हो वहाँ सब यह गाथा रखते हैं। देखो! इसमें व्यवहार कहा है, देखो व्यवहार कहा। अरे! सुन तो सही! व्यवहार किसे कहा? निश्चय बिना व्यवहार आया कहाँ से? प्रमाण बिना नय आये कहाँ से? समझ में आया? ताराचन्दजी!

व्यवहार द्वारा अर्थात् कि उसे उस काल में जाना हुआ (प्रयोजनवान है)। एक अनन्तानुबन्धी कषाय का चौथे गुणस्थान में अभाव है। पाँचवें में दो कषाय (चौकड़ी)

का अभाव है। छठवें में तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव है। दूसरा राग है। तो उस शुद्धता का आंशिक अंश और राग का अंश उन सबको एक-एक करके अनेक जानना, वह व्यवहारनय का विषय अनेक है। शुद्धनय का विषय एक है। समझ में आया? यह टीका में लेंगे। यह तो कल चली थी, थोड़ी आज ली। समझ में आया? कल तो पूरा एक घण्टा इसमें चला था। परन्तु यह तो पहले आया हो, वह कहीं फिर से आवे? अब टीका देखो। इसकी टीका। शब्दार्थ कहा, उसकी टीका करते हैं।

टीका :- जो पुरुष... बारहवीं गाथा की टीका। **जो पुरुष अन्तिम पाक से उतरे हुए शुद्ध स्वर्ण के समान...** स्वर्ण को ताप देते-देते सोलहवान हो गया, सोलहवान कहते हैं न? सोलहवान। **उत्कृष्ट भाव का अनुभव करते हैं...** सोना का पूर्ण भाव हो गया तो **उन्हें प्रथम, द्वितीय आदि पाकों की परम्परा से पच्यमान (पकाये जाते हुए) अशुद्ध स्वर्ण के समान...** मध्यम भाव है। समझ में आया? **मध्यम भाव हैं, उनका अनुभव नहीं होता;...** सोना का उत्कृष्ट भाव हो गया तो मध्यम भाव है नहीं। सोलहवान हो गया तो बारहवान, तेरहवान है नहीं। सोलहवान सोना हो गया। उसका अनुभव नहीं। मध्यम सोना उसे नहीं।

इसलिए, शुद्धद्रव्य को कहनेवाला होने से... अब देखो! जैसे पूर्ण सोनावाले को अपूर्ण सोना तेरहवान, बारहवान है नहीं। उसी प्रकार जिसने भगवान आत्मा को पूर्ण शुद्ध पर्याय केवलज्ञान आदि निर्विकल्प अभेदरत्नत्रय प्रगट करके अपना आत्मानुभव किया, उसे मध्यम भाव का अनुभव नहीं। समझ में आया? मध्यम भाव अर्थात् क्या? निचली दशा में अभी सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो अपूर्ण है, ऐसे मध्यम का पूर्णवाले को अनुभव नहीं। पूर्णतावाले को पूर्ण अनुभव है, मध्यम अनुभव नहीं। **इसलिए, शुद्धद्रव्य को कहनेवाला होने से...** शुद्ध द्रव्य की पर्याय का प्रगट अनुभव करानेवाला होने से **जिसने अचलित...** चलित नहीं ऐसा **अखण्ड...** खण्ड न हो ऐसा, पर्याय की बात है, हों! **एकस्वभावरूप एक भाव प्रगट किया है...** एकरूप भाव प्रगट हो गया। उसे शुद्धनय ने दिखलाया। दिखलाया का अर्थ अनुभव करता है इतना। **ऐसा शुद्धनय ही,...** ऐसा शुद्धनय ही।

वस्तु यहाँ प्रधानरूप से है। **अचलित एकस्वभावरूप एक भाव...** भाई! उसमें एक-एक भाव कहकर अनेकभाव कहेंगे। एकरूप पूर्ण दशा प्रगट हो गयी। जैसा द्रव्य एकरूप अखण्ड स्वभाव है, वैसा उसका आश्रय करके पूर्ण दशा एक ज्ञायकस्वभाव प्रगट हो गया, उसे तो शुद्धनय अर्थात् आत्मा का अनुभव करना, वही उसे जाननेयोग्य रहा, दूसरा कुछ है नहीं। समझ में आया?

सबसे ऊपर की एक प्रतिवर्णिका... अर्थात् सोलहवान सोना। **समान होने से, जानने में आता हुआ प्रयोजवान है।** देखो! यह वजन। **जानने में आता हुआ प्रयोजवान है।** इतनी व्याख्या। व्यवहार में दूसरा शब्द आयेगा। व्यवहार में जाना हुआ उस काल में प्रयोजनवान ऐसा आयेगा। उस काल में आयेगा। (यहाँ) काल नहीं रहा, यहाँ तो एकाकार भगवान का—पूर्ण शुद्ध का अनुभव हुआ, बस, यह अनुभव करनेयोग्य रह गया, उसे शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? आहाहा! **जानने में आता हुआ प्रयोजवान है।** देखो! पाठ है। है? **'परिज्ञायमानः प्रयोजनवान्'।** पण्डितजी! टीका में चौथी लाईन है। **'परिज्ञायमानः प्रयोजनवान्'।** संस्कृत है। यह तो अनुभव पूर्ण हो गया। शुद्धनय का अर्थ पूर्ण आत्मा का अनुभव है, वही उसे बस है। वह ही उसे भानेयोग्य है। उसे व्यवहारनय है नहीं।

परन्तु जो पुरुष प्रथम, द्वितीय आदि अनेक पाकों (तावों) की परम्परा से पच्यमान अशुद्ध स्वर्ण के समान जो (वस्तु का) अनुत्कृष्ट मध्यम भाव का अनुभव करते हैं,... उत्कृष्ट भाव अभी प्रगट नहीं हुआ। केवलज्ञान प्रगट नहीं हुआ। अभी अनुत्कृष्ट अथवा मध्यम भाव है। सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, सम्यक्चारित्र है, परन्तु पूर्ण चारित्र और पूर्ण ज्ञान का अनुभव नहीं। मध्यमदशा का अनुभव है। समझ में आया? गजब बात, भाई! 'मध्यम (भाव) को अनुभव करता है, उन्हें अन्तिम पाक से उतरे हुए शुद्ध सुवर्ण समान उत्कृष्ट भाव का अनुभव नहीं होता;...' जो छठवें गुणस्थान में है, पाँचवें आदि में है, उन्हें सोना जैसे सोलहवान है, ऐसे सोलहवान का-केवलज्ञान का अनुभव नहीं। परमभाव का अनुभव नहीं। निचली दशा का अनुभव है।

इसलिए, अशुद्ध द्रव्य को कहनेवाला... देखो! अशुद्ध द्रव्य क्यों लिया? कि

उसकी पर्याय में उसके भेद हैं। **जिसने भिन्न-भिन्न एक-एक भावस्वरूप...** शुद्धता का अंश, दूसरे, तीसरे (समय में) शुद्धता का अंश बढ़ता है, अशुद्धता घटती है। उन सब अंश को एक-एक करके अनेक को दिखलाता है, वह व्यवहारनय है। **एक-एक भावस्वरूप अनेक भाव दिखाये हैं...** अनेक भाव दिखलाये हैं, हों! वजन यहाँ है। आदरणीय है, यह प्रश्न नहीं। दिखलाता है। शुद्धनय दिखलाता है। जाननेयोग्य रह जाता है। उसमें कहा था, '**समुद्योति**' एक ही शुद्धनय प्रकाशमान हो गया। समाप्त। यहाँ एक-एक भाव शुद्धता और रागभाव है न? व्यवहाररत्नत्रय का राग है, शुद्धता-अल्प शुद्धता है, तो एक-एक करके अनेक भाव पड़े हैं। अनेक भाव को जाना हुआ, **एक-एक भावस्वरूप अनेक भाव दिखाये हैं, ऐसा व्यवहारनय,...** ऐसा व्यवहारनय। **विचित्र अनेक वर्णमाला के समान होने से,...** सोना में रंग चढ़े न? कुलडी में। उसी प्रकार यहाँ पर्याय में अनेक भंग उठते हैं। शुद्धता के, अशुद्धता के। अभी पूर्ण नहीं न, इसलिए अनेक भंग हैं।

जानने में आता (-ज्ञात होता) हुआ उस काल प्रयोजनवान है। जब तक मध्यम भाव में है, तब तक व्यवहारनय से जाना हुआ प्रयोजनवान है। बड़ी गड़बड़ इसमें चलती है। लो। आहाहा! अर्थ करनेवाले ऐसा अर्थ करे, व्यवहार दिखलाना। यह बात ही यहाँ नहीं। यहाँ तो कहते हैं, जब व्यवहार पर्याय को पहले असत्य कहा और त्रिकाल को सत्य कहा तो सत्य का पूर्ण अनुभव हो गया, उसको व्यवहार रहा नहीं। परन्तु सत्य का अनुभव हुआ परन्तु पर्याय में पूर्ण हुआ नहीं, बिचली साधकदशा में विचरता है। चौथे, पाँचवें, छठवीं भूमिका में है तो उसकी अपूर्ण पर्याय है, शुद्ध पूर्ण नहीं। राग भी साथ में है। वह सब अनेक प्रकार की शुद्धता और राग को जाना हुआ उस काल में समय-समय में वह ज्ञान ही ऐसा प्रगट होता है कि जितनी शुद्धता और जितना राग है, वह स्व को जानता हुआ, पर को जानता हुआ स्व-परप्रकाशक ज्ञान की पर्याय ऐसी प्रगट होती है। समझ में आया?

फिर से। क्या कहा, समझ में आया? भगवान आत्मा... यह तो अध्यात्म की बात है, भाई! इसने कभी लक्ष्य में ली नहीं। समझ में आया? द्रव्य है, वह अनन्त गुण

का पिण्ड है। ऐसा होने पर भी एक समय की पर्याय है, पर्याय है, परन्तु पूर्ण पर्याय जहाँ हो गयी तो व्यवहार रहा नहीं। क्योंकि आत्मा की ओर झुकना रहा नहीं तो अशुद्धता रही नहीं। तो उसे अकेले आत्मा का भाव और ... रह गये। अनुभव करना अकेला, बस। परन्तु निचली दशा में पूर्ण अनुभव नहीं, सम्यग्दर्शन हो गया, त्रिकाल ज्ञायक के आश्रय से अनुभव हो गया, पर्याय में पूर्णता नहीं। तो उसे श्रुतज्ञान हुआ है। तो श्रुत विकल्पा नया। श्रुतज्ञान का भेद वह नय है। एक नय निश्चय को जानता है, एक व्यवहार भेद है, अशुद्धता है, उसे जानता है। बस। समझ में आया?

यह बारहवीं गाथा में बड़ा झगड़ा है। ३० वर्ष से यह गाथा चलती है। ३० वर्ष से। यहाँ तो ३१ वर्ष हुए इस जंगल में। साढ़े इकतीस वर्ष से हम तो यहाँ हैं। ...! बाहर रहते हैं परन्तु यह दूसरे प्रकार से महल में रहते हैं न। हम यहाँ जंगल में रहते हैं। ३० वर्ष पहले प्रश्न उठा था। एक व्यक्ति आया था। ... व्यवहार करनेयोग्य, व्यवहार करनेयोग्य... अरे! सुन तो सही, प्रभु! क्या कहते हैं आचार्य, उनका हृदय जाने बिना इसका शब्दार्थ करे, शब्दार्थ करे तो '**ववहारदेसिदा**' है। भावार्थ करे तो जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा भाव है। भाई! आहाहा! एक-एक गाथा में शब्दार्थ, समझ में आया? भावार्थ, आगमार्थ, अन्य मतार्थ और तात्पर्यार्थ। शास्त्रकार एक-एक गाथा में पाँच-पाँच बोल लेते हैं। एक-एक गाथा में पाँच-पाँच बोल। पाँच बोल समझे न? पहला शब्दार्थ, उसका भावार्थ, उसका आगमार्थ, अन्य मतार्थ—अन्यमति इससे विरुद्ध क्या कहते हैं? आगम का अर्थ क्या है? और इसमें से सार क्या निकालना है? समझ में आया?

यहाँ '**ववहारदेसिदा**' शब्दार्थ तो ऐसा है। अमृतचन्द्राचार्य ने इसमें से ऐसा निकाला है कि व्यवहार शब्द तो पद्य ऐसा है, इसलिए आ गया है। पद्य है। परन्तु उसमें कहना है यह कि भगवान आत्मा अपने शुद्ध ध्रुव स्वरूप का अनुभव हुआ, पर्याय में पूर्णता हुई नहीं तो वहाँ नय रह गया। व्यवहारनय उस समय में अशुद्धता का अंश और शुद्धता का अंश सब मिलकर व्यवहार का विषय जाननेयोग्य (रह गया)। उस काल में, उस काल में उस समय में वैसा ही ज्ञान उत्पन्न होता है। निश्चय को जाना और उस समय

जितनी शुद्धता है और अशुद्धता है, उसे जानता हुआ ज्ञान ही वैसा प्रगट होता है। तो उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है, आदर किया हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा नहीं। अर्थ में कहेंगे, हों! व्यवहारनय से कथन लेंगे। पहले आचार्य का हृदय कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! कोई पचास रुपये की कमी हो गयी हो, नुकसान हुआ हो तो कितना नामा करता है। रात-दिन दीपक जलावे। कैरोसीन जलावे। उसमें क्या है? आत्मा निश्चय क्या, व्यवहार क्या, भगवान जाने, भाई! भगवान तो जानते ही हैं। समझ में आया?

तुझे हित करना है या नहीं? अनन्त काल में ऐसा मनुष्यदेह मिला। कहाँ था, कहाँ था, कहाँ आया। चौरासी लाख के पाट में अनन्त भव कहाँ किये? कहाँ था और कहाँ आ गया। ऐसे मनुष्यदेह में वास्तविक तत्त्व की यदि दृष्टि न हो तो ढोर का अवतार मिला और ईयळ के, कीड़ी के, कौवे के मिले, ऐसा अवतार है। उसे भी लाभ नहीं हुआ और इसे भी लाभ नहीं हुआ। समझ में आया? कहाँ से आया? आहाहा! अनादि आत्मा किस स्थान में कहाँ था, कैसे संयोग में, कितनी प्रतिकूलता में, कहाँ से आकर मनुष्यदेह मिल गयी। अब कहते हैं, प्रभु! तेरे आत्मा की वस्तु जो है, उसकी वास्तविक दृष्टि अपनी नहीं करे और व्यवहार जाननेयोग्य है, ऐसा न माने तो तेरा हित कभी होगा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अनेक भाव दिखाये हैं... 'उपदर्शित' शब्द है न? भाई! **'उपदर्शित'** है। **'उपदर्शित'** देखो! **'शुद्धद्रव्यादेशितयोपदर्शितप्रति'। 'उपदर्शित'** शब्द है। उसमें **'शुद्धद्रव्याश्रितया समुद्योतिता'** शब्द था। ओहो! **जाना हुआ उस काल में...**

अमृतचन्द्राचार्य भगवान मुनि थे। कुन्दकुन्दाचार्य प्रभु संवत् ४९ में हुए। भगवान के पास गये थे। साक्षात् त्रिलोकनाथ वर्तमान विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धरप्रभु सर्वज्ञपद में समवसरण में वर्तमान विराजते हैं। उनकी स्थिति करोड़पूर्व की है। भगवान की करोड़ पूर्व की स्थिति है। एक पूर्व में सत्तर लाख करोड़ छप्पन हजार करोड़ वर्ष चले जाते हैं। ऐसा-ऐसा भगवान का करोड़ पूर्व का आयुष्य है। कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले गये थे, तब भी भगवान विराजते थे, अभी भी भगवान विराजते हैं।

समझ में आया? वहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य आठ दिन गये थे। आठ दिन जाकर वहाँ से आकर यह (शास्त्र) बनाये। वहाँ से आकर। समझ में आया? मद्रास से अस्सी मील दूर पौन्नूरहिल एक टेकरी है। वन्देवास एक छोटा गाँव है दस हजार की आबादीवाला। मद्रास से अस्सी मील इस ओर। वन्देवास से पाँच मील दूर पौन्नूर टेकरी है। वहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचर्य ध्यान में रहते थे। वहाँ से भगवान के पास गये थे। समझ में आया? और वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाये।

अपने गये नहीं थे? पण्डित कैसे? मल्लिनाथ या कुछ थे। है न मद्रास में भाषण हुआ था। और अन्यमति के मठ में भी ऐसा निकला, मठ, अन्यमति का मठ। दो हजार वर्ष पहले यहाँ एक महामुनि थे। वे तो थे। अन्यमति के मठ में ऐसा निकला। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में भरतक्षेत्र में विराजते थे। महाभाग्यवान पुण्यवन्त और पवित्रवन्त। जिनका भरतक्षेत्र में जन्म और साक्षात् महाविदेहक्षेत्र में मनुष्य देह से गये। चौदह पूर्व नहीं थे। कोई चौदह पूर्व की लब्धि नहीं थी। आहारक की नहीं थी। चार ... (अंगुल) ऊँचे चलने की थी। और देव उनका मित्र था, वह ले गया। आठ दिन वहाँ भगवान के पास रहे। साक्षात् भगवान की देशना सुनकर आये हैं। समझ में आया? भावमुनि तो थे ही। विशेष स्पष्ट निर्मल (ज्ञान से) कहते हैं भगवान ऐसा कहते हैं।

सर्वज्ञदेव ऐसा कहते हैं और कहा है, भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध भगवान का अवलम्बन लो। वही वस्तु सत्य है। जब पूर्ण दशा हो जायेगी, तब तेरी अपूर्ण दशा, व्यवहार दशा नहीं रहेगी। परन्तु जब तक पूर्ण नहीं, तब तक व्यवहार दशा का तुझे ज्ञान करना। अपूर्ण शुद्ध है, पूर्ण (शुद्ध) नहीं। राग है, पूर्ण वीतरागता नहीं। ऐसा ज्ञान करना, उसकी तुझे आवश्यकता है। निश्चय के साथ व्यवहार का ज्ञान करने से प्रमाणज्ञान होता है। समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है परन्तु वस्तु सत्य है। इसे समझना ही पड़ेगा। वरना जन्म-मरण का चक्र इसका मिटेगा नहीं। डण्डे खाकर मर गया अनन्त बार। समझ में आया? राजा, महाराजा हुआ, करोड़पति, भिखारी अनन्त बार हुआ। कैसे होगा? मलूकचन्दभाई कहाँ गये? यहाँ सामने बैठे हैं। समझ में आया? आहाहा!

भगवान! तेरी सम्पत्ति, तेरी लक्ष्मी तुझे नजर में न आवे! तेरी सम्पत्ति तो तेरा

एक समय में ध्रुव भगवान पड़ा है, उसमें तेरी पूरी पूँजी पड़ी है। केवलज्ञान भी एक समय की पूँजी है। ऐसी अनन्त पूँजी का पिण्ड भगवान आत्मा तुझमें पड़ा है। तुझे कभी माहात्म्य आया नहीं, कभी रुचि की नहीं। समझ में आया? व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार करते-करते मर गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : था कब व्यवहार? अन्तर भान हुए बिना तुझे व्यवहार कहाँ से आया? समझ में आया? आहाहा! यह कहा था न? श्रीमद् का कहा था, नहीं? 'साधन बार अनन्त कियो' समझ में आया? परन्तु यह भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध, एक समय की पर्याय का भी आश्रय नहीं। आश्रय लेनेवाली पर्याय है। परन्तु पर्याय का पर्याय को आश्रय नहीं। पर्याय को द्रव्य का आश्रय है। समझ में आया? अरे! भगवान! ऐसा एक समय का भगवान आत्मा अन्तर्मुख में अनुभव करके, आश्रय करके निर्विकल्प अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन हुआ, तब उसे सम्यग्दर्शन और चौथा गुणस्थान कहते हैं। परन्तु वहाँ तक तो अभी आनन्द अपूर्ण है और राग साथ में है। तो उसे व्यवहार से जानना प्रयोजनवान है। वह जब पूर्ण हो जायेगा, तब तुझे व्यवहारनय-अपरमभाव रहेगा नहीं। परम होने के बाद अपरम नहीं रहेगा। अपरम है, तब तक जाना हुआ उस काल में प्रयोजनवान है। ऐसा अमृतचन्द्राचार्य '**ववहारदेसिदा**' तात्पर्यार्थ निकाला है। समझ में आया? आहाहा! 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ' दूसरे कोई दो, तीन पंथ होते नहीं। परन्तु वह मार्ग क्या है, यह कभी सुना नहीं। 'श्रुत परिचित अनुभूता कामभोग बन्ध कथा।' अनन्त बार तुझे विकल्प-राग करना, राग भोगना, ऐसी बात तूने प्रभु! अनन्त बार सुनी है। अनन्त बार आदत में-टेव में-अभ्यास में ले ली है। अनुभव में भी अनन्त बार आ गयी है। परन्तु भगवान आत्मा उस राग से, निमित्त से पृथक्, एक समय की अवस्था भी नहीं, पूर्ण आनन्दघन है, उसका आश्रय लिये बिना तेरा कार्य सम्यग्दर्शन का सिद्ध हुआ नहीं। और अब होने के बाद जो बाकी रहता है, उसे जानना, उसको व्यवहार कहते हैं। आदरना, उसको व्यवहार कहते हैं— ऐसा शास्त्र में है नहीं। विशेष चलेगा... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण कृष्ण ७, बुधवार, दिनांक - ०७-०९-१९६६
गाथा - १२ प्रवचन - ४०

समयसार, इसमें पहला जीव का अधिकार चलता है। जीव किसे कहते हैं? कैसे जीव की प्रतीति करने से सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली सीढ़ी अनन्त काल में प्रगट नहीं हुई, वह पहली धर्मश्रेणी कब प्रगट होती है? कैसे आत्मा को मानने से? समझ में आया? तो ११ गाथा में कहा कि भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में ध्रुव ज्ञायक शुद्ध स्वभाव का पिण्ड वस्तु जो है, वही भूतार्थ अर्थात् सत्य वस्तु है और वही शुद्धनय की चीज़ अथवा शुद्धनय है। ऐसा ज्ञायक शरीर, कर्म से रहित, पुण्य-पाप के राग से रहित। एक समय की अवस्था से रहित, समझ में आया? ऐसा आत्मा जिसे यहाँ परमपारिणामिक चैतन्य कारणप्रभु कहा जाता है—कारणपरमात्मा।

कारणपरमात्मा के सन्मुख होकर अन्तर में ज्ञान का प्रत्यक्ष वेदन करके भावश्रुतज्ञान द्वारा यह ज्ञान प्रत्यक्ष करके राग बिना ज्ञान को प्रत्यक्ष करके प्रतीति करना, उसका नाम भगवान सम्यग्दर्शन—पहला धर्म कहते हैं। समझ में आया? सौभागचन्दजी! क्योंकि आत्मा में एक ऐसा गुण पड़ा है, प्रकाश नाम का गुण पड़ा है। उस प्रकाशगुण का कार्य क्या? जैसे भगवान आत्मा में ज्ञान और आनन्द है, वैसे प्रकाश नाम का एक गुण है। ४७ शक्ति वर्णन की है। अनन्त शक्तियाँ हैं। ४७ शक्तियों का वर्णन किया। उसमें एक १२वीं शक्ति है। जिसे भगवान अमृतचन्द्राचार्य प्रकाशशक्ति कहते हैं। उस प्रकाशशक्ति का कार्य, प्रकाशशक्ति गुण है, उसका कार्य जब अपना स्वभाव ध्रुव शुद्ध पर दृष्टि पड़ने से उस प्रकाशगुण का धारक जो आत्मा है, गुण आधेय और गुणी आधार है, वह आधार-आधेय की दृष्टि छोड़कर एक स्वभावी भगवान का अनुभव दृष्टि की तो प्रकाशगुण का कार्य आत्मा ज्ञान में प्रत्यक्ष होना, वह प्रकाशगुण का कार्य है। समझ में आया? पहले चतुर्थ गुणस्थान में।

फिर से कहते हैं। आत्मा में अनन्त शक्तियाँ-गुण हैं। उनमें ४७ शक्तियों का वर्णन भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने किया है। उसमें एक १२वीं शक्ति है। जीवत्वशक्ति, चिति, दर्शि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शित्व, सर्वज्ञत्व, स्वच्छत्व और प्रकाशत्व। ऐसी एक १२वीं शक्ति है। अभी उसका काम है। बाकी तो शक्ति का वर्णन बहुत आ गया है। भगवान आत्मा में प्रकाश नाम का एक बारहवाँ गुण है। वह तो क्रमसर भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने कहा (इस हिसाब से), उसमें तो एकसाथ है। तो प्रकाश गुण का वह कार्य है कि आत्मा में प्रत्यक्ष स्वसंवेदन होना, भावश्रुतज्ञान द्वारा विकल्प अर्थात् राग को पृथक् करके निज शुद्ध भगवान आत्मा के सन्मुख होकर ज्ञान से प्रत्यक्ष हो जाना, आत्मा ज्ञान में प्रत्यक्ष हो जाना, श्रुतज्ञान में। पण्डितजी! जरा सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : श्रुतज्ञान में....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, श्रुतज्ञान में प्रत्यक्ष होता है। परोक्ष तो पर को जानने की अपेक्षा से परोक्ष है। समझ में आया? यह श्रुतज्ञान... श्रुतज्ञान शास्त्र की बात नहीं है। शास्त्र का ज्ञान वह तो परलक्ष्यी ज्ञान है। वह ज्ञान नहीं।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द शुद्ध ध्रुवस्वरूप, जिसमें अनन्त शक्ति का पिण्ड पड़ा है। अनन्त शक्तियाँ हैं। उनमें एक शक्ति (ऐसी है), त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखी है और है कि उस प्रकाशशक्ति का कार्य, जिस प्रकाशशक्ति का धारक भगवान आत्मा के अन्तर में दृष्टि करने से सम्यग्ज्ञान में रागरहित भावश्रुतज्ञान द्वारा अनुभव में आनन्द का आना और उस ज्ञान से आत्मा रागरहित प्रत्यक्ष होना, ऐसा उस गुण का कार्य है। आहाहा! भगवान जाने... सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी तो कुछ कीमत नहीं। यह सब बाहर करो, ऐसा करो और वैसा करो। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें धूल में भी धर्म नहीं होता। कौन कहता है धर्म है? भाषा आदि तो जड़ की पर्याय है। भाषा का आत्मा कर्ता है, यह मूढ़ मिथ्यादृष्टि मानता है। समझ में आया? गुलाबचन्दजी! भाषा भाषा जड़ है, धूल है वह तो। समझ में

आया ? 'करे कर्म सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा, जाने सो कर्ता नहीं होई, कर्ता सो जाने नहीं कोई।' कोई भी आत्मा यह रजकण आदि का काम मेरा है और अन्दर में शुभराग उत्पन्न होता है, शुभराग वह मेरा कर्तव्य है और मेरा कार्य है और मैं करनेवाला हूँ—ऐसा माननेवाला सम्यग्दृष्टि नहीं, परन्तु मिथ्यादृष्टि उसका कर्ता होता है। आहाहा! समझ में आया ? यह श्लोक कहा न ? यह अमृतचन्द्राचार्य का है, भाई! उसका यह हिन्दी है।

करे कर्म सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा
कर्ता सो जाने नहीं कोई, जाने सो कर्ता नहीं होई।

क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा अपने चैतन्य ज्ञानस्वरूप को भूलकर वाणी, देह और शुभ-अशुभ परिणाम का कर्ता होता है, वह मिथ्यादृष्टि 'करे कर्म सो ही करतारा।' वह रागादि मेरा कार्य है, वह कर्ता है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे आत्मा क्या है, उसकी खबर नहीं। 'जो जाने सो जाननहारा।' मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ। वाणी आदि होती है, वह तो जड़ की क्रिया है, उसके साथ मुझे कुछ सम्बन्ध नहीं। और राग उत्पन्न होता है, वह मेरी चीज़ में नहीं। मेरी खान में वह नहीं। आनन्द की खान भगवान में राग कहाँ से आया ? वस्तु में राग कहाँ से आया ? जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी भगवान आत्मा में तीन काल में नहीं। आहाहा! समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि को ऐसा भाव आता है, परन्तु कर्ता नहीं होता। आहाहा! मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ न प्रभु! मेरी सत्ता में तो ज्ञान और आनन्द पड़े है न। मेरी खान में तो आनन्द और शान्ति पड़े हैं न। मैं आत्मा स्वभाव को जाननेवाला, वह राग का भी कर्ता नहीं। समझ में आया ? 'जो जाने सो जाननहारा'। जाने वह ज्ञान। मैं किसकी दया पालूँ ? मैं किसे मारूँ ? किसे मैं समझाऊँ ? यह मेरा अधिकार ही नहीं। आहाहा! पाटनीजी!

सम्यग्दृष्टि को अपने आत्मा में अकर्तागुण—राग का और पर का अकर्तागुण अन्दर दिखाई देता है। क्या (कहा) ? भगवान आत्मा में अनादि-अनन्त राग, पुण्य, दया, दान का विकल्प और देह की क्रिया का कर्ता नहीं, ऐसा भगवान आत्मा में अकर्तागुण अनादि से पड़ा है। समझ में आया ? ऐसे अकर्तागुण का धारक भगवान आत्मा की

अन्तर अनुभव में दृष्टि हुई तो रागादि पर का अकर्ता हुआ और उसमें प्रकाश नाम की शक्ति पड़ी है... क्यों नहीं आये तुम्हारे ? सेठी क्यों नहीं आये ? देरी से आवे तो पीछे बैठे। सुनो ! समझ में आया ? क्या कहते हैं ?

भगवान आत्मा वस्तु जिसे आत्मा (कहते हैं), वह पहले आया नियमसार में कि शुद्ध ध्रुव आत्मा, वही वास्तविक आत्मा है। उसकी पर्याय वह वास्तविक आत्मा नहीं। आहाहा ! दया, दान, व्रत परिणाम, वे तो आत्मा नहीं, नहीं और नहीं, वे तो आस्रवतत्त्व हैं। शरीर, कर्म भगवान आत्मा में तो है ही नहीं, वे तो अजीवतत्त्व हैं। परन्तु भगवान आत्मा की एक समय की प्रगट व्यक्त पर्याय है, वह भी वास्तविक आत्मा नहीं, वास्तविक आत्मा नहीं। आहाहा ! वास्तविक वस्तुतः भगवान आत्मा तो एक समय की पर्याय बिना की चीज़ जो ध्रुव वास्तव में है, उसमें अकर्ता नाम का अनादि गुण पड़ा है। तो जब दृष्टि आत्मा की हुई तो अकर्तागुण का कार्य-राग का और पर का कर्ता नहीं, ऐसा अकर्ता का परिणमन होता है, उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? और उसके साथ स्वसंवेदन प्रत्यक्ष प्रकाश नाम का गुण है कि जो त्रिकाल आत्मा में पड़ा है, उस गुण का धारक भगवान आत्मा, उसकी अन्तर्मुख दृष्टि अनुभव करके हुई तो प्रकाशगुण का कार्य प्रत्यक्ष-श्रुतज्ञान में प्रत्यक्ष होना, वह प्रकाशगुण का कार्य है। आहाहा ! सुना नहीं क्या वस्तु है और किस प्रकार से प्राप्त होती है। समझ में आया ?

कहते हैं, पहले ११वीं गाथा में ऐसा कहा कि जब आत्मा का अनुभव हुआ, **'भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ' 'भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ'** ११ का दूसरा पद है। भगवान शुद्ध चैतन्य अनन्त गुणरूप एकरूप, अनन्त गुणरूप एकरूप। ऐसे भूतार्थ का अनुभव हुआ, आश्रय करके सम्यग्दर्शन हुआ तो श्रुतज्ञान से प्रत्यक्ष हुआ और सम्यग्दर्शन हुआ तो उसमें जितने अनन्त गुण हैं, अनन्त गुण हैं, उतने अंश सब प्रगट-व्यक्त आंशिक सब प्रगट होते हैं। अमरचन्दभाई ! आहाहा !

अरे ! भगवान ! एक आत्मा में इतने गुण हैं... समझ में आया ? छह महीने और आठ समय में ६०८ सिद्ध होते हैं। सुना है या नहीं ? छह महीने और आठ समय में

६०८ सिद्ध होते हैं। यह अभी तक जितने सिद्ध अनन्त पुद्गलपरावर्तन में हुए, अनन्त पुद्गलपरावर्तन हुए, यह सिद्ध की संख्या की अपेक्षा निगोद—आलू... (गुजराती में) बटाटा कहते हैं न? आलू। उसका राई जितना टुकड़ा है, उस एक टुकड़े में असंख्य औदारिकशरीर है। उसमें एक शरीर में अभी तक जितने सिद्ध हुए, उनकी अपेक्षा अनन्तगुणे आत्मा हैं। समझ में आया? ऐसे अनन्त आत्मा की संख्या सिद्ध से संसारी अनन्तगुणे हैं। उनसे अनन्तगुणे परमाणु की संख्या है। परमाणु यह टुकड़ा, यह अनन्तगुणे हैं। इनसे तीन काल के समय जो हैं, वे अनन्तगुणे हैं। उनसे आकाश के प्रदेश जो अमाप... अमाप... अमाप... कहीं माप नहीं, हद नहीं, 'नहीं' ऐसा नहीं, ऐसे आकाश के प्रदेश तीन काल के समय से अनन्तगुणे हैं और उनसे एक आत्मा में अनन्तगुणे गुण हैं। समझ में आया? यह अनन्त में सामान्य भी अनन्त गुण हैं। अस्तित्व, वस्तुत्व, यह सामान्य तो छह कहे जाते हैं, परन्तु हैं अनन्त। एक आत्मा में सामान्य अनन्त (गुण) कि जो दूसरे में भी हो और यहाँ भी हो। तथा विशेष भी अनन्त हैं, जो दूसरे में न हों और इसमें हो, ऐसे भी अनन्त। ...लालजी! अनन्त.. अनन्त हुए। आहाहा!

भगवान! तेरे पास इतनी सम्पत्ति है कि आकाश के प्रदेश की संख्या से अनन्तगुणे गुण हैं। आहाहा! उन सब गुण का पिण्ड एक द्रव्य है। ऐसे द्रव्य का जहाँ अनुभव हुआ तो अनन्त गुण जितने हैं, वे एक अंश व्यक्त-प्रगट एक समय में साथ में होते हैं। चौथे गुणस्थान की बात चलती है, भाई! यह जानकर पूछते हैं। क्या कहते हैं? चौथे गुणस्थान में पहले अंशरूप प्रगट होता है। पूर्णरूप तो केवलज्ञान हो तब (प्रगट होता है)। यह बात तो कही, यही चलता है। ११वीं गाथा में यह कहा।

अब १२वीं गाथा में व्यवहार का ज्ञान कराना है। समझ में आया? ११वीं गाथा में... यह तो महासिद्धान्त अलौकिक तीन काल-तीन लोक में न बदले, ऐसा सिद्धान्त। भगवान आत्मा एक समय में इतने अनन्त गुणरूप एकरूप उसका सामान्य स्वभाव वह वास्तव में आत्मा। उसके ऊपर अन्तर्मुख दृष्टि करने से बहिर्मुख का विकल्प और एक समय की पर्याय की रुचि छोड़कर अन्तर स्वभाव की दृष्टि-अनुभव करने से अनन्त जितने गुण संख्या से हैं, उनका एक अंश प्रगट-व्यक्त उस समय में सम्यग्दर्शन के काल

में इतना प्रगट होता है। एक अतीन्द्रिय आनन्द का अंश, प्रत्यक्ष अंश, स्वच्छता का अंश, प्रभुता का अंश, अकर्ता का अंश, अभोक्ता का अंश, जीवत्वशक्ति का अंश, कर्ता का अंश, कर्म का अंश। कर्म अर्थात् जड़ नहीं, कर्म-कार्य नाम का आत्मा में एक गुण है। उसका अंश, सम्प्रदान का अंश, अधिकरण का अंश। समझ में आया? चिति का अंश, दृशि का अंश, सर्वज्ञ का अंश, सर्वदर्शी का अंश। ऐसी-ऐसी ४७ शक्तियाँ तो भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने वर्णन की हैं। आत्मप्रसिद्धि आ गयी है न। उसमें है। अभी तो दूसरी चलेगी। उससे भी अधिक नया प्रकाशित हुआ है। रिकॉर्डिंग में उतरा है, प्रकाशित होगा। ४७ वही, परन्तु दूसरे अर्थ से चली है। अब बाहर आयेगी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। प्रकाशशक्ति का नाम ही प्रकाश। उसका कार्य क्या? —कि आत्मा में स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होना, वह उसका कार्य। प्रकाश अर्थात् ज्ञानप्रकाश की बात नहीं है। ज्ञानप्रकाश की बात नहीं है। ज्ञानप्रकाश भिन्न शक्ति है और स्वसंवेदन प्रकाशशक्ति भिन्न शक्ति है। वह स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होना, वह प्रकाश नाम के गुण का कार्य है। ऐसा यहाँ अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ तो अनन्त गुण में से एक-एक अंश प्रगट (हुआ)। आनन्द का अंश, स्वच्छता का अंश, प्रभुता का अंश। प्रत्यक्ष का अंश आ गया। परन्तु अभी पूर्ण का अनुभव नहीं। समझ में आया? यदि पूर्ण का अनुभव हो जाये तो उसे नय रहते नहीं। तो उसे शुद्धनय ज्ञातव्य है, ऐसा कहा। शुद्धनय ज्ञातव्य का अर्थ—यह १२वीं गाथा में कहा न? **'परमभावदरिसीहिं सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो'** एक ही शब्द का इतना अर्थ है। जब पूर्ण दशा हो गयी अतीन्द्रिय समाधि पूर्ण अनन्त गुण की व्यक्तता पूर्ण पर्याय हो गयी, उसे तो कोई व्यवहारनय है नहीं। उसे तो पूरा आत्मा ही प्रत्यक्ष अनुभव में आया तो उसे कोई व्यवहार-फ्यवहार है नहीं। शुद्धनय आत्मा का अनुभव, वही उसे जाननेयोग्य है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान अथवा सप्तम गुणस्थान। दो जगह। समझ में आया? उत्कृष्ट केवलज्ञान।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी यह बात नहीं, रात्रि में। हमारी चर्चा चलती हो न। अन्दर प्रवाह चलता हो, वह रुक जाता है। हम कहते हैं, उसमें सब आ जाता है। ध्यान रखो तो कोई प्रश्न रहे नहीं। चौथे गुणस्थान में ऐसा होता है। दो-दो बार कहा पहले।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्ण भले हो। उसका प्रश्न नहीं। सब गुण की पूर्ण नहीं है। समझे?

यहाँ एक समय में भगवान आत्मा श्रद्धा, ज्ञान के अनुभव में प्रत्यक्ष आया तो पर्याय में सब गुण के अंश प्रगट वेदन में आ गये। 'सर्व गुणांश वह समकित।' सम्यग्दर्शन की व्याख्या यह है कि जितने गुण हैं, उतने के 'सर्व गुणांश वह समकित।' सब गुणों का प्रगट एक अंश में आना। श्रीमद् का यह वाक्य सिद्धान्तिक वाक्य है। समझ में आया? यह श्रीमद् का वाक्य है। श्रीमद् राजचन्द्र का। यह अपने यहाँ स्वाध्यायमन्दिर में यह दरवाजे के ऊपर यह है और दूसरे दरवाजे के ऊपर चारित्र है। सर्व गुणांश, वह समकित। स्वाध्यायमन्दिर में एक दरवाजे के ऊपर है। रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क होता है या नहीं? एक ओर स्वरूपाचरण—स्वरूप में चरना, वह चारित्र है। दोनों ओर दो है।

यहाँ कहते हैं कि जब सम्यक्त्व हुआ तो अनन्त गुण के अंश प्रगट हो गये। परन्तु पूर्ण नहीं हुए। तो यहाँ कहते हैं कि अपरमभाव में स्थित है, परमभाव में स्थित हो गये, उन्हें तो अकेला आत्मा का अनुभव रह गया। उन्हें प्रमाणज्ञान हो गया। परन्तु एक न्याय से वहाँ शुद्धनय का विषय पूर्ण (हुआ)। भाई! ऐसा कहा। शुद्धनय का विषय पूर्ण हो गया। ऐसा दो (जगह) आता है न? जयसेनाचार्य में। अब कहते हैं कि अपरमभाव में है, वहाँ क्या करना? पूर्ण दशा प्रगट नहीं हुई। अनुभव हो गया, सम्यक्त्व हो गया, पूर्ण दशा नहीं हुई। तो उस भूमिका में जितनी शुद्धि है—पर्याय, वह भी व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया?

निश्चय में तो मोक्षमार्ग की साधना, वही व्यवहार है। द्रव्य है, वह तो निष्क्रिय

तत्त्व अखण्ड दृष्टि का विषय है। परन्तु जो निश्चयमोक्षमार्ग है, स्वरूप का अनुभव, दृष्टि और स्थिरता हुए, वह निश्चयमोक्षमार्ग है, वही व्यवहार है। क्योंकि त्रिकाली की अपेक्षा से वह पर्याय हुई (और) पर्याय, वह व्यवहार हुआ। समझ में आया? इसे समझना पड़ेगा या नहीं? यह सब थोथा अनन्त काल से व्यतीत करते हैं। शास्त्र के बहाने पढ़-पढ़कर पढ़ा, ... पढ़ा। परन्तु मूल (वस्तु रह गयी)। क्या कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह फिर से कहते हैं न। अभी एक बार में नहीं आवे। अभी दूसरी पाँच बार बहुत दृढ़ होगा तब... रहेगा। यहाँ तो घोलन होता है। देखा! परमार्थ वचनिका है न? भाई! परमार्थ वचनिका। लो, यही निकला। देखो! यहाँ है? परमार्थ वचनिका है, मोक्षमार्गप्रकाशक (के पीछे प्रकाशित है)। बनारसीदास (कृत है)। देखो! क्या कहते हैं?

मोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार... है। निश्चयमोक्षमार्ग, हों! विकल्प है, वह तो मोक्षमार्ग है ही नहीं, उसे तो निमित्त से कहा है। परन्तु भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द की जो प्रतीति, अनुभव, स्थिरता—शान्ति आदि प्रगट हुए, वह निश्चयमोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार है। **और शुद्धद्रव्य अक्रियारूप वह निश्चय है।** परमार्थ वचनिका चल गयी है, इसके बहुत व्याख्यान हो गये हैं। अध्यात्म सन्देश नामक पुस्तक निकली है न? यहाँ तो पुस्तकें तो चार लाख साठ हजार प्रकाशित हुई हैं और चालीस हजार तो अभी प्रकाशित होती हैं। अब प्रकाशित होंगी। अध्यात्म सन्देश नामक पुस्तक में इसका सब स्पष्टीकरण आ गया है। इस चिट्ठी का। अक्रिय द्रव्यस्वभाव जो ध्रुव एकरूप है, उसमें परिणमन नहीं। ध्रुव में परिणमन नहीं होता। पर्याय में परिणमन होता है। तो ध्रुव है, उसे अपरिणमन कहा है। भाई गये? विमलचन्दजी गये? वहाँ क्यों बैठे? देरी से क्यों आये? सेठी नहीं, हमारे विमलचन्दजी। यहाँ आओ, यहाँ। देरी क्यों लगी? समझ में आया? फिर से कहते हैं न। एकदम जाने नहीं देते।

भगवान आत्मा एक समय का जो ध्रुव है, वह निष्क्रिय है। इसमें परिणमन नहीं। समझ में आया? क्या कहा? बनारसीदास की चिट्ठी है। इसका नाम परमार्थ वचनिका

है। कहते हैं, **मोक्षमार्ग साधना...** यह गुजराती है। **मोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार...** हिन्दी में है। यहाँ हिन्दी नहीं। नहीं? **शुद्धद्रव्य अक्रियारूप, वह निश्चय है। इस प्रकार निश्चय-व्यवहार का स्वरूप सम्यग्दृष्टि जानता है।** सम्यग्दृष्टि जानता है। **परन्तु मूढ़ जीव जानता नहीं और मानता भी नहीं।** जानता नहीं और मानता भी नहीं। दोनों दोष है। जानता नहीं और श्रद्धता नहीं। दो दोष है। समझ में आया? परमार्थ वचनिका बनारासीदास ने तो अन्तर... आगे लिखा है, **यथा सुमति प्रमाण केवलज्ञान अनुसार मैंने यह लिखा है।** समझ में आया? वाँचना है यह? शब्द लो न, भाई! शब्द लेना अच्छा अपने। आधार देखो। लो! यह चिट्ठी है न चिट्ठी। यह चिट्ठी लिखी है। **वचनातीत, इन्द्रियातीत, ज्ञानातीत...** ज्ञान अर्थात् विकल्पातीत। **इसलिए यह विचारो, बहुत क्या लिखना? जो ज्ञाता होगा वह थोड़ा लिखा हुआ (भी) बहुत समझेगा। जो अज्ञानी होगा वह यह चिट्ठी सुनेगा नहीं, परन्तु समझेगा नहीं। यह वचनिका जैसी है वैसी (-यथायोग्य) सुमतिप्रमाण केवलीवचनानुसार है।** अनुभव से आया है न अन्दर में से। तो कहते हैं, मोक्षमार्ग जो निश्चय है, व्यवहारमोक्षमार्ग तो मोक्षमार्ग है ही नहीं। वह तो एक राग को, निमित्त को उपचार करके कहा है। परन्तु भगवान आत्मा अपना शुद्ध ध्रुव चैतन्य एक समय का जो अक्रिय है, अक्रिय समझे? उसमें उत्पाद-व्यय का परिणमन नहीं। उत्पाद-व्यय का परिणमन तो एक समय की पर्याय में है। वह अपरिणमन ध्रुव कूटस्थ है। उसका नाम निश्चय है। और पर्याय का साधना निर्विकल्प... वहाँ भी कहा, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, स्वसंवेदन, शान्ति, आनन्द का अनुभव वह पर्याय है। वह पर्याय त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से अंश है, भेद है तो उसे व्यवहार कहा। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, निश्चयमोक्षमार्ग जो निर्विकल्प आनन्द का अनुभव है, वह व्यवहार है। क्यों? कि केवलज्ञान है, वह भी सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। समझ में आया? क्योंकि भगवान आत्मा त्रिकाल एकरूप, वह निश्चय है। उसमें केवलज्ञान हुआ, वह एक समय की पर्याय हुई। पर्याय-अंश-दशा-अवस्था। त्रिकाल की अपेक्षा से भेद हुआ। भेद है, वह सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। निश्चय का विषय नहीं। आहाहा! कहाँ से कहाँ (आया)। मुझे तो व्यवहार ले जाना था। वे व्यवहार... व्यवहार करते हैं न। व्यवहार धर्म, व्यवहार धर्म। क्या व्यवहार धर्म, सुन तो सही! यहाँ तो शुद्धता आनन्द के

साथ, त्रिकाल स्वरूप की दृष्टि हुई, शान्ति हुई, शुद्धता हुई, उसे वास्तव में तो व्यवहार कहते हैं। वह व्यवहारधर्म निश्चय अपेक्षा से। और अपना निश्चयधर्म जो हुआ, उस अपेक्षा से शुभराग जो आता है, उसे व्यवहारधर्म कहते हैं। परन्तु व्यवहार अर्थात् धर्म है नहीं, उसे धर्म कहना, उसका नाम व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? फूलचन्दभाई! सूक्ष्म तो पड़े। इसने कभी अन्दर तत्त्व को देखा नहीं।

कहते हैं, भगवान! सुन तो सही प्रभु! तेरी महान चीज़ पड़ी है न, प्रभु! अनन्त गुण की खान का अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, परन्तु पूर्ण अनुभव पर्याय में आया नहीं। वहाँ तक उसके पुरुषार्थ की कमी है तो अशुद्धता भी है और शुद्धता का अंश भी प्रगट हुआ है। तो शुद्धता का अंश प्रगट हुआ, वह त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से उसे व्यवहार कहा और उस शुद्धता के अंश को निश्चय कहे तो राग को व्यवहार कहा। परन्तु वह व्यवहार नाममात्र है, धर्म-बर्म है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं, **जानने में आता (-ज्ञात होता) हुआ उस काल प्रयोजनवान है।** यहाँ तक आया है, कल यहाँ तक आया है। जाना हुआ। देखो! नीचे अन्तिम लाईन है। है न उसमें? **विचित्र अनेक वर्णमाला के समान होने से, जानने में आता (-ज्ञात होता) हुआ उस काल प्रयोजनवान है।** यह बड़ा सिद्धान्त है। भगवान आत्मा निज शुद्ध स्वरूप का अनुभव, सम्यग्दर्शन हुआ और सम्यग्ज्ञान हुआ और चारित्र भी हुआ। पाँचवें, छठवें गुणस्थान में। परन्तु वहाँ आगे अनेक प्रकार की शुद्धि के अंश भी बढ़ते हैं और अशुद्धता का राग भी है। उस-उस समय व्यवहारनय जाना हुआ उस-उस काल में जानना। बस, इतनी बात है। है, इतना जानना। आदरनेयोग्य है नहीं। व्यवहारनय का विषय हेय है। आहाहा! निश्चय का विषय ज्ञेय करके उपादेय है, व्यवहार का विषय हेय करके जाननेयोग्य है। आहाहा! यह गड़बड़ इस गाथा में से पहले से हमारे सामने आती है। स्थानकवासी भी इसमें पड़े हैं। मन्दिरमार्गी भी इसमें पड़े हैं और यह लोग भी इसमें पड़े हैं। ऐ... १२वीं गाथा में ऐसा कहा है। '**ववहारदेसिदा**'। अरे! सुन तो सही, प्रभु! यह वीतरागमार्ग है, बापू! तुझे खबर नहीं। वीतरागस्वरूप परमात्मा पूर्णानन्द का नाथ... समझ में आया?

'जहाँ चेतन वहाँ अनन्त गुण' योगीन्द्रदेव कहते हैं।

जहाँ चेतन वहाँ अनन्त गुण, केवली बोले ऐम।
प्रगट अनुभव आपका, निर्मल करो सप्रेम रे... चेतनप्रभु।
चेतनप्रभु चैतन्यता रे तारे धाम में...

तेरे अन्तर के धाम में प्रभु महाबैकुण्ठ विराजता है। आहाहा! परमात्मा अनन्त परमात्मा विराजते हैं, प्रभु! तुझे खबर नहीं। ऐसा द्रव्यस्वरूप वह है। 'जहाँ चेतन वहाँ अनन्त गुण' यह कहा नहीं अभी अंक? 'केवली बोले ऐम' केवलज्ञानी की वाणी में आया है, भाई! सर्वज्ञ से सिद्ध हुआ है। यह कहीं कल्पना से अनुमान करके कहा है, ऐसा नहीं। 'जहाँ चेतन वहाँ अनन्त गुण, केवली बोले ऐम, प्रगट अनुभव आपका' तू जरा अनुभव कर तो तुझे प्रगट ख्याल में आयेगा। 'निर्मल करो सप्रेम रे चेतनप्रभु' 'चेतनता ते तेरे चैतन्यधाम में' भगवान! तेरे धाम में तो परमात्मा विराजते हैं न। एन्लार्ज करना, वह तुझे पर्याय में करना है। समझ में आया?

ऐसे आत्मा का भान होकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, स्वरूप में चारित्र, वह चारित्र, हों! पंच महाव्रत के विकल्प, वे कहीं चारित्र-फारित्र नहीं। वह राग है। अट्ठाईस मूलगुण राग है। अचारित्र को व्यवहारनय—नहीं है, उसे चारित्र कहता है। अन्यथा कहना उसका लक्षण है। व्यवहारनय का लक्षण ऐसा है। लखण समझ में आता है? लक्षण। समझ में आया? कहते हैं, यह जानने में आता हुआ। पर्याय में शुद्धता और अशुद्धता आदि अनेक प्रकार हैं। **विचित्र अनेक वर्णमाला के समान होने से, जानने में आता (-ज्ञात होता) हुआ उस काल प्रयोजनवान है।** सोलहवान सोना हुआ, उसे तेरह, चौदहवान की आवश्यकता नहीं। अर्थात् कि है ही नहीं, तेरह, चौदहवान है ही नहीं। ऐसे आत्मा का अनुभव करके पूर्ण केवलज्ञान हुआ, उसे निचली दशा, मध्यमदशा है ही नहीं। उत्कृष्ट दशा का अनुभव है। तो उसे व्यवहारनय है नहीं। परन्तु जिसे उत्कृष्ट अनुभव नहीं, अनुभव दृष्टि का हो गया है, पर्याय में कमी है। तो उस पर्याय में शुद्धता आदि है, निर्मल निश्चयमोक्षमार्ग, हों! निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प ज्ञान-स्वसंवेदन, निर्विकल्प वीतरागता, उसे यहाँ व्यवहार कहते हैं। आहाहा! और रागादि को जानना, वह भी

व्यवहार है। वह राग, शुभराग होता है न? शुभराग चौथे, पाँचवें, छठवें में शुभराग होता है। समझ में आया? जब तक शुद्ध उपयोग की रमणता न हो, तब तक दृष्टि आत्मा के ऊपर होने पर भी शुभराग भक्ति का, दया, दान का, व्रत का आता है, परन्तु वह धर्म नहीं। उसे व्यवहारनय जानता है कि है। है, बस इतना। परन्तु वह है तो निश्चय है, ऐसा नहीं। समझ में आया? और वह है तो आत्मा को धर्मस्वरूप शुद्धता शुभराग से हुई, ऐसा भी नहीं। जब तक पूर्ण शुद्धता न हो, वहाँ तक पर्याय में वह जाना हुआ उस काल में... काल शब्द डाला है (क्योंकि) **'तदात्वे'** शब्द पड़ा है। उस काल। समय-समय में ज्ञान की ऐसी दशा रह जाती है कि जितनी अशुद्धता रहे और शुद्धता प्रगट हो, उस-उस समय में जानता हुआ ज्ञान प्रगट होता ही है। दूसरे समय में दूसरा। शुद्धि की वृद्धि थोड़ी हुई, अशुद्धता घटी तो दूसरे समय में ज्ञान ही उसे जानता हुआ, अपने को जानता हुआ और उसे जानता हुआ वर्तमान स्व-परप्रकाशक प्रगट होता है। जानता हुआ (प्रगट होता) है, आदरता नहीं। समझ में आया? गोदीकाजी! पाँच-पाँच लाख खर्च करे तो धर्म नहीं होता, ऐसा कहते हैं। लाख, करोड़ दे देवे न, करोड़ कब तेरी चीज़ थी? वह तो जड़ की थी। जड़ को लेने-देने का स्वामी हो वह मूढ़ जीव है। समझ में आया? परजीव का स्वामी है कि तूने परचीज़ को दिया या रखा? कषाय मन्द का भाव आया तो पुण्य है, पुण्य है, धर्म नहीं। निर्जरा नहीं, संवर नहीं।

मुमुक्षु : परम्परा से।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी परम्परा नहीं। यह तो वकील है न तो वकालत से स्पष्ट कराते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : परम्परा का अर्थ क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा का अर्थ कि अभी नहीं होगा, उसका अभाव करके होगा, इसका नाम परम्परा। ऐसा है, भाई! समझ में आया?

अब अपने यह शब्द आया। **क्योंकि तीर्थ और तीर्थ के फल की ऐसी ही व्यवस्थिति है।** यह शब्द पड़ा है न? यहाँ व्यवहार को सिद्ध करना है, हों! पर्याय को। क्योंकि ... अधूरी पर्यायरूप व्यवहार है—शुद्धता। पूर्ण पर्याय भी व्यवहार है। सुनो!

तीर्थ अथवा मोक्ष का मार्ग आदि या गुणस्थानभेद जो पर्याय है, उसे—भेद को तीर्थ कहते हैं। और उसका फल केवलज्ञान, वह भी व्यवहार हुआ। यहाँ स्वरूप का साधन करके शुद्धता प्रगट हुई, वह त्रिकाल की अपेक्षा से व्यवहार है। और उसका फल केवलज्ञान हुआ, वह भी एक अंश प्रगट हुआ, वह भी व्यवहार है। पर्याय को व्यवहार कहते हैं। यहाँ तो ११वीं गाथा के साथ सम्बन्ध है न, भाई! '**भूदत्थ खलु सुद्धणओ**' ध्रुव भूतार्थ और पर्याय अभूतार्थ है। वह पर्याय अभूतार्थ को यहाँ पर्याय निर्मल हुई भगवान आत्मा के आश्रय से और शुभराग रहा, उसे व्यवहार कहा। और उसे तीर्थ कहा। भेद है न? वह आदरणीय नहीं। परन्तु तीर्थ अर्थात् चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ गुणस्थान भेदरूप है, उसे तीर्थ कहा और उसके फलरूप पूर्ण हुआ, उसे मोक्ष कहा! वास्तव में तो पर्याय द्रव्य का कार्य है। केवलज्ञान द्रव्य का कार्य है। परन्तु यहाँ निश्चयमोक्षमार्ग हुआ, व्यवहार विकल्प है, उसका कार्य हुआ, ऐसा कहना वह व्यवहार से है। व्यवहार साधन मोक्षमार्ग शुद्ध और उसका फल निश्चय, वह भी व्यवहार। क्योंकि एक समय की पर्याय है। समझ में आया? तो तीर्थ और तीर्थ का फल, तीर्थ से वह प्राप्त हुआ, ऐसा कहना भी व्यवहार है।

तीन बातें हैं। भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण प्रभु, जिसकी खान में अनन्त सिद्ध परमात्मा स्थित हैं। वही वास्तव में तो पदार्थ ही सम्यग्दर्शन, चारित्र का कारण है। उससे प्रगट होता है। तो प्रगट हुआ, वह व्यवहार हुआ। अंश है न? राग है, वह व्यवहार है। उससे केवलज्ञान हुआ, ऐसा कहना भी व्यवहार है। क्योंकि केवलज्ञान पूर्ण दशा निश्चयमोक्षमार्ग का व्यय होकर उत्पाद होता है। अभाव होकर उत्पन्न होता है तो अभाव में से भाव नहीं आता। अभाव में से भाव नहीं आता। भाव में से भाव आता है। त्रिकाल ज्ञायकभाव में से यह भाव आता है। तो वास्तव में कारण तो पदार्थ है। परन्तु निश्चय शुद्धता वीतरागी दशा, वह मोक्ष का कारण है और कारण से कार्य होता है, वह सब व्यवहार है। एक तो शुद्धता प्रगट हुई, वह व्यवहार। पर्याय है इसलिए। पूर्ण हुआ, वह पर्याय। केवलज्ञान अंश है इसलिए। प्रगट हुआ, वह भी व्यवहार। आहाहा! सद्भूत शुद्ध पर्याय प्रगट हुई और राग भी साथ में हो, वह अशुद्ध। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तीनों व्यवहार। क्या कहा? भगवान! सुनो!

यहाँ आस्रवतत्त्व (कर्ता-कर्म अधिकार गाथा-७२) में अधिकार लिया है न? तो अमृतचन्द्राचार्यदेव ऐसा कहकर बुलाते हैं, भगवान आत्मा। ऐसा कहते हैं, हों! भगवान आत्मा! पुण्य-पाप के परिणाम हैं न, प्रभु! वे तो अशुचि है न। मैल है न। जड़ है न। अचेतन है न। चैतन्य का नूर शुभाशुभ परिणाम में नहीं। भगवान आत्मा मैलरहित निर्मल है न। ऐसे भगवान आत्मा कहकर बुलाया है, हों! शुभाशुभ परिणाम, भगवान! वह अचेतन शुभाशुभ है। तू तो चेतन है। भगवान तो चेतन है। शुभाशुभ परिणाम दु:खरूप है और तू तो आनन्दरूप है। भगवान! तीन बार भगवान भगवान कहकर बुलाया है। आहाहा! गोदीकाजी!

दान के नाम से... कितने ही मानो दान करे न, इसलिए अपना मोक्ष हो जायेगा। लोग कहते हैं, लोग कहते हैं न। मानते हैं। आये थे न? कहा नहीं? मुन्नालालजी नहीं थे? इन्दौर के। पण्डित नहीं थे? मुन्नालालजी। (संवत्) २००६ के वर्ष में यहाँ आये थे न। राजकोट। वरना तो हमारे नाथूलालजी आते हैं। परन्तु उनके घर में दो जीव थे, इसलिए आ नहीं सके। तो मुन्नालाल आये। ढाई लाख का मन्दिर बना है न। (संवत्) २००६ के वर्ष। बहुत लोग आये थे। ऊपर स्वर्ण के कलश चढ़ाये हैं। नानालालभाई हमारे करोड़पति सेठ थे। सवा लाख उन्होंने दिये थे। ओहो! सेठ! आठ भव में मोक्ष होगा। तब वे सेठ कहते हैं, नानालालभाई बहुत होशियार गम्भीर थे। (उन्होंने कहा) ऐसा हम मानते नहीं। महाराज ऐसा कहते नहीं और हम ऐसा मानते नहीं। हम तो यहाँ कषाय की मन्दता जितना भाव पुण्य हुआ, उतना हमको पुण्य है। पाप से बचने के लिये। उससे भवकटी हो, यह हम मानते नहीं। नन्दलालजी! सेठ ने कहा। करोड़पति नानालालभाई, बेचरभाई तीन भाई हैं। ८४ वर्ष की उम्र है। यहाँ ... गये थे। यहाँ मकान है न। पाँच-दस हजार लोग। राजकोट में पहला-पहला दिगम्बर (मन्दिर हुआ)। काठियावाड़ में बड़ा शहर है न। बड़े शहर में ढाई लाख का मन्दिर और आस-पास बड़ा चौक है। दिगम्बर... दिगम्बर... ओहोहो! सोने के (कलश)। आठ भव में मोक्ष

हो जायेगा। हम ऐसा मानते नहीं। जितना हमारा राग मन्द हुआ, उतना पुण्य मानते हैं। समझ में आया? ऐसा है नहीं। लाख, करोड़ वह तो जड़ की अवस्था। उसमें राग की मन्दता हो तो पुण्य है। परलक्ष्यी पुण्य है। पवित्रता उससे होती है, ऐसा है नहीं। यहाँ तो ढिंढोरा पीटकर कहते हैं, तथापि करोड़ों रुपये लोग खर्च करते हैं। समझ में आया? यहाँ कहीं गुप्त नहीं रखते कि तुम पैसा खर्च करो, इसलिए धर्म होगा। धर्म नहीं। तब तो गरीब को रोना पड़े। क्योंकि गरीब मनुष्य को पैसा नहीं हो तो उसे धर्म नहीं होगा। (परन्तु) ऐसा है नहीं।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसे राग से रहित दृष्टि अनुभव करके सम्यग्दर्शन प्रगट करे तो धर्म है, नहीं तो धर्म है नहीं। और वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की पर्याय भी एक समय का अंश है। तो उसे यहाँ तीर्थ कहा है। उसका फल केवलज्ञान तीर्थ का फल कहा है। उसका फल कहा, वह भी व्यवहार है। वास्तव में तो केवलज्ञान आदि द्रव्य में से आते हैं। क्योंकि पूर्व की पर्याय के व्यय में से केवलज्ञान का उत्पाद नहीं होता। उसका तो अभाव हुआ। उत्पाद तो त्रिकाल द्रव्य में से आता है। समझ में आया? जो तीर्थ है, ऐसा व्यवहारधर्म। समझ में आया? कोष्ठक में है। 'तीर्थ और तीर्थ के फल की ऐसी ही व्यवस्थिति है।' व्यवस्थिति है। '(जिससे तिरा जाये, वह तीर्थ है...)' व्यवहार शुद्धपर्याय है न। शुद्धपर्याय वह तीर्थ है। '(ऐसा व्यवहारधर्म है)।' त्रिकाल की अपेक्षा से वह शुद्धता का अंश व्यवहार हुआ। राग को असद्भूतव्यवहार कहा। शुभराग है सही। शुभराग लेंगे। '(और पार होना वह व्यवहारधर्म का फल है)...' शुद्धता के अंश से पूर्ण दशा प्रगट होना, वह तीर्थं का फल है। '(अथवा अपने स्वरूप को प्राप्त करना...)' पूर्ण स्वरूप को। '(वह तीर्थफल है)।' केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्ण आनन्द परमात्मदशा प्राप्त होना, वही मोक्षमार्गरूपी तीर्थ का फल है। वहाँ व्यवहार जाननेयोग्य है, ऐसा आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? अब यह श्लोक भी ऐसा आया है। है न?

जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारणिच्छए मुयह।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं॥

अन्दर श्लोक है। समझ में आया? अर्थ है नीचे। समझ में आया? अर्थ :- **आचार्य कहते हैं...** श्लोक का शब्दार्थ है। श्लोक पुराने में से चला आता है। यह हिन्दी है। **आचार्य कहते हैं कि हे भव्य जीवो! यदि तुम जिनमत का प्रवर्ताना करना चाहते हो...** वीतराग परमेश्वर ने कहा हुआ मार्ग, उसे प्रवर्ताना-चलाना-अनुभव करना चाहते हो तो **व्यवहार और निश्चय-दोनों नयों को मत छोड़ो;...** सुनो!

मुमुक्षु : आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या आया? सुनो तो सही, अभी अर्थ तो सुनो। शब्द से भड़क जाना? समझ में आया? 'बात ही सों भोंक उठे' ऐसा बनारसीदास में आता है। देखो तो सही। व्यवहार किसे कहा, ये अर्थ तो हो गया। कहाँ गये मणिभाई? भाई धीरे-धीरे देते जाते हैं। बहुत अच्छा किया। समझ में आया? भाई! यह तो भगवान का मार्ग है, बापू! वहाँ किसी की सिफारिश काम नहीं आती। सफारश को क्या कहते हैं? सफारश कहते हैं? सिफारिश काम नहीं आती। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ' उसमें कोई दूसरा आड़ा डालकर घालमेल करे, ऐसा चलता नहीं। गणधर मानते हैं, इन्द्र मानते हैं, तीर्थंकर कहते हैं। समझ में आया? और ऐसी वस्तु की युक्ति लॉजिक से तो कहा जाता है, न्याय से। समझ में आया?

भगवान आत्मा... कहते हैं यदि तू जैनमत को प्रवर्ताना चाहता हो तो व्यवहार-निश्चय दोनों को मत छोड़ो। बराबर जानो। इसका अर्थ आयेगा। **क्योंकि व्यवहारनय के बिना तो तीर्थ-व्यवहार मार्ग का नाश हो जायेगा...** गुणभेद, गुणस्थानभेद, चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ, भेद, यह सब व्यवहार है। इस व्यवहार को न मानो तो गुणस्थानभेद नहीं रहेगा। उससे लाभ होगा, यह बात यहाँ नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ जानने के लिये कहा है। लाभ क्या? प्रमाणज्ञान करने में लाभ हुआ। निश्चय का ज्ञान था, उसके साथ व्यवहार हुआ, प्रमाणज्ञान का लाभ हुआ। उससे आत्मा को लाभ होता है, यह बात नहीं। व्यवहारनय के विषय को जानकर हेय मानना। निश्चय को जानकर उपादेय मानना। यह तो महा जैनदर्शन का मूल सिद्धान्त है।

टोडरमलजी ने बहुत कहा है। तुम्हारे दोपहर में चलता है न। समझ में आया?

मुमुक्षु : दोनों उपादेय।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों उपादेय होते नहीं। दो मार्ग है नहीं। निश्चय भी उपादेय और व्यवहार भी उपादेय। (यदि ऐसा हो) तो दो हुए कैसे? दो हुए क्यों? एक की दिशा व्यवहार की पर के ऊपर है, निश्चय की स्व के ऊपर है। तब तो व्यवहार कहा। पर के ऊपर लक्ष्य है तो व्यवहार, स्वरूप का आश्रय है, वह निश्चय। स्व के आश्रय में संवर, निर्जरा। पर के आश्रय में आस्रव उत्पन्न होता है। समझ में आया? वह आस्रव। उसका फल बन्ध। यहाँ स्व के आश्रय से उत्पन्न हुए संवर, निर्जरा। उनका फल मोक्ष। दोनों की दिशा में अन्तर, दोनों के भाव में अन्तर। दोनों के फल में अन्तर। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्दार्थ बराबर होता है। हमारे दलाल हैं, भाई! हमारे दलाल हैं। ऐसा कहते हैं कि, शब्दार्थ में तो ऐसा है न कि दोनों नयों को छोड़ना नहीं। ऐसा कहते हैं। शब्दार्थ बराबर होना चाहिए। देखो!

व्यवहारनय के बिना... वर्तमान पर्याय में गुणभेद की पर्याय नहीं, चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ भेद नहीं, ऐसा मानने से तो तीर्थ का नाश हो जायेगा। व्यवहार होवे ही नहीं तो तीर्थ का नाश हो जायेगा। आदरणीय है, ऐसा नहीं। समझ में आया? उसे तीर्थ कहते हैं। ऐसे तो व्यवहारतीर्थ उसे कहते हैं कि यह श्रद्धा करनेयोग्य है, यह श्रद्धा है, ऐसा विकल्प उठे, उसे व्यवहार कहते हैं, व्यवहार। असद्भूतव्यवहार। और १३वीं गाथा में आयेगा न? तीर्थ के लिये नौ पदार्थ कहे गये हैं। प्रथम अवस्था में—पहली अवस्था में सविकल्प अवस्था में नौ तत्त्व के भेद की श्रद्धा करायी है। भेद की व्यवहार से। उसमें से निकालकर अकेले आत्मा की श्रद्धा करना, उसका नाम निश्चय समकित है। समझ में आया? यह संस्कृत में है। पण्डितजी! संस्कृत में है। तेरहवीं गाथा है न? '**भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च**' संस्कृत है न? भाई! तेरहवीं गाथा अब आयेगी न अपने? यह बारहवीं है। देखो! इसमें भी है, परन्तु यह तो मुझे जयसेनाचार्यदेव की टीका

मुझे बतलानी है। जयसेनाचार्य में है न यह ? उसमें तो आयेगा ही। यहाँ तो अमृतचन्द्राचार्य में आयेगा। समझे ? **'नव पदार्थाः तीर्थवर्त्तनानिमित्तं प्राथमिकशिष्यापेक्षया भूतार्थ भण्यते तथाप्यभेदरत्नत्रयलक्षणनिर्विकल्पसमाधिकाले अभूतार्था असत्यार्था शुद्धात्मस्वरूपं न भवंति।'** नौ तत्त्व के भेद शुद्धात्मा का स्वरूप नहीं। व्यवहार के भेद वास्तव में शुद्धात्मा का अभेद का स्वरूप ही नहीं। समझ में आया ? व्यवहारनय न मानो तो पर्याय नहीं रही।

११वीं गाथा में कहा कि **'ववहारोऽभूदत्थो'** व्यवहार अभूतार्थ क्यों कहा ? वह तो निश्चय का आश्रय कराने को कहा। त्रिकाल वस्तु आश्रय करनेयोग्य है तो वही सत्य है, ऐसा कहने में आया। तो कहा कि व्यवहार अभूतार्थ है। पर्याय ही नहीं, ऐसा कह दिया। ११वीं गाथा में तो पर्याय में ही नहीं, असत्य है, ऐसा कह दिया। असत्य (अर्थात्) नहीं, इसका अर्थ त्रिकाल ज्ञायक की अपेक्षा से आश्रय करनेयोग्य नहीं, इसलिए असत्य है। पर्याय नहीं, ऐसा नहीं। यहाँ पर्याय है, उसे व्यवहार कहा है। समझ में आया ? आहाहा! यह तो गाथा भी मौके से (आयी है)। ताकडे को क्या कहते हैं ? हमारी गुजराती भाषा है। अवसर में। हमारी काठियावाड़ी थोड़ी-थोड़ी आ जाती है न। ताकड़े अर्थात् अवसर में (मौके से)।

कहते हैं, व्यवहारनय बिना, भगवान! भेद नहीं रहे। पर्याय का भेद नहीं रहे, शुभभाव भी नहीं रहे। सबको जानना, वह व्यवहार है। व्यवहार को छोड़ दो, छोड़ दो इसका अर्थ ज्ञान में न लो और न मानो तो समाप्त हो गया। भेद ही नहीं रहता। चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ गुणस्थान नहीं रहता। शुभभाव है, वह भी नहीं रहता। इतना जाननेयोग्य है, उसे छोड़ दो श्रद्धा में से कि नहीं (तो कुछ नहीं रहता)। व्यवहार की व्यवहाररूप से श्रद्धा करना। भाई! आया था न ? व्यवहार की व्यवहाररूप से श्रद्धा करना कि व्यवहार है, ऐसा श्रद्धान करना। वह आदरणीय है, ऐसा नहीं। आहाहा! व्यवहार है, इनकार करे तो पर्याय का नाश हो जायेगा। पर्याय न रहे तो रहा क्या ? आहाहा! मोक्षमार्ग की पर्याय है, वह व्यवहार है; मोक्ष भी पर्याय है, गुण नहीं। संसार भी पर्याय है-विकारी; मोक्षमार्ग की पर्याय है—निर्विकारी और साथ में थोड़ा राग है और मोक्ष है,

वह निर्विकारी पर्याय है। गुण-द्रव्य नहीं, गुण-द्रव्य तो त्रिकाली रहते हैं। भगवान आत्मा द्रव्य-गुण त्रिकाल है। उसकी तीन प्रकार की पर्याय। एक संसारी पर्याय, एक मोक्षमार्ग की पर्याय, एक मोक्ष की पर्याय। तीनों पर्यायों को त्रिकाल की अपेक्षा से व्यवहार कहा गया है। समझ में आया? धन्नालालजी!

कहते हैं कि यदि व्यवहार को नहीं मानो तो तीर्थ नहीं रहेगा, पर्याय नहीं रहेगी, भेद नहीं रहेगा, मोक्षमार्ग नहीं रहेगा, शुभभाव है, वह नहीं रहेगा। है इतना, हों! **और निश्चयनय के बिना तत्त्व (वस्तु) का नाश हो जायेगा।** वस्तु त्रिकाल है, ऐसा न मानो, उसका आश्रय न लो तो दृष्टि कहाँ से प्रगट होगी? समझ में आया? एक समय का भगवान पूर्णानन्द प्रभु है, उसका यदि आश्रय न ले तो धर्म कहाँ से प्रगट होगा? व्यवहारधर्म भी कहाँ से प्रगट होगा? निश्चय के आश्रय से होता है। उसे छोड़ दो और अकेला व्यवहार... व्यवहार, पर्याय... पर्याय, पर्याय... पर्याय करे तो वह पर्याय सच्ची नहीं रहे। समझ में आया? इसलिए दो नयों को जानना बराबर है। एक नय को छोड़ना कि व्यवहारनय का विषय नहीं है, ऐसा नहीं। जानना, उसका नाम नहीं छोड़ना—ऐसा कहने में आया है। निश्चय का आदर करना, व्यवहार को जानकर छोड़ना। परन्तु व्यवहार है, ऐसी श्रद्धा करना। विशेष आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण कृष्ण ८, गुरुवार, दिनांक - ०८-०९-१९६६
गाथा - १२ प्रवचन - ४१

आत्मा मुख्यरूप से किसे कहते हैं और कैसे आत्मा की श्रद्धा करने से सम्यग्दर्शन कहा जाता है, यह बात मुख्यरूप से ११वीं गाथा में कही। भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध ध्रुव ज्ञायक अखण्ड अभेद चीज़ है। एक समय का विकार और संयोग और एक समय की वर्तमान दशा को यहाँ अभूतार्थ कहा है, असत्यार्थ कहा है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध चैतन्य ध्रुव ज्ञायकभाव परमस्वभावभाव को ही यहाँ ११वीं गाथा में सत्य कहा है। सत्य कहो, भूत अर्थ—विद्यमान पदार्थ कहो या सच्चा स्वरूप कहो या ध्रुव वास्तव में आत्मा कहो। वह आत्मा शुद्धनयस्वरूप भगवान आत्मा का आश्रय लेने से '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' ऐसा भगवान पूर्ण प्रभु का आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन अनन्त काल में नहीं हुआ, ऐसी दृष्टि अनुभव में आती है। वह त्रिकाल ज्ञायकभाव के आश्रय से।

वर्तमान अवस्था और राग-द्वेष आदि परिणाम हैं, उन्हें असत्य कहा है, झूठा कहा है, अविद्यमान कहा है, वे हैं ही नहीं, ऐसा कहा है। समझ में आया? ११वीं और १२वीं (गाथा) तो पूरे जैनदर्शन की मर्म की गाथा है। यह समझे बिना शास्त्र के अर्थ अपनी कल्पना से करने जाये तो पूरे शास्त्र का तत्त्व विरुद्ध हो जाता है। समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान आत्मा, जो ११वीं गाथा में कहा, शुद्ध ध्रुव सत्य। पर्याय अनित्य असत्य झूठी, ऐसा कहा। समझ में आया? वहाँ पर्याय को, रागादि भाव को 'नहीं' ऐसा कहा था, असत्य कहा था, झूठा कहा था, इस बारहवीं गाथा में यह बात सिद्ध करते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा अपना शुद्ध ज्ञायक चैतन्य, उसकी अनुभव दृष्टि सम्यग्दर्शन हुआ और निज स्वभाव-सन्मुख होकर अपने स्वसंवेदनज्ञान में

आत्मा प्रत्यक्ष हुआ। परन्तु स्वरूप का आचरण आंशिक तो हुआ, पूर्ण आचरण नहीं हुआ। यह वर्तमान झगड़ा चलता है न? चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण होता है या नहीं? पण्डितजी! हमारे ताराचन्दजी के साथ आज रास्ते में बहुत चर्चा हुई थी। है, न हो तो अनन्तानुबन्धी के अभाव का फल क्या है? समझ में आया?

भगवान आत्मा अपना शुद्ध ध्रुव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन हुआ। साथ में स्वसंवेदन श्रुतज्ञान भी हुआ, साथ में अनन्तानुबन्धी का अभाव होकर स्वरूप के आचरणरूप दशा भी हुई। कहा था, जितने गुण एक आत्मा में हैं, अनन्ताअनन्त, उन सब गुणों का अन्तर दृष्टि—सम्यग्दर्शन होने से अनन्त गुण की एक समय में अल्प व्यक्तता, सब गुणों की अल्प व्यक्तता अंश प्रगट हो जाता है। समझ में आया?

श्रीमद् राजचन्द्र ने तो समकित का स्पष्टीकरण ऐसा किया कि सर्वगुणांश, वह समकित। अपने स्वाध्यायमन्दिर में है। सर्व गुणांश, वह समकित। ऐसे शब्द श्रीमद् राजचन्द्र ने अनुभव होने के बाद यह सूत्र रखा। बहुत छोटी उम्र में। २२ वर्ष की उम्र में आत्मानुभव हुआ। लाखों का मोती का व्यापार था। व्यापार उसके घर में रहा। विकल्प आते थे, वे भी उसके घर में रहे। अपने स्वरूप में नहीं, ऐसा अनुभव हो गया। समझ में आया? गृहस्थाश्रम में स्त्री, कुटुम्ब, परिवार हो, राजपाट चक्रवर्ती का राज हो, ऐसा होने पर भी, भगवान आत्मा अपनी निज सम्पदा, शुद्धस्वरूप की अन्तर सम्हाल करके अनुभव किया तो उसी समय में जितने गुण हैं, भगवान एक आत्मा में अनन्तानन्त गुण हैं। यह कल कहा था। अनन्तानन्त।

आकाश के प्रदेश अमाप... अमाप... अमाप... अमाप है। वह संख्या अनन्त की है, उससे भी एक भगवान आत्मा में अनन्त अनन्त गुण हैं। उससे अनन्तगुणे गुण हैं। उन सब अनन्त गुणों के पिण्ड को भगवान आत्मा शुद्ध को ध्रुव को वास्तव में आत्मा कहते हैं, वास्तविक आत्मा कहते हैं। राग पुण्य-पाप को नहीं, शरीर, वाणी को नहीं, परन्तु एक समय की अवस्था, वह व्यवहारनय का आत्मा है। आहाहा! और आत्मा के दो भेद। समझ में आया? एक समय की पर्याय जो प्रगट-व्यक्त है, वह व्यवहारनय का आत्मा है। और त्रिकाली ज्ञायक ध्रुव है, (वह) निश्चयनय का वास्तविक आत्मा है।

आहाहा! समझ में आया? तो कहते हैं, जब भगवान आत्मा... ११वीं गाथा में तो महा सिद्धान्त, चौदह पूर्व का सार है!

प्रभु अपना आत्मा अनन्तानन्त गुणरूप स्वरूप एक। गुणभेद भी दृष्टि में नहीं। गुण और गुणी का भेद करने से भी विकल्प, राग उत्पन्न होता है। समझ में आया? पुण्य-पाप के भाव तो दूर रहो, एक समय की अवस्था दूर रहो, परन्तु भगवान अनन्त गुण का आधार एक स्वरूप, उसमें आधेय रहनेवाले अनन्त गुण, ऐसा भेद करके भी राग ही उत्पन्न होता है, सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं होता। समझ में आया? पण्डितजी! भगवान! तेरी पूँजी अन्दर इतनी है, उसे सर्वज्ञ भी वाणी द्वारा पूरी नहीं कह सकते। समझ में आया?

'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में' श्रीमद् राजचन्द्र ३३ वर्ष में देह छूट गयी। ३३ वर्ष में। ३० वर्ष में यह एक 'अपूर्व अवसर' श्लोक (काव्य) बनाया। 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा...' ठीठुं समझे न? दीठा (देखा)। तुम्हारे समझ लेना। थोड़ी-थोड़ी गुजराती (आ जाती है)।

जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में
कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब।

क्या कहते हैं? समझ में आया? एक घी का स्वाद भी, जन्मघूट्टी में आता है, तुम्हारे में जन्मघूट्टी कहते हैं न? (गुजराती में) गळथूथी उसमें से घी का स्वाद ख्याल में है। परन्तु उस स्वाद को किसी पदार्थ के साथ तुलना करके कहो। तुमको सन्तोष होता है कि हम घी के स्वाद को बराबर व्यवस्थित कह सकते हैं। समझ में आया? लाओ। बताओ एक पदार्थ। कैसा है घी? समाप्त। किसी पदार्थ के साथ तुलना करके नहीं कहा जा सकता। कैसा है? मीठा, बहुत घी मीठा। कैसा मीठा? शक्कर जैसा? केला जैसा? नहीं। गुड़ जैसा? नहीं। बोर की मिठास जैसा? नहीं। घी केला जैसा? घी केला होता है न? तालाब में नहीं होते घी केला? एक फल होता है। मीठा होता है। कुछ मिठास है, परन्तु किसी पदार्थ के साथ तुलना करके कहा जा सके और हमको सन्तोष हो कि मैंने पूरे पदार्थ को कहा है, ऐसी कोई वाणी है नहीं, ऐसा कोई पदार्थ है

नहीं। घी जैसी स्थूल बादर पर्याय का स्वाद कैसा, उसे तुलना करके कहने में कोई कथन नहीं, पदार्थ नहीं। भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु की अनुभव कथा किसके द्वारा कहे? शब्द में सामर्थ्य नहीं। समझ में आया?

जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में,
कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जो,
उस स्वरूप को अन्य वाणी वह क्या कहे?

सर्वज्ञ के अतिरिक्त दूसरा कौन कहे? सर्वज्ञ भी पूरा कह सके नहीं।

उस स्वरूप को अन्य वाणी वह क्या कहे?
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जो।

उसका ज्ञान अनुभवगम्य रहा। वाणी द्वारा पूर्ण कहा जा सके, ऐसी चीज़ नहीं। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा एक समय में अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसका अनुभव करने से अनन्त गुण का व्यक्त अंश प्रगट होता है। तो साथ में स्वरूपाचरण का अंश भी प्रगट होता है। ताराचन्दजी! दूसरा प्रश्न होता है, आज सवेरे प्रश्न हुआ कि स्वरूपाचरण और शुद्धउपयोग, दोनों में अन्तर क्या? सुनो!

जब प्रथम अनुभव सम्यग्दर्शन होता है... समझ में आया? तब तो शुद्धोपयोग होकर स्वरूपाचरण की दशा की परिणतिपूर्वक सम्यग्दर्शन होता है। द्रव्यसंग्रह में भी आया है। पण्डितजी! ४७ गाथा है न? चार और सात। सैंतालीस। हमारे (गुजराती में) सुडतालीस कहते हैं। ४७ (गाथा) **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।'** ४७ गाथा है। हमारे सुड़तालीस कहते हैं। तुम्हारे चार और सात। **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि'** निश्चय से अन्तर में ध्यान। भगवान आत्मा पहले यथार्थ समझ ले, राग क्या है, पर्याय क्या है, त्रिकाल क्या है, संयोग क्या है? वास्तविक पदार्थ समझकर अन्तर्मुख होकर जब अन्दर निर्विकल्प ध्यान करता है... समझ में आया? विकल्प अर्थात् राग का मिश्रितपना छोड़कर भगवान पूर्णानन्द प्रभु की ओर की दृष्टि सन्मुख होकर जो अन्तरात्मा में ध्यान में जो निर्विकल्प शुद्धोपयोग होता है, उसी समय में स्वरूपाचरण भी साथ में होता है। वह शुद्धोपयोग स्वरूपाचरण हुआ। और उसमें

प्रतीति—सम्यग्दर्शन हुआ और साथ में स्वसंवेदन आत्मा का ज्ञान हुआ। और उस समय में ज्ञान का अंश, प्रतीति, स्वरूपाचरण, यह तो तीन मुख्य कहे। इसके अतिरिक्त जितने गुण हैं, उतने गुण की जो अशुद्धता थी, वह घटकर सब गुण की आंशिक शुद्धता का साथ में प्रगट होना, उसका नाम भगवान सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, (यह बात) सुनने में मिले नहीं, विचार में ले सके नहीं तो रुचि करके परिणमन कहाँ से होगा? समझ में आया? मूल कर्तव्य तो यह है।

पहले में पहला कर्तव्य अर्थात् करनेयोग्य हो... नियमसार में तो कहा है, '**णियमेण य जं कज्जं**' भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव तीसरी गाथा में कहते हैं, '**णियमेण य जं कज्जं**' भगवान! तुझे नियम से करनेयोग्य हो तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र वीतरागीदशा है। वह नियम से तुझे करनेयोग्य है। ऐसा नियमसार की तीसरी गाथा में आया है। समझ में आया? तो कहते हैं, भगवान आत्मा... नियम से सम्यग्दर्शन जिसका पहला कर्तव्य है। उस सम्यग्दर्शन के साथ अनन्त गुण की व्यक्तता अंश का वेदन साथ में प्रगट होता है। वह शुद्ध उपयोग प्रगट हुआ, उसमें सम्यग्दर्शन आदि होने के पश्चात् शुद्ध उपयोग वहाँ से हट गया और शुभ और अशुभ परिणाम में आ गया। परन्तु शुद्धस्वरूप का जो आचरण अंश है, वह तो कायम रहा। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि कदाचित् युद्ध में उपस्थित हो, तथापि उस समय में भी अपने स्वरूप के आचरणरूप अंश, अनन्तानुबन्धी चारित्रमोह की अन्तर्भेद प्रकृति है, तो उस प्रकृति का अभाव होने से स्वरूपाचरणचारित्र की दशा न हो तो उसका अभाव होकर हुआ क्या? क्या हुआ? भगवान आत्मा अपने स्वरूप में श्रद्धा, ज्ञान अन्तर सन्मुख होकर प्रगट किये, साथ में स्वरूप की लीनता का अंश, स्थिरता का अंश, आचरण का अंश जो आचरण अंश यथाख्यात हो जाये, ऐसे आचरण का अंश, भगवान! चौथे गुणस्थान में उत्पन्न होता है। समझ में आया? और वह स्वरूपाचरण न हो तो कोई भी गुणपर्याय उसमें प्रगट नहीं होती। जब उपयोग बाहर आ गया तो स्वरूपाचरण रह गया। इतनी परिणति अर्थात् दशा अर्थात् अवस्था अपने स्वरूप-सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन हुआ

और स्वरूप के आचरणरूप स्थिरता हुई, वह तो कायम रह गयी। समझ में आया? पण्डितजी! कायम न रहे तो अभाव हुआ, उसका फल क्या? परन्तु अभी सम्यक् चीज़ क्या है, यह बात ही चलती नहीं। अभी तो व्यवहारधर्म करो। निश्चय बिना का व्यवहाराभास, वह व्यवहार भी नहीं।

यहाँ १२वीं गाथा में यह कहते हैं, कि जब आत्मा का निश्चय सम्यग्दर्शन, अनुभव-वेदन और स्वरूपाचरण हुए, तब दृष्टि का विषय तो यथार्थ भूतार्थ हुआ। पर्याय रही, उस पर्याय में शुद्धता की मन्दता है और शुद्धता का अंश है, वह किस नय का विषय है? शुद्धनय का विषय तो पूर्ण कहा। समझ में आया? शुद्धनय का विषय अथवा शुद्धनय, ज्ञायकभाव पूर्ण भगवान आत्मा, वही निश्चयनय कहो या निश्चयनय का विषय कहो, वह तो साथ में सम्यग्दर्शन आदि उत्पन्न हुए। तो अब कोई व्यवहारनय का विषय रहा है या नहीं? ११वीं गाथा में इनकार किया कि व्यवहारनय है ही नहीं। ११ में कहा था कि व्यवहार विद्यमान नहीं। अभूतार्थ कहा न? व्यवहार अभूतार्थ है। व्यवहार विद्यमान नहीं। व्यवहार झूठा है। तो वह सर्वथा झूठा है या कुछ है या नहीं? तो १२वीं में स्पष्टीकरण किया कि जब तक आत्मा पूर्णानन्द की दशा का अनुभव कर ले, तब तो उसे अकेले शुद्धनय का अनुभव है। समझ में आया? परन्तु पूर्ण न हो और आत्मा का भान किया, पर्याय में पुरुषार्थ की कमी है, शुद्धता अल्प है, अशुद्धता भी है तो वह किस नय का विषय है? वह व्यवहारनय का विषय है। वह निश्चय का विषय है नहीं। समझ में आया? तो है, ऐसा जानना प्रयोजनवान है, ऐसा बारहवीं (गाथा) में कहा। प्रयोजनवान का अर्थ आदरणीयरूप से प्रयोजनवान है, ऐसा नहीं। आहाहा! पर्याय कहाँ आदरणीय है? पर्याय का आश्रय करने जाये तो राग उत्पन्न होता है।

यहाँ तो भगवान नियमसार की ५० गाथा में यहाँ तक कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही। तेरी पर्याय में क्षायिक समकित हुआ, चारित्र हुआ, उसे भी हम तो परद्रव्य कहते हैं। सुनो! नियमसार की ५०वीं गाथा में एक भगवान आत्मा अन्तःतत्त्व ज्ञायकमूर्ति शुद्ध धातु, जिसने परमानन्द धार रखा है। आहाहा! पूरा चैतन्यगोला पूरा प्रकाश का पुंज, अकेला आनन्द का सागर... समझ में आया? उसे सत्य कहा। तो यह

पर्याय है, उसका तो इनकार किया कि वह विद्यमान नहीं है। यह विद्यमान है, वह विद्यमान नहीं। ११वीं गाथा में ऐसा कहा था। विद्यमान नहीं तो सर्वथा विद्यमान नहीं है? वह तो अपने स्वभाव का आश्रय लेने और पर्याय का आश्रय नहीं लेने के लिये (उसे) असत्य कहा है। तो कहाँ तक कहा? अपने स्वरूप का आश्रय लेकर क्षायिक समकित हुआ, उस क्षायिक समकित को परद्रव्य कहा है। आहाहा! ५०वीं गाथा, नियमसार। क्यों? जितने आत्मा की पर्याय में रागादि उदयभाव हो, उपशमभाव हो समकित आदि, क्षायिकभाव हो समकित आदि, क्षयोपशमभाव हो वीर्य और ज्ञानादि, उन चारों ही भाव को भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, सुन तो सही, प्रभु! वे चार भाव तेरी दशा में है, उन्हें हम हेय कहते हैं। ५०वीं गाथा। समझ में आया? नियमसार है न? उसकी ५०वीं गाथा।

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्चं हवे अप्पा॥५०॥

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जगत के समक्ष पुकार करते हैं, अरे आत्मा! तेरी चीज़ अन्तरतत्त्व शुद्ध धातु। एक समय में पूर्णानन्द का नाथ परमपारिणामिकस्वभाव, उसे हम अन्त:तत्त्व कहकर, उसे हम आत्मा कहते हैं। और '**पुव्वुत्तसयलभावा**' पुण्य और पाप, राग और द्वेष, दया, दान और व्यवहाररत्नत्रय पर्याय और क्षायिक समकित, स्वरूपाचरणरूप स्थिरता, सबको हम हेय कहते हैं। क्योंकि वे परभाव हैं, क्योंकि वे परद्रव्य हैं। आहाहा! समझ में आया? ५०वीं गाथा। '**पुव्वुत्तसयलभावा**' भगवान आत्मा एक स्वरूप के अतिरिक्त, एक द्रव्य (प्रभु) के अतिरिक्त अन्तरंग तत्त्व आत्मा के अतिरिक्त एक समय की दशा में क्षायिक समकित हुआ और छठवें गुणस्थान में तीन कषाय (चौकड़ी) के अभावरूप स्वरूपाचरण की चारित्ररूप उग्र दशा हुई, भगवान आचार्य कहते हैं कि वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। इसलिए उस निर्मल पर्याय को हम हेय कहते हैं। क्योंकि वह परभाव है, क्योंकि वह परद्रव्य है, ऐसा कहा। तीन बोल लिये हैं। आहाहा! अमरचन्दभाई! अरे... भगवान! तूने तेरी चीज़ में कितनी सम्पदा है और एक समय की दशा में क्या है? एक समय की दशा में पूँजी है या नयी प्रगट होती है? समझ में आया? जैसे परद्रव्य

में से अपनी पर्याय प्रगट नहीं होती, इसी प्रकार निर्मल पर्याय में से नयी निर्मल पर्याय उत्पन्न नहीं होती; इसलिए भगवान कुन्दकुन्दाचार्य नियमसार-मोक्षमार्ग बतलाते हैं, भगवान! यह मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, यह भी हेय है, परभाव है, त्रिकाल स्वभाव की अपेक्षा से भगवान पूर्णानन्द का नाथ उपादेय है तो मोक्षमार्ग हेय है। भगवान पूर्णानन्द का नाथ स्वभाव है तो मोक्षमार्ग की निर्मल वीतरागी पर्याय परभाव है। भगवान आत्मा ज्ञायकस्वभाव स्वद्रव्य है तो मोक्ष का मार्ग प्रगट हुआ, वह परद्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? ५०वीं गाथा है। किसी को न बैठे तो लिख लेना। नियमसार की ५०वीं गाथा। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प रहित है। इतनी स्थिरता हो गयी न। राग बिना की स्थिरता है। कायम रहती है। राग बिना की स्थिरता स्वरूपाचरण समकिती को कायम रहती है। भोग के काल में, युद्ध के काल में भी स्वरूपाचरण का स्थिरता का अंश कभी नाश नहीं होता। समझ में आया? यह भगवान का अन्दर का मार्ग, आत्मा की लीला दूसरी है। दुनिया और ईश्वर की लीला कहती है, ऐसा कुछ है नहीं। समझ में आया? कोमलचन्दजी! आहाहा! वर्तमान में तो ऐसी गड़बड़ (चली है)। मूल सम्यग्दर्शन बिना की सब बात। ऐसा करो और ऐसा करो। पण्डित लोग भी यह कहे और त्यागी लोग भी यह कहे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। सम्यग्दर्शन बिना चारित्र कहाँ से आया? मिथ्यादृष्टि को चारित्र कहाँ से आया? और सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो, उसकी भी खबर नहीं। ऐ... पण्डितजी! यहाँ तो नग्न बात है। नागा बादशाह हैं। मुनि नग्न हैं। नागा बादशाह से आघा। उन्हें किसी की पड़ी नहीं है।

भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध चैतन्यप्रभु पूर्ण स्वरूप एक समय में उसकी पर्याय में उसे स्वद्रव्य कहा, उपादेय कहा, स्वभाव कहा। तो उसकी पर्याय में धर्म प्रगट हुआ, मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, उसे हेय कहा, परभाव कहा, परद्रव्य कहा। छह बोल ले

लेना। समझ में आया? इसका स्पष्टीकरण यहाँ १२वीं गाथा में करते हैं कि उसे कुछ व्यवहारनय है, उसे ख्याल करनेवाला कोई नय है या नहीं? समझ में आया? तुम तो एक द्रव्य, एक द्रव्य, एक द्रव्य-वस्तु... वस्तु... वस्तु (कहते हो)। यह पर्याय में मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, रागादि है, उन्हें परद्रव्य कहा तो उसके अंश में नय से जाननेयोग्य कोई वस्तु रहती है या नहीं? समझ में आया? तो १२वीं में कहा, उस समय में जो धर्म प्रगट हुआ, रागादि शुभादि बाकी है, वह व्यवहारनय से जाननेयोग्य है। आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! यह सिद्धान्त सिद्ध करने के लिये १२वीं गाथा में स्पष्ट करते हैं। ११वीं गाथा में कहा, उससे विरुद्ध कहे? वहाँ व्यवहार को असत्य कहा था, यहाँ व्यवहार आदरणीय, ऐसा कहे? है, ऐसा कहा। व्यवहारनय का विषय सम्यग्दृष्टि को अनुभव होने के पश्चात् भी वर्तमान में शुद्धि की न्यूनता है, अशुद्धता का अंश है, उसे व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। कल आया था। **जानने में आता हुआ उस काल प्रयोजनवान है।** उस काल में। पूर्ण हो जायेगा, पश्चात् व्यवहारनय रहत नहीं। समझ में आया?

अब यहाँ कहते हैं। **आचार्य कहते हैं कि हे भव्य जीवो!... 'जइ जिणमयं पवज्जह'** का बड़ा विवाद है। देखो! यहाँ भगवान कहते हैं कि दोनों नय को नहीं छोड़ना। अर्थात् दो नय को ग्रहण करना। यह छोड़ो नहीं का अर्थ ग्रहण करना। ग्रहण करना बात बराबर है, परन्तु ग्रहण करने का अर्थ क्या? समझ में आया? इसके लिये पण्डितजी ने स्पष्टीकरण किया है। पण्डित टोडरमलजी ने तो मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में शास्त्र का क्या रहस्य है, यही खोला है। अपने घर की कोई बात नहीं डाली। कुन्दकुन्दाचार्य भगवान परमात्मा के पास गये थे, साक्षात् त्रिलोकनाथ के पास। उनकी वाणी का क्या कहना? कुन्दकुन्दाचार्य, प्रभु के पास गये, आठ दिन रहे, आकर यह बताया। उनकी तो क्या बात! टोडरमलजी ने उसमें से आचार्यों का रहस्य और हृदय क्या है, हार्द क्या है, (उसे खोलकर बतलाते हैं)। प्रवचनसार में आता है न? भाई! हार्द। टीका में आता है। हार्द क्या है, हृदय क्या है, यह सादी प्रचलित भाषा में कहा है। आचार्यों ने अपनी जो भाषा थी प्राकृत, उसमें लिया है। उसका अभ्यास न हो, इसलिए सादी भाषा में थोड़ा कहा। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, दो नय है—निश्चय और व्यवहार। 'आचार्य कहते हैं, हे भव्य जीवो! यदि तुम जिनमत को प्रवर्ताना करना चाहते हो...' है नीचे श्लोक? हाथ लगा?

जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारणिच्छए मुयह।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं॥

अपनी बात निश्चय और व्यवहार जो है, वह सिद्ध करने को यह गाथा है। समझ में आया? तो कहते हैं, **यदि तुम जिनमत का प्रवर्ताना करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय-दोनों नयों को मत छोड़ो;...** अर्थात् दोनों नयों को ग्रहण करो। अर्थात् दोनों नयों को जानो। ग्रहण का अर्थ जानना। ग्रहण का अर्थ आदरना नहीं। समझ में आया? बड़ी गड़बड़ इसके लिये। हम ३० वर्ष पहले आये तब से गड़बड़ चली है। स्थानकवासी में से पहले निकले बाद में निश्चय की बात की तो कहे, नहीं, समयसार में १२वीं गाथा में कहा है। परन्तु तुझे क्या खबर समयसार में क्या कहा है? समझ में आया? दिगम्बर सन्त क्या कहते हैं निश्चय और व्यवहार, तुझमें है ही नहीं और तुझे आश्रय लेने के लिये कहना है कि १२वीं गाथा में कहा है कि व्यवहार करना, व्यवहार करना? '**ववहारदेसिदा पुण**' '**ववहारदेसिदा पुण**' इसलिए अपरमभाव में जो मिथ्यात्वी है, निचली दशावाले को तो व्यवहार ही कहना। आहाहा! कहाँ से निकाला ऐसा? ऐसा उसमें है ही नहीं। निचली दशा का अर्थ पूर्ण आत्मा का सम्यग्दर्शनपूर्वक अनुभव न हो—पूर्ण स्थिरता न हो तो उसकी दशा में अपूर्णता है, उसे जानना। जाननेयोग्य है, उसका नाम व्यवहारनय का ग्रहण कहा जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है इतना। ज्ञान में जानना कि है, बस इतना। है, इतना जानना। वरना तो व्यवहारनय का निषेध हो जाता है। है, आदरणीय नहीं। आदरणीय तो एक ही है। दो आदरणीय हो जाये तो एक यह आदरणीय और एक यह आदरणीय (ऐसा हो जाये)। भगवान आत्मा... समझ में आया? शुद्ध चैतन्यवस्तु को ही उपादेय कहा। वहाँ भी यही कहा। शुद्धभाव अधिकार अपने दोपहर में चलता है न? पहली (३८वीं) गाथा में कहा और ५० में कहा। अन्तःतत्त्व भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप और पुण्य-पाप,

संवर, निर्जरा, मोक्ष बहिर्तत्त्व कहा। ५० में परद्रव्य कहा, हेय कहा, परभाव कहा। क्योंकि मोक्ष के मार्ग की पर्याय, मोक्ष के मार्ग में से नहीं आती।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धारण कौन करे? आ जाता है। धारण कौन करे? यह तो स्वरूप में दृष्टि हुई और स्थिरता करते-करते थोड़ी स्थिरता हुई तो पंचम कहते हैं। विशेष स्थिरता अन्दर आनन्द की हुई तो सप्तम कहते हैं। यह बात है। धारण करना अर्थात् विकल्प किये और व्रत लिये, इसलिए पाँचवाँ आ गया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बदले? कर्ता हो तो मूढ़ है। राग को बदलना? किसे बदले? सब मूल में भूल है। आठ पंचसेरी की मण में (अर्थात्) मण में मण की भूल। भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध चैतन्यधातु का आश्रय लिया, अनुभव हुआ, पश्चात् आश्रय उग्ररूप से लिया, उसका नाम पंचम गुणस्थान है। यह पंचम गुणस्थान कोई बाहर की स्थिति नहीं। अन्तर भगवान आत्मा पूर्णानन्द का जघन्य आश्रय लिया। जघन्य समझे? कम। कम आश्रय लिया तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का अंश प्रगट हुआ। विशेष उग्र अन्दर में लीन हुआ, विशेष आश्रय लिया तो विशेष स्थिरता का अंश हुआ, उसका नाम पंचम गुणस्थान। इससे विशेष आश्रय लेकर स्थिर हुआ तो सप्तम गुणस्थान (आया)। पहले सप्तम आता है। पहले छठवाँ नहीं आता। यह द्रव्य का स्वभाव जो पहले दृष्टि में अनुभव में आया है, आनन्दकन्द, इस मार्ग से क्रम-क्रम से जाता है, उसका नाम शुद्धि की वृद्धि होती है। आहाहा! समझ में आया? धवल में ऐसा लिखा है, जिसने मग्ग देखा है—अन्दर में मार्ग देखा है। देखा है मार्ग। आता है न? भाई! विमलचन्दजी को कहता हूँ। '....' भगवान आत्मा ने सम्यग्दर्शन में मार्ग देखा है कि यह शुद्ध चिदानन्द आनन्दकन्द है। इस ओर दृष्टि गयी है और देखा है कि यह आत्मा। समझ में आया? इस ओर विशेष उग्ररूप से स्थिरता करना, उसका नाम पंचम गुणस्थान है। अकेले व्रत-फ्रत विकल्प ले, वह पंचम गुणस्थान है नहीं। समझ में आया? वह तो राग है। राग गुणस्थान में वृद्धि करता है? समझ में आया? राग तो हेय है। उपादेय तो

भगवान आत्मा है। उस उपादेय का आश्रय उग्ररूप से करता है तो पंचम गुणस्थान आता है। तब उस भूमिका में बारह व्रत का विकल्प आता है, वह हेय है। विकल्प आया, वह पंचम गुणस्थान टिकाता है, ऐसा नहीं। पंचम गुणस्थान आत्मा के आश्रय से टिकता है। समझ में आया? यह बात, बापू! अभी भारी कठिन। गड़बड़ कर डाली, पूरे मार्ग को मिटा डाला है। वीतरागमार्ग को अन्य मार्ग जैसा कर दिया है।

मुमुक्षु : बाह्य से तो वस्त्र उतारते हैं ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्त्र कौन उतारता है? मैं वस्त्र उतारूँ (ऐसा माननेवाला) मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? परद्रव्य को मैं उतार सकता हूँ, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है, उसे ज्ञान नहीं। वस्त्र तो अज्ञानी को चला ही करते हैं। वस्त्र हो तो नहीं और वस्त्र उतारे तो ऐसा। समझ में आया? अरे! मैं राग घटाऊँ, ऐसे दृष्टि पर में जाये, वह मिथ्यादृष्टि है। क्या करे? कौन घटाये?

यहाँ तो आचार्य वहाँ तक कहते हैं कि, राग का त्यागकर्ता आत्मा में नाममात्र है। राग का त्याग किया, यह परमार्थ से आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! धन्नालालजी! भगवान आत्मा। ३४ गाथा में अमृतचन्द्राचार्य ने कहा कि यह राग का त्याग आत्मा ने किया, वह नाममात्र कथन है। क्या राग स्वरूप में था कि त्याग किया? स्वरूप में स्थिरता हुई, वहाँ राग उत्पन्न नहीं हुआ, उसे कथन करने में आया कि आत्मा ने राग का त्याग किया। परमार्थ से आत्मा ने राग का त्याग किया, यह आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? है या नहीं वह? कहाँ है? देखो! ३४वीं गाथा। यह समयसार है न? यह हिन्दी आ गया है न, इसलिए शंका पड़ जाये। देखो! ३४ (गाथा की) टीका। अमृतचन्द्राचार्य की टीका।

कहते हैं, देखो! चौथी लाईन है। **परभाव की उपाधिमात्र से प्रवर्तमान त्याग के कर्तृत्व का नाम (आत्मा को) होने पर भी, परमार्थ से देखा जाये तो परभाव के त्याग-कर्तृत्व का नाम अपने को नहीं है।** समझ में आया? राग के त्याग का कर्तृत्व आत्मा में नहीं। आहाहा! किसका त्याग करना है इसे? आत्मा ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप है। ३४ गाथा है। टीका है, अमृतचन्द्राचार्य की टीका है। देखो! '**उपाधिमात्रप्रवर्तित-**

कर्तृत्वव्यपदेशत्वेऽपि' नाममात्र होने से **'परमार्थेनाव्यपदेश्यज्ञानस्वभावादप्रच्यवनात्'** ज्ञानस्वभाव से च्युत कहाँ हुआ है तो राग का त्याग करे? ऐसा स्वरूप में है नही। आहाहा! यह राग का मैंने त्याग किया, यह तो नाममात्र आत्मा में है। समझ में आया? भगवान अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं), क्योंकि आत्मा राग के ग्रहण-त्याग से रहित है। आत्मा में ऐसी एक शक्ति है। समझ में आया? उपादान क्या आता है? त्याग-उपादानशून्यत्वशक्ति।

राग का ग्रहण और त्याग आत्मा में है नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! सुनी नहीं, चैतन्य की सत्य बात क्या है। ऐसे का ऐसा अज्ञान में उल्टा चढ़ गया। मैंने त्याग किया। किसका? धर्म का। सम्यग्दर्शन का त्याग किया। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में प्रभु पूर्णानन्द के नाथ का जहाँ अन्तर अनुभव हुआ, स्थिरता विशेष हुई तो राग उत्पन्न होता नहीं। उत्पन्न नहीं होता, उसे व्यवहार से कहते हैं कि भगवान आत्मा ने त्याग किया। परमार्थ से ऐसा आत्मा में है नहीं। समझ में आया? आहाहा! विमलचन्दजी! गजब बात, भाई!

कहते हैं, जिनमत में दोनों नयों को न छोड़ो। इसका अर्थ दोनों नयों का ग्रहण करो। इसका अर्थ ११वीं गाथा में कहा कि भूतार्थ वस्तु है, पर्याय अभूतार्थ है। तो यहाँ कहा कि पर्याय को जानो। पर्याय में जितनी दशा है, उसे बराबर जानो। जानो, यह व्यवहारनय का विषय। जाना हुआ उस काल में प्रयोजनवान। जाना हुआ। आदरणीय (नहीं)। आत्मा उपादेय और यह भी उपादेय, ऐसे दो उपादेय हो जाये—ऐसा है नहीं। व्यवहारनय जाना हुआ हेय है, निश्चयनय जाना हुआ उपादेय है। निश्चयनय स्वद्रव्य है तो व्यवहारनय का विषय एक समय की पर्याय वास्तव में तो परद्रव्य है। आहाहा! जगत को आत्मा क्या चीज़ है और आत्मा का क्या कर्तव्य है, यह बात इसने सुनी नहीं। ग्यारह अंग पढ़ डाले, नौ पूर्व पढ़ डाले। पढ़कर डाल दिये।

यहाँ आचार्य १२वीं गाथा में ऐसा कहते हैं कि भगवान आत्मा को हमने भूतार्थ कहा। अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, आनन्द का स्वाद आया। सम्यग्दर्शन होने पर आनन्द का अनुभव-स्वाद आया। आनन्द के स्वाद बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। निर्विकल्प

आनन्द का अनुभव। आहाहा! समझ में आया?

अनुभवरस में रोग न शोगा, लोकवाद सब मेट्या,
केवल अचल अनादि अबाधित शिवशंकर का भेटा
अवधु अनुभव कलिका जागी,
मति मेरी आतम सुमरण लागी, मति मेरी आतम सुमरण लागी
अवधु अनुभव कलिका जागी।

कलिका समझते हो? यह पुष्प होता है न। कली-कोपल कहते हैं न? कली खिल गयी। कली खिल गयी। भगवान परमपारिणामिकभाव में पर्याय में संकोच था, पर्याय में मिथ्यात्व के काल में (संकोच था), वह अन्तर अनुभव हुआ तो पर्याय में संकोच का विकास हो गया। संकोच छोड़कर विकास हुआ। भगवान आत्मा की कली अन्दर से खिल गयी। आहाहा! समझ में आया? वह ज्ञाता-दृष्टा हो गया, आनन्द का अनुभव हो गया, स्वरूप का आचरण हो गया। स्वच्छता का अंश प्रगट हुआ, परमेश्वर की प्रभुता का एक अंश सम्यग्दर्शन में प्रगट हो गया। इसका नाम सम्यग्दर्शन है। इस सम्यग्दर्शन बिना जितनी बात करे, वह रण में शोर मचाने जैसी है। अरण्य में रुदन (करे), इसका उसे कुछ लाभ नहीं। चार गति निगोद का आराधन करता है। समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन होने के बाद स्वरूप की स्थिरता का आश्रय विशेष उग्र लेकर जो शान्ति विशेष हुई तो पंचम (गुणस्थान हुआ)। उस समय अभी भेद है या नहीं? पंचम गुणस्थान हुआ तो वहाँ बारह व्रत का विकल्प है, पर्याय में शुद्धता की मन्दता है, उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है, बस! आदरणीय-फादरणीय नहीं। धन्नालालजी! चौथे गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी का अभाव होकर अन्तर में अनुभव हुआ तो अभी तीन कषाय (चौकड़ी) की कषाय पर्याय में बाकी रही। और शुद्धि का अंश है। उस पर्याय को जाना हुआ व्यवहार उस काल में प्रयोजनवान है। दूसरे समय दूसरा प्रयोजनवान, तीसरे समय में तीसरा जाना हुआ प्रयोजनवान है। क्योंकि समय-समय में शुद्धि बढ़ती है, समय-समय में अशुद्धि घटती है। तो जो ज्ञान उस समय में जाना हुआ प्रयोजनवान है, दूसरे समय में वह ज्ञान उस समय में जाना हुआ प्रयोजनवान है, तीसरे समय में वह

ज्ञान जाना हुआ प्रयोजनवान है। बस, दूसरी कोई बात नहीं। उसमें यदि जरा भी दूसरी बात डाले तो पूरे तत्त्व का नाश हो जाता है। समझ में आया?

कारण कि **व्यवहारनय के बिना...** व्यवहारनय के बिना **तो तीर्थ-व्यवहारमार्ग का नाश हो जायेगा,...** क्योंकि चौथा गुणस्थान, पाँचवाँ गुणस्थान, छठवाँ गुणस्थान, यह सब पर्याय के भेद हैं। यह तीर्थ के भेद हैं। यदि यह नहीं, ऐसा मानो तो भेद का नाश हो जायेगा। चौथा, पाँचवाँ, छठा गुणस्थान रहता नहीं। पर्याय है। पर्याय, वह तीर्थमार्ग है। समझ में आया? पर्याय को जाना हुआ। इनकार करे कि नहीं है, तो नाश हो जायेगा। चौथे, पाँचवें, छठवें की भूमिका ही नहीं। समझ में आया? **व्यवहारनय के बिना...** व्यवहारमार्ग वर्तमान पर्याय की शुद्धता और अशुद्धता दोनों साथ में। वह नहीं रहेगी। नहीं रहे तो तीर्थ है ही नहीं। चौथा गुणस्थान नहीं, पाँचवाँ नहीं, छठवाँ नहीं। यह सब व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया? सब व्यवहारनय का विषय है। निश्चय का विषय त्रिकाल है। समस्त चौदह ही गुणस्थान व्यवहारनय का विषय है। केवलज्ञान भी सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। केवलज्ञान निश्चयनय का विषय है नहीं। समझ में आया? आहाहा! मूल बात की ही खबर नहीं होती। मूल बात की बात में अन्तर इसलिए सबमें अन्तर। एक और एक तीन हुए तो फिर सब अंक तीन तिया नौ, नौ तिया सत्ताईस, सत्ताईस तिया इक्यासी। करोड़ों, अरबों। पाँच सात दस अंक पहले फिरावे तो हमारे में भूल नहीं। मूल में भूल है। एक और एक तीन हो गये, वह मूल में भूल है। यह सब में चली आती है। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा एक समय में पूर्णानन्द शुद्ध चैतन्यधातु का आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन हुआ। दूसरा पर्याय का आश्रय, राग का आश्रय, निमित्त का आश्रय, पहले कषाय मन्द थी, इस कारण से सम्यग्दर्शन हुआ, ऐसा तीन काल में नहीं। समझ में आया?

भगवान पूर्णानन्द स्वरूप में अन्तर अनुभव दृष्टि देने से हुआ। तो सम्यग्दर्शन में देव-गुरु की भक्ति का राग आता है। समझ में आया? दया, दान का भाव आता है। वह आता है, उसे जानना प्रयोजनवान है। समझ में आया? पंचम गुणस्थान शुद्ध स्वरूप का विशेष आनन्द हुआ। पंचम गुणस्थान में सर्वार्थसिद्धि के देव का आनन्द, शान्ति है,

उससे विशेष आनन्द बढ़ गया। ओहोहो! पंचम गुणस्थान किसे कहे? क्या वाडा में माना हुआ पंचम गुणस्थान है? सर्वार्थसिद्धि के देव चौथे गुणस्थान में एकावतारी हैं, उनकी अपेक्षा भी पंचम गुणस्थान में (विशेष) शान्ति... शान्ति... शान्ति... स्वरूप के आश्रय से दो कषाय (चौकड़ी) के अभाव की शान्ति हो गयी। वह शान्ति और उस समय में रहा हुआ राग, उस समय में जाना हुआ व्यवहारनय प्रयोजनवान है। समझ में आया? और छठवें गुणस्थान में जब स्वरूप का उग्ररूप से आश्रय लेकर सप्तम गुणस्थान आया, वहाँ तो ध्यान में है। नीचे उतरे तो विकल्प आया। तीन कषाय (चौकड़ी) के अभाव की परिणति और जो राग रहा, पंच महाव्रत या अट्ठाईस मूलगुण का राग, उसे जाना हुआ ज्ञानी ने जाना हुआ प्रयोजनवान है, आदर किया हुआ प्रयोजनवान नहीं। समझ में आया?

अर्थ में जरा व्यवहारनय से कथन करेंगे। परन्तु वह व्यवहारनय से कथन है। आदरणीय है और करूँ-करूँ—ऐसी बुद्धि है, वहाँ तक तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? शुभराग भी मेरा कर्तव्य है तो शुद्धस्वरूप का कर्तव्य रहा नहीं। समझ में आया? शुभराग दया, दान, व्रत के विकल्प जहर है। समझ में आया? वह राग है, जहर है। अमृत को लूटकर उत्पन्न हुआ है। आहाहा! स्वरूप की जितनी स्थिरता हुई, उतनी शान्ति है। व्रत का विकल्प उठा कि यह व्रत और यह व्रत, वह तो जहर है। ऐ... मोहनलालजी! कड़क बात है, भाई! तुमको सबको तैयार होना पड़ेगा। पण्डित लोग और यह सब पत्रकार को तो अधिक तैयार होना पड़ेगा। समझ में आया? आहाहा!

व्यवहारनय के बिना तो तीर्थ-व्यवहार मार्ग का... नौ तत्त्व के भेद नहीं रहेंगे। पर्याय में नौ तत्त्व के भेद नहीं रहेंगे। यदि व्यवहारनय न माने तो। है। समझ में आया? पंच महाव्रत के परिणाम हैं, शुद्धि का अंश है, ज्ञान अपूर्ण है। सबको जाना हुआ उस काल में, हों! उस काल का अर्थ समय-समय में उस प्रकार की शुद्धि और अशुद्धि है, उस प्रकार से जानना। दूसरे समय में वह शुद्धि बढ़ी और अशुद्धि घटी, उस प्रकार से वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। पूर्ण हो जाने के बाद व्यवहारनय रहा नहीं। समझ में आया? यह जैनदर्शन का हार्द और मर्म है। यह समझे बिना उसे कल्याण की श्रेणी और

अंकुर उत्पन्न होते नहीं। मर जाये पंच महाव्रत पाल-पालकर, अट्ठाईस मूलगुण पालकर मर जाये, सूख जाये, भार... क्लेश... क्लेश... क्लेश (भोगता है)। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, क्लेश है। समझ में आया? है या नहीं? निर्जरा अधिकार। बोझ उठाता है, बोझ। मजदूर है। राग का बोझ उठाता है। अरागी दशा का भान आनन्द तो आया नहीं। और राग का बोझ उठाता है। समझ में आया? पण्डितजी! आहाहा! अनुभव है... समझ में आया? निश्चय से तो जयसेनाचार्य ने व्यवहाररत्नत्रय को पाप कहा है। जयसेनाचार्य महाराज। पुण्य-पाप अधिकार की अन्तिम गाथा। व्यवहाररत्नत्रय का राग पाप है। आत्मा का अमृत लूटकर उत्पन्न होता है। जहर है। 'अनुभव प्याला रस कथा प्याला पीया न जाये, आतम अनुभवरस कथा प्याला पीया न जाये, मतवाला तो जा पड़े....' समझ में आया? ऐसी बात है न! आहाहा! समझ में आया या नहीं? कोमलचन्दजी! तैयार होना पड़ेगा, भाई! जवान लोगों को तैयार होना। वरना गड़बड़ बहुत हो गयी है। लालचन्दजी!

व्यवहारनय बिना। यदि व्यवहारनय है नहीं तो पर्यायभेद है नहीं, गुणस्थानभेद है नहीं, चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ है नहीं, पर्याय है नहीं तो फिर रहा क्या? मानना पड़ेगा कि व्यवहार है। है, इतना मानना पड़ेगा। व्यवहारनय है, इतना न माने तो व्यवहार की श्रद्धा भ्रष्ट है। और व्यवहार है, उसे आदरणीय है, ऐसा माने तो निश्चय से भ्रष्ट है। समझ में आया? आहाहा! ...भाई! बहुत कठिन लगे। यह महिलाओं-बहिनों को बैठता है या नहीं? यह मानना ही पड़ेगा तीन काल-तीन लोक में। आज मानो, कल मानो, बाद में मानो, यह मानने से ही इसका निस्तारा है। बाकी मर जाये तो भी कुछ निस्तारा नहीं। धन्नालालजी! आहाहा! 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ'। परमार्थ का पंथ कोई दो, तीन, चार है नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ के मुख में से निकला हुआ प्रवाह है। आहाहा!

व्यवहारनय नहीं छोड़ो का क्या अर्थ हुआ? दो नय को ग्रहण करने का कहा। ग्रहण करने का अर्थ टोडरमलजी ने क्या किया? ग्रहण का अर्थ जानना कहा। अमृतचन्द्राचार्य ने कहा, वही वहाँ कहा है। समझ में आया? तुम्हारे आ गया, भाई! दो

नय का ग्रहण आ गया न? वह आ गया है। उसका स्पष्टीकरण तुम्हारे चलता है। २५६ में। यदि ऐसा है तो जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है, वह क्या है? सामनेवाले प्रश्न करते हैं। जिनमार्ग में किसी जगह निश्चयनय की मुख्यतासहित व्याख्यान है। वह तो सत्यार्थ ऐसा ही है, ऐसा जानना। कहीं व्यवहारनय की मुख्यतासहित व्याख्यान है। देखो! यह पर्याय और व्यवहारनय की मुख्यता आयी। उसे ऐसा नहीं, परन्तु निमित्त आदि की अपेक्षा से उपचार कहा है। ऐसे इस प्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है। उन्होंने तो आचार्य का हृदय खोला है। उनके घर की बात नहीं की।

यहाँ कहा है, छोड़ो नहीं, ग्रहण करो। ग्रहण की व्याख्या की। ग्रहण करने का अर्थ क्या है? जानना। इसका अर्थ अमृतचन्द्राचार्य भगवान दिगम्बर सन्त (करते हैं)। पर्याय में जितनी शुद्धता और जितनी अशुद्धता है, वह जाना हुआ व्यवहारनय प्रयोजनवान है। निश्चयनय के साथ व्यवहार को जोड़ना, वह प्रमाणज्ञान हुआ। समझ में आया? आहाहा! बड़ी मूल में भूल। व्यवहार बिना तीर्थ अर्थात् व्यवहारमार्ग का नाश हो जायेगा। क्योंकि पर्याय नहीं तो वेदान्त हो गया। ग्यारहवीं गाथा में तो अकेला शुद्ध भूतार्थ कहा था। अकेला शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध। और पर्याय को अभूतार्थ कहा था। अविद्यमान कहा था। विद्यमान नहीं, वह तो आश्रय करनेयोग्य नहीं, इस अपेक्षा से अविद्यमान कहा था। पर्यायरूप से पर्याय है। उसे जानना। व्यवहारनय का ज्ञान करना, वह जाना हुआ प्रयोजनवान कहा जाता है।

और निश्चयनय के बिना... यदि तत्त्व का आश्रय न लो तो अकेली पर्याय पर्याय मानेगा तो निश्चय के आश्रय बिना **तत्त्व का नाश हो जायेगा।** भगवान ज्ञानमूर्ति स्वरूप निश्चय शुद्ध का आश्रय नहीं लेना और पर्याय का आश्रय ले तो तत्त्व का नाश हो जायेगा। तेरी पर्याय में शुद्धता कहाँ से आयेगी? समझ में आया? निश्चय के बिना तत्त्व का नाश होगा, व्यवहार के बिना पर्याय का नाश होगा। पर्याय है नहीं, ऐसा होगा। एक को जानकर आदरना और एक को जानकर छोड़ना। भाई! भगवान! मार्ग ऐसा है, प्रभु! तुझे शान्ति से समझना चाहिए, हों! उसमें कोई वाद-विवाद से पार नहीं पड़ता। ऐसी चीज़ है। अन्तर की चीज़ तो अन्तर से पार पड़े, ऐसी है।

दोनों नयों को अंगीकार करना तो फिर दो कैसे रहे ? दो नय सच्चे हैं तो दो कैसे रहे ? दोनों का फल शान्ति हो तो दो नय पड़े कैसे ? समझ में आया ? दो नय का एक भाव हो तो दो नय हुए कैसे ? दो नय के भाव भिन्न हैं। निश्चयनय का भाव ध्रुव एकाकार है। व्यवहारनय का भाव वर्तमान भेद पर्याय शुद्ध और अशुद्ध दो है। समझ में आया ? व्यवहार का लक्ष्य पर के ऊपर है, निश्चय का लक्ष्य स्व के ऊपर है। सेठी ! यह जवाहरात का धन्धा चलता है। आहाहा ! आचार्यों ने दिगम्बर सन्तों ने धर्म के स्तम्भ केवलज्ञान को खड़ा रखा है। उसमें कुन्दकुन्दाचार्य आदि सन्त सब सन्त दिगम्बर सन्त अर्थात् ओहोहो ! उन्होंने धर्म के स्तम्भ केवलज्ञान को खड़ा रखा है। ऐसी बात अन्तर बिना बाह्य में आती नहीं। समझ में आया ?

निश्चयनय के बिना तत्त्व (वस्तु) का नाश हो जायेगा। भगवान ! वस्तु ही जहाँ अखण्ड आश्रय में नहीं ले, तो कहाँ से तुझे सम्यग्दर्शन आदि होंगे ? व्यवहार बिना पर्याय नहीं रहे तो अकेला तत्त्व क्या करे ? पर्याय तो आश्रय करती है। द्रव्य का आश्रय तो पर्याय करती है। समझ में आया ? पर्याय नहीं है, ऐसा मानो तो तत्त्व का आश्रय करनेवाला कौन ? निश्चय न मानो, तत्त्व है उसका आश्रय करना। निश्चय बिना तत्त्व है कहाँ रहा ? दो नय को जानना। एक को जानकर अंगीकार करना, एक को जानकर छोड़ना। यह पूरे शास्त्र का तात्पर्य है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

द्वितीय श्रावण कृष्ण ९, शुक्रवार, दिनांक - ०९-०९-१९६६
गाथा - १२ प्रवचन - ४२

यह समयसार जीव अधिकार और अजीव अधिकार चलता है। उसमें यहाँ बारहवीं गाथा चली। इसका जरा भावार्थ पण्डित जयचन्द्रजी करते हैं। अधिकार क्या चला? भावार्थ क्यों लिखते हैं? कि यह जीव अधिकार है। तो वास्तविक जीव किसे कहते हैं? एक समय का पूर्ण आनन्दघन शुद्ध ज्ञायकभाव एक स्वभाव स्वरूप को यहाँ जीव अथवा आत्मा कहते हैं। समझ में आया? शरीर, वाणी, कर्म तो आत्मा नहीं। यह तो सीधी बात है। और अन्दर पुण्य और पाप, शुभ-अशुभभाव होते हैं, वे भी आस्रव, मलिन, अशुचि, दुःखरूप, अचेतन भाव हैं। समझ में आया? आत्मा की पर्याय में परलक्ष्यी जितने शुभ और अशुभभाव होते हैं, वे अशुचि हैं, मैल हैं, दुःखरूप हैं, अचेतन हैं, जड़ हैं। क्योंकि निज चैतन्य ज्ञायकस्वरूप के प्रकाश का अंश इस राग में, शुभाशुभ में नहीं। समझ में आया? तो यह अपना शुद्ध ज्ञायक चैतन्य, जिसका लक्ष्य करने से, जिसका आश्रय करने से, जिसका अन्तर में अवलम्बन करने से अर्थात् ज्ञायकस्वभाव को दृष्टि में ध्येय बनाने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति स्वभाव के आश्रय से उत्पन्न होती है। ऐसे त्रिकाली स्वभाव को यहाँ आत्मा अथवा जीव कहा गया है। समझ में आया?

उस जीव का अन्तर आश्रय करके, निश्चयतत्त्व का परमार्थ भगवान आत्मा अपने पूर्णानन्दस्वरूप को वर्तमान दृष्टि, ज्ञान उसे ध्येय और ज्ञेय बनाकर, वस्तु पूर्णानन्द शुद्ध ध्रुव को ध्येय, श्रद्धा से ध्येय, ज्ञान से ज्ञेय... समझ में आया? बहुत सूक्ष्म। बनाकर जो सम्यग्दर्शन ज्ञान हुए तो साथ में स्वरूपाचरण स्थिरता का अंश (भी प्रगट हुआ)। रात्रि में प्रश्न था कि यह तो सम्यग्दर्शन है। इसमें अनन्त गुण के अंश प्रगट कहाँ से हुए? रात्रि में किसी का ऐसा प्रश्न था। समझ में आया?

भगवान! तेरी चीज़ में तो अनन्त-अनन्त शुद्ध सत्ता स्वभाव अनन्त गुण पड़े हैं।

तो अनन्त गुण का एकरूप ऐसा द्रव्य-वस्तु की दृष्टि करने से सब गुण उसकी प्रतीति में आ गये। सब गुण का धारक ध्रुव द्रव्य प्रतीति में आया तो अनन्त गुण भी जो प्रतीति में अनन्त काल में नहीं थे, वे प्रतीति में अभेद में आ गये। अनन्त गुणरूप एक पदार्थ की प्रतीति करने से अनन्त गुण जितने हैं, वे सब शक्ति का एक अंश प्रगट न हो तो द्रव्यदृष्टि हुई ही नहीं। समझ में आया? समझ में आता है या नहीं? लालचन्दजी! आहाहा! एकरूप पूर्णानन्द प्रभु में अनन्त गुण की किरण, अनन्त गुण किरण एक स्वरूप सूर्य, एक स्वरूप अनन्त में जो अनन्त गुण किरण पड़े हैं, ऐसा पूरा आत्मा अन्तर्मुख श्रद्धा का विषय बनाकर ध्रुव का आश्रय लिया तो ध्रुव में जितने गुण हैं, उतने गुण की एक समय के श्रद्धा, ज्ञान के साथ अनन्त गुण शान्ति, आनन्द, शान्ति शब्द से स्वरूपाचरण, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता, अपने स्वरूप की वीर्य की रचना, शुद्धस्वभाव का जो वीर्य गुण है, वह शुद्धस्वभाव की रचना करता है। अनन्त गुण की वर्तमान निर्मल (पर्याय की) रचना करता है, ऐसा वीर्य भी पण्डित हो गया। सम्यग्दर्शन के भान में वह वीर्य भी पण्डित हो गया। जो राग की रचना पर्याय में अनादि से करता था, वह स्वरूप एक समय का भगवान आत्मा दृष्टि में, ध्येय में, लक्ष्य में लेने से स्थिर होने से वीर्य शुद्ध स्वभाव की वर्तमान अनन्त गुण की निर्मल पर्याय की रचना करे, उसे वीर्य कहते हैं। समझ में आया? एक ही गुण की सम्यक् रचना करे, ऐसा नहीं। क्योंकि भगवान आत्मा एक समय में अनन्त गुण में विभु है। विभु समझे? सर्व में व्यापक। एक गुण दूसरे सर्व गुणों में व्यापक है।

एक गुण है, वहाँ सर्व गुण व्यापक है। यदि सर्व गुण व्यापक है तो सर्व गुण का स्वरूप धारक आत्मा का जहाँ भान हुआ तो सर्व गुणों की पर्याय व्यापक पर्याय में भी अंशरूप सर्व का परिणमन हो गया। समझ में आया? आहाहा! यह तो रात्रि में प्रश्न हुआ था कि अकेला समकित है, समकित है। अकेला नहीं। समझ में आया? भाई! उसे अन्तर की पूँजी... पूँजी कहते हैं न? निधान... निधान... उसका कभी माहात्म्य आया नहीं। इसने निमित्त का माहात्म्य (किया)। संहनन ऐसा हो और मनुष्यदेह ऐसी हो और शुभराग ऐसा हो और धूल ऐसी हो। उसका माहात्म्य जिसे करनेयोग्य नहीं, उसका माहात्म्य किया। जिसका करनेयोग्य है, उसे छोड़ दिया। समझ में आया?

महाप्रभु चैतन्य अनन्त गुण में विभु नाम का एक गुण भगवान वर्णन करते हैं। समझ में आया? यह तो अनन्त गुण की प्रगट कैसे हो, उसका उत्तर आता है। भगवान आत्मा एक समय में आबाल-गोपाल देह में विराजमान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु में एक विभु नाम का गुण है। जैसे ज्ञान, दर्शन, आनन्द गुण है, उसमें एक विभु नाम का गुण है। तो सर्व गुण व्यापक एकसाथ रहते हैं। जब आत्मा शुद्ध ज्ञायक का भान हुआ तो उस विभु द्रव्य में व्यापक है, गुण में व्यापक है... भाई! ऐसा कहना है। सुनो! आत्मा में एक विभु गुण ऐसा है कि सर्व गुणों में व्यापक है। ऐसा गुण है तो जब गुणी का सम्यक् भान हुआ तो विभु नामक गुण तीनों में परिणम गया (-व्याप्त हो गया)। विभु नामक गुण द्रव्य में है, गुण में है। दृष्टि हुई तो पर्याय में भी विभुगुण व्यापक हो गया। तो जितने गुण है, उतनी पर्याय की प्रगटता के अंश में विभुगुण भी व्यापक हो गया। आहाहा! समझ में आया?

दुनिया कहती है कि विभु अर्थात् क्षेत्र से सर्वव्यापक। ऐसा नहीं। समझ में आया? एक आत्मा सर्वव्यापक वेदान्त कहता है, ऐसा है ही नहीं। क्यों क्यों नहीं है? यह सिद्धान्त है कि अन्तर में आत्मा में एकाग्र होना हो तो ऐसे एकाग्र होता है। ऐसे एकाग्र नहीं होता। तो जितने क्षेत्र में वह मौजूद है, उतने क्षेत्र में वह एकाग्रता करता है। समझ में आया? नरशीभाई! समझ में आया या नहीं इसमें? यह वेदान्त से अलग क्या है। वापस दूसरे कहे, यह तो वेदान्त जैसी बात है। वेदान्त में ऐसा है ही नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ऐसा का ऐसा अभी निर्णय किये बिना... समझ में आया?

भगवान आत्मा इतने क्षेत्र में और जितने में सब अनन्त गुण हैं, उतने में अन्तर एकाग्र होता है। उसका अर्थ यह हुआ कि जिसमें एकाग्रता करता है यहाँ, उतने क्षेत्र में अनन्त गुण रहते हैं। शरीर, वाणी में वे गुण व्यापते नहीं। शरीर, वाणी को स्पर्श ही नहीं करते हैं। भगवान आत्मा ऐसे एकाग्र होता है। एक अग्र। एक को अग्र अर्थात् मुख्य करके एकाग्र हो। एक को अग्र अर्थात् मुख्य करके एकाग्र हो तो यहाँ यह दिखता है कि

इतने क्षेत्र में ही वह है। और इतने क्षेत्र में अनन्त गुण हैं। तो इतने क्षेत्र में विभु नाम का गुण सर्व गुण में व्यापक है। इतने क्षेत्र में जब एकाग्र हुआ, एक को मुख्य करके एकाग्र हुआ तो सब गुण उसकी पर्याय में निर्मल होकर आंशिक प्रगट हुए, विभु गुण के कारण से। समझ में आया? आहाहा! एक गुण परिणमन में शुद्ध हो और दूसरा कोई आंशिक शुद्ध न हो तो विभु नाम का गुण ही सिद्ध नहीं होता। सेठी! समझ में आया? अरे! आत्मा की प्रतीति करो, प्रतीति करो। परन्तु आत्मा क्या है? किसकी प्रतीति? वह प्रतीति ऐसी नहीं कि ऐसा का ऐसा मानो। वह तो अनुभव करके प्रतीति करना।

अन्तर भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्यधातु अनन्त गुण की राशि—पुंज, उसे ध्येय बनाकर जब पर्याय में सम्यग्दर्शन दशा हुई तो उस समय अनन्त गुण में विभु व्यापक गुण है, तो एक गुण में अनन्त गुण है तो पर्याय में जब सम्यग्दर्शन, ज्ञान प्रगट हुए तो अनन्त गुण की एक समय की व्यक्तता अंश व्यापक होकर विभु नाम का गुण द्रव्य, गुण और पर्याय में व्याप्त हो गया। समझ में आया? कठिन बात, भाई! पाटनीजी!

अब कहते हैं कि जब ऐसा हुआ तो कोई पर्याय में—पर्याय में कमी है या नहीं? राग है या नहीं? या पूर्ण हो गया? पूर्ण स्वरूप का तो आश्रय लिया। समझ में आया? परन्तु आश्रय लिया, उसमें पूर्ण आश्रय लिया है या कम आश्रय है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मुझे दूसरा कहना है। अपूर्ण आश्रय है अभी। पूर्ण का आश्रय, परन्तु अपूर्ण आश्रय है। समझ में आया? सोमलचन्दजी! समझ में आया?

भगवान! एक समय में अनन्त गुण व्यापक स्वरूप प्रभु (विराजता है)। उस पूर्ण का आश्रय लिया, परन्तु आश्रय अभी पूर्ण हुआ ही नहीं। पूर्ण द्रव्य का आश्रय लिया परन्तु पूर्ण आश्रय यदि हो जाये तो केवलज्ञान हो जाये। समझ में आया? पहले तो कहा कि पूर्ण का आश्रय लिया। परन्तु कितना आश्रय लिया? जितना सम्यग्दर्शन आदि अनन्त गुण की व्यक्तता अंश का परिणमन हुआ, उतना आश्रय लिया। आश्रय पूर्ण का है, परन्तु अभी पूर्ण आश्रय नहीं है। पूर्ण का आश्रय है, परन्तु पूर्ण आश्रय नहीं है।

लालचन्दजी! भगवान! यह बारहवीं गाथा में कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा की योग्यता बिना किस प्रकार से समझ में आये? सेठी! हमारे छोटे सेठी तो यहाँ पड़े रहते हैं। आहाहा! सुनो! यह वस्तुस्थिति ऐसी है। यह कोई बनी बनायी कल्पना नहीं। चीज़ ही ऐसी है। भगवान सर्वज्ञ ने जैसी चीज़ है, वैसी देखी, देखी वैसी कही, कही वैसी है। समझ में आया? सर्वज्ञ ने कहीं कोई वस्तु को बनायी नहीं।

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण प्रभु, उस पूर्ण का आश्रय लिया, ध्येय किया, ज्ञेय किया, अवलम्बन लिया तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि सब गुण का अंश प्रगट हुआ। परन्तु पूर्ण आश्रय नहीं, तब तक अन्दर अपूर्ण दशा पर्याय में है। यह लॉजिक से-न्याय से तो बात चलती है। यह कहीं घचड़मचड़ की बात नहीं। न्यायमार्ग भगवान का है। समझ में आया? तो जितना पूर्ण का पूर्ण आश्रय नहीं लिया, उतनी पर्याय में अशुद्धता, रागादि, अल्प शुद्धता, रागादि का भाव मौजूद है। समझ में आया? तो बारहवीं गाथा में कहा कि वह व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। जितना पूर्ण का आश्रय कम है, उतनी पर्याय में शुद्धि कम है। जितनी शुद्धि कम है तो साथ में अशुद्धता भी है। अभी साधकभाव पूरा नहीं हुआ तो बाधकभाव रागादि, शुभयोग आदि है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान पूर्ण प्रभु का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, स्वरूपाचरण, आनन्द का अंश, शान्ति-चारित्र, स्वरूपाचरण में शान्ति, शान्ति का अंश भी आया, आनन्द का अंश आया, स्वच्छता का अंश आया, प्रभुता का आया। सर्व गुण में कोई गुण पृथक् नहीं रहता। तो परिणमन में भी सब गुण एकसाथ (परिणमते हैं)। गुण परिणमते हैं तो पर्याय परिणमती है, ऐसा नहीं। द्रव्य परिणमता है तो पर्याय परिणमती है, ऐसा है। समझ में आया? गुण कोई भिन्न नहीं। पूरा द्रव्य परिणमता है। प्रवचनसार में है न? भाई! द्रव्य परिणमता है, ऐसा पाठ है। उसका हेतु है। गुण अकेला भिन्न कहाँ से परिणमे? समझ में आया? प्रवचनसार में है। द्रव्य पूरा एक स्वरूप की दृष्टि हुई तो पूरा

द्रव्य परिणमा। पूरा द्रव्य (परिणमने पर) वर्तमान पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि अनन्त गुण की पर्याय आंशिक शुद्धरूप हुई। तो आंशिक अशुद्धरूप से भी रहा। बस, उसे जानना, इसका नाम व्यवहारनय है। समझ में आया? सेठी! इसके लिये यह बारहवीं गाथा है।

बारहवीं गाथा में ऐसा नहीं कि राग आया, वह आदरणीय है या अल्प अशुद्धता है और अल्प शुद्धता है, वह आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा यहाँ नहीं कहना है। आश्रय तो जो त्रिकाल है, उसका ही कायम आश्रय लेना। सम्यग्दृष्टि का निरन्तर ध्येय द्रव्य के ऊपर के लक्ष्य से मुख्य में निश्चय का लक्ष्य कभी नहीं छूटता। सम्यग्दृष्टि का लक्ष्य मुख्य ऐसा निश्चय त्रिकाल ध्रुव, उसकी रुचि कभी निरन्तर में नहीं छूटती। कभी दृष्टि में पर्याय आ जाये, मुख्य हो जाये और द्रव्य गौण हो जाये, ऐसा कभी सम्यग्दृष्टि को नहीं होता। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को शुभराग मुख्य हो जाये और द्रव्य का ध्येय गौण हो जाये, (ऐसा) लोग कहते हैं न? जैसे त्रिकाल द्रव्य भूतार्थ है तो इस अपेक्षा से पर्याय असत्यार्थ -अभूतार्थ है। तो हम कहते हैं कि पर्याय से पर्याय भूतार्थ है और पर्याय की अपेक्षा से द्रव्य अभूतार्थ है। ऐसा कहते हैं। राजमलजी! यह वकील सब ऐसे कानून निकाले। समझ में आया? समाचारपत्र में आया है, समाचारपत्र में आ गया है। पुस्तक भी यहाँ है। जब तुम ऐसा कहो, भगवान ने ऐसा कहा कि द्रव्य भूतार्थ है। वस्तु सत्यार्थ है, पर्याय असत्यार्थ है। तो त्रिकाल की अपेक्षा से पर्याय अभूतार्थ असत्यार्थ बराबर है। परन्तु पर्याय जब सत्य है तो पर्याय सत्यार्थ है, इस अपेक्षा से द्रव्य असत्यार्थ है। अरे... भगवान! ऐसा कभी नहीं होता। अरे! आहाहा! पाटनीजी! अनेकान्त किया उसने। अनेकान्त किया। आहाहा! भाई! ऐसा अनेकान्त नहीं होता।

भगवान आत्मा द्रव्य शुद्ध चैतन्य की मुख्य दृष्टि तो कभी हटती नहीं और यदि मुख्य की दृष्टि गयी और पर्याय, राग के ऊपर दृष्टि हुई तो सम्यग्दर्शन रहता नहीं। समझ में आया? पर्यायदृष्टि वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? रामस्वरूपजी! समझ में आया? बड़ी बात है, भाई! मूल सम्यग्दर्शन की बात ही सूक्ष्म है। कहाँ गये अपने बनारसीदासजी! बाहर बैठे हैं? समझ में आया? देरी से आये। थोड़े देरी से आये। समझ में आया? देखो! विषय कैसा निकल गया। कहाँ से कहाँ आया! आहाहा!

यहाँ तो १२वीं गाथा में पर्याय को व्यवहारनय से जानना कहा, उसका प्रयोजन सिद्ध करने के लिये यह स्पष्टीकरण है। समझ में आया? कोई ऐसा कहे कि देखो! जानने में पर्याय को गौण करके द्रव्य को मुख्य किया। तो किसी समय द्रव्य को गौण करके पर्याय को मुख्य करना। यह जानने की अपेक्षा अलग है। जानने की अपेक्षा अलग, कथन की अपेक्षा अलग। श्रद्धा की अपेक्षा दूसरी है। समझ में आया? श्रद्धा की अपेक्षा में जो त्रिकाल मुख्य वस्तु है, वही निश्चय कभी श्रद्धा-ज्ञान में से हटती नहीं। और मुख्य की निश्चय दृष्टि हट जाये तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। समझ में आया? इसलिए त्रिकाल भगवान आत्मा सत्यार्थ है, इस अपेक्षा से पर्याय असत्यार्थ कही। तो पर्याय सत्यार्थ है, इस अपेक्षा से द्रव्य असत्यार्थ हो जाता है, ऐसा कभी नहीं होता। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु द्रव्य असत्यार्थ कहाँ से हुआ? द्रव्य है ही नहीं? आश्रय करनेयोग्य चीज़ रही नहीं?

यहाँ तो इतना सिद्ध करना है... यह तो चौदहवीं गाथा में भी सिद्ध किया है— भूतार्थ। व्यवहारनय से भूतार्थ है। समझे न? चौदह में तो स्पष्ट भूतार्थ है। तेरहवें में नौ तत्त्व भूतार्थ है। नय, निक्षेप, प्रमाण से विचार करना, वह भूतार्थ है। परन्तु अन्तर स्वरूप में एकाग्र होने से वह नय, निक्षेप, प्रमाण के सब विचार अभूतार्थ हैं। परन्तु वापस ऐसा नहीं कि नय, निक्षेप, प्रमाण भूतार्थ है, उस अपेक्षा से त्रिकाल द्रव्य अभूतार्थ है। समझ में आया? भारी झगड़ा, भाई! मूल चीज़ की खबर नहीं न! उस चीज़ का मूल मध्य क्या है, अन्दर मध्य ध्रुव क्या है, उसकी खबर बिना सब बात करे तो शास्त्र के अर्थ भी उल्टे करे।

कहते हैं कि भगवान आत्मा अपने शुद्ध द्रव्यस्वरूप का ध्येय, रुचि का परिणमन कभी छूटता नहीं। और पर्याय की मुख्यता सम्यग्दृष्टि को कभी होती नहीं। चौथे गुणस्थान से, हों! कोमलचन्दजी! ध्येय पकड़ा, आश्रय लिया पूर्ण आश्रय नहीं किया तो पर्याय में शुद्धता की कमी रही और शुद्धता की कमी है तो अशुद्धता होती है। शुभराग साथ में होता है। सम्यग्दृष्टि को भी पूजा का, भक्ति का, प्रभावना का ऐसा राग आता है।

पंचम गुणस्थानवाले को भी बारह व्रत का विकल्प, भक्ति, पूजा, दान, षट्कर्म नहीं आते ? देवदर्शन, गुरु पूजा ऐसा शुभभाव पंचम गुणस्थान में ध्येय को मुख्य में रखा है, दृष्टि का विषय ध्येय कभी छूटता नहीं। परन्तु पर्याय में ऐसा षट्कर्म का भाव आता है, वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। जानना चाहिए कि इतना शुभ है, इतनी अशुद्धता है और इतनी शुद्धता की कमी है। ऐसा जाना हुआ, आदर किया हुआ, ऐसा नहीं। चरणानुयोग के कथन आते है कि तुम व्यवहार करो, ऐसा भी आता है। समझ में आया ? करो। परन्तु निश्चय में यह करना, ऐसा नहीं आता। इसका अर्थ ऐसा नहीं। इसका अर्थ ऐसा है कि अपनी पर्याय में अशुद्धता है, शुद्धता में कमी है तो ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। आता है उसे करो, ऐसा व्यवहारनय चरणानुयोग में कहता है। समझ में आया ? यह स्पष्टीकरण हुआ।

एक तो द्रव्य की दृष्टि हुई तो एक ही गुण की पर्याय प्रगट हुई, ऐसा नहीं। व्यापक है इसलिए। दूसरा, द्रव्य को भूतार्थ कहा तो पर्याय को अभूतार्थ कहा। तो पर्याय को भूतार्थ कहो तो द्रव्य अभूतार्थ हो जाता है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? १३, १४, १५ सर्वत्र बहुत लिया है। कर्म का सम्बन्ध है, कर्म का सम्बन्ध है, वह व्यवहारनय से निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, वह भूतार्थ है। है। जल का दृष्टान्त लिया न ? जल। जल में कमलिनी का पत्र पड़ा है। कमलिनी का पत्र ऐसे जल से देखो तो सम्बन्ध है, ऐसा दिखता है। ऐसा है। परन्तु कमलिनी (पत्र) के स्वभाव से देखो तो जल को वह कभी स्पर्शा ही नहीं। समझ में आया ? इसी प्रकार भगवान आत्मा कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से बन्धपर्याय से देखो तो है, निमित्त बन्ध है। पर्याय का लक्ष्य पर में है, इतना है। है इतना। परन्तु वह लक्ष्य छोड़ दो, अकेला अबद्धस्पृष्ट ज्ञायकमूर्ति शुद्ध ध्रुव चैतन्य जिसके स्वरूप में भावबन्ध और द्रव्यबन्ध है ही नहीं। जिसका स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... देखो तो स्वभाव कभी विपरीत हुआ नहीं, अपूर्ण रहा नहीं। अपूर्ण हुआ नहीं, विपरीत हुआ नहीं। एकरूप अबद्धस्पृष्ट है, ऐसी दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया ?

नारकी, मनुष्य आदि गति देखो तो अन्य-अन्य है। गति भी अन्य-अन्य है।

अन्य-अन्य गति की अपेक्षा से (देखो तो) भूतार्थ है। परन्तु अनन्य स्वभाव गति की पर्याय के अतिरिक्त एकाकार आत्मा को देखो तो अन्य अन्यपना है नहीं, अनन्यपना है। समझ में आया? ऐसे पर्याय में देखो, पर्याय में, तो अनियत पर्याय अनेक प्रकार की अवस्था षट्गुण हानि-वृद्धि आदि पर्याय में दिखती हैं अनेक पर्याय। इस अपेक्षा से है। परन्तु स्वभाव की दृष्टि से देखो तो अनियतपना है ही नहीं। नियत ही है। वह भूतार्थ ही है। अभूतार्थ नहीं।

इसी प्रकार गुणभेद से देखो भगवान विशेष से देखो, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द आदि विशेष प्रकार है। व्यवहारनय से वे हैं। स्वभाव की दृष्टि सामान्य को देखने से विशेष है नहीं। अभूताथ है। समझ में आया? पर्याय में देखो तो दुःख है। जैसे पानी-जल में अग्नि के निमित्त से उष्णता है। परन्तु स्वभाव की दृष्टि से देखो तो उष्णता-फुष्णता है ही नहीं। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा की वर्तमान पर्याय का लक्ष्य करो तो राग-द्वेष दुःख है, दुःख है। स्वभाव की दृष्टि से देखो तो उसमें दुःख-बुख है ही नहीं। समझ में आया?

ऐसा आत्मा पहले अनुभव में आया तो पर्याय में अशुद्धता है, उसे बराबर जानना, उसका नाम व्यवहार है। उस व्यवहारनय का स्पष्टीकरण करने के लिये भावार्थ में थोड़ा पण्डित जयचन्द्रजी लिखते हैं। समझ में आया? देखो!

भावार्थ :- लोक में... पहले दृष्टान्त देते हैं। **सोने के सोलहवान (ताव) प्रसिद्ध हैं।** सोने के सोलहवान ताप देते हैं तो सोलहवान सौ टंच का सोना हो जाता है। स्वर्ण। **पन्द्रहवेंवान तक उसमें चूरी आदि परसंयोग की कालिमा रहती है,...** पन्द्रहवान हो, वहाँ तक चूरी—मैल रहता है। ताँबा आदि का थोड़ा भाग रहता है। समझे? ताँबा का भाग होता है न? सोलहवान हो जाये तो पूर्ण हो गया। पन्द्रहवान में थोड़ा ताँबा आदि का चूरी का भाग रहता है। संयोग, संयोग, संयोग का भाव अन्दर रहता है। **इसलिए अशुद्ध कहलाता है;...** पन्द्रहवान तक सोना को अशुद्ध कहते हैं। **और ताव देते देते जब अन्तिम ताव से उतरता है,...** अग्नि का ताप देते हैं न? देते-देते अन्तिम सोलहवान हो जाये तो सोनी ढाल देता है। **अन्तिम ताव से उतरता है, तब वह सोलहवान या सौटंची**

शुद्ध सोना कहलाता है। यह तो सौ टंच हो गया। समाप्त। जैसा पूर्ण शुद्ध है, वैसी पर्याय भी शुद्ध हो गयी।

जिन्हें सोलहवानवाले सोने का ज्ञान, श्रद्धान तथा प्राप्ति हुई है, उन्हें पन्द्रहवान तक का सोना कोई प्रयोजनवान नहीं होता,... सोलहवान हो जाने के बाद फिर पन्द्रहवान है नहीं, भाई! इसलिए प्रयोजन नहीं, ऐसा कहते हैं। सोलहवान हो गया, फिर पन्द्रहवान रहा कहाँ? पूर्णिमा हो जाने के बाद चौदस रही कहाँ? समझ में आया? **पन्द्रहवान तक का सोना कोई प्रयोजनवान नहीं होता, और जिन्हें सोलहवानवाले शुद्ध सोने की प्राप्ति नहीं हुई है, उन्हें तब तक पन्द्रहवान तक का सोना भी प्रयोजनवान (जाननेयोग्य) है।** कि यह अभी पन्द्रहवान है। सोलहवान हुआ नहीं। ऐसा जानना प्रयोजनवान है। पन्द्रहवान को सोलहवान मान ले तो आगे शुद्ध करने का प्रयोग नहीं रहता। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रयोजवान जाननेयोग्य। चरणानुयोग के कथन से यह कथन है। द्रव्यानुयोग की कथनी यह है पर्याय में ऐसी अशुद्धता रहती है, उसे जानना, उसका नाम द्रव्यानुयोग से व्यवहारनय जाना कहा जाता है। चरणानुयोग में ऐसा है कि... देखो! यहाँ आयेगा, **जिन्हें सोलहवानवाले शुद्ध सोने की प्राप्ति नहीं हुई है, उन्हें तब तक पन्द्रहवान तक का सोना भी प्रयोजनवान है।** अर्थात् पन्द्रहवान तक जानना कि यह पन्द्रहवान है, सोलहवान नहीं। स्वर्ण है। स्वर्ण तो पूर्ण शुद्ध है। परन्तु स्वर्ण है, हों! कथीर नहीं। स्वर्ण पूर्ण है। परन्तु पर्याय में सोलहवान पूर्ण नहीं हुआ, पन्द्रहवान, चौदहवान है, वहाँ तक अशुद्धता है। समझ में आया? प्रयोजनवान है। वहाँ तक पन्द्रहवान जाना हुआ प्रयोजनवान है। पन्द्रहवान है, सोलहवान नहीं।

इसी प्रकार यह जीव नामक पदार्थ है,... भगवान आत्मा यद्यपि **पुद्गल के संयोग से...** देखो! कर्म के संग में **अशुद्ध अनेकरूप हो रहा है।** कर्म के संग में, कर्म से नहीं। समझ में आया? चूरी अर्थात् आत्मा स्वयं निमित्त के वश होकर, निमित्त के वश होकर। निमित्त वश करता नहीं। उसकी पर्याय का एक धर्म है। ४७ (नय) वर्णन किये हैं। प्रवचनसार में भगवान अमृतचन्द्राचार्य (ने किये हैं)। समझ में आया? नहीं

प्रवचनसार ? प्रवचनसार में साधक जीव के ४७ नय समकिती के वर्णन किये हैं, हों! उसमें एक (नय) ऐसा लिया है, देखो! ईश्वर (नय)। **आत्मद्रव्य ईश्वरनय से परतन्त्रता भोगनेवाला है।** ३४वाँ नय है। क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा... देखो! यह बारहवीं गाथा के साथ मिलान है। भगवान आत्मा... शुद्ध सोना तो है, सोना अर्थात् पूर्ण शुद्ध की दृष्टि तो हुई है। समझ में आया ? परन्तु पर्याय में अशुद्धता रही है, वह कैसे रही है ? कि **ईश्वरनय से परतन्त्रता भोगनेवाला है, धाय की दुकान पर दूध पिलाये जानेवाले राहगीर के बालक की भाँति।** बालक का दृष्टान्त दिया न ? बालक होता है न। राहगीर कोई ऐसी महिला हो। तो दूध की आवश्यकता खड़ी हुई और उसे दूध (न आता हो) तो धाय की दुकान पर दे कि इसे दूध पिलाये।

इसी प्रकार भगवान आत्मा अपनी पर्याय में पूर्ण शुद्धता नहीं तो पर्याय में निमित्ताधीन अशुद्धता होने का पर्याय का धर्म है। गुण धर्म नहीं। उसका क्षणिक धर्म है, इसी प्रकार भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने ४७ नय में कहा है। पर के वश होता है तो ईश्वरनय इसमें है। अर्थात् पराधीन होने का अपनी पर्याय में धर्म है। पर पराधीन करता है, ऐसा नहीं। धन्नालालजी! आहाहा! तथा गुण धर्म नहीं। गुण ऐसा पराधीन हो, तब तो कभी पराधीनता छूटे नहीं। एक समय की अवस्था में गणधरदेव भी चार ज्ञान, चौदह पूर्व जिन्होंने अन्तर्मुहूर्त में रचे, वे गणधरदेव भी ध्रुव की दृष्टि में एकाकार होने से दर्शन, ज्ञान, चारित्र हुए, परन्तु अपने में जब पंच महाव्रत आदि विकल्प जो है, उस विकल्प को ऐसा जानते हैं कि ईश्वरनय, मैं पर के आधीन हुआ हूँ तो मेरी पर्याय में इतनी मलिनता है। ऐसा गणधरदेव श्रुतज्ञान से पराधीनता की पर्याय में अपने से अपने में है, ऐसा जानते हैं। समझ में आया ? गणधरदेव ऐसा कहते हैं कि हमारी पर्याय में जितनी अशुद्धता रही है, वह निमित्त के आधीन हमारी पर्याय हमारे पुरुषार्थ से होती है। अमरचन्दजी! यहाँ ४७ नय हैं, वह श्रुतज्ञान की बात है। नय प्रज्ञापन नामक पुस्तक बाहर प्रकाशित हो गया है। परन्तु वह गुजराती होगा, हिन्दी में नहीं होगा। हिन्दी आ गया ? तुम्हारी ओर से हिन्दी आ गया, नहीं ? नहीं आया ? अच्छा। आत्मप्रसिद्धि हिन्दी में आ गयी न ? समझ में आया ? ओहोहो!

गणधरदेव छठवें-सातवें गुणस्थान में जब झूलते हैं, तब कहते हैं कि हमारी

दृष्टि तो द्रव्य के ऊपर पूर्ण शुद्ध परिणमन के ऊपर ही पड़ी है। तथापि हमारी पर्याय में भगवान को वन्दन करने का विकल्प आता है, पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, अट्ठाईस मूलगुण का राग है, वह क्या चीज़ है? पर्याय में अंश धर्म ऐसा है। पर के आधीन होना, वह अपने धर्म के कारण से है। तो व्यवहारनय ऐसा जानता है कि पर्याय में इतना पराधीन होने की मेरी योग्यता है और पराधीन हुआ हूँ, ऐसा व्यवहारनय जानता है। समझ में आया? देखो! ईश्वर (नय)।

आत्मद्रव्य ईश्वरनय से परतन्त्रता भोगनेवाला है। ऐसा पाठ है। मैं एक स्वतन्त्र हूँ। पर के वश न होऊँ, स्व वश होऊँ, ऐसा भी उस समय में एक धर्म है। उस समय में परवश होना, वह भी मेरी पर्याय का धर्म है और उसी समय पर के वश न होऊँ, स्वभाव के आश्रय से, वह भी मेरा अनिश्चर धर्म है। गणधरदेव ऐसा कहते हैं कि हम भी ऐसा मानते हैं और जानते हैं। अमरचन्दभाई! यह कहे कि नहीं, नहीं। हमारे तो कर्म के कारण विकार हुआ, कर्म के कारण विकार हुआ। गणधर इनकार करते हैं और तू कहता है कि कर्म के कारण से हुआ, यह कहाँ से आया? समझ में आया? गणधर भगवान कहते हैं कि हम श्रुतज्ञानी हैं, हम केवलज्ञानी नहीं हैं तो हमारी पर्याय में जरा रागादि है, तो हम पर्याय में ऐसा जानते हैं कि निमित्ताधीन हमारी पर्याय हुई है। इसलिए हमारी पर्याय में विकार है, वह हमें जाना हुआ प्रयोजनवान है। समझ में आया?

४७ नय और ४७ शक्तियाँ। सुडतालीस कहते हैं तुम्हारे में? क्या कहते हैं? सैंतालीस। यह दो ग्रन्थ ऐसे हैं... ४७ शक्ति का वर्णन बराबर शान्ति से वाँचे और विचारे तो उसमें सब स्पष्टीकरण आ जाते हैं। समझ में आया? कल कोई कहता था, एक ४७ नय और ४७ शक्ति और एक कुछ कहा था, मोक्षमार्ग किरण। कल कोई (एक व्यक्ति) कहता था। ताराचन्दजी कहते थे। नहीं? सागरवाले ताराचन्दजी कल गये न? वे कहते थे। यह दो वाँचे। नय प्रज्ञापन और आत्मप्रसिद्धि। तीसरा कुछ कहा। मोक्षमार्ग किरण या कुछ (कहा था)। ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव। तीन वाँचे तो उसमें सब स्पष्टीकरण है। परन्तु वाँचना भी अपनी दृष्टि से है, जो माना है, उस दृष्टि से उसे देखे।

यहाँ कहते हैं कि जब तक जीव को परद्रव्य के संयोग से... यह आया न?

अशुद्ध अनेकरूप हो रहा है। भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध नहीं हुआ। अपनी पर्याय में केवलज्ञान पूर्ण शुद्धि नहीं हुई, तब तक द्रव्य की दृष्टि होने पर भी पर्याय में पुद्गल के संयोग से। स्वभाव का पूर्ण आश्रय यदि हुआ हो तो पुद्गल का संग करने की पर्याय भी नहीं होती। क्या कहा? अपना ध्रुव पूर्ण स्वभाव का यदि पूर्ण आश्रय ले लिया हो तो निमित्त का संग करने की पर्याय उसमें रहती ही नहीं। भाई! आहाहा! परन्तु जब तक भगवान आत्मा अपने पूर्ण स्वरूप के प्रति पूर्ण आश्रय का कार्य नहीं किया, तब तक उसे पुद्गलकर्मजन्य, पुद्गल के संग में आधीन होकर संयोगीभाव उसमें उत्पन्न होता है। स्वभावभाव नहीं, परन्तु संयोगीभाव। तो कहते हैं, **पुद्गल के संयोग से अशुद्ध अनेकरूप हो रहा है।** शुभ-अशुभ प्रकार, विकल्प अनेक प्रकार के होते हैं। अपनी पर्याय में पूर्ण आश्रय नहीं तो निमित्त के आश्रय के वश होकर (अशुद्ध हो रहा है), जो ईश्वरनय कहा, वह सम्यग्दृष्टि की यह बात है। समझ में आया? ओहोहो! निश्चय और व्यवहार में भारी गड़बड़ कर डाली। बनारसीदास कहते हैं न? निश्चयनय और व्यवहारनय से भरमाया है। बनारसीदास। भाई! यह व्यवहार अनेकरूप पर्याय को जानता है। और दृष्टि एकरूप भगवान को देखती है। समझ में आया? जब तक पूर्ण केवलज्ञान न हो तो ऐसे दो प्रकार पड़े बिना रहते नहीं।

कहते हैं कि सोना जैसे सोलहवान नहीं हुआ, सौ टंच कहते हैं न? तो वहाँ तक उसे चूरी का सम्बन्ध है। इसी प्रकार भगवान आत्मा निज पूर्ण ध्रुव के प्रति पूर्ण आश्रय लेकर पूर्ण शुद्धता केवलज्ञान की नहीं हुई, तब तक स्वद्रव्य का आश्रय होने पर भी निमित्त के आश्रय में थोड़ी अशुद्धता के अनेक प्रकार उत्पन्न होते हैं। आहाहा! समझ में आया? अपने कारण से, हों! पर के कारण से नहीं। निज प्रभुता, निज प्रभुता पूर्ण प्रभुता के आश्रय से पूर्ण प्रभुता प्रगट की नहीं तो अपनी पूर्ण प्रभुता का पूर्ण आश्रय लिया नहीं तो अपनी पर्याय में इतनी निमित्ताधीन की पामरता उत्पन्न होती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुद्ध... अशुद्ध। समझ में आया? यहाँ तो संयोगीभाव अशुद्ध में है। यहाँ तो स्वभाव के संयोग से पूर्ण जो होना चाहिए, वह पूर्ण है नहीं। यदि

पूर्ण हो गया तो पूरा हो गया। शुद्ध हो गया, केवलज्ञान। ऐसे परमात्मा अपना निज स्वरूप पूर्ण स्वरूप का आश्रय लिया, सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि हुए, परन्तु पूर्ण आश्रय नहीं तो थोड़ा निमित्त का आश्रय लिया। निमित्त के वश हुआ। निमित्त संयोग के वश **अशुद्ध अनेकरूप हो रहा है।** इस ओर एक है, इस ओर अशुद्धता अनेकरूप हो रही है। समझ में आया?

उसका, समस्त परद्रव्यों से भिन्न,... उसके, सर्व परद्रव्यों से भिन्न। यह पहले द्रव्य का कहते हैं। **एक ज्ञायकत्वमात्र का-ज्ञान, श्रद्धान तथा आचरणरूप प्राप्ति-यह तीनों जिसे हो गये हैं,...** देखो! पहले तो कहा, पुद्गल के संयोग से अशुद्धता अनेक प्रकार से है, इतना। अब, यह जीव समस्त परद्रव्यों से भिन्न एक ज्ञायकस्वभाव। परद्रव्य का सर्व लक्ष्य छूटे, एक ज्ञायकभाव का लक्ष्य करके, एक ज्ञायकभाव का आश्रय करके। कैसा ज्ञायकभाव? **एक ज्ञायकत्वमात्र का-ज्ञान, श्रद्धान...** भगवान पूर्ण स्वरूप का ज्ञान हुआ, उसका श्रद्धान हुआ **तथा आचरणरूप प्राप्ति...** जो स्थिरतारूप पूर्ण आश्रय करके प्राप्ति हो गयी। **यह तीनों जिसे हो गये हैं, उसे पुद्गलसंयोगजनित अनेकरूपता को कहनेवाला अशुद्धनय कुछ भी प्रयोजनवान (किसी मतलब का) नहीं है;...** अर्थात् उसे पूर्ण आश्रय करके पूर्ण पर्याय हो गयी, उसे कर्म के संयोग से अशुद्धता उत्पन्न होती नहीं तो प्रयोजनवान नहीं, ऐसा कहा। समझ में आया?

उन्हें तो... उन्हें अर्थात्? जिन्हें निज भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप का आश्रय करके ज्ञान, श्रद्धान प्रगट किये और आश्रय करके पूर्ण चारित्र-आचरण शान्ति-चारित्र प्रगट हो गये। तो उस दशा में कर्म के संयोग में अनेक प्रकार की विकृत दशा थी, वह है नहीं। समझ में आया? है नहीं। **उसे पुद्गलसंयोगजनित अनेकरूपता को कहनेवाला...** व्यवहारनय **अशुद्धनय कुछ भी प्रयोजनवान...** अर्थात् है ही नहीं। है ही नहीं अर्थात् प्रयोजन है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी पर्याय का धर्म परवश करता है। कर्म परवश नहीं कराते। यह कहा न, दो-तीन बार कहा। गणधर भी ऐसा मानते हैं कि हमारी पर्याय में

स्व के आश्रय का पुरुषार्थ अल्प है तो पर के आश्रय में पराधीन हो जाते हैं। अनेकरूप विकृत होते हैं। अपनी पर्याय के कारण से, हों! पर के कारण से नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह ११ और १२ दो गाथा समझ ले तो पूरे जैनदर्शन का सार समझ लिया। इसमें बड़ी गड़बड़ है। १२वीं गाथा (आवे वहाँ आधार दे), व्यवहार प्रयोजनवान है, व्यवहार प्रयोजनवान है। परन्तु प्रयोजन का अर्थ क्या? सोलहवान सोनावाले को पन्द्रहवान का प्रयोजन नहीं। उसका अर्थ क्या-कि पन्द्रहवान है ही नहीं। समझ में आया? तो वापस वे कहें, पन्द्रहवान अंगीकार करना, अंगीकार करना। ...भाई! ऐसा अर्थ करते हैं। कहाँ गये मोटाभाई? ये बैठे। समझ में आया? यह सब धीरे-धीरे समझना पड़ेगा, हों! जाना हुआ प्रयोजनवान। प्र-विशेष योजना। निश्चयनय के साथ व्यवहारनय को जोड़ना कि यह ऐसा है। नय प्रयोजनवान कहा न? जानना प्रयोजनवान कहा न? जाना हुआ प्रयोजनवान उस काल में है। ऐसा अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय करके निकालते हैं, वह अलग बात है। यहाँ तो है, इतना जानना। बस। ज्ञान करने की बात है। फिर निकालना तो स्वभाव के आश्रय से निकलता है। जितना स्वभव का आश्रय करता है, निकल जाता है। वह दूसरी बात है। समझ में आया? यह तो पहले कहा न? कि जितना स्व का आश्रय पूर्ण नहीं हुआ तो पूर्ण शुद्धता हुई नहीं। इतना आश्रय नहीं तो पर्याय में पर का आश्रय हो जाता है। बस, उसे जानना, इसका नाम व्यवहारनय। आहाहा! आचार्य का हृदय-हार्द यह है। समझ में आया? पाटनीजी! भाई! यह सब थोड़ा-थोड़ा ले जाना, हों! सच्चा।

मुमुक्षु : इसके लिये तो आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आये हैं, लो! सच्ची बात है। बात तो सच्ची है। वहाँ व्यापार-धन्धा छोड़कर इतनी दूर से आये। '...कोट' कहाँ आया? क्या कहा? अपने आप वाँचे तो कहा न, वाँचने की दृष्टि, इस दृष्टि से वाँचना चाहिए। क्योंकि आचार्य ने पहले ऐसा सिद्ध किया कि व्यवहार असत्यार्थ है, निश्चय सत्यार्थ है। तो उस निश्चय सत्यार्थ की

दृष्टि रखकर व्यवहार को असत्यार्थ कहा था, वह व्यवहार है, वह जाननेयोग्य है, ऐसा यहाँ कहा। वहाँ असत्यार्थ कहा था तो व्यवहार है, वह यहाँ सिद्ध किया। वरना व्यवहार है ही नहीं—ऐसा है ही नहीं।

एक तो पहली बात यह है कि जब भूतार्थ भगवान आत्मा पूर्णानन्द का आश्रय लिया तो सम्यग्दर्शन हुआ। सम्यग्दर्शन हुआ तो साथ में श्रुतज्ञान हुआ। श्रुतज्ञान को प्रमाणज्ञान कहते हैं। प्रमाणज्ञान हुआ तो श्रुत विकल्पा नया हुआ। श्रुत का भेद वह नय। उस भेद में दो नय हो गय—निश्चय और व्यवहार। एक नय निश्चय अभेद को देखता है और एक नय वर्तमान अशुद्ध आदि पर्याय को देखता है। बस, यह दोनों का प्रमाणज्ञान हो गया। समझ में आया? अमरचन्दभाई! आहाहा!

किन्तु जहाँ तक शुद्धभाव की प्राप्ति नहीं हुई... पूर्ण पर्याय में। **वहाँ तक जितना अशुद्धनय का कथन है, उतना यथापदवी (जानना) प्रयोजनवान है।** यथापदवी। चौथे गुणस्थान में अनुभव हुआ, आनन्द आया। पूर्ण आनन्द नहीं, पूर्ण शान्ति नहीं, पूर्ण स्थिरता नहीं। इतनी अस्थिरता और इतना दु:ख है। अस्थिरता और उतना दु:ख है। वह है, उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है। अपूर्ण है, अपूर्ण है, पूर्ण हुआ नहीं। समझ में आया? आहाहा! **यथापदवी प्रयोजनवान है।** इस प्रयोजनवाले में गड़बड़ उठाते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा। अथवा करनेयोग्य है, करनेयोग्य है, ऐसा अर्थ करते हैं। भगवान! एक करनेयोग्य तो व्यवहारनय से कथन है। वह करनेयोग्य है, ऐसी दृष्टि हो तो द्रव्यदृष्टि रहती नहीं। समझ में आया? राग अशुद्धता कर्तव्य है, कर्तव्य है, करनेयोग्य है—ऐसी दृष्टि हो तो द्रव्यदृष्टि रहती नहीं। समझ में आया? और द्रव्यदृष्टि रही तो कर्तव्य है, ऐसा नहीं। परन्तु परिणमन है, ऐसा बराबर जाननेयोग्य है।

(प्रवचनसार में) ४७ नय में कर्तृत्वनय है। ४७ नय में एक कर्तृत्वनय है और अकर्तृत्वनय है। मुझे करनेयोग्य ठीक है, ऐसी बुद्धि नहीं। परन्तु परिणमन कमजोरी का राग का, अशुद्धता का है तो कर्तृत्वनय मेरी पर्याय में है, ऐसा गणधरदेव भी जानते हैं। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! कर्तव्य है, राग करनेयोग्य है, ऐसी बुद्धि नहीं

रहती परन्तु राग का परिणमन हुए बिना नहीं रहता। क्योंकि स्व का पूर्ण आश्रय लिया नहीं तो पर में निमित्त आदि का आश्रय हुए बिना रहता नहीं। तो वह अपनी पर्याय की योग्यता से पर के आधीन हुआ है। तो ऐसी अशुद्धता है, उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है। आदर करना, ऐसा नहीं। आदर करने का हो तो यहाँ भी आदर करना और उसका भी आदर करना, दो नय रहे नहीं। दो नय उपादेय हो तो अज्ञानी का भ्रम हो गया। दो नय उपादेय कहाँ से हुए? (यदि दोनों उपादेय हो तो) दो नय पड़े कैसे? दो भाग पड़े क्यों? दो भाग पड़े क्यों? एक नय का विषय अभेद, एक नय का विषय भेद। एक नय का विषय करने से आनन्द आता है, दूसरे नय का आश्रय करने से दुःख होता है। एक नय का विषय आदरणीय है तो दूसरे नय का विषय हेय है। एक नय के विषय में शुद्धता उत्पन्न होती है, व्यवहारनय से पर्याय में अशुद्धता है। अशुद्धता का फल बन्ध है, शुद्धता का फल बन्ध का अभाव है। दोनों नय का भाव अन्तर, फल अन्तर, दिशा में सब अन्तर है। यह आगे आयेगा। '**उभयनयविरोध्वंसिनि**'। यह बाद में आता है न? तुरन्त उसमें आता है। देखो! '**उभयनयविरोध्वंसिनि**' दो नय को विरोध है। दोनों नय में विरोध है। वरना दो नय हो कहाँ से? उस विरोध का स्यात् पद हल करता है। कि त्रिकाल वस्तु है, उसका आश्रय करना, वह निश्चय है। पर्याय में भेद रहता है, उसे जानना, उसका नाम व्यवहार है। निश्चय और व्यवहार दोनों साथ में रह सकते हैं। विरोध होने पर भी। समझ में आया? गजब भाई! इस १२वीं गाथा के भावार्थ में तो बड़ी तकरार उठी है।

पहले आचार्य महाराज ऐसा फरमाते हैं कि त्रिकाल परम सत्य ट्रेडमार्क—कि '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' त्रिकाल भगवान आत्मा का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। व्यवहार अभूतार्थ है, असत्यार्थ है। वहाँ असत्यार्थ कहा, आश्रय करनेयोग्य नहीं, ऐसा कहा, तो दूसरी जगह आश्रय करनेयोग्य कहे?

मुमुक्षु : झूठ बोलनेवाला....

पूज्य गुरुदेवश्री : झूठ बोलनेवाला.... यहाँ तो सन्त की बात है। सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आया, वह सन्त कहते हैं। समझ में आया?

यह आत्मा एक समय में भूतार्थ है। वही वस्तु है। पर्याय को अवस्तु कहा।

अवस्तु कहा। और वहाँ पर्याय को वस्तु कहकर आश्रय करनेयोग्य कहे ? कहा कि है सही, है सही, परन्तु जाननेयोग्य है। समझ में आया ? ११वीं गाथा में से व्यवहार उड़ा दिया था। व्यवहार अभूतार्थ है, असत्यार्थ है, झूठा अर्थ कहता है, अविद्यमान व्यवहारनय है। ऐसा कहा था। मुख्य का आश्रय लेने के लिये, आश्रय कराने के लिये (कहा था)। यहाँ कहा कि व्यवहारनय से इनकार किया था कि नहीं है, अविद्यमान है। तो कहते हैं कि है। पर्याय में अशुद्धता बाकी रही है, शुद्धता अल्प है। ऐसा है। है। है तो क्या करना ? जानना। जानना। आदरने-फादरने की बात है नहीं। चरणानुयोग के कथन में ऐसा आवे कि ऐसा करना, ऐसा करना। ऐसा आवे। समझ में आया ? परन्तु उसका वास्तविक अर्थ तो है, उसे जानना। उसका वास्तविक अर्थ यह है।

मुमुक्षु : प्रयोजनवान .... भूल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस प्रयोजनवान में भूल करते हैं। समझ में आया ? आहाहा!

जहाँ तक यथार्थ ज्ञानश्रद्धान की प्राप्तिरूप... अब स्वयं (स्पष्टीकरण करते हैं)। यहाँ तक तो टीका का भावार्थ आया। यहाँ तक तो ११ और १२वीं का सन्धि का भाव आया। अब पण्डित जयचन्द्रजी स्वयं जरा अपना भाव (कहते हैं)। इसमें है नहीं ऐसा। वहाँ तो सम्यग्दर्शनपूर्वक जो पर्याय में कमी रही, उसे जानना, वही सन्धि ११-१२ में की है। अब अज्ञानदशा में पहले सम्यग्दर्शन न हो तो क्या होता है, उसे क्या होता है, यह बात कहते हैं। पाठ की बात यहाँ पूरी हो गयी।

कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचन्द्राचार्य दोनों को जो कहना है, वह तो यहाँ पूरा हुआ। परन्तु यह तो सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ है, पश्चात् पर्याय में अपूर्णता है, उसे जानना। यह बारहवीं गाथा में आया। अब जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ, उसे कोई भाव होता है या नहीं ? कैसे (भाव) होते हैं, वह यहाँ समझाते हैं। आगे कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण कृष्ण १०, शनिवार, दिनांक - १०-०९-१९६६
गाथा - १२ प्रवचन - ४३

यह समयसार शास्त्र चलता है। इसकी १२वीं गाथा का भावार्थ। १२वीं गाथा में, ११वीं गाथा में कहा, उसकी सन्धि की है। अर्थात् क्या?

मुमुक्षु : सन्धि अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् क्या, कहाँ न अर्थात् क्या? कि ११वीं गाथा में ऐसा कहने में आया। महासिद्धान्त। ११वीं गाथा में जैनदर्शन का कहो, विश्वदर्शन का कहो, वस्तुदर्शन का कहो। यह महासिद्धान्त है कि व्यवहार, वह अभूतार्थ अर्थात् अविद्यमान अर्थात् असत्य है और निश्चय वह भूतार्थ अर्थात् विद्यमान अर्थात् सत्य है। कहा कि व्यवहार अभूतार्थ अर्थात् नहीं, अविद्यमान है। इसलिए विद्यमान ऐसा भगवान ध्रुव, एक समय की पर्याय बिना का तत्त्व। शरीर, वाणी, मन पर तो कहीं रह गये। उसकी एक समय की दशा में—पर्याय में—हालत में—एक ही अर्थ है सब, जो कुछ पुण्य-पाप के भाव (होते हैं), वह तो आस्रवतत्त्व में गये। उसका वर्तमान ज्ञान के क्षयोपशम की विकास की पर्याय, दर्शन की विकास की पर्याय, क्षयोपशम वीर्य की वह एक समय की पर्याय, वह भी अभूतार्थ में गयी। 'नहीं' ऐसे गयी। वह है नहीं। विद्यमान नहीं। क्यों? कि उसका आश्रय करने से जीव को प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। अर्थात् कि एक समय की पर्याय, राग और निमित्त, वह वास्तव में तो एक समय की पर्याय को ही अविद्यमान और असत्यार्थ कहकर त्रिकाल चैतन्य ज्ञायक ध्रुवस्वरूप है, उसका आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन होता है, इसलिए त्रिकाल ज्ञायक चैतन्य वही है। वही है। पर्याय नहीं, ऐसा कहा गया है। वजुभाई! जरा सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : वजुभाई....

पूज्य गुरुदेवश्री : वजुभाई वहाँ अभी सेठाई में पड़े हैं। इन्हें बहुत काम सब

धन्धा-फन्धा। बेचा तो कितने प्रकार पड़े, ऐई! कान्तिभाई! और अन्दर वापस सेठाई में रुकना तो पड़े न कहीं? रामजीभाई ने नहीं कहा? सेठाई छोड़ना कठिन, ऐसा जरा बोले थे।

यहाँ तो ऐसा कहना है कि एक समय का आत्मा किसे कहा आत्मा? कान्तिभाई! जरा सूक्ष्म बात है, हों! यह जैनदर्शन का मूल तत्त्व अनादि सनातन (तत्त्व है)। सन्त यह अनादि से कहते आये हैं, महाविदेह में कहते हैं, भरत में कहते हैं। तीनों काल में यह तत्त्व कहते हैं। यह आत्मा एक समय अर्थात् सेकेण्ड के असंख्य भाग में आत्मा में दो अंश हैं। एक वर्तमान विशेष पर्याय भाग भेदरूप अंश। और एक त्रिकाल अभेद ध्रुवरूप अंश। तो यहाँ दो का ज्ञान करना, वह प्रयोजन नहीं। दो का ज्ञान करना, वह प्रयोजन नहीं। प्रयोजन अपने को सुख की प्राप्ति हो, आनन्द की प्राप्ति हो, वह प्रयोजन है। आनन्द की प्राप्ति कहो या सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कहो, सब एक बात है। सम्यग्दर्शन प्राप्त हो अर्थात् कि आनन्द प्राप्त हो, अतीन्द्रिय आनन्द प्राप्त हो। यह इसका प्रयोजन है। तो यह प्रयोजन, सामान्य जो वस्तु एकरूप शुद्ध ध्रुव और एक समय की पर्याय है तो पर्याय के आश्रय से वह प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। और पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती; इसलिए उस पर्याय को वर्तमान पर्याय विद्यमान होने पर भी, 'वह नहीं, वह झूठी है, वह असत्य है'—कहकर उसका लक्ष्य छुड़ाया है। समझ में आया?

एक स्वरूप भगवान पूर्णानन्द का नाथ सहजानन्दमूर्ति कारणप्रभु, ध्रुव ज्ञायकभाव, उसे यहाँ विद्यमान है, सत्य है, सच्चा वह तत्त्व है, ऐसा कहकर उसे ही शुद्धनय कहा है, उसे ही सत्य वस्तु कहा है। उस सत्य का आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन होता है, इसलिए शुद्धनय का तत्त्व, वह सत्य है। व्यवहारनय का तत्त्व जो अवस्था, वह असत्य है। आश्रय लेनेयोग्य नहीं। उसके आश्रय से आत्मा के सुख की, शान्ति की प्राप्ति नहीं। इसलिए अवस्था—दशा को भी 'नहीं', झूठी है, खोटी है—ऐसा कहकर त्रिकाल चैतन्य ध्रुव का आश्रय कराया है। वजुभाई! आहाहा!

भगवान आत्मा एक समय में अनन्त-अनन्त गुण की खान, ऐसा एकरूप स्वरूप, उसे ही यहाँ सत्य कहा है। उसे सत्य कहा है और एक समय की दशा को असत्य कहा

है। समझ में आया? जैसे इस आत्मा की अपेक्षा से दूसरे आत्मायें और दूसरे द्रव्य असत्य है। उनकी अपेक्षा से सत्य है। परन्तु इसकी अपेक्षा से वे सब अद्रव्य हैं, अवस्तु हैं, अक्षेत्र हैं, अकाल हैं, अभाव हैं, अवस्तु है, इस अपेक्षा से वह वस्तु नहीं। समझ में आया? ऐसा जब परवस्तु को स्ववस्तु की अपेक्षा से जब अवस्तु कहा, तो यहाँ तो अब अन्तर में ले जाना है इसे। भगवान अन्तर आत्मा एक समय में शुद्ध है, वह वस्तु है और एक समय की पर्याय, वह अवस्तु है। आहाहा! जैनदर्शन की बात... समझ में आया?... सरिया डाले, गाँठ बाँधे। गांसडी समझे न? गाँठडी बाँधे। चारों ओर सरिया डालकर। सरिया समझे। गर्म धगधगते अन्दर। ऊपर मारे घण की चोट।

मुमुक्षु : शरीर को ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर को छूता नहीं। वह मूढ़ है। यहाँ शरीर है, वह मेरा माना, इसलिए उसे दुःख लगता है। समझ में आया? केसरीचन्दजी! है या नहीं? किस अपेक्षा से? कहा न! शरीर तो नहीं है। शरीर तो है ही नहीं आत्मा में। कर्म तो है ही नहीं आत्मा में। यह पुण्य-पाप विकार भी है नहीं आत्मा में। अब यहाँ तो एक समय की इसकी अपनी जो क्षयोपशम ज्ञान, क्षयोपशम दर्शन, क्षयोपशम वीर्य और अस्तित्व आदि गुण की वर्तमान पर्याय जितनी अनन्त है, उसे भी यहाँ तो कहते हैं कि नहीं... नहीं... नहीं। किस अपेक्षा से? अमरचन्दभाई! आहाहा! यह तो जैनदर्शन, बापू! सर्वज्ञ का तत्त्व है। यह कहीं ऐसे वाँचने से, पढ़ने से, रटने से समझ में आयो, ऐसा नहीं।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु ध्रुव परमात्मा अनन्त जिसके—परमात्मा के अन्तर ध्रुव में अनन्त परमात्मा जिसके गर्भ में, पेट में पड़े हैं। अन्दर गर्भ में अनन्त परमात्मा सिद्ध भगवान पड़े हैं। ऐसा एकरूप सामान्य ध्रुव ज्ञायक वह है। पर्याय नहीं। वस्तु विद्यमान है। पर्याय अविद्यमान है। ऐसा ११वीं गाथा में कहा है। ऐई! वजुभाई! आहाहा! कैसे? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा में, सर्वज्ञ से चली आयी हुई बात (कहते हैं)। स्वयं तो भावलिंगी सन्त थे, मुनि थे, महापरमेष्ठी आचार्यपद में सम्मिलित थे। भगवान के पास जाकर साक्षात् सुनकर, बहुत निर्मलता अपने में बढ़ाकर आने के बाद यह शास्त्र रचे हैं। समझ में आया? ...भाई! आहाहा

तब पुकार किया ११वीं गाथा में। अरे! सुनो आत्माओ! हम आत्मा वास्तव में निश्चय से, वास्तविक से, यथार्थ से उसे आत्मा कहते हैं कि जो शरीर तो नहीं, वाणी नहीं, कर्म नहीं, पुण्य-पाप के भाव, वे आत्मा नहीं। परन्तु एक समय की प्रगट दशा का अंश जो अनन्त गुण का निर्मल है, वह आत्मा नहीं। केसरीचन्दजी! वह आत्मा नहीं, वास्तविक आत्मा नहीं, सत्य आत्मा नहीं, सत् साहेब परमेश्वर प्रभु वह नहीं। आहाहा! वजुभाई! ऐसा है, बापू! एक समय की इसके अस्तित्व में हुई विशेषरूप दशा, विशेषरूप दशा वह वास्तविक आत्मा नहीं। आहाहा!

वास्तविक आत्मा उसे कहते हैं, ऐसा सन्त पुकार करते हैं, सर्वज्ञ की वाणी में यह आया है। वास्तविक आत्मा, सत्य आत्मा, विद्यमान आत्मा, अस्ति धराता तत्त्व, उसे हम कहते हैं कि जो ध्रुव एकरूप सामान्य स्वभाव चिदानन्द, उसे हम वास्तविक आत्मा कहते हैं। समझ में आया? कि जो वास्तविक आत्मा वस्तु है, उसका आश्रय करने से आत्मा को आनन्द की दशा प्रगट होती है। आनन्द के साथ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् आचरण का अंश, आनन्द सब सम्यग्दर्शन होने पर अनन्त गुण की निर्मल व्यक्त दशायें एक समय में साथ में प्रगट होती हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं (गाथा) ११वीं में ऐसा कहा था। तब अब वह पर्याय है या नहीं? तुमने इनकार किया था। पर्याय है ही नहीं। विद्यमान नहीं। झूठी, अभूतार्थ है, ऐसा कहा था। तो वह सर्वथा अभूतार्थ है या कुछ है या नहीं? अब १२वीं गाथा में स्पष्टीकरण करते हैं। कहते हैं, देख भाई! वस्तु तो त्रिकाल शुद्ध वह सत्य है। उसका आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन हुआ, अनुभव हुआ। आत्मा आनन्दमूर्ति है, ऐसा अनुभव हुआ। सम्यग्दर्शन होने पर आनन्द का स्वाद आया। समझ में आया? आनन्द का स्वभाव, उसका स्वाद आया। ज्ञायक के स्वभाव का ज्ञान का एक अंश प्रगट हुआ कि जो ज्ञायक को पकड़ सकता है। ज्ञायक में से वीर्य का एक अंश आया कि जो वस्तु के स्वरूप की निर्मलदशा को रच सकता है। समझ में आया?

तब कहते हैं कि पर्याय नहीं, ऐसा कहा था तो अब कहते हैं, भाई! नहीं, वह तो आश्रय लेने के लिये कहा था कि वह पर्याय नहीं। परन्तु अब पर्याय है। समझ में

आया ? चौथे गुणस्थान की दशा में वस्तु की दृष्टि का अनुभव हुआ। द्रव्य का त्रिकाल ध्रुव का आश्रय करके निर्विकल्प दृष्टि और निर्विकल्प वेदन और शान्ति हुई। तो अब कहते हैं कि वह पर्याय जो हुई, उसे क्या कहना ? त्रिकाली को तो आपने निश्चय कहा। तो यह है, उसे क्या कहना ? उसे शुभराग होता है, चौथे गुणस्थान में, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, उसे दान, दया का भाव तथा पंचपरमेष्ठी का बहुमान, ऐसा भाव होता है या नहीं ? और उस भाव के काल में शुद्धता की निर्मलता है या नहीं ? उसे क्या कहना ? आपने तो अकेले उसको सत् कहा... सत् कहा.... सत् कहा।

तब कहते हैं कि जब सम्यग्दर्शन हुआ, तब आत्मा का अनुभव होने पर सम्यग्ज्ञान हुआ। श्रुतज्ञान, भावज्ञान हुआ। भावज्ञान होने पर उस श्रुतज्ञान के अन्तर्भेद जो अवयव, श्रुतज्ञान अवयवी है तो उसके श्रुत विकल्पा नया। यह इसके दो भाग पड़ गये। एक नय त्रिकाल को देखता है निश्चय, तो एक नय वर्तमान दशा में शुभ रागादि है, उसे जानता है, उसे मानता है कि है। वह पर्याय है। उस पर्याय में अपूर्णता और राग है, वह जाना हुआ, व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहा! समझ में आया ? वल्लभदासभाई! आहाहा!

यह दृष्टि का विषय त्रिकाल चैतन्यप्रभु है। इसका भेद श्रद्धा करना या पर्याय की श्रद्धा करना, वह सम्यग्दर्शन नहीं। सम्यग्दर्शन का विषय तो ध्रुव चैतन्यप्रभु एक समय में परम स्वरूप अनन्त गुण का पिण्ड जिसे कारणपरमात्मा कहते हैं या कारणजीव कहते हैं या शुद्ध ध्रुव स्वभाव कहते हैं, उसका आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, स्वरूपाचरण हुआ, आनन्द का अंश हुआ, स्वच्छता का अंश हुआ। परमेश्वर जो पूर्ण है, उसमें से पर्याय में परमेश्वरता का अंश प्रगट हुआ। तो हुआ उसे कैसे जानना ? उसे जानना किस प्रकार ? कि हुई दशा को और राग रहे, उसे व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान, जानना चाहिए कि व्यवहार है। व्यवहारनय का विषय है। नहीं, ऐसा नहीं। एक ही निश्चयनय का विषय है और व्यवहार का विषय नहीं तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। समझ में आया ? और व्यवहारनय का विषय है, उसे आदरणीय माने तो निश्चय तत्त्व का आश्रय रहता नहीं तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

मुमुक्षु : .... उसे जानना।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, उसे जानना। है, उसे जानना है न! होवे उसे जानना है न! पर्याय में शुभराग नहीं? पर्याय में शुद्धता की अल्पता नहीं? है, उसे जानना या नहीं (उसे) जानना? तब तो ज्ञान खोटा हुआ। समझ में आया?

यह (गाथा) १२ में स्पष्टीकरण किया कि '**परमभावदरिसीहिं**' '**सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।**' परमभाव जिसे दृष्टि हो गयी है, जिसे स्थिरता की पूर्ण वीतरागता, केवलज्ञान हो गया है, उसे फिर अपूर्ण अवस्था व्यवहारनय का विषय उसे रहता नहीं। इसलिए '**सुद्धो सुद्धादेसो**' शुद्ध की आज्ञा करनेवाली, शुद्ध आत्मा का अनुभव करनेवाला, ऐसा शुद्धनय, भानेयोग्य '**णादव्वो**' अर्थात् भानेयोग्य है। आत्मा अखण्डानन्द को जानकर पर्याय में भानेयोग्य हो गया पूरा आत्मा। अब उसे व्यवहारनय रहा नहीं। परन्तु '**ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।**' परन्तु व्यवहार उसे कहा कि '**अपरमे ट्ठिदा भावे**' परम केवलज्ञान की दशा वर्तती नहीं, दृष्टि में भूतार्थ आ गया है, उसकी पर्याय में पूर्णता हुई नहीं, उस पर्याय को कहना क्या? समझ में आया? उस काल में वह व्यवहारनय जाना हुआ अवश्य का है। उस पर्याय का निषेध करे कि नहीं, तो शुद्धता पूर्ण हुई नहीं। समझ में आया? और शुद्धता पूर्ण मान ले तो दृष्टि मिथ्यात्व हो जाता है। और उस व्यवहार की पर्याय है, उसे आदरणीय माने तो यह आदरणीय रहता नहीं। और जाना हुआ न माने तो पर्याय की अस्ति नहीं, ऐसा हो जाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? अब यह तो तुम्हारा गुजराती सादा है। महिलायें हो न... बहिन सब हिन्दी समझते होंगे या नहीं? क्या होगा? ... क्या करे? परन्तु यह तो गुजराती है या नहीं? आज तो गुजराती स्पष्ट अपना काठियावाड़ी है।

मुमुक्षु : उमराला का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उमराला का है। बात सच्ची। समझ में आया? सादी भाषा में यह तत्त्व है।

कहते हैं कि भाई! भगवान ऐसा कहते हैं कि '**सुद्धो सुद्धादेसो**' १२ वीं गाथा। '**परमभावदरिसीहिं**' शुद्ध का अनुभव करनेवाला, शुद्धात्मा का ऐसा शुद्धनय वह परमपूर्ण

हो गया, उसे अब फिर अकेला शुद्धनय का अनुभव ही रहा, अकेला पूर्ण अनुभव। पर्याय रही नहीं अपूर्ण, राग रहा नहीं। तो अब राग है, उसे क्या करना? कि '**ववहारदेसिदा**' व्यवहार जाननेयोग्य है। '**देसिदा**' का अर्थ वहाँ कथन है। कथन का अर्थ वहाँ अर्थ में वाच्य जाना हुआ कहा है। वाच्य जाना हुआ कहा है कि व्यवहार जाना हुआ... भगवान अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, उस समय में शुभराग होता है, उसे जानना चाहिए। उसे जाना हुआ प्रयोजनवान, उस-उस काल में कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहा अब, देखो! **सर्व द्रव्यों से भिन्न,...** भावार्थ में सातवीं लाईन है। **समस्त परद्रव्यों से भिन्न, एक ज्ञायकत्वमात्र का-ज्ञान, श्रद्धान तथा आचरणरूप प्राप्ति-यह तीनों जिसे हो गये हैं,...** पूर्णदशा स्वभाव का आश्रय लेकर, पर्याय में पूर्ण शुद्धनय का विषय तो द्रव्य है, परन्तु शुद्धनय का आश्रय लेने का था, वह पूर्ण हो गया। उसे ज्ञायकपने का ज्ञान हुआ, उसे **पुद्गलसंयोगजनित...** उसे तो कर्म के निमित्त से—लक्ष्य से उत्पन्न होता शुभराग ऐसे **अनेकरूपता को कहनेवाला अशुद्धनय कुछ भी प्रयोजनवान (किसी मतलब का) नहीं है;...** अर्थात् कि उस अशुद्धनय का विषय, उसे रहता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है। अशुद्ध द्रव्यार्थिक कहो, अशुद्धनय कहो, व्यवहारनय कहो या पर्यायनय कहो। अशुद्ध द्रव्यार्थिक पहले आ गया है। अशुद्ध द्रव्यार्थिक क्यों कहा है? उसकी पर्याय स्वयं अशुद्ध होती है। इसलिए द्रव्य त्रिकाल शुद्ध होने पर भी, तब जब पर्याय में अशुद्धता होती है और अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय कहकर उसमें विकार का परिणमन है, ऐसा बताया है। परन्तु वह अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय व्यवहार का ही विषय है। उसे व्यवहारनय कहकर पर्यायनय का विषय कहा है। भगवान के शास्त्रों को जानना, वह समझना, उसमें चाबी कठिन है। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ। एक समय में जिन्हें... आहाहा! उन्हें सुननेवाले इन्द्र और गणधर। सुननेवाले इन्द्र और गणधरों के बीच जो दिव्यध्वनि होगी, वह कैसी होगी! समझ में आया? वह कहीं साधारण ऐरे-गैरे बैठें हो और बात करे कि ऐसा है

और वैसा है। ऐसा कुछ नहीं। तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ की ध्वनि इच्छा बिना उठे (खिरे)। बड़े अर्धदेवलोक के स्वामी, अर्धलोक के स्वामी शकेन्द्र, दक्षिणार्ध का स्वामी, उत्तरार्ध का स्वामी ईशानइन्द्र, सौ-सौ इन्द्र बैठे हों सभा में। सिंह, गणधर, गणधर की टोली बैठी हो, हों! सभा में। चौदह पूर्व और चार ज्ञान अन्तर्मुहूर्त में (द्वादशांग) रचे, ऐसे सन्त सभा में बैठे हों। आहाहा! उसमें दिव्यध्वनि में आता है। भगवान ऐसा कहते हैं। उसे गणधर फिर वाणी में से रचते हैं। भगवान ऐसा कहते हैं, भगवान! यह आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध ध्रुव, इसका आश्रय करने से जीव को सम्यग्दर्शन प्रथम भूमिका होती है। इसके बिना मर जाये क्रियाकाण्ड करके, दया, दान और व्रत पालन करके (तो कुछ हित नहीं होता)। वजुभाई! आत्मा का आश्रय लिये बिना सम्यग्दर्शन, राग की मन्दता, व्रत, दया, दान और ब्रह्मचर्य पालन करे और सम्यग्दर्शन हो, तीन काल में नहीं होता। अंक बिना के शून्य लो तुम्हारे। समझ में आया?

इसलिए भगवान ऐसा कहते हैं कि तीन लोक के नाथ का तेरा स्वरूप शुद्ध चैतन्य है प्रभु, उसका अन्तर (में) पहले आश्रय ले, शुरुआत में आश्रय ले। पहली भूमिका तुझे सुधारनी हो, दशा सुधारनी हो तो त्रिकाल स्वभाव का दशावान भगवान, उसके सन्मुख होकर अनुभव कर। तब उसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूप आचरण का अंश प्रगट होता है। आगे जाने पर पाँचवाँ गुणस्थान हो, तब स्वरूप शुद्ध का उग्र आश्रय होता है। उस सम्यग्दर्शन में आश्रय तत्त्व का अल्प होता है। परन्तु जब पंचम गुणस्थान होता है, तब शुद्ध का आश्रय उग्र होता है। उग्र आश्रय से उसे दूसरी कषाय (चौकड़ी) का अभाव होकर शान्ति की वृद्धि, चौथे गुणस्थान में शान्ति है, उससे पाँचवें गुणस्थान में शान्ति... शान्ति... शान्ति... अधिक होती हे। जो सर्वार्थसिद्धि के देव को न हो, इतनी पाँचवें गुणस्थान में शान्ति इससे अनन्तगुणी अधिक होती है। आहाहा! यह वह कहीं (बात)! यह कहीं वाड़ा के गुणस्थान हैं? क्या कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। पाँचवें में... जाये। ढाई द्वीप के बाहर असंख्यात समकिती, चौथेवाले और पाँचवेंवाले। मछली असंख्यात पाँचवें गुणस्थानवाले। स्वयंभूरमणसमुद्र

में हजार हजार योजन की मछलियाँ पांचवें गुणस्थानवाली, तीन-तीन ज्ञानवाली, तीन-तीन ज्ञानवाली! आहाहा! असंख्यात पड़े हैं अभी। समकिती आत्मा के आनन्द का अनुभव करनेवाले स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्यात पड़े हैं, अभी हैं। समझ में आया? तिर्यंच हुआ तो क्या है, वह तो शरीर तिर्यंच है। आत्मा कहाँ चला गया है? समझ में आया? सिंह, बाघ, भालू, मगरमच्छ....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इस भव में। तिर्यंच में समकित लेकर जाये नहीं। वह तो मिथ्यादृष्टि है। असंख्य श्रावक पाँचवें गुणस्थानवाले भगवान त्रिलोकनाथ ने धवल में कहे हैं। समझ में आया? अपने यह स्थानकवासी में तो बहुत बोलते हैं। प्रतिक्रमण आवे, उसे खबर हो। ठामणा में। ढाई द्वीप के बाहर असंख्यात श्रावक-श्राविका विराजते हैं। ऐसा लिखते हैं। ठामणा बोले तब। दूसरा खामणा। लो कौन बोला यह? जगजीवनभाई। बहुत किया है इन्होंने। इन्होंने क्रियाकाण्ड बहुत किया है। चाहे जो परन्तु उसमें बहुत आता है। असंख्यात श्रावक-श्राविका ढाई द्वीप के बाहर (अभी हैं)। शाम-सवेरे प्रतिक्रमण करते हैं। करते थे या नहीं कांख में आसन डालकर?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... ऐसा आता है। हमेशा बोले। ढाई द्वीप के बाहर असंख्यात श्रावक-श्राविका। वे हैं, हों! अभी। तीनों काल में कभी असंख्य समकिती और पाँचवें गुणस्थान के तिर्यंच का असंख्य में विरह होता ही नहीं। तीनों काल असंख्य होते हैं। समझ में आया? आहाहा! ढाई द्वीप के बाहर। ढाई द्वीप में मनुष्य थोड़े संख्यात, पशु भी संख्यात और मनुष्य भी (कम)। वे तो असंख्य पंचम गुणस्थान में पड़े हैं। उन्हें भी ऐसे आत्मा के आनन्द का आश्रय उग्ररूप से लेकर, चौथे गुणस्थान की अपेक्षा, हों! चौथेवाले भी असंख्य हैं, पाँचवेंवाले भी असंख्य हैं। छठवाँ तो होता नहीं वहाँ तिर्यंचदशा में। वह आनन्द और शान्ति की पाँचवें गुणस्थान में वृद्धि होती है, तब उसकी दशा में अभी बारह व्रत के विकल्प आते हैं। पाँचवें गुणस्थान में भक्ति का भाव आता है, पंच परमेष्ठी के स्मरण का भाव आता है। उस भाव को शुभराग को व्यवहारनय से जाना

हुआ प्रयोजनवान (है कि) है यह। यह है, ऐसा जाना हुआ प्रयोजनवान है। आदर किया हुआ प्रयोजनवान नहीं, उससे आत्मा को लाभ होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! गजब बात! समझ में आया?

छठवें गुणस्थान में मुनि आये। पहले शुरुआत में सातवें में आते हैं। एकदम सातवें में आवे तब ध्यान में होते हैं। विकल्प उठा शुभराग का पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण का। दृष्टि तो द्रव्य के ऊपर है, आश्रय द्रव्य के ऊपर है। द्रव्य के आश्रय से मुनिपना प्रगट होता है। कहीं पंच महाव्रत के विकल्प के आश्रय से प्रगट नहीं होता। समझ में आया? यह बात ही पूरी विस्मृत हो गयी है। ऐसा किया और ऐसा करूँ और ऐसा हुआ और ऐसा होगा। धूल में भी नहीं होगा, सुन न अब। भगवान जहाँ विराजता है तीन लोक का नाथ अन्दर, उसका आश्रय तुझे नहीं, उसका अनुभव किया नहीं। उसका आश्रय लिये बिना मार्ग कहाँ से आया तेरे पास? समझ में आया? मूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : चारित्र....

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र तो अन्दर स्वरूप में रमणता करे, वह चारित्र है। परन्तु ऐसे आनन्द की रमणता की दशा में उसे पाँच महाव्रत का, अट्ठाईस मूलगुण का राग होता है। छठवें गुणस्थान में होता है। और दूसरा विकल्प ऐसा नहीं होता। वस्त्र लूँ या पात्र लूँ या उसके लिये (मुनि के लिये) बनाया हुआ आहार लूँ—ऐसा भाव नहीं होता। उस भूमिका के योग्य है। उस भूमिका के योग्य जो अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प हैं, वे होते हैं। शरीर की नग्नदशा हो जाती है।

मुमुक्षु : किये बिना होगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : किये बिना होती है। धूल करे, पर को क्या करे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे निकाले? भूत निकाले। भूत घुस गया है इसे कर्तापने का। समझ में आया?

मुमुक्षु : बात अटपटी....

पूज्य गुरुदेवश्री : अटपटी नहीं। सीधी है। रजकण की एक समय की पर्याय का दूसरा आत्मा कर्ता तीन काल-तीन लोक में होता नहीं।

मुमुक्षु : यह तो निमित्त से पकड़ाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु निमित्त से कहा जाता है, इसका अर्थ क्या हुआ? कि ऐसा है नहीं। ऐसा है नहीं। अभी आ गया नहीं तुम्हारे व्यवहारनय का विषय? व्यवहारनय कोई उपचार से, किसी अपेक्षा से अन्यथा कहता है। व्यवहारनय के लक्षण ही ऐसे हैं। लक्षण। इसलिए टोडरमलजी ने तो बहुत एक टुकड़ा रखा। 'सर्वत्र निश्चय-व्यवहार का यह लक्षण जानना।' सर्वत्र। सत्य, वह निश्चय है और उपचार, वह आरोप है। आरोप अर्थात् व्यवहार है। महा सिद्धान्त। टोडरमलजी ने तो शास्त्र का बहुत दोहन किया। परन्तु लोगों को अब अपने अभिमान के आगे यह पण्डित की बात उन्हें ख्याल में नहीं आती। हम भी पढ़े हैं।

मुमुक्षु : उल्टी....

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टी है। बहुत लिखा है, कल ही आया। जैन गजट में। दो मोक्षमार्ग न माने, वह मूढ़ जीव। भगवान ने दो मोक्षमार्ग कहे हैं। यहाँ जैन गजट था। कुछ ठिकाना नहीं। अरे! भगवान! बहुत लिखा है, खूब लिखा है सोनगढ़ के नाम से। सोनगढ़ एक ही मोक्षमार्ग कहता है। दो मोक्षमार्ग भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कहे और कहते हैं कि हम कुन्दकुन्दाचार्य के भगत हैं। ऐसा कहलवाना और कुन्दकुन्दाचार्य दो मोक्षमार्ग कहे, उसे मानना नहीं। ऐई! धन्नालालजी! अरे! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य क्या कहते हैं प्रभु! शान्ति से तुझे समझना पड़ेगा। यह शान्ति से समझना पड़ेगा। ऐसे कुछ वाद-विवाद करने से कहीं पता लगे, ऐसा नहीं। यह अभी आयेगा इसमें—कलश में।

कहते हैं कि जब परद्रव्य से भिन्न पड़कर भान हुआ तब तो समाप्त हो गया। तो वह अशुद्धनय से अर्थात् व्यवहारनय से जाना हुआ प्रयोजनवान, वह उसे रहा नहीं। **किन्तु जहाँ तक शुद्धभाव की प्राप्ति नहीं हुई, वहाँ तक जितना अशुद्धनय का कथन है, उतना यथापदवी प्रयोजनवान है।** जितनी पूरी दशा हुई नहीं, वहाँ तक अपूर्ण दशा को-राग को जानना, वह प्रयोजन—अपने ज्ञान के साथ जोड़कर व्यवहारनय को जानना

चाहिए। प्रयोजन अर्थात् कर्तव्य है, ऐसा नहीं। पूरा तत्त्व बदल जाता है तब तो जैनदर्शन का। पहला अमृतचन्द्राचार्य ने कहा कि उस काल में जाना हुआ, '**यदात्वे**' जाना हुआ प्रयोजनवान है। समझ में आया? आया था न उसमें? देखो! '**परिज्ञायमानस्तदात्वे प्रयोजनवान्**'। संस्कृत टीका में महासिद्धान्त। दिगम्बर सन्तों ने तो संक्षिप्त शब्दों में महासिद्धान्त कहे हैं। परन्तु लोगों को अपनी दृष्टि से देखना है और शास्त्र को भी अपनी दृष्टि से ऐसे खींच लेना है। शास्त्र जो आशय कहता है, ऐसी दृष्टि ले जाना नहीं। अमरचन्दभाई! आहाहा! शास्त्र के अर्थ स्वयं अपनी दृष्टि से ऐसे लाना है इसे। परन्तु यह दृष्टि उसकी ओर लेकर वह क्या कहते हैं, ऐसी दृष्टि करनी नहीं है।

यहाँ तो अमृतचन्द्राचार्य ने पुकार करके टीका में ले लिया। निश्चय की बात सत्य कही थी तो व्यवहार नहीं, ऐसा नहीं। परन्तु उस काल में उस जाति का शुभरागादि हो और शुद्ध के अंश हों, वे-वे उसे जाना हुआ उस-उस समय में उसे जानना चाहिए, वह प्रयोजनवान। आदरना चाहिए, ऐसा कहा नहीं। वह तो एक व्यवहारनय हेय है और निश्चयनय उपादेय है। वरना दो नय रहते नहीं। दो नय का विषय विरोध है, दो नय के फल विरोध है, दो नय के भाव विरोध है, दो नय की दिशा विरोध है।

मुमुक्षु : मात्र जानने की।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने की। बात यह है। यह बड़ा विवाद उठा न तुम्हारे वहाँ सर्वत्र चारों ओर। यह व्यवहार कहा है। यह '**ववहारदेसिदा**' परन्तु दिखलाया। क्या कहा? दिखलाया है कि है, ऐसा। वे वेदान्तवाले कहते हैं कि पर्याय ही नहीं, शुभराग नहीं—ऐसा नहीं है। समझ में आया? वरना ऐसा हो गया कि त्रिकाल सत् है और पर्याय असत् है। हो गया, जाओ। वेदान्त हो गया। ऐसा नहीं। वह तो त्रिकाल की अपेक्षा से एक समय का आश्रय करनेयोग्य नहीं, इसलिए एक समय की पर्याय को असत् कहा। वह यहाँ वापस सत् ठहरायी। व्यवहारनय है। चौथे गुणस्थान के योग्य निर्मलता और मलिनता—राग। पाँचवें गुणस्थान के योग्य निर्मलता और राग। छठवें गुणस्थान के योग्य निर्मलता और राग। ऐसी भूमिका को बराबर जानना चाहिए। तो व्यवहारनय जाना कहलाता है। हुआ? वहाँ तक तो आया था। वहाँ तक तो ११-१२वीं गाथा की सन्धि

की है। अब जरा स्वयं पण्डित जयचन्द्रजी (स्पष्टीकरण करते हैं)।

जहाँ तक यथार्थ ज्ञानश्रद्धान की प्राप्तिरूप सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हुई हो... जहाँ तक यथार्थ ज्ञान-श्रद्धान। भगवान आत्मा निर्मलानन्द प्रभु का सम्यग्दर्शन आश्रय करके और उसका स्वसंवेदनज्ञान, ऐसी प्राप्तिरूप सम्यग्दर्शन की प्राप्ति न हुई हो, **वहाँ तक तो जिनसे यथार्थ उपदेश मिलता है,...** जिनसे यथार्थ उपदेश मिले, ऐसा समकित पाने से पहले भी उसे सुनने का भाव आये बिना नहीं रहता, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी स्पष्टीकरण करते हैं न। कहाँ जाने देते हैं? यथार्थ उपदेश मिले, इसमें महा वजन है। सम्यग्दर्शन पाने से पहले भी यथार्थ वीतरागी उपदेश कहाँ है? वीतराग का स्थापन कौन करता है? क्योंकि वीतरागमार्ग वीतरागपने को प्रगट करने की बात करता है। राग को रखने की बात वीतरागमार्ग में होती नहीं।

मुमुक्षु : राग से लाभ होगा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और क्या हो गया? राग से लाभ होगा, यह वीतराग की वाणी ही नहीं।

मुमुक्षु : शुरुआत में।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुरुआत में या अन्त में कहीं तीन काल में नहीं।

मुमुक्षु : पहले में उपादेय और बाद में हेय।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है नहीं। पहले राग हेय जहर और अमृत आत्मा उपादेय पहले से है। इसके लिये तो कहा, यथार्थ उपदेश मिले। सम्यग्दर्शन पाने से पहले भी उसकी इतनी जवाबदारी है सम्यग्दर्शन पाने के योग्यवाले की कि जहाँ यथार्थ वीतरागपने की प्राप्ति का उपदेश हो, उसे सुने। इतनी तो उसे जवाबदारी सिर पर है। जिसमें राग से लाभ मनवाते हो, वह यथार्थ उपदेश वीतराग का नहीं।

मुमुक्षु : पहला कर्तव्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहली पंक्ति का अर्थ चलता है। यथार्थ उपदेश मिले। यथार्थ

उपदेश की व्याख्या क्या ? देखो, कहते हैं। **ऐसे जिनवचन...** ऐसे जिनवचन, जिनवचन। जिनवचन में वीतरागता की दृष्टि करावे, वीतरागता का ज्ञान करावे, त्रिकाल का, वीतरागता की स्थिरता के वचन जहाँ हो, उन्हें पहले सुने। ऐसा उसे भाव सम्यग्दर्शन से पहले भी आये बिना रहता नहीं। उसे यहाँ कहते हैं कि तू सुन, ऐसा व्यवहारनय से कथन किया है। समझ में आया ? पहला वजन में यहाँ विवाद है।

यथार्थ उपदेश मिलता है, ऐसे जिनवचनों... आहाहा ! क्योंकि सम्यग्दर्शन पानेवाला भी वीतरागभाव को शोधता है न ! वीतरागभाव प्रगट करना है न ? वीतरागभाव प्राप्त करना है न ? वीतरागभाव को सिद्ध करना है न ? क्योंकि रागभाव तो अनादि से है। अब वीतरागभाव उसे प्रगट करना है और वीतरागभाव की प्राप्ति करना है तो यह पहले हुई नहीं। तो जहाँ वीतरागी वचन आते हों, वीतरागी वचन का स्थापन चलता हो, यथार्थ उपदेश वीतराग ने कहा हुआ, वीतराग... वीतराग... वीतराग... ऐसे गुरु को शोधकर उसे सुने। ऐसा कहते हैं। मूलचन्दभाई !

मुमुक्षु : जिनवचन....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे जिनवचन। परन्तु वह वीतराग की वाणी ऐसी होती है, ऐसा कहते हैं। उनके मुख में—गुरु के मुख में ऐसी वाणी होती है। वीतराग। बापू ! निमित्त और राग की उपेक्षा करना, स्वभाव की अपेक्षा करना, यह पूरे जिनवचन का तात्पर्य है। उससे विपरीत हो, सम्यग्दृष्टि का कामी हो तो उसको (वह) सुनना नहीं। क्योंकि उसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना है। उसे वीतरागी पर्याय प्रगट करनी है, उसे राग रखना नहीं। राग रखना हो तो फिर सम्यग्दर्शन की शोध कहाँ रही उसे ? वह तो है अनादि का राग। समझ में आया ? आहाहा ! कहो, रतिभाई ! यथार्थ उपदेश। अब यह इसे शोधना पड़ेगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वतन्त्र है। यथार्थ दर्शन की व्याख्या की है कि ऐसे जिनवचन। जिस वाणी में वीतराग का स्थापन आवे, वीतराग का आश्रय करने का आवे, राग की उपेक्षा करने का आवे, पर के आश्रय से लाभ मनवाने का न आवे, स्वआश्रय से लाभ

मनवाने का आवे, उसे यथार्थ जिनोपदेश और जिनवचन कहने में आता है। आहाहा! कहो, वल्लभदासभाई! पहले ही वचन रखा है। पाठ में तो ११-१२ की सन्धि कर डाली। बस।

अब, इन्होंने स्वयं जरा ऊपर से डाला है। यह तो वहाँ सम्यग्दर्शन का आश्रय द्रव्य कहा और पर्याय अपूर्ण है, उसे जानने का कहा। परन्तु अब सम्यग्दर्शन नहीं, उसे क्या? यह ऊपर से बात इन्होंने डाली। उसके लिये यह कि वहाँ वीतरागपने का स्वभाव का आश्रय कराया है, पर्याय का आश्रय छुड़ाया है और फिर पर्याय होती है, उसे जानने का कहा है। ऐसा उपदेश जहाँ मिलता हो, जिसमें राग की रुचि करावे नहीं, निमित्त का प्रेम छुड़ावे, स्वभाव का प्रेम करावे, ऐसी जहाँ यथार्थ वाणी हो, ऐसे जिनवचनों का सुनना।

मुमुक्षु : भूतार्थ के आश्रय से धर्म होता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के आश्रय से वीतरागपने के आश्रय से वीतरागपना प्रगट होता है, यह कहे, उसे सुनना।

मुमुक्षु : दूसरे का नहीं सुनना?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे का सुनना नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : परन्तु देख आवें तो सही कि उसमें क्या कहते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल वहाँ क्या देखना था? क्या सुनना खबर नहीं? क्या कहते हैं लोग अभी के वातावरण में। क्या कहते हैं, हमको खबर है कि व्यवहार से धर्म होता है, करते-करते धर्म होता है। स्पष्ट बातें बाहर आती हैं। अब सुनना तो किसे? राग पहले चाहिए। राग हो तो निर्विकल्पता आवे, कषाय मन्दता पहले अणुव्रत, महाव्रत करे तो फिर सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी तो जिनकी उल्टी प्ररूपणा है। वह प्ररूपणा सुननेयोग्य नहीं जिसे सम्यग्दृष्टि प्राप्त करनी हो तो। ऐसा कहते हैं। विमलचन्दजी! कठोर शर्त कहते हैं। बराबर है? लो हमारे सेठी यह कहते हैं। मीठालालजी ने कहा। बराबर कहते हैं अब हमारे यहाँ एक महीना रहना है। आओ कहा, भाई! तुम्हारे बड़े भाई।

आहाहा! देखो! पण्डित जयचन्द्रजी का लेखन तो देखो! **जिनसे यथार्थ उपदेश...** यथार्थ उपदेश। क्योंकि उसे सत्य चाहिए है न! सम्यग्दर्शन जिसे प्राप्त करना है, उसे सत्य चाहिए है न? सत्य। तो सत्य में यथार्थ उपदेश आना चाहिए। यथार्थ उपदेश अर्थात् जिसमें वीतरागपने का आश्रय लेने का, वीतरागपना प्रगट करने की बात हो। जिसमें राग का निषेध वर्तता हो, निमित्त के आश्रय का निषेध वर्तता हो, ऐसी जहाँ वाणी हो, वैसे गुरु की वाणी जिनवचन उसे कहते हैं और उसे सुनते हैं।

मुमुक्षु : कथंचित् लाभ होगा। तो अनेकान्त हुआ न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं होगा। उससे—वीतराग से लाभ हो और राग से न हो, इसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया? यह तो उसमें लेंगे अभी। आगे तो। जिनवचन का विरोध टालेंगे इस श्लोक में? वहाँ तो '**जिनवचसि रमन्ते**' है न शब्द में? वह '**रमन्ते**' का अर्थ ही इन्होंने तो निकाला है कि जिनवचन मुख्यरूप से स्वभाव का आश्रय कराते हैं। उसमें कहा। और भाई ने भी कहा। यह क्या है? परमअध्यात्म तरंगिणी। कितना श्लोक है यह? चौथा। '**रमन्ते**' शब्द है न। '**रमंते क्रिडंति एकत्वं भजंतं**' देखो, संस्कृत है। '**रमन्ते**' की व्याख्या ऐसी की है। संस्कृतवालों को बताना चाहिए न पण्डितजी हमारे। '**रमन्ते**' शब्द है न? '**उभयनयविरोधध्वंसिनि**' बाद का कलश है न? उसमें जो '**रमन्ते**' आता है न उसमें आचार्य ने '**रमन्ते**' '**एकत्वं भजंतं**' पूरा भाई उसमें कहना है। '**एकत्वं भजंतं**'। भगवान का वचन... एकत्व करने की बात करते हैं। यह बाद में आयेगा तब बात। क्योंकि उसमें विवाद करते हैं। देखो, दो नय का सेवन करना, दो नय का सेवन करना। परन्तु दो नय का सेवन हो नहीं सकता। सुन न! बड़ी बात आती है पत्रों में। देखो! '**उभयनयविरोधध्वंसिनि**' दोनों की सेवा करने से मोह का ध्वंस होता है। परन्तु दोनों की किस प्रकार करना? पर्याय की सेवा करना और द्रव्य की सेवा करना, वह हो किस प्रकार? इसलिए भगवान का वचन... उसे कहेंगे स्वयं। समझ में आया? **जिनवचन द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक - दोनों नयों में, प्रयोजनवश शुद्धद्रव्यार्थिकनय को मुख्य करके उसे निश्चय कहते हैं...** भावार्थ में कहेंगे। इस ओर। गुजराती में २९ पृष्ठ पर है। **जिनवचन द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक**

- **दोनों नयों में,...** त्रिकाल द्रव्य और एक समय की पर्याय दोनों में **प्रयोजनवश शुद्धद्रव्यार्थिकनय को...** ध्रुव ज्ञायक चिदानन्द को **मुख्य करके उसे निश्चय कहते हैं और अशुद्धद्रव्यार्थिकरूप पर्यायार्थिकनय को गौण करके व्यवहार कहते हैं। - ऐसे जिनवचन में जो पुरुष रमण करते हैं...** उन्हें मिथ्यात्व का नाश हो जाता है। गजब बात की। इसमें अपने लिया न? शुभचन्द्राचार्य का। '**एकत्वं भजंतं**'। एकत्वपना भजे। क्योंकि एकत्व पृथक् बतलाना है न? पण्डितजी! एकत्व-विभक्त। '**एयत्तणच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे**' पश्चात् भी कहा '**एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण**'। कुन्दकुन्दाचार्य पाँचवीं गाथा में कहते हैं।

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं॥५॥

मैं तुमको राग से, पर से भिन्न और स्वरूप से एकत्व बात बताऊँगा। इसका नाम निश्चय का विषय है। इसका नाम जिनवचन है। समझ में आया? आहाहा! शब्द के अर्थ का विवाद उठा सब। यशोविजय बेचारा कहते हैं। यशोविजय वह तो श्वेताम्बर उन्हें तो...

जाति अंधनो रे दोष नहि आकरो।
जो जाणे नहि अर्थ जन्म अंधनो रे दोष नहि आकरो।
जो जाणे नहि अर्थ मिथ्यादृष्टि रे तेथी आकरो।
करे अर्थ का अनर्थ....

कान्तिभाई! आहाहा! वल्लभदासभाई! यह तो जहाँ-तहाँ यह सुनने का मिला है, अभी तक तुमको।

एक वीतरागमार्ग वह भी यह सनातन वीतराग दिगम्बर पंथ। समझ में आया? वह कोई पंथ नहीं यह तो अनादि का मार्ग है। इसके अतिरिक्त एकत्व की बात, राग से पृथक् की बात अन्यत्र कहीं हो सकती ही नहीं। वजुभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है। थोड़ी भी अन्दर यथार्थ नहीं। आगे-पीछे विरोध बहुत है।

बहुत विपरीत है। उसने स्थापित की है, यशोविजय ने थोड़ी। उसकी अपेक्षा आनन्दघनजी ने विशेष स्थापित की है। परन्तु दूसरे में बहुत फेरफार, बहुत गड़बड़। केवली को आहार और भगवान को रोग, स्त्री को मुक्ति सब विपरीत कर डाला है। परन्तु अब वह क्या करे?

मुमुक्षु : .... तो समान चले।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक भी समान चलते नहीं। इतना फेरफार है। यह तो सनातन सत्य। सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा कहा, वह अनादि सनातन। भरत में हो, ऐरावत में हो या महाविदेह में हो।

भगवान यहाँ कहते हैं कि भाई! जो कोई जिनवचन को सुनता हो, सम्यग्दर्शन न हो भले। परन्तु सम्यग्दर्शन का कामी है, वह वीतराग वचनों को सुने, यथार्थ उपदेश को सुने। तब वह खोजना पड़ेगा या नहीं उसे? गोतवुं समझे न? शोधना। आहाहा! दूसरे की अपेक्षा—अयथार्थ उपदेश की अपेक्षा यथार्थ उपदेश कहाँ है, इतना विवेक तो उसे आना चाहिए। समझ में आया? वरना उल्टी विपरीतता घुसा डालेगा। उसे खबर नहीं होती। और शोधने जायेगा कुछ और मिल जायेगा कुछ। समझ में आया? यह कहा है कहीं। आनन्दघनजी में कुछ है। शब्द कहीं है, अभिनन्दन। ... जिसे विष मिले। अमृत के ठिकाने विष मिले। सब भूल गया। यह पुस्तक है न। 'जिसे पिपास अमृत पान की' लो, यह। वह विचारा कहता है, हों! अन्दर है। चौथा है। अभिनन्दन।

मत मत भेदे रे जो जई पूछिये। सहु थापे अहमेव
सामान्यै करि दरिसण दोहिलूं,

हे नाथ! तेरे तत्त्व की बात सामान्यरूप से तो हमको मुश्किल पड़ेगी।

निरणय सकल विशेष
मद में घेर्यो हो अंधो किम करै।

अपने मत के अभिमान में चढ़ा हुआ सत् की बात किस प्रकार करेगा और सत् कैसे बैठेगा उसे। फिर कहते हैं।

हेतु विवादे चित धरि जोईयै, अति दुरगम नयवाद,
आगम वादे, गुरुगम को नहीं, अे सबलो विषवाद।
दरसण दरसण रटतौ जो फिरुं, तो रण रोझ समान

रण का रोझ। रोझ होता है न? मृगला नहीं होता? रोझ होता है हिरण जैसा। बड़ा रोझ होता है। रोझ जानवर होता है।

दरसण दरसण रटतौ जो फिरुं, तो रण रोझ समान,
जेहनै पिपासा अमृत पाननी, किम भांजै विष पान।

प्रभु! जहाँ हो, वहाँ जहर का उपदेश मिले हमको तो। हमको तो अमृत की पिपासा है। भगवान आत्मा शुद्ध अमृत की प्राप्ति कैसे हो, उसके हम पिपासु। जहाँ जायें वहाँ विपरीतता घुसावे। समझ में आया? ऊंधा अर्थात् समझे? उल्टा।

जेहनै पिपासा अमृत पाननी, किम भांजै विष पान।
तरस न आवै मरण जीवन तणों, सीझै जो दरसण काज,
दरसण दुर्लभ सुलभ कृपा थकी, आनंदघन महाराज।

आनन्दघन आत्मा, हों! यह आनन्दघन की एकाग्रता की कृपा हो, अर्थात् दर्शन की प्राप्ति हो जाये। बाकी तो यह लोग उल्टे-उल्टे विपरीतता घुसावे जहाँ-तहाँ। हम अमृत के पिपासु और मिले हमको जहर। कहनेवाले हम बड़े आचार्य हैं, बड़े उपाध्याय हैं, हम इतने पढ़े हुए हैं, ६०-६० वर्ष के पढ़े हुए। अब सुन न। पढ़े वह क्या है? आहाहा! जिसे पिपासा अमृत पान की। प्रभु! हमको तो अमृत आत्मा चाहिए है। उसके बदले विपरीतता घुसाये। यह राग करना, ऐसा करना, इतनी भक्ति करना, इतने मन्दिर बनाना, पूजा करना, तुमको समकित हो जायेगा। लो! धूल में भी नहीं होगा मर जाये न तो भी। सुन न! ऐई! वजुभाई! इतनी यात्रा निकालो पाँच-पाँच, दस-दस लाख की।

मुमुक्षु : शीघ्र....

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन यहाँ से होता है। स्व के आश्रय से होता है, पर के आश्रय से नहीं। पर के आश्रय से कोई बतावे तो जहर पिलाता है, ऐसा कहते हैं। अमरचन्दभाई! दस लाख खर्च कर डालो। पच्चीस लाख खर्चो, बड़ी यात्रा निकालो।

सम्मेदशिखर की यात्रा निकालो। पाँच हजार-दस लोगों को बस ओहो! क्या है परन्तु अब। सम्मेदशिखर लाख बार जा न, करोड़ों बार समवसरण में तो क्या है? भगवान जो रागरहित आत्मा की दृष्टि कराने की बात करते हैं, वह यदि न बैठे और ऐसा उपदेश न मिले तो धूल भी सुना नहीं तूने कुछ। कहो, मलूकचन्दभाई!

मुमुक्षु : बाहर से नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर से नहीं आता ऐसा। अन्दर में है, उसका भान नहीं और वे वापस भ्रमावे। ऐसा होगा? ऐसा कोई मार्ग होगा? सीधे निरालम्ब होगा? सीढ़ी-सीढ़ी में चढ़ा जाता है। क्या है तुझे? सीढ़ी कौन सी होगी? सीढ़ी सीढ़ी में चढ़ा जाता है, इसका अर्थ कि चौथा (गुणस्थान) पहले चाहिए और फिर पाँचवाँ, यह सीढ़ी सीढ़ी से चढ़ा जाता है। राग मन्द करके वह सीढ़ी किसके घर की लाया? ऐई! वजुभाई! यह सब जवाबदारी बहुत है, हों! तुम्हारे सिर पर, ऐसा कहते हैं। दृष्टि पर के ऊपर है। उसे स्वआश्रय करने में राग मन्द हो तो स्वआश्रय होता है, यह किसके घर की बात है? राग मन्द तो परदिशा की बात है।

मुमुक्षु : सब लोग ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया पूरी कहे तो क्या है? पूरी कहे तो उल्टी प्ररूपणा करनेवाले हैं। जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करना हो, उसे उनका उपदेश सुननेयोग्य नहीं। यहाँ ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : देखने जाने में क्या बाधा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ उसे बहुमान है। कुछ होगा वहाँ। देखने जाने के दो लक्षण—दो प्रकार। या उसे समझाने जाये और या वहाँ से लेने जाये। तो समझाने जाता है या लेने जाता है? तो लेने जाता है तो समझाने नहीं तो, उसमें कुछ है, ऐसा वह मानता है।

मुमुक्षु : समझाने जाता हो तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझाने कहाँ से जाये? लेने जाता है वहाँ। वह खोटा है और

ऐसा न हो, ऐसा कहने जाता है वहाँ? अमरचन्दभाई! इसमें वचन बहुत कठोर डाला है। यह वस्तु की स्थिति रखी है। जहाँ-तहाँ उपदेश सुनना और सिर फोड़ना, ऐसा नहीं होता। चलो यहाँ सुनें... चलो यहाँ सुनें... कुछ तो मिलेगा न। धूल मिलेगी, सुन न। विपरीतता घुसा डालेगा।

मुमुक्षु : गुणग्राही नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुणग्राही किसे कहना? मिथ्यात्व के भाव को गुणग्राही कहाँ से लाया? कुन्दकुन्दाचार्य तो मूलाचार में यहाँ तक कहते हैं, भाई! मुनि! हे मुनि! यह जो कुसंगी मिथ्यादृष्टि के साधु हों, उसके गण में जाना नहीं। अकेला रहना और तुझे न सुहावे तो स्त्री से विवाह करना। ऐई! वजुभाई!

मुमुक्षु : आचार्य ऐसा कहे?

पूज्य गुरुदेवश्री : आचार्य ऐसा कहते हैं मूलाचार में। है या नहीं? यहाँ लाओ न, ऐई! यहाँ तो पुस्तक यहाँ है। अपने बतलाना अच्छा न। रामजीभाई बतलावे उस कोर्ट में। तब वह हाँ पाड़े। वरना नहीं, नहीं करे। एक व्यक्ति कहता था कि यह तुम्हारे रामजीभाई, महाराज! जज को भरी दोपहरी तारे दिखलावे। परन्तु भरी दोपहरी में वह माने किसका? एक व्यक्ति कहता था। वह मणिलाल है न? उदाणी। भरी दोपहरी में तारे दिखलावे कि हमारी बात खोटी सिद्ध हो और इनकी बात सच्ची। परन्तु वह कोई मूर्ख है?

यहाँ कहते हैं कि हे मुनि! तुझे यदि संग करना सुहाता हो और संग करना हो तो कुशास्त्र और कुप्ररूपणा करनेवाले मिथ्यात्व के राग के पोषक के विपरीतता घुसा डालेंगे, उनका संग करना नहीं। परन्तु अकेला न सुहावे तो क्या करना? स्त्री से विवाह करना न! स्त्री से विवाह करने में राग होगा चारित्रदोष का। मिथ्यात्व का दोष नहीं होगा। ९६ गाथा है।

मुमुक्षु : कितना अधिकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिकार मूलाचार अधिकार लिखा नहीं। परन्तु होगा। ९६ गाथा है, उसमें अधिकार नहीं....

वरं गणपवेसादो विवाहस्स पवेसणं।
विवाहे रागउप्पत्ति गणो दोसाणागरो ॥९६॥

कुसाधु, मिथ्यात्व के पोषक उल्टी प्ररूपणा के गड्ढा मार डालेंगे तुझे। वह तो दोष का आगार है। '**विवाहे रागउप्पत्ति**' विवाह करेगा तो राग की उत्पत्ति चारित्रदोष की (होगी)। '**वरं गणपवेसादो**' गण में जाने की अपेक्षा '**विवाहस्स पवेसणं**' अच्छा है। आहाहा! अरे! मुनि पंच महाव्रतधारी ऐसा कैसे कहे? कहते हैं कि मिथ्यात्व के पाप की अपेक्षा... ऐई! कोई ऐसा कहे कि ऐसे मुनि, नौ कोटि से त्याग (किया है)। अरे! सुन न, क्या कहते हैं यह। मिथ्यात्व का बड़ा पाप छुड़ाने के लिये राग की मन्दता वहाँ चारित्रदोष है। दर्शनभ्रष्ट है, वह चारित्र तो नहीं ले सकता। परन्तु समकित भ्रष्ट है और क्रियाकाण्ड ठीक है, (ऐसा मानते हुए) मर जायेगा चार गति में। परन्तु जिसे चारित्र न हो, परन्तु समकित है तो दर्शनभ्रष्ट नहीं, चारित्रभ्रष्ट है... सिंजति—वह अल्प काल में मुक्ति पायेगा। समझ में आया? '**वरं गणपवेसादो विवाहस्स पवेसणं।**' उत्पत्ति ठीक है। क्योंकि विवाह में तो राग होगा। अकेला चारित्रदोष। वह (मिथ्यादृष्टि) विपरीतता घुसा डालेगा।

मुमुक्षु : मिथ्यात्वदर्शन नहीं होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व नहीं होगा। स्त्री से विवाह में मिथ्यात्व है? वह तो राग है, चारित्रदोष है। जानता है कि पाप है, दोष है, सुख नहीं, मैं रह नहीं सकता, इसलिए अस्थिरता आ जाती है। वे अज्ञानी विपरीतता घुसा जायेंगे। शरीर से ब्रह्मचर्य पालो न....

मुमुक्षु : ऐसा कहते हो कि पर से नुकसान नहीं होता और फिर यह....

पूज्य गुरुदेवश्री : विपरीतता घुसाने की इसकी योग्यता है न। वहाँ किसलिए सुनने जाता है? इसके ऊपर तो प्रश्न चलता है यहाँ। इसके ऊपर तो प्रश्न आया कि जाता किसलिए है? समझाने या लेने? धन्नालालजी! इसकी विशेष बात इसमें है। यह विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण कृष्ण ११, रविवार, दिनांक - ११-०९-१९६६
गाथा - १२ प्रवचन - ४४

यह समयसार की १२वीं गाथा का भावार्थ चलता है। यहाँ तक आया, देखो! यथार्थ उपदेश आ गया है। देखो! इसका विस्तार। पहली तो बात महासिद्धान्तरूप से हो गयी कि भगवान आत्मा एकरूप शुद्ध ध्रुव ज्ञायकभाव, उसे ही यहाँ सत्यनय अथवा शुद्धनय कहा जाता है और उसका आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन होता है। दूसरा कोई उसका रास्ता नहीं। रास्ता एक ही होता है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' समझ में आया? ऐसे तो टोडरमलजी ने कहा कि तत्त्व के निर्णय बिना अकेले व्रत धारण करे, शास्त्र का अभ्यास करे, तप करे, परन्तु तत्त्व का निर्णय करे, तब समकित का अधिकारी होता है। तत्त्व के निर्णय बिना समकित का अधिकारी नहीं बन सकता। समझ में आया?

मुमुक्षु : चारित्र का अधिकार होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र के साथ उसे कुछ सम्बन्ध नहीं। तत्त्व का निर्णय करे, वही सम्यग्दर्शन का अधिकारी होता है। कहो, समझ में आया? व्रतादि के परिणाम हों या तपादि के परिणाम हों या अकेला शास्त्र का अभ्यास हो। परन्तु निर्णय करने का प्रयत्न न करे तो वह समकित का अधिकारी नहीं बन सकता। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि जो सम्यग्दर्शन पाता है, वह तो अपने शुद्धस्वरूप के आश्रय से ही पाता है। ध्रुव चिदानन्द का निर्णय करने से स्वसन्मुख होकर स्वभाव का अनुभव करने से सम्यग्दर्शन पाता है, वह त्रिकाल एक ही प्रकार सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की पद्धति है। अब ऐसा कहा कि सम्यग्दर्शन पाया ध्रुव के आश्रय से। तो वह तो अकेली निश्चय की बात हुई। तो उसे कुछ व्यवहार रहता है या नहीं? सम्यग्दृष्टि हुआ अथवा आगे बढ़ा पाँचवें, छठवें गुणस्थान में आगे बढ़ा। स्वभाव की उग्रता का आश्रय लेकर।

तो यह तो निश्चय का आश्रय लेकर आगे बढ़ा। यह तो ठीक। परन्तु उसे कुछ व्यवहार रहता है या नहीं? पर्याय को झूठी कहा, असत् कहा तो पर्याय है या नहीं? है। चौथे गुणस्थान के योग्य उसकी निर्मल पर्याय और अशुद्धता। पाँचवें गुणस्थान की अपेक्षा से निर्मल अधिक और अशुद्धता थोड़ी। छठवें की अपेक्षा से निर्मलता बहुत और अशुद्धता थोड़ी। उसे उस काल में उसको—पर्याय को जानना, इसका नाम व्यवहारनय कहा जाता है। यह तो सम्यग्दृष्टि और उसकी पर्याय, इसका स्पष्टीकरण ११ और १२ गाथा में कहा। तब पण्डित जयचन्द्रजी इसमें से थोड़ा ऊपर से निकालते हैं।

सम्यग्दर्शन न पाया हो, स्वसन्मुख होकर द्रव्य का आश्रय लेकर अनुभव में सम्यक्त्व न पाया हो और सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के पहले क्या उसे? पहले उसे कैसा भाव होता है? तथापि वह भाव होता है, उस भाव द्वारा समकित प्राप्त करता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? उसे सम्यग्दर्शन पाने से पहले उसे व्यवहारिक भाव कैसे होते हैं? अभी व्यवहारनय और निश्चयनय नहीं। परन्तु उसे कषाय की मन्दता के भाव कैसे होते हैं? ये भाव हों, वे तत्त्व का निर्णय करावे, ऐसा नहीं। तथा वह भाव आदरणीय है, ऐसा नहीं। परन्तु उसे भाव कैसे होते हैं, यह बात यहाँ वर्णन करते हैं। समझ में आया?

कहते हैं कि **जिनसे यथार्थ उपदेश मिलता है, ऐसे जिनवचनों को सुनना,...** पहले शास्त्र लिये, भाई! शास्त्र लिये, पश्चात् गुरु और फिर जिनबिम्ब लेंगे। वरना तो इस प्रकार ऐसा अपने आता है स्तुति है, देव-शास्त्र-गुरु तीन। देव-शास्त्र-गुरु तीन, ऐसा आता है न भक्ति में? परन्तु यह तो पहली शुरुआत है, इसलिए इसे शास्त्र का श्रवण कैसा करना? यह मूल मुद्दा है। इसके ऊपर पूरा आधार है। देव के निर्णय का, गुरु के निर्णय का और शास्त्र क्या कहते हैं? और किस ओर ढलने से समकित होता है और किसकी ओर से हटने पर समकित होता है, ऐसी मूल बात शास्त्र सुनाते हैं। समझ में आया?

इसीलिए कहते हैं कि **जिनसे...** जिनसे—जिस पुरुष से। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने से पहले जीव को क्या होता है? कि **जिनसे यथार्थ उपदेश मिलता है,...** यथार्थ उपदेश

की प्राप्ति हो। यथार्थ अर्थात् ? जिनवचन। जिसमें वीतरागभाव का स्थापन हो, रागभाव का उत्थापन हो, ऐसे जिनवचन का सुनना, उसे होता है। होता है, वह सुनना शुभराग। समझ में आया ? ऐसा उसे शुभराग जिनवचन को सुनने का आये बिना रहता नहीं। परन्तु कैसा ? कि यथार्थ उपदेश मिले, ऐसे जिनवचन। एक महासिद्धान्त रखा है यहाँ।

पूरे वीतरागमार्ग का तात्पर्य तो वीतरागता है। दूसरे प्रकार से कहें कि जो प्राणी सम्यग्दर्शन को पाना चाहता है तो उसे निर्दोषता प्रगट करनी है और सदोषता नाश करनी है। इसके बिना वह समकित को किसलिए पाना चाहे ? सदोषता का नाश करना है, निर्दोषता की प्राप्ति करनी है। तब सदोषता वह राग-द्वेष और भ्रान्ति-भ्रमणा, वह सदोषता है। प्ररूपणा में, जिसकी प्ररूपणा में वीतरागपने की श्रद्धा, वीतरागपने का ज्ञान, वीतरागपने का चारित्र और जिसकी प्ररूपणा में राग के अभाव की बात आती हो, ऐसे पुरुष से यथार्थ उपदेश मिले, उसे सुने।

जो ऐसा उपदेश दे कि जिसमें राग से, परालम्बन से, पराश्रय से लाभ होता है, ऐसा कहनेवाला हो, उसका उपदेश इसे सुनने जैसा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? दूसरे प्रकार से कहें तो यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने से पहले भी वह कुछ दूसरे से अलग पड़ना चाहता है। दोष से पृथक् पड़ना चाहता है और अपने स्वभाव में एकत्व करना चाहता है, ऐसी जिज्ञासा है। यह अनादि सदोष में है न ? अनादि सदोष में एकत्व है। अब सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता में उसे सदोष से भिन्न पड़ना है और निर्दोष में एकत्व होना है। एकत्व-विभक्त जो शास्त्र का महासिद्धान्त है, ऐसी जो वाणी कहते हों कि सदोष से भिन्न पड़ने का और निर्दोष से एकता करने का, उस वाणी को जिनवचन कहा जाता है। समझ में नहीं आया ? तुम्हारे चिरंजीवी को कहता हूँ।

जिनसे... इतनी तो इसे विवेक की योग्यता होती ही है। जिसे अभी आत्मा क्या चीज़ है, आत्मा क्या चीज़ है, ऐसा जिसे जानना है और सदोषता चार गति के कारणरूप सदोषता का नाश करना है और निर्दोषता जिसे प्रगट करनी है। धन्नालालजी!

जिनसे यथार्थ उपदेश मिलता है,... प्रश्न करते थे न सवेरे मोरारीजी कहाँ गये ? क्या नाम ? मोरली यह ऐसी मोरलीधर तुम्हारा देखो यह। उसकी मोरली सुनना, ऐसा

कहते हैं। कि जो कुछ उपदेश (सुने)... **जिनसे...** यहाँ वजन है। **यथार्थ उपदेश मिले...** यथार्थ व्याख्या है। उपदेश को यथार्थ कहा है। उपदेश मिले, ऐसा नहीं। कुछ भी उपदेश मिले, उसे सुनना, ऐसा नहीं। सेठी! **यथार्थ उपदेश मिले...** तो यथार्थ उपदेश में क्या आया? **ऐसे जिनवचन...** जिनवचन में यथार्थ उपदेश है। जिनवचन वीतरागी वचन होते हैं। समझ में आया?

पंचास्तिकाय में कहा न? कि जिनके मुख से शब्द... पण्डितजी! यह शब्दआगम। शब्दआगम, ज्ञानआगम और अर्थआगम। तो शब्द आगम कैसा होता है? कि उसमें राग-द्वेष मिश्रित विकृत हुआ पाठ न हो। पंचास्तिकाय में (आता है)। राग-द्वेष से विकृत हुआ पाठ—शब्द न हो। मुख में न हो, लिखा हुआ न हो। जिसमें राग-द्वेष से सदोषतावाला विकृत बना हुआ या राग-द्वेष करनेयोग्य है, राग-द्वेष से लाभ होता है, राग-द्वेष हो तो आगे बढ़ा जाता है, ऐसी जो बात हो, उसे शब्दआगम नहीं कहते। उसे शब्दआगम शास्त्र नहीं कहते। इसलिए लिखे हुए शब्द हों या मुख से बोलता हो। उसमें राग-द्वेष के, पुण्य-पाप के विकल्पों से लाभ होता है, ऐसा पाठ-शब्द न हो। समझ में आया?

पंचास्तिकाय में शब्दआगम, ज्ञानआगम, अर्थआगम—तीन आते हैं। अर्थआगम अर्थात् पदार्थ, ज्ञानआगम अर्थात् ज्ञान। शब्द से ज्ञान की प्रसिद्धि के लिए अर्थ को बताते हैं। तो शब्दआगम कैसा होता है? शब्दआगम किसे कहते हैं? बोलता हो मुख से या लिखा हुआ हो? कि जिसमें राग और द्वेष से विकृत अर्थात् मैला पाठ न हो। अर्थात् कि जिसमें राग-द्वेष स्थापन की बात न हो। राग-द्वेष को बतलाने की बात हो परन्तु राग-द्वेष करनेयोग्य है, पुण्यपरिणाम करनेयोग्य है, यह पाठ है, वह शब्दआगम नहीं। भाई! समझ में आया इसमें? यह पंचास्तिकाय में है। कहाँ है यह? पण्डितजी के साथ बात हो गयी थी। ... आता है न? देखो! (गाथा-३)।

सम अर्थात् अध्यस्थ... संस्कृत। **राग-द्वेष से विकृत नहीं बना हुआ। 'वाद' अर्थात् वर्ण (अक्षर), पद (शब्द) और वाक्य के समूहवाला पाठ।** समझ में आया? इतना। फिर इसका अर्थ अपने नीचे करेंगे। मुख से बना हुआ हो या मौखिक कोष्ठक में

डाला। यह पंचास्तिकाय का मध्यस्थ बना हुआ पाठ। फिर कोष्ठक में डाला मौखिक या शास्त्रारूढ़। अमरचन्दभाई! वाणी भी ऐसी होती है और लिखे हुए शब्द ऐसे होते हैं पाठ के कि जिसमें राग और द्वेष से लाभ हो, राग-द्वेष हो तो आगे बढ़ा जाये, राग-द्वेष हो तो जीव को धर्म प्राप्त करने में अनुकूल पड़े—ऐसा जो पाठ हो, उसे शब्द आगम कहते नहीं। वह कोई भी बोलता हो तो वह वाणी शब्दआगम नहीं, इसलिए वह दृष्टि मिथ्यादृष्टि है। जिसके उपदेश में राग-द्वेष का करना और लाभ है, ऐसा मनाया जाये, उसका उपदेश ही मिथ्यादृष्टि का उपदेश है। वह शब्दआगम नहीं, उसका ज्ञान सम्यक् नहीं, उसकी दृष्टि सम्यक् नहीं। समझ में आया? गजब डाला है भाई इसमें, देखो न! समझ में आया? ऐई! न्यालभाई! यह तो बड़ी जवाबदारी आयी।

जिनसे... जिनसे। यह शब्द पड़ा है। पण्डित जयचन्द्रजी ने तो बहुत सरस अर्थ किये हैं। **यथार्थ उपदेश मिलता है,...** जिनसे यथार्थ उपदेश। तो यथार्थ उपदेश उसे कहते हैं कि जिसमें निर्दोषता का स्थापन हो और सदोषता का उत्थापन हो। सदोषता राग करो, पुण्य करो, क्रियाकाण्ड करो, राग करो तो तुमको धीरे-धीरे समकित होगा, यह शब्दआगम नहीं, यह प्ररूपणा ही खोटी है, यह शब्द झूठे हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : अधिक स्पष्ट करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्टता धीरे-धीरे करते हैं न! भाई ने पूछा था रास्ते में, मोरलीधरजी ने। मैंने कहा आज आयेगा। पूछा था न भाई? रास्ते में आज पूछा था, उसका यह अर्थ आता है। आहाहा!

भाई! जिसे यथार्थ उपदेश मिले, ऐसे जिनवचन शब्द लिये हैं। जिनवचन में तो आत्मा की वीतरागता की ओर ले जाते हैं और सरागता से खींचते हैं, उसे जिनवचन कहा जाता है। राग की उपेक्षा करावे और स्वभाव की अपेक्षा करावे। यह संक्षिप्त व्याख्या है। पूरा जैन आगम, जैन शास्त्र शब्दों हो या लिखे हुए हों। समझ में आया? जिसमें आत्मा प्रभु वीतरागस्वरूप है, सच्चिदानन्दस्वरूप। उसकी एकता की ओर ले जाये और विकार से पृथक् की ओर ले जाये, ऐसी वाणी को जिनवचन और यथार्थ उपदेश कहा जाता है। कहो, धन्नालालजी!

मुमुक्षु : कदाचित् कथंचित्....

पूज्य गुरुदेवश्री : कदाचित्, कथंचित् इसमें नहीं होता।

मुमुक्षु : किसी प्रकार से। परम्परा से हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा से नहीं होता। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ये लड़के हैं न!

जिनसे यथार्थ उपदेश मिलता है, ऐसे जिनवचनों को... ऐसी वीतरागी वाणी, वीतरागी मुख, वीतरागी वाणी, मुख में से निकलते शब्द या पाठ में लिखे हुए शब्द।

मुमुक्षु : यह तो उपदेश....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। तथापि यह तो उपदेश में यह वाँचता हो किसी का पाठ, उसमें उल्टा लगाया हो और यह कहे तो वह पाठ भी सच्चा नहीं। समझे न? एक व्यक्ति कहते थे कि यहाँ आकर मेरे पास... वह क्या कहलाता है? सम्मेदशिखर का माहात्म्य पुस्तक है। मैंने कहा, उसमें क्या है बोलो देखा। उसमें ऐसा लिखा है कि सम्मेदशिखर के दर्शन करे तो ४९ भव में मोक्ष जाये। कहा, यह वीतराग की वाणी का शास्त्र नहीं। वीतरागी वाणी—पर के कारण से, पर के दर्शन से, पर के कारण से भवकटी हो, यह वीतरागी वाणी नहीं। वीतरागी वाणी—आत्मा के आश्रय से भवकटी हो, यह सम्मेदशिखर भगवान आत्मा है। इसका आश्रय ले तो भवकटी होती है। एक भव के बाद एक-दो भव में। उस वाणी को वीतरागीवाणी कहा जाता है। इसलिए सम्मेदशिखर के माहात्म्य की पुस्तक भगवान की कही हुई नहीं है। समझ में आया? बाद में फिर बदल गये वापस। कि खोटा पड़ा। कहे, नहीं, नहीं मैं कहाँ... परन्तु कहाँ तुमने पहले कहा, सम्मेदशिखर के दर्शन से ४९ भव रहे।

मुमुक्षु : ४९ का।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कुछ लिखा है एक माहात्म्य। जिसमें यह श्वेताम्बर में यह शत्रुंजय माहात्म्य लिखा है न बड़ा? वैसा उन लोगों ने यह लिख डाला। दोनों समझने जैसी बातें हैं। ... परदर्शन से पर के लक्ष्य से तो राग है। पराश्रय से तो राग होता है। पराश्रय से भव का अभाव होगा?

भगवान आत्मा... पहले ११वीं गाथा में कहा, '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**' भगवान सच्चिदानन्द प्रभु ध्रुव का आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन होता है। बाकी तीन काल में दूसरी कोई पद्धति है नहीं। भगवान के दर्शन से होता है, देव दर्शन से, वे सब निमित्त के कथन हैं। समझ में आया? वेदना से होता है। आता है न शास्त्र में? जातिस्मरण से होता है, वेदना से समकित होता है, देवदर्शन से होता है, जिनबिम्ब के (दर्शन से) होता है, यह सब निमित्त के कथन हैं। वे इस प्रकार से यहाँ करे, तब वे निमित्त थे, उनका ज्ञान कराने के लिये कथन है। समझ में आया? जवाबदारी बड़ी परन्तु। यह पत्थर-बत्थर में कुछ विचार करते होंगे या नहीं? ऐसे के ऐसे घढ़ डालते होंगे? कि इस नम्बर के करना, फलाना करो। ऐसा आता है या नहीं? भात-भात / डिजाईन। ऐसी डिजाईन चाहिए। यह ध्यान रखना पड़े उसका। ऐसी ऐसे पतरी डाली। सफेद डाली, काली डाली, यह डाली, धूल डाली। यह धूल है न।

मुमुक्षु : .... रचे ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो रच जाये उसके कारण से। कौन रचे? परन्तु यह तो कहे न वह कि ऐसी चाहिए हमारे टाईल्स। बीच में सफेद-सफेद चाहिए। चारों ओर काली-काली चाहिए, फलानी लाल चाहिए। यह सब प्रकार आते हैं न!

यहाँ कहते हैं कि उपदेश यथार्थ उसे कहते हैं कि जिसमें से सदोषता का नाश हो और निर्दोषता की प्राप्ति हो, ऐसा जो उपदेश हो। कोई सदोष अर्थात् राग से, पुण्य से, शुभ से धर्म हो, यह वाणी शास्त्र की नहीं, यह उपदेश शास्त्र का नहीं, यह वाणी जिनवचन नहीं।

मुमुक्षु : निमित्त से तो लाभ है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त से लाभ होता है, ऐसी बात नहीं। लाभ स्व के आश्रय से होता है। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो।' भाई ने कहा वहाँ दौलतरामजी ने। स्व भगवान आत्मा। एक संक्षिप्त भाषा एकत्व और पृथक्। बस यह है। पर से पृथक्त्व और स्व से एकत्व। यह पूरे सिद्धान्त का उपदेश यह है। ऐसा उपदेश जहाँ मिले। इतना तो इसे विवेक करना पड़ेगा। वरना आड़ी-टेढ़ी विपरीतता घुसा डालेंगे। निकलना

मुश्किल पड़ेगा। पहले ऐसा नहीं। यह व्रत पालना, पहले चारित्र कहलाये, चारित्र ऐसे पालन करे, तब हल्का हो। अरे! तुझे आया कहाँ से सम्यग्दर्शन बिना? धूल भी होता नहीं। मिथ्यात्व होता है। आत्मा के अनुभव के आश्रय बिना जितने व्रतादि की क्रिया करे, उसमें मिथ्यात्व का पोषण होता है। क्यों? कि राग की मन्दता में वह धर्म मानता है। उससे शुद्धि होगी, ऐसा मानता है। क्षण-क्षण में मिथ्यात्व की पुष्टि होती है। नरशीभाई!

मुमुक्षु : मर जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : मर गये न परन्तु अनन्त अभिमान में? आहाहा!

कोई भी प्राणी सत्य का शोधक हो। श्रीमद् ने ऐसा कहा भाई! एक सत्पुरुष को तू शोध। ऐसा कहा है उन्होंने। फिर तुझे यदि ज्ञान न मिले तो मेरे पास आना। क्योंकि सत्पुरुष को शोध तो सत्पुरुष कैसा होता है, उसका ज्ञान तो होना चाहिए न इसे। वह तो ऐसी शैली की है उन्होंने—श्रीमद् ने। समझ में आया? सत्पुरुष को शोध और सत्पुरुष तुझे मिले और तुझे फिर ज्ञान न हो, ऐसा नहीं होता। क्योंकि तेरा शोधन यह चीज़ सच्ची है, यह मार्ग सच्चा है, यह कहते हैं वे। ऐसा तुझे बैठा, तेरा स्व का आश्रय हुए बिना रहेगा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जिनसे यथार्थ उपदेश मिलता है,... इसमें सब बड़ा वजन है। वजन अर्थात् तौल होगा इसमें? समझे? मोरलीधरजी! **ऐसे जिनवचनों को सुनना,...** सम्यग्दर्शन न पाया हो तो उसे पहले ऐसे वचन सुनने के ऐसे भाव आते हैं। तथापि उस भाव से सम्यग्दर्शन पाता है, ऐसा नहीं। क्यों? कि यथार्थ जिनवचन सुनने जाता है, वह उपदेश में ऐसा आयेगा कि हमारी ओर तू सुनता है, उस शुभराग से सम्यग्दर्शन नहीं होगा। यह जिनवचन के यथार्थ उपदेश में ऐसा आयेगा। समझ में आया?

जिनसे यथार्थ उपदेश मिलता है,... यथार्थ उपदेश की व्याख्या यह है। यह उपदेश यथार्थ कहनेवाले वीतरागभाव स्थापित करेंगे और उसे श्रवण करनेवाले को भी कहेंगे कि तुझे धर्म प्राप्त करना हो तो स्वआश्रय में जा, राग से पृथक् हो। आहाहा! विचार कर, ऐसा कहते हैं, भाई! लो न संक्षिप्त में। यह विचार कर का अर्थ ही

स्वसन्मुख है। 'कर विचार तो पाम।' इसका अर्थ यह है। तू विचार पाम पर से पृथक् पड़कर। श्रीमद् में ऐसा है। ऐसे अनेक प्रकार की पद्धति है वह। समझ में आया? ज्ञान की क्रिया है अन्दर, ऐसा कहते हैं। यह ऐसा कहेगा यथार्थ उपदेशवाला उसे। भाई! राग और पुण्य-पाप के विकल्प हैं, हैं। तुझे आते हैं। पहली दशा में सुनने के लिये ऐसे भाव होते हैं। परन्तु तुझे धर्म प्राप्त करना हो तो हमारा और हम सुनाते हैं, तुझे सुनाया, ऐसा हमारा राग। हमारी ओर का राग या सुनने के राग से हटकर स्वभाव के ऊपर जा। ऐसा यथार्थ उपदेश मिले, उसे सुने तो वहाँ समकित में पहला अधिकारी अथवा उसकी भूमिका में ऐसा भाव होता है। आहाहा! समझ में आया? शशीभाई!

सम्यक्त्व पाने से पहले का मिथ्यादृष्टि भी ऐसी भूमिकावाला होता है। समझ में आया? उसे आत्मा प्राप्त करना है या नहीं? दूसरी भाषा में (कहें तो) उसे निर्दोषता लेनी है या नहीं? तो सदोषता में तो पड़ा है। अब कुछ करना चाहता है निर्दोषता। तो उसे सुनने में निर्दोष क्या है, यह सुनने का भाव है। और वह निर्दोष क्या? ऐसा यहाँ सुनने का भाव तो शुभ है। परन्तु निर्दोष उपदेश कहनेवाला उसे ऐसा कहेगा कि यह जो हमारे पास तू सुनता है, उसका लक्ष्य बदलकर तेरे सन्मुख लक्ष्य करेगा, तब तुझे सम्यग्दर्शन होगा। उस उपदेश को यथार्थ उपदेश कहा जाता है। ऐसा कोई कहनेवाला मिले कि हमारे सामने देखा करना, हमारा उपदेश सुनेगा तो तुझे समकित होगा। तो वह यथार्थ उपदेश ही नहीं। सुने तो शुभ कहा। शुभभाव कहा। परन्तु शुभभाव में सुननेवाला... सुनाता है, सुनानेवाला क्या सुनाता है? यथार्थ उपदेश। यथार्थ उपदेश का अर्थ (यह कि) राग से पृथक् करना और स्वभाव का एकत्व करना, वह उपदेश है। अमरचन्दभाई!

मुमुक्षु : यही करने का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही करने का है। करना क्या (कूदना) है कोई? आहाहा!

'**एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण**' कहा न पाँचवीं गाथा में? '**जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण धेत्तव्वं**' प्रमाण करना। पर से पृथक् पड़कर स्व में एकत्व

करके प्रमाण करना। ऐसा ही उपदेश सम्यग्दृष्टि हो या मुनि हो या श्रावक हो। उसके मुख में ऐसा ही उपदेश आता है। और विपरीत उपदेश आवे कि राग से लाभ होता है या करते-करते होगा, वह मिथ्यादृष्टि है, उपदेश झूठा है, ज्ञान खोटा है, उसके सुननेवाले तत्प्रमाण माने तो वह भी मिथ्यात्व का पोषण करते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? ईश्वरचन्दजी!

मुमुक्षु : .... दिगम्बर होने की तो कोई बात आयी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिगम्बर में... राग का अभाव करने की बात नहीं आयी? स्व का तीव्र आश्रय करे और राग का तीव्र अभाव हो तो मुनिपना हो जाता है। उसका नाम मुनिपना है। स्व का आश्रय करके सम्यग्दर्शन पावे, स्व का उग्ररूप से आश्रय करे तो साधुपना-चारित्र पावे। और उसकी भूमिका में क्या हो, यह अभी बाद में कहेंगे। यहाँ तो अभी पहला उपदेश सुने। उसके बाद कहेंगे। परद्रव्य का आलम्बन छोड़ने के लिये अणुव्रत, महाव्रत के परिणाम होते हैं। समझ में आया? समकित दर्शन होने के बाद। उसकी बात बाद में लेंगे।

यहाँ तो अभी यथार्थ उपदेश के शब्दों में से भाव आता है। इतना तो उसे विवेक न हो तो वह सुनने को भी पात्र नहीं। सत्य जिनवचन सुनने का पात्र नहीं। **जिनसे यथार्थ उपदेश मिलता है, ऐसे जिनवचनों को सुनना,...** तो जिनवचन तो ऐसा कहेंगे कि, स्व का आश्रय ले, पर का आश्रय छोड़। ऐसा जिनवचन कहेंगे। मुनि भी ऐसा कहेंगे, श्रावक भी ऐसा कहेंगे, समकिती भी ऐसा कहेंगे। सुननेवाले को भी ऐसा सुनना पड़ेगा। ऐई! समझ में आया? वापस 'धारण करना' यह दूसरा शब्द आया। यह सुना हुआ टिकाये रखना। इससे विरुद्ध कोई कुछ बदलना चाहे तो बदले नहीं। उसे धार रखना। उस उपदेश में ऐसा आया था कि राग से पृथक् होना और स्वभाव से एकत्व होना। सदोषता का अभाव करना और निर्दोषता प्रगट करना। ऐसा जो कहा, उस बात को धार रखना।

मुमुक्षु : धार रखना अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : पकड़ रखना अन्दर अवाय करके निर्णय करके रखना पक्का।

दूसरी बात कोई कहता हो तो सामने (कहे कि) नहीं, ऐसा नहीं होता। समझ में आया? ... ऐसा कहते हैं। अरे.. भगवान!

मुमुक्षु : ग्वाला जैसा हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्वाला जैसा हो वह भी सुने। कहा नहीं? कल रात्रि में नहीं कहा था? ग्वाला की बात नहीं सुनी थी कल? श्रीमद् राजचन्द्र ऐसे जाते थे और ग्वाला खड़े रहे देखते-देखते। हाथ में लोटा (लेकर) जंगल जाते थे। ऐसे ... ग्वाला लोग खड़े थे। भरवाड समझते हो न? ग्वाला। गाँव के बाहर खड़े थे। श्रीमद् जंगल जाते थे। लोटा हाथ में था। ऐसे देखते थे ग्वाला। ऐसे धीरे से चलते हों। अन्दर की ... वापस आये न, वापस देखा करे। श्रीमद् को ऐसा लगा कि इनकी अनुकरण वृत्ति लगती है इन लोगों की। अनुकरणवाली अनुसरण करनेवाली इनकी वृत्ति लगती है। इसलिए आकर कहा, भाईयों! तुम आँखें बन्द करके, मैं परमेश्वर हूँ—ऐसा विचारो। ऐसा सीधा शब्द कहा। भाईयों! तुम आँखें मींचकर मैं एक परमेश्वर हूँ, ऐसा कहो। ग्वाले सरल थे और अन्तरंग देखा था, इसलिए तर्क नहीं उठा। अरे! परन्तु हम अभी भगवान! बनिया हो तो इनकार करे। पढ़े हुए-गुने हुए इनकार करे। पढ़े हुए इनकार करे। नहीं, नहीं भगवान अभी? अभी भगवान! ऐसा ही, हों! सीधे सीधे। बातचीत की नहीं। परन्तु उन्होंने देखा कि यह मेरे सामने बहुमान से अनुकरण करके... गया वह आया वहाँ तक सामने देखा करे। कहा न ८वीं गाथा में? टग टग देखा करता है। अनिमेष। उसकी एक योग्यता है अनुकरण की। ज्ञानी धर्मात्मा क्या कहते हैं? समझे भले नहीं कुछ। क्या कहते हैं यह? फिर उसका अर्थ करते हैं तब... ओहो! यह! आत्मा। कहा तो समझे नहीं। आत्मा अर्थात् भाई! यह श्रद्धा, जाने और स्थिर हो, वह आत्मा। वह आत्मा! ऐसे इसको देख ग्वाले को... सेठी! यह पढ़े हुए शास्त्र के हों तो भगवान कहे तो कहे नहीं। ऐसा नहीं होता। अभी भगवान हो?

७२ गाथा में नहीं कहा? भगवान आत्मा। भगवान आत्मा। आस्रव अशुचि है। पुण्य-पाप के भाव, वे अशुचि-मैल हैं। शैवाल की भाँति—काई की भाँति अनुभव में आते हैं, मैले हैं। भगवान आत्मा निर्मल है। ऐसा पहले से ही ७२ गाथा में अमृतचन्द्राचार्य

ने टीका में लिया है। भगवान आत्मा! पुण्य-पाप के परिणाम हैं, आस्रव, वे तो जड़ हैं, अचेतन हैं, चेतन का नूर उनमें नहीं; इसलिए विपरीत हैं, ऐसा कहा है। अशुचि, विपरीत और दुःखकारण। और भगवान आत्मा चेतनमूर्ति आनन्दकन्द है। इसलिए दोनों भिन्न जानकर आस्रव वे दुःखरूप हैं; भगवान आत्मा दुःख का कारण नहीं, सुखरूप है। तीनों में भगवान-भगवान लिया है। अशुचि, विपरीत और दुःखकारण। समझ में आया? उसे ऐसा नहीं कहे सुननेवाले को। भगवान-भगवान अभी हम भगवान नहीं और भगवान... अरे! सुन तो सही। भगवान है। आहाहा! ऐसे (यह कहे), अरे! भाईसाहब! हम पामर प्राणी को।

एक व्यक्ति यहाँ से सुनकर गया था। ... भगवान आत्मा। सुनकर गया। फिर एक बड़े पण्डित के पास गया। वहाँ ऐसा कहता है कि (भगवान है)। अरे! भगवान आत्मा कैसा अभी? अभी भगवान-भगवान नहीं। अरे! अभी नहीं, तीनों काल में है, सुन न अब। यहाँ बात आती है न। बात आवे कि आत्मा भगवान है, बापू! उसमें अकेली निर्दोषता है। सदोषता तो उपाधि है। उसका मूलस्वभाव नहीं। भगवानरूप से ही परमात्मा बुलाते हैं। भगवान आत्मा। तो कहे, नहीं। इनकार करे तो नहीं चले। ... अन्दर। सुन न अब। हाँ कर न! समझ में आया? हाँ कर तो चला आ और न कर तो नरक में जा। नरक और निगोद दो है। दूसरा है नहीं तेरे लिये। सुन! ऐई सेठी!

यथार्थ उपदेश सुनता है, वह ऐसा कहे कि तू शक्ति से परमात्मा है। भगवान साक्षात् परमेश्वर है। ऐसा यथार्थ उपदेश में आवे। तेरी पर्याय में मलिनता है, अन्तर स्वभाव में एकत्व कभी हुआ नहीं। एकत्व हुआ नहीं और एकत्व से आत्मा को लाभ भी होता नहीं। और पुण्य-पाप के विकल्प से पृथक्ता और स्वभाव के एकत्व से लाभ, वह यथार्थ उपदेश में आयेगा। वह झेलेगा, हाँ करेगा। भले है शुभराग। परन्तु उसने कहा कि हमारी ओर है। परन्तु तुझे तेरी ओर ढलने से तुझको लाभ होगा। ऐसा यथार्थ उपदेश सुने, ऐसा उसे शुभभाव समकित पाने से पहले आये बिना रहता नहीं। समझ में आया?

पश्चात् **धारण करना...** देखो! उसे धार रखे। वापस ऐसे हलाहल मिट्टी के कीले की भाँति। गार समझते हो? यह गार नहीं करते? गार करते हैं। अब तो पत्थर हो गये।

वरना गार (मिट्टी) करते थे। फिर उसमें कीला डाले। खूँटा। खूँटा रहे उसमें? वह बैल बाँधे तो ऐसे खींचे तो ऐसे जाये और ऐसे खींचे तो ऐसे जाये। खूँटा मजबूत रहे नहीं। इसी प्रकार यह धार रखा हो तो मजबूत रहे। भगवान का मार्ग यह है। समझ में आया? राग से पृथक् होना और स्वभाव से एकत्व होना। ऐसा जिनवचन कहते थे, ऐसा इसे धार रखना चाहिए। चाहे जहाँ जाये तो यह बात इसे हटे नहीं। ऐसा इसे भाव होता है। समझ में आया? एक बात हुई।

तथा जिनवचनों को कहनेवाले... वह जिनवचन की बात की। उनके **कहनेवाले श्री जिन-गुरु...** देखो ऐसे **कहनेवाले श्री जिन-गुरु की भक्ति,...** ऐसे की भक्ति। जो कोई राग से लाभ मनावे, वीतरागमार्ग में पृथक्पना न कहे और राग की पृथक्ता है, उससे एकत्व और लाभ मनावे, वह जिन के गुरु नहीं और जिन के साधु भी नहीं।

मुमुक्षु : उनकी भक्ति करना....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में हुआ न। उनकी भक्ति करना और इनकी भक्ति होती नहीं। होती ही नहीं उसे। ऐसा कहते हैं यह तो। कहो, समझ में आया इसमें? भारी कठिन काम है, हों! यह सब भी। उसमें सबमें महत्ता सेवन की हो, उसमें से निकलना (भारी कठिन)। सेठिया कहलाते हों गाँव में, लो! महिलाओं में कहलाती हो बड़ी। अब उसमें से निकलना हो.. हाय..हाय..!

मुमुक्षु : भारी पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : भारी पड़े? किसका कहते हो तुम? कहो, समझ में आया इसमें?

पहले समकित पाने से पहले जिनवचनों के कहनेवाले श्रीगुरु—जिनगुरु की भक्ति। आहाहा! परन्तु डाला देखो न! भूतार्थ का आश्रय किया नहीं, भूतार्थ का आश्रय किया नहीं। सम्यग्दर्शन पाया नहीं। परन्तु पाना चाहता है, उसे कैसा शुभभाव होता है? उसकी व्याख्या करते हैं। शुभभाव ऐसा होता है। और यह सुनने में वह सुनाता है, ऐसा कि तुझे राग है, ऐसा सुनता है न हमारी ओर? हाँ। परन्तु इससे पृथक् होकर स्व का आश्रय कर तो धर्म प्राप्त करेगा। समझ में आया? यह शुभराग रखकर तुझे समकित

होगा, ऐसा नहीं। वह यथार्थ उपदेश कहलाता नहीं यदि ऐसा (राग से लाभ) कहे तो। समझ में आया? भाई! करो, कषाय मन्द करो। करते-करते बेड़ा पार हो जायेगा। यह जिनवचन है ही नहीं। **जिनवचनों को कहनेवाले...** अरे! किसी ने शान्ति से वाँचा नहीं। पण्डित ने कहा है, फलाने ने कहा है करके निकाल डाले। अब सुन तो सही यह क्या कहते हैं वे? समझ में आया? यह अन्दर की ११-१२ की सन्धि में से अधूरा रहा, अभी नहीं सम्यक्त्व पाया और पूर्ण हुआ नहीं, उसे कैसा होता है? ऐसी बात उसे होती है। ऐसी बात वर्णन करते हैं।

जिनवचनों को कहनेवाले श्री जिन-गुरु की भक्ति,... जिसकी दृष्टि सम्यक् है, जिसका ज्ञान सम्यक् है, जिसका कथन जिनवचन प्रमाण राग का नाश करनेवाली और आत्मा की निर्दोषता प्रगट करनेवाली वाणी है, ऐसे जिनगुरु की भक्ति। इनके अतिरिक्त की भक्ति वह कर सकता नहीं। ऐसा भाव उसे होता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें बेचारे उलझन में आये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उलझन टालने की बात है। टालने की बात है। यह तो ... मीठालालजी! आहाहा! गजब परन्तु! जिनवचन... जिनवचन... पहले यथार्थ उपदेश मिले उसमें जिनवचन, दूसरे में भी जिनवचनों को कहनेवाले जिनगुरु। क्योंकि जिन वीतराग मार्ग है यह। वीतरागमार्ग में तीनों वीतराग... वीतराग... वीतराग... पुकार करते हैं। आहाहा! प्रभु! आत्मा वीतरागी पिण्ड है, अकषायस्वभाव आत्मा है। उस ओर लक्ष्य कर, उसका आश्रय कर। राग में एकत्वबुद्धि तो भाई! अनादि की है तेरी। समझ में आया? राग भले तू हमारे सामने सुने। परन्तु तुझे सुनने में यह सुनाते हैं कि राग से हटकर स्वभाव के ऊपर आश्रय करना पड़ेगा, वह तुझे सम्यग्दर्शन का कारण है। ऐसे शुभ विकल्प से भी ऐसा सुनता है। उसे ऐसा नहीं होता कि लो! तुम्हारे पास इतना सुनना किस काम का? ऐई! ...भाई! लो! यह तो वापस डालते हैं हमारे ऊपर। ऐसा नहीं होता उसे। बराबर बात है। बात यह बराबर कहते हैं। हम सुनते हैं, हमको शुभराग आता है। परन्तु यह कहते हैं, उस शुभराग की ओर से लक्ष्य छोड़कर एकत्व करना

पड़ेगा, भाई! जहाँ परमात्मा विराजता है, वहाँ तेरी नजर करनी पड़ेगी। इसके बिना तू सम्यग्दर्शन नहीं पायेगा। इस शुभभाव से भी ऐसा सुनता है। शुभभाव की भूमिका में ऐसा सुनकर हकार करता है। समझ में आया? कहो, मुरलीधरजी! तुम तो यहाँ बहुत आये। आहाहा!

जिनबिम्ब के दर्शन... भाषा देखो! जिनबिम्ब कहकर वीतरागी बिम्ब होता है। उसके ऊपर ऐसे फलाना हो और गहने हों, वस्त्र हों और फलाना हो, ऐसा नहीं। इसलिए जिनबिम्ब शब्द प्रयोग किया है। समझ में आया? जिनबिम्ब। जैसे वीतराग थे, वैसा सामने प्रतिबिम्ब हो। मूर्ति के ऊपर वस्त्र हो, या वह क्या कहलाये? आंगी हो या ऐसा होता नहीं। ऐई! जयन्तीभाई! प्रत्येक में जिन-जिन शब्द प्रयोग किया है। जिनबिम्ब। बिम्ब, हों! जिनमूर्ति नहीं की यहाँ तो। क्योंकि यों भी जिन की मूर्ति तो साधारण को कहा जाता है। जिनबिम्ब जैसे जिनेश्वर वीतराग, वैसा उनका प्रतिबिम्ब ऐसा होता है। वीतराग। उसे देखकर भले शुभराग हो अपना। परन्तु जतलाता है कि ओहो! अत्यन्त अक्रिय ज्ञानबिम्ब मानो पड़ा हो! अक्रिय ज्ञानबिम्ब पड़ा हो, ऐसे परमात्मा हैं। ऐसा यह स्वयं लक्ष्य करे तो राग और निमित्त से हटकर वहाँ जाना पड़े स्वभाव में, ऐसे बिम्ब के देखने के शुभभाव में, परन्तु ऐसा इसे लेना चाहिए। समझ में आया?

जिनबिम्ब के दर्शन इत्यादि... इत्यादि शब्द से पूजा हो। **व्यवहारमार्ग में प्रवृत्त होना प्रयोजनवान है;...** अर्थात् ऐसा शुभभाव आये बिना नहीं रहता। इसका नाम प्रयोजनवान, हों! आदरणीय है और उससे सम्यक्त्व होगा, ऐसा यहाँ कहना नहीं। उसे वहाँ ऐसे ज्ञान में शुभभाव वर्तता है, उसे जानता है। भले वह ज्ञान सच्चा नहीं। परन्तु ऐसा भाव होता है। सम्यक्त्व से पहले ऐसा भाव होता है। इसलिए उसे प्रयोजनवान कहा गया है। इसका अर्थ ऐसा नहीं कि शुभभाव ऐसा आवे, इसलिए सम्यग्दर्शन होगा, यह इसने सुना, ऐसा नहीं। इसने सुना है कि वीतरागपना तो ऐसे होगा। हमारे सामने देखने से राग होगा। समझ में आया? कहो, चिमनभाई! क्या यह सब?

मुमुक्षु : .... रीति कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह कहते हैं।

इत्यादि व्यवहारमार्ग में प्रवृत्त होना... अर्थात् कि ऐसा व्यवहारमार्ग शुभभाव उस भूमिका में ऐसा आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? अब यह पूरी बात हुई उसकी।

अब जिसे श्रद्धान-ज्ञान तो हुए हैं। सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ। उसे क्या व्यवहार होता है? यह कहते हैं। **जिन्हें श्रद्धान-ज्ञान...** भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द प्रभु '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**' ध्रुव की अन्तर दृष्टि के अनुभव से सम्यग्दर्शन हुआ। उसके अन्तर ज्ञान से सम्यग्ज्ञान हुआ। **किन्तु साक्षात् प्राप्ति नहीं हुई...** पूर्ण शुद्ध उपयोग की परिणति पूर्ण हुई नहीं। आत्मा अत्यन्त अभेद पर्याय में परिणम जाये शुद्ध में, ऐसी दशा हुई नहीं। **उन्हें पूर्वकथित कार्य,...** पूर्व कथित जो लिये वे। क्या? उन्हें भी 'जिनसे यथार्थ उपदेश मिलता है, ऐसे जिनवचनों का सुनना...'

मुमुक्षु : दूसरे का नहीं सुनना?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसको नहीं सुनना तो इसको भी नहीं सुनना। सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी को भी जब तक शुद्धोपयोग की पूर्ण प्राप्तिरूप केवलज्ञान न हुआ हो, तब उसे कैसा व्यवहार आता है, वह समझाने के लिये यह बात की है। पूर्वकथित अर्थात् जिनवचनों का सुनना, यथार्थ उपदेश मिले, ऐसे जिनवचनों को सुनना। समकिती भी जहाँ यथार्थ जिनवचन मिले, उन्हें सुनने का भाव उसे शुभराग आता है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी भी जहाँ यथार्थ उपदेश जिन की वाणी का वीतरागता का स्थापन हो, उसका सुनने का शुभराग समकिती को भी आता है, तथापि उस शुभराग से आगे बढ़ेगा—ऐसा यहाँ कहना नहीं है। उसे शुभराग ऐसा होता है। आहाहा! गजब लिखा है भाई ने।

ऐसे जिनवचनों को सुनना, धारण करना... उन्हें भी धार रखना। वीतरागभाव जो सामने कहते हों, उसे धार रखना। और जिनवचन में जिनगुरु की भक्ति करे सम्यग्दृष्टि ज्ञानी। वह जिनगुरु की भक्ति करे। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जिनगुरु वीतरागी दृष्टि हो, वीतरागी ज्ञान हुआ हो, ऐसे वीतरागी आचरण हुए हों, ऐसे जिनगुरु की भक्ति समकिती भी करे। ऐसा शुभभाव आये बिना रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐई! नेमिदासभाई! अपने से अधिक हो तो वह भक्ति व्यवहार के लिये है। यहाँ तो यथार्थ भक्ति (कहते हैं)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। यह तो फिर अपनी अपेक्षा अट्ठाईस मूलगुण निर्दोष हो, आगमप्रमाण व्यवहार श्रद्धा स्पष्ट हो। आगम प्रमाण और अट्ठाईस मूलगुण चुस्त (हो)। उसके लिये आहार-पानी चौका बनाकर ले तो व्यवहार भी खोटा है। उसे तो समकिती व्यवहार से भी वन्दन न करे। जिसके अट्ठाईस मूलगुण (हों)। उसके लिये आहार करके ले नहीं। निर्दोष आहार-पानी हो। ४२-४७-९६ दोषरहित और आगम प्रमाण व्यवहारश्रद्धा चुस्त हो। वह ऐसा न कहे कि इस शरीर की क्रिया मैं कर सकता हूँ। ऐसा वह न कहे। अन्तर दृष्टि खोटी भले हो। समझ में आया? उसका उपदेश भी व्यवहारिक आगम का यथार्थ हो, आचरण भी व्यवहारिक यथार्थ, श्रद्धा भी व्यवहारिक यथार्थ, आगम का ज्ञान भी व्यवहारिक यथार्थ हो। अपनी अपेक्षा विशेष त्यागी देखकर उसे वन्दन करे। वह पर है और भक्ति भी व्यवहार है। शुभभाव है। उसे ऐसा होता है। अन्दर समझे कि वस्तु उसे है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। कहे नहीं। अन्दर में अन्तर ही होता है। आवे प्ररूपणा (उसमें) पूर्वापर विरोध हुए बिना रहे ही नहीं।

मुमुक्षु : परन्तु अभी तो पंचम काल है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल है तो क्या है? पंचम काल में रोटी के बदले, आटा के बदले धूल खाता है कोई? क्या है? पंचम काल में आटे की जगह धूल खाता है? पंचम काल में पानी पीने के बदले पेशाब पीता है कोई? पंचम काल में। पंचम काल में जैसे दर्शन और ज्ञान होना चाहिए, वैसे अभी भी होना चाहिए। समझ में आया? हमारे धन्नालालजी वकील हैं। देखा!

जिनवचनों को कहनेवाले श्री जिन-गुरु की भक्ति,... समकिती करे। वीतरागी प्ररूपणा करते हों, वीतरागी दृष्टि और वीतरागी ज्ञान हो, ऐसों की भक्ति समकिती करे। समझ में आया? यह तो सच्चे की बात है न। वह तो फिर एक द्रव्य की... मानो कि उसे दृष्टि नहीं, भान नहीं, परन्तु उसका व्यवहार चुस्त है। आगे बढ़ा हुआ है व्यवहार में।

कषाय मन्द, पंच महाव्रत चुस्त, अट्ठाईस मूलगुण चुस्त, शास्त्र प्रमाण श्रद्धा (चुस्त है)। यह तो शास्त्र प्रमाण श्रद्धा का ठिकाना भी अभी कहाँ है व्यवहार से? व्यवहार के आचरण का भी ठिकाना नहीं। यह तो सब उघाड़ा है। अभी उघाड़ा स्पष्ट दिखाई दे ऐसा है। अभी कुछ गुप्त बात नहीं।

हमने तो हमारा सब देखा है न हमने हमारा? १५-१५ वर्ष हमारी क्रिया देखी हो तो तुमको ऐसा लगे हमारे गुरु कहे कि यह इस कानजी को क्या हो गया? जिसके— साधु के लिये दस-दस सेर पानी गर्म करके दे उसके कमण्डल में। पाँच सेर पाँच सेर गर्म उसके लिये करे सवेरे से ले। हमारे गुरु तो एक पानी की बूँद कहीं की हो ऐसे पाव सेर पानी गर्म। कहे, यहाँ पानी क्यों है? महाराज! हमारे नहाने के लिये किया था। कौन नहाया है? पूछे, हों! परीक्षा (करे)। कहाँ नहाया है? किस जगह नहाया? पोल निकले। पानी न ले। पानी न ले, पानी के बिना दिन के दिन चलाये हुए हैं। पानी नहीं, हों! मठ्ठा ले आवे कहीं से। मठ्ठा समझे न? छाछ मिले। किसी समय तो छाछ भी न मिले चारों प्रकार के आहार त्यागरूप अपवास कर डाले।

एक यहाँ हमारे धोलेरा है। धोलेरा से ७२ मील से आये थे। सोढ़ी गाँव है सोढ़ी। वहाँ सब मोढ़। निर्दोष पानी मिले नहीं। हम साथ में थे। पानी बिना चौविहारा। अर्थात्? ४८ घण्टे में पानी मिला। गाँव में जाये तो पानी मिले परन्तु बनाया हुआ। कर रखा हो, साधु के लिये किया हो। मोढ़ की बस्ती। सोढी है नावडा, धोलेरा से नावडा के बीच आठ कोस। धोलेरा आहार किया था तो ४८ घण्टे में नावडे (में) पानी पिया। हम स्वयं उस समय ऐसी हमारी क्रिया थी। सख्त-कठोर क्रिया। हमको आहार देना पड़े तो सेठिया काँपें, महिलायें काँपें, हों! सेठानी काँपे कि हाय... हाय! यहाँ दोष निकालेंगे, यहाँ दोष निकालेंगे। निर्दोष आहार-पानी हो परन्तु यदि एक जरा भी उसकी साड़ी ऐसे... (गुजराती में) साडलो कहते है न। छोर। एक कपासिया का दाना पड़ा हो उसे खड़े होते उसको छू जाये तो आहार बन्द। आहार बन्द, वह घर बन्द। यहाँ देखे तो ठिकाना नहीं होता। यहाँ तो सवेरे से शाम तक बारह तक तो पानी लाओ। उसके लिये गर्म करो। यह कुकर्म। यह वह जैनमार्ग है? ऐई! शशीभाई! आज महाराज को दान

देना है। आहार देना है। सवेरे से ग्यारह तक रमझट आरम्भ की। मौसम्बी पानी चाहिए। मौसाम्बी ले आओ रुपये-दो रुपये के। यह मार्ग वह व्यवहार का ठिकाना नहीं, उसे निश्चय का तो कहाँ भान है? समझ में आया? ऐसे जिनगुरु की भक्ति न करे, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : वह गुरु ही कहाँ है? जिन कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : जिन बाहर से तो कहलाये न नाम। ऐसी प्ररूपणा आदि करते हों, उनकी भक्ति।

समकिती जिनबिम्ब के दर्शन करे। उसे ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। ऐसा मान ले समकित दर्शन हुआ, फिर जिनबिम्ब का क्या? परन्तु ऐसा भाव आता है। यात्रा का भाव आता है, जिनबिम्ब के दर्शन का भाव आता है, सच्चे सन्त के दर्शन का भाव आता है, होता है। उसे व्यवहार कहा जाता है। तथापि उसकी दृष्टि में उसका आश्रय नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... रखना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह रखे बिना तो कहाँ था व्यवहार? पिच्छी, कमण्डल हो तो क्या करे? विपरीत मारता हो प्ररूपणा श्रद्धा आदि को। पिच्छी कण्मडल कहाँ गये? आता नहीं मोक्षमार्गप्रकाशक में? वे साधु थे। वहाँ नहीं। आहार लेने आये थे। तुम यहाँ कहाँ से? वह साधु नहीं। आहार नहीं दिया। कहीं थे। लब्धि थी। नहीं? सप्त ऋषि। कहीं थे और एकदम आये कार्तिक कृष्ण एकम को। यह कहाँ से? चातुर्मास आसपास तो किसी का था न नहीं। यह साधु नहीं। आहार नहीं दिया। फिर और जहाँ मन्दिर में दर्शन करने जाते हैं, वहाँ बैठे। ओहो! यह तो मुनि को ... हमको खबर नहीं। तुम आ गये कहीं से? आसपास थे नहीं। हम तो लब्धिधर हैं, इसलिए आये। ओहो! इतनी शंका पड़े तो नहीं दिया।

मुमुक्षु : यह तो शंका पड़े, ऐसा है ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शंका पड़े, ऐसा है ही नहीं। यह तो स्पष्ट बात है। अभी तो ढ़िढोरा पीटकर उघाड़ी बात है सब।

यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव जिनबिम्ब के दर्शन करे, जिनवचन को सुने और जिनगुरु की भक्ति करे। जिनबिम्ब के दर्शन करे, हों! ऐसा नहीं कि वह समकिती हो गया (इसलिए कुछ नहीं)। बापू! अभी वीतरागता नहीं। इसीलिए उसे वीतराग प्रतिमा, वीतराग देव, वीतरागी गुरु के ऊपर बहुमान का भाव भूमिका प्रमाण आये बिना रहता नहीं। उसे व्यवहार जाननेयोग्य कहते हैं। उसे व्यवहार जाननेयोग्य है। तुम तो पाने के पहले व्यवहार आवे वहाँ निर्णय करने का (आता है), निर्णय करे तो उसको राग की मन्दता कहा जाता है। कहो, समझ में आया? इतनी बात तो पूर्व में कही, इतनी समकिती को होती है।

अब तदुपरान्त **परद्रव्य का आलम्बन छोड़नेरूप...** अब इसके अणुव्रत-महाव्रत के परिणाम की बात करते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित और अनुभव स्थिरतासहित चारित्रसहित। यहाँ व्यवहार सिद्ध करना है न। परद्रव्य का आलम्बन। मोक्षमार्गप्रकाशक में ५७ पृष्ठ पर परद्रव्य का निमित्त मिटाने की अपेक्षा से, ऐसा पाठ है। ५७ पृष्ठ पर। मोक्षमार्गप्रकाशक में। यह आया था तुम्हारे। यहाँ आया था। निमित्त मिटाने की सापेक्षता। २५७ पृष्ठ पर है। २५७। तत्त्वश्रद्धान ज्ञानपूर्वक... यहाँ आया। यहाँ भी तत्त्वश्रद्धान-ज्ञान तो हुए हैं, भाई! उनके बाद की बात है। यहाँ भी यह है। तत्त्वश्रद्धान-ज्ञानपूर्वक परन्तु व्यवहारनय से... यह शब्द पहला पड़ा है। व्यवहारनय से इतना। तत्त्वश्रद्धानपूर्वक यह निश्चय है। व्यवहारनय से शब्द पड़ा है, वह परद्रव्य के निमित्त को मिटाने की अपेक्षा से पड़ा है। वापस ऐसा नहीं कि व्यवहारनय से तत्त्वश्रद्धान-ज्ञानपूर्वक, ऐसा नहीं। भाषा तो ऐसी है कथन में। व्यवहारनय से, तत्त्वश्रद्धान-ज्ञानपूर्वक अर्थात् कि तत्त्वश्रद्धान-ज्ञान तो निश्चय है। उसे व्यवहारनय से परद्रव्य के निमित्त मिटाने की अपेक्षा द्वारा... वीतरागभाव के भेद व्यवहार से। वीतरागभाव के भेद व्यवहार से (अर्थात्) वह विकल्प, हों! उसे बताने से वीतरागभाव की पहिचान होती है। यहाँ प्रवृत्ति की बात करनी है। उसे शुभभाव कैसा होता है। समझ में आया?

परद्रव्य का जितना राग मन्द हो। स्वभाव आश्रित दृष्टि है समकिती की। स्वभाव आश्रित ज्ञान है, स्वभाव आश्रित स्थिरता भी है। परन्तु उसे ऐसा व्यवहार आता है कि

व्रत में जितना अव्रत के परिणाम में पर के ऊपर लक्ष्य है विशेष। स्त्री, कुटुम्ब, पाप के परिणाम। उनसे हटने के लिये अणुव्रत के परिणाम में राग की मन्दता होती है। परद्रव्य के निमित्त का आलम्बन का लक्ष्य छोड़ना। समझ में आया? इतना राग मन्द होता है, उसे व्यवहार कहा जाता है।

अणुव्रत-महाव्रत... मुनि को महाव्रत। वह भी परद्रव्य का विशेष लक्ष्य है न। बहुत कषाय का अभाव हो गया, पंच महाव्रत के ऐसे परिणाम हैं। उसे बहुत व्यापार-धन्धा आदि का लक्ष्य भी छूट गया। उसको अभी व्यापार-धन्धे का था। तीव्र जो राग... था, इसे वह भी छूट गया। बहुत परद्रव्य का लक्ष्य, आलम्बन छूट गया। विशेष स्थिरता का, कषाय का मन्द भाव महाव्रत का होता है। यह उसे अणुव्रत-महाव्रत का ग्रहण अर्थात् ऐसे भाव हों, उसे ग्रहण, ऐसा कहा गया है।

समिति... उसे समिति, हों! दोनों को हों आंशिक। श्रावक को आंशिक हो। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में कहा है कि जितना आचार मुनि का कहा, उसका एकदेश श्रावक को भी होता है। पण्डितजी! श्लोक है। जितने सम्यग्दृष्टि श्रावक हैं पंचम गुणस्थान में उनमें थोड़ा आंशिक भी समिति आदि सब होता है। यह शुभभाव की बात है यह तो।

मुमुक्षु : बुद्धिपूर्वक की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बुद्धिपूर्वक की बात है यह। शुभराग।

समिति, गुप्ति,... शुभराग। **परमेष्ठी का ध्यान...** पंच परमेष्ठी का ध्यान करे। मुनि करे, श्रावक भी करे। ऐसा **प्रवर्तन तथा उसी प्रकार प्रवर्तन करनेवालों की संगति करना,...** लो! शुभभाव आवे और ऐसे जीव हों, उनका संग करे, ऐसा शुभभाव होता है। ऐसे जीवों का संग करना, ऐसा शुभभाव होता है। **एवं विशेष जानने के लिये शास्त्रों का अभ्यास करना...** यह व्यवहार, हों! अभी। वह शुभभाव। विशेष जानने के लिये शास्त्र का अभ्यास, वह शुभभाव। **इत्यादि व्यवहारमार्ग में स्वयं प्रवर्तन करना...** देखो! शास्त्र का अभ्यास भी व्यवहारमार्ग शुभभाव। आहाहा! जिनबिम्ब के दर्शन शुभभाव, पंच परमेष्ठी का ध्यान शुभभाव, समिति-गुप्ति का भाव शुभभाव, महाव्रत-

अणुव्रत का भाव शुभभाव। **और दूसरों को प्रवर्तन कराना...** दूसरे को भी उपदेश में आवे कि ऐसा शुभभाव श्रावक को होता है अणुव्रत का, (मुनि को) महाव्रत का और संगति करने का, सच्चे सत्समागम में संग करे, ऐसा भाव उसे होता है। ऐसा उसे कहते हैं। समझ में आया? **ऐसे व्यवहारनय का उपदेश अंगीकार करना...** अर्थात् जाननेयोग्य है। ऐसा हो, वह उसे जाननेयोग्य है। विशेष कहेंगे, लो...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण कृष्ण १२, सोमवार, दिनांक - १२-०९-१९६६
गाथा - १२, श्लोक - ४, प्रवचन - ४५

ऐसे व्यवहारनय का उपदेश अंगीकार करना प्रयोजनवान है। यहाँ तक आया है। क्या कहा यहाँ तक? कि जहाँ सम्यग्दर्शन—आत्मा का भान हुआ, अनुभव दृष्टि हुई कि राग का भी मैं कर्ता नहीं, परद्रव्य का भी कर्ता नहीं, ऐसा अन्तर में ज्ञाता-दृष्टा का भान हुआ, वह तो निश्चयस्वभाव के आश्रय से हुआ। परन्तु ऐसे धर्मात्मा को भी वर्तमान दशा में शुभराग का व्यवहार होता है। शुद्धता की कमी होती है और शुभराग होता है। उसको वह व्यवहारनय जाना हुआ उस काल में वैसा है, ऐसा जाना हुआ प्रयोजनवान है। वह जाना हुआ। अंगीकार करने का अर्थ यह है। समझ में आया? प्रयोजनवान है, ऐसा कहा है, देखो! वहाँ नहीं कहा था। पहले की बात नहीं है। अपने अभी पहले की बात चलती है। अभी तो पहले की चलती है, देखो! **...प्रयोजनवान है।** यह पहले की बात चली अभी अब तो। अब जहाँ तक ज्ञान-श्रद्धान... यह बाद में आता है। समझ में आया?

पहले में ऐसा आया कि मूल तो मूल सिद्धान्त रखकर बात होती है न। आत्मा रजकण की अवस्था में भी नहीं, राग में भी नहीं, अल्पज्ञ दशा में भी आत्मा नहीं। समझ में आया? शरीरादि परद्रव्य में अपना आत्मा नहीं, दया, दान के विकल्प में आत्मा नहीं। एक समय की अवस्था में आत्मा नहीं। देखो! यह दूसरी शैली से बात (आती है)। आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध चैतन्य ध्रुव, वह आत्मा है। उस आत्मा की अन्तर अनुभव दृष्टि करना और शुद्ध ध्रुव का आश्रय करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और स्वरूप आचरण दशा कहा जाता है।

अब जब कहा कि शुद्धनय भूतार्थ सत्य वस्तु त्रिकाल, वह सत्य है और पर्याय में रागादि असत्य है, ऐसा जो कहा था, उसका बारहवीं गाथा में स्पष्टीकरण किया कि

ऐसे धर्मी को सत्यस्वरूप परमानन्दमूर्ति आत्मा ध्रुव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ। परन्तु पर्याय में अभी पूर्ण शुद्धता प्रगट नहीं हुई। केवलज्ञानादि पूर्ण दशा नहीं हुई तो उसे उस काल में अशुद्धनय का भाव, एक-एक भाव बताया हुआ, ऐसे अनेक भाव जो पर्याय में दिखते हैं, उसे वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। जानने का नाम प्रयोजनवान है। समझ में आया? यह बात ११-१२ सन्धि की धर्मी की कही।

अब जो धर्म नहीं पाया, उसे क्या? यह स्पष्टीकरण स्वयं जरा पण्डित जयचन्द्रजी करते हैं। ११ और १२वीं गाथा के अन्दर के पाठ का तो इतना ही अर्थ है। अब सम्यग्दर्शन, आत्मा अनुभव शुद्ध चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा का अनुभव श्रद्धा-ज्ञान नहीं, ऐसे जीव को क्या होता है? ऐसे जीव को क्या होता है? उसके बदले अंगीकार करना, ऐसा कथन है। वास्तव में उसे क्या होता है?

जिनवचन का सुनना यथार्थ उपदेश करनेवाले का। जिनवचन यथार्थ कहनेवाले गुरु की भक्ति करना, जिनबिम्ब के दर्शन इत्यादि। और आगे बढ़ने पर परद्रव्य का आलम्बन-निमित्त मिटाने के लिये सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित कषाय की मन्दता के जो भाव हैं, वे अणुव्रत और महाव्रत उसे होते हैं। उसको व्यवहार कहा जाता है। कहो, समझ में आया? और इसे शास्त्र का अभ्यास करना, ऐसा व्यवहार मार्ग में (प्रवर्तना)। अर्थात् उसका शुभभाव होता है, उसमें उसे प्रवर्तना, ऐसा यहाँ व्यवहारनय की प्रधानता से कथन है। समझ में आया? इससे ऐसा नहीं हो गया कि शुभभाव आचरणीय है, आदरणीय है। ऐसा माने तो व्यवहारनय तो अनुसरनेयोग्य नहीं। समकिती को कहनेवाले को और सुननेवाले को। यह ८वीं गाथा में आ गया है।

मुमुक्षु : किसी को अनुसरनेयोग्य नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी को नहीं। ८वीं गाथा में आ गया है **'व्यवहारनयो नानुसर्तव्यः'**। भगवान आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्र से आत्मा प्राप्त होता है, इसलिए आत्मा उसे प्राप्त करे, ऐसा जो व्यवहार कहा, वह निश्चय के अभेद को समझाने के लिये (कहा है)। परन्तु कहनेवाले को उस व्यवहार का अनुसरण नहीं करना और सुननेवाले को उस भेद का अनुसरण नहीं करना। आहाहा!

मुमुक्षु : सर्वथा '**नानुसर्तव्यः**'।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वथा '**नानुसर्तव्यः**'। कहो, इन्होंने सर्वथा डाला। अर्थात् ऐसा कि सर्वथा '**नानुसर्तव्यः**'? सर्वथा '**नानुसर्तव्यः**'। सर्वथा है। कलशटीका में आ गया है एक पृष्ठ पर चार जगह बोल। कलशटीका में बहुत स्पष्ट डाला है। समझ में आया? सर्वथा आदरणीय नहीं। है, इस अपेक्षा से है, जाननेयोग्य है। परन्तु व्यवहारनय सर्वथा आदरणीय नहीं। समझ में आया? क्या कहलाये वह कलशटीका है न? कलशटीका कौनसी? यह। एक जगह है न टीका में चार बोल? एक जगह है। एक जगह चार सर्वथा। लो! यह कहाँ होगा, वहाँ पृष्ठ निकला, भाई! दो, तीन, चार, पाँच यह सर्वथा बोल के लिये कहा है। क्या कहते हैं? देखो! श्लोक १८१। पण्डितजी! '**प्रज्ञाछेत्री शितेयं कथमपि निपुणैः पापिता सावधानैः**' उसमें स्वयं राजमलजी ने टीका की है। पहले से शुरु है, देखो एकड़ा।

जीव के प्रदेशों में सर्वथा बन्धरूप होकर सम्बन्ध छूट जाये। सर्वथा शब्द प्रयोग किया है। एक। दूसरा। **शुद्धत्वपरिणमन सर्वथा सकल कर्मों को क्षय करने का कारण है।** व्यवहार नहीं। दो। तीसरा। समझ में आया? शुद्धत्वपरिणमन। पहले आया न वह सर्वथा अबन्धरूप होकर। दो। **शुद्धत्वपरिणमन सर्वथा सकल कर्मों को क्षय करने का कारण है।** तीसरा। **शुद्धत्वपरिणमन सर्वथा द्रव्य का परिणमनरूप है।** चौथा। **जो ज्ञान वह, जीव या शुद्धत्वपरिणमन को सर्वथा लिये हुए है।** अपने कारण से शुद्धता परिणमी है। चौथा। समझ में आया? है न? पाँचवाँ। **अन्यथा सर्वथा प्रकार अनुभव नहीं होता।** क्या कहते हैं? **शुद्धजीव का स्वरूप का अनुभव अवश्य होता है।** शुद्धत्वस्वभाव के आश्रय से शुद्धत्व का अनुभव होता है। **अन्यथा सर्वथा प्रकार अनुभव नहीं होता।** बहुत टीका स्पष्ट डाली है। समझ में आया? कहा, सर्वथा कहीं है अवश्य। वहाँ यह पृष्ठ निकला। देखो न! क्या काम करता है। पुण्य भी कितना काम करता है! यह तो पुण्य की बात। यहाँ पुण्य का योग पृष्ठ ऐकड़ा, दोकड़ा देखो यह लिखा है, एक, दो, तीन, चार, पाँच। एक पृष्ठ में सर्वथा शब्द पाँच (बार) पड़ा है इनका। राजमल टीका और १८१ श्लोक है। और क्या कहलाता है वह? मोक्ष अधिकार का दूसरा। दूसरा श्लोक। मोक्ष अधिकार का दूसरा श्लोक। सर्वथा। देवानुप्रिया!

सर्वथा। क्या कहा ? 'शुद्धत्व परिणमन को सर्वथा लिये हुए है। शुद्धत्व परिणमन होता है, उस जीव को शुद्ध स्वरूप का अनुभव अवश्य होता है।' शुद्ध स्वभाव का अनुभव करे और शुद्ध पर्याय निर्मल बराबर प्रगट होती है। 'इसलिए शुद्धस्वरूप का अनुभव मोक्ष का कारण है। अन्यथा सर्वथा प्रकार अनुभव नहीं होता।' व्यवहार को अनुसरकर शुद्ध का अनुभव नहीं होता। व्यवहार के भेद को-राग को अनुसरकर शुद्ध का अर्थात् सम्यग्दर्शन नहीं होता। बहुत सरस रखा है। वाँच लेना। मोक्ष अधिकार का दूसरा कलश और धारावाही में १८१। यह तो पण्डितजी को मुखाग्र है।

प्रज्ञाछेत्री शितेयं कथमपि निपुणैः पापिता सावधानैः
सूक्ष्मेऽन्तः सन्धिबन्धे निपतति रभसादात्मकर्मोभयस्य॥
आत्मानं मग्नमंतः स्थिरविशदलसद्धम्नि चैतन्यपूरे
बन्धं चाज्ञानभावे नियमितमभितः कुर्वती भिन्नभिन्नौ॥२-१८१॥

सर्वथा। क्या कहा तुमने ? वह धीरे से बोले थे। भाई! धन्नालालजी कहे, सर्वथा '**नानुसर्तव्यः**' ? सर्वथा '**नानुसर्तव्यः**'। क्योंकि अन्यथा व्यवहार का आश्रय लेकर शुद्ध का अनुभव हो, ऐसा तीन काल में नहीं। निमित्त का लक्ष्य रखे, दया, दान, व्रत के परिणाम का लक्ष्य रखकर अनुभव-सम्यग्दर्शन का हो, ऐसा तीन काल-तीन लोक में होता नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं है। सेठी! पाँच बोल रखे हैं। यह पुस्तक तो बाहर प्रसिद्ध हो गयी है - ३३००। बाहर प्रसिद्ध है १८१ सलंग पाठ। उसमें देख लेना। ३३०० समाप्त हो गयी।

मुमुक्षु : पृष्ठ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पृष्ठ १६१। इसमें १६१। है ?

सम्प्रदाय में जब दीक्षित हुए न, तब रात्रि में पूरे आकाश में पाटिया के पाटिया उतरते शास्त्र के। कौन जाने क्या था। उस समय तो कुछ खबर नहीं थी। स्वप्न में पूरे आकाश में। पूरा पाटिया ऐसा नहीं। पाटिया तो इतना। परन्तु पूरे आकाश में, हों! पूरे

आकाश में। स्वप्न में दिखता है। यह क्या! दीक्षित हुए, और उसमें से... कहो, समझ में आया इसमें?

यहाँ कहते हैं कि सर्वथा व्यवहारनय अनुसरनेयोग्य नहीं। और कथंचित्, ऐसा नहीं। व्यवहारनय है, वह बराबर है। परन्तु अनुसरनेयोग्य है, (ऐसा नहीं)। हेय है, वह अनुसरनेयोग्य हो नहीं सकता। है, वह अलग बात है, भाई! है, वह अलग बात है। और अनुसरने योग्य, वह अलग बात है। दो बातों में अन्तर है। समझ में आया? देवीलालजी! यह सब पण्डित हैं भाई देवीलालजी और वहाँ। उदयपुर के पण्डित हैं।

भगवान आत्मा एक समय में अनन्त आनन्दकन्द चैतन्य वस्तु है न। आदि-अन्त रहित वस्तु-पदार्थ है। अरूपी अनन्त गुण का पिण्ड। ऐसा शुद्धस्वभाव, उसे अनुसरकर अनुभव और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है। अन्यथा व्यवहार को अनुसरकर कभी तीन काल में शुद्ध का अनुभव नहीं होता। सर्वथा नहीं होता, इसलिए हमारे धन्नालालजी ने धीरे से रखा सर्वथा नहीं? इसलिए और यह (स्पष्टीकरण किया)। सर्वथा नहीं क्या? व्यवहार नहीं सर्वथा—ऐसा नहीं। सर्वथा व्यवहार नहीं—ऐसा नहीं। व्यवहार है। अनुसरणीय सर्वथा नहीं। भाई! आहाहा! व्यवहार नहीं, तब तो पर्याय नहीं, तो शुभराग भी नहीं। तो निमित्त भी नहीं। नहीं, ऐसा नहीं। है। परन्तु अनुसरनेयोग्य नहीं। यह कहते हैं, देखो!

व्यवहारनय को कथञ्चित् असत्यार्थ कहा गया है;... अपने यहाँ से नया हो गया है चालू। व्यवहारनय को ११वीं गाथा में असत्यार्थ कहा था। असत्यार्थ कहा था। वहाँ समझना कथंचित् असत्यार्थ कहने में आया है। नहीं, ऐसा नहीं। है अवश्य। परन्तु कथंचित् अनुसरनेयोग्य, ऐसा नहीं, भाई! कथंचित् सत्यार्थ है। अर्थात् कि पर्याय है। अनुभव सम्यग्दर्शन हुआ, ज्ञाता-दृष्टा हुआ, तथापि पर्याय में अशुद्धता है, शुभराग है, भक्ति-पूजा आदि दान का विकल्प होता है। वह नहीं—ऐसा नहीं, बस इतनी बात है। सर्वथा नहीं—ऐसा नहीं। परन्तु सर्वथा आदरणीय है—ऐसा तो बिल्कुल नहीं। आदरणीय तो बिल्कुल नहीं। ज्ञान करनेयोग्य है। उसमें कथंचित् नहीं। है, उसमें कथंचित् है। पहले इनकार किया था न ११वीं गाथा में कि नहीं है। व्यवहार असत्य है, झूठा है। वह

आश्रय करने की अपेक्षा से झूठा कहा था। परन्तु वस्तु ही नहीं, व्यवहार का विषय नहीं, पर्याय नहीं, शुभराग नहीं। तो पर्याय नहीं तो चौदह गुणस्थान भी नहीं। समझ में आया? है अवश्य व्यवहार। व्यवहारनय...

अपने नीचे स्पष्टीकरण किया है, देखो! **व्यवहारनय के उपदेश से ऐसा नहीं समझना चाहिए कि आत्मा परद्रव्य की क्रिया कर सकता है,...** वापस परद्रव्य की क्रिया व्यवहार से कर सकता है, ऐसा नहीं समझना। यह सिद्धान्त खोटा करके परद्रव्य की क्रिया कर सकता है, ऐसा स्थापित करे व्यवहारनय? व्यवहारनय भेद से अभेद को बतलाता है। परन्तु व्यवहारनय ऐसा कहे कि कर सकता है? ऐसा स्थापित करना है? कर सकता है ही नहीं। बोला जाता है। कर सकता नहीं। एक रजकण और वाणी की क्रिया, पैर की क्रिया आत्मा तीन काल में अज्ञानी या ज्ञानी कर नहीं सकता। यह सिद्धान्त रखकर व्यवहार का शुभभाव होता है, ऐसा यहाँ बतलाया है।

शुभभावों को आत्मा व्यवहार से कर सकता है। और उस उपदेश से ऐसा भी नहीं समझना चाहिए कि शुभभाव करने से आत्मा शुद्धता को प्राप्त करता है,... ऐसा नहीं। व्यवहार है, परन्तु व्यवहार से शुद्धता को पाता है, ऐसा नहीं। तो पूरा सिद्धान्त बदल जाये, तत्त्व पूरा बदल जाये। **परन्तु ऐसा समझना कि साधकदशा में भूमिका के अनुसार शुभाव आये बिना नहीं रहते।** भाव है। उपादेय-फुपादेय नहीं। उपादेय अर्थात् जानने की अपेक्षा से कथंचित् उपादेय। जानने की अपेक्षा से। यह अपने नियमसार में डाला है भाई ने। गाथा में नीचे (फुटनोट में)।

यहाँ तो ऐसा सिद्ध करना है कि व्यवहारनय को कथंचित् किसी अपेक्षा से आत्मा के त्रिकाली ध्रुव के सत् स्वरूप का आश्रय कराने के लिये व्यवहारनय को झूठा कहा था। परन्तु सर्वथा व्यवहार का विषय पर्याय और शुभभाव है ही नहीं, गुणस्थान भेद है ही नहीं, ऐसा बताने के लिये व्यवहार झूठा नहीं कहा। समझ में आया? भाई! यह विवाद ही पूरे तत्त्व को समझने की दृष्टि में दिक्कत पड़ी। अमरचन्दभाई!

किन्तु यदि कोई उसे सर्वथा असत्यार्थ जानकर छोड़ दे... देखो! शुभभाव है ही नहीं, पर्याय में राग है ही नहीं। वह पर्याय ही नहीं, ऐसा यदि माने। **शुभोपयोगरूप**

व्यवहार को ही छोड़ देगा... शुभोपयोगरूपी पर्याय में भाव है, वह छूट जाये। शुद्धता तो प्रगट हुई नहीं। पूर्ण केवलज्ञान हुआ नहीं। और व्यवहारनय का विषय शुभ है, उसे ना (इनकार) करे। नहीं होता... नहीं होता... नहीं होता। **शुद्धोपयोग की साक्षात् प्राप्ति तो नहीं हुई है,...** पूर्ण। **इसलिए उल्टा अशुभोपयोग में ही आकर, भ्रष्ट होकर, चाहे जैसी स्वेच्छारूप प्रवृत्ति करेगा तो वह नरकादि गति तथा परम्परा से निगोद को प्राप्त होकर संसार में ही भ्रमण करेगा।** क्योंकि दृष्टि ध्रुव की रही नहीं। पर्याय में शुभभाव है, उसका निषेध करता है कि होता नहीं... होता नहीं... होता नहीं। परन्तु होता नहीं, (यह) केवलज्ञान बिना होता नहीं? केवलज्ञान हो तब शुभभाव नहीं होता। निचली दशा में हो, वह इनकार करे तो शुभ नहीं तो अशुभ में जायेगा। शुद्धता पूर्ण हुई नहीं। समझ में आया? तो दृष्टि भी निश्चय की रहेगी नहीं।

मुमुक्षु : .... वहाँ तक रक्षा करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : रक्षा करने की कहाँ बात है? होता है। यह और वापस हमारे दलाल है। निचलीदशा में शुभभाव होता है। उसे कहे कि नहीं, यह नहीं। नहीं तो कहाँ जायेगा तू? शुद्ध उपयोग हुआ नहीं। शुभ तू मानता नहीं तो अशुभ हुए बिना रहेगा नहीं। इतनी बात करनी है। बनाये रखना, ऐसा नहीं। जाळवी रखना समझे? हमारी काठियावाड़ी भाषा है। रक्षा करना। शुभभाव की रखा करना, यह प्रश्न यहाँ है ही नहीं। रक्षा करना, रखना है और आदरणीय (है, ऐसा) उसका स्वामी हो वह मिथ्यादृष्टि है।

देखो! शुभाशुभ परिणाम का स्वामित्व, वह मिथ्यादृष्टि है। यह चौका सामने है। यह फूल के सामने। शुभाशुभ परिणाम का स्वामित्व, वह मिथ्यादर्शन है। शुभ-अशुभ विकार का स्वामी हो वह मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि भगवान आत्मा सहज स्वस्वामीसम्बन्ध का स्वामी ऐसा उसमें गुण है। ४७ शक्तियाँ हैं आत्मा में। ४७ वर्णन की है, है अनन्त। एक अन्तिम शक्ति ऐसी है ४७वीं स्वस्वामीसम्बन्ध शक्ति। उसमें ऐसा गुण है आत्मा में कि सम्यग्दर्शन होने पर वह अपने शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वामी है। शुद्ध द्रव्य और शुद्ध गुण और शुद्ध निर्मल वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह उसका स्व और वह उसका स्वामी है। परन्तु राग और पुण्य वह उसका स्व और उसका स्वामी, वह सम्यग्दृष्टि है नहीं। वह द्रव्य में नहीं। आहाहा! क्या कहा?

फिर से। आत्मद्रव्य जो है वस्तु भगवान आत्मा, उसमें ज्ञान-आनन्दगुण आदि हैं। यह थोड़ा-थोड़ा हिन्दी लोगों को अभी गुजराती में जान लेना। सोमवार से हिन्दी होगा। अपना पर्यूषण लगेगा न, दिगम्बर पर्यूषण लगेगा, तब हिन्दी होगा। और फिर तो सहारनपुर से आनेवाले हैं। जिनेश्वरदास और है न। पक्के हिन्दी। गुजराती कुछ समझे नहीं। वे दस-पन्द्रह व्यक्ति आनेवाले हैं। कल पत्र आया था। पर्यूषण करने आते हैं वहाँ से। यह तो वह समझे नहीं। उनके लिये (संवत्) २००९ के वर्ष में हिन्दी ५-६ हजार लोगों के बीच करना पड़ा। हिन्दी कुछ आता नहीं था। अब आठ-दस आना साधारण भाग की टूटी-फूटी आती है। काठियावाड़ी जो भाषा हो, वैसी तो भाषा नहीं आती। कहो, समझ में आया?

क्या कहा? कि व्यवहार का शुभराग नहीं ही, ऐसा माने। नहीं ही, ऐसा माने तो शुद्धोपयोग तो हुआ नहीं। शुभ मानता नहीं। अशुभ में जायेगा। अशुभ में जाकर दृष्टि भी बदल जायेगी। विवेक नहीं रहे दृष्टि का कि ज्ञायकमूर्ति अखण्ड हूँ, ऐसी दृष्टि नहीं रहे। भाई! पर्याय में शुभभाव होता है, ऐसा यदि विवेक जाये तो दृष्टि भी रहेगी नहीं। ऐसा कहते हैं। और तो फिर शुभ में से अशुभ में जायेगा (तो) नरक और निगोद का स्थान है। समझ में आया? इसलिए अशुभ में ऐसी स्वेच्छा से प्रवर्तेगा। दृष्टि तो रही नहीं। शुभभाव है, उसका विवेक रहा नहीं, शुभभाव का ज्ञान खोटा पड़ा, त्रिकाल ज्ञायक का आश्रय भी खोटा पड़ गया। इसलिए अशुभ में जाकर स्वेच्छाचार हो जायेगा।

परम्परा से निगोद को प्राप्त होकर संसार में ही भ्रमण करेगा। समझ में आया? अब एक अपने इसका दूसरा शब्द है। यह नहीं? मोक्षमार्गप्रकाशक में है न भाई! २६१ पृष्ठ पर है। देखो! २६१ पृष्ठ पर है। वहाँ भी तुम्हारे आया नहीं। ... माने। वस्तु की दृष्टि की खबर नहीं कि वर्तमान सिद्ध समान पर्याय मुझे नहीं। सिद्ध समान पर्याय नहीं और सिद्ध समान माने, वह निश्चयाभासी है। पर्याय में सिद्ध कहाँ है? वस्तु सिद्ध समान है द्रव्य। पर्याय में सिद्ध माने, पर्याय में केवलज्ञान माने, पर्याय में अकेला आनन्द ही माने। पर्याय में आनन्द कब था पूर्ण? पूर्ण हो तो केवलज्ञान हो जाये। इसलिए पर्याय में जो अशुद्धता न माने और शुद्धता माने, वे सब निश्चयाभासी हैं। द्रव्य शुद्ध है, परन्तु पर्याय

में अशुद्धता है। ऐसा न माने तो निश्चयाभास को जाने-माने। परन्तु व्यवहार साधन को भला जाने। शुभ करो, भला करो। सब भला जाने। दया, दान, व्रत, भले हैं, करो।

इसलिए स्वच्छन्दी बनकर अशुभ में प्रवर्तता नहीं। भाई! इसके सामने बात है जरा। वह स्वच्छन्दी बनकर अशुभ में प्रवर्तता नहीं। भान दृष्टि की खबर नहीं। सम्यग्दर्शन अनुभव निश्चय का क्या? पर्याय में अशुद्धता है, पर्याय में मलिनता है, पर्याय में शुभभाव आदि है, उसे मानता नहीं। निश्चयाभासी। वस्तु शुद्ध है, परन्तु पर्याय शुद्ध है—ऐसा मान लेता है। समझ में आया? तो वस्तु की शुद्धता के भान बिना पर्याय को शुद्धता मानता है, वह तो मूढ़ निश्चयाभासी है। वह जीव व्यवहार साधन को भला जाने वापस। निश्चय की दृष्टि नहीं, सिद्ध समान पर्याय हो गयी। सिद्ध समान पर्याय माने और फिर वापस व्यवहार साधन को अच्छा जाने। दोनों कहाँ से हुए? इसलिए स्वच्छन्दी बनकर अशुभ में प्रवर्तता नहीं। परन्तु व्रतादि शुभ प्रवर्तता है। व्रत, दया, दान, पूजा, समिति करता है, इसलिए अन्तिम ग्रैवेयक तक के पद को पाता है। उसमें कहीं जन्म-मरण मिटते नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : पैर ऊँचा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैर ऊँचा कहाँ रखा है?

मुमुक्षु : नौवें ग्रैवेयक में गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नौवे ग्रैवेयक में (गया तो) यह मक्खी भी ऊँची जाती है तो ऊँची हो गयी मनुष्य से? माखी समझे? मक्खी। पण्डितजी! मक्खी हो गयी तुम्हारे से बड़ी? हमारे दलाल हैं ये। कहते हैं, इतना तो पैर ऊँचा रखा शुभभाव का। यहाँ तो... निश्चयाभास की प्रबलता से अशुभ की प्रवृत्ति हो जाये तो उसकी कुगति गमन परिणाम अनुसार फल पावे। परन्तु संसार का भोक्ता (होता है)। सच्चा मोक्षमार्ग पाये बिना वह सिद्धपद को नहीं पा सकता। अन्तिम योगफल भाई ने रखा है। समझ में आया?

वस्तु शुद्ध है परमानन्द मूर्ति ध्रुव। उसकी दृष्टि तो करता नहीं। और पर्याय शुद्ध है, सिद्ध समान शुद्ध है। सिद्ध समान शुद्ध कहाँ से आयी? पर्याय सिद्ध समान (कहते हैं परन्तु) संसारी है और सिद्ध समान कहाँ से आयी? और पर्याय में केवलज्ञान

(मानता है)। पर्याय में कहाँ से केवलज्ञान आया? मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में केवलज्ञान कहाँ से आ गया? ऐसे पर्याय में मतिज्ञान आदि को न मानकर केवलज्ञान को माने, पर्याय में सिद्धपद नहीं और सिद्धपद माने, वह निश्चयाभासी मिथ्यादृष्टि है और व्यवहाराभासी... शुभभाव को दया, दान, व्रत करते-करते अपने को केवलज्ञान होगा अथवा शुद्ध समकित होगा। वह व्यवहाराभासी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कल नहीं कहा था? बाल की छाल... पण्डितजी ने कहा था? बाल की छाल। यह तो परमेश्वर का मार्ग, बापू! सर्वज्ञ का। यह कहीं कोई साधारण मनुष्य दो-पाँच पचास कल्प डाले, ऐसा यह मार्ग नहीं है। यह तो इन्द्र, गणधर, सन्त, महाविदेह में धोधमार धुरन्धर धोधमार्ग प्रवर्तता है सर्वज्ञ परमेश्वर का। यहाँ भी यही प्रवर्तता था और बाद में सब गड़बड़ हो गयी।

कहते हैं... अब मुझे तो यहाँ लेना है विशेष। कहाँ है? देखो! **इसलिए शुद्धनय का विषय जो साक्षात् शुद्ध आत्मा है, उसकी प्राप्ति जब तक न हो...** अब इसमें से उल्टा निकालते हैं, भाई! इसलिए शुद्धनय की साक्षी अर्थात् केवलज्ञान हो, तब शुद्धनय होता है, ऐसा कहते हैं। ऐसा यहाँ नहीं कहना है। यहाँ तो शुद्धनय का आश्रय पहले द्रव्य का किया है। परन्तु उसका शुद्धनय की ओर ढलना, ऐसा अब बाकी रहा नहीं। पूर्ण दशा हो गयी, उसे तो फिर कुछ व्यवहार होता नहीं। यहाँ से वे लोग निकालते हैं कि शुद्धनय का विषय तो शुद्धात्मा केवल (ज्ञान) प्राप्त करे, तब (होता है)। ऐसा नहीं। यह तो दूसरी बात है। २८७ पृष्ठ पर है भाई उसमें। वह का वही विषय। इसमें २८७ पृष्ठ पर है। उसमें दूसरे पृष्ठ पर होगा कहीं।

साक्षात् शुद्धनय तो केवलज्ञान होने पर होता है। वहाँ दूसरा पृष्ठ होगा। आस्रव अधिकार। १२१ कलश है न, उसके नीचे है। **साक्षात् शुद्धनय तो केवलज्ञान होने पर होता है।** यह दूसरी बात करते हैं। उसकी परिपूर्णता की पर्याय। वापस उल्टा ऐसा अर्थ करे कि साक्षात् शुद्धनय केवलज्ञान होने पर होता है। छोटाभाई! इसलिए नीचे तो अकेला व्यवहारनय होता है। ऐसा नहीं। यह उल्टा मारा वापस। वह तो परिपूर्ण शुद्धनय का विषय तो द्रव्य ही है। शुद्ध '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, परन्तु पर्याय में अभी शुद्धनय के विषय की ओर झुकने का रहा है। वहाँ तक उसे व्यवहार होता है। परन्तु झुकने का न रहने पर पूर्ण दशा हो गयी, फिर

उसे व्यवहार होता नहीं। बस, इतना सिद्ध करना है। दो जगह है न जरा। ११वीं गाथा है। यह केवलज्ञान का समकित है। केवलज्ञान की बात करे ११वीं गाथा में सीधे? वह तो सम्यग्दृष्टि की गाथा है। सम्यग्दृष्टि कब हो? कैसे हो? भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध ध्रुव स्वरूप का अन्तर्मुख आश्रय करके सम्यग्दर्शन प्रगट करे, तब उसने शुद्धनय को माना, ऐसा कहा जाता है। उसने भूतार्थ द्रव्य को माना, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? फिर उसे शुद्ध की ओर झुकाव जहाँ तक रहता है, वहाँ तक पर्याय में अभी शुभराग और अशुद्धनय का विषय रहता है। इसे उसे जानना चाहिए। ऐसा सिद्ध करना है। परन्तु जब शुद्धनय की पूर्ण दशा आश्रय करते... करते... करते... पूर्ण पर्याय केवलज्ञान हो गयी, तब साक्षात् शुद्धनय केवलज्ञान होने पर होता है, ऐसा कहा जाता है। वह यहाँ ऐसा कहा। शुद्धनय का विषय साक्षात् शुद्ध आत्मा। शुद्ध आत्मा अर्थात् पर्याय में परिपूर्णता प्रगट हो गयी। उसकी प्राप्ति जब तक न हो, तब तक व्यवहार भी प्रयोजनवान है। तब तक उसे शुभराग है। छठवें गुणस्थान में गणधरदेव जैसे को भी। आहाहा!

४७ नय में। ४७ नय कहा है न? गणधरदेव श्रुतज्ञानी हैं। वे कहीं केवलज्ञानी नहीं। उन्हें भी कर्तृत्वनय का ज्ञान है। मेरी पर्याय में अभी राग अट्ठाईस मूलगुण आदि राग का परिणमन है। ऐसा श्रुतज्ञान से जानते हैं कि इतना परिणमन मुझमें हैं। द्रव्य शुद्ध है, दृष्टि शुद्ध है, ज्ञान शुद्ध है, चारित्र निर्मल है; तथापि पर्याय में अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प का परिणमन कर्तृत्व अर्थात् परिणमता हूँ। उसरूप से कर्तृत्वनय को श्रुतज्ञानी जानता है। ऐसा जाने कि मुझे है ही नहीं यह राग का परिणमन। है और नहीं कहाँ से लाया? समझ में आया? भारी अटपटा। कर्तृत्व है, भोक्तृत्व है राग का। जब तक पूर्ण केवल (ज्ञान) न हो, वहाँ तक राग करनेयोग्य है या राग भोगनेयोग्य है, ऐसी बुद्धि न होने पर भी पर्याय में परिणमे, वह कर्ता, ऐसा गिनकर रागरूप गणधर भी परिणमते हैं; इसलिए कर्तृत्वनय ४७ नय में एक नय कहा है। गणधर भी जानते हैं कि है। और उस समय राग का अनुभव है। राग का अनुभव है। अकेला शुद्धनय का अनुभव हुआ, परन्तु पूर्ण अनुभव अभी वीतरागता का नहीं। राग का अनुभव है। भोक्तानय लिया है। गणधर जैसे भी भोक्तानय से पर्याय में राग भोगा जाता है, वह मेरी पर्याय का धर्म है, ऐसा जानते हैं। बस। समझ में आया? भले उसके स्वामी नहीं (होते)। अरेरे! भारी अटपटा।

मुमुक्षु : मेरी पर्याय में....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। मेरी पर्याय में है, जड़ में नहीं। कर्तृत्वनय, भोक्तृत्वनय है न। ४७ नय है। नय-नय क्या? द्रव्यनय, पर्याय (नय), अस्तित्व, नास्तित्व... आता है न? सविकल्प, अविकल्प, नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, सामान्य, विशेष, नित्य, अनित्य, सर्वगत, असर्वगत, शून्य-अशून्य, ज्ञेय-ज्ञायक, द्वैत-अद्वैत, नियत-अनियत, स्वभाव अथवा काल-अकाल, ... ईश्वर-अविनश्वर। बाद में आया कर्तृत्व-अकर्तृत्व। ३७-३८वाँ आया। कर्तृत्व-अकर्तृत्व, भोक्तृत्व-अभोक्तृत्व। समझ में आया? क्रिया, ज्ञान, द्रव्य है न? व्यवहार, निश्चय, अशुद्ध और शुद्ध। ४७ हो गये। उसमें यह कर्तृत्व-अकर्तृत्वनय लिया है। समझ में आया?

प्रवचनसार। गणधर कहते हैं छद्मस्थ जीव को, द्रव्य का अनुभव शुद्ध का हुआ, तथापि पर्याय में अभी राग का परिणमन है। ऐसा सिद्ध हो नहीं गया पर्याय में कहीं। पर्याय में सिद्ध माने तो द्रव्य की दृष्टि खोटी पड़ी और पर्याय की दृष्टि खोटी पड़ी। सब खोटा पड़ा। क्यों रामस्वरूपजी! पर्याय में केवलज्ञान हो गया? केवलज्ञान हुआ, पश्चात यह मतिज्ञान किसका? छद्मस्थदशा में मतिज्ञान में हो और केवलज्ञान हो गया? तो मतिज्ञान है, उसे व्यवहारनय जानता है कि अल्प ज्ञान है यह। पूर्ण शुद्धता नहीं। अशुद्धता राग है और मति-श्रुत आदि अपूर्ण है। उसे जानना, उसका नाम व्यवहारनय है। समझ में आया?

शुद्धनय का विषय जो साक्षात् शुद्ध आत्मा... अर्थात् पर्यायसहित, हों! उसकी प्राप्ति **जब तक न हो...** अर्थात् केवलज्ञान की दशा पूर्ण न हो, **तब तक व्यवहार भी प्रयोजनवान है** - जाननेयोग्य है। प्रयोजन का अर्थ (यह कि) है। व्यवहार को उड़ा दे तो दृष्टि खोटी होती है। व्यवहार नहीं?

मुमुक्षु : व्यवहार का आश्रय करे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय करे तो मिथ्यादृष्टि होता है। यह कहाँ बात है। अनुसरण करने की बात नहीं। व्यवहार है। जाना हुआ प्रयोजनवान है। आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा माने तो उसके आश्रय से राग होता है। लाभ नहीं होता। और आश्रय करने जाये तो दृष्टि

मिथ्यात्व हो जाती है। आहाहा! हेय है न! व्यवहारनय है, परन्तु हेय है। निश्चयनय उपादेय। दो नय है। नय नहीं, ऐसे व्यवहारनय को व्यवहारनयरूप से न माने तो श्रद्धा भ्रष्ट है। व्यवहार को व्यवहाररूप से मानना चाहिए कि है। न माने तो व्यवहारनय की श्रद्धा भ्रष्ट हो गया। केवलज्ञान हो गया तब तो। सिद्ध हो गया? समझ में आया? दोनों की श्रद्धा चाहिए। निश्चय की निश्चयरूप से, पर्याय में राग की रागरूप से। श्रद्धा। वह भी आदरणीय नहीं। उसकी श्रद्धा करके हेय मानना। स्वरूप की श्रद्धा करके उपादेय मानना।

मुमुक्षु : हेयरूप से जानना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेय-ज्ञेय। हेयरूप से ज्ञेय। यहाँ उपादेरूप से ज्ञेय। दोनों बातें है यह तो भाई! अमरचन्दभाई! वस्तु तो यह वीतरागमार्ग, बापू! इसमें कुछ भी थोड़ा उल्टा डालने जाये तो कुछ नहीं चले। सर्वज्ञ का पंथ है, 'सर्वज्ञ का धर्म सुशर्ण जानी आराध्य आराध्य प्रभाव आणी।' श्रीमद् कहते हैं, हों! १६ वर्ष में। मोक्षमाला में। 'सर्वज्ञनो धर्म सुशर्ण जाणी आराध्य आराध्य प्रभाव आणी, अेना विना कोई न बाह्य स्हाशे।' ऐसा है न? 'अनाथ एकांत सनाथ थाशे, अेना विना कोई न बाह्य स्हाशे।' १६ वर्ष, हों! मोक्षमाला में। १६ वर्ष और ४ महीने। समझे? सोलह वर्ष की उम्र। श्रीमद् राजचन्द्र सोलह (वर्ष)। एक और छह। उसमें १०८ पाठ बनाये। मोक्षमाला १०८ (पाठ)। फिर १०८ बनाकर मोक्षमाला नाम दिया। क्योंकि माला के मणके १०८ होते हैं न? उसमें एक भावना में रख दिया, भाई! उसके पहले बनायी भावना एक। उसमें डाला। 'सर्वज्ञनो धर्म सुशर्ण जाणी...' यह सर्वज्ञ तो पहले रखा है। एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने। भगवान ने जो कहा निश्चय-व्यवहार। 'सर्वज्ञनो धर्म सुशर्ण जाणी, आराध्य आराध्य प्रभाव आणी।' महिमा करके आराधन कर। 'अनाथ एकांत सनाथ थाशे,...'

मुमुक्षु : इसमें एकान्त आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकान्त है। 'अनाथ एकांत सनाथ थाशे, अेना विना कोई न बाह्य स्हाशे।' सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने जो मार्ग कहा है। उस मार्ग का अनुसरण कर। इसके बिना तेरा संसार का अन्त आवे, ऐसा नहीं है।

भगवान सर्वज्ञ की आज्ञा में ऐसा आया कि भगवान आत्मा ध्रुव प्रभु है न सत्य। उसका शरण ले। उसका शरण ले। भगवान ऐसा कहते हैं। एक समय में प्रभु शुद्ध ध्रुव ज्ञायक चिदानन्द का शरण ले। उसकी शरण से तुझे सम्यग्दर्शन-ज्ञान होगा। व्यवहार की शरण से सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया?

जब तक शुद्धनय की प्राप्ति की पर्याय पूर्ण न हो, वहाँ तक व्यवहार भी प्रयोजनवान, जाननेरूप प्रयोजनवान है। व्यवहार को निकाल डाले कि अशुद्धता पर्याय में नहीं, शुभराग नहीं। तो पर्याय में तो है। उसे निकाल डालकर कहाँ जायेगा तू? तेरी दृष्टि भी द्रव्य के ऊपर समान नहीं रहेगी। यदि द्रव्य के ऊपर दृष्टि का विवेक हुआ तो पर्याय में जितनी अशुद्धता है, उसे बराबर जाननेयोग्य व्यवहारनय उसे रहेगा। समझ में आया? परन्तु पर्याय के व्यवहार की बात को छोड़ दे, श्रद्धा तो निश्चय की श्रद्धा नहीं रहेगी। क्योंकि ज्ञान खोटा पड़ने पर स्व का आश्रय भी नहीं रहेगा।

मुमुक्षु : गजब बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गजब बात है? भगवान का मार्ग, बापू! प्रभु है। आहाहा! साक्षात् केवलज्ञानी विराजते हैं। भगवान मोक्ष पधारे। महावीर आदि। प्रभु तो विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में साक्षात् जमीन पर समवसरण में विराजते हैं। ऐसा नहीं कि कल्पना की बातें हैं। महाविदेहक्षेत्र है। कोई अभी तो महाविदेहक्षेत्र को उड़ाते हैं। असंख्य द्वीप, समुद्र होते हैं या नहीं? अरे! सुन न! मर जायेगा। असंख्य द्वीप समुद्र हैं। उसमें से महाविदेहक्षेत्र है, भगवान विराजते हैं। बीस तीर्थंकर धर्मधोरी धुरन्धरा। क्या कहा है? धोरी धर्म धुरंधरा। हमारे पण्डितजी ने समवसरण की स्तुति की है। हिम्मतभाई ने। धोरी धर्म धुरंधरा। बड़े बैल जैसे गाड़ी को हाँकनेवाले होते हैं न, उसी प्रकार भगवान धर्म के धोरी हैं। राजमार्ग (प्रवर्तता है)। भगवान बीस तीर्थंकर मनुष्यक्षेत्र में अभी विराजमान हैं महाविदेहक्षेत्र में। एक-एक महाविदेह में चार, पाँच महाविदेह में बीस। चार यहाँ। धातकी खण्ड में आठ। दोनों ओर। आठ अर्धपुष्कर द्वीप। बीस भगवान साक्षात् विराजते हैं ढाई द्वीप के अन्दर। समझ में आया?

कहते हैं कि उन भगवान ने ऐसा कहा, शुद्ध स्वरूप प्रभु तेरा एक समय में,

भाई! शान्त हो, धीरे हो। पूर्व के आग्रह आदि पकड़े हों, उन्हें छोड़ दे। एक स्वरूपी प्रभु अनन्त गुण का नाथ एकरूप (मौजूद है), उसका अन्तर आश्रय ले। उसके आश्रय बिना तीन काल में अकेले व्यवहार के व्रत, नियम, दया और दान के आश्रय से तुझे सम्यग्दर्शन तीन काल में नहीं होगा। समझ में आया? और उसका आश्रय ले और सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि हुए, तथापि पर्याय में अभी शुभराग है, अशुद्धता है, शुद्धता थोड़ी है। यदि पूर्ण शुद्धता हो, तब तो केवलज्ञान हो जाये। समझ में आया? दृष्टि में पूर्ण द्रव्य है, पर्याय में पूर्ण हुआ नहीं; इसलिए व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। कहो, सेठी!

ऐसा स्याद्वाद मत में श्रीगुरुओं का उपदेश है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य महासन्त अमृतचन्द्राचार्य महा भावलिंगी धर्मधोरी सन्त, दिगम्बर मुनि धर्म के आधार—बड़े स्तम्भ। समझ में आया? केवलज्ञान की दशा को स्थिरकर रखनेवाले दिगम्बर सन्त हैं। ऐसे श्री गुरु का स्याद्वादमत में उपदेश है। आहाहा! समझ में आया? लो, यह पूरा हुआ। ठीक! इसमें बड़ी गड़बड़ थी, इसलिए धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा लिया।

★ ★ ★

कलश - ४

इसी अर्थ का कलशरूप काव्य टीकाकार कहते है :-

(मालिनी)

उभय-नय-विरोधध्वन्सिनि स्यात्पदांके
जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै-
रनव-मनय-पक्षाक्षुण्ण-मीक्षन्त एव ।।4।।

श्लोकार्थ : [उभय-नय-विरोध-ध्वंसिनि] निश्चय और व्यवहार - इन दो नयों के विषय के भेद से परस्पर विरोध है; उस विरोध का नाश करनेवाला [स्यात् पद-अंके] 'स्यात्'-पद से चिह्नित जो [जिनवचसि] जिन भगवान का वचन (वाणी) है,

उसमें [ये रमन्ते] जो पुरुष रमते हैं (–प्रचुर प्रीति सहित अभ्यास करते हैं) [ते] वे [स्वयं] अपने आप ही (अन्य कारण के बिना) [वान्त मोहाः] मिथ्यात्वकर्म के उदय का वमन करके [उच्चैः परं ज्योतिः समयसारं] इस अतिशयरूप परम ज्योति प्रकाशमान शुद्ध आत्मा को [सपदि ईक्षन्ते एव] तत्काल ही देखते हैं। वह समयसाररूप शुद्ध–आत्मा [अनवम्] नवीन उत्पन्न नहीं हुआ; किन्तु पहले कर्मों से आच्छादित था, सो वह प्रगट व्यक्तिरूप हो गया है और वह [अनय–पक्ष–अक्षुण्णम्] सर्वथा एकान्तरूप कुनय के पक्ष से खण्डित नहीं होता, निर्बाध है।

भावार्थ : जिनवचन (जिनवाणी) स्याद्वादरूप हैं। जहाँ दो नयों के विषय का विरोध है, जैसे कि–जो सत्‌रूप होता है, वह असत्‌रूप नहीं होता; जो एक होता है, वह अनेक नहीं होता; जो नित्य होता है, वह अनित्य नहीं होता; जो भेदरूप होता है, वह अभेदरूप नहीं होता; जो शुद्ध होता है, वह अशुद्ध नहीं होता – इत्यादि नयों के विषय में विरोध है–वहाँ जिनवचन कथंचित् विवक्षा से सत्–असत्‌रूप, एक–अनेकरूप, नित्य–अनित्यरूप, भेद–अभेदरूप, शुद्ध–अशुद्धरूप जिस प्रकार विद्यमान वस्तु है, उसी प्रकार कहकर विरोध मिटा देता है, असत् कल्पना नहीं करता। जिनवचन द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक – दोनों नयों में, प्रयोजनवश शुद्धद्रव्यार्थिकनय को मुख्य करके उसे निश्चय कहते हैं और अशुद्धद्रव्यार्थिकरूप पर्यायार्थिकनय को गौण करके व्यवहार कहते हैं। – ऐसे जिनवचन में जो पुरुष रमण करते हैं, वे इस शुद्ध आत्मा को यथार्थ प्राप्त कर लेते हैं; अन्य सर्वथा–एकान्तवादी सांख्यादिक उसे प्राप्त नहीं कर पाते, क्योंकि वस्तु सर्वथा एकान्त पक्ष का विषय नहीं है, तथापि वे एक ही धर्म को ग्रहण करके वस्तु की असत्य कल्पना करते हैं–जो असत्यार्थ है, बाधासहित मिथ्यादृष्टि है।।4।।

कलश - ४ पर प्रवचन

इस अर्थ का कलशरूप काव्य...

उभय-नय-विरोधध्वंसिनि स्यात्पदांके
जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै-
रनव-मनय-पक्षाक्षुण्ण-मीक्षन्त एव॥४॥

आहाहा! पहले तीन कलश आये थे। पहली गाथा शुरु करने से पहले तीन आये थे। यह बारह गाथा पूरी करके चौथा श्लोक आता है। पण्डितजी! पहले तीन आये थे न? समयसाराय, अनेकान्त और परपरिणति हेतु। यह तीन श्लोक पहली गाथा शुरु करने से पहले (आये हैं)। यह बारह गाथा के बाद चौथा श्लोक आया। क्योंकि इन बारह गाथाओं में पूरी वस्तु कह दी है। पीठिका है। जयसेनाचार्य अन्दर टीका में कहते हैं कि यह बारह (गाथायें) तो पीठिका है। अब विस्तार से शुरु होगा। संक्षेपवृत्तिवाला बारह में समझ जायेगा। जैनदर्शन का सार बारह गाथा में समझ जायेगा। परन्तु साधारण बुद्धि हो, वह तेरहवें से शुरु करेंगे। यह कहते हैं। देखो! अर्थ है न?

श्लोकार्थ - निश्चय और व्यवहार - इन दो नयों के विषय के भेद से... देखो! विषय के भेद से, पाठ है न? '**उभयनयविरोधध्वंसिनि**' दो नयों को विरोध है। निश्चय स्व को कहता है, व्यवहार भेद को कहता है। निश्चय शुद्ध को कहता है, व्यवहार अशुद्ध को कहता है। निश्चय एकाकार स्वरूप द्रव्य को स्वीकार करता है, व्यवहार भेद को-अंश को स्वीकार करता है। दोनों का विरोध है। निश्चय का स्व विषय है, व्यवहार का भेदवाला परविषय है। निश्चय का फल शुद्धता आता है, व्यवहार का फल बन्ध आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : खटकनेवाली है, यह स्पष्टीकरण हो गया। देखो! '**रमन्ते**' यह आयेगा। जो पुरुष रमते हैं, है न शब्द? उसमें आयेगा।

इन दो नयों के विषय... विषय में अन्तर है न? इसमें तो साधारण बात करके इसका सार कहेंगे। भावार्थ में। और टीका में तो भाई ने शुभचन्द्राचार्य (ने परम) अध्यात्म तरंगिणी में '**रमन्ते**' का अर्थ ऐसा किया है कि भगवान का वचन ऐसा कहता है और स्पष्टीकरण करेंगे, यह स्वयं भावार्थ में पण्डित जयचन्द्रजी और कलश-टीकाकार ने भी उसमें स्पष्टीकरण किया है। जिनवचन द्रव्यार्थिकनय को मुख्य करके और पर्यायार्थिकनय को गौण करके आत्मा की बात करता है। यह कलश के अर्थ में रखा है। इस कलश के अर्थ में शुभचन्द्राचार्य ने उसमें... क्या कहलाता है वह? परम

अध्यात्म तरंगिणी, उसमें '**रमन्ते**' का कल बतलाया था हिम्मतभाई को। एकत्व। जिनवचन स्व में एकत्वपना बताते हैं। पर से भिन्नपना और स्व में एकत्वपना। दूसरी भाषा से कहें तो जिनवचन द्रव्यार्थिकनय को मुख्य करके शुद्धता को बताता है। पर्यायार्थिक को गौण करके अशुद्धता को, भेद को बताता है। उसमें से मुख्यता जो द्रव्यार्थिकनय की कही है, उसमें जो जीव रमते हैं, वे सम्यग्दर्शन को पाते हैं। समझ में आया?

इसमें विवाद उठाते हैं। दो नय में रमे, वह सम्यग्दर्शन पाता है, ऐसा यहाँ कितने ही कहते हैं। दो नय में रमे किस प्रकार? पर्याय में भी लक्ष्य रखे और द्रव्य में भी लक्ष्य रखे तो एकाकार होना किसमें? इसमें ऐसा कहते हैं न? पाठ ऐसा आता है न? '**उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदांके जिनवचसि रमन्ते**' जिनवचन में रमते हैं? वाणी में? पाठ तो ऐसा है। '**जिनवचसि रमन्ते**' इसका अर्थ (यह है कि) वीतरागी वचन ऐसा कहते हैं कि शुद्ध द्रव्यस्वभाव एकत्वपना, उसमें एकाकार हो। यह जिनवचन का कथन है। उस वाच्य में एकाकार हो और भेद आदि को जाननेयोग्य रखकर उसका लक्ष्य छोड़ दे। पर्याय है, ऐसा लक्ष्य रखकर, पर्याय है ऐसा लक्ष्य रखकर अभेददृष्टि कर। पर्याय नहीं, (ऐसा) उड़ाकर अभेददृष्टि नहीं हो सकेगी। समझ में आया? पर्याय है, अशुद्धता है। यह आ गया है न पहले? शुद्धनय का लक्ष्य करके स्याद्वाद को समझना। किसमें आ गया? पहले में आ गया। मुझे तो उसमें है न। कहीं आ गया है। स्याद्वाद रीति से... नहीं आया?

मुमुक्षु : स्याद्वाद का शरण लीजिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरण लीजिये। यह आया है। यह है, देखो! चौथी लाईन है। इसलिए स्याद्वाद का शरण लेकर शुद्धता का आलम्बन करना चाहिए। स्याद्वाद का शरण लेकर, उसका अर्थ कि पर्याय है, अशुद्धता है, ऐसा लक्ष्य रखकर फिर ध्रुव का शरण लेना। है ही नहीं पर्याय और अशुद्धता है ही नहीं तो निश्चयाभास हो जायेगा। यह स्वयं ने डाला है, हों! इसमें। छठी गाथा। छठी गाथा का भावार्थ लिखकर बहुत सरस लिखा है। भाई ने—पण्डित जयचन्द्रजी ने अर्थ बहुत सरस किया है। बहुत सरस। स्याद्वाद का शरण लेकर शुद्धनय का आश्रय करना। अर्थात्? पर्याय है, भेद है, अशुद्धता है, उसे

मानकर ध्रुव का शरण लेना। वरना तो किस प्रकार से शरण कहाँ से लेगा तू? पर्याय नहीं तो शरण (कौन लेगा)? समझ में आया? क्योंकि पर्याय का आश्रय करना नहीं। पर्याय आश्रय करनेवाली है। तो पर्याय को न माने तो पर्याय आश्रय करनेवाली है, द्रव्य है उसका आश्रय करेगा कौन? आहाहा! कहो, ज्ञानचन्दजी!

यह बारहवीं गाथा में सब...ऐई! व्यवहारनय बारह में कहते हैं। सब पुकारते हैं। स्थानकवासी तुम्हारे नहीं था वह कपूर का पुत्र नटवर वढवाण। हमारे दरियापरी... तुम दरियापरी हो? तुम कौन हो? यह वह था न कपूर? कपूरभाई थे न दरियापरी, उनका पुत्र था नटवर। वह पहले आया था यहाँ। पहले बहुत अनुकूल (बोलता था)। फिर लिखा यहाँ से जाकर, बारहवीं गाथा में व्यवहार से निश्चय पाता है, ऐसा समयसार में कहा है। परन्तु तुझे समयसार की खबर नहीं और तू कहाँ दिये रखता है। (संवत्) १९९४ में पहले यहाँ आया था। उसमें ऐसा कहा है। वहाँ मन्दिरमार्गी में सुमनविजय है। वह भी अभी यहाँ कुण्डले (सावरकुण्डला) में हम थे, वहाँ सामने आया था। देखो! बारहवीं गाथा में समयसार में कहते हैं, व्यवहार पहले चाहिए, बाद में निश्चय होता है। यह बारहवीं गाथा में कहा। वे सब बारहवीं का आधार देते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं कुछ भान नहीं होता। वे लोग सामने जहाँ-तहाँ रखते हैं अब। उसमें रखा अभी जैन गजट में। देखो! बारहवीं गाथा में कहा है। व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार... वह पूर्ण दशा पाये, उन्हें व्यवहार नहीं होता। अपूर्णवालों को तो व्यवहार से ही उपदेश देना, व्यवहार से लाभ होता है। अरे! ऐसी बात है ही नहीं, सुन न! उपदेश देने की बात कहाँ है? पूर्ण दशा पाया नहीं, उसे व्यवहारनय का विषय है, ऐसा उसको मान्य रखना चाहिए। ऐसा वहाँ कहते हैं। आहाहा!

देखो! 'परस्पर विरोध है;...' दो नयों को परस्पर विरोध है। व्यवहारनय पर्याय को, भेद को बतलाता है; निश्चयनय एक को-अभेद को बतलाता है अकेले को। व्यवहारनय राग को जानता है और स्वीकार करता है, यह शुभराग है। उसका फल तो बन्ध है। निश्चय अभेद को बतलाता है, उसका फल मोक्ष है। यह पहले आ गया ११वीं

गाथा में। शास्त्रकार ने भी जितना व्यवहारनय निमित्तरूप से गिनकर कहा, परन्तु उसका फल संसार है, यह ११वीं गाथा में आ गया है। व्यवहारनय है। ज्ञेय है, परन्तु हेय है। और यह ज्ञेय है और उपादेय है। द्रव्य ज्ञेय है। ज्ञेय तो दोनों हैं। यह उपादेय है, वह हेय है—ऐसे दोनों का विषय अलग है। परस्पर विरोध है। दोनों को परस्पर विरोध है। निश्चय से व्यवहार का विरोध और व्यवहार से निश्चय का विरोध। ऐसा स्वरूप ही उनका है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गड़बड़ यह सब तुमने समझे बिना किया इसलिए। तुम प्रोफेसर थे, परन्तु कहाँ इसमें कुछ समझते थे? अपनी दृष्टि से शास्त्र मोड़ना चाहता है। परन्तु शास्त्र की दृष्टि क्या है, वैसे अपनी दृष्टि को करता नहीं; इसलिए पकड़ में आता है। समझ में आया?

पाठ में है न? **'उभयनयविरोधध्वंसिनि' दो नयों के विषय के भेद से...** व्यवहार का विषय पर्याय, भेद, निमित्त आदि उसका विषय है। और निश्चय का विषय अभेद, एक स्वरूप द्रव्यार्थिक द्रव्यस्वरूप, वह अभेद का विषय। दोनों के विषय में अन्तर है। विषय के भेद से अर्थात् विषय के प्रकार से परस्पर विरोध है। दोनों में विरोध है। **उस विरोध का नाश करनेवाला 'स्यात्'-पद से चिह्नित...** कथंचित् व्यवहार है, वह जाननेयोग्य है पर्याय को। और यह निश्चय है, वह आदरनेयोग्य है। ऐसे दो नय का विरोध कथंचित् मिटाकर (जानना चाहिए)। निश्चयनय कहता है कि सत्य ही एक वस्तु है। व्यवहार कहता है कि हम भी एक हैं। निश्चय की अपेक्षा से व्यवहार असत्य है। व्यवहार की अपेक्षा से व्यवहार सत्य; सत्य अर्थात् है। सत्य है। उसे उड़ा दे कि पर्याय भी नहीं, व्यवहार भी नहीं, शुभ नहीं। मुनि हो जाने के बाद उसे हो गया केवलज्ञान? भावलिंग आत्मा का आनन्द का अनुभव होने पर सम्यक् अनुभव होकर छठवाँ (गुणस्थान) आया। तथापि अभी व्यवहार है। अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प उसे होता है। उसे निमित्त में नग्नदशा हो जाती है। हो जाती है। नग्नदशा हो जाती है अजीव की।

मुमुक्षु : वस्त्र उतारता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उतारता-फुतारता है नहीं। उतारे किसने कहा? पण्डितजी! नग्नदशा हो जाती है, निमित्त में। अट्ठाईस मूलगुण रह जाते हैं, पर्याय में।

मुमुक्षु : परन्तु करता कौन है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करे? जड़ की पर्याय जड़ से होती है।

मुमुक्षु : जीव न करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव करे तो कर्ता हो गया, मूढ़ हो गया। अजीव का स्वामी हो गया वह तो। जीव का स्वामी रहा नहीं।

मुमुक्षु : भगवान ने वस्त्र उतारे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उतारे नहीं, उतर गये हैं। उतारे और उतर गये, इसमें अन्तर है। विकल्प होता है, करनेयोग्य है, इन दोनों में अन्तर है। परिणमनरूप से कर्तृत्व है। परन्तु करनेयोग्य ठीक है, ऐसा नहीं। विकार की ठीकबुद्धि हो तो निर्विकार की ठीकबुद्धि रहती नहीं। आहाहा! 'निश्चय-व्यवहार में जगत भरमायो है।' कहा है न उसमें? बनारसीदास में।

मुमुक्षु : निश्चय में एक व्यवहार में अनेक याही नै विरोध में जगत भरमायो है। जगत भरमायो

पूज्य गुरुदेवश्री : जगत भरमायो। ऐसा है। इसमें ही कुछ है। इसमें ही होगा, हों! कितने पृष्ठ पर? पृष्ठ लिखा है? पृष्ठ नहीं होगा। पाँच श्लोक। उभयनय।

निहचैमैं रूप एक, विवहारमैं अनेक,
याही नै - विरोधमैं जगत भरमायो है। इसमें लिखा है।
जग के विवाद नासिवेकौ जिन आगम है,
जामैं स्याद्वाद नाम लच्छन सुहानौ है।
दरसनमोह जाकौ गयौ है सहजरूप,
आगम प्रमान ताके हिरदैमें आयो है।
अनैसौं अखंडित अनूतन अनंत तेज,
अेसो पद पूरन तुरंत तिनि पायौ है। ५

यह इस (श्लोक का) है। बनारसीदास ने भी बहुत काम बहुत (किये हैं)। इसका अर्थ किया है। कहो, समझ में आया इसमें? यह नय के विषय में विरोध होने पर भी दो नय का विषय है। वे माने न (कि) आत्मा नित्य है, वह अनित्य है? हाँ। दूसरी अपेक्षा से। द्रव्य अपेक्षा से नित्य है, पर्याय अपेक्षा से अनित्य है। दोनों है। विरोध होने पर भी दोनों है। समझ में आया?

जो जिन भगवान का वचन है, उसमें जो पुरुष रमते हैं... रमे का अर्थ यह किया कि जिन वचन में द्रव्यार्थिकनय को मुख्य करके शुद्धता बतलायी है। उसमें जो रमता है। यह परम अध्यात्म तरंगिणी में एकत्व (लिया है)। भगवान ने स्वभाव की एकत्वता जिनवचन में बतलायी है। उसमें एकत्व में जो रमता है, उसे सहज '**वान्तमोहाः**' मिथ्यात्व का मोह वमन हो जाता है। पर्याय आश्रय में, राग आश्रय में मिथ्यात्व का नाश नहीं होता, ऐसा जिनवचन कहते हैं। **(-प्रचुर प्रीति सहित अभ्यास करते हैं)** वह अर्थ करे, दो नय में प्रचुर प्रीति सहित अभ्यास करते हैं। दो नय में किस प्रकार से होगा? एक नय को मुख्य करके द्रव्य में जो एकतापने का अभ्यास करता है, उसका मिथ्यात्व का नाश होता है। व्यवहारनय से कुछ मिथ्यात्व का नाश नहीं होता। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण कृष्ण १४, मंगलवार, दिनांक - १३-०९-१९६६
श्लोक - ४, प्रवचन - ४६

समयसार का चौथा कलश है। बारह गाथा के साररूप यह श्लोक आया है। बारह गाथा के बाद आया है न। **निश्चय और व्यवहार - इन दो नयों के विषय के भेद से...** विषय के प्रकार से **परस्पर विरोध है;...** अर्थात् वैर है। यह पहला शब्द आया है इसमें। है न? '**उभयनयविरोध**' पहले शब्द है। '**उभयनयविरोध**' निश्चयनय और व्यवहारनय दो के बीच वैर है, विरोध है, प्रतिपक्ष है। समझ में आया? क्यों? कि छठवीं गाथा से चला आता है। निश्चय वह अकेला ज्ञायकभाव बताता है; व्यवहार उसके भेद बताता है। चौदह गुणस्थानादि है न? समझ में आया? निश्चय एकरूप स्वभाव को बताता है। व्यवहार अनेक प्रकार के भेद को बतलाता है। परस्पर विरोध है। यह एकरूप को बतलाता है, वह अनेक को बतलाता है। यह अभेद को बतलाता, वह भेद को बतलाता है। सातवीं में आया था। निश्चय गुण-गुणी के भेद को स्वीकारता नहीं। अभेद अकेला आत्मा उसे स्वीकारता है। व्यवहार गुण-गुणी के भेद को जानना, ऐसा स्वीकारता है। समझ में आया?

नौवें में आया कि भावश्रुत से आत्मा का सीधा अनुभव करे, उसका नाम निश्चय श्रुतकेवली है। व्यवहार 'ज्ञान, वह आत्मा' इतना भेद डाले, वह व्यवहार है। भेद डालकर निश्चय में जाना, वह निश्चय है। वह स्व है। इन दो को विरोध हुआ। ११वीं गाथा में व्यवहार झूठा कहा। निश्चय सच्चा कहा। ११वीं गाथा में व्यवहारनय झूठा कहा। निश्चय सच्चा कहा। दो विरोध हो गया। समझ में आया? और ११वीं में (ऐसा कहा), निश्चय '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी**' त्रिकाल ज्ञायक भगवान के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। व्यवहार के आश्रय से नहीं होता। दोनों को विरोध है। निश्चय और व्यवहार दोनों को वैर है, प्रतिपक्ष है।

बारहवीं गाथा में कहा, निश्चय दृष्टि हुई और पर्याय की पूर्णता हो गयी। उसे कोई व्यवहार अब रहा नहीं। परन्तु जहाँ अपूर्ण दशा है, दृष्टि भूतार्थ के ऊपर हुई है, तथापि पर्याय में अशुद्धता है, तो व्यवहारनय है, वह उससे जाना हुआ प्रयोजनवान है। आदर किया हुआ निश्चय प्रयोजनवान है, व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान, दोनों में विरोध हो गया। समझ में आया? निश्चय एक द्रव्य उपादेय है। व्यवहार यह नहीं। जाननेयोग्य हूँ, वह उपादेय है। जाननेयोग्य, ऐसा उपादेय। अर्थात् कि जानकर हेय करनेयोग्य व्यवहार है। निश्चय जानकर उपादेय करनेयोग्य निश्चय है। कहो, समझ में आया? यह उभयनय की व्याख्या हुई इतनी। यह '**उभयनयविरोध**' की व्याख्या हुई इतनी। '**उभयनयविरोध**'।

अब '**ध्वंसिनि**' '**उभयनयविरोधध्वंसिनि**' कहते हैं, देखो! इसका विरोध-विरोध को नाश करनेवाला, अर्थ में ऐसा शब्द है न दूसरा? '**ध्वंस**' अर्थात् नाश। भगवान की वाणी अथवा भगवान ने कहा हुआ भाव, समझ में आया? यह विरोध का नाशकरणशील है। भगवान ने कही हुई वाणी में आत्मा को, दिव्यध्वनि में ऐसा आया कि आत्मा एकरूप है, वह उपादेय है। और अनेकरूप उसकी दशा है। वह जाननेयोग्य है, उपादेय नहीं। समझ में आया? क्योंकि अपना प्रयोजन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अथवा आनन्द की प्राप्ति शुद्ध ध्रुव के उपादेयरूप से प्रगट होती है। व्यवहार के आश्रय से नहीं होती, इसलिए व्यवहार जाननेयोग्य सही। परन्तु हेयरूप से जानना, उसे आदरणीय को आदरणीय करके जानना, ऐसा दोनों का विरोध भगवान ने मिटाया है। समझ में आया?

विरोध का नाश करनेवाला 'स्यात्'-पद से चिह्नित... अर्थात् कि मुख्यरूप से भगवान आत्मा उपादेय है, ऐसा और गौणरूप से उसे जो व्यवहार था, वह व्यवहार गौण किया था। उसे व्यवहार जाननेयोग्य है, ऐसा कहा जाता है। अर्थात् व्यवहार है। ११वीं में इनकार किया था कि व्यवहार नहीं। तब फिर कहा कि व्यवहार है। नहीं क्यों कहा था? कि आश्रय करनेयोग्य नहीं, इसलिए नहीं कहा था। परन्तु व्यवहार का विषय है। गुणस्थानभेद है। पर्याय में मन्दता है। वह सब जाननेयोग्य है। निश्चय कहे कि तू नहीं, व्यवहार कहे कि मैं हूँ। समझ में आया? यह तो सब गाथा का ११-१२ का पूरा टोटल का यह कलश है। इसमें अर्थ कितने ही करते हैं कि यह दोनों नय समान हैं, दो

नय समान हैं। दो नय समान नहीं होते। दोनों में विरोध है। विरोध है न। विरोध में समान कैसे हो? समझ में आया? बहुत (ऐसा) अर्थ (करते थे)। पहले वहाँ सुना था तलोद में। यदि दो नय का बराबर ज्ञान समान करके दोनों में रमे तो मिथ्यात्व का नाश होगा। फिर तो बाहर में बहुत पत्रिका में आया था। उभयनय है। उसका आश्रय करने से... परन्तु '**उभयनयविरोधध्वंसिनि**' है इसका अर्थ क्या? '**उभयनयविरोध**' दोनों एक-दूसरे के वैरी हैं। समझ में आया?

जिनवाणी में उपादेय वस्तु। कलश में यह लिया है क्योंकि मूल ११वीं गाथा में और १२वीं गाथा का दो का करके यह कलश किया है। भगवान आत्मा एक समय में... समझ में आया? ... 'स्यात् पद से चिह्नित' किसी अपेक्षा से कहना है इसमें। निश्चय वस्तु भगवान आत्मा सच्चिदानन्द ध्रुवस्वरूप है, वह आदरणीय है। इसलिए उसे सत्रूप से कहा जाता है और पर्याय में-अवस्था में रागादि है, वे नहीं, ऐसा जो कहा था। वापस 'है' ऐसा कहकर कथंचित् व्यवहार असत्यार्थ कहा था। अर्थात् कि व्यवहार नहीं, ऐसा नहीं। है, परन्तु आश्रय करनेयोग्य नहीं, इसलिए उसे—व्यवहार को असत् कहा है। समझ में आया?

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द ध्रुव सत् ज्ञानानन्द, एकरूप वस्तु। अनन्त-अनन्त काल से चीज़ अखण्डानन्द भगवान। यह जिनवाणी में आया कि वह उपादेय है। उसका आश्रय करके और उसका अनुभव करनेयोग्य है। अनुभव करनेयोग्य है। व्यवहार का आश्रय करनेयोग्य नहीं। रागादि होते हैं। परन्तु जानकर... जानकर हेय करनेयोग्य है। समझ में आया?

जो जिन भगवान का वचन... वचन अर्थात् वाणी। **उसमें जो पुरुष रमते हैं...** वाणी में रमे? शब्द तो ऐसा पड़ा है। '**जिनवचसि रमन्ते**' वीतरागभाव में, वीतराग की वाणी में, सर्वज्ञ की वाणी में ऐसा आया कि आत्मा अखण्डानन्द प्रभु शुद्ध आनन्द का कन्द ध्रुव है। वही दृष्टि में लेने योग्य और आदरणीय और अंगीकार करनेयोग्य है। जिससे आत्मा की शान्ति प्राप्त हो और परतन्त्रता का नाश हो और स्वतन्त्रता की प्रसिद्धि हो। जाहेरात शब्द यहाँ क्यों आया? आत्मख्याति कहा न। पण्डितजी! टीका का

आत्मख्याति है न। समयसार की टीका का नाम आत्मख्याति है। आत्मा प्रसिद्ध हुआ। समझ में आया?

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्णानन्द प्रभु ध्रुव अनन्त गुण के पिण्डस्वरूप और एक समय की अवस्था-हालत। उस हालत को गौण करके 'नहीं' ऐसा कहा था। और एक वस्तु अखण्ड है, उसे आदरणीय करने के लिये, शुद्ध चैतन्य आनन्दघन में लक्ष्य करने के लिये उसे सत्य और उसे ही भूतार्थ और सच्चा भाव जगत का आत्मा है, ऐसा कहा गया है। व्यवहारनय का वापस विषय कि है अवश्य पर्याय में। जब तक पूर्णदशा—परमात्मदशा प्राप्त न हो, तब तक दशा में रागभाग है, शुद्धता की कमी है, उसे व्यवहारनय जैसा है, वैसा जानता है। नहीं, ऐसा नहीं। नहीं, ऐसा (करेगा) तो एकान्त हो जायेगा, ऐसा कहते हैं। ऐसा है और आदरणीय है तो एकान्त हो जायेगा। क्योंकि वस्तु आदरणीय और पर्याय भी आदरणीय। दोनों आदरणीय हो सके तो दो भाग कैसे पड़े? दो नय कैसे पड़े? कहो, चन्दुभाई! सूक्ष्म बहुत परन्तु भाई! समझ में आया?

निश्चयस्वरूप भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसका अन्तर आश्रय करके अनुभव करने से आत्मा को आनन्द प्राप्त होता है और उसके फलरूप से उसे मोक्ष मिलता है। व्यवहारनय का आश्रय करने जाये तो राग होगा और व्यवहारनय जाननेयोग्य का सत् है। पर्याय है, भेद है, परन्तु उसका आश्रय करने जाने से राग होता है और उसका फल वास्तव में तो बन्ध है। इसका फल मोक्ष है, उसका फल बन्ध है। आहाहा! समझ में आया? अवस्था में जब तक पूर्ण दशा न हो, वहाँ शुद्ध चैतन्य का आदर करके रमणता होने पर भी पूर्ण शुद्धता नहीं। इससे बीच में दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के शुभभाव आदि आये बिना रहते नहीं। परन्तु उसका फल बन्ध है। समझ में आया? और उपादेय चीज़ है, उसका फल मुक्ति है।

भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का कन्द है। उसका आश्रय और अंगीकार करने से शुद्धता प्रगट होकर, क्रम से उसे मुक्ति होती है। दो नय के विषय में अन्तर, दो के फल में अन्तर, दोनों में हेय-उपादेय में अन्तर। ज्ञेय तो दोनों हैं। समझ में आया?

दोनों की दिशा में अन्तर। व्यवहारनय परलक्ष्य में जाता है, निश्चय स्वलक्ष्यी होता है। समझ में आया?

'**जो पुरुष रमते हैं...**' इसका अर्थ किया। कलशकार ने ऐसा किया कि रमते हैं अर्थात् भगवान की वाणी में शुद्ध जीववस्तु उपादेय आयी है। उसमें जो रमते हैं। कलश टीकाकार (परम) अध्यात्म तरंगिणी। रमते हैं अर्थात् उसमें ऐसा कहा, एक स्वरूप एकत्व है, उसमें रमते हैं। वह तो वह का वह हुआ। भगवान आत्मा राग, पुण्य, पाप, विकल्प जो दया, दान, व्रतादि राग है, उससे भिन्न ऐसा भगवान आत्मा स्वयं एकत्व में रमे, उसे वाणी में उपादेय करके रमने का कहने में आया है। समझ में आया? '**जो पुरुष रमते हैं...**' अर्थात् कि जो कोई आत्मा रमते हैं। और कोई कहे पुरुष और स्त्री। यहाँ तो आत्मा की बात है। **(-प्रचुर प्रीतिसहित अभ्यास करते हैं)...** अर्थात्? अन्तर आनन्दमूर्ति ध्रुवस्वरूप की रुचि की प्रीति करके उसमें एकाग्रता से रमते हैं। प्रीति शब्द आगे आता है, निर्जरा अधिकार में। निर्जरा अधिकार में आता है। तीन बोल। २०६ गाथा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। इसीलिए तो स्पष्टीकरण किया। २०६ गाथा में आता है। समझ में आया? यह रुचि करना, ऐसा इसका अर्थ है। यह है, देखो!

एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि।
एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खं॥२०६॥

(हे भव्य!) इतना ही सत्य आत्मा है, जितना यह ज्ञान है—ऐसा निश्चय करके ज्ञानमात्र में ही सदा ही रति... सदा ही रति। ऐसा शब्द संस्कृत टीका में है। यह रति का अर्थ भले कोष्ठक में किया। **(प्रीति, रुचि)** रति का अर्थ, प्रीति का अर्थ यहाँ दूसरा है। राग, ऐसा नहीं। अन्तर शुद्ध चैतन्यमूर्ति की रुचि करना, प्रीति अर्थात् प्रेम करना, उसका नाम यहाँ प्रीति है। राग के अर्थ में प्रीति नहीं। '**एदम्हि रदो**' पाठ है। मूल पाठ में है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य '**एदम्हि रदो**' तो '**रदो**' का भले रति किया अमृतचन्द्राचार्य ने। रति का अर्थ ऐसा किया। भगवान आत्मा एक समय की पर्याय—अवस्था में रागादि है,

उसका लक्ष्य छोड़कर त्रिकाल में रुचि को प्रेम करके रमता है, उसे निर्जरा होती है। यह निर्जरा अधिकार है। शुभ-अशुभभाव में आवे, उसे निर्जरा नहीं। शुभभाव में निर्जरा नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। पंच महाव्रत के परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण के भाव, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, शास्त्र का ज्ञान परलक्ष्यी शुभराग, वह बन्ध का कारण है, निर्जरा का कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया? निर्जरा अर्थात् शुद्धि की वृद्धि का कारण वह नहीं। अथवा शुद्धि की उत्पत्ति का कारण व्यवहार नहीं। शुद्धि की उत्पत्ति का कारण भगवान त्रिकाल आनन्दकन्द स्वरूप है। '**एदम्हि रदो**' ऐसा है न? '**एदम्हि रदो**' भगवान शुद्ध ध्रुव चैतन्य, उसमें रुचि में रमना। '**णिच्चं संतुट्ठो**' अन्तर सन्तोष हो। '**होहि णिच्चमेदम्हि**' उसमें अनुभवनीय है। वही अनुभवने योग्य है। तब उसे निर्जरा अर्थात् अशुद्धता का नाश होकर, शुद्धता की-पवित्रता की, आनन्द की, शान्ति की वृद्धि होती है। वह शान्ति और आनन्द की वृद्धि हो, उसे भावनिर्जरा कहा जाता है। आहाहा! गजब बात!

निर्जरा के तीन प्रकार। एक, कर्म का-निमित्त का खिरना, वह निर्जरा-निमित्त। एक, अशुद्धता का नाश होना, वह निर्जरा और एक, शुद्धि की उत्पत्ति वृद्धि होना, ऐसे शुद्धोपयोग को निर्जरा कहा जाता है। टीका में शुद्धोपयोग को निर्जरा कहा है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा... नि—विशेषे झर जाना। अर्थात् अशुद्धता का झरना, टलना, पर का टलना। और नि-जरा अर्थात् अन्दर शुद्धि की वृद्धि (होना)। भगवान आत्मा पूर्ण चैतन्य आनन्दकन्द है, उसकी एकाग्रता से जो शुद्धि की वृद्धि हुई। उत्पत्ति हुई, वह संवर और वृद्धि हुई, वह निर्जरा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : झरना, ऐसा कहा था, उस समय ऐसा आया होगा। वह तो वह का वह हुआ यह। शुद्धोपयोग को निर्जरा कहा अर्थात् आनन्द झरा। उसमें ही है न। देखो न! उसमें निर्जरा है। सन्तोष में है। अनुभवनीय।

भगवान आत्मा, जिसका लक्ष्य अनादि से राग और पर और अवस्था के ऊपर है, पर्याय के ऊपर है, वह त्रिकाल ज्ञायक के ऊपर दृष्टि करके रमता है, वहाँ खिरे, झरता

है। पर्वत में से पानी झरे, वैसे आनन्द झरता है। राग पुण्य-पाप के परिणाम में एकाग्र होने से दु:ख का वेदन होता है। पुण्य-पाप के भाव दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के परिणाम, वे सब दु:खरूप हैं। गजब बात! चिल्लाहट मचाये वे। अर र! दया का भाव वह राग? और वह हिंसा? अरे! सुन न! पर की ओर का राग दया का भाव, वह परसन्मुख का भाव, वह व्यवहार से भले उसे अहिंसा कहो, निश्चय (से) राग की उत्पत्ति है, वह हिंसा है। राग की अनुत्पत्ति को भगवान अहिंसा कहते हैं। आहाहा! भारी विवाद! पण्डितों के ऐसे झगड़े। अरे! दया तो करुणा का स्वभाव कहा है। भाई! केवली को करुणा कही, परन्तु वह तो अकषाय करुणा है। विकल्प उठे और पर की दया, वह तो शुभराग है, उत्थान है उत्थान। वृत्ति उठती है। उत्थान राग है। राग, वह आत्मा के स्वरूप को घात कर दशा खड़ी होती है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ **उसमें...** उसमें अर्थात् वीतराग ने कहा हुआ उपादेय आत्मा। मुख्यरूप से ११वीं गाथा में कहा था कि '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' ऐसा जो भगवान की वाणी में आया। ऐसा वह कहते हैं, भाई! यह कहते हैं, हम कहीं घर का नहीं कहते। यह भगवान ने कहा है, तत्प्रमाण हमने यह गाथायें की हैं। भगवान की वाणी में आया है कि भूतार्थ, वह निश्चय है। वह शुद्धनय है। त्रिकाल ज्ञायक, वह शुद्धनय है। ऐसा भगवान की वाणी में यह आया था। इसका आश्रय करने से सम्यग्दृष्टि होता है, व्यवहार का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता नहीं। समझ में आया? ऐसा जिनवचन में आया था। ऐसा हमने यहाँ कहा है। आहाहा!

ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो॥११॥

वीतराग परमेश्वर त्रिकाल अनन्त चक्षु जिन्हें असंख्य प्रदेश में खिल गये हैं। अनन्त चक्षु कहा है न प्रवचनसार में। पण्डितजी! अनन्त चक्षु। आगमचक्षु साधु, चर्मचक्षु साधारण प्राणी, भगवान अनन्त चक्षु। प्रवचनसार तीसरे चरणानुयोग (सूचक चूलिका अधिकार में)। असंख्य प्रदेशी भगवान अनन्त चक्षु खिल गये हैं। अनन्त दीपक प्रकाश सूर्य हो गया। ऐसे परमेश्वर सर्वज्ञ की वाणी में ऐसा आया था कि उपादेय यह आत्मा

त्रिकाल ध्रुव है, वही अंगीकार करनेयोग्य है। और जिनवचन में यह कहा है। उसमें जो पुरुष रमते हैं। राग से पृथक् होकर, विकल्प से पृथक् होकर निर्विकल्प भगवान आत्मा में रुचि करके रमते हैं, वे पुरुष, **वे अपने आप ही (अन्य कारण के बिना) मिथ्यात्वकर्म के उदय का वमन करके...** भ्रमणा का नाश हो जायेगा। कर्म का नाश होगा और भ्रमणा का नाश होगा। भगवान का आश्रय करने से भ्रमणा का नाश होगा। आहाहा! समझ में आया?

भगवान सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द अनादि-अनन्त है। उसकी एक समय की दशा वर्तमान है, वह विपरीत और अल्पज्ञ है। उसका लक्ष्य छोड़कर अविपरीत और पूर्ण, ऐसा जो त्रिकाली स्वभाव, उसका आश्रय करके रमते हैं, उसे कोई कारण बिना मिथ्यात्वकर्म का उदय वमन-वम डालते हैं। भाषा कैसी प्रयोग की है? '**वान्तमोहाः**' जैसे वमन किया हुआ मनुष्य नहीं खाता। उसी प्रकार एक बार वमन किया, वह फिर से नहीं आता। इतना जोर बताते हैं। आहाहा! अप्रतिहतभाव बताते हैं। समझ में आया? भले वर्तमान क्षायिक जो भगवान कहते हैं, उस जाति का न हो। परन्तु उस जाति का जोर कहा है आचार्य महाराज ने। कुन्दकुन्दाचार्य के हृदय को खोलकर यह कलशा रखा है। वमन।

भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द सत्... सत्... सत्... शाश्वत सत् का आनन्द आदि अनन्त गुण का एकरूप, उसका आश्रय करता है, उसका अनुभव करता है (तो) मिथ्या भ्रमणा वमन हो जाती है, छूट जाती है। वम जाती है अर्थात् फिर से लेते नहीं। फिर से उसे आने का नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह पंचम काल के मुनि ऐसे जोर से बात करते हैं। कहो, चन्दुभाई! जिसे परमात्मस्वरूप ही अपना अन्दर विराजमान है। उसमें जिसे सम्यग्दर्शन द्वारा भेंट हुई, अनुभव हुआ, हों!

रमते हैं अर्थात् यहाँ कहेंगे। **इस अतिशयरूप परम ज्योति प्रकाशमान शुद्ध आत्मा को तत्काल ही देखते हैं।** अर्थात्? भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ स्वरूप शुद्ध ध्रुव चैतन्य, उसका आश्रय करके मिथ्यात्व को वमते हैं, वे **अतिशयरूप परम ज्योति प्रकाशमान शुद्ध...** भगवान। अतिशय महाशोभित चिदानन्द प्रभु! ऐसी चैतन्यज्योति

भगवान आत्मा, चैतन्यज्योति भगवान। समझ में आया? ज्योति क्यों कहते हैं? जैसे अग्नि दीमक को जलाकर राख करती है। दीमक समझते हो न? उधई? दीमक। छोटी होती है। शरीर बहुत पतला। दीमक। दीमक यह धूल में होती है और यह क्या कहलाता है? तीतर खाये। तीतर-तीतर पक्षी होता है न, वह चोंच से धूल में से खोद-खोदकर (खाता है)। बहुत पतली मुलायम छोटी होती है। यह लकड़ी में हो, धूल में हो। बहुत छोटी सफेद इतनी होती है। गर्मी थोड़ी पड़े तो भी ... मर जाये। नजर के सामने देखा है। पालियाद में (संवत्) १९७५ में बाहर निकले थे। वहाँ धूप। बाहर निकले जरा। शरीर बहुत कोमल होता है। धूप थी उसमें जल गयी। जलकर मर गयी। (शरीर) बहुत कोमल होता है।

उसी प्रकार अग्नि अथवा ताप जैसे उसे जला डालता है, उसी प्रकार भगवान चैतन्य ज्योति का अनुभव विकार को दीमक की भाँति जलाकर राख कर डालता है। समझ में आया? दीमक देखी है या नहीं दीमक? यह लकड़ी में बहुत होती है। जंगल में बहुत होती है। मिट्टी निकालते हैं न। आहाहा! ठीक।

कहते हैं, भगवान आत्मा शुद्ध परमब्रह्म आनन्दस्वरूप त्रिकाल वस्तु उसकी है। उसकी वर्तमान दृष्टि पर के ऊपर और विकार और अंश के ऊपर है। अंश-दशा के ऊपर। उसे गुलाँट मारकर त्रिकाल ज्ञायक के ऊपर दृष्टि करके आत्मा के आनन्द को अनुभव कर मिथ्यात्व को छोड़ता है, वह अतिशय परम ज्योति, परम ज्योति—ऐसा कहा है। है न उसमें? **'परमं ज्योतिरुच्चै'** ज्योति की उपमा दी है। परम चैतन्य ज्योति, परम चैतन्य ज्योति। **शुद्ध आत्मा को...** ऐसा परम ज्योतिस्वरूप, चैतन्य परम ज्योतिस्वरूप भगवान आत्मा को **तुरन्त...** ही। ऐसा शब्द वापस। **'सपदि' 'सपदि' तुरन्त... 'ईक्षन्त'** अनुभव करता है। **तुरन्त... 'ईक्षन्त'** अनुभव करता है। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य एकस्वरूपी, आनन्दस्वरूपी का आश्रय करके उसे अनुभव करता है। वह परम चैतन्यज्योतिस्वरूप आत्मा का अनुभव और आनन्द को वेदता है। तुरन्त। ऐसा नहीं कि यह पहले जानने में आया और फिर अनुभव में आया। वह तो अन्दर जहाँ स्पर्शा, तुरन्त ही उस काल में उसे अनन्त आनन्दसहित आत्मा का अनुभव होता है। आहाहा! समझ में आया?

वमन करके, शब्द प्रयोग किया है न? होता है, उसे करके प्रयोग किया है। '**वान्तमोहाः**' वमन कर मोह। यह मोह है, लाओ छोड़ूँ। ऐसा है वहाँ? परन्तु कथन की पद्धति क्या लावे? भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप अनुभव में आया तो उसने मिथ्यात्व का वमन किया, ऐसा व्यवहारनय से कथन होता है। वमन करके, ऐसा शब्द है न? तो करना है वह वमन? हो जाता है, नाश हो जाता है। आहाहा! स्वयं नाश हो जाता है, उत्पत्ति नहीं होती। एकदम नाश हो जाता है।

भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु, सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा का अन्तर में दृष्टि और अनुभव होने पर मिथ्या भ्रान्ति उत्पन्न नहीं होती अथवा पहले थी, उसका नाश हो जाता है। उसे वमन करता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! शब्द-शब्द में विवाद। समान न समझे (फिर कहे), इसमें ऐसा लिखा। भाई! सब लिखा है, सुन न अब। वहाँ नजर करने जाता है कि यह मिथ्यात्व है उसे छोड़ूँ, ऐसा है? यह मिथ्या भ्रान्ति है तो छोड़ूँ। यह तो पर्यायबुद्धि हुई। वस्तुबुद्धि में जहाँ स्थिर हुआ, (वहाँ) भ्रान्ति का नाश हो जाता है। उसे वमन करता है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! टूट जाये, नाश हो जाये।

ऐसे शुद्ध आत्मा को '**सपदि ईक्षन्त**' एकदम भगवान आत्मा के आनन्द का अनुभव करता है। देखता है, इसका अर्थ यह—'**ईक्षन्त**'। यह स्वरूप शुद्ध आनन्द, उसे प्रत्यक्ष अनुभव करता है। प्रत्यक्ष अनुभव करे, उसे '**ईक्षन्त**'—देखता है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? यह चौथे गुणस्थान की बात है। वे और कहीं का कहीं ले गये। आगे है। अरे! सुन न अब। यहाँ तो अभी चौथे गुणस्थान में, मिथ्यात्व को वम कर कहा है न! क्या कहा है यह? यह किसकी बात है यह? चारित्रमोह को वमकर वीतराग हो गये, उनकी बात है यहाँ? '**वान्तमोहाः**' कहा है, भाई! '**मोहाः**' अर्थात् मिथ्यात्व की बात है यहाँ। क्योंकि जो ११वीं गाथा में '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**' वह बात यहाँ कलश में ली है। समझ में आया? इसलिए कोई ऐसा कहे कि यहाँ मिथ्यात्व का नहीं परन्तु राग-द्वेष का (नाश करते हैं)। ऐसी बात है ही नहीं। मिथ्या भ्रान्ति का नाश होकर भगवान आत्मा, अपने आनन्द को प्रत्यक्ष वेदन में अनुभव करता है। उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। आहाहा! अरे! ऐसी जिसे अभी खबर न हो, वह

यह व्रत और पर्याय और ले आवे क्रियाकाण्ड और यह मेरा चारित्र, हम व्रत में बढ़ गये। धूल में भी बढ़े नहीं। मिथ्यात्व में बढ़े हैं। ऐई! जिसे अभी वस्तु की खबर नहीं, उसे कषाय की कोई मन्दता के परिणाम (हो और) उसे धर्म माने और उसे चारित्र माने (तो वह) क्षण-क्षण में मिथ्यात्व की पुष्टि करता है। अरे! जगत की विपरीतता!

मुमुक्षु : कुछ तो लाभ होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : होगा, मिथ्यात्व का भाव। कुछ नहीं होता है, ऐसा है? पर्यायबुद्धि में मिथ्यात्व की पुष्टि होती है, वही होगा। नहीं किसलिए होगा? समझ में आया? गजब परन्तु सब।

बारह गाथा के बाद यह पहला कलश आया है। बारह गाथा के पहले तीन आये थे। नमः समयसाराय, अनेकान्तमय मूर्ति, परपरिणति हेतु, ये तीन आये थे। यह चौथा पूरा सार डाला है। बारह गाथा की पीठिका स्थापित करके। समझ में आया? ओहो! अमृतचन्द्राचार्य की रचना की पद्धति के पीछे भाव क्या घुँटता है, उनको? समझ में आया?

भगवान आत्मा... भाई! तेरी पूरी पूर्णता प्रभु तुझमें है। समझ में आया? आहाहा! 'प्रभु तारी पासे रे हरि नथी वेगळा, प्रभु तारी पासे...' पूर्णानन्द का नाथ बापू तू प्रभु है, तुझे खबर नहीं। यह राग और द्वेष, दया और दान, व्रत और भक्ति, यह धूल और धाणी यह शरीर ऐसे नजरें बाहर करके मर गया है अनादि काल से। समझ में आया? 'प्रभु तारी पासे रे हरि नथी...' हरि अर्थात् समझ में आया? पापं अज्ञान ओघं हरति इति हरि, ऐसा यह आत्मा। पंचाध्यायी में पाठ है। इस श्लोक का। पाप को हरति वह हरि भगवान है। दूसरा हरि कहाँ? उसका हरि दूसरा उसका और यह इसका। 'हरि तारी पासे रे हरि नथी वेगळा, पण आडो आव्यो तने रे अहंकार' राग और दया, व्रत, भक्ति और पूजा, यह... यह... यह मैं... यह मैं... इस मिथ्यात्व की आड़ में भगवान दिखता नहीं। 'तिनके की आड़ में पर्वत रे पर्वत कोई देखे नहीं।' तरणा समझते हो? तरणुं-तिनका। एक तिनका (आड़े हो तो) कुछ दिखता नहीं। 'तिनके की आड़ में पर्वत रे पर्वत कोई देखे नहीं।' एक विकल्प पुण्य और दया, दान के, व्रत के विकल्प में अधिकरूप से

मानकर बैठा। उस विकल्प की आड़ में भगवान त्रिलोकनाथ चैतन्यमूर्ति को देख नहीं सकता। समझ में आया? आहाहा! भूल वह भी आठ पाँच सेरी की। मण में कितनी भूल? मणभर की। हमारे काठियावाड़ में कहते हैं कि मण में आठ पंसेरी की भूल। आठ पंचसेरी अर्थात् मण में मण की भूल। अरे भगवान! तेरी सम्पदा की तुझे खबर नहीं, प्रभु! तू कौन है अन्दर? सच्चिदानन्द सत् शाश्वत्। शाश्वत् अकृत अकृत्रिम चीज़ पदार्थ। उसके अनन्त आनन्द के स्वभाव की परिमितता नहीं। ऐसा भगवान आत्मा का आश्रय करे, उसे तुरन्त ही आनन्द का अनुभव होता है और मिथ्यात्व का वमन हो जाता है। आहाहा! यहाँ तो भाई! यह बात की है। यहाँ तो मिथ्यात्व वमन और प्रत्यक्ष ईक्षन्त अनुभवता है, ऐसा कहा। वह कहीं आठवें और दसवें (गुणस्थान) की बात नहीं। कौन जाने क्या करते हैं? अमरचन्दभाई! यह पण्डित कितने क्या अर्थ करते हैं? कितने शब्द प्रयोग करते हैं। आहाहा! भगवान! भूले तो भींत भूले, ऐसा नहीं कहते? बड़े दीवार भूले। भींत समझे? चलने जाये वहाँ दीवार आड़ी आवे। दरवाजा भूल जाये। अरे! परन्तु यहाँ कहा (आया)? मैं विचार में था। दरवाजे से निकलना चाहिए। बारणुं समझे? इसी प्रकार अज्ञानी दीवार भूलता है तत्त्व को समझे बिना। सिर पछाड़े दीवार के साथ। निकलने का रास्ता क्या है, उसकी खबर नहीं। देह की क्रिया हमारी, यह देह। इतना तो हम करते हैं न, शरीर तो करते हैं न, कुछ हम व्रत तो पालते हैं न। मूढ़! व्रत कहाँ थे तुझे?

मुमुक्षु : अपवास।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपवास-बपवास कब थे परन्तु? उप वास हो उसे उपवास (कहा जाता है), यह तो अपवास है। उप अर्थात् भगवान आनन्दकन्द में समीप में बसे, उसे उपवास कहा जाता है। उसके भान बिना सब अपवास—बुरा वास है। मर जाये महीने-महीने के अपवास करके सूख जाये। भगवान चिदानन्दमूर्ति रागरहित चीज़ का अनुभव नहीं, उसे अपवास सब बुरा चार गति में भटकने के लिये है। भूंडा—बुरा। अप अर्थात् बुरा। वास। राग में तेरा वास है। आत्मा में है नहीं। अपवास करे, भक्ति करे। महीने-महीने के। निर्जरा अधिकार में भार—बोझा है, (ऐसा कहा है)। पाँच महाव्रत

आत्मा के अनुभव बिना भार... भार, विकल्प का भार-बोझा। हल्का भगवान रागरहित चीज़ का अनुभव नहीं, इसलिए विकल्प का बोझा तुझे ढोना पड़ता है। '**क्लिष्यतां**' आता है न कलश? निर्जरा अधिकार में आता है। समझ में आया? आचार्य ने तो भारी गजब बातें की हैं! ओहोहो! समयसार भरतक्षेत्र का केवलज्ञान का सूर्य बतलाता है। आहाहा! इसके शब्द-शब्द में, इसके शब्द-शब्द में चैतन्य का पुकार, चैतन्य का पुकार (उठता है)! अज्ञान के नाश और चैतन्य की आत्मप्रसिद्धि। भगवान आत्मा प्रसिद्ध होता है। भगवान आत्मा प्रसिद्धि को पाता है। आत्मख्याति है न! भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ जो विकल्प की आड़ में नहीं दिखता था। पूरा समुद्र हो... उसमें है न अन्तिम कलश (३२)। '**मज्जन्तु निर्भरसमी सममेव लोका**' आड़ की है। जैसे बड़ा समुद्र हो न समुद्र? तीन हाथ का कपड़ा आड़े हो, तीन हाथ। और मनुष्य खड़ा हो तो पूरा समुद्र नहीं दिखता। और स्वयं तीन-चार हाथ का ऊँचा हो और इतना कपड़ा रखा हो तो पूरा समुद्र नहीं दिखता। जहाँ आड़ तोड़ डाली, ओहोहो! ऐसा है न? ३८ (गाथा में) है न? ३८ में पूरा होता है न! ३८ में पूरा होता है न? अन्तिम है न?

मज्जन्तु निर्भरसमी सममेव लोका
आलोकमुच्छलति शान्तरसे समस्ताः।
आप्लाव्य विभ्रमतिरस्करिणीं भरेण
प्रोन्मग्न एष भगवानवबोधसिन्धुः॥३२॥

भगवान आत्मा... जैसे बड़ा समुद्र हो। चार हाथ का कपड़ा आड़े लगाया हो। समझ में आया? दिखता नहीं। कपड़ा तोड़ डाले। उसी प्रकार '**विभ्रम**' की आड़ में पुण्य और पाप, विकल्प मेरे, मैंने किये, उसकी आड़ में पूरा भगवान चिदानन्द दिखता नहीं। यह अन्तिम श्लोक है। जीव अधिकार की ३८ गाथा हुई न, इसलिए अन्तिम यह श्लोक लिया है। '**विभ्रम**' की चादर आड़े है। है न अपने किया है या नहीं? देखो!

यह ज्ञानसमुद्र भगवान आत्मा विभ्रमरूपी आड़ी चादर को समूलतया... चादर अर्थात् कपड़ा। **डुबोकर (दूर करके)... 'विभ्रमतिरस्करिणीं' स्वयं सर्वांग प्रगट हुआ है;...** आत्मख्याति। पूरा आत्मा अनन्त आनन्द के रस से झरता हुआ श्रद्धा-ज्ञान के

अनुभव में वह आत्मा आता है। उसे आत्मा प्रसिद्ध होता है। आत्मा तब प्रसिद्ध होता है। यों ही ऐसे विकल्प से, पुण्य-पाप से माने, शास्त्र की धारणा से माने, शास्त्र की धारणा से माने, तब तक उसने आत्मा माना नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्णानन्द का जिसका अनादि-अनन्त अकृत्रिम अकृत तत्त्व है, उसके सन्मुख होकर विभ्रम आड़ी चादर को तोड़कर भगवान आत्मा जगा। कहते हैं कि आनन्द का अनुभव लेता हुआ प्रसिद्ध हुआ कि मैं आत्मा हूँ। यह आत्मा है। आनन्दस्वरूप, वह आत्मा है। विकारस्वरूप वह आत्मा नहीं। आहाहा! गजब!

(गाथा) ११-१२ की पूरी सन्धि कर डाली। पाँचवीं में ऐसा कहा कि मैं कहूँगा। '**एयत्तविहत्तं**' कहूँगा। राग से पृथक् और स्वभाव से भरपूर एकत्व को कहूँगा। प्रभु! प्रमाण करना, हों! अनुभव से प्रमाण करना, ऐसा लिया। समझ में आया? छठवीं में कहा था, भगवान ज्ञायकभाव है न, प्रभु! एकरूप स्वभाव। यह गुणस्थान भेद आदि, वह तो पर्याय है। प्रमत्त-अप्रमत्त तो भेद है। व्यवहार का विषय है सही, परन्तु वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। त्रिकाल ज्ञायक आश्रय करनेयोग्य है। निश्चय और व्यवहार वहाँ हो गया।

(गाथा) ७वीं में भी ऐसा कहा। निश्चय से भगवान आत्मा में गुणभेद नहीं। क्योंकि यह आत्मा ज्ञान। ऐसा कहीं ज्ञान पृथक् नहीं पड़ता। यह श्रद्धा कहीं पृथक् नहीं पड़ती। वह तो वस्तु का पूरा पिण्ड है, अनन्त गुण का रसकन्द एक है। ऐसे भेद से कहना, वह व्यवहार का विषय जाननेयोग्य है। परन्तु उससे अन्तर में आदरनेयोग्य एकरूप चीज़ है, ऐसा करके वहाँ निश्चय-व्यवहार कहा।

(गाथा) ८वीं में भी यही कहा। दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। अर्थात् भेद को कहनेवाले को अनुसरना नहीं, सुननेवाले को अनुसरना नहीं। भेद के लक्ष्य से अभेद में जाना। वहाँ व्यवहार है, ऐसा सिद्ध किया। निश्चय में जाना, वह सिद्ध किया। समझ में आया? (गाथा) ११ में स्पष्ट सिद्ध किया, (गाथा) १२ में सन्धि की, उसका यह कलश है। समझ में आया? कहो, केसरीचन्दजी! आहाहा!

यह जहाँ तक पर की महत्ता देता है, पर में महत्ता देता है, पुण्य के, दया-दान के

व्रत के परिणाम को भी महत्ता देता है या वर्तमान ज्ञान के क्षयोपशम की उग्रता को भी जब तक महत्ता देता है, तब तक उसे चैतन्य की महत्ता अन्दर सूझती नहीं। आहाहा! ऐई! ग्यारह अंग का ज्ञान, नौ पूर्व का ज्ञान, उसकी भी जहाँ महत्ता है, वह पर्यायबुद्धिवाला है। राग की मन्दता है, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम की महत्ता देता है, मिथ्यादृष्टि महत्ता पर्याय के ऊपर, राग के ऊपर देता है। उसे स्वरूप की महत्ता नहीं आती। आहाहा! कहो, अमरचन्दभाई!

जिसे व्यवहार की महत्ता और कीमत है, उसे निश्चय की महत्ता की कीमत नहीं। आहाहा! यह बड़े विवाद अनादिकाल के हैं। यह इसके ख्याल में नहीं आते। भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द का एक स्वरूप, उसकी जहाँ अन्तर महत्ता का अनुभव आया, उसे अब व्यवहार व्रतादि के परिणाम आवे, परन्तु महत्ता नहीं रहती। उसकी कुछ कीमत नहीं होती। वह कीमत आँकता ही नहीं। बन्ध के कारण हेय हैं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : .... आत्मा ज्ञात हो, ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ रहता है? फिर कुछ रहता नहीं।

मुमुक्षु : नहीं रहता?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ रहता नहीं। राग की अस्थिरता हो, उसे जानता है। कुछ रहता नहीं। समझ में आया? भले छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में दिखाई दे, राग दिखाई दे परन्तु राग से पृथक् का जिसे आनन्द वर्तता है। राग की एकता उस काल में भी नहीं होती। आहाहा! छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में, युद्ध में पच्चीस वर्ष का राजकुमार हो, क्षायिक समकित हो। हाथी (के ऊपर) बैठा हो और बाण ऐसे फेंकता हो। परन्तु अन्दर में राग और देह की क्रिया से भिन्न आत्मा का भान निरन्तर वर्तता है। आहाहा! समझ में आया?

यह तो आ गया नहीं अध्यवसाय की गाथा में? भगवान ने जब ऐसा कहा कि सन्त कहते हैं। महामुनि सन्त भगवान के पेट (अभिप्राय) खोलकर कहते हैं। भगवान ने जब ऐसा कहा कि भाई! दूसरे के जीवन-मरण, सुख-दुःख को तू कर नहीं सकता।

दूसरे को जिला दूँ, मार दूँ, शरीर को हिला दूँ, ऐसी भावना तो प्रभु! वह तो एकत्वबुद्धि का अध्यवसाय है, वह तो मिथ्यात्व है। यह एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की क्रिया करे और रखे, जिलावे, मारे, भगवान कहते हैं कि वह तो मिथ्यात्व का अध्यवसाय है। मुनि कहते हैं, भगवान ने जब दो द्रव्य की एकता के अध्यवसाय को छुड़ाया तो हम तो ऐसा मानते हैं कि पराश्रित जितना व्यवहार (है, वह समस्त ही) भगवान ने छुड़ाया है। आहाहा! कहो, समझ में आया? बहुत ऐसा कुछ (कठिन नहीं है)। हिन्दी और गुजराती में थोड़ा-थोड़ा अन्तर पड़े परन्तु धीरे-धीरे अभी समझना तो सही न थोड़ा-थोड़ा। कहो, पूनमचन्दजी! फिर सोमवार से तो हिन्दी करेंगे। वे लोग आनेवाले हैं। सहारनपुर से आनेवाले हैं जिनेश्वरदासजी और १४-१५ लोग आते हैं। पत्र आ गया। वे लोग तो कुछ (गुजराती) समझते नहीं बेचारे। पहले भी जब (संवत्) २००९ के वर्ष में मानस्तम्भ का था न? १३ वर्ष पहले। तब पाँच-पाँच हजार, साढ़े पाँच हजार लोग। अपने को हिन्दी आती नहीं। टूटा-फूटा करते थे। क्या करें? हम वहाँ से आये (हैं) महाराज! अब कुछ तो हमको... अब थोड़ा बहुत आठ-दस आना होता है। हिन्दी। गुजराती जैसा आती है, वैसी हिन्दी नहीं आती। कहो, समझ में आया? आहाहा!

देखो तो सही! 'तुरन्त देखता ही है।' देखे का अर्थ अनुभवता है। अमरचन्दभाई! 'ईषघ्ट' ऐसा देखता (था) न? पुण्य-पाप और पर्याय के अंश को देखता था। उसमें तो आत्मा परोक्ष रह गया। प्रत्यक्ष नहीं हुआ। अकेले राग का वेदन (हुआ)। नौवें ग्रैवेयक में जैन दिगम्बर साधु होकर गया। अट्ठाईस मूलगुण ऐसे चुस्त (पालन किये), परन्तु उसे अकेले राग का ही वेदन और आत्मा का अभाव दृष्टि में था। आहाहा! यहाँ भगवान आत्मा... 'जो संभाले वह सेठ, दूसरे अनुचर जानना जी।' भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसने अनुभव से स्वयं को ख्याल में लिया, वह सेठ कहलाता है, बाकी सब हेठा कहलाते हैं। समझ में आया? ऐई! वेठ-वेठ करनेवाले। ऐई! वेठिया सब सेठिया ये। धूल के वेठिया। ऐई! क्या होगा? कुंवरजी! यह सब वेठिया कहते हैं तुमको। टाईल्स का फेरफार करे और राग-राग पूरे दिन। ऐई! करोड़पति और अरबोंपति सब पाप के पाप के वेठिया हैं। वेठ करनेवाले। वेठ समझते हो? फौजदार से हुकम आवे न फौजदार से? कर्तव्यसर इसे जाना पड़े। गाँव के किसान हों उन्हें जब कोई गाँव में

फौजदारी आया हो तो फौजदार हुकम करे कि जाओ आज वेठ एक दिन (करनी है)। सवेरे से शाम तक। वेठ अर्थात् पैसा न ले।

मुमुक्षु : बेगारी कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बेगारी कहते हैं तुम्हार? हाँ यह। हमारे यहाँ वेठ कहते हैं। आज बेगारी में जाना पड़ेगा। रोटियाँ घर की बाँधकर बेगारी में जाना पड़ेगा। वहाँ कहाँ रोटियाँ लाता था। उसी प्रकार आत्मा के भान बिना के पैसे के अर्थी, अरे! पुण्य-पाप के अर्थी वे सब बेगारी-मजदूर हैं चार गति के भटकनेवाले। समझ में आया?

शुद्ध आत्मा को... 'सपदि ईक्षन्त' 'सपदि ईक्षन्त' 'सपदि ईक्षन्त' आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य के आनन्द का कन्द सागर, उसके ऊपर नजर पड़ने से प्रत्यक्ष कहते हैं कि उसे देखता है अर्थात् अनुभव में आता है। **कैसा है समयसाररूप शुद्ध आत्मा?** अब वह प्रगट हुआ, वह था या नहीं? था या नहीं? या नया प्रगट हुआ आत्मा? **कैसा है समयसार शुद्ध आत्मा? 'अनवम', 'अनवम' नवीन उत्पन्न हुआ नहीं,...** वह तो था ही अन्दर शुद्ध चिदानन्दमूर्ति। उसका लक्ष्य नहीं था, दृष्टि नहीं थी। बाकी वस्तु तो ऐसी की ऐसी ही थी। आहाहा! शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, शाश्वत तत्त्व तो ऐसा का ऐसा (है), नवीन हुआ नहीं। **'अनवम'। पहले कर्म से आच्छादित था, वह प्रगट व्यक्तिरूप हो गया है।** जो निमित्त के राग में और निमित्त के लक्ष्य में ढँक गया था, वह स्वभाव के लक्ष्य से व्यक्ति—पूर्ण प्रगट हुआ। ओहो! आत्मा प्रत्यक्ष शुद्ध आत्मा। आनन्द का अनुभव होने पर उस आत्मा का आनन्द का आंशिक अनुभव होने पर पूरा आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसा भान हो गया। वह ज्ञान का अंश किसे पकड़ने की योग्यतावाला प्रगट होने पर पूरा आत्मा ज्ञान की ज्योति है, ऐसा निश्चित हो गया। भगवान आत्मा आंशिक प्रगट प्रत्यक्ष होने पर पूरा आत्मा प्रत्यक्ष होने के योग्य उसमें शक्ति पड़ी है, उसका भान हो गया। समझ में आया? व्यक्तिरूप हो गया—प्रगट व्यक्तिरूप। पदार्थ तो था ही। परन्तु पर्याय में—अवस्था में अन्तर आश्रय किया, इसलिए अवस्था में यह आत्मा है, ऐसा प्रगट हुआ। वस्तु तो थी। परन्तु पर्याय अर्थात् अवस्था के ऊपर दृष्टि थी, तब वह प्रगट नहीं था। वस्तु तो थी।

परन्तु उस अवस्था को अन्दर में झुकाकर, चिदानन्द में एकाकार करके पर्याय में आत्मा प्रगट हो गया। ओहो! यह आत्मा! ज्ञायकभाव आविर्भाव हो गया। ज्ञायकभाव आविर्भाव हुआ। ज्ञायकभाव तो है, वह है। परन्तु भान हुआ, इसलिए ज्ञायकभाव आविर्भाव हो गया, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? गजब बातें, भाई! ऐसी धर्म की बातें होंगी? धर्म तो ऐसा कहता है कि पूजा करते हैं, भक्ति करते हैं, टोकरा बजाते हैं, दो-पाँच मन्दिर बना डालें। लो! अरे! सुन न! व्रत पाल डालें। लो, यह सुगन्धी क्या कहलाती है? सुगन्धदशमी और फलाने व्रत... अब उन सब तेरे व्रत में राग की मन्दता हो तो पुण्य है। धर्म-बर्म नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : वीतराग कथा ऐसी होती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग कथा ऐसी होती है। वह मिथ्यात्व कथा है। दर्शनभेदणी। जो कोई राग से लाभ मनावे, व्रत के विकल्प से लाभ मनावे, समकित को तोड़नेवाली विकथा (है), धर्मकथा नहीं परन्तु अधर्मकथा है। माने ऐसा कि हम धर्म सुनने गये थे। श्रद्धा सत्य का भेद करनेवाली कथा, वह धर्मकथा नहीं। करनेवाला भी मिथ्यात्व को सेवन करता है, समकित को तोड़ता है। सुननेवाला मानता है कि हम धर्म करते हैं। परन्तु वह मिथ्यात्व को सेवन करता है और समकित को तोड़ता है। समकित की भेद की कथा है वह। आहाहा! दंसण भेदणी। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सब एक ही बात है। श्रुत परिचित अनुभूत कामभोग बंधन कथा। रागादि से एकत्व से लाभ, पुण्य से लाभ, व्यवहार से लाभ, निमित्त के संग से स्वरूप की प्राप्ति, ऐसा बतलानेवाली कथा दंसणभेदनी कथा है। वीतराग परमेश्वर की वह कथा नहीं। अरे! इसकी खबर नहीं होती। और लाभ कर आये। दो घण्टे सुनकर आये। इतना तो पाप से बचे, घर बैठे रहे इसकी अपेक्षा तो।

मुमुक्षु : मिथ्यात्व का पाप .... उसका क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! महान पाप मिथ्यात्व की तो इसे खबर नहीं। महान धर्म सम्यग्दर्शन की तो इसे कीमत है नहीं। समझ में आया?

और कैसा है ? '**अनय-पक्ष-अक्षुण्णम्**' '**अनय-पक्ष-अक्षुण्णम्**' '**अनय**' अर्थात् कुनय। एकान्त माननेवाले जो राग को ही आत्मा माननेवाले, राग से धर्म माननेवाले, अकेला नित्य ही माननेवाले, अकेला अनित्य ही माननेवाले, अकेला द्रव्य से शुद्ध माननेवाले और पर्याय से भी अशुद्ध नहीं माननेवाले और शुद्ध ही माननेवाले। अनादि से पर्याय में अशुद्धता है या नहीं ? स्वभाव से शुद्ध है, अवस्था में अनादि अशुद्ध है। ऐसे एकान्त को माननेवाले, सर्वथा एकान्त माननेवाले। पर्याय भी शुद्ध है। द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है तो पर्याय में अशुद्धता कहाँ से आयी ? लो, एक व्यक्ति ऐसा पूछता था। छह दिन तक प्रश्न चला। छह दिन तक प्रश्न चला। वे क्षुल्लक आये थे, क्षुल्लक नहीं ? चिदानन्दजी। यहाँ एक चातुर्मास रहे थे न। दो चातुर्मास। पहला प्रश्न छह दिन तक यही। द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध, पर्याय में अशुद्धता कहाँ से आयी ? कर्म से आयी। कहा, तुम धीरे-धीरे सुनो। फिर बैठेगा। अरेरे ! भाई ! पर्याय में अशुद्धता अपने अपराध से है। समझ में आया ? वह है। एकान्त माने कि अपराध नहीं। कर्म का कारण है। कुनय है। ऐसे एकान्त कुनय के पक्ष से '**अक्षुण्णम्**' '**अक्षुण्णम्**' खण्डित नहीं। **खण्डित नहीं होता,... निर्बाध है।** भगवान आत्मा। लो ! भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ भान में आने पर कुनय से खण्डित हो, ऐसा नहीं और निर्बाध अव्याबाध स्वरूप उसका है, उसका आश्रय करने से आनन्द की प्राप्ति होती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

द्वितीय श्रावण कृष्ण अमावस्या, बुधवार, दिनांक - १४-०९-१९६६
श्लोक - ४, प्रवचन - ४७

यह समयसार। बारह गाथा हो गयी। इसके योगफल का यह कलश है। कल तो एक घण्टे ही था। थे तुम दोपहर में? दोपहर में नहीं थे? एक घण्टा इतने में ही निकाला था, नहीं? फिर से। यह तो पूरी बारह गाथा का है न अपने? मूलभूत आधार है।

मुमुक्षु : पूरे जैनशासन का अर्थ कैसे करना, वह इसमें है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा मूल है, इसमें है।

निश्चय और व्यवहार - इन दो नयों के विषय के भेद से परस्पर विरोध है;... यह वेर है, ऐसा शब्द लेना।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है, इसके अर्थ में है। अर्थ में है। घर का शब्द नहीं। वहाँ है। कलशटीका न? है कहीं। '**विरोधध्वंसिनि**' है न? क्या आया वह? विरोध, लो! **दो (नय) पक्षपात (विरोध) परस्पर वैरभाव।** परस्पर वैरभाव। परस्पर वैरभाव है न? परस्पर। निश्चय कहता है कि मैं एकरूप शुद्ध हूँ, व्यवहार कहता है कि चौदह गुणस्थानादि भेदरूप हूँ। परस्पर विरोध हुआ, वैर हुआ। वैर का अर्थ कि दोनों के लक्ष्य में अन्तर है, दोनों के फल में अन्तर है, दोनों का सिद्धान्त भेद है।

निश्चय कहता है कि भूतार्थ आत्मा एक स्वरूप ध्रुव है, वह सत्य है। वही सत्य है, ऐसा निश्चय कहता है। कल बहुत आया था वहाँ। यह तो ६-७ वीं से लिया था। निश्चय कहता है कि मैं ज्ञायकभाव एकरूप रहा हुआ हूँ। मैं पुण्य-पाप और शुभाशुभभावरूप या गुणस्थानरूप मेरा ज्ञायकस्वरूप हुआ नहीं। ऐसा निश्चय कहता है। व्यवहार कहता है कि गुणस्थानभेद है, प्रमत्त-अप्रमत्तपना है, रागादि शुभाशुभभाव है।

यह तो विरोध हुआ एक-दूसरे से। एक कहता है कि है या मैं ऐसा हूँ। यह कहे, नहीं तू, ज्ञायक ही मैं सत्य हूँ। समझ में आया? सातवीं गाथा में कहा व्यवहार से दर्शन-ज्ञान और चारित्र के भेद हैं। व्यवहारनय से भेद हैं। कथन से मात्र, हों! नामकथन से भेद है। निश्चय कहता है। भेद-फेद है नहीं। अभेद अखण्ड द्रव्य में भेद-बेद है नहीं। ऐसा कुछ गुण अलग पड़ता है, वह भेद है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा आठवीं गाथा में कहा कि उसे समझाने के लिये आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। ऐसा व्यवहार से कहा। भेद से कहा, अभेद समझाने के लिये। समझाना है अभेद। परन्तु अभेद समझाने में यह निश्चय एक रहा। भेद से समझाया। दो का विरोध हो गया। समझ में आया?

मुमुक्षु : सहायता करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सहायता की नहीं जरा भी। जरा भी सहायता की नहीं। अनुसरनेयोग्य नहीं। भेद पाड़कर कथन किया, वह कहनेवाले को और समझनेवाले को अनुसरण करनेयोग्य नहीं। यह तो स्पष्टीकरण किया है टीका में।

मुमुक्षु : इतना लाभ तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ जरा भी नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह प्रश्न ही कहाँ? उसने बताया कि यह अन्दर ज्ञायकमूर्ति चिदानन्द अभेद स्वरूप है। बस इतना। परन्तु उसने बताया है अभेद को, परमार्थ को बताया। वह कहता है कि मैं भेद हूँ न, मैं हूँ न। परन्तु हूँ वह क्या? हूँ वह बताता है उसे। दोनों का विरोध है। निश्चय और व्यवहार का विरोध है। 'दो नयों में भरमाया है' आया था न? समझ में आया?

११वीं गाथा में कहा कि व्यवहार झूठा है। निश्चय कहता है कि मैं भूतार्थ और सत्य हूँ। समझ में आया? निश्चय भूतार्थ एक समय का भगवान पूर्णानन्द ध्रुव शुद्ध। लो, यह विवाद निकाला था न सबने। कल आये थे। शुद्ध नहीं। अरे! शुद्ध नहीं, तो द्रव्य और गुण तो त्रिकाल शुद्ध है। शुद्ध वस्तु न हो तो पर्याय में अशुद्धता है, उसे टालेगा

कौन ? समझ में आया ? इसीलिए तो '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' ११वीं में कहा। भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द एकरूप ऐसी जो वस्तु, वह सत्य है। क्योंकि उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। क्योंकि सम्यग्दर्शन-प्रतीति का कारण वह वस्तु त्रिकाल है। उसमें शुद्धता और आनन्द पड़ा है। भगवान आत्मा में एक समय में अतीन्द्रिय आनन्द छलाछल (भरा है)। क्या तुम्हारी भाषा हिन्दी ? लबालब। क्या कहते हैं ? लबालब। जैसे बड़ा समुद्र पानी से लबालब भरा हुआ है। क्षेत्र न देखो। क्षेत्र बड़ा, इसलिए ऐसा न देखो। यहाँ क्षेत्र भले असंख्य प्रदेश है। परन्तु उसमें आनन्द ऐसे लबालब, अमाप-अमाप, जिसकी शक्ति के अविभागी प्रतिच्छेद करो तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... हो जाते हैं। एक-एक गुण की अनन्त पर्याय और एक-एक पर्याय के अनन्त-अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद। समझ में आया ? ऐसा भगवान आत्मा सत् एकरूप स्वरूप निश्चय कहता है कि मैं ही हूँ, व्यवहार झूठा है। व्यवहार कहता है कि मैं हूँ, मैं हूँ। हूँ वह जाननेयोग्य है। यह तो जाननेयोग्य भी है न। जाननेयोग्य भी भेद है। विषय व्यवहार का है। निश्चय से इनकार किया था कि व्यवहार-ब्यवहार है नहीं। यह निश्चय का आश्रय करने के लिये (कहा था)। व्यवहार का आश्रय करने से राग उत्पन्न होता है। प्रयोजन की, आत्मध्यान की, आत्मा की शान्ति की सिद्धि नहीं होती, पर्याय के आश्रय से। भगवान आत्मा पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... नाथ! उसके अन्तर्मुख—अन्दर ढलने से आनन्द और शान्ति की प्राप्ति होती है, इसलिए उसे सत् कहा है। व्यवहार को असत् कहा है। कहो, समझ में आया ? यह बड़ा विवाद उठता है इसमें से। व्यवहार है सही जाननेयोग्य। आदरनेयोग्य नहीं। कहो, समझ में आया इसमें ?

१२वीं गाथा में स्पष्टीकरण किया। भाई! व्यवहार से इनकार किया था न ? तुम तो भूत—विद्यमान अर्थ एक ही कहा था। व्यवहार तो झूठा कहा था। तो एकान्त है झूठा ? या है। १२वीं गाथा में कहा कि झूठा कहा था, परन्तु है। समझ में आया ? व्यवहार '**परमभावदरिसीहिं**' जिसे परमभाव पर्याय की पूर्णता प्रगट हो गयी, जिसे शुद्ध ध्रुव सन्मुख झुकने का रहा नहीं, उसे व्यवहार होता नहीं। जिसने भगवान आत्मा अन्तर्मुख दृष्टि करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के अंश प्रगट किये हैं। परन्तु पूर्ण दशा

हुई नहीं, उसे उस काल में अशुद्धता और शुद्धता के अंश एक-एक करके अनेक बतावे, वैसा व्यवहारनय, अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय से एक-एक अंश का अनेकरूप से बतावे, ऐसा व्यवहारनय उस काल में वहाँ जाना हुआ प्रयोजवान है। समझ में आया? निश्चय कहे कि तू नहीं; व्यवहार कहे कि मैं हूँ। जाननेयोग्य है। आदरनेयोग्य नहीं।

कहा कि **निश्चय और व्यवहार - इन दो नयों के विषय...** देखो! विषय। निश्चय का विषय अभेद है, व्यवहार का विषय एक समय की पर्याय, रागादि भेद है। भेद हो गया न विषय का? **विषय के भेद से परस्पर विरोध है;...** परस्पर विरोध है। व्यवहार से निश्चय विरोध है, निश्चय से व्यवहार विरोध है। समझ में आया? यह तो पूरे बारह गाथा में ११-१२ के स्पष्टीकरण का सार कहा है। तीन कलश पहले आ गये शुरुआत में। समझ में आया? देव-शास्त्र-गुरु तीन आते हैं? पहले देव का कहा, नमः समयसाराय। पश्चात् अनेकान्तमय मूर्ति शास्त्र का कहा। पश्चात् गुरु तो स्वयं ही गुरु-मुनि हैं; इसलिए अपनी बात वहाँ रखी तीसरे कलश में। कि मैं यह टीका करते हुए मेरी चीज़ तो द्रव्यार्थिकनय से मैं शुद्ध ध्रुव हूँ। ऐसा आया या नहीं तीसरे में? यह तो विवाद उठावे। मैं एक शुद्ध त्रिकाल आनन्दकन्द हूँ। परन्तु मेरी वर्तमान पर्याय परिणति मोह नामक निमित्त के हेतु के लक्ष्य से विकाररूप हुई है। यह टीका करने के काल में मेरा लक्ष्य अन्तर में घुंटेगा, उसके काल में उस अशुद्धता का नाश होओ और शुद्धि की प्राप्ति होओ, ऐसी प्रार्थना की है। समझ में आया? फिर गाथा शुरु की है। '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' वहाँ भी शुद्धता को स्थापित किया। अनन्त सिद्धों को पर्याय में स्थापित किया। अनन्त सिद्धों को पर्याय में स्थापित किया। पर्याय में स्थापित किया, उसका लक्ष्य जाता है शुद्ध के ऊपर। ढलते हुए ऐसे अखण्डानन्द ज्ञायक हूँ, उसके ऊपर जाता है। समझ में आया?

ऐसे दूसरी गाथा में कहा। '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' शुद्धता में आने पर शान्ति, दर्शन, ज्ञान की, उसमें स्थिर होने से स्वसमय कहलाता है। अकेले कर्मप्रदेश में स्थित हो तो परसमय मिथ्यादृष्टि है। सीधे बात ही यह उठायी है। वहाँ भी विवाद। स्वसमय केवली को हो, तब तक परसमय। अरे! भगवान! सुन न भाई। वह तो परसमय का अंश रहता है, इसलिए अभी अन्तरआत्मा को भी एक अपेक्षा से परसमय कहा है। परन्तु स्वरूप का भान-अनुभव आनन्दकन्द हुआ है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन

में स्वसंवेदन प्रत्यक्षज्ञान, स्वानुभव अनुभूति, वैराग्य पर से उदास इत्यादि ऐसे गुण सम्यग्दर्शन होने पर, भेदज्ञान... आता है न भाई! उस पंचाध्यायी में एक आता है। पंचाध्यायी में दूसरा अध्याय की ९४१ गाथा है। सम्यग्दृष्टि को क्या-क्या गुण होते हैं। है इसमें?

स्वसंवेदनप्रत्यक्षं ज्ञानं स्वानुभवाह्वयम्।
वैराग्यं भेदविज्ञानमित्याद्यस्तीह किं बहु॥९४१॥

सम्यक् आत्मा शुद्ध चैतन्यवस्तु का भान होने पर स्वसंवेदन ज्ञान का प्रत्यक्षपना होता है। स्वानुभूति की स्थिरता भी साथ में प्रगट होती है। वैराग्य—पर से उदास... उदास... उदास... है। भेदविज्ञान और अपने स्वभाव का कर्ता और रागादि पर का कर्ता नहीं, ऐसा भेदविज्ञान प्रगट होता है। कहो, समझ में आया? ९४१ श्लोक है। बहुत सरस। पंचाध्यायीकार ने बहुत... परन्तु वर्तमान लोगों को जरा कठिन पड़ता है। वे भाई ऐसा कहते हैं कि पंचाध्यायी ग्रन्थ आर्षवाक्य नहीं, फलाना नहीं। परन्तु... प्रमाण है, सुन न अब। आर्षवाक्य है। पण्डितजी तो कहते थे। उनका बाहर आना चाहिए अधिक। परन्तु हमारे निवृत्ति कहाँ? यहाँ तो सब समयसार में आ जाता है बहुत सब। परन्तु उसे समयसार, प्रवचनसार, तत्त्वार्थसूत्र आदि थे ही न! उनके घर का है नहीं। परन्तु व्यक्ति को अपनी दृष्टि से मिलान न खाये, इसलिए कहे, जाओ खोटा है। ऐसा होगा? भाई!

यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दर्शन होने पर उसके अनेक गुणों की दशा प्रगट होती है। और अनन्त धर्म वहाँ स्थापित किये हैं पीछे। द्रव्य में, जीव में अनन्त धर्म-गुण हैं, वे भी फिर स्थापित किये। अनन्त गुण हैं आत्मा में। एक-एक गुण किसी के आधार से नहीं, किसी का आधेय नहीं, किसी का हेतु नहीं, किसी का हेतुमान नहीं—ऐसा सिद्ध किया है। भगवान आत्मा अनन्त गुण हैं, उसके अन्दर। उसमें एक-एक गुण को दूसरे गुण का आधार-आधेय नहीं, हेतु—कारण-कार्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा स्वत:सिद्ध भगवान आत्मा है, ऐसी जहाँ अन्तर में दृष्टि हुई और सम्यक्त्व हुआ... कहते हैं यहाँ तो मुझे उस भेदविज्ञान पर लेना है थोड़ा, उसे भेदविज्ञान अर्थात् कि इस आत्मा के अतिरिक्त कोई दूसरे पदार्थ का कर्ता-हर्ता वह मानता नहीं। आहाहा! भेद—मुझसे

दूसरी चीज़ भिन्न है। मुझसे राग भी व्यवहार विकल्प उठे व्यवहारनय का विषय, वह भिन्न है। उसका भी कर्ता हूँ और हर्ता हूँ, ऐसा सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा! गजब! समझ में आया?

और फिर यहाँ कहा न संवर अधिकार में।

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥१३१॥

यह महासिद्धान्त। अभी तक में जो कोई मुक्ति को प्राप्त हुए हों तो भेदविज्ञान से प्राप्त हुए हैं। '**भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन**' इसका अर्थ क्या? परवस्तु की पर्याय मुझमें नहीं। मैं उसमें नहीं। राग मुझमें नहीं और मैं राग में नहीं। मुझमें है वह अनन्त गुण का पिण्ड अभेद एकाकार हूँ। ऐसा भेदज्ञान द्वारा जो कोई अभी तक सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को—मुक्ति को प्राप्त हुए, वे भेदज्ञान से प्राप्त हुए हैं। उसमें ऐसा नहीं आया कि कर्म का मन्द पड़ना हुआ, इसलिए भेदविज्ञान हुआ। कर्म ने मार्ग दिया। तुम ऐसा कैसे कहते हो कि अपने पुरुषार्थ से ऐसा होता है, तब कर्म क्षय होता है। अब सुन न! ऐसा ही होता है। कर्म तो उसके कारण से क्षय होते हैं? भेदविज्ञान—आत्मा राग और पर से भिन्न पड़ने पर, स्वभाव का आश्रय लेने से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, उसमें राग का कर्ता रहता नहीं। और पर हटे तो भेदविज्ञान हो, ऐसा है नहीं।

पश्चात् भी क्या लिया है? '**अस्यैवाभावतो बद्धा**' जिसे राग और पर की भिन्नता का भान नहीं, वे कर्म से बँधे। ऐसा नहीं कहा कि उनको कर्म का कठोर उदय आया, इसलिए बँधे। यही कथन यथार्थ है। समझ में आया? '**अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन**' निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक गये, वे द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि, वे क्यों गये? '**अस्यैवाभावतो बद्धा**' शरीर, कर्म और राग से भिन्न पड़ने का पुरुषार्थ किया नहीं, भेदविज्ञान के अभाव में। इसका अर्थ यह हुआ कि राग और पर मैं ऐसी एकत्वबुद्धि से अपने अपराध से वे बँधे हुए हैं। आहाहा! निगोद से लेकर कहा वहाँ। कुछ अन्तर रखा है? धन्नालालजी! भेदज्ञान का जिसे अभाव है। जो राग और देह की क्रिया मेरी, ऐसा मानते हैं, ऐसे अभेद पर में करनेवाले संसार में बँधे हुए हैं। पूरा एक ही सिद्धान्त रखा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें तो एक है परन्तु गोम्मटसार में ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गोम्मटसार में दूसरा होगा? यह गोम्मटसार का क्या दूसरा होगा? ज्ञानावरणीय ने ज्ञान को रोका, वह तो निमित्त का कथन है। जड़ रोकता होगा आत्मा को? इस दृष्टि से देख तो। ज्ञान अपनी पर्यायरूप से हीन परिणमता है, तब आठ कर्म में क्या निमित्त है, ऐसा बतलाने के लिये ज्ञानावरणीय निमित्त कहा। दर्शनावरणीय दूसरा कर्म है। ऐसे कर्म की जाति कौन सी निमित्त थी, यह बतलाने के लिये उसे कहा। गोम्मटसार हो या चारों ही पंचसंग्रह हो या आत्मसार हो। आत्मसार अर्थात् समयसार। समझ में आया?

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसने जहाँ आश्रय किया, उसकी मुक्ति (हो गयी)। और आश्रय नहीं किया, वह पर का आश्रय करे, इसलिए बँधता है। एक ही सिद्धान्त है। इसमें यह आया। यह निश्चय जो आश्रय करता है, वह मुक्ति पाता है। व्यवहार का आश्रय करे... दोनों के पक्ष भिन्न, दिशा भिन्न, फल भिन्न। व्यवहार का विरोध है। निश्चय से परस्पर विरोध है। लो, इस विरोध की व्याख्या चलती है। वैर है एक-दूसरे को। व्यवहार के आश्रय से बन्ध होता है, निश्चय के आश्रय से निर्जरा और संवर हो और मुक्ति होती है। कहो, समझ में आया इसमें? और तुमने कहा, भाई! कल तो आया था एक घण्टे। और कहीं एक की एक बात आवे? कुछ दूसरा आवे न वापस थोड़ा। आहाहा! यह गाथा तो एक घण्टे चले। ११ और १२ का पूरा स्पष्टीकरण। वास्तव में तो ११ और १२ की सन्धि है पूरी।

एक भगवान आत्मा शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... तीनों काल में पुण्य-पापरूप हुआ नहीं। गुणस्थानभेदरूप हुआ नहीं। ऐसा जिसका परमसत्य स्वरूप भगवान पूर्णानन्द ध्रुव। उसका आश्रय करने से धर्म और सम्यक्त्व होता है। व्यवहार कहता है कि मैं हूँ इसलिए। तू है जाननेयोग्य, आदरनेयोग्य नहीं। व्यवहार हेय है, निश्चय उपादेय है। दोनों में विरोध हुआ। दोनों में वैर हुआ। समझ में आया? कहो, चन्दुभाई! इसमें कहाँ आवे तेरहवीं। वे कहे, तेरहवीं सुनते जाना। दो दिन रहना है इसे। निश्चय और व्यवहार दो नयों को विषय के भेद से, विषय के लक्ष्य के-ध्येय के भेद से परस्पर दोनों को पारस्परिक वैर है। विरोध है।

उस विरोध का नाश करनेवाला... उस विरोध का नाश करनेवाला, **'स्यात्'-पद से चिह्नित...** स्यात् पद से लक्षणवाला **जो जिन भगवान का वचन (वाणी)...** वचन अर्थात् वाणी। परन्तु उसमें कहा हुआ भाव। **उसमें जो पुरुष...** अर्थात्? भाई! नित्य त्रिकाल की अपेक्षा से हम उसे सत्य कहते हैं। पर्याय की अपेक्षा से उसे सत्य कहते हैं, व्यवहार की अपेक्षा से उसे सत्य कहते हैं। ऐसा स्यात् लक्षण से लक्षित वीतरागी भाव से उसका विरोध टल जाता है। है न प्रवचनसार में? अमोघ मन्त्र सार से जहर उतर जाता है एकान्त का। समझ में आया? प्रवचनसार में है। अमृतचन्द्राचार्य का। सप्तभंगी है न उसमें।

स्यात् पद से... एक त्रिकाल का आश्रय लेने से, ध्रुव का आश्रय लेने से लाभ होता है, इसलिए उसे हमने सत् कहा था। पर्याय का आश्रय लेने से राग होता है। इसलिए उसे हमने असत् कहा था। यह विषय का विरोध स्यात्पद से उसका हल हो जाता है। भगवान का वचन अर्थात् वाणी। उसमें पुरुष वाणी में रमे? वाणी में रमे जड़ में? **उसमें जो पुरुष रमते हैं...** इसकी व्याख्या की। परम अध्यात्म तरंगिणी में एकत्व कहा है। भगवान आत्मा वीतराग ने कही वाणी में, दिव्यध्वनि में यह आया है कि आत्मा उसे कहते हैं कि जो राग और पर से अत्यन्त पृथक्। एक समय की अवस्था जितना नहीं, पूर्णानन्द प्रभु, वही उपादेय है। ऐसा जिनवाणी की दिव्यध्वनि में यह आया है। समझ में आया? कलश टीकाकार यहाँ लेंगे, **प्रयोजनवश शुद्ध द्रव्यार्थिकनय को मुख्य करके उसे निश्चय कहते हैं और अशुद्धद्रव्यार्थिकरूप...** ऐसे जिनवचन में रमते हैं। नीचे अर्थ में करेंगे। समझ में आया?

जिनवचन वीतरागता की प्रसिद्धि के लिये है। जिनवचन वीतरागता की प्रसिद्धि के लिये है। वीतरागता की प्रसिद्धि स्व में एकत्व में रहने से वीतरागपना प्रगट-प्रसिद्ध होता है। आत्मख्याति होती है। भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु में अन्तर ढलने से वीतरागभाव की प्रसिद्धि, आत्मभाव वीतरागभाव है, उसकी पर्याय में प्रसिद्धि होती है, वीतरागदशा उत्पन्न होती है। सम्यग्दर्शन वीतराग है, सम्यग्ज्ञान वीतराग है, चारित्र का अर्थ वीतराग है। त्रिकाली वीतरागभाव का आश्रय करने से वीतरागी पर्याय प्रगट होती है। यह जिनवचन वही प्रसिद्धि करने का कहता है। व्यवहारनय को गौण करके। क्योंकि उसमें

से वीतरागता की प्रसिद्धि नहीं होती। पूरे जैनशासन का सार वीतरागता है।

पंचास्तिकाय में आता है या नहीं? शास्त्र तात्पर्य और सूत्र तात्पर्य। पण्डितजी! दोनों आते हैं न! सूत्र तात्पर्य तो प्रत्येक गाथा कहे वह। शास्त्र तात्पर्य वीतरागता। १७२ गाथा। महासिद्धान्त कहते हैं। पर की उपेक्षा और स्व का आश्रय करने से वीतरागता हो, वह वीतरागता पूरे शास्त्र का सार है। देवीलालजी! समझ में आया? पूरी शास्त्र की कथनी का इस प्रकार से पहले अर्थ समझना चाहिए कि जिसमें से वीतरागता प्रगटे, वैसा जिनवचन है। चारों ही अनुयोग का कथन, चारों ही अनुयोग के कथन में वीतरागता प्रसिद्ध होती है, वह कथन है। समझ में आया? कोई भी वाक्य और कोई भी उसका पद हो, स्वभाव-सन्मुख ढलकर वीतरागता हो, इसके लिये उसका कथन है।

मुमुक्षु : हेतु।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेतु एक ही है। समझ में आया? लाख बात की हो नहीं। कथा और वार्ता और चरणानुयोग में ऐसा है और ढींकणा ऐसा है। परन्तु जिन वाक्य और शब्दों में से स्व का आश्रय होकर वीतरागता प्रगट न हो, वह वीतराग की वाणी हो सकती ही नहीं। समझ में आया?

जो पुरुष रमते हैं (-प्रचुर प्रीतिसहित अभ्यास करते हैं)... अन्तर का अभ्यास, हों! वाणी का नहीं यहाँ। अन्तर में पूर्ण ज्ञायकभाव हूँ, ऐसी प्रतीति पहले करके यह एक वस्तु पूर्ण आनन्द का अपार-अपार समुद्र है। आनन्द और ज्ञान यह स्वभाव एक अपार समुद्र है। ऐसी प्रतीति करके उसके सन्मुख की एकता का जो अभ्यास करता है। वह अभ्यास। **वे (पुरुष) अपने आप ही...** अर्थात् कि मिथ्यात्वकर्म को टालना नहीं पड़ता। अपने आप मिथ्यात्वकर्म टल जाता है। **मिथ्यात्वकर्म के उदय का...** दर्शनमोह के पाक का **वमन करके...** उसकी ओर न जुड़कर। स्वभाव-सन्मुख जुड़ा है, उस मिथ्यात्वकर्म की पर्याय को वह छोड़ देता है। स्वभाव त्रिकाल को अंगीकार करता है और मिथ्यात्व की पर्याय को छूट जाता है, उसे छोड़ता है, वमन करता है—ऐसा कहा गया है। समझ में आया? महा अमृतचन्द्राचार्य पूरे शास्त्र का दोहन-दोहन ऐसा... आहाहा!

भाई! दो नय के विषय को विरोध है। तो वीतराग भगवान की वाणी में वीतरागता की प्रगटता का (कथन आया)। क्यों? स्वयं सर्वज्ञ वीतराग हुए। अल्पज्ञ और राग का व्यय हुआ। सर्वज्ञ और वीतराग हुए। ध्रुवपना कायम रहा। तो उनकी वाणी में ध्रुवपने के अवलम्बन से वीतरागता होती है, यह वाणी का सार है। समझ में आया? सर्वज्ञपना हुआ, वीतराग हुए तो अल्पज्ञ और राग छूट गया। नाश हुआ। तो उनकी वाणी में ऐसा आता है कि राग करनेयोग्य है और अल्पज्ञ रखनेयोग्य है, ऐसा आवे? सहज इस विकल्प में ऐसा (आया), जब सम्यग्दर्शन-ज्ञान के काल में जब तीर्थंकरगोत्र बँधा, तब विकल्प ऐसा था कि मैं पूर्ण हो जाऊँ। आहाहा! उस विकल्प में ऐसा बन्धन हो गया, उन रजकणों का पाक जब उठा ध्वनि। आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है, उसकी शरण ले, आश्रय ले। व्यवहार का लक्ष्य छोड़ दे। समझ में आया? ऐसा वीतराग की दिव्यध्वनि में यह आया है, भाई! अमरचन्दभाई! आहाहा! अरे! भगवान! मक्खन-मक्खन इन्होंने कहा है। परन्तु अब कौन जाने तकरार... तकरार... तकरार...

कल तो ऐसा आया, आत्मधर्म में लिखा है 'सोनगढ़' वालों ने कि पर्याय अशुद्ध है और द्रव्य-गुण शुद्ध है। उसके ऊपर उतर पड़े। नहीं, झूठा है। उन्हें शास्त्र की श्रद्धा नहीं, भगवान की श्रद्धा नहीं। क्योंकि पर्याय में अशुद्धता और द्रव्य-गुण शुद्ध कहाँ से रहा? द्रव्य और गुण अशुद्ध। ठीक भगवान! तेरी भी बलिहारी है। श्रीमद् ने लिखा है न, प्रभु सब गुण सम्पन्न, परन्तु इसके अपलक्षण का पार नहीं होता। पण्डितजी! ऐसा एक पत्र लिखा है श्रीमद् ने। यह लोग निन्दा करते हैं। प्रभु के अपलक्षण निकालते हैं। शब्द ऐसा लिखा है। प्रभु सर्वगुण सम्पन्न। परन्तु उसमें अपलक्षण का पार नहीं। उसका अर्थ यह आत्मा सर्वगुण सम्पन्न। परन्तु पर्याय में मिथ्यात्व के अपलक्षण का पार नहीं, ऐसा कहते हैं। कितने ही विरोध करे। लो! भगवान को (अपलक्षण कहते हैं)। अरे! वे भगवान नहीं, सुन तो सही, यह तेरा भगवान। आता है न। हमारे पास तो बहुत आये हुए वापस पूछने। राजकोट में गये तब। (संवत्) १९८८ के वर्ष में राजकोट में। व्याख्यान चलता था। उसमें किसी ने निकाला। इसमें ऐसा लिखा है। क्या लिखा है? वाँच न, सुन न! प्रभु केवली की बात करते हैं? आत्मा प्रभु! यह नहीं आया था? आज स्वाध्याय में नहीं आया? २७वीं गाथा में? पंचास्तिकाय की २७वीं गाथा। भगवान

आत्मा प्रभु है। चैतन्य प्रभु का आया था कर्ता-भोक्ता की २७वीं गाथा। प्रभु है। राग के करने में वह प्रभु है, राग को टालने में वह प्रभु है, संवर-निर्जरा करने में वह प्रभु है और मोक्ष करने में वह प्रभु है। पंचास्तिकाय की २७वीं गाथा। आज स्वाध्याय में आया था। पंचास्तिकाय के अर्थ किये हैं न उन्होंने? प्रभु है आत्मा, प्रभु है आत्मा। वह उल्टा पड़कर राग-द्वेष-आस्रव बन्ध करने में भी प्रभु है और संवर-निर्जरा और मोक्ष करने में भी प्रभु है। समझ में आया? बहुत बोल घटित किये हैं वहाँ। २७वीं गाथा।

यह प्रभु सर्वगुण सम्पन्न भगवान, परन्तु अपलक्षण में चढ़ गया। राग मेरा और यह मेरा, उससे अपलक्षण का पार नहीं होता। तेरी बात की, सुन न! भगवान तो पूरे हो गये। उनमें तो कहाँ... ऐई! नरशीभाई! पढ़ा है या नहीं तुमने? आहाहा! परमात्मा स्वयं। अरे! अनन्त गुण का समुद्र डोलता है, उसे तुझे नजर में लेना नहीं। अनन्त गुण का समुद्र डोलता है अन्दर में भगवान लबालब भरपूर प्रभु है, भाई! क्षेत्र छोटा न ले। उसके भाव की अपरिमितता की कीमत कर। समझ में आया? आहाहा! ऐसा प्रभु, परन्तु उसके अपलक्षण का पार नहीं होता। पर्याय में दोष है। मैं इतना नहीं, मैं रागवाला, मैं उसका करनेवाला, मैं उसका करनेवाला। मेरा द्रव्य अशुद्ध है, गुण अशुद्ध है, अरर! तेरे अपलक्षण का पार नहीं, भाई! कहो, समझ में आया? अपलक्षण समझते हो न? अवगुण। हमारी काठियावाड़ी भाषा है। आहाहा!

कहते हैं, भगवान! इस प्रकार से भगवान की वाणी में यह आया है। व्यवहार का विषय है। आश्रय (करनेयोग्य नहीं)। क्योंकि दोनों में विरोध है। इसका आश्रय कर तो उसका आश्रय नहीं करना, इसका फल मुक्ति तो उसका फल बन्ध है। इसलिए उसका आश्रय छोड़ दे और इसका आश्रय कर। उसमें जो रमता है, ऐसा कहते हैं। उसमें जो रमता है उसे **मिथ्यात्वकर्म के उदय का वमन करके इस अतिशयरूप परम ज्योति...** लो, आया, देखो यह। **इस अतिशयरूप परम ज्योति प्रकाशमान शुद्ध आत्मा को तत्काल...** लो! शुद्धात्मा होगा अन्दर? आहाहा! अतिशय। भाई! चैतन्य प्रभु तुझे खबर नहीं। यह वेदान्त ने मारकर उल्टा मारा। सब होकर एक आत्मा। ऐसा नहीं। उसे क्षेत्र की महत्ता से आत्मा की महत्ता लगी है।

यहाँ तो आत्मा के स्वभाव की महत्ता, वह आत्मा की महत्ता है। क्षेत्र भले असंख्य प्रदेशी हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। एक परमाणु का अस्तित्व नाम का गुण, वह पूरे परमाणु को टिका रखता है। जितना एक अस्तित्व के गुण का सामर्थ्य एक रजकण को टिकाने का, उतना एक अस्तित्वगुण का सामर्थ्य अनन्तानन्त वे प्रदेश आकाश के (टिकाने का सामर्थ्य है)। गुण तो अस्तित्व एक ही है उसका। क्या कहा? उसका अस्तित्वगुण (और इसका अस्तित्वगुण), दोनों गुण का बराबर सामर्थ्य समान है। ऐसा नहीं कि आकाश का अस्तित्वगुण बहुत लम्बा, इसलिए बहुत सामर्थ्य और छोटा, इसलिए थोड़ा सामर्थ्य—ऐसा है ही नहीं, सुन न। समझ में आया?

एक पॉईन्ट रजकण जो नजर में न आवे अतीन्द्रिय पदार्थ, वस्तु रूपी मूर्त पदार्थ है, भाई! उसका एक अस्तित्व नाम का गुण जितना सामर्थ्य धराता है, उतना एक अस्तित्व का गुण सर्वव्यापक आकाश जिसका अस्तिपना कहीं अटकना नहीं, अस्तिपना कहीं अटकता नहीं। अर्थात् क्या कहा? है... है... है... है... है... है... है... है... है... चलता ही जाता है। है... है... यह चलता जाये। कुछ नहीं, ऐसा नहीं होता। तथापि यह अस्तित्वगुण इतने सामर्थ्यवाला है। परमाणु के अस्तित्वगुण से उसका अस्तित्व सामर्थ्य विशेष है, ऐसा है नहीं। बात समझ में आती है इसमें? भावना सामर्थ्य की शक्ति का यहाँ तत्त्व है। जैनदर्शन, वह वस्तु के स्वभाव के सामर्थ्य की प्रतीति कराता है। समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा असंख्य प्रदेश में भले हो। अनन्त... अनन्त बेहद ज्ञान का, उसका अस्तित्व ज्ञान है... है... है... है... है... है... है... है... जैसे क्षेत्र से अमाप है, यहाँ उसके ज्ञान के भाव के शक्ति के सामर्थ्य में भाव का है... है... है... उसमें है नहीं, ऐसा कहीं आयेगा ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? जिसकी ज्ञान की एक समय की पर्याय लोकालोक को इतने अमाप को जाने यहाँ बैठे हुए। उसे जानने (जाये) नहीं, यहाँ जानने में ज्ञात हो जाये। उसकी एक समय की पर्याय में इतना आकाश जो है... है, कहीं नहीं- ऐसा नहीं। ऐसा एक समय में है। आकाश है, उसे जो जाने एक समय की पर्याय। उसके गुण के अस्तित्व की सामर्थ्य की शक्ति की अपरिमितता क्या कहना? बात समझ में आती है कुछ? आहाहा! परन्तु वह अरूपी और उसका

माहात्म्य उसने सुना नहीं। इसलिए कहा न भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने '**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा**'। एकत्व (स्व से) एकत्व, पर से विभक्त और स्व से एकत्व भगवान, तूने सुना नहीं। समझ में आया?

उसके स्वभाव के सामर्थ्य निश्चय का विषय, पर्याय का विषय तो एक समय की अवस्था है। समझ में आया? परन्तु भगवान आत्मा निश्चय वस्तु जिसमें एक समय की पर्याय का अभाव है। सामान्य वस्तु पर्यायरूप हुई नहीं। समझ में आया? और पर्याय वह एक समय की है, वह सामान्यरूप हुई नहीं। ऐसे दो नय के विषय का विरोध, उसके सामर्थ्य का पार नहीं। तथापि एक समय का सामर्थ्य अनन्त। परन्तु उससे अनन्त-अनन्तगुणा यहाँ रहा है। आहाहा!

ऐसे स्वभाव में जो आत्मायें। पुरुष शब्द से आत्मायें। पुरुष अर्थात् कहीं स्त्री, पुरुष लिंगवाला, ऐसा कुछ नहीं इसमें। जो कोई आत्मायें... आहाहा! रमते हैं। वे **अतिशयरूप परम ज्योति प्रकाशमान शुद्ध आत्मा को तत्काल...** तत्काल अनुभव करते हैं। देखते अर्थात् तत्काल उसे आनन्द का अनुभव होता है। आहाहा! प्रत्यक्ष स्वसंवेदन स्वानुभूति, पर से वैराग्य उदास और भेदज्ञान, उस काल में तुरन्त ही होता है। आहाहा! अरे! भगवान! यह वाद-विवाद से बापू! पार नहीं आता। यह ऐसा है, फलाना है, ढींकणा है। भगवान! सुन बापू! आहाहा! जिसके फल में केवलज्ञान, जिसके फल में सादि-अनन्त आनन्द, जिसके फल में दु:ख का-संसार का अन्त (आवे), ऐसा जो निश्चयनय का विषय, उसे यहाँ आचार्य कहते हैं कि जो रमता है। वमन हो जाये— मिथ्यात्व का वमन हो जाये।

यहाँ तो इतना जोर है कि जैसे द्रव्य का नाश नहीं, उसी प्रकार उसका आश्रय करनेवाली पर्याय अब नाश हो, ऐसा है ही नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? प्रगट दशा हुई, वह हुई। भले क्षयोपशमभाव से हुई, परन्तु वह क्षयोपशमभाव क्षायिक लेकर केवलज्ञान लेनेवाला है। समझ में आया? इतना यह आचार्य स्वयं जोर मारते हैं। पंचम काल के मुनि हैं और ऐसा कोई कहे कि क्षायिक समकित नहीं। सुन न अब। ऐसा कहते हैं। यह हमारे क्षयोपशम सम्यग्दर्शन की दशा भी ऐसी है। कहते हैं कि उस दशा

द्वारा क्षायिक लेकर, गिरे बिना क्षायिक लेकर केवलज्ञान लेनेवाले हैं। आहाहा! समझ में आया? वमन शब्द इसीलिए प्रयोग किया है, हों! मनुष्य ने वमन किया हुआ कुत्ता खाता है। कहीं मनुष्य खाता होगा? समझ में आया?

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ... समझ में आया? एक बार बहिन बोले थे (संवत्) १९८९ में। एक शब्द बोले हैं एक बार। आहाहा! क्षायिक लेनेवाला हूँ। ८९ में बोले थे। बहिन चम्पाबहिन है। अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ पश्चात् एक बार ऐसा बोल गये थे। खड़े हुए। मुझे शब्द की बराबर खबर है। क्षायिक लेनेवाला हूँ। क्षायिक। जोर था न भाई अन्दर का। वह पर्याय भले... ऐई! यह अन्तर की क्रीड़ा बापू अलग है, भाई! यह बाहर के हिसाब-किताब से कुछ पार आवे ऐसा नहीं। समझ में आया? ऐई! नन्दलालजी! क्या? धन्नालालजी! आहाहा!

यह कहते हैं, **तुरन्त ही...** अनुभव करता है। प्रकाशमान। उसे फिर ऐसा जोर आ जाये अन्दर कि मानो अभी ही केवलज्ञान लूँ और क्षायिक होऊँ, ऐसा। समझ में आया? जोर है अन्दर। फिर भले शास्त्र खोजे और देखे कि ऐसा क्षायिक नहीं। भले न हो। सुन न अब। शास्त्र में ... क्षायिक नहीं न। अब सुन न! यहाँ भगवान आचार्य पुकार करते हैं। देखो, यह शैली है अन्दर की। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं कि जहाँ हमने मिथ्यात्व का वमन किया, अब वह हमारे आयेगा नहीं, हों! उसे (वमन को) कुत्ता खाये, परन्तु मनुष्य नहीं खाता। आहाहा! ऐ जुगराजजी! आनन्दघनजी ने कहा न।

अब हम अमर भये न मरेंगे, या कारण मिथ्यात्व दियो तज...
या कारण मिथ्यात्व दियो तज... अब हम अमर भये न मरेंगे,
या कारण मिथ्यात्व दियो तज।

खबर है। सुना है यह। उतारना कठिन-भारी है। अन्दर कुछ होता हो, तब ऐसी भाषा आती होगी। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... तन कारण मिथ्यात्व दिया तज...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। 'क्यों कर देह धरेंगे...' उसमें कुछ भाव में अन्तर है। इसलिए शब्द अटका था। शब्द तो आता था, नहीं आता था, ऐसा कुछ नहीं।

अब हम अमर भये न मरेंगे, या कारण मिथ्यात्व दियो तज।
क्युंकर देह धरेंगे अब हम अमर भये न मरेंगे।
राग-दोस जगबंध करत है, इनको नास करेंगे। राग-द्वेष बाकी है।
राग-दोस जगबंध करत है, इनको नास करेंगे।
मर्यो अनन्त काल से प्राणी, सो हम काल हरेंगे।

उस काल को हरे। काल हमको हरे? हम काल को हर डालेंगे। समझ में आया?

देह विनासी, मैं अविनासी, अपनी गति पकरेंगे।
अपनी अविनासी की गति पकरेंगे, ऐसा।
देह विनासी, मैं अविनासी, अपनी गति पकरेंगे।
नासी जासी...
नासी जासी हम थिर वासी,
हम थिर वासी, चोखे व्है निखरेंगे।

जैसे वस्त्र मलिन हो, उसे फिर पानी में निखारे। हमारी काठियावाड़ी में ... है। 'चोखे व्है निखरेंगे।' समझ में आया?

मर्या अनन्त बार बिन समझ्यो,मर्या अनन्त बार बिन समझ्यो,
अब सुख-दुःख विसरेंगे।
आनंदघन निपट निकट अक्षर दो, नहीं समरे सो मरेंगे।

हम तो आनन्दघन स्वरूप हैं। उसमें अब मरने का-बरने का है नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **तुरन्त ही देखते हैं।** आनन्द का अनुभव तुरन्त ही होता है। आहाहा! समझ में आया? यह उसका नाम आत्मा का भान और आत्मा का प्रत्यक्ष वेदन। ऐसा यहाँ स्पष्टीकरण आचार्य महाराज अपने कलश में करते हैं। अकेली प्रतीति भगवान सच्चे हैं और सच्चे, ऐसा नहीं। भान होकर प्रतीति। खरगोश के सींग नहीं तो ज्ञान बिना प्रतीति किसकी? वह चीज़ जो है, उसका ज्ञान होकर प्रतीति का अनुभव में भान (हो) उसे यहाँ '**ईक्षन्त**' कहा गया है। '**ईक्षन्त**' '**सपदि ईक्षन्त**' शीघ्र—अल्प काल में अपने

आत्मा को वहाँ तुरन्त ही अनुभव करता है। कहो, समझ में आया?

'कैसा है समयसाररूप शुद्ध आत्मा?' लो! 'कैसा है समयसाररूप शुद्ध आत्मा?' यह तो केवली को होगी यह बात? त्रिकाल भगवान शुद्ध ज्ञानानन्द का पिण्ड प्रभु, एक समय की विकृत अवस्थामात्र संसार। एक समय की विकृतमात्र अवस्था। जहाँ उसका विषय... छोड़कर यहाँ जहाँ आया, समाप्त (पूरा) हो गया। कुछ है नहीं। समझ में आया? श्रीमद् में आता है न? 'अन्तर्मुख अवलोकते विलय होत नहीं देर।' आता है न। अन्त में आता है न।

उपजे मोह विकल्प से समस्त यह संसार,
अन्तर्मुख अवलोकते विलय होत नहीं देर रे...
चेतनप्रभु चेतनता तेरी रे अन्तरधाम में।

ऐसा भगवान आत्मा... आहाहा! निश्चय विषय और व्यवहार विषय को विरोध है। निश्चय का विषय पकड़ा, कहते हैं कि शुद्ध आत्मा का अनुभव हुआ। समझ में आया? यह वस्तु में सार में सार पूरे चौदह पूर्व का सार यह है। सब बातें चाहे जितनी करे। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि अनुभव करता है। ऐसे धारणा में श्रद्धा, वह आत्मा, ऐसा नहीं। ज्ञान में अपनी ज्ञानदशा में भगवान अखण्ड ज्ञेय ज्ञायक को दृष्टि में लिया अर्थात् कि उसकी ओर का झुकाव, झुक... झुक... झुक... लिया, (वहाँ) साक्षात् आत्मा कैसा है, उसका अनुभव होता है। वह कैसा है आत्मा? कि नवीन प्रकाशमान शुद्ध आत्मा को तुरन्त देखता है। यह शुद्ध भगवान त्रिकाल है। उसे अनुभव करता है कि यह तो शुद्ध त्रिकाल है। पर्याय में भान हुआ, तब यह त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा अनुभव हुआ। समझ में आया?

छठवीं गाथा में रखा न? छठवीं गाथा। परद्रव्य के भाव से भिन्न। परद्रव्य और परद्रव्य के भाव से भिन्न उपासित होता हुआ आत्मा शुद्ध कहा जाता है। भगवान आत्मा विकल्प आदि की पर्याय को समेटकर लक्ष्य और स्वभाव-सन्मुख की दृष्टि में जाता है, तब आत्मा शुद्धता की पर्याय को अनुभव करता है, तब उसे यह आत्मा शुद्ध है, ऐसा

भान आता है। ऐसे शुद्ध-शुद्ध है, ऐसा नहीं। बहुत से कहते हैं कि आत्मा तो शुद्ध है। अब अपने करो राग। तुम्हारा शुद्ध है और हमारा शुद्ध है। अब सुन न! शुद्ध है, ऐसे भान बिना शुद्ध कहाँ से आया तुझे? समझ में आया? अद्धर से शुद्ध है... शुद्ध है... शुद्ध है... इसका अर्थ क्या?

भगवान आत्मा चैतन्यज्योति प्रभु को परद्रव्य के लक्ष्य से छूटकर उसकी सेवा, उपासना में सेवा करने में आयी। अर्थात् कि अनादि से राग और पुण्य की, निमित्त की सेवा करता था, उससे छूटकर भगवान आत्मा की ओर की पर्याय में सेवा की... ओहोहो! यह आत्मा शुद्ध है। तब वह शुद्ध तो वह द्रव्य है। समझ में आया? **शुद्ध आत्मा को तत्काल ही देखते हैं।** यह केवली की बात होगी?

मुमुक्षु : मिथ्यात्व का वमन हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो मिथ्यात्व के वमन की तो बात चलती है। ११वीं गाथा जो कही है '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' यह सम्यग्दृष्टि के लिये बात है। उसमें और कितने ही कहते हैं, यह तो तेरहवें गुणस्थान की बात है। निश्चय समकित तेरहवें में होता है। अरे! भगवान! तुझे खबर नहीं। समकित के दो प्रकार ही नहीं। सविकल्प समकित और निर्विकल्प समकित, सराग समकित (और वीतराग समकित), ऐसे दो भेद ही नहीं। एक ही आत्मा के आनन्द की प्रतीति का अनुभव निर्विकल्प प्रतीति एक ही समकित है। आहाहा! क्या हो परन्तु। वादविवाद में चढ़े। वह भी भगवान है न सामने। उल्टा पड़ा, वह (भी) परमेश्वर है। अनुभवप्रकाश में दीपचन्दजी कहते हैं, प्रभु! तेरी शुद्धता तो बड़ी, परन्तु तेरी अशुद्धता भी बड़ी। अनुभवप्रकाश में (कहते हैं)। अनन्त तीर्थंकर आवे तो भी न माने, ऐसा बड़ा परमेश्वर तू उल्टा। और सुल्टा पड़ा अनन्त मेरु के जितनी अनन्त प्रतिकूलता के ढ़ेर पड़े तो हिलाया हिले नहीं, ऐसा तू ज्ञाता-दृष्टा है। लाख प्रयत्न और परीषह और उपसर्ग के ढ़ेर पड़ें बाहर में। सातवें नरक के नारकी के संयोग हों... भंग न हो उसके ज्ञाता-दृष्टा में, ऐसा तू शुद्ध है। समझ में आया? अग्नि के भण्डार में शरीर को घुसा डाले। भगवान चैतन्य शुद्ध आनन्दकन्द को कोई डिगाने में अग्नि के प्रतिकूल परीषह भी समर्थ नहीं हैं। समझ में आया? ऊपर से वज्र गिरे। आता है न

उसमें ? वज्र गिरे। कलश में आता है। निर्जरा अधिकार (श्लोक-१५४)। '**वज्रे पतति अपि**' वज्र अग्नि के ऊपर से गिरे, भले गिरे। छुए किसे ? समझ में आया ? अड़े समझे ? छूते।

अकेला ज्ञायकस्वभाव जहाँ प्रकाशमान तुरन्त अनुभव करे। **कैसा है समयसाररूप शुद्ध आत्मा ? नवीन उत्पन्न नहीं हुआ;...** था ही शुद्ध त्रिकाल ऐसा का ऐसा। ऐसा कहते हैं। पर्याय में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। शुद्ध तो द्रव्य ऐसा का ऐसा ही है। आहाहा! **पहले कर्मों से आच्छादित था...** अर्थात् कर्म के लक्ष्य की आड़ में भगवान दिखता नहीं था। **वह प्रगट व्यक्तिरूप हो गया है...** भगवान पूर्णानन्द प्रभु पर्याय में प्रगट हुआ, जाना कि यह आत्मा त्रिकाल है। **और कैसा है ? सर्वथा...** लो, यहाँ तो होने आया लगभग, हों! **एकान्तरूप कुनय के पक्ष से खण्डित नहीं होता,...** एकान्त अर्थात् कोई त्रिकाल द्रव्य शुद्ध न माने और पर्याय अशुद्ध है, इसलिए सब अशुद्ध है। एकान्त तेरा कुनय है। उसे खण्डित करनेवाला यह आत्मा है। समझ में आया ? पर्याय अशुद्ध है। और संसार में द्रव्य-गुण शुद्ध है, इसलिए पर्याय भी शुद्ध है। अन्त कर डाले। बिल्कुल नहीं। स्वभाव सन्मुख ढले तब अशुद्धता टलती है; (इसके बिना) अशुद्धता टलती नहीं। अशुद्धता है। अशुद्धता है। समझ में आया ? आहाहा! कहते हैं न! स्पष्टीकरण करेंगे।

कुनय के अर्थात् सत्रूप है, वह असत्रूप नहीं होता, ऐसा माने न ? होवे, वह नहीं होता ? होवे, वह नहीं होता ? अब सुन न! होवे, वह नहीं होता। अपनी अपेक्षा से हो, वह पर की अपेक्षा से नहीं होता। यह वीतराग की वाणी सबका निस्तार कर डालती है। अज्ञानियों को-अन्धों को यह खबर नहीं पड़ती। समझ में आया ?

एकान्तरूप कुनय के पक्ष से खण्डित नहीं होता, निर्बाध है। शब्द अधिक रखा है। मूल तो एक वचन है। वाणी स्याद्वादरूप है। वीतरागी की वाणी में त्रिकाल शुद्ध है, पर्याय अशुद्ध है, ऐसा स्याद्वाद कथन है उनका। समझ में आया ? ऐसा नहीं कि यह त्रिकाल शुद्ध है, इसलिए पर्याय भी शुद्ध है अनादि की। निश्चयाभास में आया था न ? उसमें।

मुमुक्षु : द्रव्य-गुण-पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! कहाँ... सिद्ध का आत्मा शुद्ध है अकेला। क्योंकि पर्याय शुद्ध हुई इसलिए। अरे! भगवान! सुन न भाई! यह किनारा नहीं आवे, बापू! यह दुनिया मूढ़ जैसी होगी, वह माने। वह मूढ़ता तेरी हटेगी नहीं और दु:ख में चला जाएगा हो जायेगा। आहाहा!

कहते हैं कि एक पर्याय में अशुद्धता और द्रव्य में भी अशुद्धता माननेवाला ऐसे कुनय को खण्डित कर डालता है। (पर्याय में) अशुद्धता है और द्रव्य में यदि शुद्धता न हो तो शुद्धता के आश्रय बिना अशुद्धता टालेगा कौन? किसके लक्ष्य से यह अशुद्धता टलेगी? अशुद्धता के लक्ष्य से अशुद्धता टलेगी? पूरा द्रव्य अशुद्ध हो गया? लक्ष्य किसके ऊपर करना? आहाहा! एक ओर व्यवहार, शुद्ध... भाई! बापू! ऐसा नहीं, हों! नहीं था लेखन? हम पढ़े हैं। और यह सब पढ़े नहीं। अरे भगवान! पढ़े-बढ़े के बापू! 'वांचे पण नहीं करे विचार वह समझे नहीं सघळो सार' दलपतराम कहते न? भगवान! ऐसा नहीं होता, भाई! वह भगवान तो शुद्धस्वरूप है, हों! वही पर्याय में अशुद्ध है। एक अंश में अशुद्ध है। वह, तथापि अशुद्ध होने का कोई गुण नहीं। तथापि पर्याय के अंश में अशुद्धता हो, ऐसा उसका कथंचित् अधर्मभाव पर्याय में हैं। समझ में आया? **जहाँ दो नयों के विषय का विरोध है।** ... ऐसा कहते हैं, हों! **जो सत्रूप होता है, वह असत्रूप नहीं होता,...** है, वह नहीं? है, वह नहीं? हाँ, है, वह नहीं।

मुमुक्षु : दोनों में अपनी ताकत है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों वह अपना स्वरूप है। अस्ति भी अपना स्वरूप है, पररूप न होना, यह नास्ति भी अपना स्वरूप है। नास्तिधर्म पर का है, ऐसा नहीं। है... है... है। तथा है, वह पर से नहीं, ऐसा भी स्व का अस्ति-नास्ति धर्म है। समझ में आया? आहाहा! **जो शुद्ध होता है, वह अशुद्ध नहीं होता...** ऐसा हो लोगों को। ऐसा कैसे होगा? सुन न! किस अपेक्षा से सत्रूप और किस अपेक्षा से असत्रूप? वह तो सप्तभंगी में आता है। शून्य। समझ में आया? स्व से अशून्य, पर से शून्य। प्रवचनसार में ऐसा शब्द पड़ा है। 'स्व से अशून्य, पर से शून्य।' वह पर से शून्य भी अपना धर्म है। पर की अपेक्षा का नहीं। यह देखो न जैनदर्शन। यह वस्तु का भी स्वरूप ऐसा न हो तो

किसी प्रकार से वस्तु सिद्ध ही नहीं होती। भगवान ने कहा, इसलिए ऐसा नहीं। है वैसी वह। वस्तु सामर्थ्य उसकी है। अनन्त पदार्थों में बीच में अकेला अनन्त के मध्य में अन्यरूप से टिक रहा है, वह अन्य से पृथक्, अनन्त अन्य से पृथक्, ऐसा उसका धर्म है। अनन्त के मध्य में रहा, परन्तु एक अंश पररूप हुआ नहीं। अनन्त परमाणु के ढ़ेर में मध्य में पड़ा है। परमाणु लो न! एक परमाणु भी अनन्त आत्मा और बीच में पड़ा, वह परमाणु अपना अस्तित्व खोता नहीं। समझ में आया? अपने से है, वह पर से असत्रूप है। न हो, ऐसा लगे दूसरे को। स्याद्वाद है। स्व से है और पर से नहीं। तब ही उसका पूरा रूप होता है। समझ में आया?

एक होता है, वह अनेक नहीं होता,... अज्ञानी ऐसा कहता है। एक हो, वह अनेक होगा? हाँ। वस्तुस्वरूप से सब प्रदेश होकर एक है। वह गुणभेद से अनेक है। एक है, वही अनेक है। सुन न! पर्याय अनेक है, गुणभेद अनेक है, वस्तु एक है। अपेक्षा भेद है। समझ में आया? **नित्य होता है, वह अनित्य नहीं होता,...** होता है। द्रव्यदृष्टि से नित्य है, पर्यायदृष्टि से अनित्य है। दोनों का विरोध स्याद्वाद से मिटा देते हैं। समझ में आया? **भेदरूप होता है, वह अभेदरूप नहीं होता,...** होता है। गुण-पर्याय भेद है। शुद्ध हो, वह अशुद्ध नहीं होता। देखो! **शुद्ध होता है, वह अशुद्ध नहीं होता...** अरर! द्रव्य-गुण शुद्ध और पर्याय अशुद्ध? अब सुन न! द्रव्य-गुण से शुद्ध है, वह पर्याय से अशुद्ध है। समझ में आया? यही विवाद।

इत्यादि नयों के विषय में विरोध है-वहाँ जिनवचन कथंचित् विवक्षा से... कथंचित् अर्थात् अपने से है और पर से नहीं। **जिस प्रकार विद्यमान वस्तु है, उसी प्रकार कहकर विरोध मिटा देता है, असत् कल्पना नहीं करता।** झूठी कल्पना करता नहीं। वस्तु है, ऐसा कहते हैं। ऐसा अद्धर से नहीं उठाया, लो ... नहीं। वस्तु ऐसी है, ऐसा कहते हैं। झूठी कल्पना करते नहीं। ऐसी चीज़ की दृष्टि करके एकाग्र हो, उसे आत्मा की प्राप्ति हुए बिना नहीं रहती, ऐसा वीतराग कहना चावहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल १, गुरुवार, दिनांक - १५-०९-१९६६
श्लोक - ४-५, प्रवचन - ४८

समयसार (१२वीं गाथा का) कलश कहा जा चुका है। उसका भावार्थ चलता है। यहाँ आया, देखो! **वे जिनवचन...** वहाँ आया है। वहाँ आया है न? **द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक - दोनों नयों में,...** अर्थात् क्या? कि यह आत्मा एक समय में द्रव्य अर्थात् सामान्य ध्रुव ज्ञायक स्वभाव है, उसे बतलानेवाला द्रव्यार्थिकनय कहा जाता है। जो नय अर्थात् ज्ञान का भाग, त्रिकाल द्रव्य को जो दृष्टि में ले, वह जिसका प्रयोजन है, उसका नाम द्रव्यार्थिकनय कहा जाता है। त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, सामान्यस्वभाव को मुख्य करके। देखो! **प्रयोजनवश शुद्धद्रव्यार्थिकनय को मुख्य करके...** आत्मा के आनन्द और हित की प्राप्ति के लिये। प्रयोजन यह है। आत्मा को शान्ति प्राप्त हो, आनन्द प्राप्त हो। दूसरी भाषा में कहें तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त हो। ये तीनों शान्ति है, तीनों आनन्दस्वरूप है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। उस अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति के प्रयोजन के कारण से द्रव्यार्थिकनय को प्रयोजनवश, त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप, ध्रुवस्वरूप को मुख्य करके, उसे मुख्य करके, **उसे निश्चय कहते हैं...** निश्चय को ही मुख्य करके निश्चय कहते हैं, ऐसा नहीं। मुख्य को निश्चय करके, मुख्य को मुख्य करके निश्चय कहते हैं। मुख्य करके, द्रव्य त्रिकाल शुद्ध चैतन्यस्वरूप, उसे मुख्य करके निश्चय कहते हैं। वरना निश्चय तो स्वद्रव्य, गुण और पर्याय तीनों निश्चय हैं। समझ में आया? स्वआश्रित निश्चय, परआश्रित व्यवहार। सिद्धान्त यह है। यह आत्मा अपना द्रव्य, वस्तु, उसके अनन्त गुण और उसकी पर्याय, यह सब स्व है। उसकी अपेक्षा से तो स्व को निश्चय कहा जाता है। और अपनी अपेक्षा से दूसरे परद्रव्य आदि जो हैं, उन्हें व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया?

स्वाश्रित निश्चय, पराश्रित व्यवहार। इतने साधारण शब्दों से लें तब तो आत्मा

अपना द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसकी अनन्त शक्तियाँ और विकारी, अविकारी पर्यायें, सब निश्चय में आती हैं। और अपने अतिरिक्त परचीज़ें, आत्मा हो या परमाणु, उन्हें व्यवहार कहा जाता है। क्योंकि उस वस्तु में वे नहीं। वस्तु में जो हो उसे निश्चय कहते हैं और वस्तु में न हो, ऐसी चीज़ को व्यवहार कहते हैं। यह तो सामान्य बात हुई। परन्तु प्रयोजन सिद्ध करने के लिये जो निश्चय अपना सामान्य द्रव्य, सामान्य गुण और पर्याय। इन तीन में... हैं तीनों निश्चय। परन्तु तीन को जानने से प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। समझ में आया? ये तीन स्व के—अपने निश्चय से होने पर भी तीन के लक्ष्य से, तीन के आश्रय से अपनी शान्ति और धर्म की सिद्धि नहीं होती। समझ में आया? इसीलिए **द्रव्यार्थिकनय को मुख्य करके...** यह शब्द है। शुद्ध द्रव्य अर्थात् शुद्ध द्रव्य त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप चैतन्यप्रभु पूर्ण आनन्द, उसमें अनन्त सामान्य और विशेष गुण अनन्त हैं।

आत्मा एक समय की पर्याय बिना का, विकार बिना का। संयोग बिना का तो है ही। यह तो निश्चय में आ गया। संयोग बिना का तो निश्चय में आ जाता है। परन्तु यह अपने द्रव्य, गुण और पर्याय, ये तीन निश्चय होने पर भी, प्रयोजन तीन के लक्ष्य से, तीन के आश्रय से सम्यग्दर्शन और शान्ति के प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। इसलिए शुद्ध द्रव्यार्थिक-शुद्ध चैतन्य वस्तु निर्मलानन्द प्रभु, ऐसे 'नय को मुख्य करके, उसे मुख्य करके उसे निश्चय कहते हैं...' समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : आमां अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा जाता है उसमें। धारा है उसमें नहीं। परन्तु यह कहा जाता है उसमें। क्या कहा?

भगवान आत्मा एक शुद्ध द्रव्य-शुद्ध द्रव्य। एक चीज़ ज्ञायकमूर्ति परमानन्द, उसे शुद्धद्रव्यार्थिक को मुख्य करके, मुख्य करके उसे निश्चय कहते हैं। वरना निश्चय तो तीनों हैं। अपना स्व है, उसे निश्चय कहते हैं। पर को व्यवहार कहते हैं। परन्तु वह तीन स्व है, उसमें सिद्धि नहीं होती तीन के लक्ष्य से। अकेला शुद्ध द्रव्यस्वभाव जो त्रिकाल है, उसके आश्रय से आत्मा की शान्ति और सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। समझ में आया? इसलिए **प्रयोजनवश शुद्धद्रव्यार्थिकनय को...** प्रयोजनवश। अपना आत्मा आनन्द की

दशा को प्राप्त हो, दूसरे प्रकार से कहें तो मोक्षमार्ग की दशा को प्राप्त हो, ऐसे प्रयोजन के कारण से शुद्धद्रव्यार्थिकनय त्रिकाल चैतन्य ज्ञायक परमानन्द की मूर्ति, उसे मुख्य करके उसे निश्चय कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य के लक्ष्य से सम्यग्दर्शन की प्रयोजन सिद्धि होती है। गुणभेद के लक्ष्य से, पर्याय के लक्ष्य से, राग के लक्ष्य से, निर्मल पर्याय के लक्ष्य से भी (प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती)। अस्तित्व आदि निर्मल पर्याय है न जीव में? रागादि मलिन है, अस्तित्व आदि की निर्मल पर्याय है। गुण त्रिकाल निर्मल हैं, द्रव्य निर्मल है। परन्तु विकार की पर्याय है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन की सिद्धि नहीं होती। सम्यग्दर्शन कहो या आनन्द का अंश प्रगटे, उस आनन्द की प्राप्ति की प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। राग के लक्ष्य से। है स्व। ऐसे अस्तित्व की पर्यायादि निर्मल है आत्मा में। अभी वह अनादि है। अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व की पर्याय निर्मल है। परन्तु निर्मल पर्याय के आश्रय से सम्यग्दर्शन और आनन्द की प्राप्ति प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। तथा अनन्त गुण हैं। तो अनन्त गुण का लक्ष्य करने से, गुण का लक्ष्य करने से, गुण के भेद का लक्ष्य करने से सम्यग्दर्शन आत्मा के आनन्द का अनुभव, वह गुणभेद के लक्ष्य से प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। समझ में आया?

मुमुक्षु : निमित्त के लक्ष्य से तो होती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त तो कहीं रह गया। वह तो व्यवहार में गया। यह तो पहले से स्पष्टीकरण कर डाला। निमित्त तो उसके घर में रहा। वह तो पर में गया। पहले यह तो स्व में, स्व द्रव्य-गुण-पर्याय और विकारी और अविकारी पर्याय सबको निश्चय कहते हैं और निमित्त को व्यवहार कहते हैं। निमित्त अर्थात् पर। यह तो पहले में गया। अब एक में निश्चय और व्यवहार घटित करना है उसी और उसी में। समझ में आया? अमरचन्दभाई!

भगवान आत्मा वस्तु अनन्त गुण का पिण्ड, अनन्त गुण, उसकी पर्याय निर्विकारी या विकारी अनादि से है। अविकारी पर्याय भी अनादि की है। अस्तित्व, वस्तुत्व आदि

की, हों! आनन्द और समकित, यह बात नहीं। कितनी ही पर्यायें अविकारी सदा ही है। अभव्य को भी है और कितनी ही पर्यायों में विकार है। अब वह विकार-अविकार पर्याय, गुण और द्रव्य, वह वास्तव में तो सबको स्व कहा जाता है। उसे निश्चय कहा जाता है। और निमित्त अर्थात् पर को तो व्यवहार कहा जाता है। इसलिए पर का व्यवहार कहना, उसमें निश्चय के स्वआश्रय तीन में भी पर का व्यवहार उसमें आता नहीं।

मुमुक्षु : आता नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसका आता नहीं, फिर प्रश्न कहाँ। छूता नहीं न। यहाँ तो अन्दर स्पर्शित के दो भाग करने हैं। आहाहा! समझ में आया? अडेला अर्थात् क्या? कि अपना आत्मा एक समय में ध्रुव है, उसमें गुण स्पर्शित हैं, पर्याय स्पर्शित है, छुई हुई है, स्पर्शित है। विकारी या अविकारी पर्याय गुण को, द्रव्य को स्पर्शित है। निमित्त स्पर्शित नहीं। कहो, धन्नालालजी! कहो, रामस्वरूपजी!

भगवान आत्मा वह स्वयं कर्म, शरीर, वाणी इन सबको तो स्पर्शा ही नहीं। आत्मा स्पर्शा ही नहीं। वह चीज़ आत्मा को स्पर्शती नहीं तीन काल-तीन लोक में। इसीलिए जो स्पर्शित नहीं, उसे व्यवहार कहा और स्पर्शित जो द्रव्य-गुण-पर्याय आदि विकारी-अविकारी आदि स्पर्शित है, अपने असंख्य प्रदेश में स्पर्शित, रहे हुए, छुए हुए, आलिंगन किये हुए। अनन्त धर्म और पर्याय उसे आलिंगन किया हुआ पदार्थ है। पर निमित्त को तो आलिंगन किया हुआ नहीं। कहो, समझ में आया?

यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं। यह ११वीं गाथा का स्पष्टीकरण करते हैं कि वहाँ सत्य त्रिकाल ज्ञायक सत्य उसे कहा क्यों? उसे सत्य क्यों कहा? वरना तो गुणभेद, पर्याय, विकार, अविकारी सब सत्य है। स्व की निश्चय की अपेक्षा से सब सत्य है और दूसरी चीजें वे असत्य हैं। इसकी अपेक्षा से दूसरी चीज़ें असत्य हैं। इसकी अपेक्षा से, हों! स्व की अपेक्षा से। उनकी अपेक्षा से भले सत् हों। परन्तु स्वद्रव्य-गुण-पर्याय की अपेक्षा से सत् और उसकी अपेक्षा से दूसरा असत्। समझ में आया? स्व भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड, गुण और पर्याय विकारी-अविकारी। वह स्व। इस अपेक्षा से परवस्तु तो उसे छूती नहीं—स्पर्शती नहीं, तीन काल-तीन लोक में। इसलिए उसे

व्यवहार कहा, इसे निश्चय कहा। परन्तु इतने निश्चय से प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। इसलिए एक में अब दो भाग करना है। निश्चय और व्यवहार। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके अतिरिक्त तो सब असत्। स्व की अपेक्षा से तो सब असत्। अब आत्मा में दो भाग—एक सामान्य की अपेक्षा से विशेष असत्, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! भाई! यह तो अन्तर की बातें हैं। जिसे पहुँचने के लिये बात की है। यह कहीं मुफ्त में नहीं की वहाँ। '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' आहाहा! कहते हैं कि अपना द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसकी शक्तियाँ, उसकी अवस्था सत् है, सत् है। उसकी अपेक्षा से दूसरी चीज़ें असत् है। यह बात एक ओर रखी।

अब आत्मा में सत्-असत् दो घटित करना है। अपने में स्पर्शित, छुए, अस्तित्व में असंख्य प्रदेश में हैं उसमें। सूक्ष्म पड़े, परन्तु सुनना ही पड़ेगा या नहीं? उसे समझना पड़ेगा या नहीं? कहते हैं, भगवान आत्मा... न समझ में आये, यह बात पहले निकाल देना। नहीं समझ में आया। भगवान आत्मा केवलज्ञान लेने की तैयारी की शक्तिवाला है। उसमें इतनी सामर्थ्य पड़ी है कि अन्तर्मुहूर्त में गुलाँट खाये तो केवलज्ञान ले सकता है। उसे यह न समझ में आये यह बात इसे निकाल देना चाहिए। बालक हो या युवा हो। बालक-युवा कोई आत्मा है नहीं। भगवान आत्मा एक समय में सेकेण्ड के असंख्य भाग में अपनी वस्तु गुण और पर्याय अस्तित्व धराते हैं। अपने से अस्तित्व है। पर से नास्तित्व है। और अपने अस्तित्व की अपेक्षा से दूसरे सब नहीं... नहीं... नहीं।

अब अपना जो अस्तित्व है, उसके दो भाग करना है यहाँ तो अभी। अपना आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य, गुणभेद और पर्याय का अस्तित्व, उसमें। अब पर को व्यवहार कहकर पर को निकाल दिया। परन्तु अपने में दो भाग करके व्यवहार कहकर व्यवहार को निकाल देना है। समझ में आया?

कहते हैं, **जिनवचन...** वीतराग की वाणी में आया हुआ, दिव्यध्वनि में आया हुआ **द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक - दोनों नयों में,...** दो नयों के अंश में **प्रयोजनवश...** वीतराग की वाणी में प्रयोजन के कारण से अर्थात् कि आत्मा में आत्मा को सम्यग्दर्शन-

ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति की प्रयोजनता है, इस कारण से **शुद्धद्रव्यार्थिकनय को मुख्य करके...** शुद्ध ध्रुव ज्ञायक को मुख्य करके वह है... वह है... वह निश्चय है... वह है... वह सत् है, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? **शुद्धद्रव्यार्थिकनय को...** भगवान आत्मा पूरा पूर्णानन्द प्रभु जिसमें एक समय की अवस्था और गुणभेद भी नहीं। भले गुण अन्दर हो, परन्तु गुण देखने में नहीं आते, ऐसा शुद्ध द्रव्यार्थिक, अकेला अभेद को देखे, ऐसा जो शुद्ध द्रव्यार्थिक, उसे -अभेद को मुख्य करके, उसे मुख्य करके, उसे निश्चय कहा है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : दृष्टान्त दो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न सोना। सोना में पीलापन, चिकनापन आदि लक्ष्य में नहीं गिनना, उसकी पर्याय लक्ष्य में न लेना। उसकी चूरी समझे न? क्या कहलाती है चूरी आदि? ताँबा का भाग। उसे लक्ष्य में नहीं लेना। अकेला सोना... सोना... सोना... सोना... सोना... सोना... सोना... उसी प्रकार आत्मा में अकेला सामान्य ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... उसे है, ऐसा कहा। उसे निश्चय कहा, उसकी अपेक्षा से गुणभेद और पर्याय और राग (को) 'नहीं' कहा। 'नहीं' कहा। ११वीं में वे 'नहीं' कहा। आत्मा की अपेक्षा से पर नहीं, यह तो साधारण बात में गयी। समझ में आया? यह तो मक्खन की गाथा है, इसलिए जरा (विशेष स्पष्टीकरण आता है)। यह लोगों को मूल वस्तु का प्रयोजन लक्ष्य में नहीं न, इसलिए गड़बड़ किया करते हैं। यह व्रत पालो, दया करो, यह करो। धूल में भी नहीं कुछ अब सुन न! भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में शुद्ध चैतन्य पिण्ड जिसे मुख्य करके भगवान की वाणी में, उसे सच्चा कहा, उसे निश्चय कहा। सच्चा कहो या निश्चय कहो या एक है, ऐसा कहा। वह है, यही कहा। क्योंकि उसके आश्रय से लाभ है, इसलिए वह ही है, ऐसा कहा। समझ में आया?

और अशुद्धद्रव्यार्थिकरूप... भाषा देखो! भाषा देखो! पण्डित जयचन्द्रजी ने भी... अशुद्ध द्रव्यार्थिक अर्थात् आत्मा की पर्याय में विकार है, गुणभेद उठने पर विकल्प उठता है, उस पर्यायार्थिक को गौण करके उसमें विकार है, गुणभेद है, उसका आश्रय करने से विकल्प उठते हैं। इसलिए **अशुद्धद्रव्यार्थिकरूप पर्यायार्थिक...** अशुद्ध

द्रव्यार्थिक क्यों कहा ? कि पर्याय विकारी, उसके अपने में परिणमित है। वह कहीं पर के कारण से परिणमी है और विकार पर में है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया ? **अशुद्धद्रव्यार्थिकरूप....** अशुद्धद्रव्यार्थिक अर्थात् ही पर्याय हुई। कहीं द्रव्य अशुद्ध नहीं। द्रव्य तो शुद्ध त्रिकाल है। परन्तु वह द्रव्य स्वयं पर्याय में अशुद्धरूप परिणमा है। स्वयं से स्वयं विकाररूप हुआ है, उसे अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय कहकर, उसका द्रव्य स्वयं विकाररूप परिणमा, ऐसी स्वतन्त्रता की प्रसिद्धि करने के लिये **अशुद्धद्रव्यार्थिकरूप पर्यायार्थिक...** है तो वह पर्याय। समझ में आया ? गजब बात, भाई! ऐसा द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक समझे बिना समझना कठिन पड़े, इसकी अपेक्षा व्रत, तप, दया पाले तो कुछ मिले तो सही। स्वर्गादिक (पश्चात्) भले चार गति में भटके परन्तु स्वर्ग तो मिलेगा न, ऐसा कितने ही कहते हैं। अब स्वर्ग मिले या नरक मिले, सब एक ही है। चार गति एक ही जाति, दुःख के ढ़ेर, दुःख में जाना है। समझ में आया ? जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे, वह भाव दुःखरूप है। आनन्द को लूटनेवाला है। उसे कहाँ खबर है ? समझ में आया ? ऐसे विकार को अशुद्धद्रव्यार्थिकरूप पर्यायार्थिक को गौण करके (कहा है), नहीं, ऐसा नहीं। जैसे दूसरी चीज़ें नहीं, ऐसा नहीं। परन्तु इसकी अपेक्षा से उन्हें अद्रव्य और अवस्तु कहा। वैसे त्रिकाल द्रव्य की दृष्टि कराने के प्रयोजन की सिद्धि ज्ञायक एकाकार के आश्रय से प्रयोजन की-सम्यग्दर्शन की सिद्धि होती है। इसलिए अशुद्धद्रव्यार्थिकरूप भेद को-राग को गौण करके। अभाव करके नहीं। गौण करके, उसे व्यवहार (कहा है)। व्यवहार अर्थात् 'नहीं' ऐसा कहा। व्यवहार अर्थात् 'नहीं' ऐसा कहा। आहाहा! समझ में आया ? मगनभाई! गौण करके व्यवहार कहा। व्यवहार अर्थात् 'नहीं' ऐसा कहा। गौण करके 'नहीं' कहा। दूसरे द्रव्यों को इसमें नहीं, इसलिए नहीं कहा। और पर्याय के भेद और राग के भेद इसमें है। परन्तु उनका लक्ष्य छुड़ाने के लिये त्रिकाल द्रव्य के लक्ष्य को कराने के प्रयोजन की सिद्धि होती है। इसलिए भगवान की वाणी में ऐसा आया कि भेदों को गौण करके, होने पर भी गौण करके व्यवहार अर्थात् 'नहीं', ऐसा कहने में आया है। समझ में आया ? ऐई! देवीलालजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सामान्य वस्तु अभेद में भेद नहीं, पर्याय नहीं, राग नहीं। आहाहा! कठिन बात। समाज को यह बात पूरी वीतराग के मूलमार्ग की (खबर नहीं)। वीतराग की मूल दिव्यध्वनि में आया हुआ मार्ग यह है, बापू! आहाहा! और किस अपेक्षा से कहते हैं, इसकी अपेक्षा ख्याल में न आवे तो एकान्त हो जाये, इसलिए यहाँ अपेक्षा सिद्ध करते हैं। एकान्त हो जाये अर्थात् कि इसमें व्यवहार और राग और द्वेष और पुण्य तथा पर्याय नहीं, ऐसा नहीं। है तो इसमें। इसके अस्तित्व में, इसका सत् है। उसका सच्चा स्वरूप इसका है यह सब। द्रव्य-गुण-पर्याय विकार। सच्चा होने पर भी, खोटा नहीं होने पर भी... भगवान आत्मा शुद्धद्रव्यार्थिकरूप एकरूप मुख्य वस्तु कि जिसके आश्रय से भगवान शान्ति को पाता है। भगवान आत्मा आनन्द को पाता है। सर्व गुणांश के अंश को (पाता है)।

कल आया था, भाई! नहीं? किसमें? उसमें ज्ञानादि। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आया था। ज्ञानादि गुणों के अंश प्रगट होते हैं। उसमें भी सर्व गुणांश कह दिया है। समझ में आया? ऐई! चिट्ठी-बिट्ठी कहाँ है यहाँ? कल आया था। रात्रि में कहा था कि देखो इसमें आया। टोडरमलजी ने तो बहुत डाला है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी है न। कहाँ आया? देखो! दृष्टान्त। एक... वहाँ चिह्न किया है। **इसी प्रकार चौथे गुणस्थानवर्ती आत्मा को...** कल रात्रि में यह चिट्ठी सुधराई। वे मोक्षमार्ग (प्रकाशक) प्रकाशित होते हैं न ११ हजार वहाँ किशनगढ़ में। उसके पीछे ये तीन डालनी थी, इसलिए रात्रि में सुधराई। हमारे हिम्मतभाई ने सुधारी। हिम्मतभाई के ऊपर ही डालना है सब? क्या कहते हैं?

इस प्रकार चौथे... एकदेश कहा था न उसको। **और भाईश्री! तुमने तीन दृष्टान्त लिखे अथवा दृष्टान्त द्वारा प्रश्न लिखे, परन्तु दृष्टान्त सर्वांग मिलते नहीं। दृष्टान्त है, वे एक प्रयोजन को दर्शाते हैं। यहाँ दूज का चन्द्र, जल बिन्दु, अग्निकण...** यह दृष्टान्त में समुद्र था। ये चार थे। यह तो हमारे (संवत्) १९८५ में बहुत चर्चा हो गयी है। लाठी में। रात्रि में पूर्णिमा का दिन था। और प्रश्न उठा था। परन्तु पूर्णिमा को उजाले में वाँचा था अन्तिम यह। लाठी में। ८५ में, हों! 'और पूर्णिमा का चन्द्र, महासागर तथा अग्निकुण्ड—यह सर्वदेश है।' देखो!

इसी प्रकार चौथे गुणस्थान में आत्मा को ज्ञानादि गुण एकदेश प्रगट हुए हैं... यह सिद्धान्त है, देखो! बहुत रहस्यपूर्ण चिट्ठी में एक-एक शब्द में। **ज्ञानादि गुण एकदेश प्रगट हुए हैं।** जितने भगवान आत्मा में गुण हैं, उन सब गुण का एकरूप मुख्य को निश्चय कहा और दृष्टि वहाँ दी तो पर्याय में जितने गुण हैं, उतने अंश में एकदेश प्रगट हुए हैं। श्रीमद् ने यह वाक्य प्रयोग किया 'सर्व गुणांश, वह समकित'। श्रीमद् का यह वाक्य है। अपने दरवाजे के बाहर लिखा है। बाहर दरवाजे में। दोनों ओर। एक ओर समकित तथा एक ओर चारित्र। दो बड़े ट्रेडमार्क हैं यहाँ के। ट्रेडमार्क हो न पण्डितजी! धन्धा के। यहाँ लिखा है। बाहर दरवाजे पर है। बाहर का दरवाजा है न। ऊपर लिखा है 'सर्व गुणांश, वह समकित' देखो! यहाँ से दिखता है। अन्दर काँच के ऊपर से वेन्दीलेशन में से दिखता है, देखो शब्द। परन्तु तुमको नीचे दिखाई न दे। दरवाजे के बाहर। यह वेन्टीलेशन खिड़की का। उसमें से सामने लाल अक्षर दिखते हैं। सामने नहीं दिखता। वहाँ स्वरूपे चरणं चारित्र, यह बाहर दरवाजे पर है। सम्यग्दर्शन और चारित्र के महा दो लक्षण। तो सर्व गुणांश, वह समकित, जो श्रीमद् ने कहा, वह बात यहाँ कही है। **चौथे गुणस्थान में....**

मुमुक्षु : .... वेन्टीलेशन आया न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो वेन्टीलेशन होता है तो अक्षर वँचाता नहीं। परन्तु यह लाल है, ऐसा दिखता है। ऊँचे हैं न। नीचे तुमको नहीं दिखाई दे। कहो, समझ में आया यहाँ?

चौथे गुणस्थानवर्ती आत्मा को ज्ञानादिगुण एक देश प्रगट हुए हैं तथा तेरहवें गुणस्थान में आत्मा को ज्ञानादिगुण सर्वदेश प्रगट हुए हैं। भाषा देखो! ओहोहो! केवली को सब गुण प्रगट निर्मल हो गये हैं और चौथे गुणस्थान में सब गुण एक अंश प्रगट हुए हैं। ... समझ में आया? आत्मा अनन्त गुण का एकरूप, उसे—एकरूप को मुख्य करके निश्चय कहकर सच्चा कहा। वही सच्चा है, वही सत्य है, वही सत्य है। इस दृष्टि से गुणभेद विकारी पर्याय और निर्मल पर्याय को असत्य कहा। क्योंकि गौण करके असत्य कहकर उसे व्यवहार सिद्ध किया। प्रयोजन सिद्धि मुख्यपने के आश्रय से उसकी

दृष्टि देने से जितने गुण अन्तर में है, उनके चौथे गुणस्थान में सबके निर्मल अंश प्रगट हो जाते हैं। आहाहा! कहो, अमरचन्दभाई! यह कल ख्याल में आया था। वाँचते थे न रात्रि में। सर्व गुणांश का और कोई आधार माँगता थे। कोई कहता था कि सर्व गुणांश कहाँ आया? यह आया, यह मुख्य निश्चय कहा द्रव्य, उसमें जितने गुण हैं, उसके एकरूप पर दृष्टि पड़ने से, एकाकार होने से जितने गुण उसके आंशिक व्यक्त पर्याय के अंश में आते हैं, उसे चौथा गुणस्थान कहते हैं। मगनभाई! समझ में आया? परन्तु लोगों को ऐसी बात है कि स्वयं जो शब्द सुना हो, उसके अतिरिक्त दूसरा सुने तो (ऐसा लगे) यह नया (आया)। नया अर्थात् खोटा। नया अर्थात् मूल तो खोटा कहना चाहते है। मुझे तो यह कहना है। यह खोटा। परन्तु सुन न भगवान! खोटा या कैसे है, वह है वह रहेगा। तू लाख सच्चे को खोटा करना चाहे तो नहीं होगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भगवान आत्मा द्रव्य का आश्रय ले, वह पुराने भगवान का कथन है। इसका नाम भगवान का पुराना कथन है। यह क्या कहा?

जिनवचन। है? द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। जिनवचन वह पुराना है या? अनादि के जिनवचन। एकबार कहा था कि तीन काल में त्रिकाल जाननेवाले का कभी अभाव रहा नहीं। क्या कहा? तीन काल में, तीन काल को जाननेवाले सर्वज्ञ का अभाव तीन काल में कभी रहा नहीं। आहाहा! कहो, रामस्वरूपजी! क्या कहा? तीन काल में तीन काल के जाननेवाले भगवान सर्वज्ञ न हों, ऐसा कभी होता नहीं। आहाहा! कब सर्वज्ञ नहीं थे? तीन काल है और तीन काल के जाननेवाले कब नहीं थे? और कब नहीं होंगे? क्योंकि तीन काल वस्तु है, उसके जाननेवाले भी सत् का त्रिकाल उसके साथ का साथ होता है। अनादि वस्तु है। समझ में आया? ऐसे सर्वज्ञ भगवान, उनकी वाणी जिनवचन। यहाँ तो जिनवचन है। वह जिनवचन अनादि का ऐसा कहता आता है। पुराने और अनादि के ऐसा कहते आते हैं। नया नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा, इसलिए ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह तो केवलज्ञानी की बात है। वे स्वयं अनुभवकर चारित्रदशा में रहकर इस मार्ग के प्रणेता रहे, ऐसा कहते हैं। मार्ग कैसा है

चारित्र का ? हम अनुभव करके बैठे हैं और उसमें विकल्प की कैसी जाति होती है, वह हमारे भान में वर्तता है। इसके अतिरिक्त मुनिपना दूसरा हो नहीं सकता। यह प्रणेता खड़े। प्रवचनसार में (आता है) पण्डितजी! यह प्रवचनसार के तीसरे अधिकार में (आता है कि) यह प्रणेता खड़े। यह हम स्वयं मोक्षमार्ग के प्रणेता! आहाहा! भगवान कहते हैं, ऐसा नहीं। हम चारित्र में निर्विकारी आनन्द और चारित्र की कैसी दशा सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित और उस भूमिका में कितनी जाति के, किस जाति के कषाय की मन्दता की जाति होती है, वह सब हमारे ज्ञान में अभी वर्तता है। समझ में आया ? इस प्रकार हम मोक्षमार्ग का चरणानुयोग का अधिकार कहेंगे, ऐसा कहते हैं। भगवान कहते थे, ऐसा है नहीं। हमको खबर है कि ऐसा है। समझ में आया ? आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य। वृन्दावन न ? क्या कहा ? वृन्दावन (दास कवि ने कहा है)। 'कुन्द कुन्द न हुए न होयेंगे।' स्तवन है। उनके जैसे वे हो न! दूसरे हो आत्मा भी। उनकी जो दशा और उसका प्रकार तो उनके पास ही हो। महा सन्त तो केवलज्ञान प्राप्त करनेवाले। यह तो उनकी एक शैली ही कोई अलग प्रकार की है। साक्षात् जन्म भरत में और महाविदेह में भगवान की भेंट... ! आहाहा! (वहाँ) पाँच सौ धनुष का देह और (इनका) साढ़े तीन-चार हाथ का देह। टिड्डी जितना लगे। वहाँ भगवान के पास आठ दिन रहे। यह वह कहीं बात है! पवित्रता भी अलग और पुण्य भी अलग!

यह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' सत्य को शुद्धनय कहते हैं। सत्य को शुद्धनय कहते हैं। सत्य अर्थात् त्रिकाली द्रव्य शुद्ध मुख्य, उसे हम सत्य कहते हैं। और उसमें रहे हुए गुणभेद, अविकारी या विकारी पर्यायें, उनमें रहे होने पर भी उसका अभाव करते नहीं। परन्तु उसमें होने पर भी उन्हें गौण करके लक्ष्य छुड़ाने के लिये गौण करके वे 'नहीं' ऐसा कहकर उसे व्यवहार कहा है। निश्चय में व्यवहार नहीं और व्यवहार में निश्चय नहीं, ऐसा कहते हैं, हों! यहाँ तो। आहाहा! कथन, वह कथन है।

कहते हैं कि भगवान आत्मा शुद्ध द्रव्य—वस्तु में वे भेद और पर्याय है ही नहीं। पाटनीजी! आहाहा! अनेकान्त की दृष्टि रखकर भगवान द्रव्यार्थिक अशुद्ध को पर्यायार्थिक

गिनकर पर्यायरूप है उसका। उसका ही अंश सत्ता में है, परिणमन अशुद्ध आदि। तथापि उसे पर्याय गिनकर, उसे गौण करके, अर्थात् कि मानो त्रिकाल में नहीं, इसलिए उसे गौण करके त्रिकाल को सत्य कहकर, इसे व्यवहार अर्थात् असत्य है, ऐसा कहा जाता है। गौण करके असत् है, ऐसा कहा है। बिल्कुल नहीं करके असत् है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो सन्तों की वाणी है। इनके एक-एक शब्द में बहुत भाव भरे हुए हैं। ऐसा का ऐसा वाँच जाये तो पार नहीं पड़ता, ऐसा यह। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? इन दो लाईनों में तो पूरा मार्ग किस प्रकार का है, यह समयसार में वर्णन कर दिया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार है सही। परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से उसे गौण करके असत्यार्थ कहकर व्यवहार कहा है। व्यवहार की व्याख्या से व्यवहार है। अपनी अपेक्षा से दूसरी वस्तु नहीं। परन्तु उसकी अपेक्षा से दूसरी वस्तु है। ऐसे मुख्य की अपेक्षा से व्यवहार नहीं, ऐसा गौण करके कहा, परन्तु उसकी अपेक्षा से पर्याय और रागादि हैं, वे उसकी अपेक्षा से हैं। समझ में आया? यह मुद्दे की रकम है। पूरे जैनदर्शन के मुद्दे की रकम की यह व्याख्या है। यह समझे बिना जितने शास्त्र के अर्थ करे, वे सब उसके उल्टे ही अर्थ होते हैं। समझ में आया?

ऐसे जिनवचन में जो पुरुष रमण करते हैं,... देखो! भाषा आयी। यह पण्डित जयचन्द्रजी ने अन्दर में है, उसे स्पष्ट किया है। घर का कुछ नहीं कहा। यह आर्ष वाक्य है। परन्तु यह आर्ष वाक्य क्या है? यह आर्ष का बाप है या क्या है? एक ११वीं गाथा में कहा, उसका स्पष्टीकरण करते हैं। वहाँ कहा था न प्रभु तुमने। शुद्धनय सच्चा है, ऐसा कहा था न? और व्यवहार सब झूठा है। सब ही व्यवहार—सद्भूत उपचार, अनुपचार, असद्भूत उपचार, अनुपचार—सब व्यवहार अभूत अर्थ को प्रगट करता है, इसलिए सब झूठा है, ऐसा कहा। उसका क्या हेतु? कि यह हेतु। बापू! त्रिकाल वस्तु को मुख्य करके सत्य कहा और निश्चय कहा, वही है ऐसा कहा। गुणभेद और पर्याय रागादि के होने पर भी, उन्हें गौण करके, लक्ष्य छुड़ाने के लिये, यहाँ वजन देने के लिये गौण

करके व्यवहार कहा। अर्थात् उसमें नहीं, ऐसा कहा। उसमें नहीं कहा। उसमें भले हो पर्याय। समझ में आया? **ऐसे जिनवचन में...** भाषा देखो! इस प्रकार चार अनुयोग में जहाँ-जहाँ कथन हो, इस प्रकार से जिनवचन कहना चाहते हैं। चरणानुयोग के कथन आवे। देखो! इसमें यह लिखा, देखो! इसमें लिखा, देखो! फलाना ऐसा है। **ऐसे जिनवचन में जो पुरुष...** जो पुरुष अर्थात् आत्मा। **रमण करते हैं...** अर्थात् कि परवस्तु को भिन्न रखकर उसे व्यवहार कहा। अपने गुणभेद को, पर्याय को गौण करके उसे व्यवहार और झूठा कहा और त्रिकाल को मुख्य करके, उसे निश्चय और सच्चा कहा। वे पुरुष इस प्रकार जो अन्तर के अभ्यास में रमते हैं, **वे इस शुद्ध आत्मा को यथार्थ प्राप्त कर लेते हैं;...** समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल किसी रास्ते से दूसरा यथार्थ आत्मा को पा सकता ही नहीं। इस वीतराग शासन में यह बात है। जिनवचन में है। अन्यमत में कहीं तीन काल में यह बात हो ही नहीं सकती। जैन परमेश्वर सर्वज्ञदेव ने छह द्रव्य; एक द्रव्य के अनन्त गुण; उसकी अनन्त पर्यायें; अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें, ऐसे-ऐसे अनन्त पदार्थ जो भगवान के एक समय के ज्ञान में... समझ में आया? ज्ञात हुए। उनकी वाणी में जो आये, उस वाणी में इसे मुख्य करके बात की और इन भेद को गौण करके लक्ष्य छुड़ाया। इस प्रकार जो समझेंगे और इस प्रकार से आत्मा के द्रव्यस्वभाव में अभ्यास करेंगे। दूसरे को गौण करके लक्ष्य छोड़ देंगे, वे आत्मा शुद्ध आत्मा को **वे इस... रमण करते हैं, वे इस शुद्ध आत्मा को...** भगवान पवित्र आनन्दकन्द को यथार्थ... देखो, भाषा! **यथार्थ प्राप्त कर लेते हैं...** ऐसे तो अज्ञानी दूसरे बहुत शुद्धात्मा... शुद्धात्मा... (बोलते हैं)। ऐसा नहीं चलता। वस्तु जैसी एकरूप शुद्ध है, पर्याय में अशुद्ध है, ऐसे अनन्त गुण शुद्ध हैं या विशेष गुण अनन्त हैं, सामान्य गुण अनन्त हैं, इस प्रकार वस्तु को लक्ष्य में लेकर सामान्य सन्मुख की एकाग्रता का अभ्यास करेंगे, विशेष को गौण करके लक्ष्य नहीं रखेंगे, वे पुरुष यथार्थ शुद्धात्मा को प्राप्त करते हैं। उस आत्मा को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। सम्यग्दर्शन में शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है। समझ में आया? कहो,

इसमें कुछ भाषा ऐसी सूक्ष्म नहीं। मनुभाई! लो, समझ में आया? ऐई! भाषा में ऐसा कुछ नहीं कि बहुत कठिन व्याकरण और शास्त्र सब जाना हो, उसे यह आवे। ऐसा कुछ नहीं।

भगवान आत्मा... समझ में आया? अपने ऐसे अस्तित्व आदि गुण सामान्य हैं न। सवेरे यह विचार उठा था पहला। सामान्य आदि हैं, वे कितने रहे? छह क्यों भगवान आचार्य ने क्यों कहे? कि बहुत कहे हैं... बहुत कहे हैं। मुख्यरूप से कहे। बाकी तो एक-एक द्रव्य में षट्कारक प्रत्येक द्रव्य में स्वतन्त्र है। षट्कारक—कर्ता, कर्म, करण (सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण) षट्कारक भी सामान्य गुण है। प्रत्येक आत्मा में, प्रत्येक रजकण में, प्रत्येक कालाणु में, प्रत्येक (में) धर्मास्ति में (अधर्मास्ति में और आकाश में)। समझ में आया? ऐसे-ऐसे सामान्य गुण बहुत हैं। विशेष गुण...

मुमुक्षु : भाव, अभाव भी सबमें....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव-अभाव छहों कहे। भाव, अभाव, अकार्यकारणपना अन्दर आ जाता है। बहुत आ जाते हैं। सवेरे ४७ से विचार किया था। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा में, उसमें है और दूसरे में नहीं, ऐसे भी विशेष गुण हैं और इसमें भी है और दूसरों में भी है, ऐसे भी सामान्य गुण हैं। तथापि उन सब गुणों को भेदरूप न देखकर अभेदरूप से अन्तर दृष्टि देना, उसे निश्चय कहते हैं। पर्याय को, गुणभेद को, विकार को गौण कराकर लक्ष्य छुड़ाने के लिये उसे असत्य अर्थात् व्यवहार कहते हैं। ऐसे जिनवचन में रमे, वह शुद्ध आत्मा को यथार्थ प्राप्त करता है। महासिद्धान्त चौदह ब्रह्माण्ड में। चौदह पूर्व और चौदह ब्रह्माण्ड का यह सार है। चौदह पूर्व अर्थात् चौदह ब्रह्माण्ड-चौदह राजूलोक। क्षेत्र और भाव। यह वस्तु। समझ में आया?

इस शुद्ध आत्मा को यथार्थ प्राप्त कर लेते हैं;... बाकी सब बातें करे कि हमको अनुभव हुआ और उन अन्यमति में बहुत कहते हैं। बहुत अनुभव है हमको। निरंजन का अनुभव। वे सब थोथा। कोई सातावेदनीय के आनन्द का जरा सा रस आ जाये न, उसे अनुभव मान ले। समझ में आया? वह वस्तु ऐसी जिसे अन्तर दृष्टि में ली, वह इस

प्रकार से यथार्थ आत्मा को प्राप्त करता है। **अन्य सर्वथा—एकान्ती...** अन्य पदार्थ नहीं, ऐसा माननेवाले, पर्याय नहीं—ऐसा माननेवाले अथवा द्रव्य नहीं और पर्याय है—ऐसा माननेवाले, अथवा एक ही द्रव्य है और अनन्त गुण नहीं — ऐसा माननेवाले। समझ में आया? अथवा द्रव्य को अत्यन्त शुद्ध और पर्याय में अशुद्धता नहीं माननेवाले। समझ में आया? ऐसे अन्य सर्वथा एकान्ती।

मुमुक्षु : शुद्ध द्रव्य और ... को माननेवाले?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी एकान्ती है। पर्याय अशुद्ध और द्रव्य भी अशुद्ध, वे एकान्ती हैं। क्योंकि पर्याय अशुद्ध है, उस काल में द्रव्य शुद्ध है। शुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय शुद्ध है उस काल में। आहाहा! क्या हो? भाई! तुझे गुरुगम मिला नहीं ... यह गुरुगम बिना चले ऐसा नहीं। अथवा चाहिए पूर्व के गुरुगम का संस्कार और या चाहिए इस भव के गुरु के संस्कार। इसके बिना जैनदर्शन समझ में आये ऐसा नहीं है। समझ में आया? पर्याय अशुद्ध और द्रव्य-गुण शुद्ध, वह वस्तु का स्वरूप है। पर्याय अशुद्ध इसलिए द्रव्य-गुण अशुद्ध, एकान्त है। एकदम एकान्त है।

मुमुक्षु : सम्यक् एकान्त?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्या एकान्त है। पण्डितजी! प्रश्न करते हैं। ठीक! यह सम्यक् एकान्त है। जिस प्रकार से वस्तु है, उस प्रकार से शुद्ध को मुख्य करके निश्चय कहा, यह सम्यक् एकान्त है। लक्ष्य में रखा है कि गुण-पर्याय है, व्यवहार करके असत् कहकर इसे सम्यक् एकान्त कहा है। परन्तु पर्याय में अशुद्धता और द्रव्य-गुण भी अशुद्ध है, (ऐसा मानना वह) अत्यन्त मिथ्या एकान्त है। उसे ऐसे आत्मा की प्राप्ति तीन काल-तीन लोक में कहीं नहीं होती। समझ में आया?

एकान्त सांख्यादिक... सांख्यादि में जैन के माननेवाले भी अन्यमति हैं सब। पाँचवें अध्याय में नहीं कहा? भाई ने—टोडरमलजी ने। श्वेताम्बर आदि को अन्यमत में डाला है। जैन में डाला नहीं। और सातवें अध्याय में दिगम्बर में जन्मे हुए या नये आकर गड़बड़ उड़ाते हों, उन्हें डाला है। सातवें अध्याय में। सबकी जाँच की। एक व्यक्ति कहता था, साधु वल्लविजय (कहता था) कि टोडरमलजी ने तो सबकी हजामत कर

डाली है। वे वल्लभजी हैं न? उन्हें जँचे नहीं न! उन्हें बाहर की श्रद्धा, बाहर की दृष्टि। यह वस्तु सर्वज्ञ से सिद्ध हुई अन्तर की वस्तु है। पण्डित टोडरमलजी ने तो सबकी हजामत कर डाली है। सबको मूँड डाला है कि तुम खोटे... तुम खोटे। धन्नालालजी! बापू! टोडरमलजी ने घर का नहीं कहा। भाई! भगवान के कहे हुए शास्त्रों में जो कोई सामान्य बात हो, साधारण जन उसमें से रहस्य को खींच न सके, उसका उद्घाटन किया है। भाई! इसमें ऐसा कहना चाहते हैं, इसमें ऐसा कहना चाहते हैं। ऐसे उन्होंने उद्घाटन किया है। समझ में आया? उन्हें भी अभी झूठा-अप्रमाणिक ठहराना चाहते हैं, लो!

कहते हैं, **सर्वथा एकान्ती...** अर्थात् पर्याय को अशुद्ध। अपने अभी लो, मौके से जैन गजट में आया है। पर्याय अशुद्ध तो द्रव्य-गुण भी अशुद्ध। भगवान! पर्याय अशुद्ध तो द्रव्य-गुण अशुद्ध तो उपचार से व्यवहार से पर्यायनय से कहे जाते हैं। वस्तुदृष्टि से गुण और द्रव्य शुद्ध त्रिकाल सच्चिदानन्द प्रभु त्रिकाल शुद्ध है। जब शुद्ध है तो शुद्ध द्रव्यार्थिक को मुख्य करके निश्चय कहा जाता है। है तो कहने में आता है। एक है, ऐसा कहा यहाँ तो। भाई! लो! आहाहा! आत्मा शुद्ध शुद्ध एक सत्य है, ऐसा कहा। यहाँ तो यह कहा है। समझ में आया? सत्य ही यह है। तू कहता हो कि अशुद्ध पर्याय है और उस समय द्रव्य-गुण अशुद्ध है (- ऐसा नहीं)। सत्य ही यह है। त्रिकाल वस्तु शुद्ध, वही द्रव्य और वही सत्य है। पर्याय-बर्याय इस द्रव्य की मुख्यता की अपेक्षा से गौण करके व्यवहार कहकर निकाल डालकर असत्य कहा है। आहाहा! अरे! पर्याय को अशुद्ध कहे ऐसे द्रव्य-गुण को अशुद्ध में डाले (तो) सब अशुद्ध अर्थात् झूठा है, ऐसा माननेवाले हैं। ऐसा यहाँ कहते हैं। ऐई! सेठी!

एकान्तवादी सांख्यादिक उसे (आत्मा को) प्राप्त नहीं कर पाते,... अपने तो यह अधिक वजन यह है। यह तो अन्दर आया है। शुद्ध-अशुद्धरूप जिस प्रकार से विद्यमान वस्तु, ऐसा कहा था न अन्दर। भेद-अभेद, शुद्ध-अशुद्ध। पर्याय वह अशुद्ध; वस्तु, वह शुद्ध, त्रिकाल शुद्ध। अभव्य का आत्मा त्रिकाल शुद्ध। स्वभाव-स्वभाव है। कहा न? इसकी चर्चा हमारे चली थी (संवत्) १९८५ में। मोहनलालजी के साथ। दो बोल लिये

थे कि २८ प्रकृति जो है। यह २८ प्रकृति है न मोह की ? पण्डितजी ! अभव्य को २६ होती है अनादि की। और जिस भव्य को मोक्ष नहीं जाना, उसे २७ अनादि की और जिसे मोक्ष जाना है, उसे अनादि की २८ होती है। क्या कहते हो यह तुम ? तब तुम ऐसा कहते हो तो मैं तुमको पूछता हूँ कि अभव्य को कितने वर्ण होते हैं ? कहे, तीन। क्या कहते हो तुम ? ८५ में दीक्षा हुई न, तब सुन्दरवडा के उपाश्रय में थे। तुम क्या कहना चाहते हो यह ? अनादि जिसे—भव्य को मोक्ष जाना है, उसे अनादि की २८ प्रकृति है ? यह ठाणांग में आता है। समवाय में। परन्तु वहाँ तो दूसरी बात कहते हैं। वहाँ तो सत् कहना चाहते हैं कि कि जिसने तीन टुकड़े कर डाले हैं, उसे किसी को २८ और कोई किसी को २७ होते हैं। ऐसी बात है वहाँ। वहाँ अनादि के... मोक्ष जाये उसे २८, मोक्ष न जाये उसे २७ और दूसरे जीव अभव्य को २६। तब कहा, अभव्य को कितनी प्रकृति ज्ञानावरणीय ? कहे, तीन। मन:पर्यय, केवलज्ञानावरणी नहीं ? कहे नहीं। क्योंकि उसे प्रगट होने का नहीं है। प्रगट होने का नहीं है इसलिए नहीं—ऐसा किसने कहा ? (हमने उनसे ऐसा) कहा। आहाहा !

एकान्तस्वरूप त्रिकाल शुद्ध। अभव्य का जीव भी केवलज्ञान का कन्द है। तब आवरण किसका है ? आवरण निमित्तरूप से है न। अन्दर शक्ति केवलज्ञान की है। स्वभाव केवलज्ञान अभव्य का है। सर्व जीव एकसरीखे द्रव्य से हैं। पर्याय में अन्तर है। समझ में आया ? आहाहा ! ८५ में ऊँची चर्चा चली थी। मणिलालजी जरा कहे, चलो सुनने। गुप्तरूप से सुनने गये। भाई, सुनो तो सही अब। कहो, ऐसे तुम दिये रखते हो आड़ी-टेढ़ी बात। यह तो ३७ वर्ष हुए। ऐसा नहीं चलता, कहा। अभव्य को पाँचों ही आवरण हैं। केवलज्ञान का स्वभाव पड़ा है अन्दर। समझ में आया ? उघड़ता नहीं, इसलिए केवलज्ञान नहीं, ऐसा किसने कहा ?

यहाँ कहते हैं **सर्वथा-एकान्ती...** जो शुद्ध में अन्दर में त्रिकाल शुद्धता परिपूर्णता न माने और पर्याय में अशुद्ध अर्थात् सब अशुद्ध माने, ऐसे एकान्ती को आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। कहो, सेठी !

मुमुक्षु : हो गयी हो तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हुई हो नहीं तीन काल में। मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व हुआ हो। समझ में आया इसमें?

क्योंकि वस्तु सर्वथा एकान्त पक्ष का विषय नहीं है... वस्तु ऐसी नहीं, वस्तु ऐसी नहीं। अत्यन्त अशुद्ध माने पर्याय में और त्रिकाल को अशुद्ध माने, वह वस्तु नहीं। एक ही गुणवाली माने, वह वस्तु नहीं। अकेला ध्रुव माने और पर्याय न माने, वह वस्तु ही नहीं। अकेला अभेद माने और भेद न माने, वह वस्तु ऐसी नहीं। समझ में आया? एकान्त नित्य ही माने और पर्याय अनित्य न माने, वह वस्तु नहीं। एकान्त अनित्य माने और नित्य न माने, वह वस्तु ऐसी नहीं। ऐसा कहते हैं यहाँ। आहाहा! शान्ति से, धीरे से (समझना), बापू! इसमें मुश्किल से अवसर आया। मनुष्यपने का, भाई! यह वापस जायेगा (तो) हाथ नहीं आयेगा, हों! इस दुनिया के कारण तुझे कुछ कोई आड़ नहीं, शरण देगा कोई। हमने इतनों को समझाया था और इतने मेरे पक्ष में है। पक्ष वहाँ कहाँ अन्दर घुस जाये, ऐसा है। मैंने इतनों को रखा था, वाड़ा रखा था। रखा। पोपटभाई!

क्योंकि वस्तु... स्वयं **सर्वथा एकान्त पक्ष का विषय नहीं...** वह वस्तु ज्ञान में एकान्त पक्ष में आवे, ऐसी चीज़ ही नहीं। चीज़ ही अनेकान्त वस्तु अशुद्ध-शुद्ध, एक-अनेक, भेद-अभेद, नित्य-अनित्य—ऐसी वस्तु स्वयं है। समझ में आया? **तथापि वे एक ही धर्म को ग्रहण करके वस्तु की असत्य कल्पना करते हैं-** अशुद्धता देखकर सब अशुद्ध ही है, ऐसा मानता है। एकपना देखकर अनेकपना नहीं, ऐसा मानता है। अनेकपना देखकर एकपना नहीं ही, ऐसा मानता है, अभेद देखकर भेद नहीं ही, ऐसा मानता है। भेद देखकर अभेद नहीं, ऐसा मानता है। **एक ही धर्म को ग्रहण करके वस्तु की असत्य कल्पना करते हैं-जो असत्यार्थ है, बाधासहित मिथ्यादृष्टि है।** कितना सरस कहा है, लो! यह तो गाथा में है, उसके भाव को प्रचलित भाषा में, चलती भाषा में कहा है। उनके घर का कुछ है नहीं। समझ में आया? वे निकालकर कहे, नहीं। यह आर्ष वाक्य नहीं। परन्तु भाई! तू कहे वह आर्ष? और तू अर्थ करे शास्त्र के, वे आर्ष? यह कहा न। तू अर्थ करे वह आर्ष? धन्नालालजी! है न। आहाहा! कहो, समझ में आया?

★ ★ ★

कलश - ५

इस प्रकार इन बारह गाथाओं में पीठिका (भूमिका) है।

अब आचार्य शुद्धनय को प्रधान करके निश्चय सम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं। अशुद्धनय की (व्यवहारनय की) प्रधानता में जीवादि तत्त्वों के श्रद्धान को सम्यक्त्व कहा है, जबकि यहाँ उन जीवादि तत्त्वों की शुद्धनय के द्वारा जानने से सम्यक्त्व होता है, यह कहते हैं। टीकाकार इसकी सूचनारूप तीन श्लोक कहते हैं, उनमें से प्रथम श्लोक में यह कहते हैं कि व्यवहारनय को कथञ्चित् प्रयोजनवान कहा, तथापि वह कुछ वस्तुभूत नहीं है:-

(मालिनी)

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहितपदानां हन्त हस्तावलम्बः।
तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं,
परविरहितमन्तः पश्यतां नैष किञ्चित्॥5॥

श्लोकार्थ : [व्यवहरण-नयः] जो व्यवहारनय है, वह [यद्यपि] यद्यपि [इह प्राक्-पदवयां] इस पहली पदवी में (जब तक शुद्धस्वरूप की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक) [निहित-पदानां] जिन्होंने अपना पैर रखा है, ऐसे पुरुषों को [हन्त] अरे रे! [हस्तावलंबः स्यात्] हस्तावलम्बन तुल्य कहा है, [तद्-अपि] तथापि [चित्-चमत्कार-मात्रं पर-विरहितं परमं अर्थं अन्तः पश्यतां] जो पुरुष चैतन्य-चमत्कारमात्र, परद्रव्यभावों से रहित (शुद्धनय के विषयभूत) परम 'अर्थ' को अन्तरङ्ग में अवलोकन करते हैं, उसकी श्रद्धा करते हैं तथा उसरूप लीन होकर चारित्रभाव को प्राप्त होते हैं, उन्हें [एषः] यह व्यवहारनय [किञ्चित् न] कुछ भी प्रयोजनवान नहीं है।

भावार्थ : शुद्धस्वरूप का ज्ञान, श्रद्धान तथा आचरण होने के बाद अशुद्धनय कुछ भी प्रयोजनकारी नहीं है।।5।।

कलश - ५ पर प्रवचन

इस प्रकार इन बारह गाथाओं में पीठिका (भूमिका) है। जयसेनाचार्य ने कहा कि बारह गाथा पीठिका है। उसमें सब सामान्यरूप से पूरा समयसार का रहस्य आ जाता है। **अब आचार्य शुद्धनय को प्रधान करके निश्चय सम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं।** यह तो निश्चय के प्रधान से समकित होता है तो यहाँ कहते हैं कि अब समकित का स्वरूप क्या है, वह बताते हैं। कैसे हुआ समकित? कब भूतार्थ और किस प्रकार से? यह यहाँ से बात ली है।

आचार्य शुद्धनय को... मुख्य करके, हों! **प्रधान करके निश्चय सम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं।** उसके आश्रय से निश्चय होता है, इसलिए निश्चय समकित अर्थात् सच्चा समकित, सच्चा समकित। निश्चय अर्थात् सच्चा समकित, व्यवहार अर्थात् खोटा समकित। निश्चय कहा सच्चा और व्यवहार कहा खोटा। नहीं कहा? वह कहता है कि व्यवहार समकित सच्चा। चौथे, पाँचवें, छठवें में व्यवहार समकित ही होता है। सातवें से तेरहवें में निश्चय होता है। अरे भगवान! क्या किया तूने यह? कुकर्म कर डाले। प्रभु! यह जैनमार्ग के लूटेरे जगे। आहाहा! अरे प्रभु! तेरी बात कौन... समझ में आया? आत्मा को नुकसान करेगा, प्रभु! इस दुनिया में बेचारों को खबर नहीं होती। सुननेवालों को खबर नहीं होती और ऐसी कुछ सुहाती बात आवे (तो कहे), हाँ, गजब बात की... गजब बात की। ऐई! केसरीचन्दजी! आहाहा! दस बोघा, दस बोघली, दस बोघा के बच्चा। वह मारे गप्पा, वह कहे सच्चा। दस बोघला बैठे समझने। बोघला अर्थात् (जिन्हें कुछ) भान नहीं होता, ऐसे दस आदमी बैठे। दस बोघा, दस बोघली। भान बिना की स्त्रियाँ बैठी हों बोघली अर्थात्। दस बोघा के बच्चे। लड़के दस बोघला जैसे बैठे हों। भानरहित। ऊपर मारे गप्पा। वह कहे सच्चा। ऐई! धन्नालालजी! हमारे काठियावाड़ में यह काठियावाड़ की ऐसी कहावत है, काठियावाड़ में। तुम्हारी होगी सही वहाँ। हिन्दुस्तान में ऐसा कोई शब्द होगा।

मुमुक्षु : शब्द फेर से....

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्दफेर से होगा। शब्दफेर से सर्वत्र होता है। सर्वत्र चूल्हे में राख ही होती है।

कहते हैं **(व्यवहारनय की) प्रधानता में जीवादि तत्त्वों के श्रद्धान को सम्यक्त्व कहा है, जबकि यहाँ उन जीवादि तत्त्वों की शुद्धनय के द्वारा जानने से सम्यक्त्व होता है, यह कहते हैं।** व्यवहार से कहा, वह सच्चा नहीं। ऐसा कहा।

अब इसका विस्तार करते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल २, शुक्रवार, दिनांक - १६-०९-१९६६
श्लोक - ५, प्रवचन - ४९

बारह गाथा पीठिका हुई। अब १३वीं गाथा की यह सब भूमिका—उपोद्घात चलता है। अब क्या कहते हैं, देखो! **अब आचार्य...** वहाँ आया है न? चन्दुभाई! कहाँ आया है? नहीं तुम्हारे पुस्तक? पुस्तक दो, ऐई! हैं पुस्तकें बहुत, पुस्तक है या नहीं?

अब आचार्य शुद्धनय को प्रधान करके... अर्थात् क्या? कि यह आत्मा एक स्वरूप शुद्ध चैतन्य प्राप्ति हो, उसे यह शुद्धनय से प्रधान करके कथन किया जाता है। वस्तु ज्ञायकस्वरूप एक स्वरूप आत्मा है। उसे शुद्धनय से प्रधान करके, उसे मुख्य करके, व्यवहार गौण होता है अन्दर **निश्चय सम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं।** शुद्ध चैतन्य एक समय में पूर्ण शुद्ध आनन्द, उसकी दृष्टि करना, इसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन, सच्चा सम्यग्दर्शन, वास्तविक यथार्थ सम्यग्दर्शन कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

अशुद्धनय की (व्यवहारनय की) प्रधानता में... अर्थात् कि जीवादि के भेद की श्रद्धा में। जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव-संवर-निर्जरा, बन्ध और मोक्ष—ऐसे नौ के भेद की श्रद्धा में। क्योंकि १३वीं गाथा में नौ आते हैं न? भाई! इसलिए यहाँ जरा लेते हैं। नौ आते हैं न? अर्थात् कि व्यवहारनय से; अशुद्धनय कहो या व्यवहारनय कहो। देखो! कोष्ठक में लिखा है। आत्मा को नव तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा, वह अशुद्धनय से व्यवहारनय की प्रधानता में **जीवादि तत्त्वों के श्रद्धान को सम्यक्त्व कहा है, जबकि यहाँ उन जीवादि तत्त्वों की शुद्धनय के द्वारा जानने से सम्यक्त्व होता है,...** क्योंकि नौ तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा में वास्तविक सम्यग्दर्शन नहीं आता। व्यभिचार आता है। यह कहेंगे अन्दर। आगे कहेंगे। समझ में आया?

नौ तत्त्व की, नौ—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष—ऐसे नौ के भेद की श्रद्धा, उसे सम्यग्दर्शन अशुद्धनय की अर्थात् कि पर्यायनय से

अर्थात् कि व्यवहारनय से उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। परन्तु वह कहीं सच्चा सम्यग्दर्शन का स्वरूप नहीं। समझ में आया? नौ तत्त्व का भेदरूप अनुभव मिथ्यात्व है। उसे यहाँ समकित कहते हैं, भाई! सुनना! भगवान आत्मा ज्ञायक चैतन्यज्योति एकरूप, ऐसा अन्तर में अनुभव होना, वह शुद्धनय का विषय, उसका नाम सम्यग्दर्शन, वह यथार्थ है। क्योंकि जैसा स्वरूप है, वैसा वह अनुभव में, प्रतीति में लेता है। परन्तु नौ तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा, उसे व्यवहारनय समकित कहता है। अशुद्धनय की प्रधानता से। परन्तु वास्तव में अकेला नौ तत्त्व का भेदवाला अनुभव, उसे मिथ्यात्व कहते हैं। यहाँ तो भाई! जो मिथ्यात्व है, उसे समकित कहते हैं, ऐसा यहाँ कहना है जरा। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अनादि का .... माने व्यवहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। नौ तत्त्व जीव, अजीव भेदवाली श्रद्धा, वह तो परसन्मुख की स्वज्ञायक सन्मुख से विपरीतता की भेदवाली श्रद्धा परसन्मुख की अशुद्धनय से, व्यवहारनय से कहते हैं, वह व्यवहार समकित है। वह वास्तविक समकित नहीं। वह नहीं। वह वास्तविक समकित नहीं। यह बड़ी गड़बड़ अभी इसकी बहुत है। समझ में आया?

वास्तविक ज्ञायक चैतन्यमूर्ति एक स्वरूप अनन्त-अनन्त स्वभाव का पिण्ड, एकरूप के सन्मुख होकर, उसके सन्मुख का अनुभव करना। पश्चात् तो परसन्मुख से हटना, वह तो एक अपेक्षा से कथन है। समझ में आया? वास्तव में तो स्वभाव-सन्मुख अकेला ज्ञायकभाव चैतन्यमूर्ति, राग की अपेक्षारहित, निमित्त की अपेक्षारहित निरपेक्ष भाव, जिसे राग की अपेक्षा पूर्व में थी, इसलिए यह है, ऐसा यह नहीं। समझ में आया? यह राग और भेद, नौ तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा की भी जिसे अपेक्षा नहीं। समझ में आया? कोई कहे कि कषाय की मन्दता पहले हो, उसे आत्मा के अनुभव में सरल पड़ता है। समझ में आया? अमरचन्दभाई! ऐसा है ही नहीं। वस्तुस्थिति में ऐसा नहीं। राग, विकल्प वह परसन्मुख की दिशा का भाव है। नौ तत्त्व की श्रद्धा के भेदवाली श्रद्धा भी स्वसन्मुख की विपरीतता की श्रद्धा का भाव है। वास्तव में भगवान ज्ञायक चैतन्यज्योति

एक स्वरूप है, उससे विपरीत का, परसन्मुख की नौ तत्त्व की श्रद्धा... इसलिए कहेंगे कलश में, नौ तत्त्व की संतति छोड़कर। क्योंकि मूल नौ तो है सही न, पाठ में आनेवाला है, वह सब सन्धि करके कहते हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्धस्वभाव, शुद्धनय की कथनी में अकेला चैतन्य भगवान का अन्तर अनुभव करके प्रतीति करना, वह वास्तविक सम्यग्दर्शन और वास्तविक तत्त्व उसे कहा जाता है। परन्तु अशुद्धनय, व्यवहारनय इन नौ तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा के अनुभव को समकित कहता है। परन्तु वह समकित है नहीं। इसलिए व्यवहार कहा। वास्तव में तो वह मिथ्यात्व है। नौ तत्त्व की एकान्त (श्रद्धा), हों! स्वभाव की श्रद्धासहित नौ तत्त्व के भेदवाला ज्ञान हो तो वह व्यवहार श्रद्धा कही जाती है। ज्ञान की पर्याय के विकास और शुभराग की अपेक्षा से। समझ में आया? श्रद्धा की अपेक्षा से नहीं। समझ में आया? जरा धीरे से समझने जैसी बात है, हों! यह।

मुमुक्षु : १३ वीं आगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : १३वीं तो आवे तब सही। परन्तु यह शुरुआत है या नहीं?

मुमुक्षु : यह १३वीं का ही उपोद्घात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपोद्घात है। लो, ठीक! रामजीभाई तुम्हारा १३ का भी थोड़ा रखते हैं। यह तो आवे तब आवे न। इन्हें वापस जाना है रविवार को तो। कहो, समझ में आया इसमें?

भगवान आत्मा... कहा न? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य (ने कहा न) **शुद्धनय को प्रधान करके निश्चय सम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं।** भगवान ज्ञायक प्रभु एकरूप अभेदरूप, उसका अनुभव, राग और नौ तत्त्व की श्रद्धा के भेद की अपेक्षा बिना का। समझ में आया? एकदम निरपेक्ष सम्यग्दर्शन स्वभाव की अपेक्षा की दृष्टि, पर की अपेक्षा बिल्कुल नहीं। ऐसा भगवान आत्मा का स्वरूप, उसे अनुसरकर, स्वसन्मुख होकर, पर की अपेक्षा छोड़कर भगवान कारणपरमात्मा को लक्ष्य में—अपेक्षा में लेकर जो अनुभव दर्शन का हो, उसे सच्चा सम्यग्दर्शन कहते हैं। निश्चय कहो या सच्चा कहो।

अशुद्धनय की (व्यवहारनय की) कथनी में प्रधानता में जीवादि तत्त्वों के श्रद्धान को सम्यक्त्व कहा है,... यह वास्तविक समकित नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह कहीं वास्तविक समकित नहीं। क्योंकि सम्यग्दर्शन की पर्याय तो श्रद्धा स्वरूप स्वसन्मुख होकर हो, वह है। नौ तत्त्व की श्रद्धा का भाग तो ज्ञान की पर्याय के क्षयोपशम का उघाड़ है। उसमें यह है, ऐसा मानता है, वह व्यवहार है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह कहीं श्रद्धा का स्वरूप नहीं। देव-गुरु शास्त्र की श्रद्धा, वह ज्ञान के क्षयोपशम की पर्याय है और उसमें वह शुभराग का विकल्प है; इसलिए वास्तव में वह कहीं सम्यग्दर्शन का स्वरूप नहीं।

मुमुक्षु : श्रद्धागुण की पर्याय ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धागुण ही नहीं। वह चीज़ ही अलग है। इसलिए निश्चय और व्यवहार को पृथक् करते हैं। अमरचन्दभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : सब कठिन पड़े ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन-बठिन कुछ नहीं। यहाँ तो अपने सरल कर देते हैं गूँथ-गूँथ कर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चलता है न। कहीं अभी पूरा नहीं हुआ। यह पूरा हुआ नहीं कहीं अभी। ... क्या कहा, समझ में आया?

नौ तत्त्व की प्रधानता की श्रद्धा में भेद रहा है। इसलिए वास्तव में तो उस प्रकार के ज्ञान का उघाड़ और शुभराग, उसे यहाँ नौ तत्त्व की श्रद्धावाले को समकित कहा गया है। समझ में आया? व्यवहार समकित, वह कोई श्रद्धा की पर्याय नहीं। सम्यग्दर्शन जो श्रद्धागुण त्रिकाल आत्मा में है, उसकी जो समकित पर्याय, वह तो स्वसन्मुख की प्रतीति हो, वह श्रद्धागुण की पर्याय है। परन्तु परसन्मुख में नौ तत्त्व की श्रद्धा, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, यह पंच महाव्रत ऐसे होते हैं, ऐसी श्रद्धा या ग्यारह अंग का ज्ञान, उसकी श्रद्धा, वह श्रद्धा समकितगुण की पर्याय नहीं है। समझ में आया? मगनभाई! वह तो ज्ञान के क्षयोपशम में परलक्ष्यी ऐसा एक क्षयोपशम हुआ, उसमें ऐसे देवे, ऐसे गुरु, ऐसे

शास्त्र, नौ तत्त्व ऐसे भेदवाले ऐसा ख्याल उसे आया। और उसके साथ शुभराग है। उसे व्यवहार कहते हैं कि वह व्यवहार समकित है। परन्तु वह व्यवहार समकित का स्वरूप ही सम्यग्दर्शन की पर्याय वह नहीं। समझ में आया? यह बड़ा विवाद अभी वे लेते हैं न। व्यवहार समकित वह पहले होता है, बाद में निश्चय आठवें में होता है, तेरहवें में होता है। अरे! भगवान! तू क्या कहता है, प्रभु!

श्रद्धा नाम का आत्मा में अनादि-अनन्त गुण है। जैसे आनन्दगुण है, ज्ञानगुण है, प्रभुतागुण है, ऐसे श्रद्धा नाम का अनादि-अनन्त गुण है। उस गुण की पर्याय हो, उसे सम्यग्दर्शन की पर्याय कहा जाता है। उस गुण की पर्याय कैसे हो? कि यह श्रद्धा धारक आत्मा, श्रद्धा पूरी चीज़, उस चीज़ की अन्तरदृष्टि करने से निर्विकल्प प्रतीति राग और नौ तत्त्व के भेद की अपेक्षा बिना अकेली भगवान ज्ञायक स्वभाव की अपेक्षा की दृष्टि में लेकर जो सम्यग्दर्शन पर्याय होती है, वह श्रद्धा नाम के गुण की सुल्टी पर्याय है। इसलिए उसे सच्चा सम्यग्दर्शन कहा जाता है। भाई! हमारे मगनभाई किसी दिन आवे। ये बीमार बहुत रहते हैं इसलिए फिर। शरीर (की) अवस्था है, क्या हो? शरीर काम करे। कहो, समझ में आया इसमें? ऐई! नवरंगभाई! सहारा लेकर बैठे। देखो! इसमें समझ में आया या नहीं?

भगवान आत्मा में एक समकित नाम का त्रिकाल गुण है —श्रद्धा नाम का। उस गुण की पर्याय प्रगट हो, उसे सम्यक् निश्चय कहते हैं। सच्चा समकित। क्यों? कि स्वसन्मुख होने से पर की अपेक्षा छोड़कर, नौ तत्त्व के भेद की (अपेक्षा छोड़कर)... स्वयं कहेंगे नौ तत्त्व की सन्तति छोड़कर हमको अकेला आत्मा प्राप्त होओ। ऐसा कहेंगे दूसरे श्लोक में। छठवें श्लोक में कहेंगे। अपने तो यह पाँचवाँ चलता है। अर्थात् कि व्यवहार से कहते हैं कि यह समकित। परन्तु वह व्यवहार, समकित का स्वरूप ही नहीं। व्यवहार समकित, वह समकित का स्वरूप ही नहीं। क्योंकि पराश्रित व्यवहार। पराश्रित व्यवहार में सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट होती ही नहीं। समझ में आया? चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा हो, चाहे तो पंच महाव्रत ऐसे हों, उनकी श्रद्धा हो, केवली ऐसे होते हैं, ऐसी परलक्ष्यी श्रद्धा हो। परन्तु वह सब ज्ञान के क्षयोपशम की परलक्ष्यी

क्षयोपशम हुआ राग की मन्दता से और राग मन्द है, उसे वह समकित कहा जाता है। परन्तु वास्तव में वह समकित की पर्याय नहीं। जरा भी नजदीक नहीं। लो, कहो। ऐइ! पण्डितजी! पंचाध्यायी में आता है न? रुचि, श्रद्धा, प्रतीति, वह ज्ञान की पर्याय ली है। वह ज्ञान की पर्याय ली है। और स्पर्शना वह शुभराग लिया है व्यवहार चार। पंचाध्यायीकार ने तो बहुत तत्त्व को संक्षिप्त में तर्क से सिद्ध किया है। वास्तविक समयसार को ही, हों! उनके घर की एक भी बात नहीं है। समझ में आया?

इसीलिए कहते हैं कि **यहाँ उन जीवादि तत्त्वों की शुद्धनय के द्वारा जानने से सम्यक्त्व होता है,...** अर्थात् कि ऐसे नौ भेद को नहीं। अभेद ज्ञायकस्वभाव को जानने से। **यह कहते हैं। टीकाकार इसकी सूचनारूप तीन श्लोक कहते हैं,...** देखो! इसके तीन श्लोक कहते हैं। १३वीं गाथा के उपोद्घात में तीन। **उनमें से प्रथम श्लोक में यह कहते हैं कि व्यवहारनय को कथञ्चित् प्रयोजनवान कहा...** कहा था न बारहवीं में? **तथापि वह कुछ वस्तुभूत नहीं है** - व्यवहार कुछ लाभदायक नहीं। व्यवहार लाभदायक नहीं। वस्तुभूत अर्थात्? विषय भले हो, परन्तु वह लाभदायक कुछ नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वस्तुभूत अर्थात् निश्चय वस्तु है, वह नहीं। परन्तु इसका अर्थ ही यह है कि लाभदायक कुछ है नहीं। अमरचन्दभाई! श्लोक बोलो।

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहितपदानां हन्त हस्तावलम्बः।
तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं,
परविरहितमन्तः पश्यतां नैष किञ्चित्॥५॥

श्लोकार्थ :- जो व्यवहारनय है, वह यद्यपि इस पहली पदवी में (जब तक शुद्धस्वरूप की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक)... अर्थात् कि पूर्ण शुद्ध चैतन्य की १२वीं गाथा के हिसाब से, भाई! अपने ११-१२ की सन्धि और पंचास्तिकाय की अमृतचन्द्राचार्य की टीका। उनका बनाया हुआ कलश है। १७२ गाथा में प्राथमिक अवस्था अर्थात् जो लिया है। भाई! वहाँ लिया है न? १७२ में। वह प्राथमिक अवस्था वहाँ सम्यग्दर्शन और ज्ञान की ली है। पूर्ण स्थिरता नहीं हुई, इसलिए उसे प्राथमिक अवस्था ली है। समझ में

आया? अमृतचन्द्राचार्य पंचास्तिकाय में मूल पाठ ही शब्द है। '**प्राथमिक अवस्थायां**' समझ में आया? उसका ही यह शब्द प्राथमिक शब्द पड़ा है। उनका ही कलश है। एक न्याय से ११-१२ की सन्धि की अपेक्षा से भी सम्यग्दर्शन तो पहले निरपेक्ष रागादि के व्यवहार की अपेक्षा छोड़कर हुआ है। परन्तु स्वरूप की स्थिरता की प्राप्ति अभी पूरी हुई नहीं।

मुमुक्षु : मुनि को ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी नहीं हुई। अन्दर समाधि शान्त... वहाँ तक उसे निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने पर भी व्यवहार के भेदों के विकल्प उसे आये बिना रहते नहीं। वहाँ ऐसा लिया है न, भाई! नहीं? प्राथमिक अवस्था, बाद में ऐसा लिया है। वह श्रद्धायोग्य है, यह श्रद्धायोग्य नहीं। यह बाद में लिया है। इस बोल में लिया है। श्रद्धायोग्य है, यह श्रद्धा करनेवाला है, यह श्रद्धा है, ऐसे चार-चार बोल हैं। श्रद्धा में, ज्ञान में, वर्तन में चार-चार बोल लिये हैं। वह भी प्राथमिक अवस्था अर्थात् सम्यग्दर्शन होने के बाद की बात। प्राथमिक उसे लिया है। समझ में आया? ११-१२ की सन्धि की अपेक्षा से भी यह शैली है। एकदम निरपेक्ष पहले आत्मा का शुद्धनय के आश्रय से अर्थात् स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ, १२वीं में कहा, परन्तु जब तक पूर्ण स्थिरता को प्राप्त है नहीं, तब तक व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। अर्थात् कि सम्यग्दृष्टि को शुद्ध चैतन्य के अनुभव में निश्चय समकिती को भी पूर्ण स्वरूप की प्राप्ति नहीं, तब तक उसे नौ तत्त्वों के बोलों के विकल्प, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा अथवा एक-एक श्रद्धा के चार-चार बोल। यह श्रद्धा है, यह श्रद्धा योग्य है, यह श्रद्धा योग्य नहीं। समझ में आया? इत्यादि ऐसे विकल्प आते हैं, उसे व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया?

(जब तक शुद्धस्वरूप की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक) जिन्होंने अपना पैर रखा है... पैर रखा है। शुद्धस्वरूप में दृष्टि है, परन्तु अभी स्थिरता नहीं, इसलिए अन्दर अस्थिरता में शुद्ध में निर्विकल्प समाधि में नहीं। तब उसे पहली पदवी में **ऐसे पुरुषों को अरे रे!** सिद्ध करते हैं आचार्य। **हस्तावलम्बन तुल्य कहा है,...** निमित्तरूप से ऐसे

व्यवहार के विकल्प पूर्ण शुद्धस्वरूप न हो, तब तक ऐसे आते हैं। खेद है, कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। क्या करे? इसके बिना एकदम सीधा जाया नहीं जाता। ऐसे बीच में आते हैं। आते हैं विकल्प। समझ में आया?

एक अर्थ यह किया। प्राथमिक अवस्था। अमृतचन्द्राचार्य की शैली और यह ११-१२ (गाथा) की सन्धि। एक दूसरा अर्थ कलशकार कहते हैं, वह ८वीं गाथा की शैली की बात करते हैं कलशकार। कुछ भी समझा नहीं, उसे ऐसा समझाना पड़ता है कि यह ज्ञान, वह आत्मा; यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। ऐसा पहला व्यवहार उसे व्यवहार से समझाना पड़ता है। दूसरा कोई उपाय नहीं। यह ८वीं गाथा की शैली है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो। देखो! व्यवहार आया। परन्तु व्यवहार आया तो भी वह कहनेवाले को अनुसरनेयोग्य नहीं। उसे कहते हैं कि देख, ऐसा वह आत्मा। ऐसा व्यवहार पहले समझने में, समझाने में आता है। समझ में आया? खेद है कि ऐसा भाव (आता है)। पहले विकल्प से लक्ष्य करता है परन्तु यहाँ जाना है, उसे विकल्प का अनुसरण करना नहीं। समझ में आया?

बहुत बात ऐसी है कि ऐसे आत्मा चाहे जैसा अनजाना व्यक्ति हो। परन्तु उसे एकदम आत्मा-आत्मा करे तो समझे नहीं। तब उसे कहते हैं कि भाई! यह विश्वास करता है न, वह आत्मा, हों! जानता है न, वह आत्मा। एक-एक गुण का पृथक् करके (समझावे)। स्थिर होता है न, वह आत्मा। ऐसे तीन भेद द्वारा ऐसा भेद का विकल्प समझानेवाले को और समझनेवाले को ऐसा एक आता है। परन्तु उस विकल्प में आकर उसे समझना है तो अभेद। समझ में आया? परन्तु ऐसा पहला बोल गुण-गुणी के भेद का विकल्प समझानेवाला समझाता है और वह लक्ष्य में लेता है। तब यह आत्मा ज्ञान, वह आत्मा, (ऐसा कहने से) भेद पड़ गया। लक्षण ज्ञान और आत्मा लक्ष्य, यह भेद पड़ गया। समझ में आया? बहुत संक्षिप्त में जब कहा १०वीं गाथा।

मुमुक्षु : (सम्यग्दर्शन) पहले की या बाद की?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दूसरी बात पहले की कही। पहली कही सम्यग्दर्शन-ज्ञान

के बाद की। दोनों बातें की। पहले कही वह ११-१२की सन्धि की अपेक्षा की और पंचास्तिकाय के अमृतचन्द्राचार्य की १७२ गाथा की टीका की। समझ में आया? १७२ टीका है न? १७२। गाथा यही निकली, पृष्ठ यही निकला। **अनादिकाल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव व्यवहारनय से भिन्न साध्यसाधनभाव को अवलम्बकर...** अर्थात् निश्चय तो है, भाई! एकान्त भिन्न साध्य-साधन को तो फिर व्यवहाराभास में (डालेंगे)। यहाँ भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप, ऐसी दृष्टि हो गयी है। परन्तु प्रथम भूमिका में अर्थात् स्वरूप की स्थिरता नहीं। वहाँ भिन्न साध्य-साधन, उसे साधनव्यवहार, भिन्न साधन निश्चय भिन्न। ऐसे विकल्प आते हैं। देखो! वह **सुख से तीर्थ की शुरुआत करता है। कि (१) यह श्रद्धेय (श्रद्धायोग्य) है, (२) यह अश्रद्धेय है, (३) यह श्रद्धा करनेवाला है, (४) यह श्रद्धान है।** इन चार बोल के विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुए होने पर भी ऐसे आते हैं। उसे व्यवहार कहा जाता है। उसे प्रथम भूमिका की दशा में व्यवहार है, ऐसा कहा जाता है। पूरी दशा निर्विकल्प हुई नहीं, इसलिए उसे प्रथम दशा में वहाँ १७२ में लिया अमृतचन्द्राचार्य ने स्वयं। वह अमृतचन्द्राचार्य का कलश है। प्राथमिक अवस्था, ऐसा है न शब्द में? '**प्राक्पदव्या**' '**द्यपि प्राक्पदव्या**'- है न? बस, प्राक् कहो या पहली कहो। परन्तु एक न्याय जरा कलशकार ने ऐसा लिया है। ८वीं की शुरुआत का और दसवीं। कोई भी अत्यन्त अनजान है, उसे इतना भेद से कहना पड़ता है, परन्तु लक्ष्य तो अभेद का कराना है, हों! यह भेद का आश्रय छुड़ाना है। वरना लागू पड़ता नहीं।

भाई! यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र को आत्मा प्राप्त होता है। ऐसा करके उसका अभेद के ऊपर लक्ष्य जाये कि ऐसा व्यवहार विकल्प पहला समझने के लिये आता है। फिर कहते हैं, '**हन्त**' खेद है कि इतना आता है। बाकी तो उसे स्पर्शे बिना अन्दर जायें, ऐसी हमारी स्थिति है। परन्तु क्या करे, ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। खेद है। अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं)। समझ में आया? अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने पर भी स्वरूप का आचरण इतना प्रगट होने पर भी ऐसे विकल्प पूर्ण स्थिरता न हो तो आये बिना रहते नहीं। खेद है कि ऐसे बीच में आते हैं। वरना उसे स्पर्शे भी नहीं, हम सीधी स्थिरता कर लें। समझ

में आया? क्योंकि व्यवहार को अभूतार्थ कहा है, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने। तो अभूतार्थ का आश्रय लेकर भूतार्थ होता है, ऐसा है नहीं। इसलिए खेद कहा है। अरे! व्यवहार अभूतार्थ है। परन्तु वह इस प्रकार से समझाने में ऐसा पहले ज्ञान का उघाड़ और विकल्प आता है। स्थिरता न हो, तब भी ऐसे विकल्प आते हैं। इन दोनों की अपेक्षा से व्यवहार कहा जाता है। वह वास्तविक व्यवहार नहीं, पहले कहा वह। क्योंकि निश्चय प्रगट हुए बिना का व्यवहार कहलाता नहीं। कहो, चन्दुभाई!

अरे! मूल तत्त्व को शोधने में इसकी नजर नहीं, उसकी कीमत नहीं। और बाहर ऐसा का ऐसा भटका करता है। ऐसा है और ऐसा है और ऐसा होता है। कहीं जीव का पता लगता नहीं और इसकी मुक्ति होती नहीं। समझ में आया? सम्यक् भान बिना, सम्यक् स्वसन्मुख का भान बिना परसन्मुख ऐसे राग और विकल्प करके मर गया अनन्त काल से। फिर कहते हैं, हमको समकित समझ में नहीं आता। और ... के लिये समकित होगा या नहीं, वह भगवान जाने। अपने व्रत ले लो। परन्तु समकित होगा नहीं, यह शंका तेरा मिथ्यात्व बताती है। सुन न! अज्ञान के दोष तीन हैं। संशय, विपरीत और अनध्यवसाय। यही बताते हैं। हमको खबर नहीं पड़ती अर्थात् कौन जाने होगा या नहीं? यही बताता है कि तू मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। उसमें प्रश्न कहाँ करना है? कहो, समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि **जिन्होंने अपना पैर रखा है...** इसके दो अर्थ किये कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ है, तथापि अभी सन्मार्ग सन्मुख हो गया है। परन्तु अभी पूर्ण चारित्र की प्राप्ति हुई नहीं। यह कहा है, इसमें, हों! कलशटीकाकार ने। परम अध्यात्म तरंगिणी। सन्मुख शब्द है। उसमें सन्मुख शब्द है, हों! है न? '**प्राथमिकानां व्यवहारनयोपयोगित्वं प्रदर्श्य निश्चयात्मकानां निश्चयं निश्चिनोति हंत इति वाक्यालंकारे, इह जगति, यद्यपि व्यवहरणनयः - व्यवहाराख्यो नयः, हस्तावलंबः - करावलंबनं, स्यात् - भवति, केषां निहितपदानां - निहिंत आरोपितं, पदं - स्थान सन्मार्गे यैस्ते तथोक्ताः**' '**पदं - स्थानं सन्मार्गे यैस्ते तथोक्ताः**' सन्मार्ग में तो है, परन्तु स्थिर हुआ नहीं। समझ में आया? है देखो! '**सन्मार्गे यैस्ते यथोक्तां।**' बात ऐसी है कि उसका स्वरूप जिस प्रकार से है, वैसा

उसे समझना चाहिए। मैंने माना है, ऐसा सिद्ध होओ, ऐसा काम नहीं आता। धन्नालालजी गये, नहीं? मैंने माना है और हमको ऐसे ठीक पड़ता है, यह सबको ऐसे ठीक पड़ता है, इसलिए ऐसा चाहिए—ऐसा नहीं होता, भाई! समझ में आया? अथवा बहुत मान्यतावाले ऐसे हैं और बहुतों को इस प्रकार से लाभ हो, ऐसा बनता नहीं। समझ में आया?

यशोविजयजी में ऐसा कहते हैं। 'व्यवहारे... बहु दळ दिसे जीवना व्यवहारे...' ऐसा होता नहीं। ऐसा लिखा है अपने पद में। सब पढ़ा है न हमने। वहाँ चिह्न भी किये हैं। यशोविजय हो गये हैं न। वे लोग तो व्यवहार पहले और बाद में निश्चय, ऐसा कहना चाहते हैं न पूरा सिद्धान्त। इसलिए उन्होंने कहा कि व्यवहार से 'बहु दळ दिसे जीवना व्यवहारे शिवयोग' बहुत जीव का समूह तो व्यवहार से मुक्ति पावे, ऐसा आवश्यक पाठ में कहा है। ऐसा लिखा है उन्होंने। खोटी बात है। ऐसा हो नहीं सकता। तीन काल में एक ही सिद्धान्त—'निश्चयनयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करे निर्वाण की' देखो! यह सन्तों का वाक्य। समझ में आया? है यहाँ कहीं नहीं पद? ऊपर होगा, देखो! उस ओर। महासिद्धान्त के ऊपर। 'निश्चयनयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करे निर्वाण की।' तीन काल में एक ही पद्धति है। बहुत जीवों का भाग व्यवहार से मुक्ति पाता है और थोड़े निश्चय से पाते हैं, ऐसा नहीं हो सकता। व्यवहार पराश्रय से स्वआश्रय की पूर्णता पावे, ऐसा कभी हो नहीं सकता। समझ में आया?

कहते हैं, पहली पदवी में **जिन्होंने अपना पैर रखा है...** स्वरूप के सन्मुख है। दृष्टि हुई है, स्थिरता हुई नहीं, **ऐसे पुरुषों को अरे रे! हस्तावलम्बन तुल्य कहा है,...** ११वीं गाथा में कहा न कि व्यवहारनय को हस्तावलम्बरूप से जैन शास्त्र में भी वर्णन किया है, परन्तु उसका फल संसार है। पण्डित जयचन्द्रजी ने कहा न? अनादि भेद का पक्ष है नौ तत्त्व के भेद से श्रद्धा लाभ होता है, ऐसा पक्ष अनादि का है। भेद का पक्ष है और परस्पर प्ररूपणा भी आचार्यरूप से करते हैं। ऐसा होता है... ऐसा होता है... सीधे होता होगा? एल.एल.बी. हुआ जाता होगा? पहले ऐसा पढ़े, ढींकणा ऐसा पढ़े। वह सुनने वाले ऐसा कहे, हाँ...! ऐसे एक-दूसरे परस्पर पारस्परिक भेद का ही उपदेश

करते हैं। दो (बातें)। और तीसरा, जैनशासन में भी कथन में शुद्धनय का निमित्त देखकर, हस्तावलम्ब देखकर निमित्त का उपदेश बहुत किया है। परन्तु इन तीनों का फल संसार है। ११वीं गाथा में आ गया। समझ में आया? फिर शास्त्र का आधार देते हैं कि यह लिखा। परन्तु लिखा (वह) किस नय का कथन? अमरचन्दभाई!

मुमुक्षु : नय का ज्ञान ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नय का ज्ञान नहीं होता। लिखा तो सब लिखा है। किस नय का वचन है? किस नय के फलस्वरूप है? ऐसा जाने बिना... नय का एक श्लोक भी आता है न? पण्डितजी! नयचक्र में आता है न? नय समझे बिना ऐसा कि... एक श्लोक आता है। कुनय हो जाते हैं। ऐसा कुछ आता है। नहीं?

मुमुक्षु : मिथ्यावाद....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यावाद वह अलग। यह तो एक आता है। नय को समझे बिना हेय का उपादेय हो जाये और उपादेय का हेय हो जाये। ऐसा श्लोक आता है। कहीं सब याद रहते हैं? नयचक्र में आता है। अपने को भाव याद रहे, परन्तु गाथा याद नहीं रहती।

मुमुक्षु : .... आता है। ... दूसर नय योग्य माने ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। वहाँ यह आता है। योग्य को अयोग्य मान ले और अयोग्य को योग्य (माने)। वह नयचक्र में है। हाँ यह। अयुक्त को युक्तमान हो जाता है और युक्त को अयुक्तमान (हो जाता है)। वस्तु की खबर नहीं होती। व्यवहार क्या? निश्चय क्या? उपादान क्या? निमित्त क्या? शुद्ध निरपेक्ष क्या? राग की अपेक्षावाला कथन क्या? ऐसे नय की खबर बिना उचित वह अनुचित हो जाता है और अनुचित, वह उचित हो जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : धवल में लगभग हर जगह आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे न। परन्तु वह तो मूल चीज़ है या नहीं? अब उसे तो छोड़ दिया। बापू! जिस नय का कथन है, उसका हार्द जानना चाहिए। ऐसा का ऐसा

कहा करे, वह तो अनन्त काल से तू प्रयासरत है बाहर की बात को स्थापित करने के लिये।

यहाँ कहते हैं, **अरे रे! हस्तावलम्बन तुल्य कहा है,...** वहाँ हस्तावलम्ब शब्द रखा है न ११वीं गाथा में? कोष्ठक में हस्तावलम्ब रखा है। है न? ११वीं गाथा में है, देखो! **प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही है...** २६ पृष्ठ है इसमें गुजराती। **प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही है...** देखो! नौ तत्त्व का भेद, देव-गुरु-शास्त्र के राग का भेद, ऐसी श्रद्धा तो अनादि की है। **और इसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं।** परस्पर कहे, हाँ बराबर है। पहले तो ऐसा होता है, ऐसा होता है, पहले ऐसा चाहिए, पहले ऐसा चाहिए। एल.एल.बी. हो जाते होंगे? वह कहे, हाँ!

और जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्ब... देखो भाषा! कोष्ठक में। **(सहायक) जानकर बहुत किया है; परन्तु उसका फल संसार ही है।** तीनों का फल संसार है। ऐसा क्या करते है? परन्तु क्या करे? सुन न! समझने में पहले विकल्प आये बिना रहता नहीं, परन्तु उस विकल्प का फल तो संसार है। समझ में आया? अमरचन्दभाई! स्वभाव की दृष्टि, स्थिरता न हो, तब तक। दृष्टि हुई और स्थिरता न हो, तब ऐसे भाव आवे कि यह श्रद्धायोग्य है। परन्तु वह विकल्प है। उसका फल तो बन्ध ही है। परन्तु वह बीच में आये बिना रहता नहीं। इसीलिए शास्त्रकार ने उसे सहायकरूप से, निमित्तरूप से हस्तावलम्ब कहा है। आहाहा! गजब बातें, कहो, चन्दुभाई!

तथापि... ऐसा है तो भी **जो पुरुष चैतन्य-चमत्कारमात्र,....** भगवान चैतन्य-प्रकाशमूर्ति, चैतन्यसूर्य अकेला प्रकाश का पुंज प्रभु आत्मा। **परद्रव्यभावों से रहित...** समझाते हैं। जिसमें परद्रव्य और परद्रव्य के भाव नहीं, ऐसे **(शुद्धनय के विषयभूत)...** देखो! यहाँ विषय कहा। बाकी वस्तु तो एक है। परन्तु समझाना है न! ११वीं गाथा में कहा—शुद्धनय, वह ही भूतार्थ है। परन्तु यहाँ विषय कहा। वह व्यवहार का विषय आदि है और उस शुद्ध का विषय अभेद कहा। **(शुद्धनय के विषयभूत) परम 'अर्थ'**

को... परम पदार्थ चैतन्य भगवान पूर्णानन्द एकरूप स्वभाव को **अन्तरंग में अवलोकन करते हैं,...** अन्तर में अनुभवते हैं, निर्विकल्प होकर आनन्द के वेदन में अनुभवते हैं। **(शुद्धनय के विषयभूत) परम...** पदार्थ ज्ञायकभाव, उसे **अन्तरंग में...** अन्तरंग में अनुभवते हैं, वेदते हैं, निर्विकल्प शान्ति की समाधि में अनुभव में पड़ा है। समझ में आया? **उसकी श्रद्धा करते हैं...** उसकी अर्थात् ज्ञायकभाव की।

तथा उसरूप लीन होकर चारित्रभाव को प्राप्त होते हैं,... स्वरूप की लीनता हो गयी है। **उन्हें यह व्यवहारनय कुछ भी प्रयोजनवान नहीं है।** अर्थात् कि उसे व्यवहार होता नहीं। ऐसा कहना है। समझ में आया? अरे! शास्त्र के अर्थ को समझना... यह गड़बड़ उठी है न सब। शास्त्र के अर्थ करने की पद्धति की रीति जाने बिना (गड़बड़ उठी)। इसलिए मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा न। शास्त्र के ऐसे अर्थ करना, भाई! जहाँ निश्चयनय से कथन हो, उसे सत्यार्थ है, ऐसा समझना। व्यवहारनय से कथन है, वहाँ ऐसा नहीं। उपचार से अपेक्षा से अन्यथा कथन किया है। अब यह शास्त्र को समझने की, अर्थ करने की पद्धति पक्ष में लिये बिना वाँचा ही करे तो कभी पार आवे नहीं। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो टोडरमलजी ने बहुत स्पष्ट किया है। परन्तु क्या हो? बहुतों को अभिमान हो जाये न, हम बड़े पण्डित हैं। यह पण्डित का कौन माने? भाई! यह पण्डित ने घर का नहीं कहा। उन्होंने शास्त्र के सामान्य भाव में गूढ़पना क्या भरा है, उसे खोला हैं। खोला है। साधारण जनता को ख्याल नहीं आता, (इसलिए) खोला है। जहाँ-जहाँ स्वआश्रय, अभेद आश्रित, सत्य आश्रित बात करनी हो, उसे वैसा जानना। जहाँ निमित्त सापेक्ष, भेद सापेक्ष ऐसी बातें व्यवहार से की हों, उसे ऐसा जानना कि ऐसा नहीं। परन्तु उपचार से अपेक्षा से अन्यथा बात की, उसे निमित्त का ज्ञान कराने को वह कथन किया है। यह पद्धति लक्ष्य में रखे बिना शास्त्र के अर्थ करे, वे खोटे हुए बिना रहे नहीं। समझ में आया?

चारित्रभाव को प्राप्त होते हैं,... ऐसी शैली ली है भाई! १२वीं गाथा की। श्रद्धा-ज्ञान को प्राप्त हुआ, परन्तु चारित्र की पूर्णता हुई नहीं, उसे व्यवहारनय होता है। समझ में आता है न! यह शैली आयी थी वहाँ। भगवान आत्मा पहले तो निरपेक्ष शुद्धनय के

विषय को पकड़कर अनुभव-सम्यग्दर्शन हुआ, पश्चात् स्थिरता में कचास है, चारित्र की पूर्णता नहीं, इसलिए चारित्र में परसमय का विकल्प इस प्रकार का आता है। जिसे पंचास्तिकाय में परसमय कहा है, भाई! सूक्ष्म परसमय। आता है वह व्यवहार। परन्तु अरेरे! जो स्वरूप में स्थिर होते हैं, उन्हें ऐसे व्यवहार का कुछ प्रयोजन अर्थात् व्यवहार होता नहीं। परन्तु बीच में ऐसा आये बिना निश्चय का भान, स्वसन्मुख का भान, मोक्षमार्ग हुआ तो भी बीच में व्यवहार आये बिना, पूर्ण स्थिरता नहीं, इसलिए आये बिना रहता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं कुछ खबर नहीं होती। निश्चय में व्यवहार नहीं और व्यवहार में निश्चय नहीं। सम्यग्दृष्टि निश्चय में लीन और व्यवहार से मुक्त। यह बात की थी पहली समयसार नाटक की। अध्यवसाय के कलश के अन्दर। समझ में आया? बनारसीदास ने बहुत काम किये हैं। बन्ध अधिकार।

असंख्यात लोक परवांन जो मिथ्यात्व भाव,
तेई विवहारभाव केवली-उकत है।

व्यवहार से लाभ माननेवाले, जितने प्रकार हैं, वे सब मिथ्यात्वभाव हैं। विकल्प से, निमित्त से शुद्ध तत्त्व को लाभ होता है, (ऐसे) जितने प्रकार के असंख्य भाव खड़े होते हैं, वे सब मिथ्यात्वभाव हैं।

तेई विवहारभाव केवली-उकत है।
जिन्हकौ मिथ्यात्व गयौ सम्यक् दरस भयो,
ते नियत-लीन विवहारसौं मुक्त है।

व्यवहार है सही, व्यवहार है सही, परन्तु निश्चय की दृष्टि की परिणति में व्यवहार से मुक्त है। निश्चय और व्यवहार एक नहीं हो गये, ऐसा इसमें कहते हैं, भाई! आहाहा! भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वरूप की दृष्टि करके स्थिर होता है, तब सम्यग्दृष्टि तो निश्चय का ही आदर (करता है) और (उसमें ही) लीन है। परन्तु बीच में ऐसे विकल्प होते हैं। परन्तु निश्चय और व्यवहार के बीच सन्धि है। दोनों एक हुए नहीं।

इसलिए सम्यग्दृष्टि व्यवहार से मुक्त है। मुक्त का अर्थ व्यवहार वहाँ नहीं, ऐसा नहीं। पर्याय में निश्चय की परिणति में विकल्प की परिणति का अभाव है। समझ में आया?

यह बात विचारे नहीं। जो अनन्त काल का संसार छेद का उपाय है। आहाहा! जिस स्वभाव में संसार नहीं, ऐसे शुद्धस्वभाव का अन्तर आश्रय लेकर, अनुभव-दृष्टि हुई, वह सम्यग्दृष्टि है। उसे व्यवहार होता है। परन्तु अन्दर दृष्टि के विषय में व्यवहार नहीं और दृष्टि की परिणति में व्यवहार नहीं। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि दृष्टि सम्यक् है, उसका विषय तो शुद्ध पूरा तत्त्व है। उसमें यह व्यवहार नहीं। तथा स्वरूप की दृष्टि अनुभव ज्ञाता-दृष्टा हूँ। दूसरा कोई मेरा स्वरूप ही नहीं। ऐसा होने से विकल्प आदि व्यवहार होता है। परन्तु यहाँ निश्चय की परिणति में राग की परिणति का अभाव है। समझ में आया? कहो, अमरचन्दभाई! आहाहा! परन्तु अब उसे वाद-विवाद में चढ़े प्रभु! तो पार आवे ऐसा नहीं है। शब्दों में लेखन शास्त्र के इतने होते हैं। किस पद्धति के लेखन हैं, किस नय के लेखन हैं, कहीं उसे व्यवहार से लाभ होता है, ऐसा कहे, व्यवहार साधन है, ऐसा कहे, व्यवहार कारण है, ऐसा कहे, व्यवहार हेतु है, ऐसा कहे। समझ में आया? परन्तु वे सब कथन व्यवहार के हैं, अभूतार्थनय के हैं। सच्चे नहीं। तो क्यों किये? परन्तु वह आये बिना रहता नहीं, इसलिए किये हैं। आहाहा! समझ में आया?

परम 'अर्थ' को अन्तरंग में अवलोकन करते हैं,... अनुभवता, वेदता है। भगवान आत्मा की दृष्टि तो हुई है। पश्चात् स्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान हुए हैं। स्वरूप में लीन होकर वर्तता है, उसे पर्याय में विकल्प का भाग है ही नहीं। इसलिए उनको वह व्यवहारनय कुछ भी प्रयोजनवान नहीं, अर्थात् कि प्रमाणज्ञान करने के लिये, जोड़ने के लिये व्यवहार रहा नहीं। है ही नहीं। अन्दर ध्यान में आनन्द में है। समझ में आया? **'नैष किञ्चित्' 'नैष किञ्चित्'** नहीं इतना। इसका अर्थ नहीं। नहीं। नहीं कुछ, ऐसा। स्वरूप में अनुभव में स्थिर हुआ, उसे यह विकल्प के भेद और लक्ष्य है ही नहीं। समझ में आया? परन्तु वह दशा न हो, तब तक उसे बीच में विकल्प के व्यवहार के भाव आते हैं। निमित्तरूप से उन्हें कहा है, परन्तु है तो वह बन्ध का कारण। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को राग का व्यवहार परज्ञेयरूप से जानने में है। स्वज्ञेयरूप से ज्ञायक को जानते हुए जो स्थिरता और दृष्टि जितनी हुई है, उसमें जितने विकल्प उठते हैं परज्ञेयरूप से उन्हें जानता है। क्योंकि व्यवहार परआश्रय है, निश्चय स्वआश्रित है। समझ में आया? दो के बीच में अन्तर है। अत्यन्त अभाव है। विकल्प का भाव और निश्चय के भाव के बीच अत्यन्त अभाव है। आहाहा! अरे! परन्तु इसे घर की बात इस प्रकार से मिले नहीं, वह प्रयोग कब करे? रामस्वरूपजी!

भगवान का मार्ग, उसकी पद्धति इसके कान में पड़े नहीं। इसे ख्याल में आवे नहीं कि मार्ग तो यह है। यहाँ से हटकर यहाँ जाना। आता है, तथापि वहाँ से हटना है और यहाँ रहना है। ऐसा ख्याल में, श्रद्धा में, व्यवहार श्रद्धा में नहीं आवे, वह स्वसन्मुख का प्रयत्न का प्रयोग किस प्रकार करेगा? समझ में आया? ऐसा का ऐसा बाहर में उलझन... उलझन की। शास्त्र ऐसा कहते हैं और फलाना ऐसा कहते हैं और व्यवहार से ऐसा कहा, फलाना ऐसा कहा। जिन्दगी पूरी हो जाये। मगनभाई! आहाहा! मुश्किल-मुश्किल से मनुष्य का अवतार मिला। कोई सामने देखे ऐसा नहीं वहाँ। चौरासी के अवतार की पाट पड़ी है बड़ी। आहाहा!

मुमुक्षु : अभी कौन देखता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी कौन रुपया सब दो-पाँच करोड़ पड़े हों। कहाँ गये? मलूकचन्दभाई! पैर दर्द करे, तब आता है वहाँ कोई? अभी पैरे बड़ा ऐसा हो गया था, अहमदाबाद में।

मुमुक्षु : परन्तु वह अच्छा हो तो भी कहाँ रहता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : निरोग हो तब दिक्कत नहीं। परन्तु ऐसा हो तब कोई सम्हाले, कोई ठीक हो तो सेवा करे। कौन करे वहाँ भी? धूल रजकण अपनी स्वतन्त्र पर्याय से परिणमते हैं। उन्हें दूसरा स्पर्शता नहीं तो करे कौन? आहाहा! परन्तु यह मानता है कि स्त्री हो तो पुत्र... अरे! सेवा-टहल करने वाले हों तो अन्तर पड़े। यह मूढ़ बोलता है। सेवा-टहल करनेवाले हों तो रोग में अन्तर पड़ जाये। ऐसा होगा या नहीं? मगनभाई! मावजत समझे? सँभाल। सँभाल करे न। उसमें ऐसा आता है। वैद्य में ऐसा आता है।

एक तो वैद्य की आस्था चाहिए, उसके औषध की आस्था चाहिए और सेवा-टहल करनेवाले अच्छे चाहिए। तो इसे रोग मिट जाये। धूल भी नहीं। मिटे क्या, वह तो पर्याय मिटने की हो तो मिटे। बाहर से मिटती है? अन्तर पड़ता है या नहीं इसमें? ऐई! मोहनभाई! यह तीन दिन उसमें पड़े रहे तो सेवा-टहल करनेवाले हों तो अन्तर पड़े या नहीं अन्दर? खबर नहीं थी न तीन दिन? कराची में। कराची में न? कराची में गिर गये तब। क्या करे अब उसे? आहाहा!

कहते हैं, जो भगवान आत्मा को प्रथम तो सम्यग्दर्शन से पकड़ा है, अनुभव किया है। पश्चात् विकल्प आये बिना रहते नहीं। खेद है कि आते हैं। पूर्ण होने में उसे देरी लगती है पुरुषार्थ को। आते हैं। परन्तु जहाँ स्वरूप में स्थिर हो, उसे वे होते नहीं। '**नैष किञ्चित्**' कुछ है नहीं। व्यवहार का कुछ है ही नहीं वहाँ। अकेला निश्चय का अनुभव है। कहो, समझ में आया? दो व्याख्या कही। सम्यग्दर्शन से पहले ऐसा एक विकल्प आवे कि यह आत्मा। यह ज्ञान, वह आत्मा, ज्ञान वह आत्मा। यह विकल्प है। ऐसा आता है, क्या करें? खेद है। परन्तु सीधे पकड़ में नहीं आता, तथापि वह सहायक नहीं, हों! उसे निमित्तरूप से कहा है। निमित्तरूप से कहा। उपादान तो अन्दर हटकर स्थिर हुआ, तब उसको निमित्तरूप से कहने में आया है। (वरना) कहे कहाँ से? आहाहा! समझ में आया? स्वयं ही निरपेक्ष....

नियमसार में है न? तीसरी गाथा में। परम निरपेक्ष निश्चय दर्शन-ज्ञान-चारित्र। परम निरपेक्ष निश्चय दर्शन-ज्ञान-चारित्र। समझ में आया? यह है। टीका तो बहुत सरस की है, पद्मप्रभमलधारिदेव ने। परन्तु अभी के कितने ही पण्डित (ऐसा) कहे, नहीं, ऐसा नहीं। ठीक, बापू! देखो! दूसरी गाथा में **निज परमात्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप शुद्धरत्नत्रयात्मक मार्ग परम निरपेक्ष होने से मोक्ष का उपाय है...** निज परमात्मतत्त्व के। निज परमात्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान-सम्यक्ज्ञान-सम्यक्अनुष्ठानरूप शुद्धरत्नत्रयस्वरूप मार्ग परम निरपेक्ष होने से राग और व्यवहार की जिसे अपेक्षा नहीं। नीचे किया है पूरा। **शुद्धरत्नत्रय अर्थात् निज परमात्मतत्त्व की सम्यक् श्रद्धा, उसका सम्यग्ज्ञान और उसका सम्यक् आचरण पर की तथा भेदों की लेश भी अपेक्षारहित**

होने से वह शुद्धरत्नत्रय मोक्ष का उपाय है; उस शुद्धरत्नत्रय का फल शुद्ध आत्मा की पूर्ण प्राप्ति अर्थात् मोक्ष है। दूसरी गाथा। **'मग्गो मग्गफलं ति य दुविहं जिणसासणे समक्खादं।'**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, परम निरपेक्ष। परम निरपेक्ष। पर की अपेक्षा है नहीं बिल्कुल। एकदम अपनी अपेक्षा से लिया। पर से परम निरपेक्ष। बिल्कुल पर की अपेक्षा नहीं। एकदम सीधा। अपनी अपेक्षा हो गयी। पर से व्याख्या है न। शुद्धरत्नत्रय मार्ग परम निरपेक्ष होने से अर्थात् पर की अपेक्षा जरा भी नहीं। यह राग था और व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प था, इसलिए यह हुआ। वे ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ :- लो, एक कलश हुआ। देवानुप्रिया! यह तो सब यह बहुत आया न। सामने झपट बहुत आयी। ऐई! व्यवहार ऐसा होता है, व्यवहार पहला। बापू! प्रभु! तुझे खबर नहीं, भाई! निश्चय बिना व्यवहार होता नहीं। समझ में आया? **शुद्धस्वरूप का ज्ञान, श्रद्धान तथा आचरण होने के बाद अशुद्धनय कुछ भी प्रयोजनकारी नहीं है।** ऐसा कहा गया है।

अब, निश्चय सम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं :-

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ३, शनिवार, दिनांक - १७-०९-१९६६
श्लोक - ६, प्रवचन - ५०

जीव अधिकार। इसका पाँचवाँ कलश चला। वास्तव में तो ११ और १२वीं गाथा की सन्धि करें तो इस कलश में ऐसा आया है। परन्तु उन्हें तो बारह गाथा पूरी करके अब कहना है न। आत्मा अपने शुद्धस्वरूप को अनुभवता है, जानता है, वेदता है। और अनुभव में स्थिर हो गया, उसे तो व्यवहार होता नहीं। निर्विकल्प आत्मा के आनन्द के अनुभव के काल में उसे व्यवहार (होता नहीं)। सातवीं भूमिका लो या केवलज्ञान लो। फिर उसे व्यवहार होता नहीं। सविकल्प अवस्था होती है, तब स्वरूप का भान होने पर भी निश्चय से तो उस राग का और राग का ज्ञान अपना होने पर भी ऐसी सविकल्प अवस्था में व्यवहार होता है। वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। बस, इतनी मूल बात तो ऐसी है। समझ में आया?

कलश - ६

अब निश्चय सम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं :-

(शार्दूलविक्रीडित)

एकत्वे नियतस्य शुद्ध-नयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः,
पूर्णज्ञान-घनस्य दर्शन-मिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्।
सम्यग्दर्शन-मेतदेव नियमा-दात्मा च तावा-नयं,
तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ।।6।।

श्लोकार्थ : [अस्य आत्मनः] इस आत्मा को [यद् इह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक् दर्शनम्] अन्य द्रव्यों से पृथक् देखना (श्रद्धान करना) [एतत् एव नियमात् सम्यग्दर्शनम्] -ही नियम से सम्यग्दर्शन है, यह आत्मा [व्याप्तुः] अपने गुण-पर्यायों में व्याप्त रहनेवाला

है, और [शुद्धनयतः एकत्वे नियतस्य] शुद्धनय से एकत्व में निश्चित् किया गया है तथा [पूर्ण-ज्ञान-घनस्य] पूर्ण ज्ञानघन है। [च] एवं [तावान् अयं आत्मा] जितना सम्यग्दर्शन है, उतना ही आत्मा है, [तत्] इसलिए आचार्य प्रार्थना करते हैं कि [इमाम् नव-तत्त्व-सन्ततिं मुक्त्वा] ''इस नवतत्त्व की परिपाटी को छोड़कर, [अयम् आत्मा एकः अस्तु नः] यह आत्मा एक ही हमें प्राप्त हो।''

भावार्थ : सर्व स्वाभाविक तथा नैमित्तिक अपनी अवस्थारूप गुणपर्यायभेदों में व्यापनेवाला यह आत्मा शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है - शुद्धनय से ज्ञायकमात्र एक-आकार दिखलाया गया है, उस सर्व अन्य द्रव्यों और अन्य द्रव्यों के भावों से अलग देखना, श्रद्धान करना, सो नियम से सम्यग्दर्शन है। व्यवहारनय आत्मा को अनेक भेदरूप कहकर सम्यग्दर्शन को अनेक भेदरूप कहता है, वहाँ व्यभिचार (दोष) आता है, नियम नहीं रहता। शुद्धनय की सीमा तक पहुँचने पर व्यभिचार नहीं रहता, इसलिए नियमरूप है, शुद्धनय का विषयभूत आत्मा पूर्ण ज्ञानघन है - सर्व लोकालोक को जाननेवाला ज्ञानस्वरूप है। ऐसे आत्मा का श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन है। यह कहीं पृथक् पदार्थ नहीं है, आत्मा का ही परिणाम है, इसलिए आत्मा ही है। अतः जो सम्यग्दर्शन है, सो आत्मा है, अन्य नहीं।

यहाँ इतना विशेष समझना चाहिए कि जो नय है, सो श्रुतप्रमाण का अंश है, इसलिए शुद्धनय भी श्रुतप्रमाण का ही अंश हुवा। श्रुतप्रमाण परोक्ष प्रमाण है, क्योंकि वस्तु को सर्वज्ञ के आगम के वचन से जाना है; इसलिए यह शुद्धनय सर्व द्रव्यों से भिन्न, आत्मा की सर्व पर्यायों में व्याप्त, पूर्ण चैतन्य केवलज्ञानरूप-सर्व लोकालोक को जाननेवाले, असाधारण चैतन्यधर्म को परोक्ष दिखाता है। यह व्यवहारी छद्मस्थ जीव आगम को प्रमाण करके शुद्धनय से दिखाये गये पूर्ण आत्मा का श्रद्धान करे, सो वह श्रद्धान निश्चय सम्यग्दर्शन है। जब तक केवल व्यवहारनय के विषयभूत जीवादिक भेदरूप तत्त्वों का ही श्रद्धान रहता है, तब तक निश्चयसम्यग्दर्शन नहीं होता। इसलिए आचार्य कहते हैं कि इन नवतत्त्वों की सन्तति (परिपाटी) को छोड़कर शुद्धनय का विषयभूत एक आत्मा ही हमें प्राप्त हो; हम दूसरा कुछ नहीं चाहते। यह वीतराग अवस्था की प्रार्थना है, कोई नयपक्ष नहीं है। यदि सर्वथा नयों का पक्षपात ही हुआ करे तो मिथ्यात्व ही है।

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि – आत्मा चैतन्य है, मात्र इतना ही अनुभव में आये तो इतनी श्रद्धा सम्यग्दर्शन है या नहीं? उसका समाधान यह है :– नास्तिकों को छोड़कर सभी मतवाले आत्मा को चैतन्यमात्र मानते हैं; यदि इतनी ही श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा जाये तो सबको सम्यक्त्व सिद्ध हो जायेगा, इसलिए सर्वज्ञ की वाणी में जैसा सम्पूर्ण आत्मा का स्वरूप कहा है वैसा श्रद्धान होने से ही निश्चय सम्यक्त्व होता है, ऐसा समझना चाहिए।।6।।

कलश – ६ पर प्रवचन

अब निश्चय सम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं – यह निश्चय समकित का स्वरूप कहीं तेरहवें गुणस्थान की बात नहीं। समझ में आया? पूर्ण ज्ञानघन है न? वह ऊपर से कितने ही कहते हैं कि यह तो पूर्ण ज्ञानघन चाहिए। लोकालोक का ज्ञान आता है या नहीं कहीं शब्द में? यहाँ नहीं। यह तो लोकालोक का ज्ञान है। श्लोक छठवाँ बोलो।

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयं,
तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ॥६॥

श्लोकार्थ – इस आत्मा को अन्य द्रव्यों से पृथक् देखना... छहढाला में भी आता है। छहढाला में आता है न? परद्रव्य से भिन्न आत्मरुचि भला है। यह निश्चय समकित की ही बात है यहाँ। यह शब्द यहीं है। **आत्मा को...** भगवान आत्मा **अन्य द्रव्यों से पृथक् देखना...** अन्य शरीर, कर्म आदि से भिन्न अनुभव करना **(श्रद्धान करना)....** निर्विकल्प दृष्टि द्वारा आत्मा को अनुभव करना—वेदना। आनन्द के वेदन से आत्मा को जानना, श्रद्धान करना। **वही नियम से सम्यग्दर्शन है,...** वह निश्चित नियम सत्य सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्य चमत्कार, चैतन्य रतन हीरा। यह सब कंकड़।

मुमुक्षु : यह सब अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शरीर-बरीर, यह परतें चढ़ाई है न। यह सब दिखता है वह।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें—जड़ में है। आत्मा में कहाँ है?

यह शरीर और कर्म आदि परद्रव्य, वे उसकी अस्ति में, मौजूदगी में नहीं, उनसे उसे भिन्न अनुभव करना। देखना अर्थात् कि श्रद्धा करना। श्रद्धा करना अर्थात् कि उसका ज्ञान करके श्रद्धा करना। समझ में आया? वस्तु अन्तर्मुख चीज़ जो पूर्ण ध्रुव। यहाँ तो अभी कहेंगे गुण-पर्याय में व्याप्तवाला आत्मा, परन्तु उसमें से शुद्धनय... यह तो एकपने को सिद्ध किया।

मुमुक्षु : उसमें से भिन्न किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न किया है, ऐसा कहेंगे। पूरी वस्तु तो कहेंगे न। समझ में आया? भगवान आत्मा ऐसे वस्तु में अनन्त-अनन्त गुण और अनन्त-अनन्त आनन्द, शान्ति का पिण्ड प्रभु आत्मा, वस्तु महान परमात्मा स्वयं हैं।

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। कब क्या? समझ में आया? उसे यह पर को देखने की आदत पड़ गयी है अनादि से। वास्तव में वह पर को देखता... यह एक प्रश्न उठा था जल्दी सवेरे। अन्धा है पर के लिये। वास्तव में ऐसा है।

भगवान स्वयं अपनी पर्याय को... यहाँ १७-१८ में नहीं आया? अपने ज्ञान को ही अनुभव करता है आबाल-गोपाल। तथापि वह यह अनुभव वह मैं, ऐसा न मानकर यह वह मैं, उसे जानता हूँ, ऐसा मान रहा है। समझ में आया? ज्ञानस्वरूप प्रभु चैतन्य के स्वभाव से भरपूर भगवान, ऐसे आत्मा को अन्तर्मुख उसका ज्ञान होकर, अनुभव होकर पर से भिन्न श्रद्धान करना, अनुभव करना, आनन्द के वेदनसहित उसे जानना। उसका नाम सच्चा सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! बात पूरी मूल मुद्दे की पड़ी रही और बाहर के अकेले थोथा रह गये। रामस्वरूपजी! भगवान पूरा एक समय में महा

चैतन्यरत्नाकर। महासागर-समुद्र अनन्त गुण का समुद्र, ऐसे भगवान आत्मा को परिपूर्ण रीति से परद्रव्य के भाव से—लक्ष्य से छूटकर अन्तर के स्वभाव के लक्ष्य में जाकर, उसका हुआ ज्ञान, उसमें हुई प्रतीति, उसमें हुआ आनन्द का वेदन। इस प्रकार श्रद्धा करना। **वही नियम से सम्यग्दर्शन है,...** सच्चा सम्यग्दर्शन यह है, ऐसा कहना है। आहाहा! समझ में आया?

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। यहाँ आत्मा को ऐसा अनुभव करना, उसमें यह सब श्रद्धा आ जाती है। ज्ञानप्रधान कथन से सात तत्त्व की श्रद्धा कही। यहाँ दर्शन प्रधान अकेले आत्मा की श्रद्धा करना, पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... वर्तमान दशा दशावान में झुकाकर उसे आनन्दसहित अनुभव करना, शान्तिसहित। शान्ति अर्थात् स्वरूप आचरण। आनन्द, वह सुख का ... समझ में आया? जगत का देखनेवाला अपने को देखकर अन्दर में स्थित हो, उसे निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया?

अन्य द्रव्यों से पृथक्... अर्थात् कि जहाँ अन्य द्रव्य से भिन्न ऐसे गया, वहाँ उसके द्रव्य के अभेद के लक्ष्य से जो पर्याय में श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति और आनन्द। श्रद्धा-ज्ञान-शान्ति और आनन्द। शान्ति वह स्वरूपाचरण, आनन्द वह सुख। यह चार इनके अन्तर में दृष्टि करने से जो अनुभव में आवे उस दृष्टि को, उस श्रद्धा को नियम से सम्यग्दर्शन कहा जाता है। कहो, समझ में आया? यह बहुत विवाद उठता है न तुम्हारी ओर से। यह सम्प्रदाय की ओर से उठता है या नहीं? क्या कहें? बात सच्ची। अधिक स्पष्ट आवे। इसे जँचे ऐसा कहे। उसमें क्या करे वह? वास्तविक तत्त्व ही जहाँ पूरा निराला... निराला... निराला... जिसे तीन काल में राग का स्पर्श नहीं। धर्म की बात भी क्या करना? शरीर की। वह तो सब परद्रव्य के ऊपर और ऊपर लटकते बहिर लुटंति। आता है न शब्द? पण्डितजी! बहिर लुटंति। बाद में कलश में आता है। परद्रव्य बहिर लुटंति। आहाहा! कहाँ भगवान, उसे और इसे क्या सम्बन्ध है? भाई! यह सब आकृति यह और यह... मुझे है। यह मुझे है, ऐसा मानकर स्वयं खो गया है। किसके हैं? यह तो जड़ के हैं। समझ में आया? और कर्म अन्दर है, वह जड़ के हैं। वे तेरे कर्म कहाँ

थे? बाँधे कौन और जोड़े कौन? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि उस परवस्तु से भिन्न है, उसे भिन्न देखना। ऐसा कहते हैं, लो। आहाहा!

मुमुक्षु : जैसा है, वैसा देखना।

पूज्य गुरुदेवश्री : है। बात तो ऐसी ही है न। यह तो उसे विपरीतता घुस गयी है। मगनभाई! आहाहा! प्रभु! तेरी महत्ता की बातें केवली से पूरा नहीं पड़ा। वाणी में पूरा तू नहीं आया, भाई! महाभगवान तेरी क्या लीला! उसके एक ज्ञान की पर्याय में लोकालोक तो कहीं समा गये। कहीं समा गये। उनसे अनन्त-अनन्तगुणे लोकालोक और काल होता तो वह जानता। उसके स्वभाव को क्या कहना! आहाहा! अलोक में लोक बिन्दु मात्र और लोक और अलोक केवलज्ञान की पर्याय में बिन्दुमात्र। आहाहा! इसका कारण है कि उसका जहाँ स्वभाव ही ज्ञानज्योति स्वरूप है, उसकी तो क्या बात! परन्तु प्रगट हुई पर्याय की इतनी सामर्थ्य है। वह प्रगट हुआ तो एक समय का भाव, इसके अतिरिक्त पूरा भगवान... आहाहा! जिसके ज्ञान के तल का तल हाथ न आवे। इतना जिसका ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, शान्तिस्वभाव, प्रभुत्वस्वभाव। उसके अमाप सामर्थ्य का एकरूप भगवान आत्मा, उसे परद्रव्य से ऐसे स्वरूप को देखना, अन्तर के स्वभाव का माहात्म्य करके उसमें स्थिर होना और उसका अनुभव होना। यह भगवान पूरा शुद्ध त्रिकाल है। ऐसे शुद्ध की पर्याय में प्रगट होने पर यह पूरा आत्मा आनन्दरूप है। उसे आनन्द के वेदन में पूरा आत्मा श्रद्धास्वरूप ही है, ऐसी श्रद्धा की पर्याय के भान में... आहाहा! उसे अन्तर में स्वसन्मुख में जाकर अनुभव करना, वेदना, देखना, श्रद्धा करना, जानना, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। यह तो प्रथम भूमिका की बात है। समझ में आया? यहाँ से धर्म की शुरुआत होती है। इसके बिना जितना कुछ करे, राग की मन्दता, व्रत और नियम, वह सब संसार खाते, बन्ध खाते, चार गति में जिस भाव से भटके, उस भाव से है वह। समझ में आया?

कैसा है आत्मा? अपने गुण-पर्यायों में व्याप्त रहनेवाला है,... देखो! 'कैसा है आत्मा?' आत्मा। उसके गुण और उसकी पर्यायें। पूरा प्रमाण स्वरूप बतलाया। कैसा है भगवान आत्मा? द्रव्य, गुण-पर्यायों में व्यापनेवाला है। द्रव्य वस्तु, अपने गुणों और

अवस्थाओं में व्यापनेवाला। उसमें से... उसमें से अब शुद्धनय से छाँटा। समझ में आया?

भगवान आत्मा पर से अत्यन्त निराला पहले बताया। पहले तो अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन ध्येय को पकड़कर। फिर अर्थ किया कि आत्मा के अस्तित्व में आत्मा तो अपने गुण-पर्याय में व्याप्त है। यह रजकण, शरीर आदि किसी में व्याप्त नहीं। वस्तु अनन्त गुण का पुंज अपने गुण और पर्याय में व्याप्त, इतनी बात ली। **और कैसा है? शुद्धनय से एकत्व में निश्चित् किया गया है...** ऐसा गुण-पर्याय में व्याप्त होने पर भी शुद्धनय से द्रव्य के ऊपर लक्ष्य करके एकपने को प्राप्त हुआ है। समझ में आया? फिर ऐसा कहे, यह तो गुण-पर्याय में व्यापनेवाला है। यह तो पूरी चीज़ की बात की। पूरी वस्तु कही यह तो। भगवान द्रव्य। आत्मा, वह द्रव्य। कैसा है आत्मा? अर्थात् द्रव्य। वह द्रव्य, अनन्त गुण और उसकी पर्याय के अस्तित्व में इतने में व्यापकर रहा हुआ तत्त्व है। बस, इतना सिद्ध किया। अब उसमें से शुद्धनय का विषय क्या? समझ में आया?

ऐसा करके यह सिद्ध हुआ कि वह स्वयं तीनों काल में द्रव्य अपने गुण-पर्याय में व्यापकर ही रहा हुआ है तीनों काल। समझ में आया? तीनों काल भगवान अपनी शक्ति अर्थात् गुण और उसके प्रगट अंश। बस, इतने में व्यापकर रहा हुआ है। नहीं परमाणु को स्पर्श किया, कर्म को स्पर्श किया, शरीर को स्पर्श किया, किसी को स्पर्श किया ही नहीं, तीन काल-तीन लोक में। व्यापने का भाई ऐसा कहा। स्पर्शा ही नहीं। कर्म को स्पर्शा नहीं। शरीर को स्पर्शा नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह क्या करना परन्तु यह सब? मन्त्री-बन्त्री को, ऐई! यह सब कितने ही काम करते हैं लो, यह चुनीभाई! कहते हैं, जिसमें व्याप्त हो, उसमें होता है। जिसमें व्याप्त नहीं, उसका कुछ नहीं होता। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

भगवान आत्मा। एक बोल यह हुआ पहला कि अन्य द्रव्य से भिन्न अनुभव करना-वेदन करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन। इतनी बात है। पश्चात् कैसा है आत्मा? उसका प्रमाणपना बतलाया। वह कितने में रहा हुआ है, कितने में रहा हुआ है? कि अपने गुण-पर्याय में रहा हुआ है। तीनों काल। कर्म में, शरीर में, वाणी में कभी रहा नहीं, कभी स्पर्शा नहीं। आहाहा! यहाँ तो अभी शरीर की क्रिया से यह प्रश्न उठे

तुम्हारे। क्या पहला प्रश्न क्या है तुम्हारा वहाँ? सचेत शरीर से धर्म होता है। ऐसा कहते हैं न? जीवित शरीर से धर्म होता है... अरर्र! भगवान! अरे प्रभु! यह वह क्या हुआ! हमारे राजमलजी है, ऐसे प्रश्न? सचेत शरीर कब? शरीर जड़ है। आत्मा पर्याय से-गुण से तो अपने में व्याप्त है। पर में तो व्याप्त नहीं। यह तो यहाँ प्रश्न होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब व्यवहारनय का अर्थ क्या? व्यवहारनय का अर्थ कि वह है, ऐसा जानने के लिये। व्यवहारनय छू जाता है इसे? व्यवहारनय छू जाता है? ऐसे के ऐसे सब। तीन काल में निश्चय से स्पर्शता नहीं और व्यवहार से भी स्पर्शता नहीं। मात्र संयोग देखकर उसे स्पर्शता है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। स्पर्शता नहीं, उसे स्पर्शता है कहना, ऐसा अन्यथा कथन, वह व्यवहार है। समझ में आया? कुछ निर्धार होगा या निर्धार ही नहीं होता? जैन में फुदड़ीवाद है? वे लोग कहते हैं कि तुम्हारा तो कुछ निर्णय नहीं होता स्याद्वाद में। अन्यमति कहते हैं। अरे! चल... चल।

मुमुक्षु : बड़ी पुस्तकें लिखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लिखते हैं न। अनेकान्त का निर्णय है। स्व में रहा हुआ है, पर में तीन काल में रहा हुआ नहीं, ऐसा निर्णय है। स्व में भी रहा हुआ और पर में (भी) रहा हुआ, कुछ ठिकाना नहीं? उसका नाम अनेकान्त? समझ में आया? एक बार कहा था न? भाई! (संवत्) १९९२ के वर्ष में गये थे न वहाँ। आश्रम में... फिर यह तुम्हारा था न वह, वह था आचार्य। चन्द्रकान्त न? गुजर गया बेचारा। चन्द्रकान्त था। वे साथ में थे। फिर विदा करने आये ठेठ तक। हम वहाँ रहते थे न हीराभाई के मकान में। तो कौने तक साथ में आये। बात करते-करते कहा कि यह जड़ है या नहीं? चन्द्रकान्त? वह आचार्य कहलाता था न? जड़ है या नहीं? (उसने) कहा, माने तो है और न माने तो नहीं। ऐसा तुम्हारा जैनदर्शन कहता है न। कथंचित् है, कथंचित् नहीं। क्या कहा? यह ९२ की बात है। चैत्र शुक्ल १३। जैन तो ऐसा कहते हैं कि जड़ है भी सही और नहीं भी सही। किस अपेक्षा से नहीं और है? अर्थात् क्या .... कुछ निर्धार नहीं? ऐसा

नहीं। जड़ है। अपने से है और पर से नहीं, ऐसा कहा है। जड़ नहीं ही, ऐसा कौन कहता है ? किसी अपेक्षा से है और किसी अपेक्षा से नहीं। लो, हो गया नहीं। ठीक! जैनदर्शन ऐसा कहता है। बेचारा ऐसे सीधा मनुष्य। मैंने कहा, ऐसा नहीं। जड़, जड़रूप से त्रिकाल है। जड़, चैतन्यरूप से त्रिकाल नहीं। इस अपेक्षा से नहीं। वस्तु नहीं ? वह वेदान्त कहता है न एक ही वस्तु है। माने तो है और न माने तो नहीं, ऐसा नहीं। उसको कुछ खबर नहीं कि जैन ऐसा कहते होंगे। वह बेचारा सरल था। तब तो व्याख्यान में आते थे न सब बहुत। वहाँ तीन वर्ष रहे न। हमको कुछ ऐसी खबर नहीं। परन्तु तुमको जैनदर्शन की खबर नहीं और अनेकान्त को फुदड़ीवाद करके, फुदड़ीवाद करके गड़बड़ करे। जैन में भी गड़बड़ करते हैं। फुदड़ीवाद है। यह तो ऐसा भी होता है और ऐसा भी होता है। परन्तु क्या होता है ?

यहाँ तो कहते हैं, **अपने गुण-पर्यायों में व्याप्त रहनेवाला है,...** और पर में व्यापनेवाला नहीं, ऐसा निर्णय है। पूरी चीज़ का निर्णय करे तो भी ऐसा है। अब उसमें से शुद्धनय का विषय छाँटना है सामान्य। समझ में आया ? यहाँ सिद्ध क्या करना है ? कि गुण-पर्याय में द्रव्य व्यापक है। परन्तु वह पर्याय है, वह द्रव्य को विषय करती है, तब उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। उसकी व्याप्त पर्याय जो है, वह पर्याय, पर्याय को विषय नहीं करके पर्याय द्रव्य को विषय करे, उसे शुद्धनय से विषय किया कहा जाता है। भाई! ऐसा सिद्ध करते हैं। क्या कहते हैं ? उसमें नहीं व्याप्त पर्याय का विषय करे, ऐसा नहीं। समझ में आया ? इससे यहाँ पर्याय सिद्ध करनी है, गुण में व्याप्त है, उस व्याप्त अवस्था में द्रव्य-गुण-पर्याय है। शुद्धनय उसे इसमें सिद्ध करता है। यह सामान्य चीज़ है, वह देखो।

शुद्धनय से एकत्व में निश्चित् किया गया है... शुद्धनय से एकत्व में त्रिकाल है, ऐसा निश्चित किया गया है। परन्तु निश्चित किया है पर्याय ने। उसमें व्याप्त पर्याय ने निर्णय किया है कि एक स्वरूप है अखण्ड। समझ में आया ? ...भाई! समझ में आया या नहीं ? खजूर की अपेक्षा कठिन होगा या नहीं ? खजूर का सरल। भाई! यह सब पैसा बहुत आता है ढ़ेर। पाँच-पाँच लाख की आमदनी।

मुमुक्षु : पैसा आता है न, उसमें जीव को क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव को कुछ नहीं?

मुमुक्षु : मालिक तो है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न। लो, यह तुम्हारे काका ठीक! उसका मालिक तो होगा न। धूल का भी नहीं, यहाँ तो कहते हैं। यहाँ तो उसके गुण-पर्याय का मालिक। तीन काल में पर का मालिक है नहीं। अब मालिक गुण-पर्याय का, उसमें से छाँटकर सम्यग्दर्शन शुद्धनय का विषय एकपने को निश्चय करता है। समझ में आया? ऐसा कहकर... है न उसमें पहला? क्या कहा? '**व्यासुर्यदस्यात्मनः**' ऐसा है न अन्दर? '**एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्यासुर्यदस्यात्मनः**' अर्थात् कि भगवान आत्मा स्वयं अपना गुण-शक्तियाँ और पर्याय में व्याप्त है। इतनी तो बात सिद्ध की। अब वह व्याप्त है उसमें से, व्याप्त जो पर्याय है, वह शुद्धनय का विषय एकरूप करके पर्याय ने निर्णय किया है। समझ में आया? निर्णय करनेवाली तो पर्याय है न! उसका विषय सामान्य ध्रुव है। समझ में आया इसमें? **शुद्धनय से एकत्व में...** यह तो बहुत हो गये। गुण और पर्याय में व्यापना। बहुत गुण और बहुत व्यापना अनेकपना हो गया, ऐसा। कहते हैं, इसमें से शुद्धनय से अन्दर ध्रुव सन्मुख की नजर के ज्ञान द्वारा एकपने में निश्चय, एकरूप है, ऐसा निश्चित किया गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इसमें है न, बापू! क्या नहीं? देखो! इसमें है, इसका अर्थ होता है। निकालो। यह हमारे भाई व्याकरणवाले रहे। कहो, समझ में आया? यह तो सन्तों की गम्भीर वाणी! उन कबीर की वाणी, वह तो सब समझने जैसी है। यह तो अलौकिक मार्ग का मर्म खोला है भगवान ने। सन्तों ने तो अन्दर का कलेजा (अभिप्राय) खोल दिया। आहाहा! उसमें दिगम्बर मुनि अर्थात् क्या! भगवान के पथानुगामी। भगवानपना पाने के तुरन्त अधिकारी। एकाध-दो भव में भगवान होने के अधिकारी हैं ये सब। नहीं कहा था? हम मोक्षमार्ग के प्रणेता हैं। हम मोक्ष के अधिकारी, हमने मार्ग निर्णय किया और मार्ग अनुभव करते हैं।

प्रवचनसार में १९९ गाथा है। मार्ग अवधारण किया है, कृत कर रहे हैं, कृत कर रहे हैं। ऐसा कहते हैं। प्रवचनसार है या नहीं? १९९ (गाथा)। लो, पृष्ठ यही निकल गया। क्या कहते हैं? देखो! **मोक्षमार्ग अवधारित किया है, कृत्य किया जा रहा है (अर्थात् मोक्षमार्ग निश्चित किया है और उसमें—मोक्षमार्ग में वे प्रवर्तन कर रहे हैं)।** संस्कृत में है। '**अवधारितो मोक्षमार्गः कृत्यमनुष्ठीयते**' यह शब्द पड़ा है। कहो, समझ में आया? आहाहा! कृत्य किया जा रहा है। खबर है हमको। कार्य होता है, कार्य होता है। आहाहा! लिखने के काल में कहते हैं, कार्य होता है। सुन न! निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति का कार्य होता है। मोक्षमार्ग निश्चित किया है, कार्य होता है। कृत-कृत्य ... आहाहा! यह तो वाणी ... समझ में आया? यह अमृतचन्द्राचार्य की टीका है। यह अमृतचन्द्राचार्य का श्लोक है। १९९, प्रवचनसार ज्ञान (तत्त्व प्रज्ञापन) अधिकार है न। १९९ (गाथा)। कहो, समझ में आया इसमें?

शुद्धनय से एकत्व में निश्चित् किया गया है... एकपना निश्चित किया गया है। गुणभेद नहीं, पर्यायभेद नहीं। अकेला शुद्ध ध्रुव ज्ञायक भगवान, ऐसा शुद्धनय से अन्तर्मुख होकर एकाकार निश्चित किया गया है। समझ में आया? **और कैसा है?** देखो! इसमें से जरा उठता है। **पूर्ण ज्ञानघन है।** अर्थ में किया है न! पूर्ण ज्ञान अर्थ में किया न? सर्व लोकालोक को जाननेवाला ज्ञानस्वरूप है। वह तो इसका स्वभाव ऐसा है, ऐसा बतलाया है। लोकालोक को अभी पर्याय से जानता है, वह बात यहाँ नहीं लेना। ऐई! हरिभाई! क्या? तुम्हारे पिता की बात है। वे कहते थे न। एक बार कहते थे वे। सम्यग्दर्शन हो तो लोकालोक का ज्ञान हो पहले। खबर है न? भाई कहते थे। फिर अन्त में कहे, सिद्धान्त तो अपने मतभेद है। इस प्रकार ऐसा बोले। कुछ खबर नहीं। ऐसे शब्द पकड़े। लोकालोक को जाने। तब पहले लोकालोक जाने तो सम्यग्दर्शन कहलाये। ऐई! मगनभाई! यह शब्द है या नहीं? परन्तु इसका अर्थ ही है लोकालोक को जाने, ऐसे ज्ञान का त्रिकाल कायम स्वभाव ही ऐसा है उसका। उसकी पर्याय का स्वभाव तो हो, परन्तु इससे अनन्त गुणा एक ज्ञानगुण में अनन्त लोकालोक हो तो उसका जानने का स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा... नहीं आया नियमसार में? कार्यपरमात्मा होने पर भी। यह कायम के ज्ञान-दर्शन गुण द्वारा कारणपरमात्मा को जानता है। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की कथनी भी कहीं नहीं मिलती। ऐसा शब्द नहीं होता अन्यत्र। ४५, ३२ सूत्र में इस प्रकार का शब्द नहीं। कार्यपरमात्मा होने पर भी, अन्तर में त्रिकाली ज्ञान दर्शन-त्रिकाली ज्ञान-दर्शन द्वारा त्रिकाली आत्मा को जानता है, ऐसे भगवान है, कहते हैं। आहाहा! पर्याय द्वारा पर्याय गुण द्वारा द्रव्य को जाने, ऐसा कहकर तीनों समाहित कर दिये। कथनी, वह कथनी है न। वस्तु के स्वरूप को बाहर रखने की प्रसिद्धि।

कैसा है? 'पूर्ण ज्ञानघन है।' वह तो पूर्ण ज्ञानघन है, वस्तु ज्ञानघन है। वस्तु अर्थात् ठोस है। जैसे शिला, बर्फ की शिला जैसे पूर्ण शीतल घन है, शीतल घन है, वैसे भगवान पूर्ण ज्ञानघन है। निवड—ठोस पूर्ण ज्ञानघन अरूपी स्वरूप है। अरे! गजब बात! समझ में आया? बर्फ की शिला जैसे चार मण की, पाँच मण की (हो)। मुम्बई में बहुत होती है। रास्ते में निकलें तो उन ट्रक में हो। नवनीतभाई! वह बर्फ जाता हो न कहीं। खुल्ली-खुल्ली पाँच-पाँच मण की इतनी खुल्ली (पाट—शिला) पड़ी हो। यह भगवान आत्मा अकेला शीतल / ठण्डा आनन्दकन्द की शिला शरीर प्रमाण घन पड़ा है पूरा। आहाहा! बापू! परन्तु वह तो बहुत रजकण के पिण्ड की एक शिला है। यह (आत्मा) तो एक द्रव्य है। एक द्रव्य। वह तो अनन्त द्रव्यों की बर्फ की शिला है। उपचारिक द्रव्य हुआ वह तो। विभाविक पर्याय हुई वह तो। यह तो स्वाभाविक द्रव्य, अनुपचारी वास्तविक पदार्थ पूर्ण ज्ञानघन है। अरूपी पूर्ण ज्ञानघन। आत्मज्ञ-ज्ञ स्वरूप है। वह ज्ञ-स्वरूप है, वह पूर्ण ज्ञानघन है। ज्ञ स्वभाव में फिर अपूर्णता क्या? विपरीतता क्या? विकारता क्या? अधूराश क्या?

मुमुक्षु : कुछ दृष्टान्त करो न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शिला का दृष्टान्त दिया न! उसमें मिलान नहीं खाया? वह सूरण का कन्द। सूरण-सूरण। गाँठ नहीं आती सूरण की? कन्दमूल नहीं? गुड़ की भेली वह सूरण कन्द में रस बहुत होता है। सूरण की गाँठ आती है न। जहाँ मारो तो अकेला कन्द रसकन्द। सूरण की गाँठ कहते हैं न? कन्दमूल। कन्द नहीं होता? सूरण।

अन्दर लाल (होता है)। (उसी प्रकार) उसमें आनन्दकन्द की भेली आत्मा है। ज्ञानघन की भेली है। हमारे (गुजराती में) गोळ की भेली कहते हैं गोळ की। यह वह बनाते हैं न? भेली बनाते हैं तुम्हारे? यह गुड़ की भेली। छाणा जैसी। छाणुं बड़ा हो न ऐसा हो। छाणां बड़ा होता है कहीं? बड़ा छाणा जोरदार।

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा वह सूरण की गाँठ कहो या गुड़ की भेली कहो, उसी प्रकार यह (आत्मा) पूर्ण ज्ञान की भेली पूर्णानन्द प्रभु है। आहाहा! उसके लक्ष्य में माहात्म्य आता नहीं। वह मानो अरूपी है न। परन्तु तू देखता ही है तुझे। पर को तो देखता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। सुन न! आहाहा! परन्तु तुझे भ्रम में पड़ गया है कि तुझमें नहीं, उसे देखता हूँ। ऐसा कहते हैं। तुझमें है, उसे देखता नहीं। पूर्ण ज्ञानघन है, पूर्ण ज्ञानघन है। दो शब्द प्रयोग किये। ज्ञान और पूर्ण और घन। पिण्ड है। पिण्ड अकेला अरूपी घन है। समझ में आया? एक द्रव्य है न? वे तो अनन्त द्रव्य हैं। समझ में आया? सूरणकन्द लो, गुड की भेली लो। वह तो अनन्त रजकण का अनन्त स्कन्ध है। एक भेली का टुकड़ा इतना गुड़ का लो तो उसमें स्कन्ध है। वह तो अनन्त रजकण के स्कन्ध हैं। एक द्रव्य, एक द्रव्य, एक स्वभाव, पूर्ण घन। समझ में आया? ऐ... चिमनभाई! आहाहा!

और जितना सम्यग्दर्शन है, उतना ही आत्मा है,... देखो तो सही! यह सम्यग्दर्शन की पर्याय ने पूरे द्रव्य को अभेदरूप का अनुभव किया है। पूरा द्रव्य है, ऐसी सम्यग्दर्शन की पर्याय अभेद एकाकार है। इतने द्रव्य प्रमाण सम्यग्दर्शन की पर्याय परिणम गयी है। समझ में आया? **जितना सम्यग्दर्शन है...** अर्थात् सम्यग्दर्शन की पर्याय ने पूरे आत्मा की श्रद्धा की है न? ऐसा कहते हैं यहाँ तो। मूल तो पूरा है न। तो जितना सम्यग्दर्शन, उतना आत्मा, ऐसा कहते हैं। पूरा आत्मा सम्यग्दर्शन ने प्रतीति में लिया है। इसलिए जितना सम्यग्दर्शन, उतना ही यह आत्मा। एक वस्तुरूप से उतना ही आत्मा हुआ कि सम्यग्दर्शन (ने) पूरे आत्मा को पकड़ा है। समझ में आया? और दूसरे प्रकार से सम्यग्दर्शन की पर्याय पूरे द्रव्य में अभेद होकर परिणमी है। समझ में आया? आत्मा है।

जितना सम्यग्दर्शन है, उतना ही आत्मा है,... तब दूसरे गुण कहाँ गये? अब यह

कहा न, आत्मा है, उसमें तो सब आ गये। सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि सभी पर्यायों का पूरा व्यापकपना पर्याय में (हुआ है)। अकेली पर्याय कहाँ प्रगटी है? सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर अनन्त गुणों के अंश अभेदरूप से परिणमे हैं। समझ में आया? जितना आत्मा, जितने गुण का पिण्ड है, उसे ऐसे प्रतीति करने से जितने गुण हैं, उनके अंश व्यक्तरूप से परिणमे, इतना ही यह आत्मा है। समझ में आया? अरूपी की बातें। परन्तु अरूपी जाननेवाला न हो तो 'यह है', ऐसा निर्णय कौन करेगा? अन्ध, सब यह है। शरीर अन्ध, कर्म अन्ध, प्रकाश अन्ध, यह सब अन्ध-अन्ध। अन्ध को निश्चित कौन करेगा कि वे जगत में है। आहाहा! जिसके प्रकाश में वे प्रकाशित होते हैं कि यह चीज़ है, वह प्रकाशक स्वयं कहता है, कि यह चीज़ है। वरना उसकी अस्ति को जाने बिना स्वीकारे कौन? जाननेवाला भगवान प्रकाश की मूर्ति पूर्ण ज्ञानघन। यह है, इस सम्बन्धी का मेरा अपना ज्ञान मुझमें है। समझ में आया?

इसलिए आचार्य प्रार्थना करते हैं कि 'इस नवतत्त्व की परिपाटी को... समूह। नौ का समूह। भेद भंग **छोड़कर...** सन्तति शब्द है न, इसलिए परिणति किया। मूल तो समूह। नौ का समूह। **छोड़कर, यह आत्मा एक ही...** उसके सामने ऐसा (लिया)। नौ की अनेकता की परिपाटी छोड़कर **यह आत्मा एक ही हमें प्राप्त हो।** लो, ऐसे गुलाँट खाती है बात। क्या कहा, समझ में आया? गुलाँट खाये, समझ में आया? ऐसे पलटा मारता है। यह नौ की अनेकता है न? जीव क्या और अजीव क्या, विकल्प उठे वह। अनेकता है न? नौ की अनेकता है न? नौ का समूह है न? नौ के भंगभेद हैं न? उन्हें छोड़कर यह आत्मा एक ही हमको प्राप्त हो। हमको तो एक ही आत्मा का अनुभव प्राप्त होओ। हमारे दूसरा कुछ चाहिए नहीं। समझ में आया? देखो! नौ तत्त्व की परिपाटी। वह कहे, नौ तत्त्व की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन। नवनीतभाई!

नौ तत्त्व के समूह को छोड़ दे। अनेक है। अनेक हैं, उनमें तेरा एकपना कहाँ से प्राप्त होगा? समझ में आया? कहो, संवर, निर्जरा और मोक्ष हो तो सब... यहाँ तो कल... डाली थी। शुद्धभाव (अधिकार नियमसार) में कहा न। अन्तःतत्त्व एक तत्त्व भगवान आत्मा। संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय बहिर्तत्त्व है। बहिर्तत्त्व है। अन्तर

में उसका अभाव है, इसलिए बहिर्तत्त्व है। ओहोहो! अशुद्ध पर्याय तो बाह्य तत्त्व है, परन्तु शुद्ध पर्याय प्रगटी है न! प्रगटी है न! पर्याय है न, बाहर में आयी है न! अन्तर्मुख से बाह्य दूसरी दशा है वह। इसीलिए उसे बहिर्द्रव्य कहा है। द्रव्य कहा है, परद्रव्य कहा है। आहाहा! उसकी पर्याय यहाँ से तो गुण पर्याय में व्याप्त है। समझ में आया? वे पर्यायें सब परद्रव्य है। स्वद्रव्य अकेला सामान्य ध्रुव ज्ञायक चैतन्यमूर्ति। मगनभाई! आहाहा!

ऐसी **परिपाटी को छोड़कर, यह आत्मा...** यह आत्मा। **एक ही...** अपना एक, हों! सब होकर एक, ऐसा नहीं वापस। सब होकर एक, जाओ। देखो! ऐसा आया या नहीं तुम्हारे? ऐसे एक आत्मा... लो! इसमें से निकालकर कितने ही ऐसा कहते हैं। वेदान्त कहे, देखो! एक आया। अन्त में आया या नहीं? यह नहीं। सुन न! यह तो आत्मा एकरूप से स्वयं है, उसे प्राप्त होओ, ऐसा कहते हैं। ... सब होकर एक, यहाँ (यह) बात ही कहाँ है? यहाँ तो गुण-पर्याय में व्यापनेवाला पहले कहा। अपने गुण-पर्याय में व्यापनेवाला; परक्षेत्र में व्यापनेवाला नहीं। कहते हैं न, बहुत इसमें से निकालते हैं कितने ही। तुम एकपना कहते हो न अन्त में? अन्त में तो अद्वैत कहते हो न? यहाँ आयेगा उस गाथा में। '**उदयति न नयश्री**' में। '**भाति न द्वैतमेव**' अद्वैत भासित होता है, द्वैत भासित नहीं होता। '**उदयति न नयश्री**' (कलश ९) में आयेगा। समझ में आया? '**उदयति न नयश्री.... भाति न द्वैतमेव**' नौ वाँ श्लोक। परन्तु इसका अर्थ अद्वैत अन्दर अनुभव की दृष्टि में दोपना गुण-गुणी का भासित नहीं होता, ऐसा है। सब होकर एक भासित होता है और दो भासित नहीं होते, ऐसा नहीं। सुन न! समयसार वाँचकर गड़बड़ करे। वेदान्त की ओर ले जाये। वे कहते थे न? कैसे थे? नाथूराम प्रेमी। वह न? मुम्बई। वे कहते थे कि समयसार में कुन्दकुन्दाचार्य ने वेदान्त के ढाले में समयसार को ढाला है। अरे भगवान! तुझे खबर नहीं। वेदान्त के ढाले में (नहीं ढाला), वह तो वस्तु के स्वरूप की ओर ढाला है। वे ऐसा कहते थे। नाथूराम मास्टर न? प्रेमी। कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार में तुम तो वेदान्त के ढाले में ढालो। ढालो समझे न? ऐसे ढाले न जहाँ ऐसे। नहीं, नहीं। तीन काल-तीन लोक में नहीं ढाला। यह तो वस्तु का स्वरूप है, वहाँ ढाला है। समझ में आया? ऐसा आवे, इसलिए ऐसा कहे, लो....

श्रीमद् ने पत्र में लिखा है। कितने ही लोगों को समयसार वाँचते हुए एक आत्मा का भ्रम हो जाता है। एक ही आत्मा है, ऐसा हो जाता है। पत्र में है। ऐसा वाँचे वहाँ हो जाये, देखो! एक ही हमको प्राप्त होओ, (लिखा है)। कौन सा एक? पहली तो व्याख्या कह गये। गुण-पर्यायों में व्यापनेवाला, सब क्षेत्र में और दूसरे में नहीं। इसके लिये तो पहला शब्द रखा है। समझ में आया? तथापि एकत्व की प्राप्ति, हमारा अभेद तत्त्व है, उसकी ही हमको प्राप्त हो। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पृथक्। द्रव्यान्तर-दूसरे द्रव्य हैं न। इसके बिना कहाँ से पृथक् आया? द्रव्यान्तर ही पृथक्। द्रव्यान्तर अर्थात् ऐसा कि पहले कहा परन्तु कुछ लगता नहीं। नेति-नेति कहते हैं न वे लोग? नेति... नेति... नेति। नेति-नेति तो इसमें नहीं। उसमें है। द्रव्यान्तर पृथक् नहीं कहा पहले अन्दर से? समझ में आया? कहो, समझ में आया? द्रव्यांतरेभ्य। तब दूसरे अन्य हैं या नहीं? अन्य में व्याप्त नहीं। अपने में व्याप्त, इसमें से एकपना निकाला है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : पहले पर से भिन्न किया न....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। फिर पर्याय में से भिन्न किया। अकेला द्रव्य एकपने को प्राप्त। समझ में आया?

भावार्थ :- सर्व स्वाभाविक तथा नैमित्तिक अपनी अवस्थारूप... देखो! स्पष्टीकरण **गुणपर्यायभेदों में व्यापनेवाला...** भगवान व्यापनेवाले की व्याख्या की। व्यापता है कितने में? एक स्वाभाविक अवस्था निर्मल, नैमित्तिक अवस्था विकारी। भगवान आत्मा गुण में तो व्याप्त है, परन्तु उसकी पर्यायें जो निर्मल हैं, उनमें और नैमित्तिक (अर्थात्) निमित्त के लक्ष्य से हुई विकारी अवस्था, वह अपनी अवस्था है। नैमित्तिक अवस्था भी उसके अपने भाव की उसकी पर्याय है। समझ में आया? स्वाभाविक अवस्था अस्तित्वगुण आदि की पर्याय निर्मल है। नैमित्तिक अवस्था निमित्त के लक्ष्य से आधीन स्वयं हुआ, उसमें हुई दशा, विकारी पर्याय। ऐसी अवस्थारूप गुणभेदों में व्यापनेवाला। ऐसे गुण के भेद में व्यापनेवाला स्वयं व्यापता है। स्वयं व्यापता है। कर्म

के कारण विकार में व्यापता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? यह तो एक-एक शब्द में कितनी बात करते हैं! ओहोहो! गुण-पर्याय में व्यापनेवाला, उसकी व्याख्या करते हैं। अपने में जो अनन्त गुण हैं, उनकी कितनी ही निर्मल पर्यायें हो या मलिन हो, उनमें वह व्यापनेवाला है। गुण-पर्याय भेदों में व्यापनेवाला है। अब उसमें से भिन्न करना। यह तो पर से भिन्न किया।

यह आत्मा शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है - आहाहा! अब पर्याय भी उसमें नहीं। जैसे पर उसमें नहीं और स्व में गुण-पर्याय में व्याप्त है। परन्तु पर्याय और गुणभेद भी जिसमें नहीं। समझ में आया? कहो, कान्तिभाई! इन सब गाथाओं के ठिकाने भी... गाथा का पार नहीं होता। कौन जाने कैसे हाँ की होगी उस समय? हो जाये, हो जाये ऐसा। नवनीतभाई! ऐसी बात है। हीराभाई! तुम्हारा वह करते हैं जरा, हों! वस्तु ऐसी है न जरा। बराबर लक्ष्य में पक्का दृढ़ न हो न, इसलिए हिल जाये। ऐसा होगा? ऐसा होगा? ऐसा हो जाये अन्दर।

यहाँ तो कहते हैं कि अपनी विकारी और अविकारी अवस्था में व्याप्त भगवान अनादि-अनन्त। विकारी हो तो विकारी, वरना अविकारी। परन्तु व्याप्त उसकी अपनी अवस्था में है। अब उसमें से **शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है** - है। सामान्य ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... भगवान आत्मा अपनी पर्याय से देखता है ध्रुव। एक को देखे। एक को देखे वह इक्का हो। हुकम का इक्का है न! आहाहा! समझ में आया? एक निश्चित किया गया, वह निश्चित है, वह पर्याय है। परन्तु पर्याय ने निश्चित किया है एक, वह वस्तु है, ऐसा निर्णय किया है। सामान्य एक में गुणभेद नहीं और पर्याय भी नहीं। आहाहा!

एक न्याय से तो अभेद की अपेक्षा से भेद असत्य है, झूठा है। अभेद की अपेक्षा से एक की अपेक्षा से द्रव्य से कहो तो पर्याय झूठी है। आहाहा! यह तो पर्याय झूठी है। उसका—उत्पाद-व्यय की पर्याय त्रिकाल ध्रुव को सत्य कहें तो पर्याय को असत्य कहने में आता है। इस अपेक्षा से। ऐई! आहाहा! पर की अपेक्षा से अपने गुण-पर्याय सत् है। पर से भिन्न करने में। परन्तु स्वयं त्रिकाल भूतार्थ... भूतार्थ... भूतार्थ... सत्यार्थ...

सत् प्रभु। वह सत्य। उत्पाद-व्यय पर्याय असत्य। इस अपेक्षा से असत्य, हों! उसकी— पर्याय की अपेक्षा से पर्याय सत्य है। समझ में आया? कितना इसमें इसे समझना? संसार में धन्धा आदि में सिर नहीं फोड़ते? विकल्प किया करे। विकल्प किया करे। दूसरा कुछ कर सकता है? चूना का कुछ कर सकता है? चूना की बोरियों का कुछ नहीं? अब यहाँ बोरियाँ लाये थे। चूना का धन्धा, इसलिए लाये थे यहाँ। एक बार निकले थे, कितनी ही बोरियाँ पड़ी थीं। घर के चूना के व्यापारी घर का चूना लाये हैं। उनके घर का होगा? बोलने में तो ऐसा आता है। आहाहा! यह घर का तो यह रजकण का भी नहीं न! आहाहा! यह रजकण सब रचित हैं, वे तो मिट्टी के हैं, वे तो धूल के हैं। ऐसा आकार देखकर उन्हें कहे कि मैं ऐसे आकारवाला जन्मा हूँ और ऐसा मैं हूँ। पोपटभाई! ऐसे आकारवाला जन्मा। ऐसे दर्पण में देखे यह, वह मैं। परन्तु वहाँ तू कहाँ से घुस गया दर्पण में? उसका प्रतिबिम्ब है। वह तू नहीं तो उसका प्रतिबिम्ब तू कहाँ से आ गया वहाँ? आहाहा!

मुमुक्षु : भूल-भुलैया।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूल-भुलैया। वह होती है न मेहंदी की नहीं? वड़ोदरा में है। भूल-भुलैया, वडोदरा में गये थे। एक बार हमारा केस चलता था न बड़ा। (संवत्) १९६३ के वर्ष की बात है। ६३। केस चलता था अफीम का। फुर्सत हो तब जायें। वरना कोर्ट में जाते थे। बेगुनाहरूप से छूट भी गये थे, हों! ऐसा हमारा केस चला था। था खोटा केस। उसमें भी खोटा आरोप डालते हैं। अरे! तुम मानते नहीं। आर्ष को मानते नहीं, सर्वज्ञ को मानते नहीं। सर्वज्ञ व्यवहार से ऐसा कहते हैं। परन्तु व्यवहार से अर्थात् सच्चा नहीं, सुन न अब। सर्वज्ञ देखते हैं एक साथ। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा वह शुद्धनय से अर्थात् ध्रुवपने से एकत्व में निश्चित किया गया है। **शुद्धनय से ज्ञायकमात्र एक-आकार दिखलाया गया है,...** देखो! एक ज्ञायकमात्र एक आकार, एक प्रकार, एक स्वभाव दिखलाया गया है। एकरूप... एकरूप... एकरूप... एकरूप ध्रुव। वह सम्यग्दर्शन का विषय, वह द्रव्यार्थिकनय का द्रव्य। द्रव्य सामान्य जिसमें पर्याय आती नहीं। समझ में आया? वह अपरिणमन ध्रुव चैतन्य भगवान वह

सच्चा आत्मा। वास्तविक वह आत्मा। पर्याय बिना का वह वास्तविक आत्मा। आहाहा!

मुमुक्षु : कूटस्थ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कूटस्थ है। द्रव्य तो कूटस्थ है। वज्र ध्रुव स्तम्भ पड़ा है अनादि का ऐसा का ऐसा। दृष्टि करती है पर्याय। पर्याय परिणमती है। वस्तु परिणमे? वह तो सदृश ध्रुव पड़ा है अन्दर। पर्यायदृष्टि से गुलाँट खाये, वह अलग बात है। सदृशरूप तो ध्रुव ऐसा का ऐसा है।

शुद्धनय से ज्ञायकमात्र एक-आकार... एक प्रकार, एक भाव **दिखलाया गया है,...** है। आकार अर्थात् ऐसा आकार, ऐसा नहीं, हों! एक प्रकार, एक प्रकार, एक स्वरूप। आकार अर्थात् ऐसे आकृति ऐसे लम्बे-चौड़े की बात नहीं यहाँ। समझ में आया? **उसे सर्व अन्य द्रव्यों...** देखो! '**द्रव्यान्तरेभ्यः**' था न? '**द्रव्यान्तरेभ्यः**' अर्थात् अन्य। **सर्व अन्य द्रव्य...** अन्य द्रव्यों में क्या आया? कर्म, शरीर आदि सब आया न? देव-गुरु-शास्त्र, सम्मेदशिखर सब आ गया होगा?

मुमुक्षु : वह तो आपको निश्चित करना है। वहाँ जाना है सही न!

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने कहा जाना है? कल नहीं बताया उसमें? तीर्थ का नहीं बताया? सुना नहीं? उन मुनि को तीर्थ का विकल्प आया, उसका प्रायश्चित लिया। दुःखदायक है इच्छा। पण्डितजी! सुना था या नहीं? कल बताया था। सन्मति सन्देश है। कल बताया था न? नहीं आया? सुना या नहीं?

मुमुक्षु : आप दूसरे प्रकार से उसका अर्थ करते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे प्रकार से अर्थ नहीं। है, ऐसा उन्होंने किया है, देखो। एक सन्त बिल्कुल निर्य न! निर्य कहा था न? पण्डितजी को कहा, निर्य अर्थात् इच्छारहित। एक दिन उन्होंने एकान्त वन प्रान्त में रहने को कठोर प्रायश्चित् की घोषणा कर दी। जंगल में रहना है। बाहर नहीं आना है। आहार लेने भी गाँव में नहीं जाना। उनके शिष्यों ने पूछा, गुरुदेव! आप कौन से अपराध का प्रायश्चित ले रहे हैं? मुनिराज ने कहा, आज मेरे मन में तीर्थयात्रा करने की इच्छा उत्पन्न हो गयी। इसकी आलोचना

तो होगी। ऐई! किया ही करते हैं न आलोचना। इसी का यह प्रायश्चित है। शिष्य ने कहा, यह तो शुभ विचार है। मुनिराज बोले, आत्मदर्शन के अतिरिक्त भगवान-आनन्दकन्द के दर्शन के अतिरिक्त जितनी भी इच्छा है... ऐई! न्यालभाई! वह सब दु:खदायक है। क्योंकि आज तीर्थयात्रा की इच्छा है, कल दूसरी इच्छा भी उत्पन्न हो सकती है। इच्छा दु:खरूप है। तीर्थयात्रा की इच्छा भी दु:खरूप है। कहो, क्या है? ऐई!

मुमुक्षु : यथास्थान....

पूज्य गुरुदेवश्री : यथास्थान... हमारे मीठालालजी को। मीठालाल है न। होवे, वह अलग बात है, परन्तु है दु:खरूप। डाला ऐसा बहुत बार डाला है। आहाहा! समझ में आया?

इसीलिए कहते हैं कि नियम से उसे **अन्य द्रव्यों और अन्य द्रव्यों के भावों से अलग देखना, श्रद्धान करना सो नियम से सम्यग्दर्शन है।** उसे सम्यग्दर्शन, सच्चा निश्चय कहा गया है। इसके सामने विरोध करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ४, रविवार, दिनांक - १८-०९-१९६६
श्लोक - ६, प्रवचन - ५१

यह समयसार, जीव-अजीव अधिकार है। उसका यह कलश-६। उसका भावार्थ है। छठवाँ कलश है न? उसका भावार्थ। निश्चय सम्यग्दर्शन का स्वरूप। सच्चा सम्यग्दर्शन अर्थात् कि आत्मा का साक्षात्कार होकर प्रतीति होना, ऐसा जो निश्चय सम्यग्दर्शन, (वह) कैसे हो और किसे कहते हैं, वह यह व्याख्या है। जो धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का पहला मूल। यहाँ से धर्म शुरु होता है। भावार्थ में इसका विस्तार किया है। थोड़ा आ गया। फिर से लेते हैं। भावार्थ है न इसका भावार्थ? यह आत्मा कैसा है, किसमें है, कितने में है, यह बात पहले करते हैं।

यह आत्मा **सर्व स्वाभाविक तथा नैमित्तिक अपनी अवस्थारूप गुणपर्यायभेदों में व्यापनेवाला...** क्या कहा? जो यह आत्मा है, वह आत्मा वस्तु और उसकी त्रिकाल शक्तिरूप गुण, स्वभाव और उसकी वर्तमान दशा-अवस्था-हालत। उसमें त्रिकाल द्रव्य तो है, त्रिकाल गुण है, इसके अतिरिक्त वर्तमान में उसकी निर्मल अवस्थायें और नैमित्तिक कर्म के लक्ष्य से विकृत दशा हो, वह नैमित्तिक अवस्था। ऐसे गुण-पर्याय के भेदों में रहा हुआ, व्यापक है। समझ में आया? शरीर, कर्म में वह रहा नहीं। शरीर और कर्म, वे भिन्न जड़ पदार्थ हैं। समझ में आया? वह रहा हो तो स्वयं आत्मा द्रव्य, उसके अनन्त गुण और उसकी वर्तमान स्वाभाविक या विकारी अवस्था-दशा-हालत, उसमें रहा हुआ आत्मा अपने गुण-पर्याय में रहा हुआ व्याप्त-टिका हुआ है। कहो, बराबर समझ में आता है इसमें?

यह आत्मा अपनी वस्तु जो है और उसके गुण। वस्तु अर्थात् स्वभाववान। उसका त्रिकाली स्वभाव अनन्त गुण और उसकी वर्तमान स्वाभाविक कोई निर्दोष और विकारी अवस्था उसमें रहा हुआ वह तत्त्व है। अर्थात् कि दूसरे तत्त्व में रहा नहीं, दूसरे

तत्त्व उसमें रहे नहीं। समझ में आया? इससे आत्मा अपने गुण और विकारी, अविकारी पर्याय में रहा हुआ होने से अपने अतिरिक्त दूसरे पदार्थ में रहा नहीं, इसलिए वह अपने अतिरिक्त दूसरे अनन्त पदार्थों की अवस्था को कर नहीं सकता। समझ में आया? आत्मा के अतिरिक्त परवस्तु कर्म, शरीर, वाणी, मन, उन सब परपदार्थों की हालत को—दशा को—अवस्था को स्वयं अपने गुण और अवस्था में व्यापक—रहा हुआ होने के कारण पर की अवस्था में नहीं, इसीलिए उसके कार्य नहीं कर सकता। समझ में आया? कल से हिन्दी होगा। शोभालालभाई! आज तो अभी गुजराती है।

भगवान आत्मा कितने में है, इतनी बात अभी करते हैं। स्वयं वस्तु है, सत् है, पदार्थ है न। है न? है, तो है ऐसा जो आत्मा अपने अनन्त स्वभाववान है। तो उसके अनन्त स्वभाव ज्ञान-दर्शन आदि गुण अनन्त और उसकी वर्तमान होती निर्मल, विकारी अवस्था, निर्मल और विकारी अवस्था। अस्तित्व आदि गुणों की निर्मल अवस्था है। कितने ही गुणों की विकारी अवस्था है। इसलिए आत्मा स्वयं अपने गुण-पर्याय में व्यापक—रहा हुआ—टिका हुआ अनादि से है। इसलिए यह आत्मा अपने पर्याय के अतिरिक्त जिसमें रहा हुआ है, उसके अतिरिक्त, जिसमें नहीं रहा हुआ, उस द्रव्य की किसी भी अवस्था को वह नहीं कर सकता। समझ में आया? शोभालालभाई! यह तम्बाकू का नहीं कर सकता, ऐसा कहते हैं यह।

मुमुक्षु : शास्त्र में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र में लिखा वह क्या? समझ में आया? एक बात।

दूसरी कि जो यह आत्मा वस्तु है, उसमें अनन्त गुण उसकी पर्याय में व्यापक है। पर में नहीं, पर में व्यापक नहीं, इसलिए पर के काम कभी तीन काल में इसने किये नहीं। तथा पर से इसमें कार्य हुआ, ऐसा भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? नैमित्तिक अवस्था भले अपनी है, परन्तु वह अवस्था अपने में व्यापक है और परपदार्थ (उनके) अपने गुण-पर्याय में व्याप्त है। अर्थात् परपदार्थ उसकी पर्याय में व्याप्त, इस आत्मा की पर्याय को परपदार्थ कर नहीं सकता।

मुमुक्षु : निमित्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का अर्थ ही यह है कि वह कर नहीं सकता, तब निमित्त कहा जाता है। समझ में आया? अमरचन्दभाई!

भगवान आत्मा, आत्मा जैसा उसका वास्तविक स्वरूप है, वह तो सब भेदवाला है, उसे भेदवाला कहकर श्रद्धा कराना, वह तो व्यवहार समकित कहा जाता है। उसमें व्यभिचार आता है, वास्तविकता आती नहीं। समझ में आया? यह बाद में कहेंगे। व्यवहारनय आत्मा को अनेक भेदरूप कहता है। भगवान आत्मा वह तो मूल रकम की बात है। वस्तु स्वयं है। वह है, उसके गुण और पर्याय में-अवस्था में है। इसलिए उसमें है उसे, उसमें जो दूसरे पदार्थ नहीं, वह इसका कुछ नहीं कर सकता। और स्वयं पर में नहीं, इसलिए पर का कुछ नहीं कर सकता। कहो, समझ में आया? यह तो सामान्य बात है। वस्तु की (बात) की है।

अब सम्यग्दर्शन का विषय क्या, उसकी बात करते हैं। इतने गुण और पर्याय के भेदवाला सबको मानना, वह कहीं वास्तविक सम्यग्दर्शन नहीं। वह आस्था करे, तो व्यवहार सम्यग्दर्शन विकल्पवाली, रागवाली श्रद्धा उसे कहा जाता है। परन्तु वह कहीं वास्तविक सम्यग्दर्शन नहीं। क्या कहा, समझ में आया? आत्मा वस्तु है। उसके अनन्त गुण और उसकी पर्याय निर्मल या विकारी, उसमें व्यापक है, इतने की श्रद्धा करे, तब तो उसमें उसका एकरूप सामान्य त्रिकाल लक्ष्य में नहीं आता। उसका अनेकरूप लक्ष्य में आने पर अनेक की श्रद्धा करने से सम्यग्दर्शन की श्रद्धा भी अनेकरूप अर्थात् व्यवहार श्रद्धा हो जाती है। उसे वास्तविक एकरूप श्रद्धा का सम्यग्दर्शन उसमें हो नहीं सकता। समझ में आया इसमें? सम्यक् अर्थात् जैसा उसका एकरूप स्वरूप है, अभेद है, वैसी उसे अन्दर ज्ञान के भानसहित की प्रतीति हो, तब उसे सत्य का स्वीकार किया हुआ सम्यग्दर्शन कहा जाता है। समझ में आया?

कहते हैं, यह आत्मा। यह आत्मा कहा पहले वह। अब **शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है** - लो! पहली बात तो की है कि वस्तु... दूसरा लक्ष्य छोड़ दो। शरीर, वाणी, मन उसके घर में रहे, उसके घर में। आत्मा के एक अंश के घर में भी आते नहीं। समझ में आया? अंश अर्थात् कि आत्मा की एक समय की पर्याय में भी वे

सभी द्रव्य आते नहीं। शशीभाई! भगवान आत्मा का अपना वर्तमान अंश, त्रिकाली शक्ति आदि का अंश, वह वर्तमान अंश भी पर की किसी अवस्था के घर में जाता नहीं। सब अपने-अपने घर में पड़े हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो विकारी कहा न। विकारी या निर्मल अवस्था। अर्थात् यहाँ कुछ....

विकारी अवस्था हो या अविकारी अवस्था हो। आत्मा रजकण से लेकर बहुत स्कन्ध—लड्डू, दाल, भात, रोटी, सब्जी को ले नहीं सकता, छोड़ नहीं सकता, छोड़ नहीं सकता, तोड़ नहीं सकता, खा नहीं सकता। शोभालालभाई! यह गजब बात की। यह सब बड़े सेठिया कितने काम करते हैं, लो! ऐई! भगवानदासभाई! पहले तो यह स्वीकार कराकर कि वस्तु जो है, वह अनादि-अनन्त है। है, वह नयी नहीं होती; है, उसका नाश नहीं होता; है, उसका वर्तमान विद्यमानपना कभी टलता नहीं। तो वह है, ऐसा जो आत्मा उसकी अनन्त शक्तियाँ—गुण और उसकी अवस्था विकारी-अविकारी में वह रहा हुआ, व्यापक, टिका हुआ है। निगोद में हो तो भी वह, सिद्ध में हो तो भी वह। समझ में आया? निगोद। निगोद है न? आलू, शकरकन्द वे सब। उसमें भी वह आत्मा अपने गुण-पर्याय में ही व्यापकर रहा हुआ है। कर्म में व्यापकर रहा है या कर्म उसे व्याप्त करा देते हैं, ऐसा है नहीं। समझ में आया इसमें? कहो, समझ में आता है या नहीं? नवीनभाई! यह सब समझना पड़ेगा, हों! बाहर के थोथा में कुछ नहीं। यह सब स्त्री मर जाये तो वैसा हो जाये... हाय... हाय... ऐसा हुआ। वह सब धूल में धूल है। ऐई! वकील! आहाहा! अरे! लड़का मर जाये, स्त्री मर जाये और शरीर मर जायेगा। मर जायेगा अर्थात् टल जायेगा। आत्मा का कहाँ था यह? आत्मा में कहाँ था, वह आत्मा में मरे और आत्मा में कहाँ था, वह आत्मा से जीवे। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा स्वयं द्रव्य-वस्तु गुण और पर्याय—हालत—दशा। बस, इतने में व्याप्त उसका अस्तित्व, मौजूदगी, विद्यमान इतने में है। इसके अतिरिक्त दूसरी किसी भी चीज़ के कायम में या उसकी वर्तमान दशा में उसकी मौजूदगी नहीं। तथा दूसरी चीज़ें

जो कायम मौजूदगी रखती है और उसकी वर्तमान दशा है, वे दशायें आत्मा की मौजूदगी में एक समय भी उसकी अवस्था आती नहीं। समझ में आया? वह कर्म के उदय की अवस्था, कर्म के उदय की अवस्था कर्म के रजकण में व्यापकर रही हुई है। कर्म के उदय की अवस्था आत्मा की पर्याय में व्यापकर तीन काल में रहती नहीं। अमरचन्दभाई! बड़ा विवाद कर्म का। डण्डा बड़ा। अभी भी व्यवहारिक आत्मा उसे कैसा है, उसकी श्रद्धा का ठिकाना नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि ऐसा भगवान आत्मा शुद्धनय से एकपना है। वह तो अनेकपना कहा। गुण अनन्त, उसकी अवस्थायें विकारी और अविकारी भी अनन्त। अब उसका श्रद्धान करना उसमें अनेकरूप को मानना, उसमें सम्यग्दर्शन भी अनेकरूप हो जाता है। अनेकरूप अर्थात् यथार्थ सम्यग्दर्शन होता नहीं। समझ में आया? यह शुद्धनय से एकपना ध्रुव सामान्य चैतन्य चैतन्य। अनेकरूप को क्या कहा? कि नारकी की गति की अवस्था, राग-द्वेष की अवस्था, मतिज्ञान आदि की अवस्थायें उसमें व्यापकर रही हुई है। क्या कहा? अभी मनुष्यगति है। शरीर यह मनुष्यगति नहीं। अन्दर मनुष्यगति की अवस्था उदयभाव की, वह जीव की अवस्था में व्याप्त रही हुई टिकी हुई है। कर्म के कारण से नहीं।

मुमुक्षु : आयुष्य के कारण से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आयुष्य के कारण से बात नहीं। वह सब कर्म आयुष्य में चला गया। समझ में आया?

पहले यह सिद्ध किया, देखो न! '**व्यामुर्यदस्यात्मनः**' आचार्यों की शैली तो बहुत गहरी, गम्भीर! थोड़े में बहुत समझाते हैं। गागर में सागर भरकर बात करते हैं। भाई! तू कितने में? तेरे क्षेत्र में, तेरे काल में, तेरे भाव में कितने में है? पूरी चीज़। उसके गुण और वर्तमान अवस्था (में) है। वह अवस्था फिर राग करे, उस अवस्था में निरागी अवस्था हो, परन्तु उस अवस्था में व्याप्त हूँ। ऐसी अवस्था से तुझमें एक यह होंठ हिले या मुठ्ठी मार सके या लकड़ी ले सके, ऐसी आत्मा में विकारी पर्याय या अविकारी पर्याय में वह सामर्थ्य नहीं। अर्थात् कि उसके स्वरूप में यह स्थिति नहीं। समझ में

आया ? ...भाई ! क्या यह सब, तुम दलील करते हो कोर्ट में। दलील कौन करे ? जड़ ? आहाहा !

भगवान आत्मा अब इतने सब भेदों में है, वह तो एक को अनेक भेदवाला मानना, वह तो व्यवहार समकित की श्रद्धा (हुई)। है, ऐसी प्रतीति राग सहित की हुई। वह कहीं वस्तु श्रद्धा हुई नहीं। वह आत्मा, **यह आत्मा शुद्धनय से एकत्व में...** एकरूप ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... चेतन... चेतन... चेतन... चेतन... चेतन... चेतन... चेतन... उसमें नरकगति आदि की पर्याय नहीं आती, रागादि की पर्याय नहीं आती और मतिज्ञानादि की भी पर्याय वर्तमान अंश एकरूप में शुद्धनय के विषय में आती नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : अभेदरूप से नहीं आती ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभेद में आवे नहीं। अभेद में भेद देखे, वहाँ असत्यार्थ है। यह सूक्ष्म बातें है, भाई ! जैन सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो तत्त्व कहे, वे ऐसे ही हैं। परन्तु उस तत्त्व में... उसमें आता है न, परमात्मप्रकाश में नहीं ? उपाध्याय ऐसा उपदेश दे, अभेद निश्चयरत्नत्रय का ही उपदेश उपाध्याय देते हैं। ऐसा पाठ आता है। परमात्मप्रकाश में, नहीं ? भगवान आत्मा वह पर्यायवाला, विकारीवाला उसका ज्ञान कराते हैं। समझ में आया ? परन्तु उसके उपदेश में वास्तविक उपाध्याय, साधु अथवा आचार्य उसे कहते हैं कि जिनके उपदेश में भगवान आत्मा एक स्वरूप ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... अनन्त ऋद्धि जिसमें एकरूप में पड़ी है। और एकरूपपना, उसे श्रद्धा में बतावे, ज्ञान में बतावे, उसमें स्थिरता का बतावे। अभेदरत्नत्रय का उपदेश करे, उन्हें उपाध्याय कहा जाता है। आहाहा ! अभी विवाद वह विवाद। है या नहीं उसमें ? समझ में आया ? परमात्मप्रकाश में है। देखो ! गाथा है न शुरुआत में ? चार बातें की है न वह। पंचास्तिकाय। निज शुद्ध जीवद्रव्य, निज शुद्ध जीवतत्त्व, निज शुद्ध जीवपदार्थ आप शुद्धात्मा हैं, वही उपादेय है। अन्य सब त्यागनेयोग्य है—ऐसा उपदेश करते हैं। और शुद्धात्मस्वभाव का सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान, आचरणरूप अभेदरत्नत्रय, वही मोक्षमार्ग है, ऐसा उपदेश शिष्यों को देते हैं, ऐसे उपाध्याय को मैं नमस्कार करता हूँ, ऐसा कहते हैं।

दोनों बातें की। समझ में आया? अमरचन्दभाई! दो प्रकार वर्णन किये हैं उन्होंने। उपाध्याय है न। जो कोई उपदेशक आचार्य या उपाध्याय ऐसे होते हैं, सच्चे उपदेशक कि उसे शुद्धात्मा एक स्वरूप अखण्डानन्द है, उसका उपदेश देते हैं। और वैसा शुद्धात्मा एकाकार है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र की रमणता का अभेदरत्नत्रय का उपदेश देते हैं। समझ में आया? भगवानदासभाई!

मुमुक्षु : दान, पूजा का कब आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : दान, पूजा में यह आ जाये। ऐसा बतावे उसमें रागादि हों, उनका ज्ञान आ जाता है। समझ में आया? अभी तो उपदेशक कैसे होते हैं, इसकी खबर नहीं होती। और जहाँ-तहाँ सिर फोड़ने जाये। लाओ... लाओ। क्या दे वहाँ? उसके पास हो तब न? यहाँ तो सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं कि हमारे उपाध्याय, सन्त ऐसे होते हैं, आचार्य ऐसे होते हैं कि अकेला शुद्ध वीतरागी परमात्मस्वरूप आत्मा, उसे शुद्धात्मरूप से समझाते हैं। समझ में आया? व्यवहारनय रूप का आत्मा तो अनादि से माना है। ऐसा यहाँ तो कहना है, भाई! समझ में आया?

शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है - ऐसे आत्मा की बात जगत के पास रखे। भाई! जिसमें सत्पने का आदर और सत् का स्वीकार होने से सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा शुद्ध भगवान आत्मा, उसे यहाँ आत्मा कहा जाता है। वह **निश्चित किया गया है - शुद्धनय से ज्ञायकमात्र एक-आकार दिखलाया गया है,...** भगवान आत्मा एकरूप त्रिकाल ज्ञान-ज्ञान... चेतन... चेतन... चेतन। पर्याय नहीं, राग नहीं, गति नहीं, संयोग नहीं। अकेला त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव, उसे शुद्धनय से बताया गया है कि जिसकी दृष्टि करने से जीव को अनन्त काल में नहीं हुआ, (ऐसा) सम्यग्दर्शन होता है और वह सम्यग्दर्शन धर्म की पहली सीढ़ी है। कहो, अमरचन्दभाई! यह सब उठकर यह सब करो, यह करो, व्रत पालो, कषाय मन्द करो। धूल में भी नहीं अब। अभव्य करता है, सुन न! वीतरागमार्ग सर्वज्ञ, ऐई! भगवानदासभाई! यह सब सेठिया दान दे पाँच, पचास हजार, लाख। बहू तो दे नहीं सकती। जितना हो उतना दे। थोड़ा बहुत करे। क्योंकि करोड़ में से पचास लाख दे दे, ऐसा है वह?

मुमुक्षु : एक लाख दे तो भी....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु करोड़ दे तो भी कुछ धर्म नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि यहाँ भगवान आत्मा में राग की मन्दता हो और अल्पज्ञता हो, उसके लक्ष्य से भी सत् का स्वीकार नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया? भगवान शुद्ध चैतन्य की मूर्ति है। परमानन्द की मूर्ति एकस्वरूप। ऐसे **शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है...** उसमें अनेकपना था। यह एकपने में निश्चित करने में आया। क्या? एक शुद्धनय से, भाई! एकाकार ज्ञायकमात्र एक स्वरूप दिखलाया गया है। एकस्वरूप की अन्तर दृष्टि कर। एकाग्र होकर एक को लक्ष्य में ले। एकाकार में एकाकार (एकाग्र) होने से तुझे सम्यग्दर्शन होगा। इसके अतिरिक्त कोई सम्यग्दर्शन की पद्धति है नहीं। न्यालभाई!

मुमुक्षु : गुरु कृपा से होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरुकृपा वहाँ काम नहीं आती। शत्रुंजय और सम्मेदशिखर भी काम आता नहीं। साक्षात् तीर्थंकर तीन लोक के नाथ समवसरण में हो, उनके लक्ष्य से भी वहाँ सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? ऐसा दिखलाया गया है। अस्ति की।

उस सर्व अन्य द्रव्यों और अन्य द्रव्यों के भावों से अलग देखना,... नास्ति से बात करते हैं। भगवान आत्मा चैतन्य का पिण्ड प्रभु अनन्त गुण का एकरूप, ऐसी श्रद्धा करना और अन्य द्रव्यों से और उनके भावों से। अन्य द्रव्य के भाव, हों! विकारी नहीं। उससे भगवान आत्मा को परलक्ष्य छोड़कर पर के अस्तित्व में लक्ष्य जो है, वह पर के अस्तित्व के लक्ष्य को छोड़कर अपना एकरूप चिदानन्द ज्ञायकस्वरूप है, उसके अस्तित्व में रहकर उसे भावों से न्यारा देखो। भगवान आत्मा को कर्म और राग से न्यारा देखो। यहाँ तो परद्रव्य से न्यारा देखने से राग से भी न्यारा दिखता है। आहाहा! गजब बात, भाई! देखो! यह मंडुक—मेंढ़क को समकित हो तो ऐसा होता है। देडका समझते हो न? मेंढ़क। मेंढ़क-मेंढ़क। कहाँ गये? नवरंगभाई! यह करा दो हमको (ऐसा कहते थे)।

आत्मा बाह्य लक्ष्य के अनेक भेदों में अपने अनेक भेद, हों! पर की बाते एक ओर छोड़ दो। अनेक भेद में एकपने की दृष्टि का अव्यभिचारीपना सम्यग्दर्शन प्रगट होता नहीं। इसलिए भगवान आत्मा एक स्वरूप ज्ञायक, उसे परद्रव्य से भिन्न देखना, वह नियम से सम्यग्दर्शन है। वह निश्चय से सम्यग्दर्शन है, सत्यस्वरूप सम्यग्दर्शन है, अव्यभिचारी सम्यग्दर्शन है। इसमें कोई दोष आता नहीं। समझ में आया? अरे! गजब बात, भाई! बड़ा परमात्मा दृष्टि से उठाना है।

पूरी वस्तु है या नहीं अखण्ड? आदि-अन्त बिना की अनादि है न? है तो अनन्त गुण का एकरूप है। उसे दृष्टि में लेकर निश्चय सम्यग्दर्शन हो, उसे सत्यदर्शन कहा जाता है। उस समय आत्मा का साक्षात्कार होता है। आहाहा! शान्ति बाद में कही जायेगी। आनन्द का वेदन कहना है न! यह अभेद चेतन एकरूप दृष्टि में सत्य दर्शन होता है, एकरूप दर्शन में सम्यग्ज्ञान होता है, एकरूप दर्शन में शान्ति होती है। स्वरूपाचरण कहा। एकरूप दर्शन में आनन्द होता है। अनेकरूप श्रद्धा में दु:ख होता है, अनेकरूप के ज्ञान में दु:ख होता है, अनेकरूप में स्थिर होना, वह दु:खरूप है; और एकरूप में श्रद्धा-ज्ञान से स्थिर होना, वह आनन्दरूप है। आहाहा! यह बात!

अरे! सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर कहे, उसकी इसे खबर पड़ती नहीं। पढ़-पढ़कर पढ़े। शास्त्रों के थोथा के थोथा। लाखों-करोड़ों पुस्तकें (वाँचे)। परन्तु मूल वस्तु क्या है, वह तो कह अब। सार क्या है सब पढ़े-फढ़े का? समझ में आया? जिसमें भगवान आत्मा पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... गुण का पिण्ड प्रभु। पूर्ण ज्ञानघन है न। पूर्ण ज्ञानघन अकेला ज्ञान का पिण्ड प्रभु है। भेद बिना की चीज़, हों! पर्याय और भेद बिना की। अकेला पूर्ण ज्ञानघन है, चैतन्यघन है, विज्ञानघन है। स्वरूप से पूर्ण चैतन्य के नूर से भरपूर भरा हुआ भगवान आत्मा है। आहाहा! कहाँ कभी नजर में बैठे नहीं, श्रद्धा में आवे नहीं। भटका करे बाहर का बाहर। समझ में आया?

'खग पग गगन मीन पद जल में जो खोजे सो बोरा,' आनन्दघनजी कहते हैं। 'खग पग गगन'। पक्षी के पैर आकाश में खोजने जाये तो वहाँ मिलेंगे नहीं। पण्डितजी! खग-खग। ऐसा चले न। क्या चले? वहाँ चरण पड़े हैं। 'खग पग गगन, मीन पद जल

में...' मछलियाँ पानी में कहाँ चले? 'चित्त पंकज खोजे सो चिह्ने रमता आनंद भोरा' राग और विकल्प और भेद में खोजने जाता है, वहाँ भगवान आत्मा हाथ नहीं आता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कितने ही बात इन्होंने आनन्दघनजी ने की है।

खग पद गगन, मीन पद जल में जो खोजे सो बोरा,
चित्त पंकज खोजे सो चिह्ने, रमता आनन्द भौरा।
अबधु अनुभव कलिका जागी,
मति मेरी आतम सुमरन लागी।
मति मेरी आतम सुमरन लागी।
अबधु ऐसो ज्ञान विचारी। वहाँ कौन पुरुष कौन नारी।'

कौन पुरुष और कौन नारी? आत्मा में है ही कहाँ कोई? समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं... अर्थ भी जो भरा है न भाव, ऐसा ही अर्थ किया है। पण्डित जयचन्द्रजी ने। कहते हैं कि यह भगवान आत्मा वस्तु से परिपूर्ण एकरूप है। उसे शुद्धनय अर्थात् सम्यक्—सच्चा ज्ञान, वह ज्ञेय को पकड़ता है। और इससे उसे सम्यग्दर्शन साक्षात्कार—आत्मा का अनुभव होकर साक्षात् वेदन होकर, प्रत्यक्ष श्रुतज्ञान में और आत्मा को सच्ची प्रतीति—सम्यग्दर्शन दशा प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया? यह उसकी पद्धति और यह उसका रास्ता। यह पद्धति छोड़कर दूसरे प्रकार से करने जायेगा तो वस्तु हाथ नहीं आयेगी। आहाहा! समझ में आया? और ऐसे सम्यग्दर्शन बिना जो कुछ करे, व्रत और नियम, वे सब थोथे थोथा चार गति में भटकने के साधन हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा पूर्णानन्द जिसे कहते हैं... देखो! अब कहते हैं कि **व्यवहारनय आत्मा को अनेक भेदरूप कहकर...** भाषा तो पहली आत्मा को भेदरूप कहा। भाई! यह निश्चयनय वस्तु को एकरूप कहकर उसकी श्रद्धा करावे, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! अरे! मूल... मूल... मूल... रास्ता यह। समझ में आया? जाना हो पूर्व में और चलने लगे पश्चिम में। आथमणे क्या कहलाता है वह? पश्चिम। पूर्व में जाना हो और

पश्चिम में मुठ्ठी बाँधकर चले तो मार्ग काटते हैं। दूर पड़ता जाता है, सुन न अब। जिसके सन्मुख देखना चाहिए, उसे तो तू पहिचानता नहीं। जिससे विमुख होना, वह कौनसी चीज़ है, उसे जानता नहीं। कहाँ तुझे जाना है और क्या तुझे करना है ?

मुमुक्षु : दोनों व्यर्थ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों व्यर्थ हैं। आहाहा! मुद्दे की रकम ऐसी है, हों! आज तो बराबर यह। रविवार है न।

कहते हैं, **व्यवहारनय...** गजब अर्थ किया है न! **व्यवहारनय आत्मा को अनेक भेदरूप...** कहता है। उसमें राग है, उसमें निर्मल अवस्था है, अनन्त गुण हैं, वह नारकी है, देव है, क्रोधी है, मानी है, अनन्त गुणवाला है, वह व्यवहार की ऐसे अनेक भेदवाला आत्मा को बतलाता है। और **सम्यग्दर्शन को अनेक भेदरूप कहता है,...** व्यवहारनय आत्मा को अनेक भेदरूप कहकर सम्यग्दर्शन अनेक भेदरूप कहता है। इसकी श्रद्धा करना, वह समकित; इसकी श्रद्धा करना, वह समकित; इसकी श्रद्धा करना, वह समकित। ऐसा समकित, वह सच्चा है नहीं। **वहाँ व्यभिचार (दोष) आता है,...** अनेक ऊपर की श्रद्धा और अनेकपने की मान्यता, वह तो सम्यग्दर्शन है ही नहीं। वह तो राग है अथवा द्रव्य-गुण और पर्याय पूरे भेदवाले की—यह नारकी है और देव है और रागी है—ऐसी श्रद्धा, वह श्रद्धा सम्यग्दर्शन की पर्याय नहीं। वह श्रद्धा बहुत तो ज्ञान के उघाड़ की पर्याय राग की शुभरागवाली है। वह सम्यग्दर्शन पर्याय नहीं। इसलिए उसमें व्यभिचार आता है, (ऐसा) कहते हैं। आहाहा! क्या कहा ? समझ में आया ? थोड़ा सूक्ष्म परन्तु पूरा समझना ही पड़ेगा इसे। लम्बा समझे बिना भले कुछ न आवे परन्तु यह समझे नहीं तो इसका कल्याण होगा नहीं। आहाहा! भले भाषण करना न आवे और दूसरे को समझाना न आवे। वह दूसरी चीज़ है।

यह भगवान आत्मा, कहते हैं कि एकरूप वस्तु भगवान, उसे शुद्धनय एकरूप को बतलाकर सम्यग्दर्शन का यथार्थ स्वरूप बतलाता है। व्यवहारनय, वह आत्मा को अनेकरूप बतलाकर, अनेकपने की श्रद्धा अर्थात् वह सम्यग्दर्शन की पर्याय है ही नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। अनेकपने को माने, वह तो अनेकपने का परलक्ष्यी ज्ञान पर्याय

में हुआ और शुभराग हुआ। वह सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! समझ में आया? नहीं समझ में आता, ऐसा निकाल डालना चाहिए। भगवान आत्मा एक समय में त्रिकाल ज्ञान चैतन्यशक्ति प्रगट करना, ऐसी सामर्थ्य धराता है। समझ में आया? निगोद के निकले आठ वर्ष में मनुष्य होकर साधु होकर अन्तर्मुहूर्त में केवल (ज्ञान) प्राप्त करे। आहाहा! उनमें सामर्थ्य है, परन्तु वह कौन है, उसकी इसे खबर नहीं। दूसरे की सामर्थ्य की कीमत की कीमत आँके। हीरा ऐसा ऊँचा, धूल ऐसी ऊँची, मिर्ची ऐसी, फलाना ऐसा, ढींकणा ऐसा। यह डॉक्टर (ऐसा कहे) दवा ऐसी। ऐई! कहाँ दूसरे यह नवरंगभाई! यह डॉक्टर सब हैं न घाटकोपर से। डॉक्टर यह इंजेक्शन लगाना। यह होता है और इसका ऐसा इंजेक्शन हिलना हो और ढींकणा हो, ऐसी बातें करे।

मुमुक्षु : .... ऐसी।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं उसमें। पर की कीमत (की)। कहाँ है? ऐ... वकील! ऐसा है। परन्तु स्वयं चैतन्य हीरा अन्दर चैतन्य रत्नाकर भगवान परमानन्द की मूर्ति कौन है? 'परख्या माणेक मोतिया, परख्या हेम कपूर, पण एक न परख्यो आत्मा वहाँ रह्यो दिग्मूढ।' मूढ़ होकर बैठा। पण्डित हुआ बड़ा ग्यारह अंग पढ़-पढ़कर, हों! नौ पूर्व पढ़ा। क्या हुआ परन्तु? वह तो परलक्ष्यी वस्तु है, भेदवाला ज्ञान है। उसकी श्रद्धा करना, वह व्यभिचार है। समझ में आया? अर्थात् व्यभिचार का अर्थ कि जो सम्यग्दर्शन की पर्याय है, वह पर्याय नहीं। समझ में आया? जीव को भेदवाला श्रद्धा करना, पर्यायवाला ऐसा अनेकवाला, व्यवहारनय अनेकपना बतावे और अनेकपना श्रद्धा करना, वह सम्यग्दर्शन की पर्याय नहीं। वह मिथ्यादर्शन की पर्याय वास्तव में है, शुभराग और ज्ञान का उघाड़। यह नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा का अनुभव, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! और गजब! समझ में आया? उसे व्यवहार से ऐसा कहे, उसे व्यवहार श्रद्धा है न, श्रद्धा है न, श्रद्धा है न। व्यवहार श्रद्धा है। परन्तु व्यवहार श्रद्धा अर्थात् क्या? वह श्रद्धा-गुण की पर्याय नहीं। श्रद्धा नहीं, उसे श्रद्धा व्यवहार कहता है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो समझ में आया? यह साहब को भली मति हो। विश्राम में है। आराम का वाक्य है यहाँ का।

कहते हैं, **व्यवहारनय आत्मा को अनेक भेदरूप कहकर...** भेदरूप कहकर उसकी श्रद्धा को भी अनेक भेदरूप बतलाता है। उसकी श्रद्धा... उसकी श्रद्धा... उसकी श्रद्धा... परन्तु कितनों की श्रद्धा? वह तो परलक्ष्यी ज्ञान की उघाड़ की पर्याय है। समझ में आया? वह कहीं सम्यग्दर्शन की पर्याय नहीं। आहाहा! **वहाँ व्यभिचार (दोष) आता है, नियम नहीं रहता।** नियम अर्थात् वास्तविक सम्यग्दर्शन की जो पर्याय है, वह वस्तु प्रगट नहीं होती। अनेक के आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया? निश्चय रहता नहीं, वास्तविकता रहती नहीं, यथार्थता रहती नहीं। जीव और अनन्त गुण और यह पर्याय और नारकी, देव और क्रोध, मानी... कषाय मन्द, ऐसे अनेकपने बतलाता है, उसमें सम्यग्दर्शन का वास्तविकपना आता नहीं।

शुद्धनय की सीमा तक पहुँचने पर व्यभिचार नहीं रहता... शुद्धनय एक स्वरूप को बतलानेवाला चैतन्यज्योति सामान्य ध्रुव, उसे बतलानेवाला, उसकी सीमा में पहुँचने से व्यभिचार अर्थात् जो राग और ज्ञान की पर्याय को सम्यग्दर्शन मानते (थे), वह व्यभिचार वहाँ रहता नहीं। इसलिए वह नियमरूप सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

मुमुक्षु : शुद्धनय की सीमा में अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धनय की मर्यादा, उसकी मर्यादा सामान्यस्वरूप, उस ओर दृष्टि जाना वह है। समझ में आया? शुद्धनय की मर्यादा वह है। व्यवहार की मर्यादा अनेक बतलाती है। शुद्धनय की मर्यादा एक स्वरूप को बताती है। ध्रुव चैतन्य अनादि-अनन्त। मति आदि की पर्याय नहीं, क्रोध आदि का भाव नहीं, गति आदि का विकल्प नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म तो है भाई! यह तो मूल विषय है न! कहो, रामस्वरूपजी! यह विषय नहीं चले न, फिर दूसरे प्रकार से करे ऐ... सोनगढ़वाले ऐसा कहते हैं। भाई! यह सोनगढ़वाले नहीं, यह तो त्रिलोक के नाथ कहते हैं। सुन न! समझ में आया? भगवान तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव ऐसा कहते हैं। इस प्रकार से कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। इस प्रकार से अर्थ किया जाता है। समझ में आया? परन्तु सुनी हुई बात न हो, बाहर से गोते खाये। ऐसा है। हमको श्रद्धा नहीं? हमको श्रद्धा नहीं? अपवास करके बैठा हो न महीने के (पश्चात् ऐसा कहे) श्रद्धा बिना करता है यह कहीं? परन्तु वह श्रद्धा नहीं।

सुन न! अपवास करके बैठा और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह श्रद्धा नहीं। समझ में आया? एक व्यक्ति और ऐसा कहता था। बहुत वर्ष हुए। (संवत्) १९८५ के वर्ष में। यह सब तुम सुनने आते हो तो भगवान की श्रद्धा बिना आते हो? तुमको श्रद्धा नहीं? लो, यह श्रद्धा। नेमिदासभाई! वह यह सब तुमने सुना है गड़बड़ गड़बड़। यह श्रद्धा। किसकी श्रद्धा?

मुमुक्षु : भटकने की।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान आत्मा एक समय में पूर्णानन्द का नाथ, जिसके ओर की दृष्टि जाकर श्रद्धा न हो तब तक श्रद्धा-फ्रद्धा थोथा है तेरा। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा कर और नौ तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा, सब थोथा है। सुन न, यह तो व्यभिचार है। सम्यग्दर्शन का वास्तविकस्वरूप अव्यभिचारी जो है, वह तो एक स्वरूप की प्रतीति करने से होता है। आहाहा! तो वह सत्य है। वरना सत्य है ही नहीं। आहाहा! ऐई! न्यालभाई! गये तुम्हारे लड़के? गये होंगे सब। पर्यूषण आता है न। यह सेठ भी जानेवाले हैं।

कहते हैं... आहाहा! **शुद्धनय की सीमा...** सीमा अर्थात् मर्यादा। उसका स्वरूप भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ स्वरूप से एक, उसकी दृष्टि करने से, उसकी मर्यादा में जाने से, उसकी हद की दशा में जाने से व्यभिचार रहता नहीं। सम्यग्दर्शन यथार्थ प्रगट होता है। मिथ्यादर्शन को समकित मानना या शुभराग को समकित मानना या ज्ञान के उघाड़ की प्रतीति हो, उसे समकित मानना, वह व्यभिचार शुद्धनय की सीमा में जाने से, मर्यादा में जाने से, वह व्यभिचार रहता नहीं। बात गजब की है। कहो, समझ में आया? ऐई! नटुभाई! है? इसमें है?

इसलिए नियमरूप है,... इसीलिए व्यभिचार रहता नहीं। उसमें कहा था न? नियम रहता नहीं। तब यहाँ कहते हैं नियमरूप है। यह दो के साथ अस्ति-नास्ति की। भगवान आत्मा एक ही अंशवाला माने अथवा गुण के भेदवाला माने, उसमें एकरूप आता नहीं, पूर्ण रूप आता नहीं। इसलिए भेदवाले की मान्यता को सम्यग्दर्शन कहते नहीं। वह तो ज्ञान के उघाड़ में जरा परलक्ष्यी उघाड़ उसमें जरा आया कि इतना है। वह सम्यग्दर्शन की पर्याय नहीं।

मुमुक्षु : अनेकान्त हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अनेकान्त हुआ। एकरूप की श्रद्धा करने से भेदरूप की श्रद्धा का श्रद्धा में नाश हो जाता है। समझ में आया? आहाहा! गजब बात, भाई! अभी तो यह मूल पाया की बात है। फिर और चारित्र कैसा कहलाता है और उसकी भूमिका में व्रत के विकल्प कैसे होते हैं, वह तो बाद में, परन्तु इसके बिना कहाँ से लाया तेरा चारित्र? जिसमें स्थिर होना है, वह चीज़ कौन है, उसका तो भान नहीं होता। चारित्र तो चरना, रमना, जमना, आनन्द की लहर उड़ाना। चारित्र अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द के लड्डू खाना। लड्डू तैयार। अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द भगवान, उसे दृष्टि में लिया है, अतीन्द्रिय का स्वाद आया है और स्थिर होने से अतीन्द्रिय आनन्द इतना आवे कि जिसमें जिसे जगत में परीषह और प्रतिकूलता कहाँ है, उसका भान नहीं। ऐसे अन्तर रमणता के आनन्द को चारित्र कहा जाता है। और यह तो अभी नग्न हुए, वस्त्र बदले, यह क्रिया और हो गया चारित्र। धूल में भी नहीं। जिन्दगी जायेगी मुफ्त। अनन्त काल गया ऐसा, वह तेरा भव है। समझ में आया? शोभालालभाई! यहाँ तो ढींढोरा पीटकर कहा जाता है यह।

भगवान पुकारते हैं देखो यहाँ। नियम से सम्यग्दर्शन अभेद भगवान आत्मा को एकरूप प्रतीति करने से, अनुभव करने से, साक्षात्कार होने पर प्रतीति और ज्ञान और आनन्द आता है। अनेकरूप उसकी श्रद्धा करने से भी मिथ्यात्व होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब भाई! उसमें कहा है न यह? उसमें ही कहा है न? नौ तत्त्व का अनुभव वह मिथ्यात्व है। वह इस कलश में ही कहा है। इसमें। इसमें है न? यह कलशटीका। यह क्या है? यह है क्या? कितना है यह? छठवाँ। कान्तिभाई! कहते मेरे छठवाँ आया और दोपहर में यह आया। उसमें है, देखो!

संसार अवस्था में जीवद्रव्य नौ तत्त्वरूप परिणमा है। वह तो विभाव परिणति है, इसलिए नौ तत्त्वरूप वस्तु का अनुभव मिथ्यात्व है। 'यदस्यात्मनः इह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक् दर्शनम् नियमात् एतदेव सम्यग्दर्शनम्' यह श्लोक है छठवाँ। समझ में आया? राजमलजी ने बहुत सरस अर्थ किये हैं। परन्तु अभी के वे पढ़े हुए का अभिमान हो न।

वे पण्डित थे। भाई पण्डित दूसरे प्रकार के थे। वे मानो हम बहुत पढ़े हैं। एक पण्डित ऐसे पण्डित का, दूसरे पण्डित का कितना पण्डित का मैंने तो जाना है। अरे! भगवान! इस आत्मा को अन्तर दृष्टि का अनुभव हुए बिना उसे पण्डित नहीं कहा जाता। स्वामी कार्तिकेय कहते हैं, ऐ पण्डित! ऐ वीरा! ऐ शूरवीर! जिसे भगवान आत्मा एक स्वरूप से दृष्टि में प्राप्त हुआ और अनुभव किया। आनन्द के भानसहित साक्षात्कार किया, वह पण्डित कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! नियम है।

कैसा है शुद्धनय का विषयभूत आत्मा? पूर्ण ज्ञानघन है.... वस्तु, वह तो ज्ञान की मूर्ति है। ज्ञान की मूर्ति क्या ज्ञेय को न जाने? जाननेवाला किसे न जाने? न जाने, ऐसा जाननेवाले के स्वभाव में हो सकता ही नहीं। अरे! भगवान! क्या करे? इसके अर्थ भी दूसरे प्रकार के करना, वह लाईन ही बदल गयी है, वहाँ क्या करे? आत्मा ही स्वयं जिस ओर जाता है, उसकी अशुद्धता भी बड़ी कि बड़े तीर्थंकर हों तो भी बदले नहीं। आहाहा!

भाई! सर्वज्ञ अर्थात् क्या? उसका यहाँ तो ज्ञानस्वभाव त्रिकाली लेना है, हों! वह त्रिकाल ज्ञानघन ऐसा स्वरूप है कि जिसका ज्ञ स्वभाव, ज्ञ स्वभाव, ज्ञायकस्वभाव, पूर्ण स्वभाव, घन स्वभाव, एकरूप स्वभाव, वह किसे न जाने? ऐसा उसका सामर्थ्य पूर्ण ज्ञानघन है। समझ में आया? पूर्ण ज्ञानघन, यह प्रधानता ज्ञान से ली। द्रव्य तो आत्मा परन्तु वस्तु क्या है? पूर्ण ज्ञानघन है ऐसा। पूर्ण ज्ञानघन है। अकेला ज्ञानघन पिण्ड है। बड़ी बर्फ की शिला। समझ में आया?

अरे! सदी के... शियाळो क्या कहलाता है? जाड़ा के दिन। सदी में जाड़ा के दिन में ऐसा घी होता था। अब तो सब बिगड़ गया। पहले के घी में। हम जब गाँव में रहते न। (संवत्) १९८२ में। वह भैसों का घी। अँगुलियाँ तो कैसी घुसे? फाँस लगे तो रोग हो। नवनीतभाई! परन्तु खुरपी नहीं घुसे। यह नजर से देखा है, हों! ८२ के वर्ष में। नहीं? पन्द्रह दिन रहे थे। कितने वर्ष हुए? ४० हो गये। घी-घी। यह तो तुम्हारे कालाबाजार करने लगे बनिया और घी में करने लगे। अब तो सब चारों ओर होने लगा। यह घी उस समय में देखा हो तो अँगुली किसकी घुसे? अन्दर डाले नहीं। घुस जाये तो

वापस फाँस लगे उसकी। परन्तु खुरपी। तावेथो समझे न? लोहे का। खुरपी-खुरपी। खुरपी डाले ऐसे। तब तो बहुत सस्ता घी था न। आहारदान में आधा सेर आधा सेर घी दे। आधा सेर आधा सेर। खुरपी घुसे नहीं।

इसी प्रकार आत्मा पूर्ण ज्ञानघन जिसमें विकल्प प्रवेश नहीं करता। समझ में आया? यह तो वह दृष्टान्त दिया था। दृष्टान्त का कुछ काम नहीं। यह तो देखा हुआ, धरमसिंहभाई के यहाँ आहार लेने जाते। वे डिब्बे हो न डिब्बे? उनमें घी भरा हुआ हो। अडधिया। अडधिया हो न डिब्बे के? घी तो ऐसे कि उल्टा करो तो गिरे नहीं, ऐसा मजबूत घी। उसमें घुसे किसकी अँगुली? भगवान विज्ञानघन जमा हुआ तत्त्व है अन्दर। जिसमें राग और विकल्प और अपना विकार तो प्रवेश करने की जिसमें शक्ति है नहीं। आहाहा! परद्रव्य की यहाँ बात नहीं। परद्रव्य से निराला पहले कह दिया। परन्तु पूर्ण ज्ञानघन जो वस्तु चैतन्यपिण्ड वस्तु है। दया, दान के विकल्प अन्दर प्रवेश करे, ऐसी शक्ति घन में नहीं। विकल्प की सामर्थ्य नहीं कि अन्दर प्रवेश कर सके। कहो, समझ में आया? आहाहा!

इतना आत्मा परन्तु इसे एक दाल बिना चले नहीं, रोटी बिना चले नहीं, उड़द की दाल एक रस न हो। सदडी (एक रस) न हो तो ढींचणीयुं* उठे कि ऐसा किया। और कहे कि ...! पूर्ण ज्ञानघन, सुन तो सही। है तो ऐसा। ऐसा क्रोध तू कर तो भी वस्तु तो ऐसी है कि क्रोध भी उसमें प्रविष्ट नहीं। समझ में आया? ऐसा चैतन्य का पिण्ड भगवान ज्ञान का पिण्ड है। समझ में आया? पीपर के दाने का दृष्टान्त उसमें दिया है। समाधिशतक में कल वाँचा था। पीपर के दाने का। (हम भी यह दृष्टान्त) देते हैं न बहुत बार। भाई ने दिया है, छोटाभाई ने डाला है। पीपर के दाने में चौंसठ पहरी चरपराई भरी है या नहीं अन्दर? इतना दाना है। दाना कितना? पीपर-पीपर। लींडी पीपर-छोटी पीपर। अन्दर... अन्दर... अन्दर... चौंसठ पहरी चरपराई का पिण्ड भरा है, चौंसठ का पिण्ड भरा है। तो प्रगट चौंसठ होता है। वह कहाँ से आता है? प्राप्त की प्राप्ति है या न हो, उसमें से आता है? चौंसठ पहरी यह तुम्हारे डॉक्टर को तो कहाँ यह था? वैद्यों को

*** पुराने जमाने में भोजन करते समय थाली के नीचे रखा जानेवाला लकड़ी का टुकड़ा।**

होता है। तुम्हारे तो इंजैक्शन और दवायें और गोलियाँ सफेद और काली।

एक इतनी छोटी पीपर इतनी। उसमें चौंसठ अर्थात् रुपया रुपया (पूर्ण)। चरपरा रस पिण्ड। पिण्ड-दल-सत्त्व पड़ा है पूरा। चौंसठ पहरी कहते हैं न? चौंसठ पहरी पर्याय कहते न, प्रगट हो तब। चौंसठ पहरी कहते न! चौंसठ पहरी कहाँ से आयी? पत्थर में से आयी? इसी प्रकार भगवान आत्मा में चौंसठ अर्थात् पूर्ण ज्ञानघन, ऐसा कहना है यहाँ। पूर्ण ज्ञानघन है, पूर्ण ज्ञानघन है, पूर्ण आनन्दघन है, पूर्ण शान्ति का पिण्ड है। आहाहा! यह पीपर का भरोसा बैठे। इतना बड़ा तीन, साढ़े तीन हाथ का व्यापक पृथक् (उसका भरोसा नहीं)।

पूर्ण ज्ञानघन है - सर्व लोकालोक को जाननेवाला ज्ञानस्वरूप है। जाननेवाला, उसकी शक्ति की बात करते हैं, हों! उसमें तो लोकालोक को जानने का स्वभाव है। किसी का करना, किसी का बदलना, किसी को सहायता करना, किसी से लेना, यह उसके स्वरूप में है नहीं। यह तो जगत के लोकालोक जगत के पदार्थों को भगवान ज्ञान-दर्शन का भरपूर प्रभु जानने के स्वभाववाला तत्त्व—ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। **ऐसे आत्मा का श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन है।** लो, वह पूर्ण एकरूप ज्ञानघन। उसके अन्तर सन्मुख होकर साक्षात्कार आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान करना और उसमें प्रतीति करना, उसके आनन्द का वेदन करना, उसमें भरोसा करना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! कहो, देवीलालजी! सम्यग्दर्शन कैसे होता और किसी प्रकार से होता है, यह सुना नहीं। अब वे बेचारे सिरपच्ची करके मर जाये ऐसे के ऐसे। कोई कहे क्रिया रे... यह आता है न आनन्दघनजी में? क्रिया करें तो ऐसा होगा, ढींकणा करते हैं तो ऐसा होगा। मर जाये न क्रिया कब इसके घर में थी? राग का विकल्प भी इसके घर में नहीं, ऐसा भान हुए बिना तू कौन सी क्रिया करेगा? समझ में आया?

कहते हैं, **ऐसे आत्मा का श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन है।** ऐसे अर्थात्? **शुद्धनय का विषयभूत आत्मा पूर्ण ज्ञानघन है...** ऐसा। वह समुच्चय लिया न विषयभूत आत्मा। वह कैसा है? पूर्ण ज्ञानघन है। अकेला ज्ञानसत्त्व। सत् का सत्त्व ज्ञानघन है। आत्मा सत्, उसका सत्त्व अकेला पूर्ण ज्ञानघन है। चैतन्यपिण्ड है। उसकी अन्तर में सन्मुख होकर

साक्षात्कार करना, ऐसे श्रद्धानरूप को सम्यग्दर्शन कहते हैं। वह आत्मा हथेली में आ गया। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह विषय ऐसी चीज़ है कि इसके पठन अधिक पढ़े तो आ जाये, ऐसा कुछ नहीं। तथा कषाय को मन्द करके बड़ी तपस्यायें करे और व्रत पालन करे तो हाथ आ जाये, वह चीज़ नहीं। यह तो वस्तु का स्वरूप जिसे पहले ज्ञान में—लक्ष्य में लेकर। इतना आत्मा! ऐसा आत्मा! वह पूर्ण ज्ञानघन वह आत्मा! पर्याय जितना नहीं, राग तो नहीं, पर तो नहीं। ऐसे स्वभाव को अन्तर्मुख दृष्टि में लेकर और अनुभव करना, उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। साक्षात् आत्मा ज्ञान में आ गया। यह पूर्ण वस्तु। प्रतीति में आ गया, स्थिरता में। उसमें रमणता करनेयोग्य है, ऐसी प्रतीति हो गयी। रमणता का अंश आया कि इसमें रमण करने से मेरी शान्ति है, इसमें रमण करने से मेरी मुक्ति है। राग और विकल्प में रमण करने से मुक्ति है, ऐसा फिर मानता नहीं। समझ में आया?

यह कहीं पृथक् पदार्थ नहीं है,... अब अभेद की बात करते हैं। सम्यग्दर्शन अकेला आत्मा है न? उसकी व्याख्या करते हैं। **यह कहीं पृथक् पदार्थ नहीं है,...** सम्यग्दर्शन, वह कोई अलग चीज़ नहीं। त्रिकाली वस्तु, उसका पूर्ण ज्ञानघनस्वरूप, उसकी प्रतीति अर्थात् द्रव्य-गुण और पर्याय अभेद हो गये, ऐसा। द्रव्य जो वस्तु आत्मा, उसका पूर्ण ज्ञानघन स्वभाव, उसकी प्रतीति-श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन आत्मा है। वह सम्यग्दर्शन पर्याय आत्मा है। समझ में आया? **यह कहीं पृथक् पदार्थ नहीं है,...** भगवान आत्मा के क्षेत्र से या भाव की दशा से भिन्न चीज़ है, ऐसा है नहीं। वह वस्तु का ज्ञानघनस्वरूप जो है, उसकी अन्तर में वस्तु को ध्येय करके जो सम्यग्दर्शन अनुभवसहित ज्ञान भान हुआ, वह तो पर्याय अभेद हो गयी। रागादि का भेद पड़ता था, अनेकपने का प्रकार पड़ता था, वह तो भिन्न-भिन्न पड़ता था। यह पर्याय तो द्रव्य अर्थात् आत्मा, उसका गुण ज्ञानघनस्वरूप पूर्ण, उसकी प्रतीति होकर श्रद्धा अभेद हो गयी, वह तो आत्मा है। वह द्रव्य आत्मा, गुण आत्मा और सम्यग्दर्शन की पर्याय भी आत्मा। समझ में आया? ऐसा क्यों कहा? व्यवहार सम्यग्दर्शन है ज्ञान का उघाड़ एक समय की पर्याय और राग, वह कहीं आत्मा-फात्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अरे! आठ-आठ वर्ष के लड़के समझकर केवल (ज्ञान) पाते थे। अब यह धन्धा, यह कमाना, शिक्षा करने के बाद कमाना, वह सब मिट गया उसे। समझ में आया? आठ-आठ वर्ष के जवान लड़के, बालक, हों! आहाहा! भगवान ने खजाना दिया न हमको! 'वह तो प्रभु ने ही दिया।' आहाहा! ऐसा आत्मा! एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में! ऐसी मेरी निधि की पूँजी! ऐसे अन्तर में दृष्टि देकर आठ वर्ष के बालक भी अनुभव को पा गये हैं। और अन्दर स्थिर होकर अन्तर्मुहूर्त में केवल (ज्ञान) पाकर सिद्ध में चले गये। आहाहा! पढ़ना-बढ़ना मिट गया। अब यह सब पुस्तक पढ़ना और ढींकणा पढ़ना। समझ में आया?

इसलिए यह **आत्मा का ही परिणाम है,...** वे आत्मा के ही परिणाम हैं। कौन? सम्यग्दर्शन। अभी एक बड़ी तकरार चली है बहुत समय से। सम्यग्दर्शन गुण कहलाता है। उसे तुम परिणाम कहते हो, उसे तुम पर्याय कहते हो। सिद्ध के आठ गुण में सम्यग्दर्शन है। गुण को तुम पर्याय (कहते हो)। इतना तो विचारकर लिखो आत्मधर्म में। ऐसा आया था। अरे भगवान! तू क्या करता है? सूरिसिंह है नहीं? क्षुल्लक। सूरिसिंह का पत्र आया था। अरे! तुम सम्यग्दर्शन को पर्याय कहते हो। भगवान तो गुण कहते हैं। और तुम अभी पर्याय गुण को समझते नहीं और तुम आत्मधर्म निकालने लगे? ठीक बापू! यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दर्शन आत्मा के परिणाम हैं। वे तो पर्याय है। अमरचन्दभाई! मिथ्यात्व भी श्रद्धागुण की विपरीत पर्याय है। सम्यग्दर्शन श्रद्धागुण की सुलटी पर्याय है। **इसलिए आत्मा ही है।** वे आत्मा के परिणाम वे आत्मा। **अतः जो सम्यग्दर्शन है, सो आत्मा है, अन्य नहीं।** लो, एक घण्टा हो गया इसमें।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ५, सोमवार, दिनांक - १९-०९-१९६६
श्लोक - ६, प्रवचन - ५२

धर्म के दस दिवस हैं। क्योंकि चारित्र, वह साक्षात् मोक्ष का कारण है और चारित्र का मूल कारण सम्यग्दर्शन, ज्ञान है। चारित्र, वह मोक्ष का साक्षात् कारण वीतरागता है। तो चारित्र के दस प्रकार के दसलक्षणी पर्व में आराधना करने के दिन गिनने में आते हैं। समझ में आया? शास्त्र की पद्धति ऐसी है। ५० दिन, आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के बाद ५० दिन लगभग सात वर्ष पाँच वर्षा होती है और दो वरांत, वरांत अर्थात् धूप निकलती है। पश्चात् भरतक्षेत्र में जो बहुत काल का काल था न? छठवाँ काल आदि। वह जाने के बाद दूसरा काल आयेगा। उसमें पाँच तो सात-सात दिन की वर्षा होती है, दो सात दिन की धूप निकलती है। उसमें वनस्पति हो जाती है। आज के दिन शास्त्र में ऐसा लेख है, और हम तो श्वेताम्बर में बहुत दिनों से कहते थे, श्वेताम्बर में भी, आज के दिन ऐसा हुआ है कि आर्यवृत्ति उत्पन्न होती है। जो ४२००० वर्ष से माँस खाते थे, ४२००० वर्ष से माँस खाते थे, आज के दिन से वनस्पति हुई तो एक मनुष्य ऐसा बोला कि आज के बाद अब कोई माँस खायेगा तो उसकी परछाईं नहीं पड़ने देंगे। ऐसा श्वेताम्बर में भगवतीसूत्र में भी आता है और अपने में भी आता है। मैं तो पहले से बहुत बार कहता था। बाद में मक्खनलालजी आये थे, उन्होंने कहा कि यह बात बराबर है। संवत्सरी आती है, ऋषि पंचमी। उसका अर्थ कि आर्यवृत्ति होती है। आज के बाद किसी ने वनस्पति के अतिरिक्त कोई माँस खायेगा तो उसकी परछाई नहीं पड़ने देंगे। ऐसी अनादि की रीति है। उसका पहला दिन गिनने में आता है। समझ में आया? हम तो संवत् १९७७ के वर्ष में राजकोट में कहा था। १९७७। कितने वर्ष हुए? २३ और २२ = ४५ वर्ष हुए। आर्य दिवस गिनने में आते हैं।

वास्तव में तो चारित्र आर्य है। आर्य का शास्त्र में कथन है, पण्डितजी! दर्शन

आर्य, ज्ञान आर्य, चारित्र आर्य, ऐसी आर्य की बात है। चारित्र आर्य अर्थात् आत्मा में वीतरागता, आत्म-अनुभवपूर्वक वीतरागता प्रगट करे, वही चारित्र है और वही मुक्ति का कारण है। उसके यह दसलक्षण पर्व गिनने में आते हैं।

आज क्षमा का—उत्तमक्षमा का दिन है। कार्तिकेयानुप्रेक्षा में से थोड़ा लेते हैं। स्वामी कार्तिकेय है न? उसमें से श्लोक है। पहला श्लोक है, देखो! **अब प्रथम ही उत्तमक्षमा धर्म को कहते हैं।**

कोहेण जो ण तप्पदि सुरणरतिरिएहिं कीरमाणे वि।
उवसग्गे वि रउद्दे तस्स खमा णिम्मला होदि॥३९४॥

स्वामी कार्तिकेय। अर्थ :- **जो मुनि अर्थात् धर्मात्मा देव-मनुष्य-तिर्यंचादि द्वारा रौद्र भयानक घोर उपसर्ग होने पर भी... 'कोहेण जो ण तप्पदि' क्रोध से तप्तायमान नहीं होता...** और निजस्वरूप ज्ञाता-दृष्टा है, मैं ज्ञान और आनन्दमूर्ति हूँ, ऐसा जिसे प्रथम अनुभव सम्यग्दर्शन हुआ है। पश्चात् स्वरूप में स्थिरता के प्रसंग में ऐसे उपसर्ग का काल आ जाये तो वहाँ क्षमा करता है। क्षमा अर्थात् ज्ञाता-दृष्टारूप से आनेवाले परीषह को जानता-देखता रहता है। उसमें क्रोध से तप्तायमान नहीं होता। **उन मुनि को निर्मल क्षमा होती है। 'कोहेण जो ण तप्पदि तस्स खमा णिम्मला होदि'** उसे निर्मल सम्यग्दर्शनसहित की क्षमा करते हैं, हों! अकेली क्षमा करे अनन्त बार (की), वह नहीं। आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु आनन्दकन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द की नित्यानन्द मूर्ति है। ऐसा अन्तर में सम्यग्दर्शन में पहले अनुभव हो गया है। फिर स्वरूप में स्थिरता के काल में ऐसे परीषह या उपसर्ग आवे तो शान्ति से क्षमा से क्षमा से सहन करते हैं। उसमें बहुत दृष्टान्त दिये हैं। फलाना फलाना ने चेलाती मुनि ने सहन किया। स्वामी कार्तिकेय ने सहन किया, गुरुदत्त मुनि, श्रीधनमुनि राजकुमार ऐसे बहुत नाम लिये हैं। ऐसा सहन किया।

इस प्रकार **देव, मनुष्य, पशु और अचेतन कृत उपसर्ग...** चार—देव, मनुष्य, तिर्यंच और अचेतन। कोई दीवार गिर जाये, कोई डाल गिर जाये। ऐसे चार (प्रकार गिनने में आये हैं)। (इस प्रकार उपसर्ग करनेवाले के ऊपर) **क्रोध न उपजे, तब उत्तम**

क्षमा होती है। उत्तम क्षमा में यहाँ इस प्रकार से तर्क से लिया है कि मुझमें कोई दोष हो और दोष कहता हो तो वह तो बराबर है, उसमें क्या? मुझमें दोष हो और कोई दोष कहे तो उसके प्रति क्रोध करने की कहाँ आवश्यकता है? और दूसरा, मुझमें दोष नहीं और दोष कहे तो बालक का क्या दोष निकालना? समझ में आया? और तीसरा, मुझमें जो दोष नहीं और अज्ञानी निकालता है तो क्रोध किसलिए करना? अज्ञानी का तो बालक स्वष्भाव है, ऐसा चिन्तवन करना। अज्ञानी को तो बालक स्वभाव चिन्तवन करना। अज्ञानी को खबर नहीं कि क्या है? मुझमें दोष नहीं, तथापि उसे लगता है तो अज्ञानी के (बालक स्वभाव का) चिन्तवन करके क्षमा करना। कदाचित् प्रत्यक्ष भी आकर कहे, दूसरे तो परोक्ष कहे, प्रत्यक्ष आकर कहे तो ऐसा विचारना कि ताड़न तो नहीं करता है। कुवचन कहता है, प्रहार तो नहीं करता। ऐसा जानकर क्षमा-ज्ञाता-दृष्टा में स्थिर में रहना। ताड़न करे तो विचारना कि मेरा प्राणघात तो नहीं करता। आहाहा! प्राणघात करे तो ऐसा विचारना कि मेरे धर्म का घात तो नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? प्राणघात तो परचीज़ है। उसका वियोग तो होनेवाला है। मेरे चैतन्य धर्मप्राण का घात करनेवाला तो दुनिया में कोई नहीं। मैं तो ज्ञान और आनन्द हूँ। ऐसा समझकर अपना अनुभव आनन्द का स्वाद लेता है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेता है। प्रतिकूलता को क्षमा करता है। जिनेश्वरदासजी! यह क्षमा है। ऐसे सीधी क्षमा करे कोई मारे तब, वह क्षमा नहीं।

आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा नित्यानन्द का अन्दर अनुभव में आनन्द का स्वाद लिया है, उस स्वाद की मौज में, स्वाद की मौज में प्रतिकूलता दिखती ही नहीं। समझ में आया? दुनिया के उपसर्ग और परीषह जिसे दिखते नहीं। उसकी क्षमा यथार्थ सम्यग्दर्शनपूर्वक कही जाती है। लो, यह इतनी बात पर्व की शुरुआत की की है।

अब अपने चलता है, समयसार। इतना थोड़ा लेते हैं, पण्डितजी! दसलक्षण पर्व में एक-एक (गाथा) थोड़ी प्रतिदिन लेते हैं। अब कल आयेगा मार्दव। स्वामी कार्तिकेय का बहुत अच्छा है। यह तत्त्वार्थसार में है, पद्मनन्दिपंचविंशतिः में है और बारह अनुप्रेक्षा कुन्दकुन्दाचार्य महाराज की है, उसमें भी है। यहाँ विविध प्रकार के सब हो

गये हैं। समयसार जीव-अजीव अधिकार। पृष्ठ ३०। अब देखो, निश्चय सम्यग्दर्शन का अधिकार है। यहाँ तक आया है। देखो!

अतः जो सम्यग्दर्शन है सो आत्मा है, अन्य नहीं। यहाँ तक आया है। है नीचे? हिन्दी... हिन्दी। क्या कहते हैं? देखो! अब फिर विषय लेना है, वह इतना लेना है। यहाँ तक तो आ गया है। क्या आ गया वह थोड़ा लेते हैं। भगवान आत्मा शुद्धनय का विषय, वह शुद्धनय अर्थात् क्या? शुद्धनय ज्ञान का अंश है। उस ज्ञान के अंश से आत्मा पूर्ण आनन्द और शुद्ध अभेद एक स्वरूप है, ऐसी अन्तर दृष्टि करना, उसका नाम भगवान निश्चय—सच्चा सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? धर्म की पहली सीढ़ी। भगवान आत्मा अपना स्वरूप एक पूर्ण ज्ञानघन है। शरीर, वाणी नहीं, कर्म नहीं, पुण्य-पाप का राग, वह आस्रवतत्त्व है। शरीर, वाणी, कर्म, वह अजीवतत्त्व है। तो वह मैं नहीं। पुण्य-पाप के भाव आस्रवतत्त्व हैं, वह भी मैं नहीं। मेरी एक समय की पर्याय अल्पज्ञ, अल्पदर्शी, अल्पवीर्य है, एक समय का अंश है, वह व्यवहार आत्मा है, वह भी (मैं) नहीं। आज तो हिन्दी चलता है। शोभालालजी! परन्तु हिन्दी में भाव तो वही आता है न!

आत्मा, यथार्थ आत्मा, वास्तविक आत्मा, निश्चय आत्मा किसे कहते हैं? कि जिस आत्मा का अनुभव करने से सम्यग्दर्शन होता है। वह आत्मा उसे कहते हैं कि शरीर, यह कर्म, वाणी आदि परपदार्थ तो पर है, भिन्न है। उनमें तो आत्मा है नहीं। एक बात। उसकी अवस्था में पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के विकल्प जो उठते हैं, वह आस्रवतत्त्व है, वह आत्मतत्त्व नहीं। समझ में आया? अब दूसरा (अंश) रहा। आत्मा में दो अंश रहे। एक वर्तमान ज्ञान के विकासरूप क्षयोपशम भाव, एक दर्शन के विकासरूप क्षयोपशमभाव, वीर्य का क्षयोपशमभाव आदि वर्तमान पर्याय। एक समय की वर्तमान पर्याय, वह तो अंशरूप है, अंशरूप है, व्यवहार आत्मा है, निश्चय आत्मा नहीं। समझ में आया? तो '**ववहारोऽभूदत्थो**'। व्यवहार जो एक समय की दशा है, वह त्रिकाली वस्तु में नहीं। इस अपेक्षा से उसे असत्य कहकर पर्याय को गौण करके त्रिकाल एकरूप नित्य ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, ऐसा शुद्ध भगवान आत्मा सामान्य ज्ञायकप्रभु की दृष्टि का नाम शुद्धनय, दृष्टि से देखा हुआ, अनुभव किया हुआ,

उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। सूक्ष्म बात। समझ में आया?

पण्डित जयचन्द्रजी अब थोड़ी उसकी बात करते हैं। सम्यग्दर्शन है तो आत्मा के परिणाम। परिणाम समझे? आत्मा की पर्याय है। शुद्ध चैतन्यमूर्ति शुद्ध ज्ञायकप्रभु ध्रुव की दृष्टि करने से जो निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई, उसे निश्चय-सच्चा सम्यग्दर्शन कहते हैं। वह सम्यग्दर्शन आत्मा के परिणाम हैं। वीतरागी पर्याय है। जिनेश्वरदासजी! सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय है। अरे! रागपर्याय नहीं। भगवान आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु एक समय में सामान्य त्रिकाल सत्य निश्चय यथार्थ वास्तविक आत्मा, एक समय की पर्याय नहीं, आस्रव नहीं, अजीव नहीं। समझ में आया? ऐसा एक समय का पूर्ण घन ज्ञानघन चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... उसका अन्तर्लक्ष्य करके उसकी दृष्टि करना और अनुभव करके प्रत्यक्ष ज्ञान में उस आत्मा को लाना, राग का, विकल्प का आश्रय छोड़कर स्व का आश्रय किया तो सम्यग्ज्ञान आत्मा में श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष हो गया। प्रत्यक्ष हो गया, ज्ञान में आत्मा प्रत्यक्ष हो गया। प्रत्यक्ष का अर्थ (यह कि) आनन्द के वेदन का ख्याल आ गया।

असंख्य प्रदेश आत्मा के ख्याल में नहीं आते। समझ में आया? जैसे अन्धा प्राणी शक्कर का स्वाद लेता है, वह शक्कर को देखता नहीं। देखता नहीं। परन्तु शक्कर का स्वाद जैसा देखता लेता है, वैसा अन्ध लेता है। समझ में आया? जैसे देखनेवाला शक्कर को देखता है और स्वाद लेता है, उसी प्रकार अन्धा देखता नहीं परन्तु स्वाद तो जैसा देखनेवाला लेता है, वैसा अन्धा लेता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी अन्तर नहीं पड़ता। अन्तर क्या पड़े? यह बैरिस्टर है। रामजीभाई अँगुली छुआवे, स्पर्शे और बालक छुए तो वेदन में अन्तर पड़ता है?

मुमुक्षु : उसे उष्णपने का ज्ञान होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, समाप्त हो गया। वैरिस्टर हो या बालक हो, दीपक है न दीपक? उसकी शिखा तो जलती है। तो जलने में दोनों को अन्तर पड़ता है? वैरिस्टर हो या बालक हो जलने में अन्तर नहीं है।

इसी प्रकार प्रत्यक्ष ज्ञान केवली का हो और श्रुतज्ञान का ज्ञान हो, उसमें आत्मा आनन्दकन्द का वेदन है, उस वेदन में कुछ अन्तर नहीं। आहाहा! यह चीज़ ऐसी है, इसकी खबर नहीं। रुचि कहाँ करना और कैसी दृष्टि करना, कहाँ से हटना, कहाँ जाना, खबर नहीं, सम्यग्दर्शन कहाँ से हो? समझ में आया? (संवत्) २००९ के वर्ष में आये थे न, तब हिन्दी में शुरु किया था। थोड़ा थोड़ा, हों! अब थोड़ा-थोड़ा आठ-दस आना आती है। उस समय इनके लिये शुरु किया था। तेरह वर्ष हुए। मानस्तम्भ के समय। (संवत्) २००९ के वर्ष। तेरह वर्ष हुए। समझ में आया? थोड़ा-थोड़ा हिन्दी में शुरु किया था। हमारी तो काठियावाड़ी भाषा है न। अब आठ-दस आना आती है। समझ में आया? क्या कहते हैं?

भगवान आत्मा सत् सत् साहेब, सत्स्वरूप शाश्वत् ध्रुव, अन्तर में ज्ञान द्वारा उसे जानकर प्रत्यक्ष जाना। राग का आश्रय नहीं, मन का आश्रय नहीं। ऐसे ज्ञान द्वारा जाना, वैसी प्रतीति की। और उसमें आनन्द का स्वाद लिया। अनुभव में स्वरूपाचरण का अंश भी साथ में वेदन में आया। आहाहा! समझ में आया? अरे! भगवान! तकरार कितनी करते हैं। अरे! नाथ! लोगों (को) चैतन्यवस्तु क्या है, (उसकी खबर नहीं)। आहाहा! सर्वज्ञ ने देखा हुआ आत्मा कैसा है, उसकी खबर बिना अपनी कल्पना से शास्त्र के अर्थ करे और जाने, वह वस्तु ऐसी नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा अपने अन्तर में ज्ञान के अंश से, पर्याय का लक्ष्य छोड़ना है न! ज्ञान के अंश द्वारा अन्तर्मुख होकर शुद्ध अनुभव किया, उसका नाम शुद्धनय का अनुभव हुआ, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? वह सम्यग्दर्शन परिणाम हुए, सम्यग्ज्ञान परिणाम हुए, स्वरूपाचरण परिणाम हुए, आनन्द की व्यक्त दशा के भी परिणाम हुए। समझ में आया? उसका नाम भगवान सम्यग्दर्शन कहते हैं। अब यहाँ से अपने लेना है। कल वहाँ तक आ गया था।

यहाँ इतना विशेष समझना चाहिए... यहाँ इतना खास अवश्य जानना चाहिए **कि जो नय है, सो श्रुतप्रमाण का अंश है,...** क्या सिद्ध करना है? है न उसमें? है? भाई! समझ में आया? यहाँ क्या कहते हैं? शुद्धनय से आत्मा को अनुभव करना, ऐसा

कहा। तो वह शुद्धनय क्या वस्तु है ? शुद्धनय क्या वस्तु है ? समझ में आया ? तो कहते हैं कि **नय है, सो श्रुतप्रमाण का अंश है,...** क्या कहते हैं ? जरा सूक्ष्म विषय है, इसलिए पण्डित जयचन्द्रजी ने स्पष्ट किया है। भगवान आत्मा को अन्तर्मुख अन्तर दृष्टि करके सम्यग्दर्शन हुआ तो सम्यग्दर्शन में श्रुतज्ञान प्रमाण हुआ। श्रुतज्ञान प्रमाण हुआ। उस प्रमाण के अंश को नय कहते हैं। प्रमाण अवयवी है और प्रमाण का अंश नय, वह प्रमाण का अवयव है। समझ में आया ? आत्मा एक समय में शुद्ध ध्रुव जो ११वीं गाथा में कहा। '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**'। सत्यस्वरूप भगवान परम ध्रुव ज्ञायक को शुद्धनय कहते हैं। उसे भूतार्थ कहते हैं। तो कहते हैं कि शुद्धनय क्या चीज़ है ? तो कहते हैं कि शुद्धनय श्रुतप्रमाण का अंश है। अर्थात् आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु की अन्तर दृष्टि हुई तो सम्यक्त्व हुआ। उसके साथ श्रुतज्ञान प्रमाण हुआ। उसके साथ श्रुतज्ञान प्रमाण हुआ। उस श्रुतज्ञान प्रमाण को अवयवी कहते हैं। पूरी चीज़। है अंश। श्रुतज्ञान प्रमाण द्रव्य का अंश है। परन्तु उस प्रमाण के दो भाग किये। एक नय शुद्धनय, एक नय व्यवहारनय। श्रुतज्ञान प्रमाण का नय शुद्धनय एक अंश है। सूक्ष्म विषय है, भाई!

भगवान आत्मा चिदानन्द प्रभु साक्षात् ज्ञायकमूर्ति, जैसा सर्वज्ञ ने देखा वैसा। समझ में आया ? पहले एक बार कहा था। नहीं ? 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता...' हे नाथ! आपकी जानने की पद्धति ऐसी है, भगत भगवान को कहता है,

प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल...
निज सत्ता से शुद्ध सहु को पेखता...

हे नाथ! आपके ज्ञान में यह सब आत्मा निज सत्ता से शुद्ध है, ऐसा आप देखते हो। समझ में आया ? अर्थात् ? अर्थात् भगवान के ज्ञान में यह आत्मा ऐसा है, ऐसा देखा गया है। वह कर्म, शरीररहित, आस्रवरहित, एक समय की पर्याय के अंशरहित पूरे पूर्ण को भगवान ने आत्मा कहा है। उसे भगवान ने आत्मा देखा है। आहाहा! ऐसे भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक हस्तामलकवत् की भाँति प्रगट हो गये हैं। एक समय में भूत, भविष्य, वर्तमान। एक समय में तीनों

काल की पर्यायों का उसमें भान हो गया है। समझ में आया? ऐसे साक्षात् भगवान सर्वज्ञ। तीन काल में त्रिकाल को जाननेवाले का कभी विरह नहीं होता। तीन काल में तीन काल को जाननेवाले सर्वज्ञ का कभी विरह नहीं होता। समझ में आया? क्या कहा? जिनेश्वरदासजी! तीन काल में तीन काल को जाननेवाले का कभी विरह नहीं होता। सर्वज्ञ अनादि के हैं और सर्वज्ञ कायम रहेंगे। तीनों काल सर्वज्ञ रहेंगे। तीनों काल में कभी सर्वज्ञ नहीं हों, ऐसा नहीं होता। समझ में आया?

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने एक समय में तीन काल-तीन लोक प्रत्यक्ष पूर्ण अखण्ड एक अक्रम से देखते हैं। ऐसे भगवान ने आत्मा को कैसा देखा? शुद्ध चैतन्य आनन्दघन देखा। शुद्ध ध्रुव निश्चय आत्मा, परमार्थ आत्मा, वास्तविक आत्मा, सत्य आत्मा। शरीर, कर्म नहीं, पुण्य-पाप नहीं, एक समय की अवस्था जितना भी नहीं। समझ में आया? पूर्ण शुद्ध चैतन्य ध्रुव भगवान ने देखा है। बस, जैसा देखा, वैसी दृष्टि करे तो उसे सम्यग्दर्शन होता है। परन्तु वह सर्वज्ञ ने देखा। यहाँ श्रुतज्ञान में शुद्धनय से देखने में आता है। बस, इतना अन्तर है। आहाहा! पण्डितजी! यह बात ऐसी है। प्रभु! यह बात तो अन्तर के घर की है। शास्त्र वाँच जाये और पढ़ जाये, परन्तु यह चीज़ दूसरी है।

भगवान आत्मा जैसा सर्वज्ञ ने देखा, वैसा शुद्धनय से देखता है। तो कहते हैं कि शुद्धनय है कौन? वह श्रुतप्रमाण का अंश है। श्रुतप्रमाण जो ज्ञान है, श्रुतप्रमाणज्ञान है न? प्रमाण। प्रमाण का अर्थ सामान्य को भी जाने और पर्याय को भी जाने। दोनों को जाने, उसे प्रमाण कहते हैं। तो नय प्रमाण का अंश है। नय—शुद्धनय भी प्रमाण का अंश है। क्योंकि शुद्धनय सामान्य ध्रुव को जानता है, एक अंश पर्याय को नहीं जानता। पर्याय को जानना, वह व्यवहारनय का विषय है। सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया? कहते हैं,...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी को एक भी नय का ज्ञान नहीं। अज्ञानी को कब था? अज्ञानी को नय कैसा? नय तो जिसे श्रुतप्रमाण हुआ हो, प्रमाण का अंश हो, उसे नय

होते हैं। अज्ञानी को नय कहाँ से आये? समझ में आया? बराबर है? भाई! यह तो वस्तुस्थिति ऐसी है। तीन काल-तीन लोक में बदलती नहीं।

भगवान आत्मा चैतन्य ज्योति मूर्ति प्रभु एक समय की पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, गौण करके त्रिकाल स्वरूप को जाननेवाला जो ज्ञान है, उसे यहाँ शुद्धनय कहा जाता है। वह शुद्धनय प्रमाण का अंश है, श्रुतप्रमाण का अंश है। इसीलिए **शुद्धनय भी श्रुतप्रमाण का ही अंश हुआ।** पहले सामान्य बात की। भाई! नय है, वह श्रुतप्रमाण का भाग है। तो यह शुद्धनय भी श्रुतप्रमाण का ही अंश हुआ। **श्रुतप्रमाण है, वह परोक्ष प्रमाण है,...** सुनो! क्या कहते हैं? श्रुतज्ञान आत्मा के असंख्य प्रदेश प्रत्यक्ष नहीं देखता। पहले अन्ध का दृष्टान्त दिया न?

मुमुक्षु : वेदन में प्रत्यक्ष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वेदन में प्रत्यक्ष है, परन्तु यह शक्कर श्वेत-सफेद है, ऐसा (अन्ध) नहीं देखता। अनुभव में स्वाद आता है। परन्तु यह आत्मा असंख्य प्रदेश श्रुतप्रमाण में नहीं आता। वह केवलज्ञानी जानते हैं। सुनो! शोभालालभाई! इसमें बहुत मेहनत करनी पड़ेगी। बीड़ी में बहुत चला है न... कहाँ गये भाई! अमरचन्दभाई! यह तुम्हारे मित्र हैं न! वहाँ तुम्हारे इकट्ठा रहने का बहुत है।

कहते हैं, ओहो! **श्रुतप्रमाण परोक्ष प्रमाण है, क्योंकि वस्तु को सर्वज्ञ के आगम के वचन से जाना है;...** अर्थात् क्या? भगवान ने कहा कि ज्ञानस्वरूप शुद्ध ध्रुव पूर्ण है, ऐसा आगम में कहा। ऐसा अन्तर ज्ञान से अन्दर जाना। परन्तु वह असंख्य प्रदेशी है, ऐसा ज्ञात नहीं होता। समझ में आया? वस्तु को सर्वज्ञ के आगमज्ञान, आगमज्ञान—जो आगम के वचन हैं, उनका ज्ञान हुआ, उस ज्ञान से जाना है, ऐसे प्रत्यक्ष नहीं जाना है। नीचे श्रुतज्ञान में अथवा शुद्धनय में आत्मा असंख्य प्रदेश और एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण हैं, ऐसा पृथक्-पृथक् नहीं देखता। वह केवलज्ञान का विषय है। यहाँ तो स्वाद में प्रत्यक्ष है और श्रुतज्ञान में प्रत्यक्ष क्यों कहा? राग का मिश्रित भाव नहीं रहा और सीधे श्रुतज्ञान ने अन्दर में जाना इस अपेक्षा से उसे प्रत्यक्ष कहा जाता है। परन्तु असंख्य प्रदेश देखे और अनन्त गुण की संख्या प्रत्यक्ष देखे, ऐसा श्रुतज्ञान में नहीं है। समझ में आया? आहाहा! गजब मार्ग, भाई!

इसलिए यह शुद्धनय सर्व द्रव्यों से... सर्व द्रव्य। शरीर, कर्म, वाणी, भगवान, देव-गुरु-शास्त्र आदि सब, उनसे भिन्न **आत्मा की सर्व पर्यायों में व्याप्त,...** सब पर्याय चेतन... चेतन... चेतन, ऐसा कहना है, भाई! चेतन... चेतन... चेतन... चेतन... चेतन... सामान्य... सामान्य... सामान्य... सामान्य... सामान्य उन सब पर्यायों में व्याप्त। **पूर्ण चैतन्य केवलज्ञानरूप...** केवलज्ञान अर्थात् वह पर्याय, ऐसा नहीं। पूर्ण चैतन्य केवल एक ज्ञानरूप, एक ज्ञानरूप, चैतन्य एक ज्ञानरूप। सामान्य एक ज्ञानरूप। **सर्व लोकालोक को जाननेवाले,...** यह शक्ति उसकी ऐसी है कि लोकालोक को जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। ज्ञान चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... सामान्य... सामान्य... सामान्य... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... उसमें लोकालोक को जानने की सामर्थ्य है।

असाधारण चैतन्यधर्म को परोक्ष दिखाता है। कहो, समझ में आया? असाधारण चैतन्यधर्म। अपने स्वभाव में असाधारण वह धर्म है। वह दूसरे में है नहीं और अपने में भी चैतन्य तो असाधारण धर्म है। दूसरे दर्शन आदि हैं, वे सब निर्विकल्प हैं। यह सविकल्प (अर्थात्) अपने को और पर को जानता है, ऐसा असाधारण ज्ञान धर्म, असाधारण चैतन्यधर्म सामान्य, उसे शुद्धनय दिखलाता है। ऐसे पूर्ण आत्मा का श्रद्धान करे।

यह व्यवहारी छद्मस्थ जीव आगम को प्रमाण करके... सर्वज्ञ के ज्ञान में कहा वैसा प्रमाण करके **शुद्धनय से दर्शाये हुए...** अन्तर शुद्धनय से दिखलाये हुए **पूर्ण आत्मा का श्रद्धान करे...** शुद्ध चैतन्य ध्रुव ज्ञायक एकरूप का श्रद्धान करे 'वह श्रद्धान निश्चयसम्यग्दर्शन है।' समझ में आया? यह चौथे गुणस्थान की बात है, हों! कोई कहे कि निश्चयसम्यग्दर्शन आठवें में होता है। अरे! तुझे कुछ भान ही नहीं। सम्यग्दर्शन निश्चय चौथे से होता है। समझ में आया? चौथे में व्यवहार होता है। व्यवहार तो पराश्रय है। व्यवहार तो अभूतार्थ है। अभूतार्थ को सम्यग्दर्शन कहते हैं? समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब प्रभु एक ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... सामान्य ध्रुव को शुद्धनय दिखलाता है और शुद्धनय से देखने से जो प्रतीति हुई, उसका नाम निश्चयसम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? कहो, रामस्वरूपजी! गजब बात, भाई! यहाँ तो अभी देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन।

मुमुक्षु : आत्मा को जाने बिना....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहाँ देव किसे कहना? दिव्य शक्ति तो भगवान देव आत्मा तो अपना देव है। अपना आत्मा गुरु है। समझ में आया? वे तो परद्रव्य है, देव-गुरु तो परद्रव्य है। परद्रव्य की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन है? बिल्कुल नहीं, वह तो राग है, शुभराग है। समझ में आया? भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु एकरूप चैतन्य की अन्तर्मुख दृष्टि करना और अनुभव में यह आत्मा, ऐसी प्रतीति करना, उसका नाम सच्चा सम्यग्दर्शन चौथे (गुणस्थान) से उत्पन्न होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निश्चय चौथे से होता है और स्वसंवेदन भी चौथे से होता है। ज्ञान, ज्ञान का वेदन करे। स्वरूपाचरण भी चौथे से होता है। आनन्द का अंश भी चौथे से होता है। जितने एक द्रव्य में अनन्तानन्त गुण हैं, अनन्तानन्त इतना जहाँ नय से अनुभव किया, जितने गुण हैं, उतने अंश में व्यक्तता सब गुणों की प्रगट होती है। अंश। शुद्धता का अंश सब गुणों का प्रगट होता है। क्योंकि दृष्टि द्रव्य के ऊपर गयी है और द्रव्य में अनन्त गुण हैं। तो दृष्टि में जहाँ द्रव्य का स्वीकार किया तो जितने गुण हैं, उतने का एक अंश व्यक्त एक समय की पर्याय में (प्रगट होता है)। सर्व गुणांश, वह समकित। सर्व गुण के अंश प्रगट होते हैं, ऐसी प्रतीति को सम्यक् कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि ऐसे आत्मा का श्रद्धान। अनन्त गुणरूप प्रभु एक है, उसके अन्तर्मुख होकर निर्विकल्प श्रद्धा करना, राग का अवलम्बन, मन का अवलम्बन छोड़कर अकेले ज्ञान द्वारा अन्तर का अनुभव करना कि यह आत्मा शुद्ध है, पूर्ण है, ऐसा पर्याय में आनन्द का और प्रत्यक्ष ज्ञान का होना, उसमें आत्मा शुद्ध है, ऐसा भासित हुआ। उसकी दृष्टि को सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! गजब बात, भाई! देव-गुरु की श्रद्धा, नौ तत्त्व की व्यवहारिक श्रद्धा, भेद समकित, छह द्रव्य की श्रद्धा। अब भगवान! सुन तो सही। वे तो सब भेद हैं। यह तो कहते हैं, देखो! **जब तक केवल व्यवहारनय के विषयभूत जीवादिक भेदरूप तत्त्वों का ही श्रद्धान रहता है,... जब तक केवल**

व्यवहारनय... अकेला व्यवहार, भेद। **व्यवहारनय के विषयभूत जीवादिक भेदरूप...** जीव, अजीव आदि नौ तत्त्व के भेदरूप **तत्त्वों का ही श्रद्धान रहता है, तब तक निश्चयसम्यग्दर्शन नहीं होता।** नौ के भेदरूप का आश्रय पर के ऊपर है। निज स्व एक के आश्रय बिना निश्चयसम्यग्दर्शन कभी तीन काल में होता नहीं। समझ में आया? आहाहा! पहले पाया में बाँधा सम्यग्दर्शन में। वह कहे, सम्यग्दर्शन चौथे से सातवें तक व्यवहार सम्यग्दर्शन। चौथे से छठे-सातवें तक व्यवहाररत्नत्रय, पश्चात् निश्चयरत्नत्रय। अरे, भगवान! यह तूने क्या कहा? कुकर्म कर डाला तत्त्व का। चैतन्य भगवान पूरा अन्तर दृष्टि में आये बिना सम्यग्दर्शन कैसा? समझ में आया? व्यवहार का लक्षण तो पर आश्रय लक्ष्य में जाता है। वह तो भेदरूप है। उसमें तो राग हुआ। और बहुत तो नौ तत्त्व के भेद की ज्ञान की पर्याय खिली और शुभराग हुआ, वह तो परलक्ष्यी है। उसमें सम्यग्दर्शन नहीं। समझ में आया? आहाहा! क्या कहते हैं?

जब तक केवल व्यवहारनय के विषयभूत... क्योंकि व्यवहार पराश्रय, निश्चय स्वआश्रय। समझ में आया? नय का लक्षण—व्यवहार पराश्रय नय। निश्चय स्वआश्रय नय। यह दो। उनमें भी निज त्रिकाली द्रव्य का आश्रय, वह निश्चय है और एक समय की पर्याय का लक्ष्य करना, वह व्यवहार है। वह व्यवहार भी पराश्रय हो गया। भेदरूप विकल्प उठता है और एक समय की पर्याय का लक्ष्य करना, वह भी पर्याय की दृष्टि, वह व्यवहार दृष्टि हो गयी और त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि करना, उसका नाम निश्चय स्वआवश्रय सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? न समझ में आये ऐसी चीज़ नहीं। ऐसी अपनी चीज़ है। उसे निकाल डालना कि हमको समझ में नहीं आता। हमको समझ में नहीं आता, यह (बात) निकाल देना। भगवान आत्मा एक समय में केवलज्ञान लेने की सामर्थ्य रखता है। एक समय में त्रिकाल और (तीन) लोक जानने की सामर्थ्य रखता है। ऐसी चीज़ न समझ सके, ऐसा नहीं करना। यह शल्य इसे समझने नहीं देता कि मुझे समझ में नहीं आता, मैं नहीं समझ सकता हूँ। यह निकाल देना। समझ में आया?

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु सर्वज्ञ ने देखा हुआ अनन्त गुण के पिण्डरूप

आत्मा एकरूप, उसका अनुभव, वह निश्चय सम्यग्दर्शन। व्यवहार के विषयभूत जीवादि नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, देव-गुरु की श्रद्धा आदि, उन तत्त्वों का श्रद्धान रहता है, **तब तक निश्चयसम्यग्दर्शन नहीं होता।** कहो, समझ में आया? जब तक पराश्रय में नौ तत्त्व के भेद की, देव-गुरु-शास्त्र की (श्रद्धा) वह वास्तव में श्रद्धा ही नहीं। क्योंकि वह श्रद्धागुण की पर्याय ही नहीं। पर के लक्ष्य से ज्ञान की क्षयोपशमदशा में यह क्या है, ऐसा परलक्ष्यी ख्याल आया। वह सम्यग्दर्शन नहीं। नौ तत्त्व के भेद का क्षयोपशम ज्ञान में ख्याल आया और शुभराग। देव-गुरु की श्रद्धा कि देव-गुरु कैसे, यह परलक्ष्यी ज्ञान में ख्याल में आया और या राग, वह श्रद्धागुण की पर्याय नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा में अनन्त गुण में एक श्रद्धा नाम का गुण पड़ा है। उस श्रद्धागुण की पर्याय कब होती है? नौ तत्त्व की व्यवहारिक श्रद्धा से श्रद्धागुण की पर्याय उत्पन्न नहीं होती। समझ में आया? एकरूप भगवान आत्मा को ज्ञेय करके अपने ज्ञान में ज्ञेय करके, श्रद्धा में ध्येय करके, स्थिरता में उसमें लीन होकर प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा यह आत्मा है, ऐसा अनुभव करना, उसका नाम भगवान त्रिलोकनाथ जिनेश्वर परमेश्वर निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? तीन काल में बदले नहीं ऐसी बात है। तीन काल-तीन लोक में। आज माने, बाद में माने, चाहे जब माने परन्तु यह अनुभव करने से ही उसे सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? इसके अतिरिक्त व्यवहारनय से षट् द्रव्य माने, देव-गुरु-शास्त्र माने, वह तो परलक्ष्यी ज्ञान है। परलक्ष्यी ज्ञान में श्रद्धा की पर्याय कहाँ से आयी? समझ में आया? ऐ... सेठी!

व्यवहार का विषय जीवादि भेद, अपनी पर्याय का भेद, रागादि, अरे! संवर, निर्जरा आदि के भेदरूप विचार करके, ऐसी श्रद्धा रहती है, जब तक व्यवहार की श्रद्धा रहती है, पराश्रय में जहाँ तक भंगरूप की श्रद्धा रहती है, वहाँ तक निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं होता। व्यवहार सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन है ही नहीं। व्यवहार सम्यग्दर्शन वह कोई श्रद्धागुण की पर्याय है? व्यवहार सम्यग्दर्शन का अर्थ क्या? कि भगवान आत्मा अपने अखण्ड एकरूप स्वभाव का अनुभव करके श्रद्धा करता है, वह निश्चय। साथ में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, निमित्त देखकर, सहचर देखकर उपचार से व्यवहार समकित

कहते हैं। वह सम्यग्दर्शन की पर्याय नहीं, उसे (सम्यग्दर्शन) कहना, उसका नाम व्यवहार है। समझ में आया? वह तो राग है। ओहोहो!

यहाँ तो (ऐसा कहते हैं कि) चौथे से सातवें तक व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है। ऐई! तुम्हारा क्या कहलाता है? पत्र? अखबार। अखबार में ऐसा बहुत आता है। व्यवहाररत्नत्रय चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें में होता है। ऐ... जिनेश्वरदासजी! तुम्हारे गाँव में से आता है। अरे भगवान! ऐसा नहीं, हों! प्रभु का मार्ग दूसरा है, भाई! अभी ऐसा चलेगा तो तत्त्व सहन नहीं करेगा। तत्त्व का खून हो गया, खून हो जायेगा। उसका दु:ख भोगना तुझे कठिन पड़ेगा, प्रभु! भाई! यह चैतन्यप्रभु एक समय का पूर्णानन्द का नाथ, उसकी दृष्टि में आये बिना सम्यग्दर्शन कभी होता नहीं। समझ में आया? शोभालालभाई! इसमें बहुत मेहनत है-प्रयत्न है। पैसा तो प्रयत्न बिना मिल गये, धूल के ढ़ेर। वहाँ कोई प्रयत्न काम नहीं करता, हों! प्रयत्न काम करता है पैसे में?

मुमुक्षु : तो क्या बैठे-बैठे आते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल बैठे-बैठे आती है। धूल में क्या है? लक्ष्मी तो पूर्व का पुण्य हो तो मिल जाती है। उसमें तुम्हारा प्रयत्न क्या है?

मुमुक्षु : .... कुछ आता नहीं ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... रजकण यह रहे। पैसे में क्या चैन है? धूल है? यह नुकसान हुआ कितना हुआ, देखो न! करोड़पति का बाप कहलावे, वहाँ पुलिस ने आकर पकड़ा। परन्तु भाई! हमारे क्या? पुलिसवाला नया आकर पकड़े कि तुम करोड़पति के पति हो तो कुछ लाओ। हैरान किये तीन दिन पहले। नौ पुलिस थे। हमारे कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! इस ममता का परिणाम देखो तो सही।

भगवान आत्मा अनन्त लक्ष्मी सम्पन्न ऐसे प्रभु के सन्मुख होकर, बाहर से विमुख होकर पर की उपेक्षा करके स्व की अपेक्षा करके अन्तर में अनुभव में सम्यग्दर्शन होता है, उसकी प्रतीति करता है, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। बाकी सब थोथे थोथा है। समझ में आया? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।'

मुमुक्षु : वह तो अभव्य को लागू पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! अभव्य, भव्य सबकी बात है, अभव्य का कौन कहता है। यह कहते हैं, पण्डितजी! यह तो अभव्य को लागू पड़ता है। अरे! चल... चल! अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया। मुनिव्रत धारण कर, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, शरीर के खण्ड करे तो क्रोध न करे, ऐसी क्षमा आत्मा के भान बिना। स्वसंवेदन भगवान चिदानन्द की मूर्ति के 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' आनन्द नहीं पाया। सम्यग्दर्शन में तो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। वह लिया नहीं और पंच महाव्रत का क्रियाकाण्ड करके मर गया। उसमें क्या हुआ? समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा की दिव्यध्वनि में आया। साक्षात् परमात्मा विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। अनन्त तीर्थंकर तो सिद्धपद को प्राप्त हुए। भगवान तो अरिहन्त पद में विराजते हैं। वर्तमान महाविदेहक्षेत्र में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य उनके पास गये थे, आठ दिन रहे थे। संवत् ४९। समझ में आया? वहाँ आठ दिन रहकर, यहाँ आकर यह शास्त्र बनाये हैं। समझ में आया?

भगवान की दिव्यध्वनि में ऐसा आया है। ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने शास्त्र रचे। भगवान ऐसा कहते हैं, प्रभु आत्मा... अनुभव तो था। चारित्रवन्त थे। विशेष निर्मलता हो गयी। पश्चात् शास्त्र बनाये। यह समयसार, प्रवचनसार आदि। समझ में आया? तो कहते हैं कि अरे! आत्मा जब तक तेरा पर के ऊपर लक्ष्य और व्यवहार आश्रय होगा, वहाँ तक तीन काल में सम्यग्दर्शन कभी होगा नहीं। आहाहाह! यह बात है तीन काल-तीन लोक में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हुआ? एक समय की पर्याय में छह द्रव्य को जानने की क्षयोपशम की सामर्थ्य रखता है। उसमें क्या हुआ? यह तो अनन्त बार हुआ। यह तो परलक्ष्यीज्ञान है। समझ में आया? क्या कहते हैं?

जब तक केवल व्यवहारनय के विषयभूत जीवादिक भेदरूप तत्त्वों का ही श्रद्धान रहता है,... यहाँ तो कलशटीका में ऐसा कहा कि नौ तत्त्व का भेदरूप अनुभव

मिथ्यात्व है। समझ में आया? एकरूप पूरा चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... सामान्य दृष्टि में न आवे, तब तक निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं होता। **इसलिए आचार्य कहते हैं कि इन नवतत्त्वों की सन्तति (परिपाटी) को छोड़कर...** देखो! मैं जीव हूँ और यह अजीव है और यह आस्रव है और संवर है, यह तो भेदरूप विकल्प है, यह तो भेदरूप राग है। समझ में आया? भाई! सूक्ष्म बात तो है। इन्होंने स्पष्टीकरण किया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसकी बात है, प्रभु! यह तो तेरी बात है। यहाँ तो अन्तर प्रभु परम आत्मा स्वयं विराजमान है। अपना प्रभु निज आत्मा अपना प्रभु है। वह भगवान तो व्यवहार भगवान हैं। समझ में आया? पर है। उनके पास से कुछ मिलता है? अपनी पर्याय में से कुछ मिलता नहीं। द्रव्य में से मिलता है तो द्रव्य अपना भगवान है। आहाहा! समझ में आया?

आचार्य कहते हैं कि इन नवतत्त्वों की सन्तति (परिपाटी) को छोड़कर शुद्धनय का विषयभूत एक आत्मा ही हमें प्राप्त हो;...

मुमुक्षु : आचार्य को प्राप्त नहीं था?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो समझाते हैं। प्राप्त है, नहीं कहाँ? उसमें से भी अभेद पूर्णानन्द की एकता प्राप्त हो, वह भेदरूप न हो, ऐसी प्रार्थना करते हैं। मात्र वीतरागता हो। नौ तत्त्व के भेदरूप विकल्प भी उठते हैं, वह ज्ञान की पर्याय परलक्ष्यी है और शुभराग है, वह हमारे नहीं चाहिए। ऐसा कहते हैं। मुनि हैं, भावलिंगी सन्त हैं। छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले। एक दिन में हजारों बार छठवें-सातवें में, छठवें-सातवें में मुनि झूलते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेते हैं और क्षण में विकल्प उठता है, क्षण में (आनन्द का स्वाद लेते हैं)। ऐसा हजारों बार आता है। हमारे यह भेदरूप भाव है, वह न रहो। हमको अकेली वीतरागता हो, ऐसी मुनि प्रार्थना करते हैं। समझ में आया?

दूसरा कुछ नहीं चाहते। यह वीतराग अवस्था की प्रार्थना है,... देखो! वीतरागस्वरूप

होना है, उसकी भावना है। **कोई नयपक्ष नहीं।** नयपक्ष का अर्थ? अकेला सामान्य, सामान्य कहा और विशेष छोड़ दिया है। विशेष छोड़ दिया है तो वीतरागता को प्राप्त करने के लिये विशेष को लक्ष्य में से छोड़ दिया है। समझ में आया? विशेष नहीं, ऐसा नहीं। विशेष नहीं, ऐसा नहीं। परन्तु विशेष का लक्ष्य छोड़ा है, सामान्य के लक्ष्य में हमारा आत्मा प्राप्त होओ, ऐसी वीतरागता की प्रार्थना है। यह विशेष नहीं और अकेला सामान्य ही है, ऐसी बात नहीं है। परन्तु सामान्य की ओर का आश्रय करके हमारी विशेष पर्याय पूर्ण हो जाओ। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहा न, सामान्य के आश्रय से हमारी वीतरागता प्राप्त हो जाओ। पर्याय नहीं, ऐसा नहीं। व्यवहार है, पर्याय है, भेद है। भेद नहीं और अकेला सामान्य का पक्ष करते हैं, ऐसा नहीं। हम सामान्य का पक्ष करते हैं, वह वीतराग की पर्याय प्राप्त करने के लिये करते हैं। समझ में आया? पर्याय नहीं, ऐसा हमारा लक्ष्य नहीं है। पर्याय है। परन्तु पर्याय के लक्ष्य से हमारी वीतरागता उत्पन्न नहीं होती, वीतरागता बढ़ती नहीं, वीतरागता की शुद्धि आगे जाती नहीं। तो हमारे एकरूप स्वभाव में से वीतरागता प्राप्त होओ, ऐसी भावना है। यह **कोई नयपक्ष नहीं।** नयपक्ष समझे? अकेला सामान्य... सामान्य रहा। उसमें पर्याय तो रही नहीं। ऐसा नहीं। पर्याय तो लक्ष्य में है। परन्तु पर्याय के लक्ष्य से वीतरागता नहीं होती, इसलिए वीतरागता की प्रार्थना करते हैं। समझ में आया? अकेला सामान्य ही है, ऐसा नहीं। समझ में आया? पर्याय तो है, परन्तु पर्याय के आश्रय से वीतरागता उत्पन्न नहीं होती और हमारे तो यहाँ वीतरागता चाहिए है। तो सामान्य के आश्रय से वीतरागता प्राप्त हो, एक आत्मा ही प्राप्त हो, भेद नहीं। परन्तु पर्याय को नहीं मानते हैं, ऐसा नहीं। पर्याय को न माने, अकेला सामान्य माने तो मिथ्यात्व हो जाता है। समझ में आया? पर्याय में ही वीतरागता होती है। सामान्य के आश्रय से पर्याय में ही वीतरागता होती है। परन्तु वीतरागता की प्रार्थना करने से पर्याय नहीं मानते है (ऐसा नहीं है)। अकेले सामान्य में रहो, सामान्य में रहे, ऐसा नहीं। पर्याय है। परन्तु हमारे वीतराग स्वभाव के अन्तर आश्रय से, एकरूप के

आश्रय से वीतरागता होओ। अनेकरूप के आश्रय से वीतरागता नहीं होती। अनेकरूप नहीं है, ऐसा नहीं। समझ में आया? वेदान्त कहता है, ऐसा नहीं। पर्याय अनेक है, गुणभेद अनेक हैं, रागादि उत्पन्न होते हैं; परन्तु हमको तो सामान्य के आश्रय से जो दृष्टि हुई तो उसके आश्रय से हमको अकेला आत्मा वीतरागता प्राप्त हो। समझ में आया? आहाहा! **यदि सर्वथा नयों का पक्षपात ही हुआ करे तो मिथ्यात्व ही है।**

यहाँ कोई प्रश्न करता है... अब प्रश्न करता है। इतनी सब बात करते हैं, इसकी अपेक्षा **आत्मा चैतन्य है, मात्र इतना ही अनुभव में आये तो इतनी श्रद्धा सम्यग्दर्शन है या नहीं?** समझ में आया? पण्डित जयचन्द्रजी ने यह प्रश्न उठाया है। कोई इतना माने कि आत्मा चैतन्य है। आत्मा द्रव्य है, वह चैतन्य है। **इतना ही अनुभव में आये तो इतनी श्रद्धा सम्यग्दर्शन है या नहीं?**

उसका समाधान यह है - नास्तिकों को छोड़कर सभी मतवाले आत्मा को चैतन्यमात्र मानते हैं;... वह नहीं। अकेला चैतन्य... सामान्य... सामान्य... सामान्य... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... करे, ऐसा नहीं। ऐसा नहीं चलता। सर्वज्ञ ने देखा ऐसा अनन्त गुण सम्पन्न आत्मा दृष्टि में आवे तो सम्यग्दर्शन होता है। अज्ञानी कहता है कि एक ही गुण है, सर्वव्यापक है, पर्याय नहीं है और चैतन्य... चैतन्य... है। ऐसी मान्यता सम्यक् नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : कठिन पैराग्राफ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन पैराग्राफ है? ....

यदि इतनी ही श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा जाये तो सबको सम्यक्त्व सिद्ध हो जायेगा,... चैतन्यमात्र की श्रद्धा, ऐसा आस्तिक्य तो सब मानते हैं। चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... अन्यमति में भी अनुभव की बात तो बहुत करते हैं। वेदान्ती आदि। वेदान्त आदि अनुभव की बहुत बातें करते हैं परन्तु वे खोटी हैं। सर्वज्ञ ने कहा, एक आत्मा में अनन्त गुण। अनन्त अनन्त गुण। समझ में आया? आकाश के प्रदेश से अमाप... अमाप... अमाप... अमाप अनन्त। उससे भी एक आत्मा में उसके प्रदेश से भी अनन्तगुणे गुण हैं। ऐसा आत्मा माने। आत्मा में एक गुण है, चैतन्य... चैतन्य है, ऐसा नहीं। सर्वज्ञ

भगवान के अतिरिक्त असंख्य प्रदेश और उसमें अनन्तानन्त गुण, आकाश के प्रदेश की संख्या से भी अनन्तगुणे गुण हैं। ऐसे अनन्त गुण सम्पन्न असंख्य प्रदेशी एकरूप आत्मा का अनुभव करे तो सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा का ऐसा चैतन्य... चैतन्य माने और हमको अनुभव है, ऐसा कहे तो ऐसा अनुभव झूठ है। समझ में आया? ऐसा तो दूसरे में बहुत बात करते हैं। हमको अनुभव हो गया है।

हमारे पालेज में उस ओर तो बहुत। पालेज में हमारी दुकान थी न गुजरात में। वहाँ उस ओर सब अनुभव अनुभव करते थे। हमको तो छोटी उम्र से बहुतों का परिचय हुआ है। २०-२२ वर्ष की उम्र से। कितने ही कहते हैं कि हमको अनुभव हुआ है। निरंजन निराकार। परन्तु अनुभव का अर्थ क्या? बस, आत्मा ऐसा है। परन्तु आत्मा कितना है? कितने प्रदेशी है? कितने गुण हैं? करनेवाला कौन? उसका क्या काम है? ईश्वर करनेवाला है। ईश्वर कर्ता है। तेरी बात झूठी है। तेरा अनुभव भी झूठा और कर्ता मानना, वह भी झूठा। समझ में आया? हमारे यहाँ ...साहेब और ऐसे बहुत हो गये। हमारी दुकान में माल लेने आते थे न। हमारी दुकान थी न। छोटी उम्र में (बैठते थे)। माल लेने आते थे। समझे न? उनके साथ चर्चा हुई। छोटी उम्र से हमारे चर्चा होती थी। २०-२२ वर्ष की उम्र से। नहीं, ऐसा नहीं। तुम कहते हो, ऐसा नहीं। समझ में आया? देखो! सृष्टि का कर्ता करते हैं। कर्ता का कर्ता कौन? कहा। कर्ता कहे तो कर्ता का कर्ता कौन? तो कहे, कोई नहीं। तो सब द्रव्यों का कोई कर्ता नहीं। एक का कर्ता नहीं तो सबका कर्ता नहीं। एक भगवान आत्मा स्वयंसिद्ध स्वतन्त्र है। ऐसे अनन्त आत्मा स्वतन्त्र हैं। उनसे अनन्तगुणे पुद्गल हैं, असंख्य कालाणु हैं, एक आकाश, एक अधर्मास्ति, एक अधर्मास्ति सब द्रव्य हैं। एक ज्ञान की पर्याय में छह द्रव्य को जानना, वह एक ज्ञानगुण की एक पर्याय की सामर्थ्य है। तो जब एक द्रव्य की एक गुण की पर्याय को माने, तब तो छह द्रव्य माने हैं (ऐसा) कहा जाये। छह द्रव्य न माने और एक पर्याय को माने तो पर्याय का सामर्थ्य छह द्रव्य को जानने का है, तो उसने माना ही नहीं। तो एक पर्याय को मानकर भी छह द्रव्य को माना तो भी खोटा है। ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड गुण और ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य। उसकी प्रतीति हो अन्तर अनुभव में तो सम्यग्दर्शन

होता है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म, भाई! बहुत कठिन, लोग ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन डाल दिया? आहाहा!

एक ज्ञान की एक समय की पर्याय, गुण नहीं, दूसरे गुण भी नहीं, एक पर्याय छह द्रव्य को परलक्ष्यी जानने की एक समय की पर्याय की सामर्थ्य है। तो वह छह द्रव्य को जाने और पर्याय को माने तो उसने एक समय की पर्याय मानी, (ऐसा) कहा जाता है। समझ में आया? एक समय की पर्याय तब मानी। एक समय की पर्याय छह द्रव्य को जाने, ऐसी सामर्थ्य रखती है, ऐसा माने तो एक पर्याय को माना। अभी द्रव्य को नहीं माना। समझ में आया? जगत में छह द्रव्य है न! एक ज्ञान की एक पर्याय में जानने की सामर्थ्य है।

मुमुक्षु : कितनी?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त छह द्रव्य की। अनन्त छह द्रव्य की श्रद्धा। व्यवहार श्रद्धा, हों! अनन्त गुण की नहीं। इस एक पर्याय में इतनी सामर्थ्य है। अनन्त द्रव्यों के गुण, अनन्त द्रव्य, अनन्त गुण और उनकी अनन्त पर्यायें। एक समय की पर्याय में जानने की सामर्थ्य है। इतनी श्रद्धा करे तो भी सम्यग्दर्शन नहीं। ऐसी अनन्त पर्यायों का पिण्ड एक गुण है, ऐसे-ऐसे अनन्त गुण का रूप एक आत्मा है। ऐसे आत्मा को सर्वज्ञ ने देखा है, उसका अन्तर अनुभव प्रतीति करे तो सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पहले आया था न! बहुत बार कहा है। आत्मा है, उसमें ज्ञानगुण है। वह गुण त्रिकाल है। उसकी एक समय की पर्याय भले श्रुतज्ञान की हो। अज्ञान की। परन्तु उस एक समय की पर्याय में छह द्रव्य, उनके अनन्त गुण, उनकी पर्यायें, अनन्त क्षेत्र, सब जानने की एक पर्याय सामर्थ्य रखती है। जिनेश्वरदासजी! एक पर्याय, हों! वे छह द्रव्य माने, तब तो उस पर्याय को मानी, तब कहलाये। आहाहा! ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड एक ज्ञानगुण है। और ऐसे-ऐसे अनन्त गुण का

पिण्ड वह द्रव्य है। ऐसा सर्वज्ञ ने देखा हुआ आत्मा का ऐसा अभेदस्वरूप, उसका अनुभव करके प्रतीति करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है।

सर्वज्ञ की वाणी में जैसा सम्पूर्ण आत्मा का स्वरूप... देखो! सम्पूर्ण शब्द लिया है। भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, ऐसी अनन्त पर्यायों का पिण्ड गुण और अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा। **सम्पूर्ण आत्मा का स्वरूप कहा है, वैसा श्रद्धान होने से ही निश्चय सम्यक्त्व होता है, ऐसा समझना चाहिए।** इसके भावार्थ में ऐसा लिया है। अमरचन्दभाई! विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ६, मंगलवार, दिनांक - २०-०९-१९६६
श्लोक - ७, गाथा-१३, प्रवचन - ५३

आज दसलक्षणी पर्व का दूसरा दिवस है। उत्तम मार्दव धर्म। चारित्र की आराधना का दूसरा प्रकार। उत्तम मार्दव अर्थात् कोमलता, निर्मानता। कैसी निर्मानता होती है, वह स्वामी कार्तिकेय कहते हैं।

उत्तमणाणपहाणो उत्तमतवयरणकरणसीलो वि।
अप्पाणं जो हीलदि मद्दवरयणं भवे तस्स॥३९५॥

अर्थ :- जो मुनि (धर्मात्मा) उत्तम ज्ञान से तो प्रधान हों... शास्त्रज्ञान उत्कृष्ट प्रगट हुआ हो अनुभवसहित। आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, तदुपरान्त उन्हें शास्त्र के बारह अंग आदि का ज्ञान हुआ हो, तथापि उसका मद नहीं करते। शास्त्रज्ञान, उससे अवधिज्ञान बड़ा, उससे मन:पर्ययज्ञान बड़ा, उससे केवलज्ञान बड़ा। किसका अभिमान करना? बारह अंग का ज्ञान तो स्थूल ज्ञान है, थोड़ा ज्ञान है। बारह अंग का ज्ञान भी स्थूल ज्ञान है। समझ में आया? थोड़ा ज्ञान करके अभिमान करना, यह वस्तु के स्वरूप से भ्रष्ट होने का लक्षण है। निर्मान।

उत्तम ज्ञान से तो प्रधान हो तथा उत्तम तपश्चरण करने का जिनका स्वभाव हो... उत्तम इच्छारहित अपना प्रतपन-विजय। अपने अतीन्द्रिय आनन्द की अन्तर में विजय होना, उसका नाम तप कहते हैं। ऐसे तप का जिसका सहज स्वभाव हो गया हो, तथापि उसका अभिमान नहीं करते। '**अप्पाणं जो हीलदि**'। अरे! आत्मा! तुझे कहाँ केवलज्ञान है? तुझे कहाँ मन:पर्ययज्ञान, अवधिज्ञान है? ऐसे निज आत्मा को अपने निर्मानरूप से तुच्छ गिनता है। आगे आयेगा। अनन्तानुबन्धी का जिसे अभाव होकर निज आत्मा परिपूर्ण आनन्द का अनुभव हुआ, परन्तु पर्याय में पूर्ण आनन्द नहीं है तो सम्यग्दृष्टि

अपने को पर्याय में तुच्छ गिनता है। समझ में आया? वहाँ श्लोक है। एक श्लोक है न अनन्तानुबन्धी का? कहाँ है? ... ३१३। अनन्तानुबन्धी की बात है न यह।

सम्यग्दृष्टि होने पर अनन्तानुबन्धी कषाय का अभाव होकर... अपना आनन्द शुद्ध पूर्ण का भान होकर आत्मा की शान्ति का वेदन होता है तो कहते हैं '**जो ण य कुव्वदि गव्वं**' गर्व नहीं करते। '**पुत्तकलत्ताइसव्वअत्थेसु। उवसमभावे भावदि अप्पाणं मुणदि तिणमेत्तं॥**' अपने आत्मा को पर्याय में तृणमात्र—तिनकामात्र मानते हैं। ओहोहो! समझ में आया? **अपने आत्मा को तृण समान हल्का मानते हैं। क्योंकि अपना स्वरूप तो अनन्त ज्ञानादिरूप है, इसलिए जब तक उसकी प्राप्ति न हो, तब तक वह अपने को तृण समान मानते हैं...** ओहो! समझ में आया? शुद्ध चिदानन्द परिपूर्ण का भान है, परन्तु जब तक पूर्ण आनन्द और पूर्ण केवलज्ञान न हो, तो सम्यग्दृष्टि अपनी पर्याय में (तृण समान मानता है)। वस्तु में पूर्ण प्रभुता मानता है। पर्याय में पामरता मानता है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु में प्रभुता मानता है। परन्तु पर्याय में बहुत अनुभव नहीं, उग्र आनन्द नहीं, केवलज्ञान नहीं; इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव अपनी पर्याय में तृण तुल्य मानता है। ऐसी ३१३ गाथा है। स्वामी कार्तिकेय। '**तिणमेत्तं**'। अरे! मैं क्या हूँ? मेरी पर्याय में अल्पज्ञता है, मैं सर्वज्ञ नहीं, किसका गर्व करूँ? समझ में आया? थोड़े शास्त्र वाँचकर अभिमान करता है, उसका वस्तु का स्वरूप उसकी दृष्टि में रहता नहीं।

कहते हैं, '**तिणमेत्तं**' मानता है। यहाँ भी कहते हैं, **सकल शास्त्र को जाननेवाला पण्डित हो तो भी ज्ञानमद न करे। वहाँ ऐसा विचारे कि मुझसे बड़े अवधि, मनःपर्ययज्ञानी हैं, केवली तो सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी हैं।** ऐसे विनयवन्त का उसके गुरु भी आदर करते हैं, प्रशंसा करते हैं कि ओहो! इतना ज्ञान, तीन-तीन ज्ञान, चार-चार ज्ञान हो तो भी इसे गर्व नहीं होता। मैं **अल्पज्ञ हूँ। और उत्तमतप करे तो भी उसका मद न करे...** जाति का, कुल का, बल का, विद्या का, बड़प्पन का, तप का और रूप आदि का अभिमान नहीं करे। अभिमान करे तो अपने स्वरूप की दृष्टि नहीं रहती। अपना अखण्ड आनन्दकन्द परमात्मस्वरूप एक समय में है, उसका राग से भिन्नपना जिसने माना है, राग से भिन्न माना है, उसे यदि अभिमान पर का हो तो निज स्वरूप की अधिकता दृष्टि में रहती नहीं। समझ में आया? ऐसे उत्तम मार्दवधर्म को यहाँ आचार्य ने रतन कहा है। '**मद्दवरयणं**

भवे तस्स'। मार्दव। रतन है, रतन है। अपना स्वरूप चैतन्यरत्न।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को रत्न कहा। समझ में आया? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को रत्न कहा तो ऐसे-ऐसे अनन्त रत्न जो आत्मा में पड़े हैं। समझ में आया? आत्मा शुद्ध अखण्डानन्द का अनुभव में भान हुआ, अनुभूति हुई, दर्शन हुआ-प्रतीति हुई और स्वरूप स्थिरता हुई तो उसे रतन कहते हैं। तीन रत्न। पर्याय को रत्न कहते हैं या नहीं? ऐसी-ऐसी पर्याय तो आत्मा में अनन्त पड़ी है। क्या कहा, समझ में आया? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह पर्याय है, उसे रत्न कहा। तो ऐसी पर्याय जब तक सिद्ध न हो, तब तक मोक्ष के मार्ग की पर्यायें असंख्य होती हैं। असंख्य पर्यायें होती हैं। तो असंख्य रत्न आत्मा में भरे हैं। और उस रत्न का फल केवलज्ञान है। केवलज्ञान तो एक समय में पूर्ण होता है, दूसरे समय में दूसरा, तीसरे समय में तीसरा, चौथे समय में चौथा—ऐसे सादि-अनन्त केवलज्ञान की पर्याय, तीन रत्न का फल ऐसी जो अनन्त केवलज्ञान पर्याय जो सादि-अनन्त है, वे सब आत्मा में पड़ी हैं। समझ में आया? तो उसे तो चैतन्य रत्नाकर कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! चैतन्य रत्नाकर। जिसमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय तो अल्प है। वह भी असंख्य समय रहती है, केवलज्ञान प्राप्त होने से पहले। समझ में आया? साधक स्वभाव असंख्य समय रहता है। अनन्त समय नहीं रहता। समझ में आया?

निज शुद्ध आनन्द ज्ञायकस्वभाव का अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए तो जब तक मोक्ष न हो, तब तक ऐसी पर्याय असंख्य समय ही रहती है। असंख्य समय में उसे पूर्ण होना ही चाहिए। समझ में आया?

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि का?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दृष्टि का।

मुमुक्षु : मुनि का?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि कहो या सम्यग्दृष्टि कहो। चौथे में अकेला सम्यग्दर्शन है, तब तो उसकी विशेष पर्याय है। परन्तु चारित्रसहित की जो पर्याय है, वह तो असंख्य समय ही रहती है। तत्पश्चात् असंख्य समय में केवलज्ञान प्राप्त किये बिना रहते नहीं।

क्योंकि एक-दो भव होते हैं, पन्द्रह भव हों तो भी उसमें असंख्य समय ही हैं। अनन्त समय नहीं। समझ में आया?

ऐसा सम्यग्दर्शन आत्मा के अनुभव में—अनुभूति में प्रतीति और रमणता पूर्ण करने की पर्याय असंख्य होती है। तो ऐसी सब पर्याय आत्मा की शक्ति में पड़ी है और उसके फलरूप जो केवलज्ञान, सादि-अनन्त जो अनन्त केवलज्ञान (रहता है)। एक समय केवलज्ञान रहता है, वह केवलज्ञान दूसरे समय में नहीं रहता। समझ में आया? क्या कहा? केवलज्ञान एक समय रहता है। दूसरे समय में नहीं रहता। समझे? फिर से कहते हैं। केवलज्ञान पर्याय है, केवलज्ञान गुण नहीं। गुण त्रिकाल रहते हैं, केवलज्ञान पर्याय है तो एक समय रहती है। वैसी ही पर्याय दूसरे समय में हो, परन्तु वह नहीं। समझ में आया? सिद्धपद भी पर्याय है। मोक्षमार्ग पर्याय है। संसार पर्याय है। सिद्ध भी पर्याय है। समझ में आया? केवलज्ञान, त्रिकाल ज्ञानगुण में से पर्याय की उत्पत्ति होती है।

मुमुक्षु : नयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : नयी। और एक समय केवलज्ञान रहता है। दूसरे समय में दूसरा होता है। क्योंकि वह उत्पाद-व्यय है न! ध्रुव तो त्रिकाल है। सिद्धपद भी एक समय ही रहता है। सिद्ध पर्याय है। तो सिद्धपद एक समय रहता है और दूसरे समय में दूसरी पर्याय होती है, तीसरे समय में तीसरी और चौथे समय में चौथी। ऐसे सादि-अनन्त पर्याय होती है। ऐसी केवलज्ञान आदि सादि-अनन्त पर्याय जिसके गुण में पड़ी है, ऐसे अनन्त गुण का पूर भगवान आत्मा, अनन्त गुण का पूर आत्मा, उसे चैतन्य रत्नाकर कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा भगवान आत्मा जिसे दृष्टि में आया, प्रतीति में आया और अल्प स्थिरता भी हुई, उसे गर्व कहाँ से हो? मैं तो परिपूर्ण आनन्दकन्द को देखता हूँ, मानता हूँ। उसे ऐसे अल्प ज्ञान, सम्यग्दर्शन हुआ, चारित्र हुआ तो भी अभिमान नहीं होता। कहाँ पूर्ण केवलज्ञान, कहाँ यथाख्यातचारित्र! ऐसी अनन्त पर्यायें मेरे गुण में पड़ी हैं। उसका बहुमान करे (तो) पर्याय का अभिमान नहीं होता। समझ में आया? आहाहा!

यह भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध ज्ञायक पिण्ड प्रभु, जिसमें एक ज्ञानगुण

में अनन्त केवलज्ञान की पर्याय, अनन्त केवलज्ञान की पर्याय और मनःपर्ययज्ञान, अवधिज्ञान, मति-श्रुतज्ञान की पर्याय सब एक ज्ञानगुण में शक्तिरूप से पड़ी है। ऐसा एक ज्ञानगुण, ऐसा दर्शनगुण, ऐसा आनन्दगुण, ऐसा चारित्रगुण—ऐसे अनन्त गुण के एकरूप चैतन्य का अनुभव, प्रतीति हुई, उसे अपनी पर्याय का गर्व नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! यह मार्दव अधिकार दूसरा अधिकार (धर्म) हुआ। थोड़ा लेते हैं न, थोड़ा लेते हैं। अब चलता अधिकार।

★ ★ ★

कलश - ७

अब, टीकाकार-आचार्य निम्नलिखित श्लोक में यह कहते हैं कि - 'तत्पश्चात् शुद्धनय के आधीन, सर्व द्रव्यों से भिन्न, आत्मज्योति प्रगट हो जाती है' :-

(अनुष्टुप्)

अतः शुद्धनयायत्तं प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत्।
नव-तत्त्व-गतत्वेऽपि यदेकत्वं न मुञ्चति।।7।।

श्लोकार्थ : [अतः] तत्पश्चात् [शुद्धनय-आयत्तं] शुद्धनय के आधीन [प्रत्यग् ज्योतिः] जो भिन्न आत्मज्योति है, [तत्] वह [चकास्ति] प्रगट होती है [यद्] कि जो [नव-तत्त्व-गतत्वे अपि] नव तत्त्वों में प्राप्त होने पर भी [एकत्वं] अपने एकत्व को [न मुंचति] नहीं छोड़ती।

भावार्थ : नव तत्त्वों में प्राप्त हुआ आत्मा अनेकरूप दिखायी देता है; यदि उसका भिन्न स्वरूप विचार किया जाये तो वह अपनी चैतन्यचमत्कारमात्र ज्योति को नहीं छोड़ता।।7।।

कलश - ७ पर प्रवचन

१३वीं गाथा। समयसार। अब, 'तत्पश्चात् शुद्धनय के आधीन, सर्व द्रव्यों से भिन्न, आत्मज्योति प्रगट हो जाती है' ऐसा इस श्लोक में टीकाकार आचार्यदेव कहते हैं

– नीचे है। देखो! श्लोक। ऊपर श्लोक है।

अतः शुद्धनयायत्तं प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत्।
नव-तत्त्व-गतत्वेऽपि यदेकत्वं न मुञ्चति॥७॥

ऊपर श्लोक है, नीचे अर्थ है। सातवाँ श्लोक ऊपर है, सातवाँ श्लोक संस्कृत में ऊपर है और अर्थ नीचे है। क्या कहते हैं अमृतचन्द्राचार्य महाराज? महामुनि कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में हुए। और हजार वर्ष के बाद अमृतचन्द्राचार्य हुए। महासन्त द्रव्य से नग्न, भाव से भावलिंग। अलौकिक जिनकी दशा। णमो लोए आईरियाणं में सम्मिलित। णमो लोए सव्व आईरियाणं। ऐसे पद में महामुनि अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि हे भगवान आत्मा! तू सुन! भगवान कहकर ही आत्मा को बुलाते हैं, हों! ७२ गाथा में। कर्ता-कर्म की ७२ गाथा है न? अपने दोपहर में आयेगा। ७२ गाथा में कहते हैं भगवान आत्मा। प्रभु! तेरी पर्याय में जैसे जल में काई है, वैसे पुण्य-पाप के भाव तो अशुचि मैल है न, प्रभु! और तेरा स्वरूप तो भगवान निर्मलानन्द है न। समझ में आया? अमृतचन्द्राचार्य भगवानरूप से ही आत्मा को बुलाते हैं। भगवान आत्मा। ७२ गाथा है, कर्ता-कर्म (अधिकार) की।

अशुचि। प्रभु! तेरी पर्याय में पुण्य-पाप के भाव होते हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप के, काम, क्रोध के (भाव होते हैं), वे तो अशुचि है न! वे तो मैल है न! प्रभु! और तू तो निर्मल भगवान है न! समझ में आया? भाई! ७२ है। अपने तो दूसरी चलेगी। ७२ में है, देखो! ७२ गाथा है न? **जल में शैवाल (काई) है सो मल है-मैल है; उस शैवाल की भाँति आस्रव मलरूप-मैलरूप अनुभव में आते हैं इसलिए....** ७२ गाथा है। ७० और २। पृष्ठ १३१। शैवाल काई होती है न? काई। वह जल में शैवाल मैल का अनुभव कराती है। ऐसे अशुचि अपवित्र आस्रव हैं। आत्मा में पुण्य-पाप के भाव, वे जल में जैसे शैवाल है, वैसे भगवान आत्मा की वर्तमान दशा परलक्ष्यी, जिसमें पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वे अशुचि हैं, अपवित्र हैं। पश्चात् देखो!

भगवान आत्मा... देखो! इसमें लिखा है। भगवान आत्मा। देखो! संस्कृत में भी है। '**जले जम्बालवत्कलुषत्वेनोपलभ्यमानत्वाअशुचयः खल्वास्त्रवाः भगवानात्मा तु**

नित्यमेवातिनिर्मलचिन्मात्रत्वेनोपलम्भकत्वादत्यन्तं शुचिरेव।' आहाहा! भाई! तू भगवान है न प्रभु! तेरा भगवान आत्मा तो निर्मलानन्द है न नाथ! सच्चिदानन्द प्रभु सिद्ध समान शुद्ध है न और पुण्य परिणाम, पाप परिणाम तो मैल-अशुचि है। दो का भेदज्ञान करके आत्मा को पकड़ना, उसका नाम अनुभव और सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? यहाँ तो आत्मा को भगवान कहकर ही बुलाते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा... प्रभु! तेरी पर्याय में परलक्ष्यी पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वे तो जल में काई है न, वह मैल है, मैलरूप से अनुभव में आते हैं। वह कहीं आत्मा की चीज़ है? समझ में आया? उन पुण्य-पाप के भाव से भगवान! तेरी चीज़ तो अति निर्मल त्रिकाल है न। ऐसे अति निर्मलानन्द भगवान को पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न होकर निज आत्मा का आश्रय कर। तुझे आत्मा में आनन्द आयेगा। समझ में आया? आहाहा! भगवान का इनकार करता है, मैं भगवान नहीं। भगवान कहते हैं कि तू त्रिकाल भगवान है। सुन न! समझ में आया? इनकार न कर, इनकार न कर। हाँ कर। हाँ कर, कहते हैं न? क्या कहते हैं? स्वीकार कर। स्वीकार कर। भगवान चिदानन्दमूर्ति निर्मलानन्द नाथ और पुण्य-पाप के मलिन परिणाम, दो के बीच भेद कर डाल। उन्हें अपना न मान। उन्हें अपने न मान। निज स्वरूप अनन्त केवलज्ञान का कन्द, उसे अपना मान। समझ में आया? तो तुझे अनुभव होकर आत्मा के आनन्द का स्वाद आयेगा। तो धर्म होगा, वरना धर्म होगा नहीं। समझ में आया? परन्तु इसे पामर लगता है।

यहाँ आचार्य कहते हैं, **तत्पश्चात् शुद्धनय के आधीन,...** देखो! **जो भिन्न आत्मज्योति...** चैतन्यज्योति ज्ञायकस्वरूप एकरूप **प्रगट होती है...** आत्मज्योति प्रगट होती है, भाई! भाषा ऐसी है। समझो। आत्मज्योति तो त्रिकाल है, वह क्या प्रगट हो, परन्तु क्या कहते हैं? अपनी पर्याय में नौ तत्त्व के भेदरूप विकल्प का अनुभव है, वह मैल का अनुभव है। और नौ तत्त्व के विकल्प को छोड़कर अपना चिदानन्दस्वरूप की शुद्धनय से अन्तरदृष्टि करने से ज्ञानज्योति प्रगट हुई। इसका अर्थ, तेरी पर्याय में 'यह ज्ञानज्योति है' ऐसा प्रतिभास होता है, आत्मख्याति है, उसे आत्मा प्रगट हुआ, ऐसा कहा जाता है। आत्मा तो है, वह है। अमरचन्दभाई! आहाहा! भाषा तो ऐसी है। **शुद्धनय के आधीन जो भिन्न आत्मज्योति...** समझ में आया? शब्द का अर्थ क्या, उसके भाव की

तुलना करनी चाहिए न कि क्या लिखा है। यहाँ तो कहते हैं, **शुद्धनय के आधीन जो भिन्न आत्मज्योति...** भगवान शुद्धनय का आश्रय अर्थात् त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति चैतन्यज्योति। एक समय में नौ तत्त्वरूप परिणमन पर्याय का है, वह तो अनादि का मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? वह तो व्यवहारनय का विषय है। शुद्धनय का (विषय) अन्दर ज्ञायक चिदानन्दज्योति एकरूप स्वभाव है, जिसमें उत्पाद-व्यय भी नहीं होते। समझ में आया? चैतन्यज्योति जो शुद्धनय का विषय, जिसमें उत्पाद-व्यय भी नहीं। उत्पाद-व्यय तो पर्यायनय-व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया? आहाहा!

उत्पाद-व्यय रहित त्रिकाल ध्रुव ज्ञायकमात्र, ऐसी आत्मज्योति शुद्धनय अर्थात् अन्तर दृष्टि करने से, बाह्य दृष्टि छोड़ने से भगवान आत्मा ज्योति है, वह प्रगट होती है। उसका अर्थ (यह कि) अपनी पर्याय में राग का जो अनुभव था, उसे छोड़कर शुद्ध ज्ञायक का अनुभव हुआ तो पर्याय में शुद्धता हुई तो ज्ञानज्योति पर्याय में भासित हुई, उसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

जो नव तत्त्वों में प्राप्त होने पर भी... मैं जीव हूँ, (ऐसा) विकल्प, अजीव, आस्रव आदि नौ तत्त्व हैं, वे बाह्य तत्त्व हैं, पर्याय में भेद है। वास्तव में नौ तत्त्व जीव, अजीव आदि जो विकल्पात्मक कहो, वे बाह्य तत्त्व हैं। अभ्यन्तर तत्त्व ज्ञायकमूर्ति भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? परिणमनरूप जो बाह्य तत्त्व में था, वह होने पर भी **अपने एकत्व को नहीं छोड़ती।** ज्ञायकज्योति चैतन्यज्योति ध्रुवस्वरूप है, वह कभी नहीं छोड़ती। जैसे छठवी गाथा में कहा कि भगवान आत्मा '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो**'। प्रभु! ज्ञायकज्योति चैतन्यध्रुव, वह पुण्य-पाप के शुभाशुभ भावरूप कभी होता ही नहीं। ज्ञायकभाव एकरूप है (और) वे शुभ-अशुभभाव हैं, विकारी हैं, अचेतन हैं। अचेतन का अर्थ (यह कि) वे चैतन्य के नूर के प्रकाश के पूर का अंश पुण्य-पाप के भाव में नहीं है। समझ में आया? शुभ-अशुभभाव चैतन्य के प्रकाश के अभावस्वभाव से है। जिनेश्वरदासजी!

भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य अकेला परमब्रह्म आनन्दकन्द स्वरूप; वे शुभ-अशुभभाव विकल्प है, राग है, अचेतन है, जड़ है। जड़ का अर्थ रजकण नहीं, रजकण

नहीं, परन्तु चैतन्यप्रकाश का अंश उनमें नहीं। चैतन्य का नूर प्रकाश का अंश पुण्य-पाप में नहीं। तो भगवान ज्ञायकज्योति पुण्य-पाप के परिणामरूप कभी अनन्त काल में हुई नहीं। समझ में आया? इसलिए भगवान आत्मा ज्ञायक, प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं। शुभाशुभरूप हुआ नहीं तो प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं। ऐसा भगवान आत्मा परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर स्वद्रव्य के लक्ष्य में उपास्यमान स्व-स्वभाव की सेवा करने से (शुद्ध कहलाता है)। ज्ञायक चैतन्यज्योति ध्रुव हूँ, ऐसे उसकी ओर ढलने से अपनी पर्याय में द्रव्य की सेवा हुई, शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति प्रगट हुए। वह सेवा होने से आत्मा शुद्ध है, ऐसा भान में आया। समझ में आया?

मुमुक्षु : अनादि से सेवा नहीं करता?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि की सेवा नहीं करता। राग की करता है। समझ में आया? यह १७-१८वीं गाथा में आता है। १७-१८वीं गाथा है न? उसमें आया है। १७-१८...१७-१८। १९ गाथा है या नहीं? **अब, कोई तर्क करे कि आत्मा तो ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप है, पृथक् नहीं, इसीलिए ज्ञान को नित्य सेवन करता ही है...** पृष्ठ ५१ (हिन्दी)। ५० और १। देखो! टीका। गुरु ने ऐसा कहा... ५१। ५० और १। इक्यावन। तुम्हारे इक्यावन कहते हैं? टीका है न, टीका। देखो! बीच में टीका है। **अब, कोई तर्क करे कि आत्मा तो ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप है, पृथक् नहीं, इसीलिए ज्ञान को नित्य सेवन करता ही है, तो फिर उसे ज्ञान की उपासना करने की शिक्षा क्यों दी जाती है?** समझ में आया? भगवान आत्मा, ज्ञान और आत्मा तो तद्रूप एकाकार है ज्ञायकभाव। ज्ञान की सेवा तो आत्मा सदा करता ही है। आप कहते हो कि ज्ञान की सेवा करो। ज्ञान की सेवा करो, हों! राग की नहीं, पर की नहीं। पर की सेवा-बेवा कर सकता नहीं। राग, पुण्य-पाप की सेवा भी नहीं।

उसका समाधान यह है - ऐसा नहीं है। यद्यपि आत्मा ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप से है तथापि वह एक क्षणमात्र भी ज्ञान का सेवन नहीं करता... क्योंकि अनादि काल से पुण्य और पाप के विकल्प, राग की ही उसने सेवा की है। समझ में आया? राग की सेवा की, विकल्प की सेवा की, भेद की सेवा की है। भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप

चिदानन्द की एक समय भी सेवा नहीं की। लो, यह सेवा। दुनिया कहे कि पर की सेवा। कौन धूल कर सकता है पर की? परद्रव्य की पर्याय स्वतन्त्र है। उसकी पर्याय होना दूसरी पर्याय से क्या उसकी सेवा होती है? समझ में आया? अपनी पर्याय में राग होता है, उसकी सेवा करना, उसका नाम भी मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप चैतन्य की सेवा नहीं की। इसका अर्थ कि ज्ञायकस्वरूप ज्ञान से अभिन्न तादात्म्य है, ऐसी राग की रुचि छोड़कर, ज्ञायकस्वभाव की ओर झुकाव नहीं किया। झुकाव नहीं किया तो आत्मा की सेवा नहीं की। एक क्षण भी सेवा (की नहीं)। एक क्षण सेवा करे और अनुभव न हो, ऐसा नहीं होता। आनन्द का अनुभव होता है। समझ में आया? आहाहा! एक समय का अनुभव। मोहरछाप पड़ गयी। उसकी मुक्ति... मुक्ति... मुक्ति हो जायेगी। कहते हैं कि तूने आत्मा की सेवा ही नहीं की, ज्ञान की सेवा की नहीं। क्यों? कि ज्ञान और आत्मा एकरूप है। दोपहर में यह चलता है। अन्तर ज्ञान आत्मा, ऐसा एकाकार होकर अपनी स्वभाव क्रिया का सेवन कभी नहीं किया। राग की क्रिया का सेवन किया। व्यवहार दया, दान, व्रत, भक्ति, तप के विकल्प उठते हैं, उनकी सेवा की। वह सेवा मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : परम्परा तो कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी परम्परा कारण नहीं।

मुमुक्षु : थोड़ा बहुत....

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा बहुत जहर है। यहाँ तो ठोस बात है, भाई! सर्वज्ञ त्रिलोक परमेश्वर की दिव्यध्वनि में ऐसा फरमाते थे कि आत्मा के ज्ञायकस्वभाव के अतिरिक्त पुण्य-राग का सेवन (किया है)। कल तो कहा था न कि जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह भाव दुःख है, आकुलता है। भगवान राग से रहित प्रभु की एक क्षण भी सेवा की नहीं। एक क्षण भी सेवा करने से मुक्ति के मार्ग का पता लग जाये और मुक्ति उसके ख्याल में आ जाये कि मैं अल्प काल में केवलज्ञानी हो जाऊँगा। अल्प काल में, दूज हुई तो पूनम होगी, होगी और होगी। समझ में आया? एक क्षण आत्मा की सेवा की नहीं। ज्ञान के साथ तादात्म्य हुआ ही नहीं। आहाहा! राग, विकल्प ऐसा किया, ऐसा

किया, ऐसे शुभभाव (किये)। शुभराग है, वह तो उदयभाव है। उदयभाव की सेवा, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! परमपारिणामिकभाव की सेवा, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है। समझ में आया?

कहते हैं, ओहो! वह **नव तत्त्वों में प्राप्त होने पर भी...** पर्याय से नौ तत्त्व में भेद हुए हैं तो भी **अपने एकत्व को नहीं छोड़ती।** ज्ञायक शुद्ध चैतन्यज्योति है, वह एकपने को कभी नहीं छोड़ती। समझ में आया? ऐसे शुद्धनय का विषय ध्रुवस्वभाव का अनुभव करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। ओहोहो! सेठी!

भावार्थ :- नव तत्त्वों में प्राप्त हुआ आत्मा अनेकरूप दिखायी देता है;... भावार्थ है न? नौ तत्त्व में प्राप्त हुआ। अपने चलती गाथा। ३१ पृष्ठ नौ तत्त्व में प्राप्त हुआ। पर्याय में एक समय की अवस्था में। मैं जीव हूँ और यह अजीव है, ऐसा ज्ञान, राग है और आस्रव है और संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। ऐसे नौ पर्यायरूप भेदरूप दिखता है। **यदि उसका भिन्न स्वरूप विचार किया जाये तो वह अपनी चैतन्यचमत्कारमात्र ज्योति को नहीं छोड़ता।** भगवान चैतन्यज्योति ध्रुव अखण्डानन्द प्रभु चैतन्यरत्नाकर स्वरूप पूर्ण, उसे कभी इसने छोड़ा नहीं। तो ऐसा चैतन्य भगवान पूर्णानन्द के अन्तर-सन्मुख होकर दृष्टि करके अनुभव करना, वह शुद्धनय का विषय आत्मा को कहते हैं और विषय करके अनुभव किया, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। वह निश्चय सम्यग्दर्शन है, जो चौथे गुणस्थान में उत्पन्न होता है।

मुमुक्षु : पहले चरण में....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले धड़ाके चौथे गुणस्थान में। चौथा गुणस्थान किसे कहते हैं, खबर नहीं? वीतरागी दृष्टि। सम्यग्दर्शन वीतरागी दृष्टि है। रागभाव, वह चारित्र का दोष है, वह आत्मा में है ही नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा अपना स्वरूप ही वीतरागरूप से रखता है। उसका—आत्मा का स्वरूप क्या है? ज्ञायक कहो, अकषायस्वभाव कहो, वीतरागभाव कहो, पूर्ण आनन्दभाव कहो। ऐसा जो आत्मा का ध्रुव स्वभाव, उसका आश्रय लेकर जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है। समझ में आया? समझ में आया? वीतरागस्वरूप

है। आत्मा तो वीतरागस्वरूप है, अकषायस्वभाव है। चैतन्यपिण्ड ज्ञायकभाव, वह अविकारी स्वभाव का पिण्ड है। आया न? मैंने पहले कहा था न?

कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं,
अपने रससौं भर्‌यौ अनादि टेक हौं,
मोहकर्म मम नांहि नांहि भ्रमकूप है,
सुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है॥ ३३॥

'कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं,' विचिक्षण अर्थात् सम्यग्दृष्टि। सम्यग्दृष्टि ऐसा मानता है, अनुभवता है, जानता है। **'कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं,'** सदा शुद्ध एकरूप **'अपने रससौं भर्‌यौ अनादि टेक हौं,'** निज आनन्द आदि अनन्त गुण से स्वभाव से भरपूर ऐसा अनादि का मैं हूँ। अनादि का हूँ। **'मोहकर्म मम नांहि नांहि भ्रमकूप है,'** राग-द्वेष आदि वासना भ्रमणा का कूप है, भ्रम का कुआँ है। कुआँ समझते हो न? **'मोहकर्म मम नांहि नांहि भ्रमकूप है, सुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है।'** आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में ऐसा अनुभव करता है। मेरा स्वभाव शुद्ध चेतनासिन्धु है। सिन्धु-सागर। आहाहा! समुद्र पड़ा है। अनन्त रत्नाकर। अनन्त रत्न जिसमें भरे हैं, ऐसा चैतन्य रत्नाकर महासिन्धु शुद्ध चेतनासिन्धु हमारो रूप है। पुण्य-पाप, विकल्प आदि मुझमें तीन काल में नहीं। ऐसे निज स्वरूप को अन्तर में दृष्टि करके अनुभव करना, इसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन कहा जाता है। समझ में आया? पूरा संसार दृष्टि में से छोड़ दिया। दृष्टि में जो पर्याय-राग बुद्धि थी, उस दृष्टि में स्वभावबुद्धि हो गयी। गुलाँट खा गयी। गुलाँट समझे? पलट गया। आहाहा!

अपनी चैतन्यचमत्कारमात्र ज्योति को नहीं छोड़ता। भगवान अपना ध्रुवस्वरूप कब छोड़े? असंख्य प्रदेश में शुद्ध चैतन्य ध्रुव पड़ा है। सातवें नरक में गया तो भी शुद्ध चैतन्यधातु को कभी छोड़ा नहीं। निगोद में अनन्त काल रहा तो भी शुद्ध चैतन्यधातु को कभी छोड़ा नहीं। समझ में आया? अपना शुद्ध चैतन्यप्रभु एक समय में पूर्णानन्द, वह पर्याय में भले नौ रूप दिखाई दे, वस्तु तो एकरूप है। ऐसी वस्तु की दृष्टि करना, उसका नाम शुद्धनय से आत्मा का अनुभव (करना), उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। अब १३वीं गाथा लेते हैं।

गाथा - १३

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जर बंधो मोक्खो य सम्मत्तं।।13।।

भूतार्थेनाभिगता जीवाजीवौ च पुण्यपापं च।
आस्रवसम्वरनिर्जरा बन्धो मोक्षश्च सम्यक्त्वम्।।13।।

अमूनि हि जीवादीनि नवतत्त्वानि भूतार्थेनाभिगतानि सम्यग्दर्शनं सम्पद्यन्त एव, अमीषु तीर्थप्रवृत्तिनिमित्तमभूतार्थनयेन व्यपदिश्यमानेषु जीवाजीवपुण्यपापास्रवसम्वरनिर्जराबन्ध-मोक्षलक्षणेषु नवतत्त्वेष्वेकत्वद्योतिना भूतार्थनयेनैकत्वमुपानीय शुद्धनयत्वेन व्यवस्थापि-तस्यात्मनोऽनुभूतेरात्मख्यातिलक्षणाया: सम्पद्यमानत्वात्।

तत्र विकार्यविकारकोभयं पुण्यं तथा पापं, आस्राव्यास्रावकोभयमास्रव:, सम्वार्य-सम्वारकोभयं सम्वर:, निर्जर्यनिर्जरकोभयं निर्जरा, बन्ध्यबन्धकोभयं बन्ध:, मोच्यमोचकोभयं मोक्ष:, स्वयमेकस्य पुण्यपापास्रवसम्वरनिर्जराबन्धमोक्षानुपपत्ते:। तदुभयं च जीवाजीवाविति।

बहिर्दृष्ट्या नवतत्त्वान्यमूनि जीवपुद्गलयोरनादिबन्धपर्यायमुपेत्यैकत्वेनानु-भूयमानतायां भूतार्थानि, अथ चैकजीवद्रव्यस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायाम-भूतार्थानि। ततोऽमीषु नवतत्त्वेषु भूतार्थनयेनैको जीव एव प्रद्योतते।

तथान्तर्दृष्ट्या ज्ञायको भावो जीवो, जीवस्य विकारहेतुरजीव:। केवलजीव-विकाराश्च पुण्यपापास्रवसम्वरनिर्जराबन्धमोक्षलक्षणा:, केवलाजीवविकारहेतव: पुण्यपापास्रवसम्वर-निर्जराबन्धमोक्षा इति।

नवतत्त्वान्यमून्यपि जीवद्रव्यस्वभावमपोह्य स्वपरप्रत्ययैकद्रव्यपर्यायत्वेनानु-भूयमानतायां भूतार्थानि, अथ च सकलकालमेवास्खलन्तमेकं जीवद्रव्यस्वभाव-मुपेत्यानुभूयमान-तायामभूतार्थानि। ततोऽमीष्वपि नवतत्त्वेषु भूतार्थनयेनैको जीव एव प्रद्योतते।

एवमसावेकत्वेन द्योतमान: शुद्धनयत्वेनानुभूयत एव। या त्वनुभूति: सात्म-ख्यातिरेवात्म-ख्यातिस्तु सम्यग्दर्शनमेव। इति समस्तमेव निरवद्यम्।।13।।

इस प्रकार ही शुद्धनय से जानना, सो सम्यक्त्व है, यह सूत्रकार इस गाथा में कहते हैं:-

भूतार्थ से जाने अजीव जीव, पुण्य पाप रु निर्जरा।
आस्रव संवर बंध मुक्ति, ये हि समकित जानना।।13।।

गाथार्थ : [भूतार्थेन अभिगताः] भूतार्थ नय से ज्ञात [जीवाजीवौ] जीव, अजीव [च] और [पुण्यपापं] पुण्य, पाप [च] तथा [आस्रवसंवरनिर्जराः] आस्रव, संवर, निर्जरा [बंधः] बन्ध [च] और [मोक्षः] मोक्ष [सम्यक्त्वम्] – यह नव तत्त्व सम्यक्त्व हैं।

टीका : यह जीवादि नव तत्त्व भूतार्थनय से जाने हुवे सम्यग्दर्शन ही है (–यह नियम कहा); क्योंकि तीर्थ की (व्यवहार धर्म की) प्रवृत्ति के लिये अभूतार्थ (व्यवहार) नय से कहा जाता है ऐसे नव तत्त्व – जिनके लक्षण जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष हैं – उनमें एकत्व प्रगट करनेवाले भूतार्थनय से एकत्व प्राप्त करके, शुद्धनयरूप से स्थापित आत्मा की अनुभूति–जिसका लक्षण आत्मख्याति है–वह प्राप्त होती है (शुद्धनय से नव तत्त्वों को जानने से आत्मा की अनुभूति होती है, इस हेतु से यह नियम कहा है।) वहाँ विकारी होने योग्य और विकार करनेवाला – दोनों पुण्य हैं तथा दोनों पाप हैं, आस्रव होने योग्य और आस्रव करनेवाला – दोनों आस्रव हैं, संवररूप होने योग्य (संवार्य) और संवर करनेवाला (संवारक) – दोनों संवर हैं, निर्जरा होने के योग्य और निर्जरा करनेवाला – दोनों निर्जरा हैं, बाँधने के योग्य और बन्धन करनेवाला – दोनों बन्ध हैं, और मोक्ष होने योग्य तथा मोक्ष करनेवाला – दोनों मोक्ष हैं; क्योंकि एक के ही अपने आप पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष की उपपत्ति (सिद्धि) नहीं बनती। वे दोनों जीव और अजीव हैं (अर्थात् उन दो में से एक जीव है और दूसरा अजीव।)

बाह्य (स्थूल) दृष्टि से देखा जाये तो – जीव–पुद्गल की अनादि बन्धपर्याय के समीप जाकर एकरूप से अनुभव करने पर यह नव तत्त्व भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं और एक जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं; असत्यार्थ हैं; (वे जीव के एकाकार स्वरूप में नहीं हैं), इसलिए इन नव तत्त्वों में भूतार्थनय से एक जीव ही प्रकाशमान है। इसी प्रकार अन्तर्दृष्टि से देखा जाये तो ज्ञायकभाव जीव है और जीव के विकार का हेतु अजीव है; और पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष जिनके लक्षण हैं, ऐसे केवल जीव के विकार हैं और पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष – ये विकारहेतु केवल अजीव हैं। ऐसे यह नव तत्त्व, जीवद्रव्य के स्वभाव को छोड़कर, स्वयं और पर जिनके कारण हैं, ऐसे एक द्रव्य की पर्यायों के

रूप में अनुभव करने पर भूतार्थ हैं और सर्व काल में अस्खलित एक जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं–असत्यार्थ हैं। इसलिए इन तत्त्वों में भूतार्थनय से एक जीव ही प्रकाशमान है। इस प्रकार यह, एकत्वरूप से प्रकाशित होता हुआ शुद्धनयरूप से अनुभव किया जाता है। और जो यह अनुभूति है, सो आत्मख्याति (आत्मा की पहिचान) ही है, और जो आत्मख्याति है, सो सम्यग्दर्शन ही है। इस प्रकार यह सर्व कथन निर्दोष है–बाधा रहित है।

भावार्थ : इन नव तत्त्वों में, शुद्धनय से देखा जाये तो जीव ही एक चैतन्य–चमत्कार मात्र प्रकाशरूप प्रगट हो रहा है, इसके अतिरिक्त भिन्न–भिन्न नव तत्त्व कुछ भी दिखायी नहीं देते। जब तक इस प्रकार जीवतत्त्व की जानकारी जीव को नहीं है, तब तक वह व्यवहारदृष्टि है, भिन्न–भिन्न नव तत्त्वों को मानता है। जीव–पुद्गल की बन्धपर्यायरूप दृष्टि से यह पदार्थ भिन्न–भिन्न दिखायी देते हैं; किन्तु जब शुद्धनय से जीव–पुद्गल का निज स्वरूप भिन्न–भिन्न देखा जाये, तब वे पुण्य, पापादि सात तत्त्व कुछ भी वस्तु नहीं हैं; वे निमित्त–नैमित्तिकभाव से हुए थे; इसलिए जब वह निमित्त–नैमित्तिकभाव मिट गया, तब जीव–पुद्गल भिन्न–भिन्न होने से अन्य कोई वस्तु (पदार्थ) सिद्ध नहीं हो सकती। वस्तु तो द्रव्य है, और द्रव्य का निजभाव द्रव्य के साथ ही रहता है तथा निमित्त–नैमित्तिकभाव का अभाव ही होता है, इसलिए शुद्धनय से जीव को जानने से ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है। जब तक भिन्न–भिन्न नव पदार्थों को जाने और शुद्धनय से आत्मा को न जाने, तब तक पर्यायबुद्धि है।

गाथा - १३ पर प्रवचन

इस प्रकार ही शुद्धनय से जानना, सो सम्यक्त्व है,... देखो! **इस प्रकार ही शुद्धनय से जानना, सो सम्यक्त्व है, यह सूत्रकार इस गाथा में कहते हैं :-** १२ गाथा पीठिका है। बारह गाथा में संक्षेप में सब आ गया है। परन्तु ... सूक्ष्म बुद्धिवाला समझ सके। विस्तार से जो समझता है तो उसे विस्तार से समझाने को १३वीं गाथा से लिया है। बहुत बुद्धि हो तो १२ गाथा से संक्षेप में समझ जाये। पूरे समयसार का सार। उसमें न समझ सके तो विस्तारबुद्धिवाले को अब समझाते हैं।

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जर बंधो मोक्खो य सम्मत्तं॥१३॥

भूतार्थ से जाने अजीव जीव, पुण्य पाप रु निर्जरा।
आस्त्रव संवर बंध मुक्ति, ये हि समकित जानना॥१३॥

क्या यह समकित तेरहवें गुणस्थान की बात है? भाई! यहाँ तो नय की बात है, प्रभु! नय तो श्रुतज्ञान में होते हैं। तेरहवें में नय होते हैं? आहाहा! श्रुत विकल्पा नया। श्रुतज्ञान के भेद को नय कहते हैं। तो श्रुतज्ञान तो छद्मस्थ को होता है, केवली को होता नहीं। समझ में आया? परन्तु सम्यगदार्शन की व्याख्या इतनी विपरीत हो गयी कि ऐसे मानो, देव-गुरु को मानो, शास्त्र मानो। सम्यग्दर्शन ऐसा है ही नहीं। समझ में आया?

आत्मा एक समय में राग तो नहीं, निमित्त तो नहीं, परन्तु एक समय की पर्याय भी जिसका विषय नहीं। परिपूर्ण ध्रुव ज्ञायकमूर्ति भगवान जिसका विषय शुद्धनय का है, उसे विषय करने से, ध्येय बनाने से, ज्ञेय बनाने से, ऐसे ध्रुव स्वभाव को ध्येय बनाने से, ज्ञेय बनाने से जो ज्ञान और श्रद्धा हुई, उसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरण कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

टीका :- इसकी टीका। **यह जीवादि नव तत्त्व भूतार्थनय से जाने हुवे सम्यग्दर्शन ही है (-यह नियम कहा);...** जीवादि नौ तत्त्व अर्थात् नौ तत्त्वों में से अकेला जीव यथार्थ निकालना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है, ऐसा कहते हैं। अकेला जीव निकालना। समझ में आया? **क्योंकि तीर्थ की (व्यवहार धर्म की) प्रवृत्ति के लिये अभूतार्थ (व्यवहार) नय से कहा जाता है...** देखो! व्यवहारनय असत्यनय अभूतार्थनय से नौ कहे हैं। व्यवहार की पर्याय में नौ है। समझ में आया? व्यवहारनय के विषय में नौ है। जैनदर्शन के अतिरिक्त ऐसे नौ तत्त्व दूसरे में है ही नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जो नौ तत्त्व कहे, ऐसे व्यवहार के नौ तत्त्व भी अन्य दर्शन में कहीं ऐसा है नहीं।

कहते हैं कि व्यवहार से पर्याय में नौ तत्त्व है। समझ में आया? व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय नौ है। निश्चय सम्यग्दर्शन का विषय एक आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है। उसने कभी अन्तर की बात—स्वसन्मुख होने की क्या चीज़ है, उसकी कभी महिमा नहीं आयी। ऐसे का ऐसा शास्त्र का ज्ञान ग्यारह अंग नौ पूर्व पढ़

डाले। पढ़ डाले। समझ में आया? वाँच-वाँचकर छोड़ दिया परन्तु आत्मा क्या है? उसमें क्या कहते हैं? (यह ग्रहण नहीं किया)। समझ में आया? श्रीमद् कहते हैं न? यह बहुत बार कहा था। श्रीमद् कहते हैं। श्रीमद् राजचन्द्र।

यम नियम संजम आप कियो, पुनि त्याग बिराग अथाग लह्यो;
वनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ आसन पद्म लगाय दियो॥

मन पौन निरोध स्वबोध कियो, हठजोग प्रयोग सु तार भयो;
जप भेद जपे तप त्यौंहि तपे, उरसेंहि उदासी लही सबपें॥

सब शास्त्रनके नय धारि हिये, मत मंडन खंडन भेद लिये;
वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो॥

'जप भेद जपे...' जप जपे, तप किये, साधन किये, इन्द्रियदमन किया।

यम नियम संजम आप कियो, पुनि त्याग बिराग अथाग लह्यो;
वनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ आसन पद्म लगाय दियो॥

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, धूल में है। आत्मा के भान बिना तेरे पद्मासन क्या? वह तो जड़ के पद्मासन हैं। भाई! आहाहा! समझ में आया?

'**सब शास्त्रनके नय धारि हिये, मत मंडन खंडन भेद लिये;**' यह ऐसा है और वैसा है और वैसा है। बहुत बार ऐसे खण्डन-मण्डन किये। 'वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।'

अब क्यों न बिचारत है मनसें, कछु और रहा उन साधनसें;
बिन सद्गुरु कोय न भेद लहे, मुख आगल हैं कह बात कहे?

परम निधान प्रगट मुख आगळे, परम निधान प्रगट मुख आगळे
जगत उल्लंघी जाय जिनेश्वर,

प्रभु! चैतन्य का निधान तो अन्तर समीप में अपने स्वरूप में पड़ा है न! उसके सन्मुख देखता नहीं और बाहर में भटकता है। समझ में आया? सम्मेदशिखर से कुछ मिल जाये और शत्रुंजय से मिल जाये और शास्त्र के ज्ञान से मिल जाये।

मुमुक्षु : नहीं मिले ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन काल में बाहर से मिलता नहीं। समझ में आया ? भगवान! तेरी महिमा बड़ी है, प्रभु! परन्तु उसकी महिमा की उसे खबर नहीं। पता ही नहीं लिया। बाहर में भटक... भटक ऐसा करूँ और वैसा करूँ और ऐसा करूँ। अपना घर— निजस्वरूप को छोड़कर सब किया। समझ में आया ?

कहते हैं, जीवादि नौ पदार्थ जाने हुए, उन नौ में से एक को जानने से। नौ तत्त्व में से एक आत्मा को छाँटे। तारवा को क्या कहते हैं तुम्हारी हिन्दी भाषा में ? तारववुं- पृथक् करना। हमारी काठियावाड़ी भाषा है। समझे ? नौ तत्त्व के भेद में से अकेला अभसेद निकालना। आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य साक्षात् परमात्मा सीमन्धर भगवान के पास गये थे। आठ दिन रहे थे। समझ में आया ? और यहाँ आकर शास्त्र बनाये। पोन्नूर हिल टेकरी है। मद्रास से अस्सी मील इस ओर वन्देवास नाम का एक छोटा गाँव है। दस हजार की आबादी है। वहाँ से पाँच मील दूर है। वहाँ कुन्दकुन्दाचार्य ध्यान में रहते थे। वहाँ से भगवान के पास गये। दिगम्बर मुनि। संवत् ४९। वहाँ भगवान के पास आठ दिन रहे। साक्षात् परमात्मा अभी विराजते हैं। सीमन्धर प्रभु विराजते हैं। मनुष्यक्षेत्र में विराजते हैं, हों! यहाँ से सीधे। वहाँ आठ दिन रहकर आये और आकर यह बनाये। पुकार करते हैं कि परमात्मा ऐसा कहते हैं। भगवान! तू नौ तत्त्व में भेद में फँस गया है। नौ तत्त्व के भेद में विकल्प में पर्याय में तू फँस गया है। तेरा आत्मा उसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

नियमसार में तो शुद्धभाव अधिकार ३८ गाथा में (कहते हैं), अन्तःतत्त्व। पहली गाथा। आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष, वह तो बहिर्तत्त्व है। समझ में आया ? आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष पर्याय है। पर्याय है। अन्तर्मुख तत्त्व की अपेक्षा से भगवान ने उसे बहिर्तत्त्व कहा है। अपने अभी शुद्धभाव अधिकार आ गया। समझ में आया ? अन्तःतत्त्व निज आत्मा। बहिर्तत्त्व जीवादि नौ, वह बहिर्तत्त्व हैं। यह जीव और यह अजीव और संवर, निर्जरा, मोक्ष भी पर्याय है। एक समय की पर्याय है। अन्तःतत्त्व से वह भिन्न है। इसलिए उसे बाह्यतत्त्व कहा है। उसे द्रव्य-परद्रव्य भी कहा है। संवर, निर्जरा,

मोक्ष की पर्याय को परद्रव्य कहा है। नियमसार शुद्धभाव अधिकार। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा अन्त:तत्त्व, अन्त:तत्त्व पूरे अनन्त गुण से पूरा भरपूर, उसे स्वद्रव्य कहा। वह स्वद्रव्य और नौ तत्त्व की पर्याय को परद्रव्य कहा। समझ में आया? पर्यायदृष्टि से नौ हैं; हैं, नहीं है—ऐसा नहीं। परन्तु स्वभावदृष्टि से नौ अभूतार्थ हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **जीवादि नव तत्त्व भूतार्थनय से...** भूतार्थ अर्थात् अकेले आत्मा की दृष्टि से देखो तो नौ तत्त्व में अकेला आत्मा ही दिखता है। सम्यक् स्वभाव त्रिकाल ज्ञायकरूप उसका अनुभव होना, उसका नाम निश्चय-सच्चा सम्यग्दर्शन कहा है। समझ में आया? नौ तत्त्व के भेद में तो है, उसमें से निकालकर अकेले चैतन्य अभेद की दृष्टि करना, इसका नाम भगवान शुद्धनय का विषय ध्रुव का अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन में आत्मा साक्षात् होता है, ऐसा कहते हैं। श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष होता है सम्यग्दर्शन में। सम्यग्दर्शन तो श्रद्धा जितना लक्षण है, परन्तु साथ में श्रुतज्ञान है, वह आत्मा को प्रत्यक्ष करता है और स्वरूप में स्थिर होता है, उतनी शान्ति प्रगट होती है। और आनन्द के साथ... समझ में आया? अनन्त गुण की शान्ति का, अनन्त गुण का एक अंश व्यक्त—प्रगट होता है। उसका नाम शुद्धनय के विषय का सम्यग्दर्शन किया, उसका नाम अनुभव कहा जाता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म है, भाई! शोभालालभाई!

मुमुक्षु : अर्थात् आप क्या कहना चाहते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् प्रयत्न बहुत चाहिए। निवृत्ति बहुत चाहिए, प्रयत्न बहुत चाहिए। ऐसा का ऐसा मिल नहीं जाता। यह पैसा धूल मिल गयी पूर्व के पुण्य के कारण से दो, पाँच करोड़। वह तो धूल मिली। तुझे क्या मिला धूल में? तेरे पास तो ममता आयी, चीज़ तो वहाँ रह गयी। तेरे पास आयी है? सेठी! पैसे तो पैसे में रहे। 'मुझे मिले' ऐसी ममता तेरे पास आयी है। धूल यहाँ नहीं आयी, धूल तो वहाँ रही है।

मुमुक्षु : धूल हो तो धर्म हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल से धर्म होता है? धूल से धर्म होता है? भाई! लालबहादुरजी! नहीं होता। यहाँ तो दान में दिये, राग की मन्दता की, उसमें धर्म नहीं। पैसे से तो कहाँ होता था? पाँच करोड़ में से एक करोड़ राग की मन्दता करके धर्म में दे दिये तो राग की मन्दता, वह भी धर्म नहीं। आहाहा! केसरीचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : टूटे अन्दर दृष्टि करने से। टूटे किस प्रकार क्या? बाथ तो इसने भरी है। बबूल को बाथ भरी है और पूछता है छूटे कैसे? बावळ समझे न? बबूल... बबूल। बबूल-बबूल हो न काँटेवाला? बबूल। वह छूटे कैसे? अरे! छोड़ दे न! छूट जायेगा। छूटे कैसे क्या कहता है? केसरीचन्दजी! बाथ भरी है, बाथ भरी है। छोड़ दे अन्दर से। यह दृष्टान्त दिया है। अनुभवप्रकाश में दिया है न? भाई! मुठ्ठी। बन्दर की मुठ्ठी। अन्दर मुठ्ठी तो डाली परन्तु बोर बहुत ले लिये। अरे! मुझे भूत ने पकड़ा। भूत नहीं, छोड़ दे न। हाथ सीधा था तो घुस तो गया। परन्तु बोर लिये। बोर समझे न? बेर। ऐसे (मुठ्ठी भरकर बाहर निकालने गया तो निकले नहीं)। पकड़ा मुझे। अरे! पकड़ा नहीं, तू छोड़ दे न! मुठ्ठी में भर लिये, अब मुठ्ठी बड़ी हो गयी तो निकले नहीं। अरे! मुझे पकड़ लिया, कोई भूत है अन्दर।

इसी प्रकार भेद को पकड़ा है तूने और मानता है कि किसी ने पकड़ा है। किसी ने पकड़ा नहीं। रागादि भेद की दृष्टि में मिथ्यादृष्टिरूप से पकड़ा गया है। छोड़ दे। भगवान आत्मा अभेद त्रिकाल निराला चैतन्य है, ऐसी दृष्टि करने में तू स्वतन्त्र है। समझ में आया? कोई कर्म-बर्म अवरोधक नहीं। 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहै घनघात लोह की संगति पाई'। यह तो कहे, हम को कर्म अवरोधक हैं। धूल भी अवरोधक नहीं। ऐसी अनीति कहाँ से लाया? कर्म हमको अवरोधक है, ऐसा भगवान कहते हैं, ऐसी अनीति कहाँ से लाया? हमारी जिनाज्ञा माने तो कर्म अवरोधक है, ऐसी बात लाया कहाँ से? तेरा अपराध करनेवाला तू है और अपराध डालता है कर्म के ऊपर। समझ में आया? मूढ़ है। अपराध की स्वतन्त्रता का भी तुझे ख्याल नहीं तो निरपराध भगवान आत्मा की स्वतन्त्रता की दृष्टि तुझे कैसे होगी? समझ में आया?

कहते हैं, यहाँ कहना है नौ में पर्याय में एकाकार हुआ है, वह आत्मा अपने पुरुषार्थ से हुआ है। समझ में आया? नौ में एकाकार हुआ है। मैं पुण्य हूँ, मैं पाप हूँ, ऐसे पर्याय में जो नौ भेद हुए हैं, तो नौ भेद अपने से हुए हैं। जीवादि नौ तत्त्व भूतार्थ, उसमें से निकालकर अकेले आत्मा को नय से जानने से निश्चय सम्यग्दर्शन है।

तीर्थ की (व्यवहार धर्म की) प्रवृत्ति के लिये अभूतार्थ (व्यवहार) नय से कहा जाता है... है, भेद है, भेद है। चौदह गुणस्थान भेद है। चौदह गुणस्थान है, वही व्यवहार है। उसमें से निकालकर एकाकार होना, वही निश्चय है। व्यवहार है। व्यवहार से समझाना है। नौ है, उसमें एकाकार तू है। ऐसा समझाना है। ऐसा 'नय से कहा जाता है, ऐसे यह नौ तत्त्व—जिनके लक्षण...' नौ तत्त्व जिनके लक्षण हैं। क्या? जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष। यह नौ के नौ लक्षण हैं। नौ का मार्ग भिन्न है। समझ में आया? नौ का मार्ग भिन्न है। पंचास्तिकाय में आता है। पंचास्तिकाय न? कलश में आता है। नौ का .... है न यह शब्द? रत्न मार्ग... समझ में आया? नौ का मार्ग भिन्न है। पंचास्तिकाय में अमृतचन्द्राचार्य ने पहले कहा है। देखो! पाँचवाँ कलश है।

जीवाजीवाद्विपर्यायरूपाणां चित्रवर्त्मनाम्।
ततो नवपदार्थानां व्यवस्था प्रतिपादिता॥५॥

(दूसरे अधिकार में), जीव और अजीव इन दो के पर्यायोंरूप नौ पदार्थ की — कि जिनके मार्ग अर्थात् कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं... नौ के कार्य भिन्न-भिन्न हैं। नौ के कार्य भिन्न हैं। अजीव का भिन्न है, पुण्य का भिन्न है, पाप का भिन्न है, आस्रव का भिन्न है, बन्ध का भिन्न है, संवर, निर्जरा, मोक्ष का भिन्न है। समझ में आया? भिन्न-भिन्न 'उनकी व्यवस्था प्रतिपादित की है।' नौ के भिन्न-भिन्न हैं। कर्म अजीव है, उसका कार्य अजीव में आता है। और आत्मा में आस्रव होता है। अपने में आस्रव अपने से होता है। अजीव से हो तो दो तत्त्व एक हो जाते हैं। समझ में आया? भिन्न-भिन्न भी जिसे यथार्थ श्रद्धा में नहीं, उसे ज्ञायकस्वभाव के ऊपर कभी दृष्टि होती नहीं। यह अब आयेगा। समझ में आया? नौ तत्त्व जैसे भिन्न-भिन्न हैं, स्वतन्त्र हैं, स्वतन्त्र हैं, ऐसी व्यक्त पर्याय की भी स्वतन्त्रता की खबर नहीं तो उसे ज्ञायक अव्यक्त त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति है, ऐसा जो

लक्ष्य में पर्याय है तो द्रव्य ऐसा स्वतन्त्र है, ऐसा उसे दृष्टि में नहीं आता। पर्याय की स्वतन्त्रता भासित नहीं होती, उसे द्रव्य की स्वतन्त्रता कभी भासित नहीं होती। समझ में आया?

उनमें एकत्व प्रगट करनेवाले... देखो! नौ में एकपना प्रगट करनेवाले **भूतार्थनय से एकत्व प्राप्त करके,...** एकरूप शुद्ध चैतन्य अभेद सामान्य **शुद्धनयरूप से...** शुद्धनयरूप से। वस्तु ही शुद्धनय त्रिकाल। **शुद्धनयरूप से स्थापित आत्मा की अनुभूति...** अकेला आत्मा आनन्दस्वरूप की अनुभूति **कि जिसका लक्षण आत्मख्याति है...** आत्मप्रसिद्धि होती है। इस टीका का नाम आत्मख्याति है न। भगवान आत्मा नौ के भेद का लक्ष्य छोड़कर अकेला चैतन्य ज्ञायकस्वरूप है, ऐसी दृष्टि करने से आत्मा ख्याति, आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द है, ऐसी पर्याय में प्रसिद्धि होती है। पर्याय में प्रसिद्धि होती है कि आत्मा त्रिकाल शुद्ध और आनन्द है। समझ में आया? अनादि काल की प्रसिद्धि नौ तत्त्व के भेदरूप की प्रसिद्धि है। अनादि काल की नौ के भेदरूप की प्रसिद्धि है, वह मिथ्या प्रसिद्धि है। आहाहा! समझ में आया? भाई! वीतरागमार्ग अलौकिक मार्ग है। जैन के अतिरिक्त—सर्वज्ञ के अतिरिक्त तीन काल-तीन लोक में दूसरे पंथ में यह बात है नहीं। समझ में आया? वेदान्त आदि बात करते हैं, परन्तु वह सब झूठी है। सर्वज्ञ परमेश्वर ने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे, वैसा कहा, ऐसा है। समझ में आया?

नौ तत्त्व है, पर्याय में है, ऐसा कहा। व्यवहार से स्वीकार है। समझ में आया? एकरूप स्वीकार करने से आत्मा की प्रसिद्धि होती है तो नौ तत्त्व अभूतार्थ है। नौ हैं, वे झूठे हैं। अपने आत्मा का अनुभव करने से, ज्ञायकस्वरूप की दृष्टि करने से, आत्मा की प्रसिद्धि होने से, एकरूप का भान होने से अनेक अभूतार्थ हैं। अनेक है ही नहीं। समझ में आया? एक में अनेक है ही नहीं। इस अपेक्षा से अनेक को असत्यार्थ कहा है। अनेक की अपेक्षा से अनेक हैं। आहाहा! एक चैतन्यमूर्ति भगवान अन्तर में दृष्टि करने से आत्मप्रसिद्धि हुई तो एक में अनेक है नहीं। इस अपेक्षा से नौ तत्त्व को असत्यार्थ भी कहा है। त्रिकाल स्वरूप को सत्यार्थ कहा है। और त्रिकाल स्वरूप का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ७, बुधवार, दिनांक - २१-०९-१९६६
गाथा-१३, प्रवचन - ५४

मन में वक्रता नहीं करते, सरलता रखते हैं, काया से वक्रता नहीं करते और वचन से वक्ररूप बोलते नहीं। मायासहित बोलना। कपटसहित बोलना। बोलना कुछ, हृदय में कुछ, भाव कुछ। ऐसे वक्र हों, उन्हें यहाँ सरल धर्म होता नहीं। वास्तव में तो वक्रता के परिणाम तिर्यंच गति शास्त्र कहता है।

मुमुक्षु : मनुष्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्य होता है, परन्तु वक्रता करे तो मनुष्य मरकर तिर्यंच होते हैं। तिर्यंच होते हैं। क्योंकि तिर्यंच के शरीर वक्र-आड़े हैं। आड़ा समझते हो? टेढ़ा टेढ़ा। तिर्यंच के शरीर ऐसे टेढ़े हैं। टेढ़े क्यों हुए? कि पूर्व में आडोडाई—वक्रता बहुत की। समझ में आया? माया, वक्रता, वंचन, ठगाई, ऐसा बहुत करने से उसकी पर्याय में वक्रता तो हुई, परन्तु उसके फल में शरीर भी आड़ा हो गया। क्या कहा? टेढ़ा हो गया। यह चूहा और यह भैंस, गाय ऐसे शरीर हैं, देखो! मनुष्य के शरीर ऐसे (सीधे) हैं। टेढ़ा हो गया। बहुत वक्रता करने से शरीर भी टेढ़ा हो गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : असर-फसर कहाँ है? उसके शरीर की पर्याय भी ऐसी हो गयी। अपनी वक्रता से, अपनी पर्याय में वक्रता की तो ऐसे कर्मबन्ध हुए तो उसके फल में शरीर भी आड़ा हो गया। समझ में आया?

कहते हैं कि, वचन से वक्रता नहीं करना, शरीर से नहीं, मन से नहीं और दूसरा, '**ण य गोवदि णियदोसं**' निज दोष को छुपाना नहीं। दोष को छिपावे तो माया, वक्रता, कुटिलता हो जाती है। समझ में आया? जैसे बालक अपनी माता के पास अपने दोष सरलरूप से कहता है, उसी प्रकार अपने दोष हो तो बालक की भाँति गुरु के निकट

कहे। ऐसे वंचना न करे, ठगाई न करे कि थोड़े दोष बताना और बड़े दोष नहीं बताना। समझ में आया?

मुमुक्षु : कुछ के बदले कुछ गुरु के पास न कहे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ का कुछ कहे तो वह तो वक्रता हो गयी, कुटिलता हुई। जैसा है, वैसा कहना चाहिए। सीधा कहना चाहिए। समझ में आया? चार बोल लिये हैं। चार बोल में नहीं आता? नामकर्म में नहीं आता? मन, वचन, काया से असरलता से अशुभ नामकर्म बँधता है। अशुभ नामकर्म चार बोल आते हैं न। मन, वचन और काया की सरल ऋजुता से शुभ पुण्य बँधता है। वह विकल्प की ऋजुता है, वह ऋजुता अत्यन्त आत्मा के भान सहित की सरलता की बात है। नामकर्म में जो चार बोल आये हैं, मन-वचन-काया और अविसंवाद। किसी को ठगना नहीं। ऐसे भाव से पुण्यबन्ध होता है और काया, वचन, मन से वक्रता (करना) और दूसरे को ठगना, उससे अशुभ नामकर्म बँधता है। यह तो दूसरा सरल धर्म तीसरा है। पुण्य-पाप से रहित। अपने में आनन्दस्वरूप का भान होकर अपनी पर्याय में वक्रता का उत्पन्न न होना और सीधी सरल दशा की वीतरागी पर्याय का उत्पन्न होना, उसका नाम सरल धर्म, संवर, निर्जरा कहा जाता है। समझ में आया?

अपना दोष छुपावे नहीं परन्तु जैसा हो, वैसा बालक की भाँति गुरु के निकट कहे... ऐसी सरलता उत्तम धर्म सम्यग्दर्शनसहित की बात है। अकेली सरलता, वह सरलता नहीं। समझ में आया? अकेली सरलता तो कहा न? मन-वचन-काया से सरलता क्रिया, शुभभाव की सरलता, उससे तो नामकर्म बँधता है। समझ में आया? मन में सरल, वचन में सरल, काया में सरल तो शुभभाव है। इससे तो नामकर्म बँधता है। उससे रहित सरलता ज्ञाता-दृष्टा में सरलता हो, वह संवर, निर्जरा है।

मुमुक्षु : .... तो कर्म बँधता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चार बोल आते हैं या नहीं? पण्डितजी! नामकर्म में चार बोल (आते है)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो नीच गोत्र, गोत्र। ऋजुता, अऋजुता चार बोल आते हैं। अविसंवाद के पहले तीन बोल। चार बोल आते हैं। यह तो हमने बहुत वर्ष पहले कहे थे। (संवत्) १९८२ में सभा में लिया। भाई! धर्म तो ऐसा है कि कोई मन, वचन, काया से सरलता करे तो धर्म है, ऐसा नहीं। जामनगर में कहा न! जामनगर। ताराचन्दभाई बैठे थे। बत्तीस सूत्र के जाननेवाले, क्रियाकाण्ड के बहुत रसिक, वृद्ध व्यक्ति, वीरजीभाई के पिता। पहले जब सभा में कहा, बड़ी सभा थी, १९८२ के वर्ष। ४० वर्ष हुए। देखो! धर्म तो ऐसी कोई चीज़ है कि मन, वचन, काया में और ठगने के भाव करना, वह तो पाप है। परन्तु मन, वचन, काया में और ठगने के भाव नहीं करना और सरलता रखना, वह तो शुभ-पुण्यभाव है; धर्म नहीं। ऐसी बात सुनकर खलबलाहट हो गयी।

मुमुक्षु : व्यवहार धर्म....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार धर्म का अर्थ क्या? पुण्य परिणाम है। १९८२ के वर्ष। संवत् १९८२। समझ में आया? ८२ को क्या कहते हैं? जामनगर गये थे। पहले नाम तो बहुत था न। बड़ी सभा थी और एक वारिया थे। शास्त्र के बहुत जाननेवाले। सरल आत्मा। बहुत जाननेवाले परन्तु यथार्थ दृष्टि नहीं थी। परन्तु शास्त्र के बहुत जाननेवाले वृद्ध थे। वीरजीभाई वकील के पिताश्री थे। सभा में कहा, देखो भाई! कोई ऐसा माने कि मन, वचन, काया में हम सरलता शुभभाव करते हैं तो उसका नाम धर्म है—ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? राग की मन्दता से मन, वचन, काया में सरलता-ऋजुता, वक्रता का अभाव, ऐसे भाव को तो भगवान पुण्यबन्ध नामकर्म के बन्ध का कारण कहते हैं। समझ में आया? अमरचन्दभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊपर से। वंचाता था क्या? आत्मा से बात ऊपर से करते थे। वहाँ तो सब क्रियाकाण्डी बहुत थे। यह सुनकर खलबलाहट हो गयी। एक महाराज ऐसे आये हैं, सरलता से पुण्यबन्ध कहते हैं, नामकर्म का बन्ध कहते हैं, धर्म नहीं—ऐसा कहते हैं। खलबलाहट हो गयी। यहाँ नजदीक नहीं आ सके। बोले अन्दर। बात तो कोई सच्ची कहते हैं, हमने सुनी नहीं, ऐसी कहते हैं। सरल। मन, वचन, काया में

सरलता, ऋजुता-वक्रता का अभाव, उसे भगवान नामकर्म में चार प्रकार से नामकर्म पुण्य बँधता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और वक्रता से तो, चार प्रकार से वक्रता—मन, वचन, काया और ठगने से तो पाप बँधता है। तो जिस भाव से पुण्य बँधता है, उस भाव से धर्म होता है? समझ में आया? पहली बार सुना न, लोगों में खलबलाहट हो गयी। क्या कहते हैं? हम ऐसी सरलता की क्रिया करते हैं। पुण्य है?

आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप का भान होकर माया का उत्पन्न न होना और सरलता की शान्ति उत्पन्न होना, उसका नाम भगवान संवर, निर्जरा धर्म कहते हैं। समझ में आया? वह सरलता हुई। समझ में आया? हम तो एक श्लोक भी कहते थे। एक आता है। **समकित का मूल जानिये जी, सत्य वचन साक्षात्...' 'समकित का मूल जानिये जी, सत्य वचन साक्षात्, असत्य में माया बसे जी, माया में मिथ्यात्व।' 'माया में मिथ्यात्व'** भ्रमणा। कपट करके मानना कि मैं ठीक करता हूँ, हित करता हूँ, ऐसी मान्यता को भगवान मिथ्यात्व कहते हैं। आहाहा! यह नामकर्म में आता है, भाई! क्या कहलाता है? ज्ञानसागर। ज्ञानसागर (पुस्तक) बाहर प्रकाशित हुई है। फिर उसमें से बतलाया कि देखो! उसमें लिखा है या नहीं? नामकर्म चार प्रकार से शुभ से बँधता है और नामकर्म चार प्रकार से अशुभ से बँधता है। उसमें सरलता आ गयी है। मन-वचन-काया की सरलता से पुण्य बँधता है। यह सरलता, वह यह धर्म नहीं। जिनेश्वरदासजी! आहाहा! यह सरलता जो है, वह तो सीधा ज्ञायकस्वरूप भगवान परमानन्द मूर्ति के आश्रय से शुद्धता की उत्पत्ति होना, अशुद्धता की उत्पत्ति न होना, उसका नाम भगवान सरल धर्म शान्त धर्म कहते हैं। आहाहा! दर्शनआर्य, ज्ञानआर्य, चारित्रआर्य। ये तीन आर्य सरलता पर्याय प्रगट हो, उसे भगवान सरल धर्म कहते हैं। यह दसलक्षणी पर्व में चलता है।

भाई! धर्म तो अपूर्व चीज़ है। एक समय का सरल धर्म मुक्ति का कारण हो जाता है। समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति के दर्शन, ज्ञान और रमणता का भाव एक समय भी उत्पन्न हो तो संसार का नाश हो जाता है। अल्प संसार एकाध-दो भव रहे, वह तो फिर स्थिर होकर नाश करेगा। समझ में आया? ऐसी स्थिरता के परिणाम, सरलता के, हों!

अब अपने चलता विषय। १३वीं गाथा। कहाँ आया? देखो! यहाँ आया है। **जिनके लक्षण जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्त्रव, संवर, निर्जरा बन्ध और मोक्ष हैं - उनमें एकत्व प्रगट करनेवाले भूतार्थनय से एकत्व प्राप्त करके,...** भगवान आत्मा जीव, अजीवादि नौ प्रकार की पर्याय के जो भेद हैं, उन्हें छोड़कर, नौ तत्त्व के भेदरूप जो विकल्प है, उन्हें छोड़कर निज ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप—सन्मुख शुद्धनय का जो विषय अभेद भूतार्थ, उसे एकपने को प्राप्त करके, **शुद्धनयरूप से स्थापित आत्मा की अनुभूति...** भगवान आनन्दस्वरूप में नौ तत्त्व के भेद के विकल्प से हटकर निज एक स्वभाव स्वरूप में एकाग्र होकर अपनी अनुभूति जिसमें प्रगट हो, **कि जिसका लक्षण आत्मख्याति है...** जिसमें आत्मा की शान्ति की प्रसिद्धि होती है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक स्वरूप की अन्तर दृष्टि करने से आत्मा में अनुभूति होती है। अनुभूति से आत्मा की ख्याति होती है। आत्मा की प्रसिद्धि होती है कि शान्त और आनन्द का अनुभव हुआ, वह शान्त और आनन्दस्वरूप पूरा आत्मा है। थोड़ी सूक्ष्म बात है। समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्म है, बहुत सूक्ष्म नहीं ऐसी। आहाहा!

कभी प्रयत्न किया नहीं, कभी अभ्यास किया नहीं। दूसरा अभ्यास (किया)। जो तत्त्व का निर्णय अभ्यास करना, वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता है। तत्त्व निर्णय करने का प्रयत्न नहीं और दूसरा सब करे तो रास्ता दूसरा हो गया। समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक में कहते हैं कि व्रत, संयम, तप नहीं होने पर भी शास्त्र का कदाचित् बहुत अभ्यास न हो परन्तु जो तत्त्वनिर्णय में चलता है, तो समकित का अधिकारी है। जिनेश्वरलालजी! और तत्त्व निर्णय नहीं करता, मात्र शास्त्र अभ्यास, व्रत, तप करता है, वह समकित का अधिकारी नहीं। भाई! समझ में आया? यह मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने लिखा है। वह यथार्थ है। जो चीज़ है, उसका निर्णय करने की तो दरकार नहीं और ऐसा करना और तप करना और व्रत करना और बहुत शास्त्र वाँचना। वह तो परलक्षी भाव है, उसमें आत्मा कहाँ आया? आत्मा में व्रत, तप है, बाहर में व्रत, तप है ही कहाँ? स्वरूप आनन्दमूर्ति में लिपट जाना, एकाकार हो जाना, इसका नाम व्रत है। भाई! चिदानन्द भगवान आत्मा ज्ञायकमूर्ति में लिपट जाना। वींटाई समझे? उसमें लिपट जाना, उसका नाम व्रत है। निश्चय व्रत तो उसे कहते हैं।

और तप भी उसे कहते हैं, विजयतप। प्रतपंति इति तपः। आनन्दस्वरूप भगवान की दृष्टि में उग्ररूप से पुरुषार्थ करके अपनी पर्याय में, जैसे सुवर्ण को गेरु लगाने से शोभता है; उसी प्रकार आत्मा आनन्द से शोभित होता है, प्रतपंति अपनी आनन्द की दशा की उग्र दशा हो, उसका नाम भगवान तप कहते हैं। आहाहा! कहाँ गये तुम्हारे दूसरे दो-तीन व्यक्ति थे न? पीछे बैठे हैं? यहाँ आना चाहिए। बहुत दूर से आये हो। नजदीक आओ, नजदीक। यहाँ आओ, आओ। ... कहीं देखा नहीं। और चेष्टा की खबर पड़े। कैसे सुहाता है, कैसा नहीं सुहाता। शरीर की चेष्टा के ऊपर से (खबर पड़ती है)। क्या कहा? देखो! समझ में आया?

भगवान आत्मा एक समय में ज्ञेयाकार नौ तत्त्व की पर्याय के भेद हैं, उनका लक्ष्य छोड़कर एक स्वरूप चिदानन्द भगवान में अन्तर एकाकार होकर आत्मानुभूति होती है, उससे आत्मख्याति होती है। इस टीका का नाम आत्मख्याति है। अमृतचन्द्राचार्य की टीका का नाम आत्मख्याति है। आत्म प्रसिद्धि। मैं भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य का अनुभव हुआ, स्वभाव-सन्मुख होकर अनुभव में आनन्द आया, अनुभव में शान्ति आयी, अनुभव में प्रतीति और रमणता हुई, उससे यह पूरा आत्मा आनन्द है, पूरा आत्मा शुद्ध है, ऐसी आत्मख्याति—प्रसिद्धि होती है। आत्मा की पर्याय में प्रसिद्धि होने से आत्मा की प्रसिद्धि हुई, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

फिर से। जरा सूक्ष्म बात है। देखो! क्या कहते हैं अमृतचन्द्राचार्य? अमृतचन्द्राचार्य की टीका, ओहो! भरतक्षेत्र में अभी ऐसी टीका कहीं नहीं। समझ में आया? अमृतचन्द्राचार्य मुनि दिगम्बर सन्त भावलिंगी, जिन्होंने अमृत बहाया है। क्या कहते हैं? देखो! नौ तत्त्व में **उनमें एकत्व प्रगट करनेवाले भूतार्थनय से एकत्व प्राप्त करके,..** स्वरूप में अन्तर में एकाकार होकर नौ तत्त्व के विकल्प के भेद को छोड़कर एकरूप ज्ञायक में भूतार्थ सत्यनय से एकपने को अन्दर प्राप्त करके **शुद्धनयरूप से स्थापित...** शुद्धनय से स्थापित यह आत्मा। आनन्द का अनुभव हुआ, **जिसका लक्षण आत्मख्याति है...** समझ में आया?

देखो! सम्यग्दर्शन में आत्मप्रसिद्धि हुई। स्वरूपाचरण भी हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, प्रतीति हुई, रमणता हुई, सब एकसाथ हुआ है। पूरा आत्मा।

मुमुक्षु : स्वरूपाचरण चारित्र....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चारित्र का अंश है। आत्मख्याति हुई, पूरा आत्मा प्रसिद्ध हुआ। ऐसा कहा न? पूरा आत्मा जो अनन्त गुण का पिण्ड जो अनन्ताअनन्त गुण हैं... समझ में आया? अनन्ताअनन्त गुण का अभी एक बार कहा था न? अनन्ताअनन्त गुण शास्त्र में कहते हैं। एक जीवद्रव्य में, हों! अभी तक सिद्ध हुए, सिद्ध। छह महीने आठ समय में ६०८ सिद्ध होते हैं। अभी तक जितने सिद्ध हुए, संख्या से अनन्त, उनसे तो संसारी जीव की संख्या अनन्तगुणी है। और उनसे अनन्तगुणी संख्या परमाणु की है, उससे अनन्तगुणी संख्या त्रिकाल समय की है, त्रिकाल समय और उससे अनन्तगुणी संख्या आकाश के प्रदेश की है। उससे अनन्तगुणी संख्या एक जीव के गुण की है। समझ में आया? भाई! यह तो सादी भाषा है, इसमें कहीं (कठिन नहीं)।

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक अपनी पर्याय में जाने। ऐसे नहीं जाने, अपनी पर्याय में सब जाना है। समझ में आया? दिव्यध्वनि में आया, भगवान! तू आत्मा है न, प्रभु! तुझमें तो अनन्ताअनन्त गुण हैं। अनन्ताअनन्त गुण कितने? कि तीन काल के समय से अनन्तगुणे तो आकाश के प्रदेश हैं। तीन काल के समय से आकाश के प्रदेश अनन्तगुणे अमाप हैं न, अमाप हैं न? आकाश है, आकाश तो आकाश की कहाँ नास्ति होगी? अस्ति... अस्ति... अस्ति... अस्ति... अस्ति चलते जाओ अस्ति... अस्ति... है... है... है... चलते ही जाये। 'है' में 'कभी नहीं' ऐसा नहीं आता। कभी आयेगा? नहीं आयेगा। क्यों? कि अस्ति चलती ही जाती है। अमाप... अमाप... अमाप... अमाप... इतने अमाप आकाश के प्रदेश की संख्या है, उससे एक जीव के गुण की अनन्तगुनी संख्या है। रायबहादुरजी! आहाहा! अरे! भगवान!

यहाँ क्या कहना है? यहाँ आत्मख्याति लेनी है। देखो! आत्मख्याति अर्थात् जितने आत्मा में अनन्ताअनन्त गुण हैं, उस ओर अनुभव होकर सब गुण की आत्मख्याति पर्याय में अंश प्रगट हो गये। तब ख्याति कहलाती है। आत्मा प्रसिद्धि में आया। अनन्त गुण जो हैं शुद्ध आनन्दकन्द अन्तर एकाकार होकर पर्याय में सब गुणों का निर्मल अंश

आत्मख्याति—प्रसिद्धि हो गयी। समझ में आया? आहाहा! कभी सुना नहीं, समझे नहीं और ऐसे पता लग जाये... (-ऐसा नहीं)। यह तो सर्वज्ञ का मार्ग है। यह कोई कल्पित मार्ग नहीं। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर हाजरा-हुजूर भगवान महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। अभी परमात्मा विराजते हैं। समझ में आया? दिव्यध्वनि खिरती है, इन्द्र सुनते हैं। वही यह बात है। अनन्त तीर्थंकर ऐसा कहते आये हैं। प्रभु! एक समय में तेरा आत्मा, ऐसे अनन्ताअनन्त गुण की खान है। ऐसे आत्मा की ओर झुकने से, नौ तत्त्व की पर्याय के भेद की ओर से झुकाव हट जाने से... समझ में आया? नौ तत्त्व के भेद का झुकाव हट जाने से, एकरूप स्वभाव का झुकाव होने से **अनुभूति-जिसका लक्षण आत्मख्याति है...** भगवान आत्मा का अनुभव होता है तो आनन्द का अनुभव, स्वरूपाचरण का अनुभव, शान्ति का अनुभव (होता है), उसे भगवान अमृतचन्द्राचार्य, वह तो त्रिलोकनाथ परमेश्वर कहते हैं, वही मुनि कहते हैं। मुनि कहीं अपने घर की बात नहीं करते। दिगम्बर सन्तों ने तो धर्म के धोध, धर्म के स्तम्भ! धर्म उन्होंने टिका रखा है। परमेश्वर ने कहा, वही मार्ग दिगम्बर सन्त कहते हैं। दूसरे में फेरफार (करके कहा) उसमें कुछ नहीं। देखो! भाषा तो देखो!

शुद्धनयरूप से स्थापित आत्मा की अनुभूति... अन्दर में एकाकार स्थिर हुआ तो अनुभूति हुई, जिसका लक्षण आत्मख्याति है। भगवान अनन्त गुण का पिण्ड शुद्ध चैतन्य, एक आत्मा में सामान्य गुण भी अनन्त हैं और विशेष गुण भी अनन्त हैं। क्या कहा, समझ में आया? आत्मा एक है, उसमें अस्तित्व आदि छह गुण लिये न, वे तो साधारण लिये हैं। बाकी एक आत्मा में सामान्य गुण अनन्त हैं और विशेष गुण अनन्त हैं। दूसरे में न हो, ऐसे विशेष भी अनन्त हैं और सामान्य भी अनन्ताअनन्त गुण हैं। यहाँ तो बड़े ढ़ेर पड़े हैं। परमात्मप्रकाश में टीका में लिया है। परमात्मप्रकाश है न? उसमें लिया है। एक समय में भगवान आत्मा में अस्तित्व, नास्तित्व, प्रमेयत्व आदि अनन्त सामान्य गुण हैं और ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त विशेष गुण हैं। अनन्त विशेष गुण हैं। आहाहा! ऐसे अनन्त सामान्य और विशेष गुणों का पिण्ड प्रभु, उस ओर की एकाग्रता होने से, एकपने का लक्ष्य करने से, अनुभूति होने से, उसका अनुभव होने से, द्रव्य को अनुसरकर पर्याय होने से आत्मख्याति—प्रसिद्धि होती है। मैं ऐसा शुद्ध आनन्द

हूँ। आनन्द का अंश आया तो पूरा आत्मा आनन्द है। स्थिरता का अंश आया तो पूरा आत्मा स्थिरतारूप है। वीर्य का अंश आया तो पूरा आत्मा वीर्य का पिण्ड है। ज्ञान की अनुभूति हुई तो पूरा आत्मा ज्ञानस्वरूप है। ऐसे अनन्त गुण के अंश प्रगट हुए तो पूरा आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है, ऐसा प्रतीति में आया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह कहीं साधारण प्रयत्न करने से मिलती नहीं। यह तो असाधारण प्रयत्न है। समझ में आया? और पुरुषार्थ से मिलती है। कोई कर्म मन्द हो, उससे मिलती है, ऐसा नहीं। अपने पुरुषार्थ की जागृति से यह चीज़ मिलती है।

कहते हैं, **प्राप्त होती है...** बस। अब यहाँ **(शुद्धनय से नव तत्त्वों को जानने से...)** नौ तत्त्व में से अकेला आत्मा शुद्धनय से जानने से **(आत्मा की अनुभूति होती है, इस हेतु से यह नियम कहा है।)** अब यह नौ के भेद बतलाते हैं। नौ के भेद बतलाते हैं। क्या कहते हैं, देखो जरा! उसमें भी व्यवहार से उसकी यथार्थ सिद्धि दृष्टि में न हो तो निश्चय का भान उसे नहीं होता। क्या कहते हैं?

वहाँ विकारी होनेयोग्य और विकार करनेवाला - दोनों पुण्य हैं तथा दोनों पाप हैं,... जरा सूक्ष्म बात है, शान्ति से समझना। आत्मा में पुण्य होनेयोग्य विकारी परिणाम, आत्मा में पुण्य होनेयोग्य अपनी पर्याय की योग्यता है। शुभभाव होने की आत्मा की पर्याय में योग्यता है। **विकारी होनेयोग्य...** ऐसे शब्द पड़े हैं। क्या कहा, समझ में आया? यह तो अभी नौ तत्त्व के भेद बतलाते हैं। उसमें से (एक आत्मा को) निकालकर अनुभव करना, वह अनुभूति है, यह बताते हैं। नौ का ज्ञान कराने को कहते हैं कि यह नौ प्रकार हैं। कौन से नौ कैसे हैं? अपनी पर्याय में विकारी होने होनेयोग्य पुण्यभाव। अपनी अवस्था में शुभभाव होनेयोग्य अपने से शुभभाव होनेयोग्य आत्मा है। कर्म से शुभभाव होते हैं, ऐसा नहीं। अभी इतनी नौ की स्वतन्त्रता भी प्रतीति में नहीं, उसे अकेला आत्मा भगवान शुद्धनय का (विषय) अनुभव में आता नहीं, उसे शुद्ध का अनुभव होता नहीं। पहले व्यवहार की यथार्थ श्रद्धा कराते हैं।

पुण्य **विकारी होनेयोग्य...** यह पुण्यभाव-शुभभाव। शुभभाव होनेयोग्य अपनी पर्याय। **और विकार करनेवाला...** पूर्व के कर्म का उदय पुण्य में निमित्त है तो उसे

द्रव्यपुण्य कहते हैं। सुनो जरा। कहते हैं, स्पष्ट करते हैं धीरे से। आत्मा में विकारी होनेयोग्य, वह जीव की पर्याय है। शुभभाव होनेयोग्य जीव की पर्याय है। समझ में आया? वह पुण्य है। 'और विकार करनेवाला...' करनेवाले का अर्थ क्या? विकार होने का कहीं स्वभाव नहीं। भेद होने का स्वभाव नहीं। तो कहते हैं कि पुण्य होने के योग्य, शुभ होने के योग्य जीव की दशा है और पूर्वकर्म का जो उदय है, वह निमित्त है, उसे करनेवाला कहा है। निमित्त है। पूर्व के उदय को द्रव्यपुण्य कहा। शान्ति से सुनो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुराने कर्म को। पुराने कर्म के उदय को।

मुमुक्षु : मोहनीय कर्म ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मोहनीय है तो वही कहते हैं न। यहाँ पुण्य हुआ तो उसका निमित्त में आरोप करके उसे द्रव्यपुण्य कहा। इसीलिए तो अटक-अटक कर कहते हैं। क्या कहा?

फिर से लेते हैं। आत्मा में... सुनो! यह नौ तत्त्व के भेद की स्वतन्त्रता कैसी है, यह बतलाते हैं। भगवान आत्मा अपनी पर्याय में शुभ होने की योग्यता है तो होता है। शुभ। उसे भावपुण्य कहते हैं, उसे जीवपुण्य कहते हैं और पूर्व के उदयकर्म जो पुण्य में निमित्त पड़ा, उसे द्रव्यपुण्य कहते हैं। है मोह का उदय।

मुमुक्षु : पाप की प्रकृति....

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप की प्रकृति का उदय। उसे द्रव्यपुण्य कहते हैं। निश्चित करो। समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो!

मुमुक्षु : यहाँ का वहाँ उपचार आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका उपचार आया, ऐसा कहते हैं। सुनो तो सही, क्या चीज़ है।

भगवान आत्मा एक स्वरूप अभेद में अनुभव करना, वह तो सम्यग्दर्शन है। परन्तु कहते हैं कि उन नौ में पर्याय उत्पन्न कैसे होती है? तेरी योग्यता से शुभभाव तुझमें होता है। उसे जीवपुण्य कहते हैं। शुभभाव को जीवपुण्य कहते हैं और कर्म का उदय

जो है, उसे अजीवपुण्य कहते हैं। है मोहकर्म का उदय। मोहकर्म पाप है, तथापि यहाँ शुभभाव हुआ तो मोहकर्म के निमित्त को भी द्रव्यपुण्य उपचार से कहा जाता है। निश्चित करो पहले। ऐई... वेणीप्रसादजी! यह निश्चित करने की वस्तु है। क्या भाई राजबहादुरजी! बहादुरी अन्दर करने की है। आहाहा!

भगवान त्रिलोकनाथ... अमृतचन्द्राचार्य की टीका गजब बात है! इस भरतक्षेत्र में ऐसी टीका अन्यत्र कहीं नहीं। दूसरे श्वेताम्बर आदि में तो ऐसी चीज़ हो सकती ही नहीं, परन्तु दिगम्बर में भी समयसार की इस टीका जैसी दूसरी टीका नहीं है। समझ में आया? बहुत ध्यान रखकर समझने की चीज़ है। शोभालालजी! क्या कहते हैं? पहले बोल के दो बोल घटित करते हैं। जीव है। द्रव्य-गुण तो त्रिकाली है। उसकी पर्याय में शुभभाव होने की अपने में योग्यता है। शुभभाव—कषाय की मन्दता का भाव, दया-दान का भाव अपनी पर्याय में होने की अपनी योग्यता से भाव होता है। उसका नाम भावपुण्य—जीवपुण्य कहा जाता है। और ऐसे भावपुण्य और जीवपुण्य में पूर्व कर्म का निमित्त गिनकर उसे (द्रव्यपुण्य कहा जाता है)। है तो पाप, मोहकर्म का उदय है, वह तो पाप है। घातिकर्म में पुण्य नहीं होता, पुण्य तो अघाति में होता है। अघाति (कर्म) के पाप और पुण्य दो प्रकार। चार घाति तो मात्र पाप ही है। तथापि क्या कहते हैं विशिष्टता? यहाँ शुभभाव अपनी योग्यता से हुए, उस शुभ में जीव की योग्यता है। पूर्व के कर्म निमित्त हैं। है तो वह पाप का उदय, परन्तु यहाँ पुण्य है, भावपुण्य है, जीवपुण्य है तो उसे द्रव्यपुण्य कहा अथवा अजीवपुण्य कहा। पूर्व के उदय को भावपुण्य में निमित्त पड़ा, उसे अजीवपुण्य कहा। बराबर स्पष्ट करना। क्या?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भावपुण्य है, उसे आरोप देकर कहा। वह तो है वह है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। इसीलिए तो यहाँ कहते हैं। क्या स्पष्टीकरण करते हैं? यहाँ ऐसी चीज़ है। इसीलिए तो आचार्य महाराज यहाँ स्पष्ट करते हैं। निमित्त से

कहाँ से ले ? निमित्त में मन्दकषाय का उदय आया तो यहाँ भावपुण्य हुआ, ऐसा है नहीं। वस्तुस्थिति भगवान अमृतचन्द्राचार्य अपनी पर्याय में शुभभाव की योग्यता से होता है। **विकारी होनेयोग्य....** ऐसा लिया है। आगे लेंगे कि एक जीव में अकेले में नौ भेद नहीं पड़ते। दूसरा निमित्त है। अपने सात पर्याय होती है, उसमें भी सात पर्यायें होती हैं। धीरे-धीरे समझना। यह तो अभी व्यवहार समझाते हैं।

व्यवहार में भी जो पुण्य परिणाम अपने से होते हैं, ऐसा नहीं मानता, पर से होते हैं—ऐसा मानता है, उसकी व्यवहार की श्रद्धा में भूल है। भाई! यह तो यह कहते हैं। प्रभु! सुन तो सही, भाई! तेरी पर्याय तो तुझसे हुई है, भगवान! तू भूलकर तेरा स्वभाव भूलकर तेरी पर्याय में शुभभाव तुझसे हुआ है। और उसे करने का निमित्त कहा है। कहा न ? उसका स्वभाव नहीं, उसका स्वभाव नहीं तो करनेवाला कर्म है, ऐसा कहा गया है। करता तो है आत्मा स्वयं से। परन्तु स्वभाव नहीं तो करनेवाला कहकर दोनों को दृष्टि में से छोड़ देते हैं। भावपुण्य और उसका निमित्त पूर्व का उदय जो जड़ है, उसे द्रव्यपुण्य कहा, अजीवपुण्य कहा। अजीवपुण्य। जीवपुण्य में निमित्त पड़ा, उसे अजीवपुण्य कहा है। क्या कहते हैं ? बराबर पकड़ना, हों! एक-एक शब्द में आगे-पीछे हो तो फेरफार हो जायेगा।

भगवान आत्मा अपनी पर्याय में... पर्याय समझते हो ? अवस्था में शुभभाव होने के योग्य है। अपने से अपनी योग्यता से शुभभाव हुए और विकार करनेवाला दूसरा पुण्य है, दूसरा पुण्य है। दूसरे पुण्य का अर्थ पूर्वकर्म का मोह का उदय, उसे यहाँ भावपुण्य हुआ तो उसका आरोप देकर उसको (कर्म को) द्रव्यपुण्य-अजीवपुण्य कहा गया है। गाथा भी बराबर ऐसी आ गयी है, हों! भाई! यह तो वीतरागमार्ग है, प्रभु! वीतरागमार्ग को तो शान्ति से समझना चाहिए।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पकड़ा है न, दीपचन्दजी बहुत लिया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लगाया है न, सब लगाया है। समझ में आया ? समयसार

में से ही दीपचन्दजी ने यह लिया है। पहले के साधर्मी दीपचन्दजी, टोडरमलजी, बनारसीदास, द्यानतराय, दौलतराम बहुत अच्छे, बहुत अच्छे! वे तो भयवान थे। यह तो शास्त्र के आधार से अपनी अनुभूति से (बात की है)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लिखा है, बहुत लिखा है। चिद्विलास है, आत्मावलोकन है, अनुभवप्रकाश है, एक अध्यात्म पंच संग्रह है। बहुत अच्छी बात है। सब देखा है, हमने तो सब देखा है। यहाँ तो हजारों शास्त्र वाँचे हैं। श्वेताम्बर के भी करोड़ों शास्त्र (श्लोक) देखे हैं। करोड़ों श्लोक, श्वेताम्बर के शास्त्र के करोड़ों श्लोक देखे हैं। उसमें तो बीस-बीस वर्ष रहे न! यह बात, आत्मा की अनुभूति की बात जैसी दिगम्बर सन्तों में है, वैसी तीन काल में कहीं है ही नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, स्वयं से होता है। भाई! ऐसा है। यहाँ तो विशिष्टता इतनी है, समझो।

विकारी होनेयोग्य और विकार करनेवाला - दोनों पुण्य हैं... दोनों पुण्य है। दोनों पुण्य में एक जीव है, दूसरा अजीव है। आगे अन्त में आयेगा, अन्तिम शब्द में आयेगा। वे दोनों जीव और अजीव हैं। आगे आयेगा। अन्त में शब्द है। समझ में आया? शान्ति से समझे, भगवान आत्मा! अपनी द्रव्य-गुण शक्ति तो कायम रखता है, परन्तु अपनी पर्याय में—हालत में वर्तमान स्वतन्त्र शुभ करने की योग्यतावाला आत्मा है। उसे भावपुण्य कहो या जीवपुण्य कहो। यहाँ टीका में जीवपुण्य कहेंगे, दोनों जीव-अजीव। और उस पुण्य में जो निमित्त पड़ा है, उसे करनेवाला कहा है। क्योंकि आत्मा का स्वभाव नहीं, इस अपेक्षा से। परन्तु है निमित्त। पूर्व का उदय है मोहकर्म। घाति का उदय कहीं पुण्य में निमित्त नहीं पड़ता। समझ में आया? घाति का पुण्य बँधा हो, उसका उदय आकर शुभभाव में निमित्त नहीं पड़ता, वह तो संयोग आने में निमित्त पड़ता है। क्या कहा? सातावेदनीय आदि चार अघातिकर्म हैं न? उनमें पाप भी है और पुण्य है। जैसे सातावेदनीय का बन्ध पड़ा तो सातावेदनीय का उदय आत्मा को भावपुण्य

में निमित्त नहीं होता। वह सातावेदनीय का उदय अनुकूल संयोग आने में निमित्त होता है। संयोग में। यह संयोगीभाव में निमित्त पड़ता है। समझ में आया?

जो मोहकर्म है, उसे अजीवपुण्य कहा। उस अजीवपुण्य का अर्थ है तो मोह का उदय, है तो पाप, परन्तु यहाँ भावपुण्य है, उसका आरोप देकर उसे अजीवपुण्य कहा गया है। शान्ति से सुनो, इस बात में बहुत गम्भीरता है। अमरचन्दभाई! हमारे शास्त्री भी सुनने के लिये रुके हैं। है या नहीं? यह कहे, यह १३वीं (गाथा) सुननी है मुझे, वरना चले जानेवाले थे। कहो, समझ में आया? समझाय छे कांई अर्थात् समझ में आता है। हमारी गुजराती थोड़ी-थोडी आ जाती है।

भगवान आत्मा... भगवान अमृतचन्द्राचार्य महाराज नौ तत्त्व की प्रसिद्धि करते हैं कि नौ हैं। अज्ञानी की भाँति एक ही जीव है, यह वेदान्त आदि कहते हैं, ऐसा नहीं। नौ है, पर्याय में नौ है, ऐसा सिद्ध करते हैं। परन्तु वे पर्याय के भेद द्रव्य की दृष्टि करने से दृष्टि में नहीं आते। यह बात करने में नौ की सिद्धि करते हैं। समझ में आया? ऐसी चीज़ सर्वज्ञ के अतिरिक्त दूसरे में कभी तीन काल में होती नहीं। समझ में आया? ऐसी बात तो श्वेताम्बर में भी स्पष्ट नहीं की। यह टीका तो वास्तविक तत्त्व को सिद्ध करने की... आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य ने भरतक्षेत्र में तीर्थंकर जैसा काम कुन्दकुन्दाचार्य ने किया और गणधर जैसा, तीर्थंकर के गणधर—कुन्दकुन्दाचार्य के गणधर अमृतचन्द्राचार्य। सन्त भावलिंगी दिगम्बर मुनि जंगल-वनवासी। अद्भुत अद्भुत जिनकी ज्ञाननिधि, आनन्दनिधि और उनकी कथन पद्धति न भूतो, न भविष्यति!

क्या कहते हैं? सुनो! **वहाँ,...** वहाँ अब नौ सिद्ध करते हैं। नौ में से निकालकर स्वभाव में एकाकार होना, वह सम्यग्दर्शन और अनुभूति है। परन्तु नौ है या नहीं? या नौ है ही नहीं? समझ में आया? नौ हैं। किस प्रकार से है? किस प्रकार से नौ है? **विकारी होनेयोग्य...** अपनी पर्याय में विकार होनेयोग्य को जीवपुण्य कहते हैं। टीका में आगे आयेगा। समझ में आया? टीका में भी है, देखो! '**तदुभयं च जीवाजीवाविति**'। संस्कृत है। '**तदुभयं च जीवाजीवाविति**'। टीका में अन्तिम शब्द हैं। ३२ पृष्ठ दूसरी लाईन। '**तदुभयं च जीवाजीवाविति**'। यहाँ तो अपने इसके साथ मिलाने के लिये

तुमको बतलाते हैं। वहाँ जीव-अजीव किसलिए कहा? कि यहाँ विकारी होनेयोग्य भाव है, उसे जीव कहा। पर्याय है न उसकी? और उसमें जो निमित्त पड़ा, उसे अजीव कहा। तो भावपुण्य की पर्याय को यहाँ भावपुण्य कहा तो उदय को द्रव्यपुण्य अर्थात् अजीवपुण्य कहा। विशिष्टता तो देखो! क्या? कि यहाँ जहाँ उपादान में पुण्य हुआ तो निमित्त में आरोप देकर अजीवपुण्य कहा गया है। शुरुआत उपादान से हुई है। आहाहा! बनारसीदासजी! यह गाथा बहुत सूक्ष्म है। इसमें पाठ भी बहुत स्पष्ट किया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भले यहाँ भावराग हुआ, पुण्य—कषाय मन्द (हुई) तो उसे जीवपुण्य कहा। पर्याय है न उसकी? और उसमें पूर्वकर्म का उदय निमित्त पड़ा। अघाति का उदय निमित्त नहीं पड़ता। घाति मोह का उदय भावपुण्य में निमित्त पड़ता है। अन्तराय का उदय नहीं, ज्ञानावरणी का नहीं, दर्शनावरणी का नहीं, अघाति का नहीं। एक मोह का उदय, जब अपने में भावपुण्य होने की योग्यता है तो द्रव्य-पुण्यरूप से—अजीवपुण्य रूप से मोहकर्म का उस समय का उदय हो, चाहे जैसा हो, परन्तु यहाँ भावपुण्य का आरोप देकर उसे अजीवपुण्य कहा गया है। आहा! पूरा सिद्धान्त उपादान से सिद्ध होता है, ऐसी यहाँ एक-एक बात सिद्ध करते हैं। पर्याय में विकार भी तुझसे होता है, पर से नहीं। आहाहा! अमरचन्दभाई!

शुभभाव में निमित्त तो कर्म-मोहकर्म एक ही है। मोहकर्म के अतिरिक्त दूसरे सात कर्म निमित्त नहीं होते। मोहकर्म तो पाप है। २८ प्रकृति पाप है। उसमें यह पुण्य के भाव में निमित्त पड़े तो चारित्रमोह की प्रकृति का निमित्त होता है। तो चारित्रमोह की प्रकृति तो पाप है। परन्तु यहाँ भावपुण्य अपनी योग्यता से हुआ तो पूर्व के उदय को वहाँ अजीवपुण्य-द्रव्यपुण्य (कहा)। आनेवाले की बात नहीं, हों! पूर्व के उदय को अजीवपुण्य कहा गया है। समझ में आया? गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकार निमित्तरूप से हुआ है वह। क्योंकि स्वभाव में विकार नहीं। वह तो संवर, निर्जरा में भी पूर्व का उदय निमित्त लेंगे। मोक्ष में भी पूर्व का निमित्त

लेंगे, संवर में भी पूर्व का निमित्त लेंगे। यहाँ तो पहले से शुरुआत करते हैं न। समझ में आया? वरना सिद्ध नहीं होगा।

विकारी होनेयोग्य शुभभाव जीवपुण्य। विकार करनेवाला पूर्व का उदय मोह अजीवपुण्य। यह दो बातें हुईं। **तथा दोनों पाप हैं,...** दूसरी बात आयी। आत्मा में पापभाव होने की योग्यता से पापभाव हुआ। विकारी होनेयोग्य पाप। पाप में अब दो बातें आती हैं। पहले पुण्य में आ गयी। अब विकारी होनेयोग्य पापभाव, वह जीवपाप। और विकार में निमित्त पड़ा मोहकर्म का उदय, वह अजीवपाप। पुराने कर्म। समझ में आया? ऐसी मेहनत कौन करे? करो न व्रत कर डालें। परन्तु भाई! तेरा स्वरूप ही चिदानन्दस्वरूप है। उसमें व्यवहार का भी जैसा है, वैसा ज्ञान तो करना पड़ेगा। व्यवहार जैसा है, वैसा है। नौ बिल्कुल नहीं है तो नौ में से एकाकार निकालने का कहाँ से होगा? समझ में आया? नौ तत्त्व की भी स्वतन्त्रता कैसी है, यह सिद्ध करते हैं। नौ तत्त्व की भेद की श्रद्धा यथार्थ न हो तो नौ में से एक आत्मा निकालकर कहाँ से आयेगा? समझ में आया? आहाहा!

वहाँ विकारी होनेयोग्य... यह पहले पुण्य में आ गया। अब विकारी होनेयोग्य पाप आया। देखो! **दोनों पुण्य हैं तथा दोनों पाप हैं,...** दोनों का अर्थ? कि आत्मा में अशुभभाव हुआ, अशुभभाव हुआ, उसे होनेयोग्य जीव है। वह जीव पाप और पूर्व के कर्म के उदय को अजीवपाप (कहते हैं)। यहाँ जीवपुण्य, अजीवपुण्य। जीवपाप, अजीवपाप। समझ में आया? निमित्त-निमित्त सम्बन्ध बतलाते हैं। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से नौ तत्त्व खड़े हैं। अकेले ज्ञायकस्वभाव में नौ तत्त्व नहीं होते। आहाहा! कहो, समझ में आया?

कहाँ लागू किये दो? विकारी होनेयोग्य पुण्य और विकारी होनेयोग्य पाप और विकार करनेवाला पुण्य और विकार करनेवाला पाप। दो-दो भेद हो गये। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... मर जाये तो भी कहाँ इसके ... आहार का त्याग करूँ, यह ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं। एक रजकण को कभी ग्रहण किया है कि उसे छोड़े?

राग का भी पर्याय में ग्रहण किया है, द्रव्यस्वभाव में राग का ग्रहण त्रिकाल में नहीं। ग्रहण-त्याग किसका करे? मैं पहले पर का त्याग करूँ, इसका अर्थ कि पहले ग्रहण किया था। वह मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या ग्रहण किया है कभी? आता है न? आत्मा में त्याग-उपादानशून्यत्व शक्ति है। भगवान आत्मा में राग का त्याग और राग के ग्रहण की शून्यत्व शक्ति आत्मा में है। त्रिकाल गुण पड़ा है। पर का ग्रहण या पर का त्याग आत्मा में है ही नहीं। ऐसा आत्मा में गुण है। राग का त्याग और राग का ग्रहण भी स्वरूप में है ही नहीं। ऐसा गुण है ही नहीं। राग का ग्रहण करने का गुण हो तो सदा ही राग किया ही करे। और राग का त्याग करने का गुण हो तो राग त्यागूँ, त्यागूँ, त्यागूँ के ऊपर ही सदा ही दृष्टि रहे। ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात। समझ में आया?

यहाँ तो अमृतचन्द्राचार्य महाराज नौ तत्त्व की सिद्धि करते हैं। जैनदर्शन में नौ तत्त्व जाननेयोग्य है। उसमें से निकालकर अकेला ज्ञायकभाव छाँटना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? परन्तु नौ तत्त्व को ही न माने, उसे अकेला आत्मा कहाँ से हाथ आयेगा? समझ में आया? जगत में अजीव है ही नहीं, जीव-अजीव है ही नहीं, अकेला आत्मा है। कहाँ से तुझे अकेला जीव हाथ में आयेगा? समझ में आया? पुण्य-पाप की पर्याय मेरी पर्याय में है ही नहीं। पुण्य-पाप है ही नहीं? तो उनसे भिन्न पड़कर ज्ञायक में आना कहाँ से होगा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न, निमित्त कहा, निमित्त।

मुमुक्षु : करनेवाला....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पहले कहा न, आत्मा का स्वभाव नहीं न? भेद करना स्वभाव नहीं। भेद की योग्यता है। करनेवाला निमित्त कर्म को कहा। कर्ता है नहीं, परन्तु यहाँ आरोप देकर कहा है। सुनो, थोड़ा समझो परन्तु यथार्थ समझना चाहिए। एकदम बहुत वाँच जाये, एकदम वाँच लो, वाँच लो। परन्तु क्या है? उसमें क्या है?

आहाहा! एक व्यक्ति कहे, मैंने समयसार पन्द्रह दिन में वाँच लिया। तुम समयसार की बहुत महिमा करते हो। बहुत अच्छा, भाई! पन्द्रह दिन में क्या, आठ दिन में वाँच जाये। परन्तु यह समयसार क्या कहते हैं, वह समझे बिना?

मुमुक्षु : वाँचन किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वाँचन क्या, ऐसा का ऐसा शब्द (वाँच जाये), भाव क्या कहते हैं, वह समझ में आये नहीं। वह वाँचन है ही नहीं।

दोनों पुण्य है... दोनों कौन? एक जीवपुण्य, एक अजीवपुण्य। **दोनों पाप हैं,...** दोनों पाप कौन? एक जीवपाप, एक अजीवपाप। समझ में आया? अब **आस्रव होनेयोग्य...** तीसरा बोल आया। दोनों को अलग करके **आस्रव होनेयोग्य...** यह जीव। पुण्य-पाप के भाव भावआस्रव होनेयोग्य जीव की पर्याय है, होनेयोग्य जीवभाव। उसे जीव कहते हैं, वह जीव। **और आस्रव करनेवाला...** पूर्व का उदय जो है, जो वर्तमान आस्रव हुआ, उसमें निमित्त पड़ता है, उसे आस्रव करनेवाला, ऐसा आरोप किया। समझ में आया? गजब बात, भाई!

भगवान आत्मा की पर्याय में योग्यता है, वह बतलाते हैं। परन्तु योग्यता में निमित्त दूसरी वस्तु है। जैसे पुण्य-पाप का निमित्त कहा, वैसे दो को साथ लेकर आस्रव को पूर्व के उदय को अजीवआस्रव कहा। पूर्व के उदय को अजीवआस्रव कहा, यह भाव को जीवआस्रव कहा। दोनों मिलकर जीव और अजीव दोनों को कहा जाता है। यहाँ भाव को जीव कहते हैं, वहाँ भाव को अजीव कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव की योग्यता को जीव आस्रव और अजीव जो निमित्त पड़ता है, उसे अजीव।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक में ऐसे नौ भेद नहीं होते। एक में क्या हो? आस्रव, पुण्य-पाप में निमित्त है, संवर, निर्जरा में भी निमित्त है। निमित्त का अभाव होता है न

उसमें ? अकेले भगवान ज्ञायकस्वरूप का आश्रय करता है, उसमें नौ तत्त्व का भेद रहता ही नहीं। आहाहा! अभी तो पहले नौ की सिद्धि में विरोध। समझ में आया ? कर्म का जैसा उदय आवे, वैसा विकार करना पड़े। भगवान! तो तेरी पर्याय तेरे आधीन नहीं रही। जैसा कर्म आवे, वैसा करना पड़े और करे, वैसा बँधे और बँधे, वैसा उदय आवे तो वापस करना पड़े। तेरा तो कुछ अधिकार रहा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं तो सम्यग्दर्शन तो नहीं होगा परन्तु तेरी स्वतन्त्र पर्याय तुझसे हुई, उसकी तुझे स्वीकृति नहीं होगी। समझ में आया ? टोडरमलजी ने नहीं कहा ? तू दोष कर्म का निकालता है। अपना अपराध कर्म के ऊपर डालता है। यदि जैन आज्ञा माने तो ऐसी अनीति — ऐसी अनीति संभवे नहीं। तू तो महन्त रहना चाहता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। है ? कितने पृष्ठ पर है ? नौवाँ, नौवाँ। नौ वाँ अधिकार है। (पृष्ठ ३२२)। **और तत्त्वनिर्णय नहीं करने में किसी कर्म का तो दोष है नहीं...** तत्त्वनिर्णय नहीं करने में कर्म का तो दोष है नहीं। **परन्तु तेरा ही दोष है। तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है...** मेरा दोष नहीं, वह तो कर्म आये, इसलिए दोष हुआ। बड़ा महन्त रहना चाहता है **और अपना दोष कर्मादिक में लगाता है, परन्तु जिनाज्ञा माने तो ऐसी अनीति संभवे नहीं। तुझे विषयकषायरूप ही रहना है, इसलिए ऐसा झूठ बोलता है।** मोक्षमार्गप्रकाशक नौवें अधिकार में है। बहुत लिखा है। उन्होंने तो पूरा सार लिया है। उस समय में भी लोग बहुत गड़बड़ करते थे न, तो सार लिया है। ... कितना लिखा है, देखो! **जिनाज्ञा माने तो ऐसी अनीति संभवे नहीं।** झूठ बोलता है, तुझे विषय-कषायरूप रहना है तो कर्म मुझे कराते हैं, कराते हैं, मूढ़ है। समझ में आया ? तू महन्त रहना चाहता है, मैं तो महन्त हूँ, मुझे कुछ नहीं। दोष होता है कर्म के कारण से। यह बात यहाँ कहते हैं, लो।

आस्रव होनेयोग्य तो तेरी पर्याय है। तेरी योग्यता है। देखो! यह योग्यता योग्यता करते हैं, कहाँ से निकाला ? योग्यता यहाँ से है। कितने ही कहते हैं, योग्यता शास्त्र में नहीं। अरे! सुन तो सही। यह योग्यता क्या है ? अरे! शान्ति से, आग्रह छोड़कर समझना

नहीं, सुनना नहीं और अपनी पकड़ छोड़ना नहीं। और वह पकड़ रखकर वाँचना, सब उल्टे अर्थ हो जाते हैं। यह लिखा है, यशोविजयजी हुए हैं न। श्वेताम्बर में एक यशोविजयजी हुए हैं, उन्होंने ऐसा लिखा है। 'जातिअंध का रे दोष नहीं आकरो' जन्मअन्ध होते हैं न? जन्मअन्ध। 'जातिअंधनो रे दोष नहीं आकरो, जे जाणे नहीं अर्थ...' जाति अन्ध क्या अर्थ जाने? 'पण मिथ्यादृष्टि तेथी आकरो, करे अर्थ अनर्थ।' अन्ध है, बेचारा देखता नहीं क्या है। परन्तु जिसकी दृष्टि विपरीत है, वह अर्थ का अनर्थ कर डालता है। उन अन्ध की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि महाअन्ध है। बड़ा अन्ध है। वह तो बेचारा जन्मअन्ध है, ख्याल ही नहीं। तुझे खबर है ... 'मिथ्यादृष्टि तेथी आकरो, करे अर्थ अनर्थ'। कहो, समझ में आया?

कौन कहता है यहाँ? आस्रव होनेयोग्य वह जीव। उस पर्याय को जीव कहा। और आस्रव करनेवाला पूर्व का उदय। उस उदय को अजीव कहा। वह अजीवआस्रव कहा। आनेवाले हैं वे नहीं, नये (कर्म) आनेवाले हैं, उनकी बात नहीं। समझ में आया? **वे दोनों आस्रव हैं,...** दोनों का अर्थ जीवआस्रव है, अजीवआस्रव है। है न भाई उसमें? बराबर पकड़ लेना, हों! सहज ही बात आ गयी है। तुम बहुत दूर से आये हो। बराबर तेरहवीं गाथा आ गयी है। कोई खींचकर लाये नहीं। ओहो! भगवान! भाई! प्रभु! तेरे अपराध की योग्यता तो तुझमें है न, भाई! उसे जीवआस्रव कहते हैं, हों! शुभाशुभ परिणाम की लायकात—योग्यता तो तेरी पर्याय में है। उसे हम जीवआस्रव कहते हैं और पूर्व का उदय है, चाहे जैसा उदय हो, इसे हम द्रव्यआस्रव, अजीवआस्रव कहते हैं। बस, दो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कहते हैं। हुआ है तुझसे, उसमें निमित्त पड़ा, उसे हम अजीवआस्रव कहते हैं। समझ में आया? पूर्व के उदय को, हों! आनेवालों को नहीं। नये आनेवालों की बात नहीं। यहाँ तो पूर्व के उदय की बात है। समझ में आया?

आस्रव होनेयोग्य और आस्रव करनेवाला - दोनों आस्रव हैं,... अब रहा संवर। समझ में आया? समय हो गया न? संवर होनेयोग्य और संवर करनेवाला दोनों जीव-अजीव हैं। यह जरा धर्म की बात है, विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ८, गुरुवार, दिनांक - २२-०९-१९६६
गाथा-१३, प्रवचन - ५५

उत्तम शौचधर्म। क्रोध के सामने क्षमा, मान के सामने निर्मानता-मार्दव, माया के सामने आर्जव था और लोभ के सामने शौच। पहले चार बोल हैं न? क्रोध, मान, माया, लोभ। क्षमा, निर्मानता, सरलता और शौच। सामने-सामने गुण। वे दोष हैं, यह गुण है। चौथा शौच धर्म। देखो! स्वामी कार्तिकेय क्या कहते हैं?

समसंतोसजलेण य जो धोवदि तिह्लोहमलपुंजं।
भोयणगिद्धिविहीणो तस्स सउच्चं हवे विमलं॥३९७॥

३९७ श्लोक है। जो कोई आत्मा समता और सन्तोषरूपी जल से, निज शुद्ध ज्ञाता-दृष्टा के भाव में समता अर्थात् रागरहित दशा प्रगट करके और निज आनन्द का सन्तोष लेकर, निज आत्मा अतीन्द्रिय है, उसका अतीन्द्रिय आनन्द का सन्तोष लेकर, जो तृष्णा और लोभरूपी मल को धोता है। तृष्णा अर्थात् आगामी पदार्थ मिलने की इच्छा, लोभ अर्थात् प्राप्त पदार्थ की आशा-गृद्धि। इन दो को अपने आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के स्वरूप का सन्तोष द्वारा तृष्णा और लोभरूपी मैल को धोता है। एक बात।

'**भोयणगिद्धिविहीणो**'। मुनि की मुख्य बात है न! तो उन्हें दूसरी गृद्धि कंचन, कामिनी की गृद्धि तो होती नहीं। एक भोजन की गृद्धि है, उसकी भी आसक्ति नहीं। उससे रहित हैं। शौचधर्म होता है। मुनि की ... समभाव का अर्थ किया है। **तृण-कंचन को समान जानना...** तृण हो या कंचन हो, सब ज्ञेय है। निज स्वरूप में वे हैं नहीं। और सन्तोष, तृप्ति निज स्वरूप में सुख मानना। तृप्ति का अर्थ यह है। सन्तोष अर्थ यह है। अपना आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है, ऐसा अतीन्द्रिय अपना स्वाद लेकर उसमें सन्तोष मानना। गजब बात, भाई! समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द का आनन्द लेकर सन्तोष मानना, उसका नाम शौचधर्म है। अरे! आत्मा के लिये ... मुनि की तो मुख्य बात है। समझ में आया?

जीवित का लोभ, आरोग्य का लोभ, इन्द्रिय बनी रहने का लोभ और उपभोग का लोभ। ये दो प्रकार के—अपना और पर का। अपना जीवित रहने का लोभ। पुत्रादि संयोग का जीवित रहने का लोभ। अपना आरोग्य रहने का लोभ और पर का आरोग्य—पुत्रादि का आरोग्य अच्छा रहने का लोभ। इन्द्रियाँ बनी रहने का लोभ, पर की इन्द्रियाँ बनी रहने का लोभ और उपभोग का लोभ। अपना उपभोग का लोभ और पर का उपभोग का लोभ, ऐसे आठ प्रकार के लोभ निज आत्मा के आनन्द का सन्तोष प्रगट करके छोड़ना, उसका नाम भगवान शौचधर्म कहते हैं। समझ में आया?

शुद्ध चिदानन्द प्रभु में अन्तर एकाग्र होकर पुण्य-पाप के राग से रहित स्वभाव में लीन होकर, अतीन्द्रिय आनन्द के सन्तोष में अपनी तृप्ति-तृप्ति करके इन चार प्रकार के लोभ का त्याग करना, इसका नाम भगवान शौचधर्म कहते हैं। समझ में आया? यह शौच है। मैल लगे तो पानी से साफ करते हैं न! आत्मा शुद्ध चिदानन्दमूर्ति भरपूर अतीन्द्रिय नित्यानन्दस्वभाव से भरा हुआ है, उसकी सम्यग्दर्शन में प्रतीति-अनुभव करके, फिर अतीन्द्रिय आनन्द में तृप्ति... तृप्ति (करे)। जैसे भोजन खाने के बाद तृप्ति होती है। भूख लगी हो और जीमे न! उसी प्रकार निज आनन्द... यहाँ तो भाव की बात है। अतीन्द्रिय आनन्द की अन्दर सन्तोष में तृप्ति करना, उसका नाम भगवान चौथा लोभरहित निर्लोभ शौचधर्म कहते हैं। समझ में आया? कभी इसने एक सेकेण्ड भी अनन्त काल में अपने आनन्द का सन्तोष लिया नहीं। बाह्य पदार्थ मिले, ... सेठ! परसंग मिला बहुत हुआ। ऐ... शोभालालजी! पाँच लाख पैदा हुए, तृप्ति हो गयी धूल की।

मुमुक्षु : अच्छा हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा क्या हुआ? बुरा हुआ है। अन्दर मलिन भाव लोभ हुआ, वह बुरा हुआ है, अच्छा नहीं हुआ। बूरा समझते हो? माठुं। शक्कर को साफ करते हैं न दूध द्वारा धोकर? उसे भी बूरा कहते हैं। बूरा है? बूरा होता है? वह तो अच्छा होता है। कहते हैं बूरा। शक्कर है न? दूध डालकर साफ करेते हैं तो (कहे), बूरा हुआ। बुरा हुआ? ऐसे अच्छा हुआ? लक्ष्मी मिले तो अच्छा होता है? वह अच्छा नहीं, बूरा हुआ है। ऐसा है। वह तो साफ हुआ।

वह यह कहते हैं, निज आत्मा में सन्तोष से शान्ति से तृष्णा और लोभ के मैल को धो डालना। उसे धो डालने का नाम ही अच्छा है, अच्छा है। लक्ष्मी मिली उसमें है बुरा और मानता है अच्छा। यह अच्छा है, इसकी दरकार करता नहीं। भगवान आत्मा शान्तरस से भरपूर पूर्णानन्द है। ऐसे रस में लीन होकर, एकाकार होकर शान्ति, सन्तोष रहना, इसका नाम भगवान चौथा धर्म, अपूर्व धर्म, चारित्र धर्म, चारित्र का चौथा आराधक धर्म शौच कहा जाता है। समझ में आया? लो, यह बात हुई। अब यहाँ चलती गाथा। कहाँ आया चलती (गाथा में)? **'संवार्यसंवारक'।**

यहाँ से थोड़ा फिर से लेते हैं, इसके साथ सन्धि करने के लिये। **वहाँ विकारी होनेयोग्य...** ऐसा पहले से लेना है। क्या कहते हैं? भगवान आत्मा पर्याय में—अवस्था में नौ प्रकार होकर अनादि से रहा हुआ है। समझ में आया? वे नौ प्रकार। मैं जीव हूँ, यह अजीव है, यह राग है, यह आस्रव है, पुण्य भी आस्रव है। और बन्ध है, जितनी प्रकृति का अंश नहीं आता, उतना संवर है, आंशिक क्षय होता है, वह निर्जरा है। सर्व अंश क्षय हो, उसे मोक्ष कहा जाता है। ऐसा अनादि का नौ पर्यायरूप अनुभव है। समझ में आया? यह तो मिथ्यादृष्टिपना है। इसमें से एक इस चैतन्य का अनुभव इसने किया नहीं।

यहाँ कहते हैं कि अकेले आत्मा में नौ का भेद नहीं पड़ता। यह संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि। एक आत्मा में ज्ञायकभाव की दृष्टि करने से, स्वभाव की एकता होने से ऐसे भेद नहीं पड़ते। परन्तु अनादि कर्म के निमित्त के लक्ष्य से अपनी पर्याय में नौ प्रकार के भेद हैं। उन भेद को बराबर जानना। जानकर उनकी रुचि छोड़कर अकेले ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि करना, उसका नाम भूतार्थनय से आत्मा जाना, सम्यग्दर्शन कहा जाता है। समझ में आया?

अब कहते हैं कि कैसे ऐसे सात क्यों हुए? एक जीव दूसरा अजीव। बीच में सात हुए। नौ हुए न? नौ। तो कहते हैं, **वहाँ विकारी होनेयोग्य...** पहले से लेते हैं। **और विकार करनेवाला - दोनों पुण्य हैं तथा दोनों पाप हैं,...** समझ में आया? अभी तो नौ तत्त्व भेदरूप कैसे हैं, उनकी सिद्धि करते हैं। नौ तत्त्व में भी व्यवहार से यथार्थ कैसे है, ऐसा जो जानते नहीं, तो उनका ज्ञान खोटा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो समाप्त हो गया। अनादि का खोटा ज्ञान है तो भटकता है चार गति में। अनादि से भटकता है, रुलता है।

कहते हैं, अपने आत्मा में दया, दान आदि शुभभाव होने की योग्यता है। तो उसे जीवपुण्य कहा जाता है। और उसमें निमित्त पड़ता है पूर्व कर्म मोहकर्म का उदय, उसे अजीवपुण्य कहा जाता है। यह कल आ गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप को यहाँ यहाँ के (पुण्य का) आरोप दिया। यहाँ भावपुण्य हुआ, उसमें निमित्त को अजीवपुण्य का आरोप दिया। है पाप। यहाँ का आरोप देकर उसे अजीवपुण्य कहा गया है। उपादान की विशेषता है, वह यहाँ बतलाना है। समझ में आया?

अपने भाव में राग की मन्दता का शुभभाव हो, उसे यहाँ जीवपुण्य कहा गया है और उसमें पुराने कर्म उदयरूप निमित्त पड़ते हैं, उसे अजीवपुण्य कहा गया है। समझ में आया? है पाप, परन्तु यहाँ भावपुण्य—जीवपुण्य है तो उसे अजीवपुण्य कह दिया। उसकी वजह से कहा। इसीलिए उसे वहाँ भावपुण्य कह दिया। भावपुण्य। भावपुण्य के कारण से। अजीव को भी, उदय को भी अजीवपुण्य कह दिया। एक बात। पाप को भी पुण्य कह दिया, यहाँ के कारण से।

विकारी होनेयोग्य अशुभभाव। पाप अपनी पर्याय में है, अपने से विकार होनेयोग्य भाव है। और विकार का निमित्त पूर्व का उदय, उसे भी भावपाप कहा गया है। यह अजीवपाप। यहाँ भावपाप हुआ, वह जीवपाप। तो उदय को अजीवपाप कहने में आया है। यहाँ तो अभी इतने नौ भेद पड़ते हैं, उनकी पहिचान कराते हैं। पश्चात् नौ भेद में से अकेला ज्ञायक आत्मा दृष्टि में लेना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और अनुभव कहा जाता है। कहो, सेठ! बहुत मेहनत करनी पड़ती है। बाहर में जैसा रस है न? कितना रस है? रात्रि में भी ऐसा लगे पाँच लाख हुए, दस लाख हुए। शोभालालजी! ऐसी लगन लगना चाहिए। अहो! मैं कौन हूँ? और यह भंगभेद किस प्रकार से उत्पन्न होता है? यह

भंगभेद उत्पन्न होता है, उसका यथार्थ जानपना करके उसकी रुचि छोड़कर अकेले जीवस्वभाव पर दृष्टि करने से आत्मा का सम्यग्दर्शन अनुभव होता है। उसका नाम धर्म और मोक्ष का कारण कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? दोनों पुण्य और दोनों पाप। हुआ?

अब आस्रव होनेयोग्य जीव की पर्याय। आस्रव होनेयोग्य जीवभाव। जीवभाव को जीवआस्रव कहा गया है और पूर्व के कर्म के उदय को अजीवआस्रव कहा गया है। पूर्व के उदय को। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नये की यहाँ बात नहीं। यहाँ तो भाव यहाँ हुआ, उसमें पुराने कर्म का निमित्त पड़ा तो उस निमित्त को भी अजीव आस्रव कहा गया है। समझ में आया? यह सिद्धान्त प्रवेशिका में भी है। आस्रव अधिकार में। पूर्व के उदय को भी आस्रव कहते हैं, नये आनेवाले को भी आस्रव कहते हैं, भाव को भी आस्रव कहते हैं। तीन प्रकार लिये हैं। जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में है। यहाँ तो अपने इतना काम है। समझ में आया?

आत्मा अपनी वर्तमान पर्याय में शुभ-अशुभरूपी आस्रवभाव होने योग्य है, तो करता है तो उसे जीवआस्रव कहा गया है। और उसमें पूर्व के कर्म का उदय निमित्त पड़ा, उसे अजीवआस्रव पूर्व के उदय को कहा गया है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो अन्त में कहेंगे कि एक को अपनेआप पुण्य-पाप आदि भाव की सिद्धि नहीं होती। एक सामान्य स्वभाव में किस प्रकार हो? विशेष भेद तो निमित्त आधीन से अपनी पर्याय में सात प्रकार पड़ते हैं। समझ में आया? सूक्ष्म है पोपटभाई!

आस्रव होनेयोग्य... अपनी जीव की पर्याय में पुण्य-पाप के भाव होनेयोग्य है, होते हैं, उन्हें जीवआस्रव कहा और पूर्व के निमित्त को अजीवआस्रव कहा। निमित्त कौन? कर्मों का उदय। यहाँ नोकर्म की बात है नहीं, बाह्य निमित्त की बात है नहीं। अन्दर के कर्म के उदय को अजीवआस्रव कहा, जीवभाव को जीवआस्रव कहा। निमित्त-नैमित्तिक होने से उसमें सात तत्त्व, नौ तत्त्व उत्पन्न होते हैं, ऐसा बताते हैं। बहुत

सूक्ष्म, भाई! समझ में आया? भाई! अब आज तो आया संवर। यह तीन बोल तो कल आये थे।

अब, **संवररूप होनेयोग्य...** अपनी पर्याय में संवररूप होनेयोग्य की योग्यता जीव की पर्याय में है। उसे संवार्य अर्थात् संवर होनेयोग्य कहा जाता है। अपनी पर्याय में, पर्याय में संवर होनेयोग्य आस्रव का अभाव होनेयोग्य अपनी योग्यता से अपने में होता है। उसे यहाँ संवार्य, संवार्य; संवार्य अर्थात् संवर होनेयोग्य (कहते हैं)। अपनी पर्याय संवर होनेयोग्य है, उसे जीवसंवर कहते हैं। जीवसंवर कहने में आया है। **और संवर करनेवाला...** पुराने कर्म इतने संवर में नहीं आये, यहाँ आये नहीं न? संवर उत्पन्न हुआ। पुराने कर्म के निमित्त का भी उतना अभाव हुआ, उसे अजीवसंवर कहा गया है। पूर्व के उदय का उतना अभाव हुआ, उसे यहाँ अजीवसंवर कहा गया है। समझ में आया?

यहाँ तो एक में नौ उत्पन्न नहीं होते तो निमित्त के आधीन होने से अथवा निमित्त के सद्भाव या अभाव से उसमें ऐसे सात तत्त्व की उत्पत्ति होती है। वह पर्यायनय से जाननेयोग्य है। स्वभाव की दृष्टि में उसे छोड़नेयोग्य है। कहो, समझ में आया?

संवररूप होनेयोग्य... शान्ति से तो काम लेते हैं, एकदम उतावल का यह काम नहीं है। आत्मा द्रव्य और गुण तो त्रिकाल है और उसकी पर्याय में संवर होनेयोग्य योग्यता है। पर्याय में योग्यता है। उसे जीवसंवर कहा जाता है। उसके पूर्व कर्म का उदय उतने अभावरूप निमित्त हुआ, उसे अजीवसंवर कहा जाता है। उदय का उतना अभाव हुआ न! समझ में आया? नये आने की बात है नहीं। उदय का उतना निमित्त नहीं हुआ तो उसे अजीवसंवर कहा जाता है। यहाँ जीवसंवर अपनी पर्याय, अजीवसंवर अजीव की पर्याय। आहाहा! समझ में आया? सामने पुस्तक है, शान्ति से विचार करे। सेठ कल कहते थे कि सूक्ष्म पड़ता है। बहुत सूक्ष्म पड़ता है। भाई कल ऐसा कहते थे कि बहुत सूक्ष्म पड़ता है, सूक्ष्म पड़ता है। मेहनत कब की है? यथार्थ सुना ही नहीं पहले कभी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारा दोष है। गलती अपनी नहीं और दूसरे की गलती। सेठ! दूसरे के ऊपर दोष ढोलने की अनादि की टेव—आदत पड़ गयी है। यह बात है। अनादि की है। अपने से अपनी (भूल है)। 'अपने को आप भूलकर हैरान हो गया'। दूसरा कोई भुलाता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? ख्याल नहीं तो भूल कहाँ से स्वीकार करे?

कहते हैं, संवररूप होनेयोग्य जीव की पर्याय को संवार्य कहा जाता है। जिसे जीवसंवर कहते हैं। पूर्व के उदय को अजीवसंवर कहा जाता है। **दोनों संवर हैं,...** देखो! **दोनों संवर हैं,...** इस ओर जीवसंवर, इस ओर अजीवसंवर। ऐसे निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है न! आहा! कितनी बात आचार्यों ने कितनी स्पष्ट की है! नौ तत्त्व किस प्रकार उत्पन्न होते हैं, और इसमें से निकालकर अकेले आत्मा की दृष्टि करना, उसका नाम जीव भूतार्थ को जानना, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ पर्याय की बात है न।

मुमुक्षु : जीव का संवर, अजीव का संवर।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वहाँ अजीव में जितना भावसंवर में निमित्त हुआ तो उसे अजीवसंवर कहा गया है। अजीव रुके, वे नहीं, नये आये वे नहीं। पूर्व के उदय को ही अजीवसंवर कहा जाता है। आहाहा! यहाँ संवर किया न। तो उसमें उतना निमित्त पड़ा न? तो उसे अजीवसंवर कहा जाता है। जैसे यहाँ भावपुण्य हुआ तो उदय को अजीवपुण्य कहा। उसी प्रकार यहाँ संवर हुआ तो वहाँ पर्याय को अजीवसंवर कहा गया है। भारी सूक्ष्म बात। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बताते हैं, बस इतनी बात है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध व्यवहार है, उसे तोड़कर अकेले ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। यह बताते हैं। आहाहा! समझ में आया?

निर्जरा होने के योग्य... अपनी पर्याय। जीव की पर्याय शुद्ध होनेयोग्य, वह निर्जरा होनेयोग्य हुई। उसे जीवनिर्जरा कहते हैं। निर्जरा होनेयोग्य स्वतन्त्र बताते हैं। अपनी पर्याय में अपनी योग्यता से निर्जरा होने योग्य होती है। उसे जीवनिर्जरा कहते हैं। शुद्धि की वृद्धि अथवा अशुद्धता का नाश, उसका नाम निर्जरा होनेयोग्य जीव की पर्याय

में योग्यता है। उसे जीवनिर्जरा कहा जाता है। **और निर्जरा करनेवाला...** कर्म का उदय है, वह निर्जरिज हो गया तो उसे निमित्त पड़ा तो निर्जरा करनेवाला उसे अजीवनिर्जरा कहा गया है। जीवनिर्जरा यहाँ, अजीवनिर्जरा वहाँ। समझ में आया? भाई! आहाहा! ओहो! आचार्य ने समझाने की पद्धति बहुत सरलता से कहा है। समझ में आया?

तू एक आत्मा और एक अजीव। दो के बीच यह सात तत्त्व के भेद उत्पन्न हुए, एक में कहाँ आया? भिन्न है। दोनों भिन्न हैं और दो के बीच भेद है। उस भेद का भी लक्ष्य छोड़कर अभेद की दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है।

मुमुक्षु : भेद की दृष्टि....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, अपने में आस्रव होनेयोग्य, पुण्य होनेयोग्य, संवर होनेयोग्य, ऐसी पर्याय का लक्ष्य करे तो भी भेददृष्टि है। उसका भी लक्ष्य छोड़कर अकेले ज्ञायकभाव की दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? फिर से कहते हैं, हों! यह विषय समझने की चीज़ है।

भगवान आत्मा अपनी पर्याय में-अवस्था में पुण्य होनेयोग्य, पाप होनेयोग्य, आस्रव होनेयोग्य, संवर होनेयोग्य, निर्जरा होनेयोग्य, बन्ध होनेयोग्य, मोक्ष होनेयोग्य। यह सात पर्याय होनेयोग्य अपनी पर्याय में है। परन्तु उस पर्याय में पूर्व के कर्म का निमित्त गिनकर उसमें सात भाव वहाँ भी लिये। उस निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का लक्ष्य करना, वह व्यवहार है। उसका आश्रय छोड़कर अकेले अभेद का आश्रय करना, उसका नाम निश्चयसम्यग्दर्शन है। आहाहा! गजब बात, भाई! '**भूदत्थेणाभिगदा**'। भेद जानना, आदरना नहीं। है तो है ही। है तो है ही, परन्तु वे भेद अभेद में ले जाने के लिये बताते हैं। एकाकार ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द सामान्य शुद्धनय का विषय अभेद आत्मा, भेद का आश्रय-लक्ष्य छोड़कर अभेद की दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। फिर भेद रहे, वे जाननेयोग्य रह गये। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार है। होगा नहीं, होगा कहाँ से आया? व्यवहार उसे कहते हैं कि वह भेद का लक्ष्य छोड़कर निश्चय की दृष्टि हुई, तब जितने भेद रहे, उनका

ज्ञान करना, उसे व्यवहार कहते हैं। निश्चय बिना व्यवहार आया कहाँ से?

मुमुक्षु : किसी देश में आता होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी देश में नहीं आता। पहले सुनो।

यहाँ भूतार्थ आत्मा का आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन हुआ तो वहाँ सम्यक् श्रुतज्ञान हुआ। क्या कहा? शुद्ध द्रव्यस्वभाव एकरूप स्वभाव का लक्ष्य किया, दृष्टि की तो सम्यग्दर्शन हुआ। सम्यग्दर्शन हुआ तो साथ में भावश्रुतज्ञान हुआ। भावश्रुतज्ञान हुआ, उसके दो भेद पड़े। श्रुत विकल्पा नया। एक निश्चय, और व्यवहार। तो श्रुतज्ञान हुए बिना निश्चय-व्यवहार होते नहीं। समझ में आया? अकेले राग की एकता को व्यवहार कहाँ कहते हैं? परन्तु नय ही नहीं है न वहाँ। क्या कहते हैं, समझो।

अकेले रागादि हैं, उसे व्यवहार कहाँ कहा है? क्योंकि व्यवहारनय जो है, वह निश्चयनय की अपेक्षा रखता है। तो निश्चयनय जब अपना शुद्ध आत्मा का अनुभव हुआ, शुद्ध ज्ञायक चैतन्य है, ऐसी दृष्टि हुई तो साथ में श्रुतज्ञान हुआ। श्रुतज्ञान हुआ, वह प्रमाण हुआ। प्रमाण के दो भाग—अवयव। प्रमाण अवयवी है और उसके दो भाग अवयव हैं। एक निश्चय और व्यवहार। निश्चय अभेद को देखता है और व्यवहार भेद को जानता है। परन्तु निश्चय हुआ हो तो व्यवहार जानने में आया। समझ में आया?

मुमुक्षु : व्यवहारनय....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु निश्चय बिना व्यवहार किसका? व्यवहार तो अन्धा है। नय बिना व्यवहार कैसा? प्रमाण बिना व्यवहार कैसा? सम्यग्दर्शन बिना व्यवहार कैसा? आहाहा! समझ में आया? यही बड़ी गड़बड़ है न! व्यवहार-निश्चय नय है या नहीं? क्या? नय है। तो नय प्रमाण का अंश है या अध्धर का अंश है? तो कहते हैं, प्रमाण का। तो श्रुतप्रमाण कब होता है? जब सम्यग्दर्शन होता है तब। सम्यग्दर्शन कब होता है? कि त्रिकाल भूतार्थ का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन हुआ तो सम्यग्ज्ञान हुआ। सम्यग्ज्ञान हुआ तो उसके दो भेद पड़ गये। निश्चय और व्यवहार। इसके बिना निश्चय-व्यवहार आये कहाँ से? लालबहादुरजी! आहाहा!

मुमुक्षु : फिर से।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से कहते हैं। इसमें कोई दिक्कत नहीं। यह तो घोंटना है न। देखो!

नय। नय का अर्थ क्या? श्रुत विकल्पा नया। पण्डितजी! श्रुत का भेद। श्रुत प्रमाणज्ञान का भेद। श्रुत प्रमाण है, है भले अंश, ज्ञान का अंश है परन्तु प्रमाण है। प्रमाण का अर्थ, स्व निश्चय को जानता है और भेद को जानता है। तो प्रमाण को श्रुतज्ञान कहा और प्रमाण के भेद को नय कहा। तो प्रमाण ही उत्पन्न नहीं हुआ, वहाँ भेद कहाँ से लाया? और प्रमाण कब उत्पन्न होता है? सम्यग्दर्शन होवे तो। और सम्यग्दर्शन कब होता है? भूतार्थ का आश्रय करे तो। समझ में आया? बात निश्चित करना।

आत्मा एक समय में... आगे आता है, ४१३ गाथा में। व्यवहारमूढ़ है, ऐसा लिया है। ४१३ है, देखो! ४१३। तेर को क्या कहते हैं तुम्हारे? तेरह। यह पुस्तक दूसरी है। हमारी पुस्तक (दूसरी है)। ५६४ (पृष्ठ) टीका ४६५ (पृष्ठ) देखो। **जो वास्तव में 'मैं श्रमण हूँ, मैं श्रमणोपासक (-श्रावक) हूँ' इस प्रकार द्रव्यलिंग में ममकार द्वारा मिथ्या अहंकार करते हैं, वे अनादिरूढ़ (अनादि काल से समागत) व्यवहार में मूढ़ (मोही)...** हैं। व्यवहार मूढ़ हैं। क्योंकि व्यवहार है ही नहीं। जब तक निश्चय का आश्रय हुआ नहीं तो व्यवहार होता नहीं। उसे यहाँ व्यवहारमूढ़ कहा जाता है।

मुमुक्षु : अनादि का मिथ्यादृष्टि व्यवहारमूढ़ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़ ही है। व्यवहार है ही नहीं, व्यवहार मूढ़ है। देखो! उसमें तो बड़ी चर्चा चली है।

व्यवहार में मूढ़ (मोही) होते हुए, प्रौढ़ विवेकवाले निश्चय (-निश्चयनय) पर आरूढ़ न होते हुए... देखो! क्योंकि व्यवहार में मूढ़ हो गया। दया, दान, राग की मन्दता में मूढ़ है, व्यवहार का ज्ञान नहीं। क्यों? कि **प्रौढ़ विवेकवाले...** राग से भिन्न जो निश्चयस्वरूप है, उसकी ओर अनारूढ़ है। निश्चय में अनारूढ़, व्यवहार में मूढ़, अनादिरूढ़। तीन बोल हैं। अनादिरूढ़, व्यवहारमूढ़, निश्चय अनारूढ़। इसमें सब निकलता है। क्या कहते हैं? अकेले राग में 'मैं श्रावक हूँ, मैं मुनि हूँ, ऐसे अट्ठाईस मूलगुण आदि व्यवहार

श्रद्धा-ज्ञान में मानता है', तब तो व्यवहारमूढ़ है। क्यों? प्रौढ़ विवेक-भेदज्ञान, प्रौढ़ विवेकवाला भेदज्ञान। राग से भिन्न निजस्वरूप निश्चय पर आरूढ़ नहीं, **परमार्थसत्य भगवान समयसार को नहीं देखते-अनुभव नहीं करते।** अकेले व्यवहार में अनादि से मूढ़ हैं। अनादिरूढ़ हैं। कषाय मन्द-तीव्र, मन्द-तीव्र तो अनादि से चला आता है। समझ में आया? व्यवहार कहाँ से आया?

उसमें तो हमारी सामने बड़ा प्रश्न हुआ है। उसमें है, समझे? श्वेताम्बर में यशोविजय है, यशोविजय। उन्होंने दिक् पट ८४ बोल निकाले हैं। दिक् पट ८४ बोल निकाले हैं। समझे? यहाँ नहीं। ८४ बोल निकाले हैं। पहले हेमराजजी थे। हेमराज थे न? प्रवचनसार का (भावार्थ) करनेवाले। बालावबोध हेमराज पण्डित। उन्होंने श्वेताम्बर के सामने ८४ बोल निकाले थे। और जब निकाले तो यशोविजय ने दिक् पट ८४ निकाले। हमने तो बहुत पहले सब देखा है। इसमें उन्होंने एक बोल ऐसा निकाला है कि दिगम्बर लोग 'निश्चयनय पहले कहे, पीछे ले व्यवहार।' उसमें वहाँ कहा। 'निश्चयनय पहले कहे, पीछे ले व्यवहार; भाषा क्रम जाने नहीं, जैनधर्म को सार।' ऐसा कहा है। यहाँ पुस्तक नहीं। सब पुस्तकें वहाँ रखी हैं न। श्वेताम्बर ने भूल निकाली है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : थी, अनादि की थी। पकड़ लिया।

यहाँ कहा था, जब ३३ पण्डित आये थे। यहाँ विद्वत् परिषद हुई थी न? भाई! विद्वत् परिषद (संवत्) २००३ के वर्ष में। कहा था, देखो! यह क्या कहते हैं? 'निश्चयनय पहले कहे' ऐसी दिगम्बर की श्रद्धा है। ऐसी बात तो श्वेताम्बर कहते हैं। और तुम लोग मानते हो कि व्यवहार पहले, निश्चय बाद में। क्या हुआ? तुम ऐसे ही हो गये। समझ में आया? वेणीप्रसादजी!

मुमुक्षु : श्वेताम्बर की बात सच्ची हो तो मानने में ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची है ही नहीं। सच्ची कहाँ है?

यह तो कहा है न? अनदि प्रौढ़ विवेक। राग से भिन्न पड़े बिना, निश्चय में आरूढ़ हुए बिना व्यवहार आया कहाँ से? समझ में आया? अमृतचन्द्राचार्य ४१३ गाथा

में पुकार करते हैं। भगवान आत्मा '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**'। ११वीं गाथा का पहला शब्द है। ११वीं गाथा है न? '**भूदत्थमस्सिदो**' भगवान भूतार्थ... भूतार्थ... भूतार्थ... ध्रुव... ध्रुव... शान्तसागर का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। पहले निश्चय सम्यग्दर्शन होता है। फिर रहा रागादि तो वह व्यवहार जाननेयोग्य है। १२वीं गाथा में कहा है। '**यदात्वे**' जाना हुअ प्रयोजनवान है। उस-उस काल में जाना हुआ व्यवहार प्रयोजनवान है, आदरणीय नहीं। समझ में आया? इस बात की बहुत चर्चा हो गयी है। यहाँ से कहा तो बाहर से चर्चा आयी। हम तो यहाँ बात करते-करते सत्य आया है। हमारी कोई व्यक्तिगत बात नहीं। समझ में आया? यह तो ऐसा आया कि निश्चय पहले है, पश्चात् राग को और भेद को व्यवहार कहा जाता है। ऐसा अनादिसिद्ध सिद्धान्त है। वरना अनादिरूढ़ कहा यहाँ तो। राग की मन्दता को तुम व्यवहार कहते हो तो यहाँ कहा है कि व्यवहार मूढ़ है। तू व्यवहार मूढ़ है, राग से भेद पाड़कर चैतन्य तो जागृत हुआ नहीं। राग से भेद पाड़कर अनुभव नहीं हुआ तो व्यवहार मूढ़ है। भेद पाड़कर जब जागृत हुआ, तब राग आया, उसे व्यवहार कहते हैं। देखो, आया। यहाँ तो सब देखा है। उसमें नाम है—दिक् पट। यहाँ तो सब देखा हुआ है न पहले। देखो! ७२ श्लोक है, दिक् पट ८४ बोल।

निश्चयनय पहले कहे, पीछे ले व्यवहार।
भाषा क्रम जाने नहीं, जैन मार्ग को सार॥

यह जैन मार्ग को सार भाषा कहते हैं। ऐसा नहीं। ऐसा है ही नहीं। यह कहते हैं, वह बात बराबर है। दिगम्बर की बात अनादि से चलती थी, वह बराबर पकड़ी है। ठीक बात पकड़ी है, परन्तु उसका दोष निकालते हैं। किसी व्यक्ति का काम नहीं। वस्तुस्थिति (ऐसी है)। पाठ है, हमने तो पहले से निकालकर निश्चित किया था। सब चिह्न किये हैं। समझ में आया?

भगवान! सत्य से समझ में चाहिए। यह कोई पक्षपात से नहीं समझना। क्योंकि अपनी चीज़ दृष्टि में आयी नहीं, तो सम्यग्ज्ञान हुआ नहीं। सम्यग्ज्ञान बिना प्रमाण हुआ नहीं, प्रमाण बिना नय कहाँ से आये? समझ में आया? आहाहा! क्यों भाई लालबहादुरजी!

यह कैसी बात है! बात तो ऐसी है, त्रिकाल ऐसी है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' पंथ कोई दो-तीन नहीं होते। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ ने पहले सच्चिदानन्द प्रभु सर्वज्ञ ने देखा अनन्त गुण का स्वरूप, ऐसे आत्मा को सामान्य ध्रुव को उत्पाद-व्यय की पर्याय रहित ऐसे ध्रुव पर दृष्टि देने से अभेद अनुभव होता है, तब सम्यग्दर्शन में श्रुतज्ञान का प्रमाण प्रगट होता है। पश्चात् श्रुतज्ञान प्रमाण में दो भेद पड़ते हैं, एक निश्चय और एक व्यवहार। श्रुतज्ञान हुए बिना निश्चय-व्यवहार होते नहीं। श्रुतज्ञान सम्यग्दर्शन बिना होता नहीं और सम्यग्दर्शन द्रव्य के आश्रय बिना होता नहीं। समझ में आया? वस्तु ऐसी अनादि से चली आती है। कोई नयी नहीं बनाई है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... ध्रुव का आश्रय ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव का आश्रय है। क्योंकि शुद्ध पर्याय द्रव्य में पड़ी है। पर्याय में से पर्याय नहीं होती। पर्याय में से पर्याय होती है? पर्याय तो एक समय की है। उसमें से नयी पर्याय कहाँ से आवेगी? द्रव्य में अन्दर में अनन्त गुण पड़े हैं, उनमें दृष्टि करने से नयी पर्याय है, आती है। आहाहा! समझ में आया? इसकी श्रद्धा में तो बराबर सुधार करे। और श्रद्धा में गड़बड़ होगी तो स्वरूप की दृष्टि और अनुभव कभी होंगे नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, नहीं होता। यदि श्रद्धा में गड़बड़ करेगा कि ऐसा होगा और वैसा होगा, पर्याय पहले होगी और व्यवहार पहले होता है, उसकी श्रद्धा ही विपरीत है। समझ में आया? यह तो अनादि अनादि सनातनमार्ग है। यह किसी का किया हुआ नहीं, अनादि से ऐसा ही मार्ग चला आया है। भरत, ऐरावत और महाविदेह क्षेत्र में भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर विराजते हैं, वहाँ भी यही मार्ग है। दूसरा कोई मार्ग नहीं।

कहते हैं कि भगवान! तू पहले व्यवहार कहता है तो व्यवहार किसे कहते हैं? व्यवहारनय किसे कहते हैं? व्यवहाराभास है। जब निश्चय में आरूढ़ होकर निश्चयस्वरूप ज्ञायकभाव में आरूढ़ होकर राग से प्रौढ़-भेदज्ञान करके अभेद में दृष्टि हुई, तब निश्चय

ज्ञान, तब उस ज्ञान का व्यवहार अंश, वह भेद है, उसे जानता है। भेद है, उसे जानता है, बस। समझ में आया? आहाहा! बहुत गड़बड़ हो गयी। अभी यह लोग ऐसा कहते हैं, व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। व्यवहार का अर्थ क्या? क्यों, लालबहादुरजी! व्यवहार करते-करते (होगा)। सब ऐसा कहते हैं। पण्डित लोगों को उस समय कहा। ३३ पण्डित आये थे। तुम क्या कहते हो? यह क्या कहते हो? शास्त्र ऐसा कहता है कि निश्चय हो तो व्यवहार होता है। ११वीं गाथा में पहले निश्चय कहा, पश्चात् १२वीं गाथा में आया, देखो! वह जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा आया, देखो! १२वीं गाथा है या नहीं? क्या है, देखो! जाना हुआ। देखो! **...जाना हुआ उस काल में प्रयोजनवान है।** यह महा शब्द पड़ा है। **जाना हुआ उस काल में प्रयोजनवान है।** यह शब्द पड़े हैं। नीचे हैं। **(अनेक) वर्णमाला समान होने से...** अभी ही सब स्पष्टीकरण हो गया है। 'जाना हुआ उस काल में प्रयोजवान है।' पाठ में ऐसा है, '**तदात्वे**' ऐसा पाठ है। समझ में आया? '**तदात्वे प्रयोजनवान्:**' ऐसा पाठ है। '**तदात्वे प्रयोजनवान्:**'। '**तदात्वे**' अर्थात् जब निश्चय का भान हुआ, उस काल में व्यवहार जाना हुआ प्रयोजवान कहा जाता है। नीचे इसका अर्थ है। **जाना हुआ उस काल में प्रयोजनवान है।** निश्चय हुआ, सम्यक् अनुभव हुआ, फिर जितनी शुद्धता की मन्दता रही, अशुद्धता रही, वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। आदरणीय नहीं। तथा जाना हुआ नहीं, ऐसा भी नहीं। समझ में आया? गजब भाई! वाद-विवाद, वाद-विवाद। सत्य वस्तु है, उसे पकड़ने की योग्यता बिना बाहर से मिल जाये, बाहर से मिल जाये, उसके लिये हठ करके अनादि का प्रयत्न किया, परन्तु मिली नहीं। समझ में आया? कहते हैं, भाई! प्रभु! यह तेरी चीज़ जो शुद्ध चिदानन्दस्वरूप, जिसमें अनन्त सिद्ध परमात्मा स्थित हैं, उसके सन्मुख दृष्टि किये बिना तुझे सम्यग्दर्शन तीन काल में कभी होता नहीं। और सम्यग्दर्शन बिना श्रुतज्ञान सच्चा भावश्रुत होता नहीं। और भावश्रुतज्ञान बिना नय होते नहीं। नय हुए बिना निश्चय-व्यवहार होते ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ३५० वर्ष पहले कह गये हैं, 'निश्चयनय पहले कहे' तुम पहले कहते हो, फिर व्यवहार कहते हो। ऐसा ही है। है ही। समझ में आया?

यहाँ भी अपने क्या कहते हैं? नौ तत्त्व के भेद हैं। परन्तु उसे व्यवहार नहीं

कहते। उसे छोड़कर ज्ञायक की दृष्टि हुई, तब जितना व्यवहार रागादि रहता है, उसे व्यवहार कहते हैं। दृष्टि भेद से बहुत भेद हो जाता है। शास्त्र का वाँचन करे परन्तु अपनी दृष्टि के साथ मिलान कर देते हैं। जैसे उसकी श्रद्धा हो, तत्प्रमाण मिला ले। परन्तु यह क्या कहते हैं, उस ओर अपनी दृष्टि नहीं ले जाते। मिलान करना चाहिए। ऐसा है, देखो ऐसा है। भाई! ऐसा नहीं, प्रभु! शान्ति से समझना चाहिए, बापू! ऐसा मनुष्यदेह मिला। आहाहा! कोई साथ आयेगा नहीं। सम्प्रदाय को बहुत मनाया है और बहुत मानते हैं, कोई शरण नहीं, धूल है। समझ में आया? एक शरण चिदानन्द प्रभु अन्तर में दृष्टि करने से शरणभूत प्रभु पड़ा है, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन में शान्ति और श्रद्धा तथा स्वरूपानुभव होता है। फिर बाकी रहा, उसे जानना, व्यवहारनय का विषय है। नय है तो उसका विषय है। भेद, राग है, उसे जाननेयोग्य है। आदरनेयोग्य नहीं। आदरनेयोग्य निश्चय उपादेय, व्यवहार जाननेयोग्य हेय। व्यवहार हेय, निश्चय उपादेय। भाई! रात्रि में भाई प्रश्न करते थे। दोनों उपादेय हो तो दो रहे किस प्रकार? दो रहे कहाँ? एक उपादेय, एक हेय। तो दो रहे। दोनों उपादेय हो तो दो रहे कहाँ? वे तो एक हो गये। समझ में आया? आहाहा! भारी झगड़ा, भाई! प्रभु! तेरे घर में इसमें इतने झगड़े! झगड़े बिना का घर है। 'सद्गुरु कहे सहज का धंधा वाद-विवाद करे सो अंधा।' यह बनारसीदास ने कहा है, हों! भाई! 'सद्गुरु कहे सहज का धंधा वाद-विवाद करे सो अंधा।' यह सहज का धन्धा है, सहज का धन्धा है।

कहते हैं, अपना भगवान आत्मा पर्याय में अनादि से सात प्रकार के भेदरूप परिणमता है तो उसकी पर्याय में अपनी योग्यता से परिणमता है, तब सामने की चीज़ कर्म को निमित्त कहा जाता है। परन्तु इस निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध को व्यवहार कहते हैं। उसे छोड़कर स्वभाव की दृष्टि करे तो उसको व्यवहार का ज्ञान यथार्थ होता है। कहो, समझ में आया?

निर्जरा होने के योग्य... जीव, जीव की पर्याय। पर्याय की बात है न यहाँ। कहीं जीव की निर्जरा होती है? जीव की पर्याय में अशुद्धता का नाश होना और शुद्धि की उत्पत्ति होना, वह निर्जरा होनेयोग्य जीव की योग्यता है। तो निर्जरा करनेवाला निमित्त

है। कर्म छूटते हैं, उस निमित्त को निर्जरा करनेवाले को अजीवनिर्जरा कहा। यह जीवनिर्जरा है। दोनों निर्जरा है।

बँधने के योग्य... लो! भगवान आत्मा अपनी पर्याय में बंधन के योग्य भावबन्धन के योग्य अपनी पर्याय में है। **बँधने के योग्य...** यह अपने चलता है न? निकलने का, बन्धन में से निकलने का रास्ता है, तो उसमें घुस जाता है। नय के झगड़े और ऐसे और वैसे। अरे प्रभु! तुझे कहीं शरण नहीं मिलेगी। दुनिया कोई साथ नहीं आयेगी। यह धूल भी साथ में नहीं आयेगी। समझ में आया? वाणी क्या तेरी है? शरीर क्या तेरा है? यहाँ तो राग क्या तेरा है? राग भी तेरी चीज़ नहीं। किसके साथ तुझे अभिप्राय बँधाना है कि यह माने, वह हमारे मानना है। अरे! आत्मा है, ऐसा मान। समझ में आया?

कहते हैं, **बँधने के योग्य...** आत्मा है। अपनी पर्याय की योग्यता से बँधता है। भावबन्ध, हों! भावबन्ध की बात है। वह भावबंध जीवबन्ध है। **और बंधन करनेवाला...** कर्म का उदय है, उसे अजीवबन्ध कहा जाता है। उदय को, हों! उदय को। नये बन्ध की बात नहीं। **वे दोनों बन्ध है...** एक जीव भावबन्ध, एक अजीवबन्ध। दोनों को बन्ध कहा जाता है। समझ में आया? **मोक्ष होनेयोग्य...** अपनी पर्याय में मोक्ष होनेयोग्य जीव है, वह जीव की मोक्ष होनेयोग्य पर्याय है। **और मोक्ष करनेवाला...** कर्म का उदय खिर जाता है, झर जाता है न, उसे निमित्त देखकर उसे अजीवमोक्ष कहा गया है। जीवमोक्ष यहाँ, अजीव छूटता है, उसे अजीवमोक्ष कहा। आहाहा! गजब बात, भाई! आहाहा! अमरचन्दभाई! निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध चलता है। परन्तु कहते हैं कि भेद पड़ गया न! लक्ष्य छोड़ दे। ज्ञायक का लक्ष्य कर। भेद का ज्ञान कर, जान कि ऐसा है। परन्तु वह छोड़नेयोग्य है। छोड़नेयोग्य का भी ज्ञान हुए बिना छोड़े किसे? हेय का ज्ञान तो होना चाहिए न।

इस प्रकार सात भेद कैसे पड़े? जीव की पर्याय की योग्यता और कर्म का निमित्त, ऐसे सात भेद पड़ गये। दो तो द्रव्य है। सात भेद पड़े। तो जानना तो बराबर। जानकर छोड़ना है। अपनी पर्याय में ऐसा होता है, ऐसा जानकर लक्ष्य छोड़कर ज्ञायकभाव के ऊपर दृष्टि देना, उसका नाम सम्यग्दर्शन भूतार्थनय से आत्मा जाना कहा

जाता है। आहाहा! गजब बात! मस्तिष्क का काम करना... बाहर से मिल जाता हो तो पकड़ लिया। दान करो और इन्द्रिय दमन करके बाहर से छोड़ा, छोड़ो, छोड़ो। क्या छोड़े? धूल? जड़ कब घुस गये थे अन्दर, उसे छोड़े? मैं छोड़ूँ, ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। क्या घुस गये हैं अन्दर में? घुसे नहीं और छोड़ूँ। इसका अर्थ कि पकड़ा था। पकड़ा था, तो छोड़ा। समझ में आया? इसमें तो भूल पकड़ी थी, भूल पकड़ी थी। भगवान चिदानन्द आत्मा का आश्रय करके भूल छूट जाती है। दूसरा कोई उपाय नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो वस्तु ऐसी है, इसमें कहीं सर्वज्ञ ने कही है, इसलिए ऐसी है, ऐसा नहीं। ऐसी ही है। वस्तु ऐसी ही है। तीन काल-तीन लोक में ऐसी चीज़ है। समझ में आया? अपनी पकड़ से जो अर्थ करे और अपनी पकड़ से ले तो कोई मार्ग हाथ नहीं आयेगा। आहाहा! लो, **वे दोनों मोक्ष हैं,...** आ गये सातों ही? दोनों— भावमोक्ष वह जीवभाव; छूटा, वह अजीवभाव-अजीवमोक्ष।

क्यों? अब कहते हैं। कारण क्यों पड़ा? **क्योंकि एक के ही...** एक के ही, अकेले स्वभाव की अभेदता के ही **अपने आप पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष की उपपत्ति (सिद्धि) नहीं बनती।** अकेले में ऐसे पर्यायभेद नहीं होते। पुण्य और पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष अकेले में नहीं पड़ते। एकसाथ होनेयोग्य और निमित्त, दो के सम्बन्ध से ऐसे भेद पड़ते हैं। समझ में आया? **क्योंकि एक के ही...** इसका अर्थ ऐसा नहीं कि दूसरा कराता है। भाषा ऐसी है। क्योंकि स्वभाव में भेद पड़ने की सामर्थ्य नहीं है। परन्तु पर्याय में भेद है तो निमित्त का लक्ष्य कराकर, निमित्त कराता है और योग्यता अपनी है, ऐसा बतलाया है। करावे-फरावे (नहीं)। कोई परद्रव्य अपने को स्पर्शता नहीं और कराता है, ऐसा तीन काल में नहीं। यह आधार भी बहुत बार देते हैं, देखो! एक को नहीं होता, इसलिए कर्म के कारण से यह भेद है। अरे भाई! यहाँ योग्यता तो तेरी है, उसको तो निमित्त कहा। योग्यता तो तेरी है, पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध होने की योग्यता को तेरी कहा। समझ में आया? ओहो! शास्त्र के अर्थ करने की दृष्टि बदल गयी। शास्त्र को किस प्रकार समझना (यह बदल गया)। व्यवहार हो वहाँ निश्चय लगा दे, निश्चय हो वहाँ व्यवहार लगा दे।

कहते हैं, भगवान आत्मा अकेला आत्मा सामान्य... सामान्य... सामान्य... अकेले आत्मा में ऐसे सात भेद क्यों पड़े? वह तो अपनी योग्यता पर्याय में है और अजीव निमित्त है, ऐसे भेद से ऐसी सात पर्याय उत्पन्न होती है। क्यों? **क्योंकि एक के ही अपने आप पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष की उपपत्ति (सिद्धि) नहीं बनती। वे दोनों जीव और अजीव हैं (अर्थात् उन दो में से एक जीव है और दूसरा अजीव।)** यह पहले से कहते आये हैं वह। भावपुण्य जीव है, निमित्त अजीवपुण्य है। भावपाप जीव है, निमित्त अजीवपाप है। भावआस्रव जीव है, निमित्त अजीवआस्रव है। संवर करने की योग्यता जीव है, निमित्त अजीवसंवर है। निर्जरा करने की योग्यता जीव की है, निर्जरा होती है, उसे अजीवनिर्जरा कहते हैं। यह जीवनिर्जरा है। भावबन्ध जीव है, द्रव्यबन्ध पूर्व का उदय है, उसे अजीवबन्ध कहा जाता है। भावमोक्ष होता है, वह जीव का भाव है और परमाणु खिर जाते हैं, उसे अजीवमोक्ष कहा। समझ में आया? गजब भाई यह बात! बापू! समझने का प्रयत्न करना चाहिए। तुझे समझ में न आवे, ऐसी कोई चीज़ नहीं। आचार्यों ने तो समझने के लिये कहा है न! हम कहते हैं, परन्तु तुमको नहीं समझ में आये, ऐसा कहा है? यहाँ तो कहते हैं, **'दाएज्ज पमाणं'।** पाँचवीं गाथा में कहा, मैं दिखलाऊँ तो अनुभव से प्रमाण करना। ऐसा कहा है। अनुभव से। पाँचवीं गाथा। **'तं एयत्तविहत्तं हाएहं अप्पणो सविवहवेण। जदि दाएज्ज पमाणं'।** मैं अभेद चिदानन्द भूतार्थ को पर से भिन्न, निज स्वभाव से एकत्व, ऐसी वस्तु को कहूँगा। प्रमाण करना। अपने अनुभव में लेकर प्रमाण करना। ऐसे का ऐसे अकेली धारण करके नहीं। और प्रमाण करना, ऐसा कहा है। तुझे प्रमाण नहीं होगा, ऐसा नहीं। समझ में आया? अमरचन्दभाई! एक-एक शब्द में बहुत रहस्य भरा है। एक भी शब्द मुफ्त का नहीं कहा।

कहते हैं, **वे दोनों जीव और अजीव हैं (अर्थात् उन दो में से एक जीव है और दूसरा अजीव।)** इतना भेद करके अब (कहते हैं), **बाह्य (स्थूल) दृष्टि से देखा जाये तो-** कर्म के निमित्त से देखें। **बाह्य (स्थूल) दृष्टि से देखा जाये तो - जीव-पुद्गल की अनादि बन्धपर्याय के समीप...** जीव और कर्म की समीप दृष्टि करने से **एकरूप से अनुभव करने पर...** कौन? **बन्धपर्याय के समीप जाकर एकरूप से अनुभव करने**

पर... विकारी पर्याय मेरी है, भेद मेरे हैं, ऐसा अनुभव करने पर, **यह नव तत्त्व भूतार्थ हैं,...** व्यवहार से नौ तत्त्व हैं। नौ तत्त्व, पर्याय में नौ भेद हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ऐसा कहाँ कहा है? यहाँ तो नौ हैं। आश्रय करनेयोग्य नहीं। है। कोई निषेध करे कि पर्याय में नौ भेद ही है नहीं, आत्मा अकेला अनादि से शुद्ध ही है, बिल्कुल झूठ है। समझ में आया? पर्याय में ऐसे भेद हैं।

अनादि बन्धपर्याय के समीप जाकर एकरूप से... क्या (कहा)? भेद को, विकार को एकरूप से अनुभव करने पर यह नौ हैं। नौ व्यवहारनय का व्यवहाररूप है। **एक जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं;...** लो! व्यवहार से व्यवहार है। एक जीवद्रव्य का स्वभाव, जीवद्रव्यस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, चैतन्यस्वभाव, आनन्दस्वभाव, ज्ञायकस्वभाव ऐसे द्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर। क्या भाषा है, देखो तो सही! पर्याय के समीप जाकर एकरूप से देखने पर वे नौ हैं। यहाँ समीप जाओ, एक जीवद्रव्य का स्वभाव। भगवान एक जीवद्रव्य का ज्ञायक शुद्धभाव, उसके समीप एकाकार होने से, अनुभव करने से वे नौ झूठे हैं। नौ नहीं। एक में नौ नहीं, नौ में नौ है, परन्तु एक में नहीं। आहाहा! समयसार की टीका गजब की है! समझ में आया?

व्यवहार से नौ के भेद हैं। बन्धपर्याय के समीप जाकर पर के लक्ष्य से उठते हैं, ऐसे भेद हैं। परन्तु एक जीवद्रव्य के स्वभाव पर दृष्टि देने से एक ही भूतार्थ है और नौ असत्यार्थ है। नौ है नहीं। इस अपेक्षा से असत्यार्थ कहा है। विशेष है इसमें....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ९, शुक्रवार, दिनांक - २३-०९-१९६६
गाथा-१३, प्रवचन - ५६

दसलक्षणी पर्व में आज उत्तम सत्यधर्म का दिन है। उत्तम सत्य उसे कहते हैं। दस प्रकार के धर्म, वे चारित्र के भेद हैं। चारित्र साक्षात् मुक्ति का कारण है और चारित्र का मूल कारण सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। उसमें उत्तम सत्यधर्म क्या चीज़ है, यह बतलाते हैं।

जिणवयणमेव भासदि तं पालेदुं असक्कमाणो वि।
ववहारेण वि अलियं ण वददि जो सच्चवाई सो॥३९८॥

क्या कहते हैं? देखो! जो धर्मात्मा '**जिणवयणमेव भासदि**' वीतराग के शास्त्र हैं, उस सूत्र प्रमाण वे कथन करते हैं। निज शुद्ध आत्मा उपादेय है, व्यवहार हेय है, ऐसा ही मुनि धर्मात्मा सत्य कथन करते हैं।

मुमुक्षु : सर्वथा है या कथंचित् हेय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वथा हेय है। समझ में आया?

'**जिणवयणमेव**' ऐसी भाषा है न? वीतरागी भाव। मुनि अपना स्वरूप शुद्ध अनुभूति आनन्द वीतरागदशा को ही धर्म बताते हैं और अन्दर रागादि आते हैं, वह व्यवहावर है, उसे हेय बताते हैं। इसका नाम सत्यधर्म कहा जाता है। '**तं पालेदुं असक्कमाणो**' कदाचित् अपनी शक्ति न हो और पाल नहीं सके... समझ में आया? तो भी झूठा न बोले। मैं पालन नहीं कर सकता परन्तु मार्ग ऐसा ही है, ऐसा कहे। जैसा मार्ग है, वैसा आचार में दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीर्य आदि में निश्चय क्या है, व्यवहार क्या है, जैसा है वैसा कहे। अपनी शक्ति न हो तो पालन न कर सके परन्तु उसे झूठा कहे नहीं। यह भी मार्ग है, वह भी मार्ग है, ऐसा न कहे। मार्ग एक ही है। मोक्ष का मार्ग एक ही है, आत्मा के आश्रय से होता है। समझ में आया? वह न हो सके, अन्दर में स्थिरता न

हो सके तो व्यवहारमोक्षमार्ग वही सच्चा मोक्षमार्ग है, ऐसा कहीं जिनवचन में कहा नहीं। तो ऐसा कभी मुनि कहते नहीं। समझ में आया?

भावार्थ :- जैन सिद्धान्त में आचारादिक का जैसा स्वरूप कहा हो, वैसा ही कहे परन्तु ऐसा नहीं कि अपने से पालन नहीं किया जा सकता, इसलिए उसे अन्य प्रकार से कहे... समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसा अनादि से चलता लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से चलता है। श्वेताम्बर में ऐसा हुआ न मूल। वहाँ से यह डाला है। गड़बड़ उठी है न? पालन नहीं किया जा सके तो वस्त्रसहित भी मुनिपना बतलाया। ऐसा नहीं है। जिनवचन ऐसा नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं, **पालन नहीं किया जा सके, इसलिए उसे अन्य प्रकार से कहे...** ऐसा नहीं। यथावत कहे। **अपना मानभंग हो, इसलिए जैसा-तैसा कहे...** ऐसा नहीं। अपमान तो अपमान। हमारी पर्याय तो मन्द है। हमारा मन्दता का आचार है, ऐसा जैसा है वैसा कहे। अपना छिपाकर असत्य कहे नहीं। वीतरागमार्ग का नाश हो, लोप हो, ऐसी प्ररूपणा न करे। समझ में आया? श्वेताम्बर वस्त्ररहित नहीं निभ सके तो प्ररूपणा बदल डाली। कथन बदल डाले। .... निश्चय न हो तो व्यवहार करते-करते निश्चय होता है और व्यवहार ही प्रथम धर्म है, यह जिनवचन ही नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन काल में। चौथा काल या पंचम काल सब एक ही मार्ग है, भगवान! दूसरा मार्ग है ही नहीं। समझ में आया?

चैतन्य ज्ञानानन्द भगवान... यहाँ अभी पहले कहा था, 'जिन सो ही है आत्मा' भाई! इसमें तो प्रश्न उठा, हमारे शशीभाई वैष्णव हैं उन्हें। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' यह '**जिणवयणमेव**' आया न? भगवान आत्मा ज्ञानानन्द सहजानन्द की मूर्ति, अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु वीतरागस्वरूपी आत्मा है। समझ में आया? ऐसे आत्मा की दृष्टि करे और उसे समझे, वह आत्मा, वह जैन। समझ में आया? दूसरा जैन कोई सम्प्रदाय नहीं। वीतरागस्वरूप

अपना अखण्डानन्द चैतन्य परमात्मस्वरूप वीतराग है। समझ में आया?

यशोविजय भी कहते हैं, जैसे स्फटिकमणि... आता है न? जैसे स्फटिकमणि... जैसे निर्मलता स्फटिकमणि की। यह तो दृष्टान्त पर्याय का दिया है।

ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, स्फटिक होता है या नहीं? ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की,
त्यों ही जीव स्वभाव रे,

जीव स्वभाव स्फटिकमणि जैसा शुद्ध वीतरागस्वरूप आत्मा है।

ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे...
श्री जिनवीर ने धर्म प्रकाशिया, श्री जिनवीर ने धर्म प्रकाशिया...

गुजराती कठिन नहीं है।

श्री जिनवीर ने धर्म प्रकाशिया, प्रबल कषाय अभाव रे....

विकार से-कषाय से रहित भगवान अपनी पर्याय में आत्मा परिणमे, उसे भगवान त्रिलोकनाथ वीरप्रभु ने धर्म कहा है। समझ में आया? यह तो श्वेताम्बर का वाक्य है। वे भी ऐसा कहते हैं। परन्तु दूसरी जगह दूसरा कहते हैं। यह तो वस्तुस्थिति ऐसी है। समझ में आया?

जिन सो ही है आत्मा। आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु। अनन्त आनन्द, अनाकुल रसकन्द है। पुण्य-पाप के विकल्प, वे आत्मा नहीं; शरीर, कर्म आत्मा नहीं। आत्मा का अनुभव करना, उसे जैन कहते हैं। समझ में आया? जैन कोई सम्प्रदाय की वस्तु नहीं। वह तो आत्मा भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु के अन्तर सन्मुख होकर आनन्द का स्वाद लेकर अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दृष्टि जैन कहा जाता है। जिसे लघुनन्दन कहा है। जिनेश्वर के लघुनन्दन कहा है। समझ में आया? यह सम्प्रदाय नहीं, वस्तु की स्थिति है। तो जैसा है, वैसा कहे। पान न कर सके तो गड़बड़ न करे। व्यवहार भी है, व्यवहार भी धर्म है, करते-करते हो जायेगा। ऐसी वीतराग की वाणी नहीं है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' परमार्थ पंथ का दूसरा दो भेद होते नहीं।

कहते हैं, मुनि को **व्यवहार भोजनादि व्यापार तथा पूजा-प्रभावनादि व्यवहार,**

उसमें भी जिनसूत्र अनुसार वचन कहे... पूजा, प्रभावनादि भी शुभभाव है। ऐसा न कहे कि इनसे धर्म होता है।

मुमुक्षु : परम्परा धर्म।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा धर्म नहीं, वह तो निमित्त से कथन है। समझ में आया? सत्य धर्म की व्याख्या है। पूजा, प्रभावना कहे, होता है, परन्तु वह शुभभाव है; वह आत्मा के संवर, निर्जरा नहीं। स्व-आश्रय से संवर, निर्जरा होते हैं। जितना पराश्रय में भाव उत्पन्न होता है, वह पुण्यास्रव शुभभाव है। ऐसे पूजा, प्रभावना आदि में भी गड़बड़ न करे कि तेरी भगवान की पूजा करने से तुझे निर्जरा होगी, संवर होगा। ऐ... सेठ! यात्रा करो, तुम दो-चार बार यात्रा करो तो तुम्हारा कल्याण हो जायेगा—ऐसा तीन काल में नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो आता है, शुभभाव हो। शुभभाव होता है। पाप से बचने के लिये होता है, परन्तु वह भाव है, वह पुण्य है, वीतरागभाव नहीं। समझ में आया?

पूजा, प्रभावना। प्रभावना करो तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। पाँच-दस लाख खर्च कर डालो, दो-चार मन्दिर बनाओ तुम्हारे आठ भव रह जायेंगे। ऐसा है नहीं। भव का छेद पर की क्रिया में राग होता है, उससे भव का छेद नहीं होता। निज चैतन्यप्रभु अखण्डानन्द आनन्दकन्द का आश्रय करन से जो अनुभव होता है, वही धर्म है और वही जन्म-मरण के अन्त का उपाय है। ऐसा जिन का वचन सत्य धर्म है। यह पाँचवाँ सत्यधर्म भगवान स्वामी कार्तिकेय ने ऐसा कहा है।

अब, चलता अधिकार। कहाँ तक आया है? देखो! दूसरा पैराग्राफ है न? देखो! नौ तत्त्व का अधिकार है। हिन्दी ३२ पृष्ठ। हिन्दी दूसरा पेराग्राफ है। **बाह्य (स्थूल) दृष्टि से देखा जाये तो...** क्या कहते हैं, देखो! भगवान आत्मा ज्ञायक चैतन्यज्योति को बाह्य दृष्टि से देखा जाये अर्थात् कर्म के बन्धपर्याय के लक्ष्य से उसे देखा जाये। देखो! **जीव-पुद्गल की अनादि बन्धपर्याय के समीप...** राग और बन्ध का लक्ष्य करके यदि देखा जाये **एकरूप से अनुभव करने पर यह नव तत्त्व भूतार्थ हैं,...** तो जीव-अजीव आदि नौ

व्यवहारनय से भूतार्थ हैं। पर्याय में नौ तत्त्व हैं, ऐसी बात सच्ची है, परन्तु वह धर्म नहीं। समझ में आया? अकेले नौ तत्त्व के भेद का अनुभव, उसका नाम भगवान मिथ्यादृष्टि कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जाने कहाँ? जानना तो उसे तब कहा जाये कि नौ भेद हैं, उनसे रहित होकर अभेद होना, उसका नाम ज्ञान हुआ। तो भेद है, उसका ज्ञान हुआ, उसका नाम व्यवहार ज्ञान है। अकेले नौ का अनुभव करना, उसका नाम तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? यह तो पर्यायबुद्धि के नौ भेद हैं। एक समय की अवस्था में, मैं जीव हूँ, यह अजीव है, यह राग है, यह संवर है, मोक्ष है—ऐसा नौ का भेदरूप अनुभव, वह अनुभूति नहीं, वह सम्यग्दर्शन नहीं, वह स्वआश्रय दृष्टि नहीं, वह पराश्रय दृष्टि है। आहाहा! गजब बात! समझ में आया?

बन्धपर्याय के समीप जाकर एकरूप से अनुभव करने पर... एकपने अर्थात् राग और भेद को एकपने अनुभव करने से **यह नव तत्त्व भूतार्थ हैं,...** व्यवहारनय है। परन्तु उसका यथार्थ ज्ञान कब होता है? **एक जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर...** देखो! यह अनुभूति। आहाहा! यह जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, ऐसे भेद का लक्ष्य छोड़कर अकेले जीवद्रव्य ज्ञायक चैतन्य पूर्णानन्दस्वरूप के सन्मुख होकर अनुभूति करने से। देखो! **एक जीवद्रव्य के स्वभाव के..** ज्ञायकस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, शान्त अनाकुल आनन्दस्वभाव के समीप जाकर एकता करके अनुभव करने पर—उसकी अनुभूति करने पर **वे अभूतार्थ हैं;...** नौ झूठे हैं। एक स्वरूप की अनुभवदृष्टि में नौ दिखाई नहीं देते। अभेद में भेद नहीं दिखते; इसलिए भेद को अभूतार्थ असत्यार्थ कहा गया है। समझ में आया? नौ हैं सही, पर्यायभेद से है। परन्तु स्वभाव की अनुभूति की दृष्टि में वे नौ नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा... यहाँ पहले बाह्य से लिया न? यहाँ बाह्यदृष्टि से लिया। कर्मबन्ध की पर्याय की दृष्टि से देखो तो एकपने अनुभव करने पर नौ हैं। जीवद्रव्य का स्वभाव ज्ञायक मूर्ति प्रभु, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा भी विकल्प नहीं, समझ में आया? मैं

ज्ञायक हूँ, ऐसा भी विकल्प नहीं। विकल्प राग है, आहाहा! यह नौ तत्त्व के भेदरूप से दृष्टि उठाकर, पर्यायबुद्धि से दृष्टि उठाकर एकरूप जीवद्रव्य का स्वभाव के सन्मुख जाकर।

वस्तु विचारत ध्यावते, मन पावे विश्राम।
रस स्वादत सुख उपजे, अनुभव ताको नाम॥

समझ में आया? भगवान आत्मा अपना कायमी असली शुद्ध ध्रुव आनन्द स्वभाव के समीप, समीप, भेद से दूर, स्वभाव से समीप। समझ में आया? नौ तत्त्व के भेद से दूर अभाव और त्रिकाल स्वभाव के समीप एकाकार होकर एक स्वभाव का अनुभव करना, भेद का लक्ष्य छोड़कर, उसे यहाँ अनुभव कहा जाता है। यह अनुभूति है। आहाहा!

मैं अनुभव करता हूँ, ऐसा भी जहाँ विकल्प नहीं। समझ में आया? अकेला आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप के समीप जाकर अनुभव करना तो अतीन्द्रिय का स्वाद अनुभूति में आता है, उसे अनुभव कहते हैं। उस अनुभव में आत्मा की प्रतीति हुई, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। गजब बात, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। सूक्ष्म नहीं, अब आयेगा। सूक्ष्म का अर्थ अन्दर से ऐसे सीधे ज्ञायकभाव से देखना, ऐसा। स्थूल दृष्टि से यहाँ से देखना, ऐसा कहा। अभी तो अब आयेगा। कहाँ आया है? समझ में आया? ऐसे से देखने से, अन्तर स्वरूप की ओर नहीं देखने से, कर्म के बन्ध की पर्याय के ऊपर बाह्य दृष्टि से देखने पर, नौ हैं। नौ का विकल्प नौ भेद हैं। द्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर एकाकार ज्ञायक का अनुभव करने से वे नौ अभेद में है ही नहीं, असत्य हैं, झूठें हैं। झूठे (किस) अपेक्षा से? अभेद में भेद दिखाई नहीं देते। अनुभूति में एक में नौ दिखाई नहीं देते। एक ही स्वरूप का अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन की अनुभूति कही जाती है। आहाहा! सम्यग्दर्शन तो प्रतीतिरूप है, परन्तु साथ में अनुभूति लक्षण से वह पहिचाना जाता है। आनन्द की अनुभूति हुई तो सम्यग्दर्शन साथ में है। वह अनुभूति सम्यग्दर्शन का बाह्य लक्षण है।

क्योंकि सम्यग्दर्शन श्रद्धा की पर्याय है, अनुभूति ज्ञान की पर्याय है। तो ज्ञान की पर्याय से दूसरी पर्याय का लक्ष्य करना, इसका नाम बाह्य लक्षण से लक्ष्य किया, ऐसा कहा जाता है। बाहर की बात नहीं, यहाँ विकल्प की बात नहीं। भाई! आहाहा!

भाई! यह रास्ता क्या है, इस रास्ते का पहले ख्याल तो करना चाहिए न! पश्चात् चलना कि यह मार्ग यहाँ जाना है। इसी प्रकार भगवान आत्मा बाह्य दृष्टि से कर्मबन्ध की पर्याय के ऊपर लक्ष्य करने से नौ के पर्यायभेद हैं। है तो क्या करना अब? उनका आश्रय नहीं करना है। समझ में आया? उनका आश्रय छोड़कर भगवान आत्मा जीवद्रव्य वस्तु ज्ञायक आनन्द का कायमी असली निज स्वभाव, अन्तर कायमी स्वभाव पर दृष्टि करने से, अनुभव करने से एक स्वरूप का ही अनुभव होता है। अनुभव का अर्थ कहीं द्रव्य का अनुभव नहीं होता। समझ में आया? परन्तु द्रव्य का आश्रय करके पर्याय में आनन्द का अनुभव हो, उसे यहाँ आत्मा का अनुभव कहा गया है। क्या कहा, समझ में आया? द्रव्य का अनुभव नहीं होता। द्रव्य तो त्रिकाली वस्तु है। अनुभव तो पर्याय का होता है। समझ में आया? यहाँ जीवद्रव्य के स्वभाव-समीप जाकर अनुभव करना, वह पर्याय हुई। जीवद्रव्य का स्वभाव, वह त्रिकाल हुआ। समझ में आया? जीवद्रव्य ज्ञायक आनन्द, वह त्रिकाल हुआ। समीप जाकर एकाकार होकर, यह पर्याय हुई। अन्तर एकाकार। एकाकार हुई, वह पर्याय हुई। द्रव्यस्वभाव त्रिकाल हुआ। समझ में आया?

फिर से, फिर से। कहते हैं, यह आत्मा वस्तु... वस्तु... वस्तु। यह वस्तु तो कायमी जीव अनन्त स्वभाव सम्पन्न। अब उस ओर की दृष्टि अनादि से नहीं। बाह्य दृष्टि है। कर्मबन्ध, कर्मबन्ध। मुझे कर्मबन्ध है और सम्बन्ध है, उसके सम्बन्ध की दृष्टि से देखो तो नौ विकल्प, नौ भेद उठते हैं। ज्ञायकभाव तो देखा नहीं। बन्ध की दृष्टि से देखो तो नौ तत्त्व उत्पन्न होते हैं, वे पर्याय में हैं। अब उनका लक्ष्य छोड़कर जीव त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव आनन्द है, वस्तु पहले ख्याल में आनी चाहिए कि यह वस्तु है, वह त्रिकाली अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर पदार्थ है और ज्ञायकस्वभाव से भरपूर आत्मा है। उसके समीप जाकर, यहाँ से लक्ष्य उठाकर, स्वभाव का लक्ष्य करने से जो एकाकार में अनुभव होता है,वह पर्याय है। वह नौ तत्त्व की पर्याय भिन्न हो गयी। एक स्वभाव-सन्मुख हुआ और अनुभव हुआ, वह निर्मल पर्याय हुई।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है अन्तर्मुहूर्त में, उपयोग अन्तर्मुहूर्त काम करता है न। एक समय में काम नहीं करता, अन्तर्मुहूर्त में काम करता है। उपयोग स्थूल है न! इसलिए अन्तर्मुहूर्त में उसे जो आनन्द का जो अनुभव हुआ, उसे पर्याय कहते हैं। आत्मा अखण्डानन्द नित्यानन्द महा पर्वत हो न, जैसे पत्थर पड़े हों और उसमें से पानी झरे, झरना कहते हैं न, झरना? उसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द, ज्ञानादि का महा पहाड़-पर्वत है। आहाहा! झरना, उसके समीप होकर उसमें से निकलता है। आनन्द निकलता है, शान्ति निकलती है। शान्ति अर्थात् चारित्र। आनन्द अर्थात् सुख। समझे? सम्यग्दर्शन पर्याय श्रद्धागुण में से निकली। चारित्र आदि, स्वच्छता आदि, प्रभुता आदि अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु के समीप जाकर अनुभव करने से... है न? **वे अभूतार्थ हैं...** कौन? वह वस्तु अभूतार्थ हो गयी—नौ के भेद पड़े, वे झूठे हो गये। अपनी दृष्टि में रहे नहीं। सूक्ष्म बात है। लोगों को (खबर नहीं)। यह मूल चीज़ है, यह तो मूल चीज़ है।

जीव वीतरागस्वरूप से प्रभु है। त्रिकाल वीतरागस्वरूप उसका है। वीतराग शब्द से निर्दोष स्वरूप। वीतराग शब्द से राग-द्वेषरहित स्वरूप। ऐसा ही त्रिकाली स्वरूप है। समझ में आया? उस त्रिकाली शुद्ध आनन्दस्वरूप के समीप जाकर, जो दूर था, नौ तत्त्व के भेद में स्वभाव की समीपता से दूर था। वह नौ तत्त्व के भेद का लक्ष्य छोड़कर अन्तर स्वभाव समीप आया और अनुभव किया, तो उसने आत्मा की अनुभूति की, उसमें एक आत्मा ही प्रतिभासित होता है, नौ प्रतिभासित नहीं होते। समझ में आया? आहाहा!

अनुभवरस में रोग न शोका लोकवाद सब मेट्या
केवल अचळ अनादि अबाधित, केवल अचळ अनादि अबाधित,
शिवशंकर का भेटा, अबधु अनुभव कळिका जागी,
मति मेरी आतमसुमरण लागी, मति मेरी आतमसुमरण लागी
अबधु अनुभव कळिका जागी।

क्या कहा? ...प्रसादजी! यह समझना, भाई! यह तो अन्दर की बातें हैं। 'अनुभवरस

में रोग न शोका, लोकवाद सब मेट्या।' दुनिया के झगड़े नौ तत्त्व के भेद और भेद उसमें कुछ रहा नहीं। निज द्रव्यस्वभाव के समीप जाकर एकाकार होकर अनुभव करने में आने पर 'अनुभवरस में रोग न शोका, लोकवाद सब मेट्या, केवल अनादि अबाधित अचल अबाधित' केवल अचल अनादि अबाधित द्रव्यस्वभाव ऐसे 'शिवशंकर का भेटा' भेंटा। समीप भेंट हो गयी। भेंटा करते हैं न। लो, भेंट। शशीभाई! यह शिवशंकर आया। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहते हैं कि स्वभाव समीप जाकर अनुभव करने पर नौ के भेद झूठे हैं। झूठे हैं अर्थात् अन्तर में दिखते नहीं। नौ, नौ पर्यायरूप है। वस्तु है ही नहीं दूसरी, ऐसा नहीं। है, परन्तु अन्तर अनुभव किये जाने पर एक में अनेक दिखते नहीं। अनेक पर्याय तो है। समझ में आया? वेदान्त की भाँति नहीं। एक ही अनुभव हुआ, दूसरी कोई वस्तु ही नहीं। ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

(वे जीव के एकाकार स्वरूप में नहीं हैं)... लो। भगवान चिदानन्द प्रभु पहले विकल्प से विचार किया कि यह आत्मा शुद्ध है, अखण्ड है, बुद्ध है, आनन्दकन्द है। पश्चात् ऐसे विकल्प को छोड़कर स्वभाव में लपेट एकाकार हो जाना, उसका नाम जीव का एकाकार अनुभव कहा जाता है। उसका नाम अनुभूति है। उसमें प्रतीति हुई, उसका नाम सम्यग्दर्शन। उसमें लीनता हुई, उसका नाम स्वरूपाचरण। उसमें आनन्द का स्वाद आया, वह अनुभूति अर्थात् आनन्द का स्वाद। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! मूल चीज़ पड़ी रही और बाहर से धमाल... धमाल... धमाल। छिलके कूटने में... फोतरा समझे? छिलका। छिलके खाँडने से क्या माल निकलता है? दाना है? छिलके में दाना है? पंच महाव्रत के विकल्प और वे सब छिलके हैं। कषाय की मन्दता पूजा, भक्ति, दया, दान के विकल्प, वे छिलके हैं। उन्हें कूटने से कुछ माल नहीं निकलता। आहाहा!

भगवान सच्चिदानन्द प्रभु सत् शाश्वत् आनन्दकन्द ध्रुव पर दृष्टि करने से अर्थात् उसके समीप जाने से अथवा दूर था तो उसमें एकाकार होने से जो अनुभव होता है तो अनुभव में एकाकार आत्मा ही भासित होता है, उसमें नौ भासित नहीं होते। इसलिए नौ को झूठा कहा गया है। समझ में आया? इसका अर्थ ऐसा नहीं कि एक अनुभव हुआ तो फिर जगत में अजीव रहे ही नहीं। उड़ गये, ऐसा नहीं है। समझ में आया? कर्म उड़

गये, शरीर है ही नहीं, ऐसा नहीं। चीज़ है। निज स्वरूप की अनुभूति में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो महान प्रयत्न माँगता है। समझ में आया?

भगवान आत्मा पूरा, जिन्हें भगवान यहाँ आत्मख्याति कहते हैं। आत्मख्याति है और आयेगी, अन्त में आयेगा **अनुभूति, वह आत्मख्याति (आत्मा की पहिचान) ही है,...** देखो! पीछे आयेगा अन्तिम लाईन में आयेंगे। वह अनुभूति ही आत्मख्याति है। बाद में आयेगा, अन्तिम लाईन है। समझ में आया? अन्तिम लाईन है। **जो यह अनुभूति है सो आत्मख्याति (आत्मा की पहिचान) ही है, और जो आत्मख्याति है सो सम्यग्दर्शन ही है।** अन्तिम दो पंक्ति के शब्द हैं। यह तो आयेगा। भाई! यह वस्तु तो ऐसी है, यह कोई अकेले पठन पढ़ ले, ऐसी वस्तु नहीं। समझ में आया? ग्यारह अंग पढ़ गया, नौ पूर्व पढ़ा, उसमें क्या हुआ? अनुभूति हुए बिना कोई आत्मा का कार्य कभी सिद्ध नहीं होता। आहाहा! और वह अनुभूति किस प्रकार से होती है, इसका लक्ष्य और ख्याल भी नहीं तो अनुभूति कैसे हो? श्रद्धा में ख्याल भी नहीं कि यह आत्मा अन्दर चिदानन्द प्रभु एक स्वरूप विराजमान है, उसका अनुभव करने से ही सम्यग्दर्शन और अनुभूति होती है। राग करने से और व्यवहार करते... करते... करते... और पर का लक्ष्य करते... करते अनुभूति होती है, ऐसी मान्यता से तो पर में ही रुक जाता है। अन्तर में आने के वीर्य की स्फुरणा नहीं होती। आहाहा! .... एकान्त कहते हैं। भगवान को कहो, बापू! भगवान को कहो कि तुम एकान्त कहते हो।

यहाँ तो भगवान प्रभु निज स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करता है, उसे भगवान सम्यग्दर्शन—आत्मख्याति—आत्मा की पहिचान कहा जाता है। समझ में आया? शास्त्र का ज्ञान आत्मा की पहिचान नहीं। आहाहा! सनातन अनादि काल की चीज़ वीतराग परमेश्वर के घर की चीज़ है। ऐसी चीज़ अन्यत्र कहीं नहीं तीन काल-तीन लोक में। पर्याय ही नहीं, भेद ही नहीं, अनन्त गुण नहीं, उसमें इस एक का अनुभव और अनेक रह जाते हैं, रहा कहाँ से?

अन्तर भगवान आत्मा निज शुद्ध चैतन्यस्वरूप शाश्वत् असली ध्रुव के समीप महिमा करके, भेद की महिमा माहात्म्य छोड़कर स्वभाव की महिमा उल्लसित वीर्य से,

उल्लसित वीर्य से, उल्लसित वीर्य से भगवान आत्मा में स्फुरणा होकर जाता है तो कहते हैं एकाकार जीव का अनुभव होता है, उसे यहाँ भूतार्थ कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए इन नव तत्त्वों में भूतार्थनय से एक जीव ही प्रकाशमान है।** समझ में आया? इसलिए नौ तत्त्व में तो भेदरहित अकेला आत्मा प्रकाशमान है। जानना... जानना... जानना... जानना... जानना-देखना अकेला स्वभाव ही प्रकाशमान है। यह बाहर से बात की। अब जरा अन्तर की बात करते हैं।

इसी प्रकार अन्तर्दृष्टि से देखा जाये तो... यहाँ से ज्ञायकभाव से लेना है। बाह्य दृष्टि से बन्धपर्याय से लिया था। भाई! बाह्यदृष्टि में बन्धपर्याय से लिया था। अन्तरदृष्टि में ज्ञायकभाव से लेते हैं। टीका, वह टीका है न परन्तु! क्या कहते हैं? **अन्तर्दृष्टि से देखा जाये तो ज्ञायकभाव जीव है...** ज्ञायकभाव जीव है। भाववान जीव, ज्ञायकभाव जीव। समझ में आया? ज्ञायकभाव जीव। अकेला जानन... जानन... जानन ज्ञायक त्रिकाल स्वभाव ध्रुव, जो शुभ-अशुभभावरूप कभी हुआ ही नहीं। जो भेद, गुणस्थानभेदरूप भी कभी हुआ नहीं। एक ज्ञायकभाव, एक ज्ञायकभाव, एक स्वभावभाव, एक ध्रुवभाव वह जीव ज्ञायकभाव।

और जीव के विकार का हेतु... निमित्त **अजीव है;...** विकार में विशेष भेद में निमित्त अजीव है। विशेष भेद में निमित्त अजीव है। **और पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष जिनके लक्षण हैं, ऐसे केवल जीव के विकार हैं...** पर्याय। क्या कहते हैं? केवल जीव की पर्याय-विशेष कार्य। कौन? शुभभाव पुण्य, अशुभ पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष वह विकार... समझ में आया? **ऐसे केवल जीव के विकार हैं...** कौन? पहले कहे वे। पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा, (बन्ध), मोक्ष जिनके लक्षण हैं। जीव की पर्याय में भेद है। अकेला ज्ञायकभाव है, उसे निमित्त भेदरूप अजीव है तो पर्याय में भेदरूप पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरारूप पर्याय हुई, वह जीव की पर्याय भेदरूप हुई। समझ में आया?

और पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष - ये विकारहेतु केवल अजीव हैं। यह निमित्त। पहले अपनी पर्याय में सात आये। ज्ञायकभाव है, वह

द्रव्य। उसमें अजीव निमित्त है। विशेष कार्य में भेदरूप होने में अजीव (निमित्त)। उसमें यहाँ पर्याय में भेद हुए, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, वह जीव की पर्याय और उसमें जो निमित्त हुआ, उसमें जो पर्याय है, वह अजीव की पर्याय। सूक्ष्म बात है।

फिर से कहते हैं, ऐसा का ऐसा नहीं (जाने) देंगे। देखो! इस गाथा से तो जीव का स्वरूप बतलाना है। ज्ञायकभाव जीव है, ज्ञायकभाव। तो कहते हैं, अन्तरदृष्टि से देखें, पहले बाह्य की बात की, बाह्य से देखें तो बन्ध की पर्याय से नौ तत्त्व भूत दिखाई देते हैं। और द्रव्य के स्वभाव का अनुभव करने से उसमें नौ तत्त्व भूतार्थ नहीं, अभूतार्थ हो गये। नौ अभूतार्थ हो गये। अब अन्तर से देखें तो ज्ञायकभाव है, जीव, जीव ज्ञायकभाव है। और उसके विशेष भेद में निमित्तकारण अजीव कर्म है। अजीव निमित्त है और अपनी पर्याय नैमित्तिक है। शुभ, अशुभ, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, वह नैमित्तिक पर्याय जीव की पर्याय नैमित्तिक है। समझ में आया? और अजीव की पर्याय, जैसे कि कर्म का उदय पुण्य में निमित्त, पाप में निमित्त, आस्रव में निमित्त, बन्ध में निमित्त, वह सब जड़ की पर्याय है। समझ में आया? वह **पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष - ये विकारहेतु केवल अजीव हैं।** केवल अजीव की पर्याय है। समझ में आया? फिर से।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्गणा की पर्याय। वह उदय की पर्याय। कर्म के उदय की जो पर्याय है न, उस पर्याय में जड़ की अवस्था के सात भेद पड़ गये। यहाँ भावपुण्य हुआ तो उस कर्म के उदय को अजीवपुण्य कहा। यहाँ भावपाप कहा तो कर्म के उदय को अजीवपाप कहा। भावास्रव हुआ तो उदय को अजीवआस्रव कहा। भावबन्ध हुआ तो अजीव को अजीवबन्ध कहा। यहाँ संवार्य पर्याय हुई तो उसके निमित्त को संवारक-करनेवाला कहा। निर्जरा हुई—शुद्धता हुई तो उसे निर्जरा करनेवाला कहा। यहाँ भावमोक्ष हुआ तो जो कर्म खिरे, उसे द्रव्यमोक्ष कहा। सात पर्यायें उसमें हुई और सात पर्यायें इसमें हुई। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु है, ऐसा बताते हैं। यह नहीं है—ऐसा नहीं। पर्यायभेद नहीं और कर्म के निमित्त में ऐसे भेद नहीं, ऐसा नहीं। है, व्यवहार। समझ में आया? ऐसा व्यवहार न माने तो व्यवहार से हटकर निश्चय में आना, वह कहाँ से आयेगा? अकेला आत्मा आत्मा करते हैं न सब? आत्म-अनुभव करो। परन्तु आत्मा क्या? पर्याय में क्या? और निमित्त में क्या दशा है? यहाँ नैमित्तिकभाव हुआ तो उसमें क्या दशा हुई? वह वस्तु है या नहीं? समझ में आया? अजीव भी है, कर्म के उदय की पर्याय है, तो उस पर्याय में ऐसे सात भेद पड़ जाते हैं। पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। अजीव की पर्याय में। और जीव की पर्याय में सात भेद हो जाते हैं, वे जीवभाव। पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष सात पर्यायें जीव में हुई, सात पर्यायें अजीव में हुई। ऐसा बताया। जरा सूक्ष्म बात है, भाई! तेरहवीं गाथा आयी है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध की अस्तित्वता है, ऐसा सिद्ध करना है। भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्ता-फर्ता का प्रश्न कहाँ है? यहाँ तो है इतना। है यह बतलाना है न! है, वस्तु का अभाव नहीं। करने का प्रश्न यहाँ नहीं। यहां तो ज्ञायकभाव एक स्वरूप है तो उसमें एक में सात पर्यायें क्यों पड़ी? कि सामने निमित्त है। निमित्त के लक्ष्य से उसमें भेद पड़ गये। सात पर्यायें। और निमित्त में भी उदय की पर्याय में सात भेद पड़े। यहाँ भाव हुए तो वहाँ अजीव (भेद पड़े)। यहाँ जीव हुए तो वहाँ अजीव (हुए)। जीवपर्याय को जीव कहा, अजीवपर्याय को अजीव कहा। ऐसी वस्तु है। आहाहा! समझ में आया? समझ में आता है? निमित्त-नैमित्तिक में सात-सात भेद हैं। समझ में आया? जैनदर्शन के अतिरिक्त ऐसी चीज़ कहीं होती नहीं है। कहीं हो सकती ही नहीं। कि अकेला शुद्ध है, शुद्ध है (ऐसा कहे)। ऐसा नहीं। अशुद्धता के सात भेद हैं और निमित्त में भी उसकी सात भेद की पर्याय का यहाँ आरोप आता है, ऐसे सात भेद हैं। उसके ऊपर की दृष्टि हटा दे, उसके ऊपर दृष्टि करनेयोग्य नहीं। समझ में आया? सेठ! यह तो बहुत ध्यान रखे तो समझ में आये, ऐसी चीज़ है। आहाहा! देखो तो सही,

टीका! अमृतचन्द्राचार्य कितना सिद्ध करते हैं! आहाहा! गजब! मुनि की दशा आनन्द का अनुभव तो लेते हैं। परन्तु एक विकल्प आया और क्षयोपशम की दशा में कैसी शास्त्र की रचना हो गयी! उसमें निमित्त ज्ञान पड़ा और शास्त्र की पर्याय स्वयं से रच गयी। भगवान! सुन तो सही।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भाव उसमें है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो भगवान आचार्य दो बातें सिद्ध करते हैं। एक तो ज्ञायकभाव जीव है। उसमें सात भेद हैं, वह भी सिद्ध करते हैं। नौ सिद्ध करना है न! दो तो द्रव्य है। दो तो द्रव्य है। जीव और अजीव तो दो द्रव्य है। अब बीच में सात पर्यायें (रहीं)। तो सात पर्यायों को सिद्ध करना है। दो द्रव्य तो है। एक जीवद्रव्य-ज्ञायकभाव। अजीवद्रव्य कर्म आदि। अन्दर कर्म। पर्याय में भेद पड़े। पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा (ऐसे) भेद पड़े। वे तो **केवल जीव के विकार हैं...** देखो! विकार अर्थात् विशेष कार्य। देखो! **पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष जिनके लक्षण हैं ऐसे केवल जीव के विकार हैं...** केवल जीव का विकार। पर का नहीं, कर्म का नहीं, निमित्त का नहीं। भाई! समझ में आया? जिनेश्वरदासजी! जीव की अपनी पर्याय का भेद। अपने में पर्याय विकार है। केवल जीव का, पर का नहीं। आहाहा! पर्याय भी स्वतन्त्र सिद्ध करते हैं। पर्याय भी स्वतन्त्र। ज्ञायक तो त्रिकाल है, परन्तु पर्याय में भेद पड़े, वे केवल जीव के भेद हैं। जीव की पर्याय के भेद हैं, जीव की पर्याय के भाव हैं। आहाहा! समझ में आया?

(अब) सामने अजीव। **और पुण्य,...** यहाँ भावपुण्य-जीवपुण्य तो वहाँ अजीवपुण्य। भावपाप तो अजीवपाप। भावआस्रव तो अजीवआस्रव। भावसंवर तो अजीवसंवर। भावनिर्जरा तो अजीवनिर्जरा। भावबन्ध अजीवबन्ध। भावमोक्ष तो अजीवमोक्ष। **ये विकारहेतु केवल अजीव हैं।** केवल अजीव के हैं। केवल अजीव के हैं। भाषा तो देखो! निमित्त में सात भेद केवल अजीव के हैं, ये सात भेद केवल जीव के हैं। भेद सिद्ध किये। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं है ? सिद्ध तो हुए। व्यवहार नहीं ? व्यवहार का विषय नहीं ? आश्रय करनेयोग्य नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मानते हैं न। यह तो सब मानते हैं न। व्यवहार है। व्यवहार न हो तो निषेध किसका करना ? है, उसका निषेध करना या न हो, उसका निषेध करना ? निषेध किसका होता है ? पर्याय में सात भेद हैं। एकाकार में सात भेद का अभाव होता है। समझ में आया ? आहाहा! थोड़ा भी जैसा है, वैसा ज्ञान और रुचि हो जाये न, तो स्वभाव-सन्मुख का वीर्य स्फुरित हो। वरना स्वभाव-सन्मुख का वीर्य स्फुरित होगा नहीं। जैसी चीज़ है, वैसा ज्ञान यथार्थ न हो तो आत्मा जवाब नहीं देगा। खिलेगा नहीं। समझ में आया ?

इसी प्रकार अन्तर्दृष्टि से देखा जाये तो ज्ञायकभाव जीव है और जीव के विकार का हेतु... विशेष कार्य का हेतु **अजीव है...** निमित्त, निमित्त। **और पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष...** जिनके लक्षण है, यह शब्द इसमें पड़ा रहा है, हों! है इसमें ? मोक्ष जिनके लक्षण है, ऐसा चाहिए। है ? इसमें लिखा है। है इसमें कहाँ ? जिनके लक्षण, ऐसा चाहिए। पहले में है। बन्ध तथा मोक्ष जिनके लक्षण हैं। है ? छपा हुआ है ? इसमें नहीं है। केवल जीव के विकार हैं, उसमें जिनके लक्षण हैं, ऐसा है। इसमें छपा नहीं है। इसमें नहीं। हिन्दी में नहीं। रह गया है। इसमें रह गया है। फिर सुधारा है। देखो, क्या कहा, समझ में आया ?

इस अनुभूति की बात में क्या भेद है, वह बताते हैं। भगवान आत्मा ज्ञायकभाव होने पर भी, जीव स्वभाव ज्ञायक होने पर भी। होने पर कहते हैं न ? होने पर भी, अपनी पर्याय में सात प्रकार के भेद उत्पन्न होते हैं। भावपुण्य, भावपाप, भावआस्रव, भावबन्ध, भावसंवर, भावनिर्जरा, भावमोक्ष। और सामने कर्म का उदय है... क्योंकि भेद पड़ा तो एक में भेद नहीं पड़ते। निमित्त का आश्रय स्वयं ने किया, हों! उसने कराया नहीं। आश्रय करने से सात भेद उत्पन्न हुए। और सात भेद जैसे भाव में है, वैसे उदय में भी सात भेद की अस्तित्वता है। अजीवपुण्य, अजीवआस्रव, अजीवपाप, अजीवबन्ध, अजीवसंवर, अजीवनिर्जरा, अजीवमोक्ष। आहाहा! समझ में आया ? जीव अजीव दो

हैं। उसमें जीव ज्ञायकभाव त्रिकाल। उसमें सात भेद पर्याय। अजीवद्रव्य त्रिकाल। उसकी पर्याय उदय में सात प्रकार की। कर्म के उदय की पर्याय में सात प्रकार।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो त्रिकाली पारिणामिकभाव ज्ञायकभाव।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, उपयोग नहीं। त्रिकाली ज्ञायकभाव।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकार होता है। इनकार करते हैं न! पर्याय में हुआ, ऐसा कहते हैं न। उसकी पर्याय तो... त्रिकाल ज्ञायकभाव की पर्याय नहीं। वर्तमान पर्याय भिन्न हुई। ध्रुव तो कायम रहा। उत्पाद में हुई।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणति। यही बात कहते हैं न! पर्याय की बात है न! परिणति। ध्रुव तो कायम है। पर्याय में सात के उत्पाद की योग्यता न हो तो कहाँ से उत्पाद आयेगा? और निमित्त में भी यदि योग्यता न हो तो उसमें आरोप देने की योग्यता कहाँ से आयेगी? उसमें भी अजीवपुण्य, अजीवपाप, अजीवसंवर की योग्यता है। निमित्तरूप से, हों! आहाहा! समझ में आया? पर्याय विकार है, ऐसा सिद्ध करते हैं। भेद हैं, वह सिद्ध करते हैं। परन्तु वह भेद आश्रय करनेयोग्य नहीं। ध्रुव आश्रय करनेयोग्य है। समझ में आया?

चीज़ ऐसी है कि अन्तर में वस्तु ज्ञायक स्वयं होने पर भी, यदि पर्याय में भेद न हो तो संसार किसका? संसार कहीं जड़ में नहीं। संसार दोष है। दोष तो अपनी पर्याय में है। तो पर्याय में सात भेद के विकल्प उठते हैं, वे दोष हैं। और निमित्त चीज़ सामने है। अकेले अपने स्वभाव के लक्ष्य से भेद नहीं पड़ते, ऐसा कहते हैं। पर के लक्ष्य से भेद पड़ते हैं। लक्ष्य करता है जीव, परन्तु पर का लक्ष्य करता है तो लक्ष्य एक चीज़ है। चीज़ में सात प्रकार हैं। यहाँ सात प्रकार हैं। सात, सातरूप से भूतार्थ हैं। सात, सातरूप से भूतार्थ हैं। देखो!

ऐसे यह नव तत्त्व, जीवद्रव्य के स्वभाव को छोड़कर,... देखो! विकल्प आया, मैं जीव हूँ और यह संवर आदि भेद। विकल्प की बात है न! यहाँ संवर, निर्जरा,... देखो! जीव अजीव दो द्रव्य। उनकी सात पर्यायें। वहाँ सात और यहाँ सात। **ऐसे यह नव तत्त्व, जीवद्रव्य के स्वभाव को छोड़कर, स्वयं और पर...** देखो! स्वयं अर्थात् वह पर्याय और पर निमित्त कर्म। **जिनके कारण हैं, ऐसे एक द्रव्य की पर्यायों के रूप में अनुभव करने पर...** मानो एक ही द्रव्य के सात पर्यायभेद हैं, ऐसा अनुभव करने में **भूतार्थ है...** पर्याय में वे हैं। पर्याय में वे हैं, ऐसा भूतार्थ। पर्याय में भेद हैं, ऐसा भूतार्थ। भूतार्थ अर्थात् त्रिकाली भूतार्थ की यह बात नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : जरा-सा कठिन तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन नहीं। अपने कुछ बहुत ऐसा सूक्ष्म नहीं होता। भाषा कहीं बहुत ऐसी कठिन नहीं आती। विषय जरा सूक्ष्म है।

यहाँ तो नौ सिद्ध करना है और उसमें से निकालकर अकेले आत्मा का अनुभव कराना है। समझ में आया? नौ न हो तो नौ में से एक निकालने का कहाँ से होगा? नौ ही कोई उड़ा दे तो एक भी सिद्ध नहीं होगा। समझ में आया? पंचाध्यायी में तो यह बहुत लिया है। इसमें से सब लिया है पंचाध्यायी में। भूतार्थ आश्रिता १८९ गाथा में है, पंचाध्यायी में। भूतार्थ आश्रिता। नौ में से एक निकालते हैं, एक निकालते हैं। १८९। एक आठ और नौ। दूसरे भाग (अध्याय) में, हों! दूसरा भाग (अध्याय) है न।

तदुद्देश्यो यथा जीधः स्यादजीवस्तथास्रवः।
बन्धः स्यात्संवरश्चापि निर्जरा मोक्ष इत्यपि॥१८८॥

सप्तैते पुण्यपापाभ्यां पदार्थास्ते नव स्मृताः।
सन्ति सद्दर्शनस्योच्चैर्विषया भूतार्थमाश्रिताः॥१८९॥

इसमें से सब लिया है। समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय। समझ में आया? इसमें से सब लिया है। घर का उन्होंने कुछ नहीं कहा। बहुत बात सिद्ध की है। परन्तु उसका कुछ मानते नहीं।

मुमुक्षु : घर का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : घर का नहीं है। पण्डित के घर का नहीं। शास्त्र में से है। तुम भी पण्डित हो। भाई ने जवाब दिया था। यह पण्डित का है। तो तुम भी पण्डित हो तो तुम्हारा भी मान्य नहीं। यह तो पण्डित अपने घर का कुछ कहते नहीं। शास्त्र का आधार लेकर अपनी दृष्टि के साथ में तुलना करके कहते हैं। समझ में आया? एक-एक शब्द में बहुत सन्धि करके कहते हैं। देखो! क्या कहा?

ऐसे यह नव तत्त्व,... नौ तत्त्व हैं, ऐसा सिद्ध किया। **जीवद्रव्य के स्वभाव को छोड़कर,...** अकेला ज्ञायकभाव ध्रुवभाव स्वभाव को छोड़कर **स्वयं...** अर्थात् अपनी पर्याय में **और पर जिनके कारण हैं, ऐसे एक द्रव्य की पर्यायों के रूप में...** मानो एक द्रव्य की सात पर्याय हों, सातों ही पर्यायें हों। ऐसा **अनुभव करने पर भूतार्थ हैं...** नौ विकल्प हैं। जीव का विकल्प, अजीव, पुण्य-पाप ऐसे। **सर्व काल में अस्खलित एक जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर...** देखो! भेद निकाल दिये। **सर्व काल में अस्खलित...** ध्रुव एक... एक... एक शुद्ध द्रव्य के स्वभाव। शुद्ध द्रव्य के **स्वभाव के समीप जाकर...** एकाकार होकर **अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं-असत्यार्थ हैं।** आहाहा! आचार्यों ने भी काम कितने किये हैं! गजब काम! जंगल में रहकर, जंगल में! आहाहा! आत्मध्यान आनन्द में मस्त।

मुमुक्षु : सर्वज्ञ होने का मार्ग....

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वज्ञ का मार्ग है और सर्वज्ञ ने कहा और सर्वज्ञ होने की पद्धति यह है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक ही सर्वज्ञस्वभाव है। ज्ञ स्वभाव कहो या ज्ञ अर्थात् पूर्ण ज्ञ, पूर्ण ज्ञ अर्थात् सर्वज्ञ। सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा है, उसमें एकाकार होकर सम्यग्दर्शन का अनुभव हुआ तो सम्यग्दर्शन में प्रतीति हुई कि पूरा आत्मा केवलज्ञानमय है। पूरा आत्मा आनन्दमय है। ऐसा अनुभूति में आनन्द आने से पूरा आत्मा अतीन्द्रिय है, ऐसी प्रतीति हो जाती है। आहाहा! समझ में आया?

सर्व काल में अस्खलित... सात पर्यायें तो स्खलित हो गयी। यह तो **सर्व काल में अस्खलित...** ध्रुव। ध्रुव ज्ञायक... ज्ञायक... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... परमस्वभावभाव, जिसे यहाँ ज्ञायक कहा। जिसे परमपारिणामिक कहो। परन्तु

यहाँ ज्ञायक क्यों कहा ? पारिणामिकभाव तो जड़ में भी है। तो यहाँ ज्ञायकभाव कहा। क्योंकि पारिणामिक तो छहों द्रव्य पारिणामिकभाव से हैं। परन्तु पर से भिन्न बतलाने के लिये ज्ञायकभाव कहा। जाननस्वभाव पारिणामिक, जानन स्वभाव त्रिकाल ध्रुव। **सर्व काल में अस्खलित...** कभी स्खलित हुआ नहीं। पर्याय से भले हो, वस्तु तो जैसी है वैसी की वैसी है। वैसी की वैसी अनादि है। एक शुद्ध द्रव्य। एक भगवान आत्मा के स्वभाव के समीप जाकर, स्वभाव में एकाकार होकर। अनुभव, वह पर्याय हुई। एक जीवद्रव्यस्वभाव वह त्रिकाल हुआ। एक जीवद्रव्यस्वभाव त्रिकाल हुआ। एकाकार होकर अनुभव, वह पर्याय हुई। वह अनुभूति पर्याय हुई। समझ में आया ? शुद्ध द्रव्यस्वभाव ध्रुव अस्खलित एकरूप उसमें एकाकार हुआ तो ये नौ अभूतार्थ हो गये। वे एकाकार में दिखते नहीं। समझ में आया ? वे नौ अभूतार्थ हैं।

इसलिए इन नौ तत्त्वों में भूतार्थनय से एक जीव ही प्रकाशमान है। 'भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च'। यह नौ तत्त्व में अकेला ज्ञायकभाव **एक जीव ही प्रकाशमान है।** सदा त्रिकाल ज्ञायकभाव रहा, ऐसा अनुभव हुआ तो ज्ञायक ही प्रकाशमान रहा। जानन-देखन स्वभाव रह गया। बस, समाप्त। भेद का जाननेवाला। भेद है, उनका जाननेवाला, स्व का जाननेवाला। **एक जीव ही प्रकाशमान है।** कहो, समझ में आया ? हो गया समय, नहीं ?

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

भाद्र शुक्ल १०, शनिवार, दिनांक - २४-०९-१९६६
गाथा-१३, श्लोक-८, प्रवचन - ५७

.... पहली दृष्टि और फिर **तृण का छेदमात्र भी न चाहे...** ऐसी इच्छा निरोध में स्थिरता करना, उसका नाम संयम कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... नहीं रखना, ऐसा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : रखने-रखने का है कहाँ? मुनि को तृण है ही नहीं। परन्तु दूसरे का तृण है, उसका भी मैं छेद कर सकता हूँ, ऐसी दृष्टि तो है नहीं, परन्तु अस्थिरता में तृण का छेद करने का विकल्प भी नहीं।

श्रीमद् राजचन्द्र एक पत्र में लिखते हैं, दूसरी भाषा से-गूढ़ भाषा से। हमारे में तिनके के दो टुकड़े करने की भी सामर्थ्य नहीं। एक पत्र में है। तिनके के दो टुकड़े करने की सामर्थ्य नहीं। ऐसा कहकर कहते हैं कि आत्मा जड़ की पर्याय का कर्ता नहीं। एक तृण के दो टुकड़े होना, वह अपना कार्य नहीं। समझ में आया? ऐसी इच्छा कि मैं कर सकता हूँ, वह तो मिथ्यादृष्टि है। परन्तु यह दृष्टि छूट जाने के बाद भी तृण के दो टुकड़े की वृत्ति जो है—अस्थिरता है, उसे भी छोड़कर स्थिरता करना, उसका नाम संयमभाव है। यहाँ आचार्य यह कहते हैं। संयमभाव समझ में आता है?

यह सब बड़ा-बड़ा करते हैं न? कौन करता है? एक आँख की पलक फिरकती है, वह अपने से नहीं। समझ में आया? पांपण कहते हैं न? क्या कहते हैं? (पलक) ऐसे फिरकना वह अपने आधीन नहीं है। वह तो पुद्गल की पर्याय है। क्षेत्रान्तर होना, ऊँचा-नीचा होना, वह तो पुद्गल की क्षेत्रान्तर होने की सामर्थ्य से होती है। आत्मा उसे नहीं कर सकता। आहाहा! कठिन बात, भाई! अनन्त शक्तिवान है न? अनन्त शक्तिवान है या नहीं आत्मा? तो पर का कर सकता है या नहीं? अपने में अनन्त शक्ति से राग का

अभाव करके वीतरागता प्राप्त कर सकता है, पर में किंचित् भी नहीं कर सकता। एक तिनके के दो टुकड़े भी तीन काल-तीन लोक में। समझ में आया? ऐसी प्रथम अपनी दृष्टि में सम्यक्ता आयी है, पश्चात् तृण का छेद करने की वृत्ति भी नहीं। वृत्ति नहीं, यह बात है यहाँ। संयम है या नहीं? दूसरे को दुःख देना, वह तो नहीं परन्तु इतनी इच्छा भी नहीं। ऐसी वृत्ति के अभाव का नाम सम्यग्दर्शनसहित संयम कहा जाता है। समझ में आया? संयम की व्याख्या यह साधारण मानते हैं कि लो, यह वस्त्र / कपड़े छोड़ दिये, नग्न हो गये, वह संयम। ऐसा संयम है ही नहीं।

अपने शुद्ध आनन्द की रक्षा। **'जीवरक्खणपरो।'** परन्तु निज शुद्ध चैतन्य की अन्दर राग की उत्पत्ति न होना और अहिंसा स्वभाव वीतराग की पर्याय की उत्पत्ति होना, उसका नाम अहिंसारूप संयमभाव है। समझ में आया? पर की दया का भाव विकल्प उठता है, वह भी राग है। वह राग वास्तव में तो हिंसा है। संयम नहीं। भाई! स्पष्टीकरण करते हैं। उतना राग दोष है। समझ में आया? इच्छामात्र जो होती है, सब दुःखदायक है। शुभ इच्छा हो या अशुभ इच्छा हो, सब दुःखदायक है। व्रत के परिणाम हों या दया के परिणाम हों, इच्छा दुःखदायी है। उस दुःखदायी वृत्ति का छेद करके स्वरूप में एकाग्रता होना, उसका नाम परमात्मा संयम कहते हैं। यह छठवें दिन की बात हुई। चार दिन बाकी रहे।

अपने चलते हैं नौ तत्त्व। कहाँ आया? अन्तिम दो लाईनें रही, देखो! जिनेश्वरदासजी कहते हैं न अनुभूति। देखो! यह अनुभूति शब्द इसमें आया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! चौथे गुणस्थान की बात है। यह चौथे की बात है। समझ में आया? देखो! न्याय से समझो। न्याय से कहा जाता है। देखो! यहाँ आया है। भावार्थ के ऊपर चौथी लाईन है। भावार्थ है न? उसके ऊपर चौथी।

इस प्रकार यह, एकत्वरूप से प्रकाशित होता हुआ शुद्धनयरूप से अनुभव किया जाता है। क्या कहते हैं? देखो! **इस प्रकार यह...** इस प्रकार यह, इसका अर्थ— नौ तत्त्व का भेद जो विकल्प है, निज शुद्ध अन्तःतत्त्व से अन्तःतत्त्व जो है, उसमें से

बहिर्तत्त्व के ऊपर लक्ष्य जाने से उसमें विकल्प उत्पन्न होते हैं। समझ में आया? अन्त:तत्त्व जो है, अन्त:तत्त्व है, उसकी दृष्टि करने से, शुद्धनय का आदर करने से अकेला चैतन्य एकत्व में प्रकाशमान होता है। देखो! **प्रकाशित होता हुआ शुद्धनयरूप से अनुभव किया जाता है।** परन्तु बाह्य लक्ष्य में आता है, अन्तर्मुख नहीं होकर बहिर् बन्ध पर्याय का लक्ष्य करने से अन्दर नौ तत्त्व के विकल्प की उत्पत्ति होती है।

वस्तु है, वह अन्तर्मुख है। समझ में आया? चैतन्यबिम्ब, अनन्त गुण का पिण्ड, अन्तर्मुख है। अन्तर्मुख दृष्टि करने से शुद्धनय से देखने में आवे तो अकेला आत्मा प्रकाशमान दिखाई देता है। इसका नाम भूतार्थदृष्टि से आत्मा जाना और इसका नाम सम्यग्दर्शन और अनुभूति कहते हैं। समझ में आया? **इस प्रकार यह, एकत्वरूप से प्रकाशित होता हुआ...** बहिर्दृष्टि में नौ तत्त्व के अन्तर्मुख स्वभाव के भाव को छोड़कर अकेले परसन्मुख के लक्ष्य से जीव, अजीव, पुण्य-पाप नौ तत्त्व के विकल्प की वृत्ति जो उत्पन्न होती थी, उसका भाव तो नौ तत्त्व का अनुभव, एकान्त उनका ही अनुभव, वह तो मिथ्यात्व है। उसमें से एकस्वरूप चिदानन्द प्रभु ज्ञायक प्रकाशमान अन्तर्मुख दृष्टि करने से **एकत्वरूप से प्रकाशित होता हुआ...** एक स्वरूप। वे नौ भेद पड़ते थे। बहिर्मुख दृष्टि में नौ के विकल्प उत्पन्न होते थे, वे अन्तर्मुख स्वभाव की दृष्टि करने से वह **एकत्वरूप प्रकाशित होता हुआ...** ओहो! **शुद्धनयरूप से अनुभव में आता है।** शुद्धनय का अर्थ ध्रुव स्वभाव चैतन्यमूर्ति ज्ञायक का अन्तर्मुख (होकर) अन्तर आश्रय करके अनुभव किया जाता है।

और जो यह अनुभूति है... देखो! अनुभव किया जाता है। आहाहा! चैतन्यस्वरूप बहिर्मुख पर्याय का लक्ष्य जो बहिर्मुख था, उसमें नौ तत्त्व के विकल्प उठते थे। वह तो अनादि की दशा है। उसमें से एकत्व, नौ में से भिन्न पाड़कर एकत्व चैतन्यप्रकाश में एकत्व प्राप्त करके अनुभव होता है, उस अनुभव को अनुभूति कहते हैं। ओहो! समझ में आया? **सो आत्मख्याति (आत्मा की पहिचान) ही है,...** इस टीका का नाम है आत्मप्रसिद्धि। टीका का नाम ही अमृतचन्द्राचार्य महाराज ने आत्मख्याति दिया है। यह आत्मप्रसिद्धि हुई। एकरूप चैतन्यद्रव्य की ओर अन्तर्मुख दृष्टि करने से एकरूप प्रतिभास

होकर जो अनुभव हुआ, उसका नाम आत्मा की प्रसिद्धि हुई। शुद्ध आनन्दकन्द एकरूप है, ऐसा पर्याय में अनुभव हुआ तो आत्मा की प्रसिद्धि हुई। गजब बात, भाई! समझ में आया?

अनुभूति कहो, अनुभव कहो, शुद्धनय अनुसार दृष्टि कहो या आत्मख्याति कहो। यह चौथे गुणस्थान की बात है। समझ में आया? वस्तु एक है या नहीं? वस्तु एक है या नहीं? अनन्त गुणरूप एक है या नहीं? तो उसकी एकरूप दृष्टि होने से, एकरूप होने से प्रसिद्धि आत्मा की शुद्ध चिदानन्द है, ऐसा पर्याय में अनुभव हुआ। वह अनुभव हुआ कि यह आत्मा है, ऐसी प्रतीति हुई, उसका नाम सम्यग्दर्शन, अनुभूति, अनुभव कहा जाता है। स्वसंवेदन कहा जाता है। निर्विकल्प समाधि उसे कहा जाता है। उसे भाव मति-श्रुतज्ञान कहा जाता है, उसे वीतरागी अवस्था कहा जाता है। ... बहुत शब्द हैं। द्रव्यसंग्रह में बहुत लिये हैं। समझ में आया? कितने ही लिये हैं। ६८ या इतने बोल अनुभूति के लिये हैं। समझ में आया? द्रव्यसंग्रह नहीं होगी। नहीं। टीका में लिये हैं। द्रव्यसंग्रह में हैं। अनुभूति किसे-किसे कहना, उसके बहुत बोल हैं। यहाँ पुस्तक नहीं है। समझ में आया? द्रव्यसंग्रह है न? द्रव्यसंग्रह। उसमें पीछे है।

यहाँ कहते हैं, यह तो मूल बात है। इसने कभी यह दृष्टि की ही नहीं। और किस प्रकार से दृष्टि करना, इसकी विधि की पद्धति भी समझ में नहीं आयी। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण एकरूप शुद्ध है। बाह्य दृष्टि में तो पर्याय में नौ भेद उत्पन्न होते हैं, वे आत्मा नहीं, वे तो अनात्मा हैं। नौ के भेद तो अनात्मा हैं। समझ में आया? आत्मा तो नौ प्रकार के विकल्प के अनुभव की दृष्टि छोड़कर अन्तर शुद्धनय द्वारा अन्तर स्वभाव की एकता को पकड़कर जो अनुभव किया जाता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन, अनुभव और आत्मख्याति कहा जाता है। समझ में आया? यह चौथे गुणस्थान से आत्मा की प्रसिद्धि का डंका बजता है। मैं आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द हूँ, ऐसा पर्याय में अनुभव में आया। मैं विकाररूप हूँ या भेदरूप हूँ या निमित्त के संग में हूँ, ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

वस्तु है न? वस्तु। वस्तु एक समय में पूर्ण एकरूप शुद्ध तत्त्व है। तत्त्व है या

नहीं? पदार्थ है या नहीं? अकेला शीतल शान्तरस का कन्द है या नहीं? 'शुद्ध चेतनासिन्धु हमारो रूप है'। शुद्ध चेतना, शुद्ध चेतना। अकेला आनन्द का सागर आत्मा, उस ओर अन्तर्मुख होकर शुद्धनय, वह वस्तु स्वरूप ही शुद्धनय अथवा ज्ञान का अंश, उस ओर जाये, वह शुद्धनय, उसमें अनुभव होता है। एकपना प्रकाशित होता है, नौ नहीं परन्तु एकपना प्रकाशित होता है। आहाहा! समझ में आया?

और जो आत्मख्याति है, सो सम्यग्दर्शन ही है। देखो! आत्माख्याति तो ज्ञान की पर्याय में प्रसिद्धि हुई। अनुभूति के साथ प्रतीति हुई तो उसे ही सम्यग्दर्शन कह दिया। समझ में आया? सम्यग्दर्शन है तो श्रद्धागुण की पर्याय। और आत्मख्याति अनुभूति है, वह ज्ञान की पर्याय है। परन्तु ज्ञान अनुभूति हुई, चेतना का भान (हुआ कि) यह शुद्ध है, स्वरूप-सन्मुख ढलकर जो अनुभूति (हुई), उसे ही यहाँ सम्यग्दर्शन कहा। समझ में आया? क्योंकि आत्मअनुभूति और सम्यग्दर्शन का एक समय में अविनाभाव है। समझ में आया? कहा था न? उसके (अनुभूति के) नाम?

परम ब्रह्मस्वरूप, परम विष्णुस्वरूप, परम शिवस्वरूप। यह पर्याय को, हों! सब कहते हैं। परम बुद्धस्वरूप, परम निजस्वरूप। समझे? स्वसंवेदनज्ञान, परम तत्त्वज्ञान, शुद्धात्मा का दर्शन। वही उत्कृष्ट अवस्थारूप है। परमात्मा के दर्शन, परम तत्त्वज्ञान, शुद्धात्म ज्ञान, ध्यान, योग, शुद्ध पारिणामिकभाव है, उस रूप है, पारिणामिक ध्यान में पर्याय आयी, हों! ध्यानभावस्वरूप, शुद्धचारित्र है, अन्तरंग तत्त्व है, ऐसे-ऐसे बहुत बोल हैं। बहुत बोल हैं। समझ में आया? ६५ हैं। वही परम समरसीभाव है। अन्त में लिया है। टीका में ६५ बोल लिये हैं। द्रव्यसंग्रह ५६ गाथा। ५६ गाथा में लिया है। आचार्य ने .... बहुत बात स्पष्ट की है। यह श्रुतज्ञान को कहा है, हों! समझे? उसे आत्मप्रतीति कहो, शुद्ध आत्मा की अनुभूति कहो, परमज्योति कहो, संविति कहो, निज आत्मा की प्राप्ति कहो, संविति अर्थात् साक्षात्कार कहो, निज पदार्थ की प्राप्ति कहो, समाधि कहो, परमानन्द कहो, नित्य आनन्द कहो, स्वभाव उत्पन्न हुआ, सदानन्द कहो, सहजानन्द कहो। समझे? भावश्रुत कहो, यह परमस्वाध्याय कहो। आहाहा! समझ में आया? शुद्ध चैतन्य एकरूप की अन्तरदृष्टि करके अनुभव करना, वही परम स्वाध्याय है। आहाहा! शास्त्र की स्वाध्याय है, वह तो विकल्प है। आहाहा! समझ में आया?

निश्चय मोक्ष का उपाय है, एकाग्र चिन्ता निरोध है, परम ज्ञान शुद्धउपयोग। देखो! शुद्धउपयोग कहा। चौथे में शुद्धउपयोग है। यहाँ से शुरु हो गया। कायम नहीं रहता। अनुभव के काल में तो शुद्धउपयोग है। अन्तर में ज्ञाता के ऊपर की दृष्टि से भेद दृष्टि छूट गयी, अभेद का अनुभव हुआ, वह शुद्धउपयोग है। समझ में आया? देखो! परमयोग है, भूतार्थ है, परमार्थ है, ज्ञान-दर्शन-चारित्र-वीर्य वास्तविक आचार है। वास्तविक आचार यह है। समयसार है, अध्यात्मसार है, निश्चय छह आवश्यक है, अभेदरत्नत्रय है, वीतराग सामायिक है, परमशान्त, मंगल इत्यादि... इत्यादि। बहुत बोल लिये हैं। ओहो! समझ में आया?

भावनारूप है, अमृतरूप है, परम अद्वैत है। धर्मध्यान है, वह शुक्लध्यान है। स्थिरता आगे बढ़ गयी तो शुक्लध्यान है। शास्त्र का मूल स्वाध्याय घट गया। और स्वाध्याय मूल जो अध्यात्म स्वाध्याय होना चाहिए, वह घट गया। बाहर के दूसरे स्वाध्याय में तत्त्वज्ञान की इतनी स्पष्टता नहीं। दूसरे में कोई पुण्य की बात बतावे चरणानुयोग में, कथानुयोग में... यह बात भगवान आत्मा द्रव्यानुयोग में वस्तु द्रव्य जो कहा, वैसा अन्दर में बोध हुए बिना कभी सम्यग्दर्शन-अनुभूति होती नहीं। और इसके अतिरिक्त कभी उसे चारित्र, व्रत, तप, नियम सच्चे होते नहीं।

मुमुक्षु : इस काल में ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इस काल में, तीनों कालों में होता नहीं। 'एक होय तीन काल में (परमारथ का पंथ)।' हल्का काल अर्थात्? केवलज्ञान के लिये हल्का काल। ऐसा लिखा है मोक्षमार्गप्रकाशक में। यह प्रश्न उठा है कि इस काल में नहीं होता। ऐसा ही प्रश्न वहाँ है। मोक्षमार्गप्रकाशक। यह काल नीच है, हीन है तो केवलज्ञान के लिये हीन है। क्या स्वरूप के अनुभव के लिये हीन है? उसमें लिखा है। कहाँ लिखा है, वह कुछ खबर नहीं। समझ में आया? कहीं ध्यान करने की बात है, भाई! सातवें में होगा। दोष निकाले हैं उसमें होगा। द्रव्यानुयोग के दोष (द्रव्यानुयोग में दोष कल्पना का निराकरण) निकाले वहाँ होगा। देखो! यहाँ है, यह रहा, लो। यह शब्द भी आये, देखो! **शंका :- यह काल निकृष्ट (हल्का) है, इसलिए उत्कृष्ट अध्यात्म के उपदेश की मुख्यता**

करनायोग्य नहीं। टोडरमलजी ने तो बहुत बात ली है।

समाधान :- यह काल साक्षात् मोक्ष नहीं होने की अपेक्षा से निकृष्ट है परन्तु आत्मानुभवनादिक सम्यक्त्वादिक होने की इस काल में मना नहीं है,... सबका कन्धा पकड़ा है। वैद्य है न। सबकी नाड़ी पकड़ी है। ना पाड़ते हैं। २९५ पृष्ठ गुजराती में है। **इसलिए आत्मानुभवनादिक के लिये द्रव्यानुयोग का अभ्यास अवश्य करना।** समझ में आया? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का दृष्टान्त (उद्धरण) दिया है। '**अज्ज वि तिरयणसुद्धा**' भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, **आज भी त्रिरत्न द्वारा शुद्ध जीव आत्मा को ध्याकर स्वर्ग लोक में अथवा लोकान्तिक में देवपना प्राप्त करते हैं।** कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, गाथा-७७। समझ में आया? अष्टपाहुड़ में मोक्षपाहुड़ में। मोक्षपाहुड़ में गाथा ७७ में कहा, '**अज्ज वि तिरयणसुद्धा**' तीन रत्न शुद्ध अभी भी होते हैं। केवलज्ञान नहीं होता। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की मनाही है? समझ में आया? तो निकृष्ट निकृष्ट करके ऐसे द्रव्यानुयोग का अभ्यास और अनुभव छोड़ देना कि नहीं होगा, नहीं होगा, क्या है? तुझे विषयकषायरूप रहना है? समझ में आया? बहुत बात की है। द्रव्यानुयोग का उपदेश आवश्यक है। गधे की व्याख्या वहाँ आयी। गधा मिश्री खाता है न? वही है। 'द्रव्यानुयोग में दोष-कल्पना का निराकरण'। मिश्री खाने से गधा मर जाये तो मनुष्य कोई मिश्री खाना छोड़ते नहीं। उसके बाद यह बात है। छोड़ दे? समझ में आया?

अध्यात्म भगवान चिदानन्द प्रभु सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ देवाधिदेव ने जो आत्मा कहा, उन्होंने तेरा आत्मा ऐसा ही देखा है। तेरा आत्मा भगवान ने ऐसा देखा है। कर्मरहित देखा है, क्योंकि कर्म तो अजीव है, शरीर अजीव है। भगवान ने ऐसा शरीरसहित देखा है? पुण्य-पाप के परिणाम आस्रव हैं। उनसे रहित भगवान ने तेरे आत्मा को शुद्ध आनन्दकन्द देखा है। समझ में आया? आस्रवतत्त्व। आस्रवतत्त्व रूप भगवान ने आत्मा देखा है? अजीवतत्त्व रूप देखा है भगवान ने? भगवान सर्वज्ञ ने क्या देखा है अन्दर में? आत्मा। तो आत्मा किसे कहा? पुण्य-पाप तो आस्रवतत्त्व है। शरीर, कर्म अजीव है। उनसे रहित आत्मा को भगवान ने देखा है कि यह तेरा आत्मा है। तेरा आत्मा ऐसा है, ऐसा भगवान ने कहा है और देखा है। तुम ऐसा देखो। समझ में आया?

मैं पुण्य-पाप, आस्रव और शरीरादि से रहित हूँ। ऐसा अन्तर में भेद को छोड़कर अभेद की दृष्टि करके आत्मा का अनुभव करना, वह आत्मख्याति है, वह सम्यग्दर्शन है। **इस प्रकार यह सर्व कथन निर्दोष है**-अमृतचन्द्राचार्य महाराज कहते हैं, देखो! '**इति समस्तमेव निरवद्यम**'। '**निरवद्यम**' है—यथार्थ बात है, ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ ने कही हुई बात (यथार्थ है)। लो, यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन की बात करते हैं। यहाँ कहाँ अभी संयम की या छठवें गुणस्थान की बात है? अरे! यहाँ चौथे गुणस्थान की बात है।

मुमुक्षु : चार दूने आठ।

पूज्य गुरुदेवश्री : आठ हो गये न। चार दूने आठ, ऐसा। चौथे चार, आठ अर्थात् डबल। भगवान स्वतन्त्र है। अरे! प्रभु! सम्यग्दर्शन अर्थात् तो... वहाँ दोपहर में नहीं आया? आया न? बन्ध नहीं, बन्ध नहीं। अज्ञान से होनेवाले बन्ध को ही बन्ध गिनने में आया है। अस्थिरता-बस्थिरता आदि है, वह तो बन्धपंक्ति में गिनने में आया है, ज्ञानपंक्ति में नहीं। आता है न! ७२ गाथा के भावार्थ में आता है। अब आयेगा, दोपहर में आयेगा।

भगवान आत्मा अपना ज्ञान शुद्ध चैतन्यप्रभु की दृष्टि करके आत्मख्याति सम्यग्दर्शन प्रगट किया तो अज्ञान का बन्ध है ही नहीं। बस, बन्ध नहीं तो अस्थिरता का थोड़ा बन्ध है, उसे बन्धपंक्ति में डाल दिया। ज्ञानपंक्ति के भेद में वह आता नहीं। समझ में आया? वह ज्ञान में ज्ञेय हो गया। जैसे परद्रव्य ज्ञेय है, वैसे ज्ञेय है। सम्यग्ज्ञान के जोर के कथन में वह आता है। नीचे अस्थिरता है, ख्याल है। समझ में आया?

इस प्रकार यह सर्व कथन... 'निरवद्यम' है। **निर्दोष है...** वस्तु का जैसा स्वरूप है, वैसा यह भाव है। ऐसा कहा गया है। देखो! मुनि पंच महाव्रतधारी सन्त अमृतचन्द्राचार्यदेव। भाई! इसे आत्मख्याति कहते हैं, भेद को आत्मख्याति नहीं कहते। आत्मा की प्रसिद्धि शुद्धस्वभाव की एकत्वबुद्धि से होती है। यही बात निर्दोष '**निरवद्यम**' और सत्य है, दूसरी बात सच्ची है नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार सत्य नहीं। वह स्वभाव की अपेक्षा से। है भले, विकल्पादि हो। अनुभूति की अपेक्षा से व्यवहार असत्यार्थ है। आहाहा! व्यवहार,

व्यवहार की अपेक्षा से हो। ज्ञान करने की चीज़ है। समझ में आया? गजब बात!

भावार्थ :- इन नव तत्त्वों में, शुद्धनय से देखा जाये तो... अर्थात् कि भेद में से निकलकर। ऐसा इसका अर्थ है। **तो जीव ही एक चैतन्य-चमत्कार मात्र प्रकाशरूप प्रगट हो रहा है,...** भावार्थ, भावार्थ। अकेला जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... सत् ऐसा अकेला ज्ञायकभाव ही एकरूप प्रसिद्ध हो रहा है। **इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न नव तत्त्व कुछ भी दिखायी नहीं देते।** देखो! अन्तर्मुख का ज्ञान करने से नौ भेद दिखते नहीं। नौ भेद बहिर्मुख की दृष्टि करने से नौ प्रकार के विकल्प दिखाई देते हैं। अन्तर्मुख में ये नौ तत्त्व के भेद दिखाई नहीं देते। गजब टीका की है न!

'जब तक इस प्रकार जीवतत्त्व का जानपना जीव को नहीं तब तक...' जब तक इस प्रकार से जीवतत्त्व का (अर्थात्) भगवान ज्ञायकस्वरूप एकरूप है, ऐसा अन्तर का जीव को ज्ञान नहीं, वहाँ तक वह व्यवहारदृष्टि है। व्यवहारदृष्टि अर्थात् बहिर्दृष्टि है। बहिर्दृष्टि अर्थात् अनादि की दृष्टि है, अकेली व्यवहारदृष्टि है, सम्यग्दर्शन है नहीं।

मुमुक्षु : व्यवहारदृष्टि....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह व्यवहारदृष्टि सम्यग्दृष्टि नहीं, मिथ्यादृष्टि है। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ व्यवहार आया? व्यवहार-फ्यवहार आया कहाँ से? मूढ़ दृष्टि है। यहाँ व्यवहार मूढ़ कहते हैं। भेद दृष्टि है, एकान्त दृष्टि है, मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : पहले व्यवहार बिना....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले व्यवहार कहाँ से आया?

सीधे रागरहित चैतन्य की एकता बुद्धि होती है, उसका नाम निरपेक्ष, पर की अपेक्षा बिना का सम्यग्दर्शन कहते हैं। मार्ग ऐसा है, भाई! निरालम्बी निरपेक्ष राग से भिन्न। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि है यहाँ तो। .....

जब तक इस प्रकार जीव तत्त्व की जानकारी जीव को नहीं है, तब तक वह व्यवहारदृष्टि है, भिन्न-भिन्न नव तत्त्वों को मानता है। उसमें एकरूप की दृष्टि हुई नहीं।

जीव पुद्गल की बन्धपर्यायरूप दृष्टि से यह पदार्थ भिन्न-भिन्न दिखायी देते हैं;... देखो! जीव और पुद्गल की बन्धपर्याय की अपेक्षा से देखो तो नौ-नौ भिन्न-भिन्न दिखते हैं। **किन्तु जब शुद्धनय से जीव-पुद्गल का निज स्वरूप भिन्न-भिन्न...** यह द्रव्य भिन्न, यह द्रव्य भिन्न, ऐसा। **देखा जाये तब वे पुण्य, पापादि सात तत्त्व कुछ भी वस्तु नहीं हैं;...** चैतन्य भगवान ज्ञायकस्वरूप में एकरूप में अनुभव करने से नौ कोई वस्तु ही नहीं। एक में नौ आते ही नहीं, नौ में एक है ही नहीं। एक में एक है। यह कथनी भी अभी घिस गयी। लोगों को यह कथनी सुनकर ऐसा लगता है कि, यह निश्चय है, निश्चय है। निश्चय अर्थात् सत्य। निश्चय अर्थात् '**निरवद्यम**'। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! चौथे गुणस्थान की कथनी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कथन कहाँ सुनना है? यहाँ तो अभी मिथ्यादृष्टि है, उसे कहते हैं कि तेरा एकरूप अनुभव करना, वह सम्यक् है। ऐसा कहते हैं यहाँ तो। अज्ञानी को तो समझाते हैं, जिसने सुना नहीं, उसे सुनाते हैं। यह तो पहले आ गया। श्रुत परिचित अनुभूत।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सातवेंवाले को क्या सुनाना है? समझ में आया? अनादि अप्रतिबुद्ध जीव को समझाया है। समझ में आया? यह गाथा आगे आ गयी है। यह कितनी है? १३वीं। आगे आयेगा। ३८वीं गाथा में है न? बारम्बार समझाते हैं। ३८, ३८ देखो! अन्त में जीव का पूरा होता है न ३८ गाथा? **जो, अनादि मोहरूप अज्ञान से उन्मत्तता के कारण अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था...** (टीका की) पहली लाईन है। जीव का (अधिकार) पूरा करते हैं वहाँ। जीव (अधिकार की) ३८ गाथा है न? पश्चात् ३९ गाथा से अजीव चलता है। ३८ गाथा, ८० पृष्ठ। हिन्दी में ८० पृष्ठ। टीका की पहली लाईन। **जो, अनादि मोहरूप अज्ञान से उन्मत्तता के कारण अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था और विरुक्त गुरु से निरन्तर समझाये जाने पर...** देखो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विरक्त अर्थात् राग से निवृत्त है। स्वरूप का भान है वह।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। विरक्त गुरु का अर्थ यह। द्रव्यलिंगी होता ही नहीं। विरक्त अर्थात् राग से रहित आत्मा में एकत्वबुद्धि हो गयी है, उनके द्वारा समझाये जाने पर। द्रव्यलिंगी से नहीं, निमित्त नहीं होता। सम्यग्दर्शन में ऐसे निमित्त नहीं होते। क्या कहा है? देखो न!

विरक्त गुरु से निरन्तर समझाये जाने पर जो किसी प्रकार से समझकर, सावधान होकर, जैसे कोई मुट्ठी में रखे हुए सुवर्ण को भूल गया हो... ...यहाँ तो अनादि मोह अज्ञान उन्मत्तता के कारण से। इतने तो शब्द प्रयोग किये हैं। और अनादि अज्ञान से उन्मत्तता के कारण से अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था। उसे समझाया। ३८ में जीव अधिकार पूरा करते हैं। पश्चात् ३९ में (अजीव अधिकार लेते हैं)। समझ में आया? बारम्बार समझाया, हों! **गुरु से निरन्तर समझाये जाने पर जो किसी प्रकार से समझकर,...**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहते हैं, गुरु से निरन्तर समझाये जाने पर, इसकी व्याख्या क्या? रोज समझाने की व्याख्या क्या? फुरसत में है? इसकी व्याख्या यह है कि जो सुना है, उसे बारम्बार याद करता है, उसका नाम गुरु ने बारम्बार समझाया। गुरु तो अमुक समय बैठे हों। ध्यान में बैठे हों। यहाँ तो पाठ ऐसा है कि **निरन्तर समझाये जाने पर...** करो अर्थ।

मुमुक्षु : .... रोज समझाना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : रोज समझाना पड़े कहाँ से? फुरसत में हैं वे? समझ में आया? परन्तु समझनेवाले को बारम्बार रटन होता है तो उसे गुरु ने निरन्तर समझाया, ऐसा कहा जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जवाबदारी किसी की नहीं। जवाबदारी इसकी स्वयं की है। निरन्तर समझाये कहाँ? गुरु निरन्तर (समझाये)? साधु हो तो सप्तम गुणस्थान में भी कहते हैं? ध्यान में रहे और लोगों को समझावे? किसी समय धर्मलोभी जीव को समझाने की इच्छा होती है तो समझाते हैं। किसी समय धर्मलोभी को। आता है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। धर्मलोभी जीव है, ऐसा दिखाई दे तो समझाने की इच्छा होती है। निरन्तर कहाँ से हो? यहाँ तो समझनेवाला है, वह समझानेवाले की पद्धति का बारम्बार रटन करता है। इसलिए गुरु द्वारा निरन्तर समझाया, ऐसा कहा जाता है। इस प्रकार पूरी बात में अन्तर है, भाई! शब्द के अर्थ में अन्तर है। आचार्य की शैली कोई ऐसी है। ऐसा का ऐसा सीधे अर्थ करे, निरन्तर समझाये जाने पर। तो पाँच-दस वर्ष निरन्तर समझावे? अवधि कितनी? वह समझे वहाँ तक, निरन्तर रटन करे वहाँ तक, ऐसा। समझ में आया?

कहा न कुन्दकुन्दाचार्य ने? हमारे गुरु ने हमारे ऊपर अनुग्रह करके। पाँचवीं गाथा में कहा। कुन्दकुन्दाचार्य ने। शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया। बस, इतना। हमारे गुरु ने अनुग्रह करके हमारे ऊपर, सर्वज्ञ महाराज से चली आयी हुई वाणी। भगवान ने भी ऐसा कहा। परगुरु, अपरगुरु हमारे गुरुपर्यन्त सबने हमारे ऊपर अनुग्रह करके—कृपा करके शुद्ध तत्त्व का उपदेश दिया। शुद्ध भगवान आत्मा, ऐसा उपदेश दिया। इतना उपदेश दिया तो हम समझ गये। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह तो महापुरुष को .... हमारे जैसों को क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं, इस भाषा का अर्थ इसे बारम्बार विचार करना। बारम्बार इसे विचार करना। बारम्बार मनन करना जो उपदेश सुना है, उसका बारम्बार रटन करना। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा हुआ है। बारम्बार पकड़ा। उनका कहा हुआ ही वह निरन्तर समझता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ द्रव्यलिंगी नहीं। यहाँ तो अकेले भावलिंगी सन्त हैं, वे ही समझाते हैं। समझ में आया? तब उनकी देशना निमित्त पड़ती है। पहले भी आया है। पहले चौथी गाथा में आया है। स्वयं समझा नहीं और आत्मज्ञानी की सेवा की नहीं। ऐसा तीसरी गाथा में आया है। आत्मज्ञानी की सेवा की नहीं, ऐसा कहा है। तीसरी गाथा में आया है। तीसरी देखो! यहाँ तो सब स्पष्टीकरण एक-एक के हुए हैं। आहाहा! देखो! चौथी, चौथी (गाथा में)। **अपने में अनात्मज्ञपना होने से (-स्वयं आत्मा को नहीं जानता होने से) और दूसरे आत्मा को जाननेवालों की संगति-सेवा नहीं की होने से...** (टीका में अन्त में) भावार्थ के ऊपर है। १३ पृष्ठ **दूसरे आत्मा को जाननेवालों की संगति-सेवा नहीं की होने से...** जाननेवालों। स्वयं को तो ज्ञान है नहीं, परन्तु आत्मज्ञानी की सेवा नहीं की। सेवा नहीं की, इसका अर्थ यथार्थ रीति से उसकी रुचि नहीं हुई, सुनने से रुचि नहीं हुई। तो आत्मज्ञानी का सुनना, वही वहाँ आता है।

मुमुक्षु : मुनि....

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि... भाव ऐसा है। नाम पाड़ने से क्या हुआ? कहो, समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो!

जीव-पुद्गल का निज स्वरूप भिन्न-भिन्न देखा जाये तब वे पुण्य, पापादि सात तत्त्व कुछ भी वस्तु नहीं हैं; वे निमित्त-नैमित्तिकभाव से हुए थे, इसलिए जब वह निमित्त-नैमित्तिकभाव मिट गया, तब जीव, पुद्गल भिन्न-भिन्न होने से अन्य कोई वस्तु (पदार्थ) सिद्ध नहीं हो सकती। अकेला आत्मा सिद्ध हो गया। शुद्ध आत्मा अभेद अपनी दृष्टि में आ गया। पुद्गल पृथक् पड़ गया। **वस्तु तो द्रव्य है, और द्रव्य का निजभाव द्रव्य के साथ ही रहता है...** शुद्धस्वभाव की एकता वह द्रव्य के साथ रह गयी। नौ के भेद का विकल्प छूट गया। **तथा निमित्त-नैमित्तिकभाव का अभाव ही होता है, इसलिए शुद्धनय से जीव को जानने से ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है।** देखो! **जब तक भिन्न-भिन्न नव पदार्थों को जाने, और शुद्धनय से आत्मा को न जाने तब तक पर्यायबुद्धि है।** वहाँ व्यवहार दृष्टि कही थी, यहाँ पर्यायबुद्धि कही। ऊपर (कहा था), वहाँ तक व्यवहार दृष्टि है, वहाँ तक पर्यायबुद्धि है, वहाँ तक मिथ्यादृष्टि है। अकेली व्यवहार दृष्टि

है। स्वभाव का भान होकर व्यवहार को जाने, वह अलग बात है, यह तो अकेले व्यवहार की बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय-बाश्रय नहीं। व्यवहार का आश्रय मानना, वही मिथ्यात्व है। उससे लाभ मानना, वही मिथ्यात्व है। समझ में आया? आहाहा! यह गाथा हुई। अब इसका कलश कहते हैं। बोलो, पण्डितजी!

★ ★ ★

कलश - ८

यहाँ, इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं :-

(मालिनी)

चिर-मिति नवतत्त्वच्छन्न-मुन्नीयमानं,
कनक-मिव निमग्नं वर्णमाला-कलापे।
अथ सतत-विविक्तं दृश्यता-मेकरूपं,
प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम् ।।8।।

अथैवमेकत्वेन द्योतमानस्यात्मनोऽधिगमोपायाः प्रमाणनयनिक्षेपाः ये ते खल्वभूतार्था-स्तेष्वप्ययमेक एव भूतार्थः।

प्रमाणं तावत्परोक्षं प्रत्यक्षं च। तत्रोपात्तानुपात्तपरद्वारेण प्रवर्तमानं परोक्षं केवलात्म-प्रतिनियतत्वेन प्रवर्तमानं प्रत्यक्षं च। तदुभयमपि प्रमातृप्रमाणप्रमिति-प्रमेयभेदस्यानुभूयमानतायां भूतार्थं, अथ च व्युदस्तसमस्तभेदैकजीवस्वभावस्या-नुभूयमानतायामभूतार्थम्।

नयस्तु द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्च। तत्र द्रव्यपर्यायात्मके वस्तुनि द्रव्यं मुख्यतया-नुभावयतीति द्रव्यार्थिकः, पर्यायं मुख्यतयानुभावयतीति पर्यायार्थिकः। तदुभयमपि द्रव्यपर्याययोः पर्यायेणानुभूयमानतायां भूतार्थं, अथ च द्रव्यपर्याया-नालीढशुद्धवस्तुमात्रजीवस्वभाव-स्यानुभूयमानतायाम-भूतार्थम्।

निक्षेपस्तु नाम स्थापना द्रव्यं भावश्च। तत्रातद्गुणे वस्तुनि सञ्ज्ञाकरणं नाम। सोऽयमित्यन्यत्र प्रतिनिधिव्यवस्थापनं स्थापना। वर्तमानतत्पर्यायादन्यद् द्रव्यम्। वर्तमानतत्पर्यायो

भावः। तच्चतुष्टयं स्वस्वलक्षणवैलक्षण्येनानुभूयमानतायां भूतार्थं, अथ च निर्विलक्षणस्वलक्षणैक-जीवस्वभावस्यानु-भूयमानतायामभूतार्थम्।

अथैवममीषु प्रमाणनयनिक्षेपेषु भूतार्थत्वेनैको जीव एव प्रद्योतते।

श्लोकार्थ : [इति] इस प्रकार [चिरम्-नव-तत्त्व-च्छन्नम् इदम् आत्मज्योतिः] नव तत्त्वों में बहुत समय से छिपी हुई यह आत्मज्योति [उन्नीयमानं] शुद्धनय से बाहर निकालकर प्रगट की गयी है, [वर्णमाला-कलापे निमग्नं कनकम् इव] जैसे वर्णों के समूह में छिपे हुए एकाकार स्वर्ण को बाहर निकालते हैं। [अथ] इसलिए अब हे भव्य जीवों! [सततविविक्तं] इसे सदा अन्य द्रव्यों से तथा उनसे होनेवाले नैमित्तिक भावों से भिन्न, [एकरूपं] एकरूप [दृश्यताम्] देखो। [प्रतिपदम् उद्योतमानम्] यह (ज्योति), पद-पद पर अर्थात् प्रत्येक पर्याय में एकरूप चित्चमत्कारमात्र उद्योतमान है।

भावार्थ : यह आत्मा सर्व अवस्थाओं में विविधरूप से दिखायी देती था, उसे शुद्धनय ने एक चैतन्य-चमत्कारमात्र दिखाया है; इसलिए अब उसे सदा एकाकार ही अनुभव करो, पर्यायबुद्धि का एकान्त मत रखो - ऐसा श्री गुरुओं का उपदेश है।।8।।

टीका : अब, जैसे नव तत्त्वों में एक जीव को ही जानना भूतार्थ कहा है, उसी प्रकार, एकरूप से प्रकाशमान आत्मा के अधिगम के उपाय जो प्रमाण, नय, निक्षेप हैं, वे भी निश्चय से अभूतार्थ हैं, उनमें भी यह आत्मा एक ही भूतार्थ है (क्योंकि ज्ञेय और वचन के भेदों से प्रमाणादि अनेक भेदरूप होते हैं)। उनमें से पहले, प्रमाण दो प्रकार के हैं - परोक्ष और प्रत्यक्ष। उपात्त[1] और अनुपात्त[2] पर (पदार्थों) द्वारा प्रवर्ते, वह परोक्ष है और केवल आत्मा से ही प्रतिनिश्चितरूप से प्रवृत्ति करे, सो प्रत्यक्ष है। (प्रमाण ज्ञान है। वह ज्ञान पाँच प्रकार का है - मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल। उनमें से मति और श्रुतज्ञान परोक्ष हैं, अवधि और मनःपर्ययज्ञान विकल-प्रत्यक्ष हैं और केवलज्ञान सकल-प्रत्यक्ष हैं। इसलिए यह दो प्रकार के प्रमाण हैं।) वे दोनों प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय के भेद का अनुभव करने पर तो भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं; और जिसमें सर्वभेद गौण हो गये हैं, ऐसे एक जीव के स्वभाव का अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं।

नय दो प्रकार के हैं - द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। वहाँ द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु में द्रव्य का मुख्यता से अनुभव कराये, सो द्रव्यार्थिक नय है और पर्याय का

मुख्यता से अनुभव कराये, सो पर्यायार्थिकनय है। यह दोनों नय द्रव्य और पर्याय का पर्याय से (भेद से, क्रम से) अनुभव करने पर तो भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं; और द्रव्य तथा पर्याय दोनों से अनालिंगित (आलिंगन नहीं किया हुआ) शुद्ध वस्तुमात्र जीव के (चैतन्यमात्र) स्वभाव का अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं।

निक्षेप के चार भेद हैं – नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। वस्तु में जो गुण न हो, उस गुण के नाम से (व्यवहार के लिए) वस्तु की संज्ञा करना, सो नाम निक्षेप है। 'यह वह है' इस प्रकार अन्य वस्तु में अन्य वस्तु का प्रतिनिधित्व स्थापित करना (–प्रतिमारूप स्थापन करना), सो स्थापना निक्षेप है। वर्तमान से अन्य अर्थात् अतीत अथवा अनागत पर्याय से वस्तु को वर्तमान में कहना, सो द्रव्य निक्षेप है। वर्तमान पर्याय से वस्तु को वर्तमान में कहना, सो भाव निक्षेप है। इन चारों निक्षेपों का अपने अपने लक्षणभेद से (विलक्षणरूप से–भिन्न–भिन्नरूप से) अनुभव किये जाने पर वे भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं और भिन्न लक्षण से रहित एक अपने चैतन्यलक्षणरूप जीवस्वभाव का अनुभव करने पर वे चारों ही अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं। इस प्रकार इन प्रमाण–नय–निक्षेपों में भूतार्थरूप से एक जीव ही प्रकाशमान है।

भावार्थ : इन प्रमाण, नय, निक्षेपों का विस्तार से कथन तद्विषयक ग्रन्थों से जानना चाहिए; उनसे द्रव्य–पर्यायस्वरूप वस्तु की सिद्धि होती है। वे साधक अवस्था में तो सत्यार्थ ही हैं क्योंकि वे ज्ञान के ही विशेष हैं। उनके बिना वस्तु को चाहे जैसे साधा जाये तो विपर्यय हो जाता है। अवस्थानुसार व्यवहार के अभाव की तीन रीतियाँ हैं : प्रथम अवस्था में प्रमाणादि से यथार्थ वस्तु को जानकर ज्ञान–श्रद्धान की सिद्धि करना; ज्ञान–श्रद्धान के सिद्ध होने पर श्रद्धान के लिये प्रमाणादि की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु अब यह दूसरी अवस्था में प्रमाणादि के आलम्बन से विशेष ज्ञान होता है और राग–द्वेष–मोहकर्म का सर्वथा अभावरूप यथाख्यातचारित्र प्रगट होता है; उससे केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। केवलज्ञान होने के पश्चात् प्रमाणादि का आलम्बन नहीं रहता। तत्पश्चात् तीसरी साक्षात् सिद्ध अवस्था है, वहाँ भी कोई आलम्बन नहीं है। इस प्रकार सिद्ध अवस्था में प्रमाण–नय–निक्षेप का अभाव ही है।

कलश - ८ पर प्रवचन

चिरमिति नवतत्त्वच्छन्न-मुन्नीयमानं,
कनकमिव निमग्नं वर्णमालाकलापे।
अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपं
प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम्॥८॥

श्लोकार्थ :- इस प्रकार नव तत्त्वों में बहुत समय से छिपी हुई यह आत्मज्योति... ढँक गयी थी, देखो! नौ तत्त्व के विकल्प में भगवान एकरूप ढँक गया था। आहाहा! कर्म से ढँका हुआ था, ऐसा नहीं। मैं जीव हूँ और यह अजीव है और यह आस्रव है और यह पुण्य है—ऐसे नौ तत्त्व के पर्यायबुद्धि से विकल्प जो उठाता है, उसमें भगवान एकरूप ढँक गया था। आहाहा! **नव तत्त्वों में बहुत समय से छिपी हुई यह आत्मज्योति शुद्धनय से बाहर निकालकर प्रगट की गयी है,...** एक स्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, ऐसा दिखलाकर बतलाया कि यह आत्मा। नौ तत्त्व के भेद करना, वह आत्मा नहीं।

जैसे वर्णों के समूह में छिपे हुए... सोना होता है न? सोना। कुलडी। कुलडी को क्या कहते हैं? वह सोनी की... करते हैं न? वर्णमाला उत्पन्न होती है न? रंग। सोना को अग्नि देते हैं न, तो रंग उत्पन्न होते हैं। उसमें से सोना निकाल लिया, अकेला सोना। कुलड़ी नहीं होती? कुलड़ी में डालकर (तपाते हैं)। जो तुम्हारा शब्द हो वह। एकाकार सुवर्ण को बाहर निकालते हैं। अग्नि का ताप देकर जैसी वर्णमाला भिन्न-भिन्न है, उसमें से अकेला सोना बाहर निकालते हैं।

इसलिए हे भव्य जीवों! देखो! नौ तत्त्व के विकल्प वह वर्णमाला समान है। उसमें से एक आत्मा निकालना, वह आत्मा है। आहाहा! **वर्णों के समूह में छिपे हुए एकाकार...** देखो! वर्ण के रंग जो उठते हैं कथीर या ताँबा, उसके अन्दर छिपा हुआ सोना भिन्न एकाकार है। उसी प्रकार बन्धपर्याय की दृष्टि से नौ तत्त्व के विकल्प उठते हैं, परन्तु भगवान चैतन्य एकाकार ढँका हुआ है। **हे भव्य जीवों! उसे सदा अन्य द्रव्यों से तथा उनसे होनेवाले नैमित्तिक भावों से भिन्न,...** विकार आदि भाव से भिन्न **एकरूप देखो।** आहाहा! चैतन्य का अन्तर स्वरूप एकाकार ज्ञायकरूप देखो। अन्तर स्वभाव

एकरूप ज्ञायकरूप देखो। वही सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? **यह (ज्योति)...** कहा न?

मुमुक्षु : कलशटीका में ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कलशटीका उसमें से? **'चिरमिति नवतत्त्व'।** क्या कहा है? देखो! **जीवद्रव्य का शुद्ध ज्ञानमात्र,... 'आत्मज्योतिः दृश्यताम्'** इसका अर्थ होता है। **जीवद्रव्य का शुद्ध ज्ञानमात्र,... 'दृश्यताम्'** 'सर्वथा अनुभवरूप हो।' देखो! **'दृश्यताम्'** का अर्थ यह। देखो, देखो का अर्थ **सर्वथा अनुभवरूप हो।** अनुभवरूप हो। भाषा कैसी है! सर्वथा। **कैसी है आत्मज्योति? 'चिरमिति नवतत्त्वच्छन्नं, अथ सततविविक्तं' इस अवसर में नाट्यरस की भाँति एक जीववस्तु आश्चर्यकारी अनेक भावरूप एक ही समय में दिखाई देती है, इसी कारण से इस शास्त्र का नाम नाटक समयसार है। वही कहते हैं—अमर्याद काल से जो विभावरूप रागादि परिणाम-पर्यायमात्र विचारने में आवे तो...** अमर्याद अनादि काल से विकार की पर्याय से भेद से विचारने में आवे तो **ज्ञानवस्तु पूर्वोक्त जीवादि नौ तत्त्वरूप से आच्छादित है।** विकल्प के नौ तत्त्व के भेद से भगवान चैतन्यमूर्ति एकरूप ढँका हुआ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... ढँक गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, विकल्प की आड़ में ढँक गया। धुआँ निकलता है न? धुआँ। धुएँ में ढँक गया। ... जब लापसी रांधते हैं न? लापसी समझते हो? कंसार। कंसार कहते हैं? क्या कहते हैं? हलुवा नहीं। लापसी बनावे न? नया वर्ष लगे, तब मांगलिक के लिये जीमने में नहीं बनाते? क्या कहते हैं? तुम्हारा हिन्दी में नाम नहीं? कंसार कहते हैं न? गेहूँ के आटा को बराबर करके सेंकते हैं न। हलुवा तो शीरा को कहा जाता है। लापसी... लापसी कहते हैं।

मुमुक्षु : लापसी कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लापसी तो कहते हैं। हलुआ नहीं। गेहूँ के आटा को बाफते हैं... लुपरी नहीं। सुनो, सुनो। गेहूँ के आटा में गुड़ डालकर, बेलन डालकर बराबर... बेलन समझते हो? बेलन होता है न? बेलन। स्त्री उसे घूँटती है। वरना आटे का ... जम

जाये। गाँठें हो जाये। सुना है या नहीं? देखा है या नहीं कभी? आटा में (बेलन) डालकर घूँटते हैं। क्योंकि आटा की गाँठें हो जाये। उसकी लापसी पोची होती है। जो तपेले में हो परन्तु उसके नीचे गीली लकड़ियाँ हो तो उसमें से धुआँ निकलता है। पूरे चूल्हे में धुआँ ही दिखाई देता है। लापसी तो अन्दर रह गयी। बाहर धुआँ ही दिखता है। अन्दर लापसी है, उसकी खबर नहीं।

उसी प्रकार आत्मा चिदानन्द भगवान ज्ञानमूर्ति एकरूप स्वभाव लापसी अन्दर आनन्दकन्द है, वह नौ तत्त्व के विकल्प के धुएँ में ढँक गयी है। हम दृष्टान्त देते हैं, उसमें काठियावाड़ी भाषा होवे तो बराबर कहा जाये। तुम्हारी भाषा तो खोजनी पड़े। लापसी बनाते हैं, लापसी। तपेला हो न? तपेला। चूल्हे के ऊपर तपेला होता है न। गीली लकड़ियाँ हों तो अग्नि में से धुआँ निकले। चूल्हे में चारों ओर धुआँ धुआँ दिखता है। लापसी तो अन्दर रह गयी। उसी प्रकार भगवान चैतन्य आनन्दकन्द पूरा पड़ा है, वह नौ तत्त्व के विकल्प के धुएँ में ढँक गया है। समझ में आया? हमारी गुजराती चलती हो, तब दृष्टान्त भी गुजराती में चलते हैं। वह चले तो स्पष्ट चले। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा एक स्वरूप अतीन्द्रिय आनन्दमय मूर्ति प्रभु है। वह नौ तत्त्व के भेद से आच्छादित है। ढँक गया है। अपने कारण से, हों! पर के कारण से नहीं। विकल्प भेद उठाया। जीव हूँ और यह अजीव है, आस्रव है और पुण्य है और पाप है—ऐसे बन्धपर्याय के ऊपर लक्ष्य होने से नौ प्रकार के विकल्प उठाये। विकल्प उठाये उसमें एकरूप ढँक गया है। स्वयं के कारण से है, कर्म के कारण से नहीं। आहाहा! कर्म जड़ हैं। 'कर्म बिचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पाई।' अग्नि अकेली हो तो (कोई) घण मारता है? नहीं मारता। अकेली अग्नि को घण नहीं मारते। अग्नि लोहे में प्रविष्ट हो तो घण मारते हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा कर्म का संग करता है तो राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं। स्वभाव में होते नहीं। संग करे तो उत्पन्न होते हैं, तो दुःखी होता है। समझ में आया?

नौ तत्त्व के विकल्प में भगवान चैतन्यस्वरूप एकरूप ढँक गया। अनेकता के लक्ष्य में रहने से एकरूप स्वभाव ढँक गया है, ऐसा कहते हैं, लो। समझ में आया?

जीव-अजीव नौ तत्त्व के भेदरूप, व्यवहाररूप, पर्यायरूप दृष्टि में त्रिकाली ज्ञायक भगवान आच्छादित हो गया। ओझल हो गया, दृष्टि में से ओझल हो गया। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि जीववस्तु अनादि काल से धातु और पाषाण के संयोग के समान कर्म-पर्याय से मिली हुई ही चली आ रही है, सो मिली हुई होकर वह रागादि विभावपरिणामों के साथ व्याप्य-व्यापकरूप से स्वयं परिणमन कर रही है। रागादि के परिणाम व्याप्यरूप से परिणम रहे हैं। बिल्कुल रागरूप परिणमी नहीं, ऐसा नहीं है। अनादि से राग-द्वेष विकाररूप परिणम रहा है। विकारी परिणाम व्याप्य और आत्मा व्यापक, ऐसा हो रहा है।

वह परिणमन देखा जाये... समझे? **जीव का स्वरूप न देखा जाये तो जीववस्तु नौ तत्त्वरूप है, ऐसा दृष्टि में आता है।** क्या कहते हैं? रागरूप परिणमता है, पुण्यरूप परिणमता है, आस्रवरूप परिणमता है। ऐसा यदि देखा जाये, जीव का त्रिकाली स्वरूप न देखा जाये तो जीव नौ तत्त्वरूप परिणमता है। **ऐसा भी है, सर्वथा झूठ नहीं है।** नौ तत्त्वरूप पर्याय में हुआ नहीं, ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! नौ तत्त्व अशुद्धता में न हो तो उसमें से निकालकर शुद्धता कहाँ से आयेगी? समझ में आया? नौ तत्त्व पर्यायरूप है, परन्तु वे अशुद्ध हैं, भेद हैं। उनकी दृष्टि करने से तो मिथ्यात्व है। आहाहा! **सर्वथा झूठ नहीं। क्योंकि विभावरूप रागादि परिणमनशक्ति जीव में ही है।** कहो, समझ में आया?

जीववस्तु द्रव्यरूप है, अपने गुण-पर्यायों में विराजमान है। जो शुद्ध द्रव्यस्वरूप देखा जाये, पर्यायस्वरूप न देखा जाये तो वह कैसी है? निरन्तर नौ तत्त्वों के विकल्प से रहित है, शुद्ध वस्तुमात्र है। भावार्थ इस प्रकार है कि शुद्धस्वरूप का अनुभव सम्यक्त्व है। देखो! भगवान एक स्वरूप चैतन्य, वह नौ के विकल्प का (लक्ष्य) छोड़कर एक स्वरूप के अनुभव का नाम सम्यग्दर्शन है। देखो! यहाँ भी लिया है। **शुद्धस्वरूप का अनुभव सम्यक्त्व है।** आनन्द का होना, आनन्द का स्वाद आना, सम्यग्दर्शन में आनन्द होत है, उसका नाम अनुभव और सम्यक्त्व है। अकेला आत्मा मानना, मानना श्रद्धा हुई, ऐसा नहीं। समझ में आया?

जैसे एक ही सोना वानभेद से अनेकरूप कहा जाता है, वैसे एक ही जीववस्तु

द्रव्य-गुण-पर्यायरूप से अनेकरूप अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप से अनेकरूप कही जाती है। देखो! एक ओर जीव के नौ तत्त्व के भेद और उसमें ही द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद, उसमें ही उत्पाद-व्यय के अनेकरूप भेद देखना, वहाँ तक तो व्यवहारदृष्टि है। उसकी एकरूप दृष्टि नहीं हुई। द्रव्य-गुण-पर्याय में से अकेला द्रव्य निकालना। आहाहा! समझ में आया? **द्रव्य-गुण-पर्यायरूप अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप अथवा दृष्टान्त की अपेक्षा से वानभेदरूप जितने भेद हैं, उन सब भेदों में भी स्वयं (एक) ही है।** उत्पाद-व्यय में अकेला ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... भगवान, वही आत्मा है। समझ में आया?

सुवर्णमात्र न देखा जाये, वानभेदमात्र देखा जाये तो वानभेद है; सोना की शक्ति ऐसी भी है; जो वानभेद न देखा जाये, केवल सुवर्णमात्र देखा जाये, तो वानभेद झूठे हैं;... समझ में आया? **उसी प्रकार जो शुद्ध जीववस्तुमात्र न देखा जाये, गुण-पर्यायमात्र अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय देखा जाये तो, गुण-पर्यायें हैं, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है...** पर्यायभेद है। **जीववस्तु ऐसी भी है; जो गुण-पर्यायभेद अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यभेद न देखा जाये, वस्तुमात्र देखा जाये तो समस्त भेद झूठे हैं। ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है।** द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : भेद ही....

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद की दृष्टि ही अभेद में नहीं आने देती। यह द्रव्य है, यह गुण है, यह पर्याय है, ऐसे भेद से तो विकल्प उत्पन्न होते हैं। भेद की दृष्टि से विकल्प उत्पन्न होते हैं, राग उत्पन्न होता है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीन का भी लक्ष्य करने से भी राग उत्पन्न होता है। आहाहा! यह तो कलशटीका में बहुत अच्छा लिया है। समझे? कलशटीका में बहुत अच्छा लिया है। आहाहा!

ऐसी आत्मज्योति **चेतनालक्षण से ज्ञात होती है, इसलिए अनुभवगोचर भी है। अब दूसरा पक्ष-प्रत्यक्ष ज्ञानगोचर है।** प्रत्यक्ष ज्ञानगम्य अनुभवगम्य है। **भेदबुद्धि करने से जीववस्तु चेतनालक्षण से जीव को जानती है। वस्तु विचारने पर इतना विकल्प भी झूठा है।** कहाँ ले गये? देखो! पहले नौ तत्त्व लिये। वे भेदरूप। फिर द्रव्य-गुण-पर्याय तीन भेदरूप। फिर, उत्पाद-व्यय-ध्रुव भेदरूप। पश्चात् ज्ञान आत्मा को जानता है, यह चेतना, वह आत्मा का लक्षण है ऐसा भेद, भेदरूप। आहाहा! **भेदबुद्धि करने से**

जीववस्तु चेतनालक्षण से जीव को जानती है। वस्तु विचारने पर इतना विकल्प भी झूठा है... आहाहा! यह चेतना, यह चेतन। चेतना, वह आत्मा —ऐसा भेदविकल्प झूठा है। ओहो! समझ में आया? नौ तत्त्व में से निकालते... निकालते... निकालते... दो भेद भी निकाल दिये।

मुमुक्षु : भेद का काम नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : काम नहीं। अकेला चैतन्य भगवान। समझ में आया? वही दृष्टि में आने पर अनुभव और सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी बात है।

अनेक में एक कहाँ से भासित हो? भेद में अभेद कहाँ से भासित हो? तीन में एक कहाँ से भासित हो? दो में एक कहाँ से भासित हो? चेतना लक्षणवाला आत्मा, यह तो दो हुए। वह भी छूटकर (अनुभव होता है)। आहाहा! राजमल टीकाकार ने भी टीका की है न! 'पांडे राजमल जैन धर्मी, समयसार नाटक के मर्मी।' ऐसा बनारसीदास ने कहा है। वह तो है न। समयसार नाटक इसमें से बनाया है। इसमें से बनाया है। कलशटीका में से बनाया है। उसमें लिखा है न? राजमल की टीका में से मैंने समयसार नाटक बनाया है। बहुत ऊँची बात है। लोग शान्ति से, मध्यस्थता से अपना आग्रह छोड़कर क्या वस्तु है — ऐसा समझे, सुने तो उन्हें पता लग जाये। ऐसा आग्रह नहीं रखना चाहिए कि हम ऐसा मानते थे, हमने ऐसा सुना था। अब सुना छोड़ न एक ओर। तुझे कल्याण करना हो, भगवान! ... आहा! ऐसा मनुष्यदेह, उसमें ऐसा भव मुश्किल से मिला। कितने? पाँच, पचास, साठ वर्ष। अनन्त काल... अनन्त काल... अनन्त काल... उसमें इतना काल। यहाँ से छूटा... प्रभु! तेरा कहाँ चौरासी में अवतार होगा? कहीं पता नहीं लगेगा। देह क्या? अवस्था क्या? पर्याप्ति, अपर्याप्ति कहाँ? इसलिए आत्मा एकरूप है, उसकी दृष्टि कर ले तो जन्म-मरण का अन्त आ जाये। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है। अन्त में लिया है, भाई! **ऐसा अनुभव सम्यक्त्व है।** अन्त में यह लिया है। पढ़ा है या नहीं? सेठ! यहाँ से ले गये हो या नहीं? रखा है? रखा है या वाँचा है? वाँचे परन्तु बहुत समझे नहीं। कहो, समझ में आया?

नौ तत्त्व में बहुत काल से छुपी हुई भगवान शुद्धनय अर्थात् अन्तर्मुख होने से एकरूप प्रगट की। **यह (ज्योति), पद पद पर अर्थात् प्रत्येक पर्याय में एकरूप चित्चमत्कारमात्र उद्योतमान है।** चाहे जैसी समय-समय की पर्याय हो। अन्तर में ध्रुव रूप तो एकरूप ही है। समझ में आया? एकेन्द्रिय पर्याय, दो इन्द्रिय पर्याय एक-एक समय की पर्याय में भी चैतन्य ध्रुव तो कायम एकरूप ही रहनेवाला है। एकेन्द्रिय पर्यायरूप हुआ नहीं, दो इन्द्रिय पर्यायरूप हुआ नहीं। तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय आदि पर्यायरूप हुआ नहीं। वह तो ध्रुव चैतन्यमूर्ति चैतन्य चमत्कार पर्याय-पर्याय में नित्य उद्योतमान ही है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हुआ ही नहीं। पर्यायरूप किस प्रकार हो? सामान्य ध्रुव है, वह पर्यायरूप से कहाँ से हो? आहाहा! उत्पाद-व्यय पर्यायरूप से हुआ नहीं। द्रव्य सामान्य है, वह पर्यायरूप से कहाँ से हो? पर्याय तो एक समय की अवस्था है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कलश का ही अर्थ है, कलश का ही अर्थ है। यह शब्दार्थ है। यह कलश है उसका। जो कलश है, उसका शब्दार्थ। समझ में आया?

भावार्थ :- **यह आत्मा सर्व अवस्थाओं में विविधरूप से दिखायी देता था, उसे शुद्धनय ने एक चैतन्य-चमत्कारमात्र दिखाया है; इसलिए अब उसे सदा एकाकार ही अनुभव करो, पर्यायबुद्धि का एकान्त मत रखो...** पर्याय है सही। उसके ऊपर एकान्त दृष्टि न करो, यहाँ दृष्टि करो। पश्चात् पर्याय जाननेयोग्य है, उसे जानो। **ऐसा श्री गुरुओं का उपदेश है।** ऐसा सन्तों का उपदेश है। ऐसा अनुभव करो और पर्याय का एकान्त न करो। भेद का एकान्त लक्ष्य न करो। भेद है, परन्तु अभेद की दृष्टि होने के पश्चात्, भेद है, वह जाननेयोग्य है। जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ११, रविवार, दिनांक - २५-०९-१९६६
श्लोक-८, प्रवचन - ५८

इहपरलोयसुहाणं णिरवेक्खो जो करेदि समभावो।
विविहं कायकिलेसं तवधम्मो णिम्मलो तस्स॥४००॥

अर्थः जो मुनि इसलोक-परलोक के सुख की अपेक्षारहित... अर्थात् अपने अतीन्द्रिय आनन्द की एकाग्रता की अपेक्षासहित। इसलोक और परलोक के सुख की अपक्षा है ही नहीं। सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र में। ऐसा **सुख-दुःख...** में समभाव। ज्ञाता-दृष्टा होकर सुख-दुःख अर्थात् संयोगी अनुकूल-प्रतिकूल को यहाँ सुख-दुःख कहते हैं। अनुकूल-प्रतिकूल संयोग। अनुकूल सुख और प्रतिकूल दुःख संयोग को (कहते हैं)। उसमें अपना स्वभाव में समता ज्ञाता-दृष्टा होकर रहना, उसका नाम तप कहा जाता है। **शत्रु-मित्र...** में समभाव। **तृण-कंचन...** में समभाव और **निन्दा-प्रशंसा...** में समभाव। **राग-द्वेष रहित होकर समभावी होकर...** विविध प्रकार का कायक्लेश जिसमें निमित्त है **उन मुनि को निर्मल अर्थात् उत्तम तप धर्म होता है।**

भावार्थ :- चारित्र के लिये जो उद्यम और उपयोग करता है, उसे तप कहा है। ऐसा है, भाई! देखो! चारित्र अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप में रमणता करना, वह चारित्र है। चरना, रमना, जमना, अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करना, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन। अमृत भोजन, वही सच्चा चारित्र, वही चारित्र है। स्वरूप में चरना, वह चारित्र। स्वरूपे चरणं चारित्रं। यह प्रवचनसार में कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है। स्वरूपे चरणं। तो स्वरूप किसे कहते हैं? निज शुद्ध ज्ञान और आनन्दस्वरूप में दृष्टि और ज्ञान तो हुए हैं, उसमें चरना। अतीन्द्रिय आनन्द की लहजत की मौज मनाना अन्दर। आहाहा! समझ में आया?

चारित्र के लिये जो उद्यम और उपयोग करता... है। अन्दर में लीन होता है। उसमें कायक्लेश साथ में निमित्त है। 'इसीलिए आत्मा में विभावपरिणति के संस्कार

होते हैं, उन्हें मिटाने के लिए...' आत्मा में विभाव संस्कार जो थोड़े हैं, वह आनन्द का अनुभव करके विभावसंस्कार मिटाने का उद्यम करता है। **अपने शुद्धस्वरूप उपयोग को चारित्र में स्थिर करता है...** समझ में आया? अपने शुद्धस्वरूप उपयोग को चारित्र में अन्दर रोकता है। **वह बहुत जोर से स्थिर होता है,...** बहुत जोर से स्थिर होता है **यह जोर करना, वही तप है।** देखो! समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द का... यह आता है, नियमसार में आता है, नहीं? तप का। स्वरूपे विजयं प्रतपन इति तपः। नहीं? प्रतपन इति तपः। स्वरूप का प्रतपन। जैसे सुवर्ण है, वह गेरु होती है न? गेरु। गेरु से सुवर्ण शोभायमान होता है। गेरु नहीं होती? गेरु कहते हैं न? वह सुवर्ण के ऊपर लगाने से ओप होता है, इसी प्रकार भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का भान हुआ है, उसमें लीनता के उग्र पुरुषार्थ से शुद्धता की वृद्धि होती है, उसका नाम भगवान तप कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? देखो!

चारित्र में शुद्धस्वरूप उपयोग को रोके। बहुत बलपूर्वक से रोकता है। यह तप की बात है। मूल चारित्र की उग्रता, वही तप है। तप कोई दूसरी वस्तु नहीं। स्वरूप में अन्तर रमणता। आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... उस आनन्द के झरने का अनुभव करना और बलपूर्वक जोर करके स्वरूप में स्थिर रहना, इसका नाम सर्वज्ञ परमेश्वर ने तप धर्म कहा है। आहाहा! **वह बाह्य-अभ्यन्तर भेद से बारह प्रकार का कहा है।** निमित्तरूप प्रकार है न? **उसका वर्णन आगे चूलिका में किया जायेगा।** समझ में आया? यह तप धर्म की व्याख्या। लोग अकेले बाह्य को तप कहते हैं, वह तप नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि काल की सभी मान्यता झूठी। समझ में आया? व्यवहारनय के पक्षकार की मान्यता ही झूठी है। अपना शुद्धस्वरूप अन्दर में कैसा है, ऐसा अन्तर में भान करके लीन होना और उसमें उग्र पुरुषार्थ से बल करके विशेष लीन होना। उसका नाम तप कहते हैं। व्याख्या यह है। वस्तु का सत्यस्वरूप। बाकी बारह प्रकार के तप बाहर में (निमित्त है)।

अपने १३वीं गाथा चलती है। कहाँ तक आया, खबर है? **पर्यायबुद्धि का**

एकान्त मत रखो - ऐसा श्री गुरुओं का उपदेश है। यहाँ तक आया है। आया है? अन्दर कहाँ है? (कलश ८ के भावार्थ में) अन्तिम लाईन। **पर्यायबुद्धि का एकान्त मत रखो...** उसमें क्या कहा है? कल एकदम उतावल से पूरा किया था। **पर्यायबुद्धि का एकान्त मत रखो...** इसका क्या अर्थ है? है। अपने आत्मा में पर्याय में नौ तत्त्व के भेद हैं। समझ में आया? विकल्प का भाव है, पुण्य है, पाप है, आस्रव है, बन्ध है। परन्तु उसका एकान्त नहीं रखो। उस पर्याय की रुचि छोड़कर अकेले ज्ञायकस्वभाव में अनुभव करना, उसका नाम सम्यक्... सम्यक्... सम्यक् एकान्त आश्रय करके अनुभव करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और अनुभूति है। समझ में आया? पर्याय नहीं है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... नहीं। पर्याय है, ऐसा लक्ष्य में रखकर, पर्याय को गौण करके द्रव्य के स्वभाव की दृष्टि करना। पर्याय है ही नहीं, ऐसा नहीं। ऐसा कहते हैं। पर्याय की रुचि और द्रव्य की रुचि, ऐसे दो रुचि होती नहीं। भेद नौ तत्त्व के विकल्प में होते हैं। वे हैं। सर्वथा झूठ है, ऐसा नहीं। है ही नहीं, जैसे खरगोश के (सींग) जैसा नहीं है। खरगोश के सींग है ही नहीं। ऐसा नहीं। मैं जीव हूँ, यह अजीव है, यह राग है, आस्रव है—ऐसा पर्याय में है, है। सर्वथा झूठ नहीं। परन्तु पर्याय का एकान्त न रखो। उसके ऊपर रुचि न रखो। उसे गौण करके एक चैतन्यमूर्ति भगवान नौ तत्त्व में से सामान्य ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि करके भूतार्थ का अनुभव करो। सत्यरूप एक चैतन्यप्रभु का अनुभव करना, इसका नाम आत्मा का अनुभव कहा जाता है। कहो, समझ में आया? नौ तत्त्व का यह पूरा हुआ। मूल पाठ में है यह।

अब अमृतचन्द्राचार्य दूसरी बात विशेष स्पष्ट करते हैं। पाठ में तो इतना था — नौ तत्त्व। **टीका :- अब, जैसे नव तत्त्वों में एक जीव को ही जानना भूतार्थ कहा है,...** क्या कहा? भगवान आत्मा नौ तत्त्व के भेदरूप पर्याय का लक्ष्य छोड़कर अकेला सामान्य चैतन्यस्वरूप शुद्ध ध्रुव ज्ञायकभाव को ही भूतार्थ-सच्चा आत्मा कहा। **उसी प्रकार...** समझ में आया? **एकरूप से प्रकाशमान आत्मा के...** भगवान आत्मा तो

एकरूप प्रकाशमान है। चैतन्य ज्योति। उसमें यह प्रमाण, नय, निक्षेप के भेद अन्तर स्वरूप में नहीं। जरा विषय प्रमाण, नय, निक्षेप का आया है अब। नौ तत्त्व के पाठ में था, उतना पूरा हो गया। अमृतचन्द्राचार्य इसमें विशेष निकालते हैं। क्या?

भगवान आत्मा एकरूप चैतन्य प्रकाशमान अभेद, वह वस्तु। परन्तु उसके **अधिगम के उपाय...** उसे जानने के वर्तमान परलक्ष्यी ज्ञान। ज्ञान में जानने का उपाय **प्रमाण, नय, निक्षेप है,...** क्या कहते हैं, समझ में आया? कोई माल लेता है न? माल। माल लेने जाते हैं न? बर्फी या तम्बाकू। पहले उसका तोल करावे। भाव पूछते हैं कि एक सेर का कितना? एक सेर के आठ रुपये। और तुम्हारा तराजू लाओ। तराजू होता है न? धड़ा करते हैं। धड़ा को क्या कहते हैं? तराजू बराबर है या नहीं? एक ओर बाट रखना है और माल डालना हो और उसके नीचे कुछ लोचा हो तो माल कम आवे। तो धड़ा कराते हैं न? धड़ा अर्थात् समतोल है या नहीं? दोनों समतोल है या नहीं? तराजू ठीक है या नहीं? हमारे यहाँ धड़ा कहते हैं। जिसमें माल डालना हो, उसमें नीचे जरा मोम या ऐसा कुछ लगा दिया हो तो माल घट जाये। तो धड़ा कराते हैं। एक (बात)। और तोल जो है, वाट वाट। पाँच सेर, सेर। वह बराबर है या नहीं? यह निश्चित करते हैं। दो (बातें)। और भाव क्या है, यह तीन बातें निश्चत करते हैं। पश्चात् खाने के समय तीनों को भूल जाते हैं। यह यहाँ कहते हैं।

पहले आत्मा प्रमाण से (जाने)। प्रमाण का अर्थ पूरी वस्तु क्या है, उसे सिद्ध करना, उसका नाम प्रमाणज्ञान है। अन्य अज्ञानी कहते हैं, उससे सर्वज्ञ जो कहते हैं, वैसे आत्मा का सामान्य और विशेष पूरे आत्मा का सर्वज्ञ ने कहा, वैसा प्रमाण से सिद्ध करना, वह पहला उपाय है। अभी यह विकल्प है। समझ में आया? अपनी दृष्टि से, स्वच्छन्द से या अज्ञान से कल्पना करके आत्मा को माने तो आत्मा ऐसा है नहीं। सर्वज्ञ भगवान ने जैसा आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड और उसकी अनन्त पर्याय, ऐसा आत्मा देखा। पूरी वस्तु को प्रमाण सिद्ध करता है। प्रमाण से पूरी वस्तु सिद्ध करते हैं।

नय वस्तु के एक भाग को सिद्ध करते हैं। सामान्य को या विशेष को या भेद को या अभेद को। समझ में आया? और निक्षेप ज्ञेय को सिद्ध करता है कि संज्ञारूप वस्तु है या स्थापनारूप है, योग्यतावाली है या प्रगट दशावाली है। समझ में आया? निक्षेप

चार प्रकार के ज्ञेय के भेद को सिद्ध करते हैं। पहले सिद्ध करने में यह आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? जैसे प्रमाण, नय, निक्षेप, ऐसे भाव, तराजू, तोल। तोल... तोल (बांट)। यह पाँच सेर बराबर है या नहीं? यह सरकार की ओर से आते हैं न? सिक्का ऊपर। वह बराबर हो तो फिर लेता है। तो पहले माल लेते समय; उसी प्रकार आत्मा को पहले विकल्प से, विकल्प से निर्णय करने में प्रमाण, नय और निक्षेप पहले अधिगम— समझने में आते है। है विकल्पात्मक। अन्तर अनुभव करने में आने पर वे अभूतार्थ हैं। अन्दर स्वरूप के अनुभव में है नहीं। लड्डू खाते हैं, बर्फी खाते हैं, तब तोल का विचार करते हैं? कितने रुपये सेर आया? कितने लिये? धड़ा किया है। कुछ नहीं।

मुमुक्षु : वह तो पहली अवस्था है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पहले अन्दर विकल्प है, लेते समय है, अनुभव में नहीं। समझ में आया?

उसी प्रकार सर्वज्ञ परमेश्वर ने त्रिलोकनाथ केवलज्ञानियों ने जैसा आत्मा देखा, कहा पूरा पूर्ण और उसमें एक भाग से क्या है, सामान्य से विशेष से, इस नय से, निक्षेप से योग्यतावाला द्रव्य है या नामसंज्ञावाला है या स्थापना है या वर्तमान भाव जैसी वस्तु है, ऐसा है? ऐसा निर्णय करने में पहले प्रमाण, नय और निक्षेप तीन आते हैं। समझ में आया? पश्चात् उसे—विकल्पात्मक को छोड़कर अकेले ज्ञानानन्द का अनुभव करने में, वे तीनों अभूतार्थ अर्थात् झूठे हैं। समझ में आया? अब आयेगा, देखो!

एकरूप से प्रकाशमान आत्मा के... प्रकाशमान तो एकरूप है, भाई! यहाँ सिद्ध करना है। भगवान चैतन्यप्रभु सामान्य एकरूप है, विशेष अनेकरूप है। उसमें से सामान्य एकरूप को निकालना है। ऐसे प्रकाशमान आत्मा के **अधिगम के उपाय जो प्रमाण, नय, निक्षेप हैं, वे भी निश्चय से अभूतार्थ हैं,...** समझ में आया? एकरूप प्रकाशमान चैतन्य सामान्य के अनुभव में प्रमाण, नय, निक्षेप से जो पहले सिद्ध किया था, वह सब विकल्पात्मक ज्ञान अभूतार्थ है। अन्दर में कोई सहायता करता नहीं। समझ में आया? कषाय की मन्दता तो अभूतार्थ है ही, स्वभाव की दृष्टि में नौ तत्त्व के भेद भी स्वभाव की दृष्टि में अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं, परन्तु प्रमाण, नय, निक्षेप का विकल्पात्मक

बोध हुआ, वह भी अन्तर एकाकार ज्ञान में नहीं होता तो वह भी असत्यार्थ और अभूतार्थ है। आहाहा! समझ में आया? उसमें विकल्प है।

मुमुक्षु : प्राप्त करने का साधन है....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, निमित्त है। निमित्त है। यदि प्राप्त करे तो उसे व्यवहार से साधन कहा जाता है। निश्चय साधन है ही नहीं।

मुमुक्षु : सच्चा साधन कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा साधन स्वभाव है।

मुमुक्षु : .... भेद नहीं है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, भेद साधन नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। नियमसार में आया था भेदवाद। नियमसार में पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि कहते हैं कि ध्यान में धर्मात्मा को कभी भेदवाद उत्पन्न होता है। है न वह श्लोक? कहाँ है यह कुछ खबर है? भेदवाद उत्पन्न होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, उससे धर्म होता है, मुक्ति होती है—ऐसा कौन जाने? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहीं है सही। एकसाथ कहीं सब हाथ आ जाये? भेदवाद उत्पन्न होता है, ऐसा आता है। १९४ कलश है। २४५ पृष्ठ देखो!

भेदवादाः कदाचित्स्युर्यस्मिन् योगपरायणे।
तस्य मुक्तिर्भवेन्नो वा को जानात्याज्ञते मते॥१९४॥

जो योगपरायण में कदाचित्... पण्डितजी को दो। बड़े पण्डित यहाँ रखे हैं न!

भेदवादाः कदाचित्स्युर्यस्मिन् योगपरायणे।
तस्य मुक्तिर्भवेन्नो वा को जानात्याज्ञते मते॥१९४॥

क्या कहते हैं? योगपरायण में (अर्थात्) अन्तर एकाकार में कदाचित् भेदवाद उत्पन्न होता है। विकल्प उत्पन्न हो जाते हैं। अर्थात् कभी विकल्प उठते हैं। **उसकी**

अर्हंत के मत में मुक्ति होगी या नहीं होगी, वह कौन जानता है ? अर्थात् मुक्ति नहीं होती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? **'मुक्तिर्भवेन्नो वा को जानात्या'** भेदवाद से कभी मुक्ति नहीं होती। ऐसा जोर करते हैं।

मुमुक्षु : भेदवाद साधन नहीं हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन-बाधन है नहीं, वह तो निमित्त कहा जाता है। यदि साधन करे, तब निमित्त कहा जाता है। समझ में आया ? ऐई ! यह तो बात स्वतन्त्र है। भेदवाद, देखो न ! भेद उत्पन्न होते हैं, परन्तु वह अर्हंत के मत में—वीतराग मत तो वीतरागस्वरूपी है, अभेद स्वभाव वीतराग में भेद से मुक्ति होगी या नहीं होगी कौन जाने ? अर्थात् नहीं होगी, ऐसा जानते हैं। भेदवाद से मुक्ति नहीं होती। समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु : भेद का ज्ञान कराते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान तो यह कराते हैं, भेद को छुड़ाने के लिये। परन्तु उसे पकड़ रखे कि उससे होता है, तो ऐसा नहीं होता। बात ऐसी है। (यह नियमसार का) १९४ (कलश) है, हों !

मुमुक्षु : परमार्थ का प्रतिपादक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो व्यवहार आता है, नौ विकल्प हैं। यह एक है, प्रमाण, नय, निक्षेप यह एक है। देखो न, पाठ ऐसा लिया है न ? **एकरूप से प्रकाशमान आत्मा के अधिगम के उपाय जो प्रमाण, नय, निक्षेप हैं, वे भी निश्चय से अभूतार्थ हैं,...** वे अन्दर सहायता नहीं करते। ओहोहो !

मुमुक्षु : सहायता नहीं करे तो फिर किस काम का ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु निमित्त तब ही कहलाता है। सहायता करे, तब तो उपादान हो गया। निमित्त तो प्रत्यक्ष दूसरी चीज़ अनुकूल है, उसे निमित्त कहते हैं। उसमें कार्य करे, तब तो निमित्त रहा कहाँ ? वह तो पर अन्दर घुस गया। बात ऐसी है।

मुमुक्षु : वह उपादान हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपादान हो गया। उपादान अपना कार्य करता है, तब वह निमित्त उपस्थित (चीज़) है, वह हो, परन्तु वह कार्य करती है, ऐसा नहीं। कारण तब रहता है, यथार्थ कारण एक ही है। दो कारण का तो कथन आया है। जैसे मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से आया है। मोक्षमार्ग एक ही है। मार्ग कहो या कारण कहो। मार्ग कहो या कारण कहो। जैसे मोक्ष का कारण एक ही है, उसी प्रकार वास्तविक कार्य में कारण एक ही है। दूसरे निमित्त का तो आरोपित कथन से ज्ञान कराने की बात की है। वस्तु ऐसी है। समझ में आया? भेदवाद उड़ा दिये, पद्मप्रभमलधारिदेव ने।

भेद हो, आता है; शरण नहीं। उसके आश्रय से तो बन्ध होता है। अभेद के आश्रय से संवर, निर्जरा और मुक्ति का उपाय उत्पन्न होता है। आहाहा! गजब बात, भाई! 'हरि का मारग है शूरों का, कायर का नहिं काम।' अन्यमति में कहते हैं, अन्यमति में नहीं कहते? अन्यमति में यह कहते हैं,

हरिनो रे मार्ग छे शूरानो, कायरना नहि काम जोने,
प्रथम पहेलुं मस्तक मूकी वळतां लेवुं नाम जोने....

हरि का—प्रभु का मार्ग। हरि अर्थात् आत्मा, हों! पापं ओघं हरति इति हरि। अज्ञान को विकार को हरनेवाला भगवान आत्मा, उसे यहाँ हरि कहते हैं।

हरिनो रे मार्ग छे शूरानो, कायरना नहि काम जोने,
प्रथम पहेलुं मस्तक मूकी,...

दुनिया की अर्पणता छोड़। दुनिया की लज्जा और इज्जत और दुनिया ऐसा कहती है, और ऐसा कहेगी, व्यवहार ऐसा आता है, यह सब छोड़। व्यवहारनय को तो लोकोक्ति कहा है। व्यवहारनय को लोकोक्ति कहा है। छोड़ उसका आश्रय। भगवान आत्मा चिदानन्द निर्विकल्प निरपेक्ष राग से, भेद से निरपेक्ष, उसका आश्रय करने से ही आत्मा को कल्याण और मुक्ति का उपाय सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त मुक्ति का उपाय तीन काल-तीन लोक में सिद्ध नहीं होता। समझ में आया? जिनेश्वरदासजी! ऐसी बात है। देखो!

प्रमाण, नय, निक्षेप हैं, वे भी निश्चय से अभूतार्थ हैं,... अब भाव पूछा, तोल

निश्चित किया, तराजू निश्चित किया तो खाने में काम आते हैं? सब छूट जाते हैं? अनुभव में वे काम नहीं आते। समझ में आया? उसी प्रकार आनन्द के अनुभव में प्रमाण, नय, निक्षेप के विकल्प काम नहीं आते। आहाहा! मार्ग वह भी मार्ग! समझ में आया? अब इसका न्याय देते हैं। **उनमें भी यह आत्मा एक ही भूतार्थ है...** देखो! क्या कहते हैं? प्रमाण का ज्ञान विकल्प से हो... प्रमाण भी दो प्रकार के हैं। विकल्पात्मक प्रमाण और निर्विकल्पात्मक प्रमाण। नय भी दो प्रकार के हैं। एक विकल्पात्मक नय और निर्विकल्प निश्चयनय। समझ में आया? यह विकल्पात्मक प्रमाण, नय की व्याख्या करते हैं। यह नयचक्र में आया है। प्रमाण के दो प्रकार नयचक्र में हैं। सविकल्पात्मक प्रमाण, एक निर्विकल्पात्मक प्रमाण। सविकल्प प्रमाण (अर्थात्) यह विकल्प से निर्णय करना कि आत्मा सामान्य क्या है, विशेष क्या है, एक साथ पूरी वस्तु कैसी है, उसका निर्णय करना, वह विकल्पात्मक प्रमाण है। निर्विकल्प प्रमाण—अपने स्वरूप का एकाकार होकर अनुभव करना, सामान्य का ज्ञान और विशेष पर्याय निर्मल हुई, उसका ज्ञान करना, वह निर्विकल्प प्रमाण है। समझ में आया? आहाहा! यह नयचक्र में है।

नय के दो प्रकार। समयसार में है। १४४ में लिया है। अबद्ध, अशुद्ध, शुद्ध, यह सब विकल्पात्मक है। २७२ में कहा कि व्यवहार प्रतिषेध, निश्चय प्रतिषेधक। 'निश्चयनयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करे निर्वाण की।' यह निश्चयनय विकल्परहित की बात है।

मुमुक्षु : ११वीं में भी निर्विकल्प....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्परहित है, ११वीं में विकल्परहित है। '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**'। १४३-१४४ (गाथा) कर्ता-कर्म अधिकार (के कलशों) में बीस बोल लिये हैं न? अबद्ध, बद्ध, शुद्ध, अशुद्ध, एक, अनेक यह सब विकल्पात्मक है, निश्चय निर्विकल्पात्मक है। इसलिए नय के भी दो प्रकार हैं। एक विकल्प से, एक स्वभाव का आश्रय करना, वह निश्चय है। समझ में आया? एक स्वसंवेदन करके आत्मा का—सामान्य का विशेष में अनुभव करना, वह निर्विकल्प प्रमाण है। उस प्रमाण से निश्चित करना कि सामान्य क्या है, विशेष क्या है, पूरी वस्तु क्या है। विकल्प से सिद्ध करना, वह विकल्पात्मक प्रमाण है।

आत्मा एक ही भूतार्थ है... आहाहा! अब दूसरी बात राग की मन्दता और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा तो कहीं रह गयी। यह तो आत्मा पूरी वस्तु को निश्चित करना और भाग निश्चित करना, भाग अर्थात् नय, पूरी वस्तु का एक भाग। एक भाग समझे? एक अंश। पूरी वस्तु का निर्णय करना, वह प्रमाण है और पूरी चीज़ में से एक गुण का अथवा पर्याय का भेद से निर्णय करना, वह नय है। और निक्षेप तो मात्र जो शब्द बोले जाते हैं, उनमें संज्ञावाला कौन है, स्थापना कौन है, योग्यता क्या है, प्रगट पर्याय कौनसी है, यह बतलाने के लिये चार निक्षेप हैं। वे निक्षेप ज्ञेय के भेद हैं। नय ज्ञान का भेद है। प्रमाण ज्ञान का भेद है, नय भी प्रमाण का भेद है, निक्षेप ज्ञेय का भेद है। नय विषयी है, निक्षेप विषय है। ऐसे पहले सिद्ध करने के लिये तीन बोल आते हैं। परन्तु **उनमें भी यह आत्मा एक ही भूतार्थ है...** भगवान आत्मा स्वभाव-सन्मुख होकर निर्विकल्प अनुभूति करना, उसमें एक आत्मा ही भूतार्थ है, सत्य आत्मा ही दिखता है, दूसरे भेद-बेद या विकल्प है नहीं। ओहोहो! मार्ग... मार्ग। परमात्मा का मार्ग, बापू! आहाहा! परमात्मा स्वयं है। पोते को क्या कहते हैं? स्वयं। स्वयं भगवान पूर्णानन्द अनन्त परमात्मा जिसके गर्भ में पड़े हैं, गर्भ में पड़े हैं। जब प्रसव होता है, वह है उसमें होता है या नहीं? सिद्ध परमात्मा कहाँ से प्रगट होते हैं? अन्दर में अनन्त सिद्ध परमात्मा स्थित हैं। आहाहा! पर्याय तो पर्याय प्रगट होती है, वह तो पर्याय है। ऐसे एक आत्मा का अन्तर अनुभव करना, वह एक ही सत्यार्थ है और यह प्रमाण, नय, निक्षेप से जानने का विकल्प, वह असत्यार्थ है। पहली अवस्था में है। है इतना बराबर है। परन्तु अनुभव के काल में नहीं, इसलिए इस अपेक्षा से अभूतार्थ कहा है। समझ में आया?

(क्योंकि ज्ञेय और वचन के भेदों से प्रमाणादि अनेक भेदरूप होते हैं)। प्रमाण पूरी वस्तु को निर्णय करने में, नय गुण के भेद को निर्णय करने में, गुण और पर्याय और निक्षेप वचन के भेद। नाम निक्षेप है, यह संज्ञारूप है, स्थापनारूप है, योग्यतारूप है, भावरूप है। ऐसे भेद। **(प्रमाणादि अनेक भेदरूप होते हैं)। उनमें से पहले, प्रमाण दो प्रकार के हैं** - देखो! यह बात किसलिए कहते हैं? जैसे पर्याय में नौ भेद हैं, वह सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं। समझ में आया? जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा, मोक्ष, ऐसी पर्याय के नौ विकल्प और भेद वास्तविक सर्वज्ञ

परमात्मा के अतिरिक्त पर्याय के भेद दूसरे में है नहीं। तो पहले नौ को सिद्ध किया। नौ को सिद्ध करके उड़ा दिया। परन्तु है उसे उड़ाया, वह सामान्य में नहीं। समझ में आया? यह प्रमाण, नय, निक्षेप भी सर्वज्ञ के शास्त्र में ही है। सर्वज्ञ के मार्ग में ही है। दूसरे में ऐसे प्रमाण, नय, निक्षेप कहीं नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **प्रमाण दो प्रकार के हैं - परोक्ष और प्रत्यक्ष। उपात्त और अनुपात्त पर (पदार्थों) द्वारा प्रवर्ते, वह परोक्ष है...** परोक्ष ज्ञान की व्याख्या। उपात्त अर्थात् इन्द्रिय, मन इत्यादि उपात्त परपदार्थ। इन्द्रिय और मन यहाँ प्राप्त है न! वे परपदार्थ हैं। अनुपात्त अर्थात् अप्राप्त। प्रकाश, उपदेश इत्यादि अनुपात्त है। प्रकाश और उपदेश बाहर में है। वे जिसमें निमित्त पड़ते हैं, (उसके द्वारा) **प्रवर्ते वह परोक्ष है...** उस ज्ञान को परोक्ष कहते हैं। ज्ञान में परोक्षता निमित्त के कारण से, निमित्त द्वारा जानना, उसे परोक्ष ज्ञान कहते हैं। ऐसी स्थिति है। पर्याय में ऐसी स्थिति है।

केवल आत्मा से ही प्रतिनिश्चितरूप से प्रवृत्ति करे, सो प्रत्यक्ष है। देखो! यहाँ तो तीनों बोल ले लिये, भाई! अवधि, मन:पर्यय और केवल। समझ में आया? किसी जगह अवधि और मन:पर्यय परोक्ष में गिने हैं। पंचाध्यायी में है। वहाँ केवलज्ञान की अपेक्षा से लिया है। यहाँ तो अकेले आत्मा की अपेक्षा से यह लिया है। तत्त्वार्थसूत्र में भी तत्प्रमाण है। पंचाध्यायी में वह लिया है, चार ज्ञानसहित। मन का संग है न, तो उन चारों ही ज्ञान को एक न्याय से परोक्ष कहा है। और पूर्ण हो, उसे प्रत्यक्ष कहा है। यहाँ तो तत्त्वार्थसूत्र की शैली से लिया है। **केवल आत्मा से ही प्रतिनिश्चितरूप से प्रवृत्ति करे...** अकेले आत्मा से—स्वयं से ज्ञान हो, जिसमें राग, मन का निमित्त न हो, ऐसे ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं। ऐसा पर्याय में प्रत्यक्षपना है। इन्द्रिय आदि है, मन आदि है, उसका ज्ञान परोक्ष। और अनुपात्त, प्रकाश आदि है, उनसे हुआ ज्ञान परोक्ष। वह चीज़ है, उसके द्वारा ज्ञान करना, वह परोक्ष। ऐसी वस्तु सिद्ध करते हैं। ज्ञान की परोक्षता में यह चीज़ है। प्रत्यक्षता में अकेले आत्मा के आश्रय से होता है, समझ में आया? वस्तु की पर्याय में ऐसी स्थिति है। ऐसी स्थिति को भी जो यथार्थ न जाने, उसे तो आत्मा सिद्ध करने का कोई यथार्थ उपाय रहा नहीं। समझ में आया?

(प्रमाण ज्ञान है। वह ज्ञान पाँच प्रकार का है - मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवल। उनमें से मति और श्रुतज्ञान परोक्ष हैं,...) अभी पर की अपेक्षा से बात चलती है, हों! अनुभव की अपेक्षा से मति-श्रुत प्रत्यक्ष है। यहाँ तो पर की अपेक्षा भेद की अपेक्षा से चलती है न, भाई! विकल्प से चलता है। मति और श्रुतज्ञान परोक्ष अर्थात् मन से, इन्द्रिय से (जानता है), इसलिए परोक्ष है। परन्तु ऐसा है। मन और पाँच इन्द्रियाँ हैं। उनके लक्ष्य से मति होता है, इन्द्रिय और मन द्वारा होता है। श्रुत मन से होता है। मति मन और इन्द्रिय से (होता है)। ऐसी चीज़ है, मन, इन्द्रिय है। मति-श्रुत उनके आश्रय से काम करते हैं। आश्रय अर्थात् स्वयं परलक्ष्यी काम करते हैं। ऐसी चीज़ है। ऐसी परोक्षता है। समझ में आया? आहाहा! वह परोक्षता होने पर भी स्वभाव का अनुभव करने में वे काम करते नहीं। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार को सिद्ध करते हैं। व्यवहार है। समझे? परन्तु आश्रय करनेयोग्य नहीं। नौ तत्त्व है, भेद है, आश्रय करनेयोग्य नहीं है। प्रमाण, नय, निक्षेप से विकल्प से ज्ञान होता है, आश्रय करनेयोग्य नहीं।

(अवधि और मन:पर्ययज्ञान विकल-प्रत्यक्ष हैं...) विकल्प प्रत्यक्ष, अपूर्ण प्रत्यक्ष। देखो! ज्ञान की पाँच पर्यायों में ऐसे भेद हैं। बिल्कुल है ही नहीं, अकेली पर्याय एकरूप है, एकरूप है—ऐसा नहीं। ज्ञानगुण की एक समय की पर्याय में भी पाँच प्रकार क्रम-क्रम से पड़ते हैं। मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवल। परोक्ष है, प्रत्यक्ष है—ऐसा पर्याय का स्वभाव है। ऐसी पर्याय सिद्ध करते हैं। समझ में आया? **(इसलिए यह दो प्रकार के प्रमाण हैं।) वे दोनों प्रमाता,...** जाननेवाला आत्मा। **प्रमाण...** ज्ञान, **प्रमेय...** उसका विषय प्रमेय। ऐसे **भेद का अनुभव करने पर तो भूतार्थ हैं,...** है। प्रमाण, प्रमेय, प्रमाता तीन भेद के विकल्प हैं, विकल्प हैं, अस्ति है। सर्वथा खरगोश के सींग है नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? यह कोई गप्प है और झूठ है, ऐसा नहीं। एक ही आत्मा है और ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या, ऐसा नहीं—ऐसा यहाँ कहते हैं। ऐसी परोक्ष प्रमाण, प्रत्यक्ष प्रमाण आदि वस्तु है।

प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय के भेद का अनुभव करने पर तो भूतार्थ हैं,... पर्याय में इतने भेद पड़ते हैं। **सत्यार्थ है...** व्यवहार से व्यवहार है। **और जिसमें सर्वभेद गौण हो**

गये हैं... देखो अब। गौण हो गये, हों! अभाव नहीं। पर्याय नहीं, ऐसा नहीं है। परन्तु भेद गौण हो गये। अपना ज्ञाता शुद्धस्वभाव '**भूदत्थेणाभिगदा**'। भूतार्थ से जानना। यहाँ अभूतार्थ से आत्मा को जाना। प्रमाण, नय, निक्षेप अभूतार्थ हो गये। **सर्वभेद गौण हो गये हैं...** भाषा देखो न! ओहोहो! निज प्रयोजन सिद्ध करने के लिये प्रमाण से जो भेद से समझ में आया, उसे गौण कर दिया। पहले वस्तु को सिद्ध किया। गौण किये। अपना अनुभव काल में भेद को गौण करके **ऐसे एक जीव के स्वभाव का अनुभव करने पर...** एक ज्ञायकस्वभाव, अभेद स्वभाव। देखो! **एक जीव के स्वभाव का...** जीव स्वभाव शब्द से ज्ञायकस्वभाव। अकेला अभेद ज्ञायकस्वभाव। यह अनुभूति। **अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं।** अपने अभेद में वे दिखते नहीं। अभेद में है नहीं, अनुभव में वे भेद हैं नहीं। समझ में आया? भेद में भेद है। प्रमाण, प्रमाता, प्रमेय है, तीन प्रकार है। भेद की दृष्टि से, पर्यायदृष्टि से, व्यवहार से है। परन्तु वह है, उन्हें गौण करके; 'नहीं' ऐसा करके नहीं। समझ में आया? गौण करके। अपने प्रयोजन की सिद्धि भेद के आश्रय से नहीं होती। प्रयोजन की सिद्धि-अनुभव की सिद्धि अभेद के आश्रय से होती है। भेद को गौण करके अकेला चैतन्य आत्मा ज्ञायकभाव है, ज्ञायकभाव... समझ में आया? पारिणामिकभाव से भी वह ज्ञायकभाव पारिणामिक लेना है। पारिणामिक तो जड़ में भी है। ज्ञायकभावरूप पारिणामिकभाव। ज्ञायकभाव—जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... त्रिकाल पारिणामिक। ऐसा अनुभव करने से प्रमाण के तीन भेद, परोक्ष और प्रत्यक्ष और प्रमाण, प्रमेय और प्रमाता और भेद-बेद है ही नहीं। समझ में आया?

अमृतचन्द्राचार्य ने सीधे नौ तत्त्व की गाथा में से निकाला है। श्रीमद् में ऐसा आता है, श्रीमद् राजचन्द्र में।

त्याग वैराग्य न चित्त में, होय न उसको ज्ञान
अटके त्याग वैराग्य में तो भूले निज भान।

साधारण जनता की त्याग-वैराग्य के ऊपर वृत्ति होती है, इसलिए वहाँ से उठाया। जिसे अन्तर में कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का त्याग नहीं और जिसे अभी राग की मन्दतारूप वैराग्य नहीं, उसे आत्मा का भान नहीं। परन्तु वह वहाँ अटके तो भी आत्मा

का भान नहीं होता। 'अटके त्याग वैराग्य में' चित्त में मन्द कषाय में रुक जाये और उसकी रुचि छोड़कर आत्मा का अनुभव न करे तो 'भटके संसारी मांही।' समझे? 'अटके त्याग वैराग्य में तो भूले निज भान।' समझ में आया?

यहाँ दूसरा कहा है, यहाँ नौ तत्त्व से बात उठायी है। साधारण जनता थी, इसलिए उस समय इस शैली से बात की है। यहाँ आचार्यदेव की शैली तो शास्त्रीय रीत की जो अनादि की है, वैसी बनायी है। नौ तत्त्व के भेदरूप जिसकी यथार्थ श्रद्धा नहीं, उसे अभेद की श्रद्धा नहीं होती। और नौ तत्त्व में रुक जाये तो अभेद की श्रद्धा नहीं होती। समझ में आया? जैसे उसमें (कहा), 'त्याग वैराग्य न चित्त में', ऐसे नौ तत्त्व की पर्याय की भी जिसकी श्रद्धा नहीं, मोक्ष है, संवर है, निर्जरा है, आस्रव है, बन्ध है, अजीव है—ऐसी श्रद्धा नहीं तो उसे आत्मा की श्रद्धा नहीं होती। परन्तु उसकी श्रद्धा में रुक जाये तो भी आत्मा की श्रद्धा नहीं होती। समझ में आया?

यहाँ क्या कहा? वहाँ त्याग वैराग्य में से उठाया, यहाँ आचार्य ने दूसरे से उठाया। अन्दर परोक्ष और प्रमाणज्ञान का ज्ञान करना, परोक्ष प्रमाण से। ऐसे विकल्पात्मक ज्ञान से वस्तु सिद्ध नहीं करे तो वस्तु की प्रसिद्धि नहीं होती। वस्तु जैसी है, वैसी सिद्ध नहीं होती। तो पहले ऐसे विकल्पात्मक ज्ञान में प्रमाण में ऐसा आता है। वह आये बिना रहता नहीं। परन्तु आता है तो भी उससे अभेद नहीं होता। समझ में आया? वहाँ कहा, 'त्याग वैराग्य न चित्त में, होय न उसको ज्ञान।' यहाँ कहा, नौ तत्त्व के भेद का ज्ञान नहीं, उसे अभेद नहीं होता। फिर वहाँ कहा 'अटके त्याग वैराग्य में।' जो कषाय की मन्दता में रुक जाये तो ज्ञान नहीं होता। यहाँ नौ तत्त्व के भेद में रुक जाये तो स्वभाव का भान नहीं होता। ऐसी शैली, अध्यात्म शैली सन्तों की इस प्रकार से कही है। समझ में आया? ऐ... जयन्तीभाई! कहाँ गये वल्लभभाई? ... ऐसा जो व्यवहार है, वह जैसा है, वैसा न जाने तो उसका निषेध करके निश्चय में कहाँ से आवे? समझ में आया? व्यवहार है ही नहीं, ऐसा नहीं। व्यवहार है। प्रमाण का ज्ञान करने में ऐसा विकल्पात्मक बोध पहले (आता है)। बोध, हों! विकल्पात्मक है, परलक्ष्यी है। यथार्थ है नहीं। परन्तु उसमें वस्तु सिद्ध करनी है कि यह सामान्य अनन्त गुण का पिण्ड है, एक समय की

पर्याय है। उसमें परोक्ष ज्ञान है, प्रत्यक्ष ज्ञान है। उस परोक्ष में भी उपात्त-अनुपात्त का निमित्त है। प्रत्यक्ष में तो अकेले आत्मा का शरण है, निमित्त का नहीं। ऐसे विकल्पात्मक बोध से पहले वस्तु को सिद्ध करना, यही पहला साधन में आता है। परन्तु वह अनुभव करने में असत्यार्थ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं, वह तो जाना इतना, उसमें क्या हुआ? तब तो उसे निमित्त ही नहीं कहा जाता। ऐसा तो अनन्त बार किया। परन्तु उसे छोड़कर अभेद अनुभव न करे तो उसे निमित्त भी नहीं कहते।

मुमुक्षु : साधन....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह साधन व्यवहार साधन है। व्यवहार साधन का अर्थ निमित्त साधन है। परन्तु निमित्त साधन कब कहलाता है? कि उसे छोड़कर अभेद को साधन करे तो उसे निमित्त साधन कहा जाता है। बात ऐसी कोई है। समझ में आया? विलक्षण बात। प्रभु! सर्वज्ञ का मार्ग है, प्रभु! तेरा मार्ग ही अलौकिक वीतरागमार्ग है। वीतरागमार्ग है। जिसमें से वीतरागता उत्पन्न होती है, वह मार्ग है। भेद से वीतरागमार्ग उत्पन्न नहीं होता। समझ में आया? वीतरागी दृष्टि कहो या वीतरागी स्वसंवेदन ज्ञान कहो, वह भेद से उत्पन्न नहीं होता। वह तो रागवाला ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **सर्वभेद गौण हो गये हैं...** गौण कर दिये। गौण कर दिये और अनुभव किया तो पहले ऐसे विकल्पात्मक भेद थे, ऐसा ज्ञान किया। आदरणीय नहीं। **ऐसे एक जीव के स्वभाव का अनुभव करने पर...** देखो! प्रमेय भेद का अनुभव करने से। अनुभव शब्द से ज्ञान। भेद का। प्रमाण, प्रमेय, प्रमाता परोक्ष, प्रत्यक्ष ऐसे ज्ञान में भेद का ज्ञान हुआ, इस अपेक्षा से भेद है। परन्तु भगवान आत्मा सर्व भेदों का लक्ष्य छोड़कर जैसी वस्तु की सिद्धि की है, वैसे विकल्प को छोड़कर अकेले ज्ञायकस्वभाव में पर्याय के प्रत्यक्ष-परोक्ष के भेद को गौण करके, सामान्य स्वभाव की ओर दृष्टि होने से भूतार्थ आत्मा अनुभव में आता है। उसे सत्यार्थ कहते हैं। वही सत्यार्थ है। तब प्रमाण आदि ज्ञान असत्यार्थ है। उस विकल्पात्मक की अपेक्षा से। ज्ञान में जाना था कि केवलज्ञान

स्व के आश्रय से पूर्ण है, वह कहीं असत्य नहीं हो गया। समझ में आया? परन्तु विकल्पात्मक ज्ञान से जाना था, वह निर्विकल्प ज्ञान करने से झूठा हो गया, ऐसा। समझ में आया?

केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक जानता है। आत्माश्रित है, अवधि, मन:पर्यय देशविकल हैं और मति-श्रुत आदि परोक्ष है। यह जाना था, वह झूठ नहीं। परन्तु विकल्प से जाना था। केवलज्ञान एक समय में तीन काल को जानता है आत्माश्रित, ऐसा विकल्प से निश्चित किया था। निश्चित किया था, वह केवलज्ञान झूठा नहीं। परन्तु विकल्प से निश्चित किया था, वह निर्विकल्प के आश्रय से झूठा हो गया। समझ में आया? बात यह है। मूल बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह झूठ नहीं हो गया। केवलज्ञान एक समय में आत्मा के आश्रय से जानता है, ऐसा विकल्प से निश्चित किया था, यह बात खोटी नहीं हो गयी, विकल्पात्मक का भेद असत्यार्थ हो गया। समझ में आया? प्रभु का मार्ग, बापू! अलौकिक मार्ग है। समझ में आया?

धार तलवारनी सोह्यली दोह्यली, चौदमा जिन तणी चरणसेवा,
धार पर नाचता देख बाजीगरा, सेवना धार पर रहे न देवा।

यह आनन्दघनजी कहते हैं। भगवान धर्मनाथ आत्मा स्वभाव का नाथ, उसकी सेवा तलवार की धार पर रहनेवाले बाजीगर बहुत हैं, परन्तु अपने स्वरूप की धार-ऊपर सेवा करनेवाले प्राणी बहुत थोड़े हैं। समझ में आया? यह गुजराती में है। आनन्दघनजी हो गये न!

'धार तलवारनी सोह्यली...' तलवार की धार होती है न? तलवार। 'धार तलवारनी सोह्यली दोह्यली, चौदमा जिन तणी चरणसेवा' धर्मनाथ चैतन्यप्रभु, उसका धर्म स्वभाव, उसकी एकाग्र सेवना करना। 'धार तलवारनी सोह्यली दोह्यली, चौदमा जिन तणी' चौदहवाँ अर्थात् अनन्तनाथ। अनन्तनाथ आत्मा। समझ में आया? 'धार तलवारनी सोह्यली दोह्यली, चौदमा जिनतणी चरणसेवा।'

'धार पर नाचता देख बाजीगरा' बाजीगर तलवार के ऊपर नाचते हैं। 'पण सेवना धार पर रहे न देवा' परन्तु सेवना धार-ऊपर अज्ञानी रह नहीं सकते। भेद का आश्रय करनेवाले, विकल्प को अपना स्वरूप माननेवाले, वे अपने चिदानन्दस्वरूप की सेवा नहीं कर सकते। समझ में आया? इसके दो अर्थ हैं। न देवा। देव भी वहाँ स्वरूप की स्थिरता नहीं कर सकते। देवों को सम्यग्दर्शन होता है, परन्तु स्वरूप स्थिरता नहीं होती। 'लहे न देवा'। दो अर्थ हैं इसके। समझ में आया? भगवान धर्मनाथ अनन्तनाथ। समझ में आया? अनन्तनाथ है न वह? धर्मनाथ अनन्त गुण का नाथ है। चौदहवें अनन्तनाथ, पन्द्रहवें धर्मनाथ आये न पीछे। अनन्त गुण का स्वरूप उसमें अभेद का सेवन करना, तलवार की धार से भी उसमें अनन्तगुणा पुरुषार्थ है। समझ में आया?

एक जीव के स्वभाव का अनुभव करने पर... एक स्वभाव। प्रमाण के भेद पहले किये थे, उन्हें गौण करके, उनका लक्ष्य छोड़कर एक स्वभाव चैतन्य का अनुभव करने पर वे भेद झूठे हो गये। गौण करके झूठे हो गये। समझ में आया? कितने ही कहते हैं न?

केवलज्ञान है तो सद्भूतव्यवहारनय का विषय है, तो व्यवहार तो झूठा है। इसलिए पर्याय झूठी है। ऐसा नहीं। पर्याय तो पर्याय है। त्रिकाल की अपेक्षा से एक अंश है, इसलिए उसे व्यवहार कहा है। सद्भूतव्यवहारनय। सद्भूतव्यवहारनय का विषय केवलज्ञान है। और केवलज्ञान एक समय में तीन काल जानता है तो पर का जानना व्यवहार है, इसलिए तीन काल नहीं जानते, ऐसा नहीं है। सुन तो सही! तीन काल का और अपना जानना भूतार्थ अपनी पर्याय में अपने से जानते हैं। वह तो यह पर को जानना—ऐसा कहना, वह असद्भूतव्यवहार है। समझ में आया? सर्वज्ञपने की पर्याय जो अपने में उत्पन्न हुई, वह असद्भूत नहीं। वह यथार्थ है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में केवलज्ञानी स्व और पर दोनों को देखते हैं न। वह तो अपनी पर्याय में देखते हैं। अपनी पर्याय ऐसी है। परन्तु वह पर्याय पर को देखती है, ऐसा कहना, वह असद्भूत है। बाकी पर का ज्ञान, अपना ज्ञान एक समय में पूरा हो

गया है, वह असद्भूत नहीं। समझ में आया? सर्वज्ञपर्याय प्रगट हुई है, वह असद्भूत नहीं, झूठी नहीं। यथार्थ है। एक समय में अपने पूर्ण द्रव्य-गुण-पर्याय और त्रिकाल द्रव्य-गुण-पर्याय एक समय में पूरे जाने हैं। ऐसे विकल्प से भी निर्णय किया। भाई! अभी तो विकल्प से केवलज्ञान तीन काल-तीन लोक जानता है, ऐसा विकल्प में निर्णय नहीं, उसके तो व्यवहार का भी ठिकाना नहीं। यह कहते हैं इसमें। एक विकल्प द्वारा भी केवलज्ञान ऐसा है कि तीन काल-तीन लोक प्रत्यक्ष देखता है। वह अपनी पर्याय को देखता है। पूर्ण देखता है। पर को जानता है, ऐसा कहना असद्भूत है।

जैसे जल को देखता है... जल है न? जल। जल को देखता है तो ऊपर के तारा आदि जल में साथ में दिखाई देते हैं। ताराओं को देखने जाना नहीं पड़ता। जल स्वच्छ है न। ऐसे नजर करता है तो जल के साथ ऊपर तारे हैं न। सत्तर लाख... ऐसा क्या? भूल गये। एक-एक चन्द्र और सूय है न? क्या अंक? सत्तर लाख... तारे हैं न? आँकड़ा क्या है? वरना आँकड़ा पहले आ जाये। एक-एक चन्द्र और एक-एक सूर्य के साथ। समझे? २८ नक्षत्र, ८८ ग्रह, समझे? छयासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी तारे। छयासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी तारे। एक-एक चन्द्र के साथ में परिवार है। यह तो पहले सीखे थे। (संवत्) १९६८ के वर्ष। ६८, ६८। छयासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी तारे। ऐसे जल में देखने से दिख जाते हैं।

इस प्रकार अपनी ज्ञानपर्याय देखते हैं, उसमें लोकालोक दिख जाता है। समझ में आया? लोकालोक जैसा अन्दर में यथार्थ है। ऐसा कहना कि उसे देखते हैं, ऐसा कहना वह असद्भूत है। क्योंकि पर को तन्मयरूप से देखते नहीं। पर को तन्मयरूप से देखते नहीं, इसलिए असद्भूत कहा। अपनी पर्याय में तन्मय होकर देखते हैं, इसलिए यथार्थ कहा। समझ में आया? अपने ज्ञान में सर्वज्ञ पर्याय प्रत्यक्ष बराबर है। ऐसा तो विकल्पात्मक ज्ञान से निर्णय किया है, भाई! आहाहा! समझ में आया? अभी विकल्प में भी ऐसे केवलज्ञान में शंका करे कि तीन काल-तीन लोक जानते हों तो सब नियत है, क्रमबद्ध है? भगवान! केवलज्ञान में तो तीन काल-तीन लोक एक समय में जानते हैं। उसमें आगे-पीछे नहीं। एक समय में सब दशा तीन काल-तीन लोक की अपनी पर्याय में जानते हैं। ऐसा तो विकल्प से निर्णय करना, अभी वह भी पुण्यबन्ध का कारण है। वह

सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह बात यहाँ कहते हैं।

व्यवहार का भी इसे यथार्थपना हो, तब व्यवहार का लक्ष्य छोड़कर अकेला अनुभव करे तो व्यवहार अभूतार्थ हो गया। समझ में आया? भारी सूक्ष्म, भाई! भाई! तेरा रास्ता ही ऐसा है। जिसे प्रत्यक्ष एक समय में आत्मा पूर्ण पर्याय प्रगट करे। सर्वज्ञ प्रभु। त्रिकाल जिसके एक समय में समाहित हो गये। पहले समय में जानते हैं। वह होगा, तब जानते हैं, ऐसा नहीं। होगा, तब जानते हैं, वह ज्ञान कैसा? एक समय में तीन काल। भूल-भविष्य-वर्तमान। वर्तमानवत् समय में जानते हैं। ऐसा सर्वज्ञपद केवलज्ञान आत्मआश्रय से होता है। लोकालोक के आश्रय से नहीं, निमित्त के आश्रय से नहीं, मन के आश्रय से नहीं, राग के आश्रय से नहीं। ऐसे आत्मा के केवलज्ञान का निर्णय रागसहित करना, उसे पुण्यबन्ध का कारण कहते हैं। यह निर्णय भी केवल आत्मा के स्वभाव का आश्रय किया तो विकल्प का जो प्रमाण था, वह छूट गया। समझ में आया? छूट गया का अर्थ, केवलज्ञान तीन काल जानता है, वह छूट गया, ऐसा नहीं। ऐसा श्रद्धा में से छूट गया है, ऐसा नहीं। विकल्प से जो निर्णय किया था, वह ज्ञान के अनुभव में वह विकल्प से निर्णय किया था, वह झूठा है। ऐसा। आहाहा! कितने ही कहते हैं, निर्विकल्प अनुभव होने के पश्चात् केवलज्ञान आदि सब झूठा है। ऐसा नहीं। समझ में आया? सब खोटा है। नौ तत्त्व तो पहले हैं, वह सब खोटा है। वेदान्त कहता है न? वह तो एक में कुछ नहीं। व्यवहार-फ्यवहार कुछ नहीं। नहीं, व्यवहार से व्यवहार है। निश्चय के अनुभव में व्यवहार नहीं। समझ में आया? इसलिए आचार्य महाराज ने प्रमाणज्ञान को निश्चित कराया है। समझ में आया? भाई! केवलज्ञान है, मतिज्ञान है, श्रुतज्ञान है, परोक्ष है, प्रत्यक्ष है। इन्द्रिय आदि निमित्त है। उसमें प्रकाश आदि निमित्त है। उसमें निमित्त नहीं। ऐसी चीज़ है। ऐसा विकल्प से निर्णय करना, उसका नाम व्यवहार। परन्तु उसका भी निषेध करके अकेला ज्ञान का अनुभव करे तो व्यवहार उड़ गया। भेद का लक्ष्य रहा नहीं। केवलज्ञान निश्चित किया, यह बात उड़ गयी, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं, **एक जीव के स्वभाव का अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं।** यह प्रमाण की व्याख्या की, नय की करेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल १२, सोमवार, दिनांक - २६-०९-१९६६
श्लोक-८, प्रवचन - ५९

पर्यूषण पर्व का आज आठवाँ दिन है। त्यागधर्म, त्यागधर्म।

मुमुक्षु : उत्तम त्याग।

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्तम त्याग है, परन्तु उत्तम त्याग का अर्थ क्या? यह कहते हैं, देखो!

जो चयदि मिट्ठभोज्जं उवयरणं रायदोससंजणयं।
वसदिं ममत्तहेदुं चायगुणो सो हवे तस्स॥४०१॥

पहली बात तो यह है कि मुनि होने के अधिकारी, जो संसार देह भोग से विरक्त हैं। अन्तर में संसार के भाव से विरक्त, देह से विरक्त और भोग से विरक्त हैं। ऐसा जिसे अन्तर में आत्म—अनुभवपूर्वक राग से विरक्ति हुई है। समझ में आया? बाह्य का त्याग, वह त्याग—ऐसा यहाँ नहीं। संसार उदयभाव विकारी चार गति का कारणभाव, उससे अन्दर में विरक्त है। समझ में आया? अनाकुल आनन्दस्वभाव, जिसमें भव का भाव नहीं। ऐसे स्वभाव में एकाग्रता है और संसार से विरक्त है। अशरीरी चैतन्यस्वभाव में लीन है और शरीर से विरक्त है।

दूसरा भोग। यह आता है न? संसार, तन, भोग... यह भावना में आता है। भोग-आत्मा के अनाकुल आनन्द के भोग में लीन है और बाहर के भोग से विरक्त है। उसका नाम त्याग है। समझ में आया? देखो! भावार्थ में है। मूल यह तीन शब्द क्या लिये हैं? मुनि संसार, शरीर, भोग से तो विरक्त हैं ही, तब तो मुनि हुए हैं। समझ में आया? संसार से विरक्त हैं, चार गति के भाव से विरक्त हैं। अपना स्वभाव अनाकुल आनन्द में लीन-रति है। पर से विरति है, अपने में रति है। शरीर से विरति है, निवृत्ति है और अपने आनन्दस्वभाव में रति है। समझ में आया? उनसे विरक्त हैं। भोग—अनाकुल आनन्द

के भोग में लीन हैं और बाह्य भोग से, मुनि होने के अधिकारी विरक्त हैं। अब उन्हें तीन में काम पड़ता है। एक, शरीर के लिये भोजन। एक उपकरण और रहने की बसति। तीन का काम पड़ता है। समझ में आया? तो उसमें इन तीन के नाम लिये।

कहते हैं, मिष्ट भोजन छोड़े। इष्ट भोजन, जिसमें रति उत्पन्न हो ऐसा भोजन छोड़ दे। तीन की विरक्ति तो है ही। संसार, भोग और शरीर। समझ में आया? अशरीरी स्वरूप भगवान आनन्द का भोग और अनाकुल स्वभाव में संसार का भाव नहीं। ऐसी चीज़ में लीन है तो पर से विरक्त है। तीन के काम पड़ते हैं। आहार, उपकरण, बसति। आहार में मिष्ट भोजन की ममता छोड़ दे। इसका नाम त्यागधर्म है। समझ में आया?

उपकरण में '**रायदोससंजणयं**'। जिसमें राग-द्वेष उत्पन्न हो, ऐसे उपकरण। उपकरण में कौन? पुस्तक, पिच्छी और कमण्डल तीन उपकरण हैं। उनमें भी राग-द्वेष उत्पन्न हों, वैसे उपकरण नहीं रखते। गृहस्थ के योग्य न हो, गृहस्थजन को काम न आवे, ऐसी वस्तु को उपकरणरूप से रखते हैं। परन्तु तीव्र आसक्ति नहीं करते, इसका नाम त्यागधर्म कहा जाता है।

तीसरा, बसति। बसति में रहने का काम पड़े। तो ऐसी बसति में न रहे कि जिसमें ममत्व हो। बडी बसति, जिसमें बड़े शृंगार या ऐसी चीज़ में ममत्व हो, ऐसी बसति में नहीं रहते। यह तीन उपकरण। आहार की आसक्ति का त्याग, तीव्र ममत्व का त्याग। संसार-भोग से विरक्ति तो पहले से है। इसका नाम यहाँ त्यागधर्म कहा गया है। कहो, समझ में आया? त्याग क्या, छोड़ दो। थोड़ो छोड़ते... छोड़ते... छोड़ते छोड़ो पर वस्तु। फिर मुनि हो जाओ। ऐसा नहीं। मुनि होने से पहले ऐसा कि यह छोड़ दो। वस्त्र छोड़ो, स्त्री छोड़ो, परिवार छोड़ो। ऐसा करते-करते मुनि हो जाओ। भाई कहते थे न। लोग पहले ऐसा कहते थे। ऐसा नहीं। यहाँ तो पहले से वह व्यक्ति मुनिपद का अधिकारी है, जिसे संसार, देह और भोग से अन्दर से विरक्त हो गया है। समझ में आया? अन्तर में विरक्त है।

मुमुक्षु : जीवित शरीर से तो धर्म होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जीवित शरीर से कहाँ धर्म होता है? गप्पा मारे हैं। पण्डितजी

कहाँ है अन्दर। पण्डितजी क्या करे? बैठे हैं मध्यस्थ होकर। जयपुर में (खानिया तत्त्वचर्चा में) पहला प्रश्न हुआ न? पहला प्रश्न ही यह था। जीवित शरीर से धर्म होता है या नहीं? पण्डितजी वहाँ बैठे थे। जयपुर। अरे भगवान!

यहाँ तो पहले टीका में है, हों! त्यागधर्म में तीन बोल लिये परन्तु उससे पहले ही उसका कितना त्याग था, यह पहली बात अन्दर आ गयी है। समझ में आया? देह के प्रति क्रिया, पर्याय का अभिमान नहीं किया, वह क्रिया तो जड़ की है। देह से तो विरक्त है। देह की क्रिया से अपने को धर्म माने, वह तो दृष्टि मिथ्यात्व है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : साधन है....

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन-बाधन कुछ है नहीं। वे तो निमित्त के कथन हैं। साधन कैसा? स्वरूप अन्दर साधन है। अन्तर आनन्द में करण नाम का गुण आत्मा में पड़ा है। साधन नाम का अनादि-अनन्त गुण पड़ा है। वह गुण अपने स्वभाव की सिद्धि में साधन है।

मुमुक्षु : वह साधकतम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह साधकतम ही साधन है, दूसरा साधन है ही नहीं। उसमें यह शब्द पड़ा है। ४७ शक्तियों में करण गुण है न। तुम्हारी ओर से दलील करते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! मुनि किसे कहें! ओहोहो! जिसे गणधर को नमस्कार पहुँचे। समझ में आया? गणधर जब बारह अंग रचते हैं, तब चाहे तो पंचम काल के— पंचम काल के मुनि हों, णमो लोए सव्व साहूणं (उच्चार करते हैं)। ऐसे नमस्कार करते हैं। जिनके चरण में गणधर—चार ज्ञान (धारी), चौदह पूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में प्रगट होती है, ऐसे गणधर जब बोले, णमो लोए सव्व अरिहंताणं। लोए शब्द है, हों! लोए अन्त दीपक है न! अन्त में है। परन्तु सब में लेना। धवल में है। दोनों शब्द लेना। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आईरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं। गणधर बोले, हों! चार ज्ञान हैं। णमो लोए सव्व साहूणं। हे

सन्त! तेरे चरण में मेरा नमस्कार। आहाहा! वे मुनि। आहाहा! जिन्हें गणधर का नमस्कार पहुँचे। सीधा व्यवहार में न करे। अपने से छोटी दीक्षा हो तो व्यवहार में नमस्कार न करे। परन्तु पंच पद में जब विकल्प आया, तब उसमें साधु आ गये। दो घड़ी के भावलिंगी साधु भी, अन्दर आनन्दकन्द में झूलनेवाले दो घड़ी के साधु और लाखों, करोड़ों, अरबों वर्ष की दीक्षावाले गणधरदेव (उच्चार करते हैं), णमो लोए सव्व साहूणं। हे सन्त! आहाहा! सेठी!

चार वजीर। तीर्थंकर धर्मराजा। गणधर उनके वजीर-दीवान। णमो लोए सव्व साहूणं। हे सन्त! तेरे चरण में मेरा नमस्कार! आहाहा! वह मुनिपद कैसा! पद्मप्रसादजी! आहाहा! गणधर नमस्कार (करे)। बारह अंग रचने में (बोले), णमो लोए सव्व साहूणं। ढाई द्वीप में सन्त आत्मध्यान में रमणता करनेवाले तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव है, एक संज्वलन का कषाय थोड़ा रहा है। वीतरागी दशा में रमते हैं, हमारा नमस्कार है। आहाहा! अरे! तुम तो करोड़ों वर्ष पहले दीक्षित हुए हो न? भले हो। परन्तु वह हमारी नात का-जाति का है। समझ में आया? आहाहा! चारित्र धन्य दशा! वीतरागदशा। अकेला अतीन्द्रिय प्रचुर स्वसंवेदन।

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज पाँचवीं गाथा में कहते हैं कि हमको तो प्रचुर स्वसंवेदन प्रगट हुआ है। प्रचुर स्वसंवेदन। हमारा निज वैभव प्रचुर, आनन्द का प्रचुर-अधिक स्वसंवेदन हो गया है। संवेदन तो पहले चौथे (गुणस्थान) से ही हो जाता है। स्वसंवेदन चौथे से होता है, परन्तु यह तो मुनि कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, पाँचवीं गाथा में है, यह समयसार है न? देखो, देखो! यह समयसार है न यहाँ। हम तो गुजराती वाँचते हैं न, उसमें बहुत खबर पड़े। देखो! पाँचवीं गाथा निकालो। पाँचवीं है न, पाँचवीं। देखो! १५ पृष्ठ। ऊपर से तीसरी लाईन। दूसरी लाईन से। **निरन्तर झरता-आस्वाद में आता हुआ, सुन्दर जो आनन्द, उसकी छापवाला जो प्रचुरस्वसंवेदनरूप स्वसंवेदन, उससे जिसका (निज वैभव) जन्म है।** आहाहा! १५ पृष्ठ। पन्द्रह नहीं समझते? है? **निरन्तर झरता हुआ...** है? क्या कहते हैं? मुनिपना कैसा है? कि हमको **निरन्तर झरता हुआ-स्वाद में आता हुआ, सुन्दर जो आनन्द...** अतीन्द्रिय आनन्द हमको प्रगट हुआ है और उसकी

मुद्रा—उसकी मोहरछाप है। अतीन्द्रिय प्रचुर आनन्द की हमारी मुनिपने की मोहरछाप है। समझ में आया? मोहरछाप समझे? सरकार मोहर लगाते हैं न? सिक्का लगाया है। देखो! कितने शब्द है? हमको मुनिपना प्रगट हुआ है, हमारा वैभव प्रगट हुआ है।

मुमुक्षु : प्रचुर अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रचुर-विशेष, अधिक, अधिक। चौथे में थोड़ा संवेदन है। यह अधिक है, इसलिए प्रचुर शब्द प्रयोग किया है, इसीलिए प्रयोग किया है। समझ में आया? चौथे से ही आता है, चौथे में थोड़ा स्वसंवेदन है, उससे अधिक पाँचवें में है, उससे छठवें में अधिक है। देखो! 'निरन्तर झरता हुआ...' भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप की अन्तर दृष्टि। आहाहा! अरे! यह अतीन्द्रिय आनन्द झरता है, कहते हैं। पर्वत में से पानी झरता है। पानी-जल। उसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पर्वत नित्यानन्द प्रभु में हमारी लीनता लगी है, तो उसमें अतीन्द्रिय आनन्द हमारे स्वाद में आता है। समझ में आया? यह मुनिपना उसे कहते हैं। बनारसीदासजी! आहाहा! देखो! भाषा तो देखो इनकी।

निरन्तर झरता हुआ... अर्थात् **आस्वाद में आता हुआ...** अतीन्द्रिय आनन्द का हमको बहुत स्वाद आता है, प्रभु! इसका नाम मुनिपना है। और सुन्दर आनन्द। सुन्दर आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द, ऐसा कहते हैं। जगत में आनन्द मानते हैं, वह तो भोग का जहर-आनन्द है। यह तो सुन्दर आनन्द है। इसकी मुद्रा—इसकी मोहरछाप पड़ी है, हमारी अनुभवदशा में। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य अपनी मुनिपने की दशा कैसी है? **प्रचुर स्वसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदन, उससे जिसका जन्म है,...** निज वैभव का जन्म हुआ है। हमारा वैभव प्रगट हुआ है। देखो! यह दुनिया की धूल... धूल प्रगटती है न? वैभव—यह स्त्री, पुत्र, परिवार, महल। अब धूल में कहाँ तेरा वैभव है? वह तेरा वैभव है? वह तो जड़ का है। समझ में आया? ऐ... सेठ! यह चार-चार, पाँच-पाँच लाख के संगमरमर के मकान हमारे। धूल में भी नहीं किसी के। वह तो पर की चीज़ है। ऐ... शोभालालजी!

मुमुक्षु : काम में तो आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी काम में नहीं आते। क्या काम आते हैं? राग में निमित्त पड़ते हैं। बात तो ऐसी है। समझ में आया?

यह तो कहते हैं, हमारा निजवैभव। अतीन्द्रिय आनन्द से प्रचुर स्वसंवेदन प्रगट हुआ, वह हमारा निजवैभव है। उससे जन्म हुआ। देखो! हमारा वैभव प्रगट हुआ है। पर्याय में प्रगट हुआ है। वस्तु तो त्रिकाल थी। उससे मैं समयसार कहूँगा, ऐसा कहते हैं। ऐसे हमारे निज वैभव के प्रचुर स्वसंवेदन में से हमारा जन्म हुआ, उससे मैं समयसार कहूँगा, ऐसा कहते हैं। एक-एक गाथा में तो अलौकिकता भरी है! समझ में आया?

यहाँ तो अपने त्याग की बात चलती है न! ऐसे मुनि को इष्ट भोजन में ममत्व का त्याग, बसतिका अच्छी हो तो उसके ममत्व का त्याग। और उपकरण शास्त्र-पुस्तक, पिच्छी आदि। उसका नाम त्यागधर्म कहलाता है। समझे? भाई! यहाँ मुनि की विशेष बात है न। गृहस्थ को उसका अंश है। गृहस्थ को उसका अंश है। अनुभव दृष्टिपूर्वक अतीन्द्रिय आनन्द का स्वादपूर्वक जितनी वस्तु है, उसमें से आसक्ति थोड़ी घटाना, वह श्रावक का त्याग है। आंशिक सर्व किया है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में आया है।

मुमुक्षु : पदार्थ का त्याग।

पूज्य गुरुदेवश्री : पदार्थ का त्याग कौन करे? पदार्थ तो पदार्थ में पड़ा है। क्या धूल किया है अन्दर से? तीनों काल में अभाव है, आत्मा में तीनों काल में परपदार्थ की नास्ति है। नास्ति है, उसकी नास्ति करनी है? आसक्ति का त्याग। स्वरूप में लीन होकर आसक्ति का त्याग। यहाँ लीन होकर आसक्ति का त्याग। अकेला आसक्ति का त्याग, ऐसा नहीं। समझ में आया? उसे त्यागधर्म कहते हैं। लो, यह अधिकार पूरा हुआ। अब अपने चलता अधिकार। यह तो थोड़ा लेते हैं न। दो दिन रहे, दो दिवस। आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य। ओहोहो!

अब चलता अधिकार। १३वीं गाथा। पृष्ठ ३४। प्रमाण का अधिकार चला। अब नय का अधिकार। देखो! क्या कहते हैं? पहले गाथा में तो ऐसा आया था कि पर्यायदृष्टि से देखने से अर्थात् कर्म के बन्ध की पर्याय से—कर्मबन्ध पर्याय से देखने में आने पर नौ तत्त्व का विकल्प है। नौ तत्त्व का विकल्प है। परन्तु उसकी दृष्टि छोड़कर

अकेले चैतन्य ज्ञायकभाव का अनुभव किये जाने पर नौ तत्त्व असत्यार्थ हैं। भूतार्थ में वे नौ है ही नहीं। अपने अनुभव में नौ नहीं तो नौ को असत्यार्थ कहा गया है। एक चैतन्य ज्ञायकभाव का अनुभव करना, वही भूतार्थ और सत्यार्थ है। यह पहले आ गया।

पश्चात् प्रमाण। पहले प्रमाण का ज्ञान करना। प्रत्यक्ष ज्ञान केवलज्ञान है। अंश प्रत्यक्ष अवधि, मन:पर्यय है। मति-श्रुत परोक्ष है। ऐसा बराबर ज्ञान करना। और उसमें—मति-श्रुत में इनिद्रय, मन आदि निमित्त पड़ते हैं, उनका भी ज्ञान करना। पश्चात् उसे छोड़कर। आत्मा को बराबर सामान्य-विशेष से प्रमाण से सिद्ध करना। सामान्य-विशेष को नयभेद से निश्चित करना। निश्चित् करने के बाद स्वरूप के अनुभवकाल में एकाकार, जिसमें प्रमाता, प्रमेय, प्रमाण के भेद है नहीं। अकेला ज्ञायकस्वरूप का अनुभव किये जाने पर प्रमाता, प्रमेय, प्रमाण असत्यार्थ है। भेद अभूतार्थ है। समझ में आया? यह कल आ गया। आज तो अब नय का अधिकार चलेगा। समझ में आया? सूक्ष्म अधिकार है। पहले पन्द्रह गाथा तो ऐसी है कि पूरे जैनदर्शन का स्तम्भ है। समझ में आया?

अब नय आये। **नय दो प्रकार से हैं।** नय किसे कहते हैं? पदार्थ के एक अंश को जाननेवाले (अंश को) नय कहते हैं। पदार्थ जो अखण्ड है, अनन्त गुण पिण्डरूप, पर्याय, द्रव्य आदि उसमें एक भाग का निर्णय करानेवाला अथवा जाननेवाले को नय कहते हैं। या सामान्य को, या विशेष को। उसके ज्ञान को नय कहते हैं। वे नय दो प्रकार के हैं। **द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। वहाँ द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु में...** देखो! दो भाग हैं। अब वस्तु कैसी है? वस्तु द्रव्य-पर्यायस्वरूप है। क्या (कहा)? आत्मा जो है, वह द्रव्य और पर्यायस्वरूप है। द्रव्य अर्थात् त्रिकाली स्वरूप सामान्य है और वर्तमान विशेष अवस्थास्वरूप है। दो मिलकर पूरा द्रव्य है। तो कहते हैं, **द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु में द्रव्य का मुख्यता से अनुभव कराये, सो द्रव्यार्थिकनय है...** क्या कहते हैं? अभी तो विकल्प से बात है, हों! द्रव्य का मुख्यता से ज्ञान करावे। अनुभव शब्द से ज्ञान लेना है। यहाँ अनुभव अर्थात् वेदन नहीं। ज्ञान, जानपना। सामान्य द्रव्य है, ध्रुव है, एकरूप है, ऐसा जो वस्तु का मुख्यता से (ज्ञान करावे)। क्योंकि पर्याय गौण रह गयी, पर्याय गौण रह गयी। द्रव्य की मुख्यता से जो पदार्थ द्रव्य और पर्यायस्वरूप है, जो यह आत्मा...

अब यहाँ पर की बात नहीं। आत्मा द्रव्य-पर्यायस्वरूप है। सामान्य त्रिकाल और वर्तमान विशेष अवस्थास्वरूप पूरा द्रव्य है। उसमें द्रव्यार्थिकनय मुख्यरूप से द्रव्य अर्थात् जिसका सामान्य स्वभाव है, उसका जो **अनुभव कराये सो द्रव्यार्थिकनय है...** सामान्य का ज्ञान करानेवाले को द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। अभी यह विकल्पात्मक है। विकल्पात्मक समझे? विकल्पसहित सामान्य क्या है, उसका ज्ञान कराया।

द्रव्य अर्थात् सामान्य द्रव्य वस्तु। द्रव्य अर्थात् अब उसमें पर्याय नहीं। पहले तो कहा था कि द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु। वस्तु में से एक अंश सामान्य द्रव्य को मुख्यरूप से, पर्याय को गौण करके मुख्यरूप से जो ज्ञान करावे, उस नय को द्रव्यार्थिकनय कहा जाता है। विकल्प से रागसहित की बात है। रागसहित, रागसहित यह सामान्य है, ऐसा ज्ञान कराया। निर्विकल्प की बात बाद में आयेगी। समझ में आया? जरा शान्ति से समझने की बात है। देखो, पहला शब्द देखो!

नय दो प्रकार के हैं - द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। यह नय के दो प्रकार कहे। वस्तु द्रव्य-पर्यायस्वरूप है। वस्तु द्रव्य-पर्यायस्वरूप है। वस्तु। दो भाग हुए। नय के दो प्रकार। वस्तु द्रव्य और पर्यायस्वरूप। समझ में आया? अब **द्रव्य का मुख्यरूप से...** द्रव्य अर्थात् सामान्य का मुख्यरूप से जो ज्ञान करावे, उसे यहाँ द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। अभी ज्ञान की बात है, अनुभव की बात नहीं। ख्याल में (आता है कि) यह सामान्य है, ऐसा ज्ञान। रागमिश्रित नय से ख्याल कराया, उसका नाम द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। आहाहा!

और पर्याय का मुख्यता से अनुभव (ज्ञान) कराये सो पर्यायार्थिकनय है। अवस्था है, दशा है, हालत है। ऐसा जो मुख्यरूप से द्रव्य को गौण करके, पर्याय को मुख्य करके... यहाँ तो ज्ञान कराना है, हों! प्रयोजन सिद्ध करने की बात बाद में आयेगी। वरना यहाँ आया कि पर्याय की मुख्यता की, भाई! और पर्याय की मुख्यता और द्रव्य की गौणता (कही)। सम्यग्दर्शन में प्रयोजन सिद्ध करने की बात नहीं। मात्र दो का ज्ञान कराना है। द्रव्य का मुख्यता से ज्ञान करावे, वह द्रव्यार्थिकनय। एक बात। पर्याय का मुख्यता से, द्रव्य को गौण करके पर्याय का मुख्यता से ज्ञान करावे, वह

पर्यायार्थिक नय। अभी तो ज्ञान कराने की बात है। वस्तु सम्यग्दर्शन किस प्रकार से होता है, वह बात अभी नहीं। आहाहा! समझ में आया? अमरचन्दभाई! यह देखो, अधिकार है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी तो द्रव्य-पर्याय सामान्य और विशेष है। उस सामान्य को मुख्य करके ज्ञान करता है, ज्ञान अर्थात् जानपना, उसमें सम्यग्दर्शन की बात नहीं। समझ में आया? सामान्य एक चीज़ है, ध्रुव है। उसका लक्ष्य करके रागसहित द्रव्यार्थिकनय द्रव्य को मुख्यरूप से बतलाता है, पर्याय को गौण करके। उसका नाम द्रव्यार्थिकनय कहा जाता है।

पर्याय का मुख्यरूप से... देखो! इसमें अन्तर है। कोई कहे कि जब तुम ऐसा कहते हो कि निश्चयनय भूतार्थ है तो व्यवहारनय अभूतार्थ है। तो हम कहते हैं कि व्यवहारनय भूतार्थ है, इस अपेक्षा से निश्चयनय अभूतार्थ है। यह बात ही नहीं, यहाँ तो दूसरी बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दोनों भूतार्थ हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों भूतार्थ हैं। द्रव्य का ज्ञान कराना, उसकी मुख्यता से पर्याय को गौण करके जानपना अभी तो कराया है। सम्यग्ज्ञान किस प्रकार से होता है, यह बात यहाँ नहीं। समझ में आया? उसके ज्ञान के क्षयोपशम में, क्षयोपशमभाव में सामान्य चीज़ जो द्रव्य है, निज द्रव्य सामान्य, उसकी मुख्यता करके पर्याय को गौण करके, यह द्रव्य है, ऐसा जानपना क्षयोपशम में हुआ। बस, इतना। बस, इतना जानपना। और पर्याय का मुख्यता से अनुभव अर्थात् ज्ञान कराने के लिये जो पर्याय है, वह पर्यायार्थिकनय। यहाँ मुख्यता कहा। द्रव्य को यहाँ गौण कर डाला।

जो ११वीं गाथा है, '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**'। शुद्धनय त्रिकाल, वह भूतार्थ है, वह त्रिकाल भूतार्थ है। इसमें पर्याय कभी भूतार्थ नहीं होती। पर्याय की मुख्यता द्रव्य की दृष्टि में कभी नहीं होती। आहाहा! समझो थोड़ा। निज शुद्ध ध्रुवस्वरूप का आश्रय लेने को उस वस्तु को भूतार्थ कहा और भेद पर्याय को अभूतार्थ कहा। तो उसमें तो

भूतार्थ की मुख्यता तीनों काल कायम रहती है। उसमें कभी पर्याय की भूतार्थता आ जाये, मुख्यता आ जाये—ऐसा नहीं है। यह तो ज्ञान कराने की बात है अभी तो पहली। आहाहा! जम्बूप्रसादजी! यह बराबर समझना, हों!

कोई कहे कि, देखो! यहाँ पर्याय की मुख्यता से ज्ञान कराया। अनुभव कराया या नहीं? नहीं, नहीं। यहाँ यह बात नहीं। यहाँ तो पर्याय का लक्ष्य कराना है कि अवस्था है, भेद है, पर्याय है, हालत है। उसे मुख्य करके... क्योंकि दो में से एक को गौण करके, दूसरे को मुख्य करके ज्ञान कराया। सम्यग्दर्शन और ज्ञान सीधे यह बात अभी नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अनादि काल से जो अज्ञानी द्रव्य-पर्याय को नहीं समझते, उन्हें यहाँ सर्वज्ञ ने कहे हुए द्रव्य-पर्याय को मुख्य-गौण करके, एक को मुख्य करके, दूसरे को गौण करके; द्रव्य को मुख्य किया तो द्रव्य का ज्ञान हुआ, पर्याय को गौण करके। पर्याय को मुख्य किया तो द्रव्य गौण होकर पर्याय का ज्ञान हुआ। यहाँ तो अज्ञानी सामान्य-विशेष को नहीं मानता, बस आत्मा... आत्मा बकता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? सामान्य वस्तु त्रिकाल भी है, साथ में पर्याय भी है। दोनों भूतार्थ हैं। भूतार्थ का अर्थ, है। आश्रय करनेयोग्य कौन, यह बात अभी नहीं। ज्ञान कराते हैं।

मुमुक्षु : नयों के भेद का ज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : नयों के भेद का ज्ञान अज्ञानी में जैनदर्शन के अतिरिक्त कहीं नहीं। समझ में आया? वीतराग सर्वज्ञ ने कहे हुए सामान्य और विशेष ऐसी वस्तु अन्यत्र कहीं नहीं। उसका ज्ञान कराने को, दुनिया की विपरीत बुद्धि छुड़ाने को पहले ज्ञान कराने की बात है। सम्यग्दर्शन कराने की बात बाद में आयेगी। समझ में आया? यहाँ अनुभव का अर्थ ज्ञान है। अनुभव का अर्थ वेदन की बात नहीं।

पर्याय का मुख्यता से ज्ञान करावे, वह पर्यायार्थिकनय है, बस। **यह दोनों नय द्रव्य और पर्याय का...** दोनों नय अब,देखो। **दोनों नय द्रव्य और पर्याय का पर्याय से (भेद से, क्रम से) अनुभव करने पर...** देखो! भेद से, क्रम से जानने पर। द्रव्य को मुख्य करके पर्याय को गौण किया, पर्याय को मुख्य करके द्रव्य को गौण किया, ऐसे

क्रम से, भेद से, भेद से अनुभव करने पर (अर्थात्) भेद से जानने पर, भेद से जानने पर दो नय भूतार्थ हैं। दो नय के विषय हैं और दोनों नय बराबर है। अभी सम्यग्दर्शन की बात नहीं। समझ में आया? ओहोहो! कितना!

सर्वज्ञ ने जो आत्मा कहा, ऐसा आत्मा सामान्य-विशेष है। ऐसी चीज़ अन्य में कहीं नहीं। उसका पहले व्यवहारिक सम्यक्ज्ञान (कराते हैं)। जो मिथ्याज्ञान अज्ञानी ने द्रव्य माना है, पर्याय मानी है, उससे विरुद्ध जो सत्य है, उसका ज्ञान कराया कि देख भाई! द्रव्य सामान्य त्रिकाल है। अनन्त गुणरूप सामान्य का ज्ञान करना। तो पर्याय गौण हो गयी। और पर्याय का ज्ञान करते समय द्रव्य गौण हो गया। तो दो का ज्ञान कराया। **द्रव्य और पर्याय का पर्याय से अनुभव करने पर...** देखो! पर्याय से, इसका अर्थ दो को भेद से जानकर, दो का भेद जानने से नय है। नय का विषय है। व्यवहारनय से दो नय का ज्ञान है। यह व्यवहारनय का विषय चलता है। **सत्यार्थ है...** दो नय का—द्रव्य सामान्य का ज्ञान, पर्याय विशेष, वह विकल्पात्मक वस्तु है। भाषा कैसी है, देखो! **दोनों नय द्रव्य और पर्याय का पर्याय से...** वापस ऐसा है। भेद से, क्रम से जानने पर वह भूतार्थ है। सामान्य विशेष का ज्ञान है, बस इतना। समझ में आया? राजबहादुरजी! समझ में आया? भाई! अब, सम्यग्दर्शन कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्पात्मक है। बात यह। व्यवहार है वहाँ तक। अज्ञानी द्रव्य-पर्याय (विपरीत) मानता है। अन्य में नहीं तो भगवान ऐसे जो द्रव्य-पर्याय कहते हैं, ऐसा पहले मुख्य-गौण करके ज्ञान कराया। बस। परन्तु वह है पर्याय से ज्ञान, भेद से ज्ञान, व्यवहार से ज्ञान हुआ।

और द्रव्य तथा पर्याय दोनों से अनालिंगित—आलिंगन नहीं किया हुआ... अब यह सामान्य और विशेष दो के भेद को स्पर्शे नहीं, दो को स्पर्शना नहीं। **शुद्ध वस्तुमात्र जीव के (चैतन्यमात्र) स्वभाव का अनुभव करने पर...** शुद्ध वस्तु ज्ञानानन्द का, **शुद्ध वस्तुमात्र जीव के (चैतन्यमात्र) स्वभाव का अनुभव करने पर...** यह अनुभव वेदन है। आनन्द के वेदन में अनुभव हुआ। आहाहा! **अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं,...** जो

पर्याय से विकल्प से दो नय का ज्ञान कराया था, वह पर्याय से, द्रव्य-पर्याय का पर्याय से, द्रव्य-पर्याय का भेद से, द्रव्य-पर्याय का अनेकता से जो ज्ञान कराया था, वह एक जीववस्तु का अनुभव करने पर वह भेद है, अभूतार्थ है। समझ में आया? यह तो प्रभु का मार्ग है, भाई! जो सर्वज्ञ ने कहा, ऐसी बात है। ऐसी कोई मामूली वस्तु नहीं। क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : केवली भगवान के....

पूज्य गुरुदेवश्री : केवली भगवान। सर्वज्ञ स्वरूप ही आत्मा का है, प्रभु! वह सर्वज्ञपर्याय प्रगट होती है, वह कहाँ से हुई? प्राप्त की प्राप्ति है या अप्राप्त की प्राप्ति है? तो तीन काल-तीन लोक को जानने की पर्याय प्रगट हुई, उस पर्याय का धारक भगवान आत्मा है। अपने में है तो होती है। समझ में आया? कुएँ में हो तो हौज में पानी आता है। अन्दर में हो तो बाहर आवे न! अन्दर न हो तो खाली में (से) कहाँ से आवे? उसी प्रकार आत्मा में सर्वज्ञशक्ति त्रिकाल पड़ी है। उसका अनुभव करते-करते पर्याय में केवलज्ञान हो जाता है। वह अन्दर में से आता है। बाहर से कोई आती नहीं और पर्याय में से पर्याय आती नहीं। राग में से आती नहीं, निमित्त में से आती नहीं, पर्याय में से पर्याय आती नहीं। वह सर्वज्ञ की पर्याय द्रव्य में से आती है। मोक्षमार्ग हुआ तो मोक्षमार्ग की पर्याय में से मोक्ष नहीं हुआ। मोक्षमार्ग तो पर्याय है। तो पर्याय में से केवलज्ञान मोक्ष उत्पन्न नहीं होता है। उस पर्याय का व्यय होकर केवलज्ञान की पर्याय अन्तर में से आती है। आहाहा! पर्याय तो एक समय की है। वह तो व्यतीत हो गयी। अभाव में से भाव कहाँ से हो? आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, बात ही ऐसी है। सुनने, समझने को न मिले, इसीलिए कहीं वस्तु बदल जाये? वस्तु तो जो है, वह है। अभी तो बात बहुत बदल गयी, बहुत बदल गयी बात। पूरा वीतराग का मार्ग है, उसे उलट-पुलट कर डाला है। समझ में आया?

यह तो सर्वज्ञ प्रभु आत्मा में से सर्वज्ञप्रभु प्रगट हुए। तो कहते हैं, प्रभु! हम जो द्रव्य-पर्याय आत्मा के जाने, ऐसा तू पहले द्रव्य-पर्याय को जानो। हमने जैसे द्रव्य-पर्याय कहे हैं, वैसा तू पहले ज्ञान कर। क्षयोपशम में ज्ञान करो। परन्तु वह ज्ञान

विकल्पात्मक रागसहित का ज्ञान है। पहले द्रव्य-पर्याय का कराया वह। **और द्रव्य तथा पर्याय दोनों से आलिंगन नहीं किया हुआ...** दो भेद के विकल्प हैं, उन्हें छोड़ दिया। समझ में आया?

मुमुक्षु : यहाँ निश्चय आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय स्वभाव का आश्रय हुआ।

द्रव्य तथा पर्याय दोनों से आलिंगन नहीं किया हुआ... वापस इसका अर्थ ऐसा नहीं कि द्रव्य-पर्याय पहले निश्चित किये थे, पश्चात् द्रव्य-पर्याय उड़ गये। उड़ गये को क्या कहते हैं? खतम हो गये, ऐसा नहीं है। है तो है। परन्तु दो प्रकार का भेद से ज्ञान करते हैं, वह उड़ गया। अभेद का ज्ञान हुआ। समझो पहले, धीरे से समझो, हों! यह तो अन्तर की वस्तु है न! समझ में आया? भेद आते हैं। क्योंकि सामान्य क्या, विशेष क्या, ऐसा भेद का ज्ञान आता है। परन्तु उस भेद को छोड़कर अभेद करना, यह उसका प्रयोजन है। भेद का प्रयोजन नहीं, प्रयोजन अभेद का है। परन्तु पहले ऐसा भेदज्ञान आये बिना रहता नहीं। इस भेदज्ञान का अर्थ राग से भिन्न, ऐसा नहीं। परन्तु यह सामान्य ज्ञान है, सामान्य चीज़ है, यह विशेष है, ऐसा रागमिश्रित मन के संग से क्षयोपशम ज्ञान में ऐसा आया और ऐसा है, परन्तु इसका नाम अभी सम्यग्दर्शन नहीं। ऐसा एक भाव है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। है, ऐसा भूतार्थ है। ऐसी पर्याय भूतार्थ अर्थात्, है। भूतार्थ अर्थात् है। आहाहा!

पश्चात् **द्रव्य तथा पर्याय दोनों से आलिंगन नहीं किया हुआ...** अर्थात् दो के भेद के विकल्प को छोड़कर। देखो! आलिंगन आया यहाँ। **शुद्धवस्तुमात्र जीव...** अकेला ध्रुव स्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति **स्वभाव का अनुभव करने पर...** स्वभाव में एकाकार होने से, आनन्द को प्रत्यक्ष करने पर। वह परोक्ष ज्ञान था। पहले जो सामान्य-विशेष का नय का ज्ञान हुआ, वह परोक्ष ज्ञान है। क्योंकि विकल्पसहित है। वह वास्तविक नहीं। पश्चात् **शुद्ध वस्तुमात्र जीव के स्वभाव का अनुभव करने पर...** अकेला चैतन्य ध्रुव सामान्य की ओर ढलने से जो प्रत्यक्ष ज्ञान का अनुभव हो, उस काल में सामान्य-विशेष से जो विकल्पात्मक ज्ञान कराया था, वह झूठा हो गया। झूठा अर्थात् द्रव्य और पर्याय

नहीं, ऐसा नहीं। अनुभूति में वह विकल्पात्मक ज्ञान गया। निर्विकल्प ज्ञान रह गया। विकल्प छूट गये। यह बात है। अन्दर में स्थिर हो गया। विकल्प नहीं। समझ में आया? आहाहा!

कैसी बात करते हैं! अमृतचन्द्राचार्य ने कितना निकाला! नौ तत्त्व को भूतार्थ जाने तो उसमें से प्रमाण निकाला, नय निकाला, निक्षेप निकाले। है न, वस्तु है या नहीं? साधन व्यवहार। वह व्यवहार है सही। दो नय का ज्ञान करना, वह है सही। परन्तु वह है, वह वास्तविक आश्रय करनेयोग्य नहीं। दोनों भेद आश्रय करनेयोग्य नहीं। समझ में आया? है न? पुस्तक सामने है, किसका अर्थ होता है यह समझ में आता है या नहीं? है? लिखा है या नहीं? वरना किसी प्रकार से मिलान नहीं खायेगा। देखो! पहले कहा, **दोनों नय द्रव्य और पर्याय का पर्याय से अनुभव करने पर...** पर्याय शब्द से भेद से जानने पर। भेद का ज्ञान करना वह है, इतनी बात। परन्तु **द्रव्य तथा पर्याय दोनों से आलिंगन नहीं किया हुआ...** दो भेद को, विकल्प को आलिंगन नहीं करते **शुद्ध वस्तुमात्र जीव के स्वभाव का अनुभव करने पर...** इन दो का विकल्पात्मक ज्ञान **अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं।** समझ में आया? भाई! यह समझना पड़ेगा। आत्मा की तैयारी करनी पड़ेगी। ऐसा है। आहाहा! अनन्त काल से भटका है तो इसके भान बिना कभी संसार से छुटकारा नहीं होगा। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही सत्यार्थ हो गया। यह सत्यार्थ हुआ और वह असत्यार्थ हो गया। पहले जो व्यवहार सत्यार्थ कहा था, पर्याय है, ऐसा सत्यार्थ कहा था, परन्तु द्रव्य का अनुभव करने पर वह सत्यार्थ हुआ तो पहला असत्यार्थ हो गया। एक सत्यार्थ रह गया। ऐसी बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : प्रत्यक्ष किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रत्यक्ष किया। पहले कहा न? स्वभाव का अनुभव अर्थात् प्रत्यक्ष है। श्रुतज्ञान अनुभव प्रत्यक्ष हो गया। पहले सामान्य ज्ञान, सामान्य का ज्ञान विशेष का ज्ञान किया, वह तो परोक्ष ज्ञान है। परोक्ष ज्ञान कहीं वास्तविक उसका स्वरूप नहीं। समझ में आया?

आत्मा में प्रकाश नाम का एक अनादि-अनन्त गुण पड़ा है। क्या कहा? आत्मा में ४७ गुण-शक्ति कही न? उसमें एक बारहवीं प्रकाश नाम की शक्ति है। बारहवीं। जीवत्वशक्ति, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, स्वच्छत्व और प्रकाशत्व। उस प्रकाशगुण का गुण क्या है? कि आत्मा में प्रकाश नाम का एक गुण है। उसका कार्य क्या? कि आत्मा स्वसंवेदन प्रत्यक्ष हो जाये, ऐसा उस गुण का कार्य है। यह यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : वस्तु में शक्ति न हो तो कहाँ से....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो कहाँ से आवे? शक्ति-गुण है तो गुण का धारक द्रव्य है तो जहाँ द्रव्य की दृष्टि हुई तो पर्याय में प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया। प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ। प्रकाश नाम की शक्ति का गुण ही यह है। सामान्य और विशेष का ज्ञान किया, वह तो साधारण हुआ। वह तो पर्याय में भेद से ज्ञान हुआ। उसमें उस प्रकाशशक्ति को धरनेवाले द्रव्य की दृष्टि का ज्ञान नहीं हुआ। भाई! गजब बात! यह तो भेद का (ज्ञान हुआ)। सामान्य है, विशेष है। दो प्रकार। वह परोक्ष ज्ञान हुआ। परोक्ष ज्ञान, वह वास्तव में अपना ज्ञान नहीं। वह परसत्तावलम्बी ज्ञान है निश्चय से तो। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में अनन्त गुणों में से एक प्रकाश नाम का गुण है। तो जब गुण को धरनेवाला द्रव्य भूतार्थ की दृष्टि हुई तो उस गुण का कार्य भावश्रुत प्रत्यक्ष होकर आत्मा का वेदन हुआ। तब उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। आत्मा प्रतीति में किस प्रकार आया? उसमें प्रकाश नाम का गुण है। तो गुण का कार्य क्या है? कि स्वसंवेदन प्रत्यक्ष। स्वसंवेदन प्रत्यक्ष का कार्य हुआ तो आत्मा जो प्रकाश शक्तिवाला है, ऐसी उसकी प्रतीति हुई। वरना प्रतीति है कहाँ? आत्मा की प्रतीति हो, उसका नाम प्रतीति है। आहाहा! क्या कहा?

फिर से। पहले जो कहा कि **यह दोनों नय द्रव्य और पर्याय का पर्याय से (भेद से, क्रम से) अनुभव करने पर तो भूतार्थ हैं,...** यह तो है इतना। यह तो परोक्ष ज्ञान हुआ। उसमें वास्तविक द्रव्य का ज्ञान नहीं हुआ। समझ में आया? सामान्य द्रव्य का

ज्ञान हुआ, भले उसमें प्रकाशशक्ति है। परन्तु उस विकल्प से यह है, ऐसा ख्याल हुआ। द्रव्य सामान्य जो ध्रुव है, उसमें प्रकाश नाम का अनादि-अनन्त गुण है। तो प्रकाश गुण को धारक द्रव्य की जहाँ दृष्टि हुई तो प्रकाशगुण का कार्य यह है, गुण की पर्याय, कि स्वसंवेदन भावश्रुत प्रत्यक्ष हो जाये। प्रत्यक्ष आत्मा का भास हो, उसका नाम प्रकाशगुण का कार्य है, वह अनुभव में आ गया। आहाहा! तब आत्मा ऐसा है, ऐसा माना। ऐसा है, वह तब माना कहलाये। क्योंकि उसमें प्रकाशशक्तिसहित आत्मा है, अनन्त गुणशक्ति सहित है तो ऐसा आत्मा है, वह तब माना कहलाये कि जो दो भेद के विकल्प का ज्ञान है, उसका लक्ष्य छोड़कर अकेला आत्मा... क्या कहते हैं? **शुद्ध वस्तुमात्र जीव के (चैतन्यमात्र) स्वभाव का अनुभव करने पर...** उसमें प्रकाश नाम का गुण भी अनादि-अनन्त है। उसका अनुभव करने में प्रत्यक्ष हुआ। जब प्रत्यक्ष हुआ, तब आत्मा ऐसा है, ऐसा प्रतीति में आया। वरना आत्मा में प्रकाश नाम के गुणसहित है, परन्तु वेदन में प्रत्यक्ष नहीं हुआ तो प्रकाश नाम के गुणसहित आत्मा प्रतीति में नहीं आया। समझ में आया?

मुमुक्षु : अन्तर की खोज है, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर की खोज है, भाई! यह तो अन्तर की चीज़ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... बात है। नौ (भेद) भूतार्थरूप से पर्याय में है, प्रमाण भूतार्थरूप से है, नय भी है। परन्तु सामान्य का अनुभव करने से सब अभूतार्थ है। अभूतार्थ है। समझ में आया? ओहोहो! टीका भी टीका वह कैसी! पहले कहा, उस अनुभव में और इस अनुभव में दोनों में अन्तर है। पहले अनुभव में जो ज्ञान...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वेदन करने के लिये। यह बात है।

सामान्य द्रव्य जो त्रिकाल है और एक समय की विशेष अवस्था है। दो का राग से ज्ञान हुआ, वह वास्तविक ज्ञान नहीं है। परन्तु अज्ञानी जो द्रव्य पर्याय बिना का

सामान्य विशेष कहता है, उसका उसमें (विकल्पात्मक ज्ञान में) ख्याल आया कि सामान्य-विशेष ऐसा है। परन्तु वह भी अभी यथार्थ ज्ञान नहीं, सम्यग्ज्ञान नहीं, स्वसंवेदन ज्ञान नहीं। समझ में आया? शास्त्र कहता है, ऐसा विकल्प से इसने ज्ञान में ख्याल में लिया। वस्तु ऐसी है। सामान्य ऐसा है, पर्याय ऐसी है। बस, इतना। सामान्य का जो प्रत्यक्ष होना, वह नहीं। दो का—द्रव्य का और पर्याय का विकल्पात्मक ज्ञान था वह पर्याय से, भेद से, क्रम से (हुआ था)। क्योंकि द्रव्य को मुख्य किया तो पर्याय गौण हो गयी। पर्याय को मुख्य किया तो द्रव्य गौण हुआ। तो उसमें क्रम हुआ। अब दो का भेद से अनुभव—ज्ञान था, इस अपेक्षा से वह बराबर है, परन्तु **शुद्ध वस्तुमात्र जीव के (चैतन्यमात्र) स्वभाव का अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं,...** आहाहा! समझ में आया?

इस बात को अन्तर में विचार और मनन के साथ मिलान न करे, तब तक आत्मा क्या है, वह प्रतीति में नहीं आता। और आत्मा प्रतीति में आये बिना जो कुछ करे, सब थोथा है। मिलान करनी चाहिए, अन्दर में मिलान करनी चाहिए। प्रमाण करना। पहले कहा न? कुन्दकुन्दाचार्य ने पाँचवीं गाथा में कहा न? '**तं एयत्तविहत्त दाएहं अप्पणो सविहवेण। जदि दाएज्ज पमाणं**' दिखाऊँ तो प्रमाण करना-अनुभव करना। हम कहते हैं, ऐसा है या नहीं, यह अनुभव करके प्रमाण करना। पाँचवीं गाथा में कहा है। समझ में आया? बाहर की बातों ने इतना घेरा डाला है कि अन्तर की चीज़ क्या है, उसका इसे पता लगता नहीं। यह करना और यह करना और यह करना और दया पालना और व्रत करना और त्याग करना, ऐसे घटाना और वैसे घटाना... बेचारा फँस गया। पर में उलझ रहा।

यहाँ तो भगवान वहाँ तक कहते हैं कि दो प्रकार के भेद से ज्ञान करना, वह निश्चय की अपेक्षा से अभूतार्थ है। तेरे राग-फाग तो कहीं रह गये। व्यवहाररत्नत्रय राग तो अभूतार्थ (कहीं रह गया)। जहाँ जो-जो साधक है, वह-वह वहाँ बाधक है। आता है या नहीं? समझे? है या नहीं? गाथा है न? उदयति है न उदयति। देखो! उसमें कहते हैं, हों! अनुभव की दशा में सूर्य का दृष्टान्त दिया है। बनारसीदास।

जैसे रवि-मंडलके उदै महि-मंडलमैं,
आतप अटल तम पटल विलातु है।
तैसें परमातमाकौ अनुभौ रहत जौलौं,
तौलौं कहूं दुविधा न कहूं पच्छपातु है।

सामान्य-विशेष के पक्षपात का विकल्प वहाँ नहीं।

नयकौ न लेस परवानकौ न परवेस,
निच्छेपके वंसकौ विधुंस होत जातु है।

इसके पश्चात् '**उदयति न नयश्री**' में आयेगा।

जे जे वस्तु साधक हैं तेउ तहां बाधक हैं,
बाकी राग दोष दसाकी कौन बातु है॥१०॥

बनारसीदास ने तो बहुत (काम किये हैं)। पहले प्रमाण, नय साधक कहते हैं, वे बाधक हो गये। विकल्पात्मक है, बाधक है, विरोध है। समझ में आया?

जे जे वस्तु साधक हैं तेउ तहां बाधक हैं,
बाकी राग दोष दसाकी कौन बातु है॥१०॥

पद्मप्रसादजी! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई कहते हैं, वह बात सच्ची है। ... जो-जो नय प्रमाण साधक कहे जाते हैं, वे ही अनुभव में बाधक हैं। तो और तेरी राग की मन्दता की बात तो कहाँ रही? कषाय मन्द करो तो उससे लाभ होगा, उससे अनुभव होगा। अरे... चल, चल! वह तो कहीं रह गया। ऐ... सेठी! यहाँ विकल्पवाले नय लेना है। विकल्पवाले नय से ज्ञान हुआ। छोड़, अभूतार्थ करके। समझ में आया?

व्यवहार की अपेक्षा से व्यवहार भूतार्थ है, ऐसा सिद्ध भी किया। नौ तत्त्व की पर्यायदृष्टि से नौ हैं। परन्तु स्वभाव का अनुभव किये जाने पर अभूतार्थ हैं। परन्तु आश्रय करनेयोग्य यह एक ही है, भेद आश्रय करनेयोग्य नहीं। ऐसे प्रमाण, प्रमाता, प्रमेय का

ज्ञान करने में वे हैं। हैं, नहीं—ऐसा नहीं। ज्ञान प्रत्यक्ष है, परोक्ष है, विकल्प है, निमित्त है, सब वस्तु है। परन्तु अनुभव करने में वे सब अभूतार्थ हैं। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो स्पष्ट बात है। इसमें कहीं गड़बड़ है ही नहीं। प्योर सोना है। स्पष्ट सोलहवान सौ टंच का सोना है। आहाहा!

कहते हैं कि जैसे नौ तत्त्व नौ तत्त्वरूप से व्यवहार से भूतार्थ है। परन्तु आश्रय करनेयोग्य नहीं। आश्रय तो एकाकार चैतन्य का आश्रय करनेयोग्य है। इस अपेक्षा से नौ अभूतार्थ हो गये। ऐसे प्रमाण, प्रमेय से ज्ञान करने पर वे भूतार्थ हैं। है इतना। है, परन्तु स्वरूप का अनुभव किये जाने पर प्रमाण, प्रमेय, प्रमाता अभूतार्थ है। ऐसे नय सामान्य-विशेष का ज्ञान करने में विकल्पात्मक ज्ञान करने में है, नहीं—ऐसा नहीं, गप्प नहीं। खरगोश के सींग नहीं। ससला को क्या कहते हैं? खरगोश। खरगोश कहते हैं न? खरगोश के सींग जैसा नहीं। पर्याय है। दो प्रकार का पर्याय का ज्ञान है। परन्तु अनुभव (में) वे काम नहीं करते। क्योंकि भेद है। अनालिंग। दो का स्पर्श नहीं, एक चैतन्य का ही अनुभव करना। आहाहा! गजब बात, भाई!

अरे! यह बात जगत को कान में न पड़े तो प्रयोग कब करे? समझ में आया? यह चीज़ क्या है, किस प्रकार से प्राप्त होती है और किस प्रकार से अन्दर ज्ञान होता है, यह खबर न हो तो अन्दर प्रयोग किस प्रकार करे? और प्रयोग बिना उसका पता कहाँ से लगे? ऐसी बात है, भाई! पहले चीज़ क्या है, यह इसके ख्याल में न आवे तो ख्याल आये बिना प्रयत्न कहाँ करे? कहाँ से हटना और कहाँ जाना, खबर ही नहीं। प्रमाणज्ञान करो, प्रमाणज्ञान करो। ज्ञान हो गया। वह ज्ञान नहीं। पहले साधारण दुनिया से विपरीत था, वह हुआ। इतना। वह कहीं आत्मा के हित का कारण है नहीं। उसे अभूतार्थ करके ज्ञायकस्वरूप भूतार्थ अनुभव में ले, तब वह अभूतार्थ हो गया। वह आश्रय करनेयोग्य नहीं।

मुमुक्षु : उससे मतलब ही नहीं रहता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं रहता। अनुभव हुआ, अनुभूति में पर का आश्रय रहा कहाँ? पर के भेद का लक्ष्य ही कहाँ है? अभी तो आगे विशेष कहेंगे, कलश में बहुत

कहेंगे। आहाहा! नय का अधिकार हुआ। ठीक!

अब आया निक्षेप। दो बोल हो गये। तीन बोल हुए। नौ तत्त्व, प्रमाण-प्रमेय, और नय। तीन हुए। एक निक्षेप रहा। **निक्षेप के चार भेद हैं** - ज्ञेय के चार भेद हैं। वे नय के भेद थे। ज्ञान के अंश के और उसके विषय के। यह ज्ञेय के भेद हैं। **नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव।** अब इनकी व्याख्या करते हैं। **वस्तु में जो गुण न हो, उस गुण के नाम से (व्यवहार के लिए) वस्तु की संज्ञा करना सो नाम निक्षेप है।** वस्तु में (गुण) न हो परन्तु नाम देना—पारसनाथ। देते हैं न बालक को? पार्श्व वीर। पार्श्व वीर हमारे यहाँ नाम है। वांकानेर में है। थे न? वांकानेर में। पार्श्व वीर। वृद्ध मनुष्य थे। नाम देना, गुण की कुछ आवश्यकता नहीं। यह नाम निक्षेप से पहिचानना। इसका नाम।

'यह वह है' इस प्रकार अन्य वस्तु में अन्य वस्तु का प्रतिनिधित्व स्थापित करना... प्रतिनिधित्व। यह भगवान की प्रतिमा है, भगवान तो है नहीं; परन्तु भगवान, ऐसा करके स्थापन करना। प्रतिमारूप स्थापन करना, वह स्थापना निक्षेप है। भगवान को नाम से, स्थापना से, द्रव्य से और भाव से पहिचानना। **वर्तमान से अन्य अर्थात् अनागत पर्याय से वस्तु को वर्तमान में कहना, सो द्रव्य निक्षेप है।** भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले को वर्तमान में कहना। समझ में आया? और भगवान मोक्ष पधारे, उन्हें वर्तमान तीर्थंकर कहना। लोगस्स में आता है न? तीर्थंकर स्तुति आती है न? तीर्थंकर स्तुति आती है। महावीर आदि तीर्थंकर। तीर्थंकर तो अभी है नहीं। वे तो सिद्ध हो गये। सिद्ध हो गये और तीर्थंकर की स्तुति करना, वह भूतकाल के तीर्थंकर की अपेक्षा से की जाती है। और श्रेणिक राजा भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले हैं, तो वर्तमान में भी जन्म हुआ तो तीर्थंकर कहते हैं। तीर्थंकर जन्मे, ऐसा कहते हैं न? तीर्थंकर का जन्म हुआ। तीर्थंकर तो तेरहवें गुणस्थान में होंगे। परन्तु द्रव्य निक्षेप से ऐसा ज्ञान कराते हैं।

वर्तमान पर्याय से वस्तु को वर्तमान में कहना, सो भाव निक्षेप है। केवलज्ञानादि पर्याय प्रगट हो, उसे भावनिक्षेप से तीर्थंकर कहना, केवली कहना, वह भाव है। **यह चारों ही...** देखो! इन चार से बराबर जानना। शब्द पढ़े, शब्द पढ़कर, इस शब्द के चार अर्थ होते हैं। नाम शब्द है, उसमें स्थापना बताते हैं, योग्यता या वर्तमान बताते हैं। एक

शब्द में से अर्थ निकालना। **इन चारों निक्षेपों का अपने अपने लक्षणभेद से...** अपने-अपने लक्षण। नाम निक्षेप में तो संज्ञा लक्षण हुआ। अकेला नाम देना। स्थापना-प्रतिनिधित्व स्थापित करना। द्रव्य में भूत-भविष्य की योग्यता स्थापित करना। भाव में वर्तमान (भाव)। ऐसे **लक्षणभेद से विलक्षणरूप...** चारों के विलक्षण हैं। चारों का एक लक्षण नहीं। नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। चारों ही के विलक्षण—चारों ही के लक्षणभेद हैं। **(भिन्न-भिन्नरूप से) अनुभव किये जाने पर...** अनुभव अर्थात् ज्ञान, यहाँ अनुभव अर्थात् ज्ञान। चार का ज्ञान करना कि यह नाम है, स्थापना है, ऐसा ज्ञान-विकल्पात्मक ज्ञान। वह विकल्पात्मक ज्ञान करने से **वे भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं...** वे व्यवहार से सत्यार्थ हैं। अब उड़ाते हैं। समझ में आया? ज्ञेय के भेद लिये। ज्ञेय चार प्रकार से पहिचाने जाते हैं। कोई नाम निक्षेप से, कोई स्थापना निक्षेप से, कोई भूत-भविष्य की पर्याय की अपेक्षा से और कोई वर्तमान पर्याय की अपेक्षा से। द्रव्य की इस प्रकार से पहिचान होती है। तो इस अपेक्षा से बराबर है, व्यवहार से।

भिन्न लक्षण से रहित... चार के लक्षण के भेद पड़ते हैं, यह तो अनेक हो गया। **एक अपने चैतन्यलक्षणरूप जीवस्वभाव का अनुभव करने पर वे चारों ही अभूतार्थ हैं,...** चारों ही निक्षेप का ज्ञान झूठा है। समझ में आया? स्थापना, स्थापनारूप से है, ऐसा ज्ञान करना। व्यवहार उड़ा दे, ऐसा भी नहीं चलता। और उससे मोक्ष होगा और उसके कारण से लाभ होगा, ऐसा भी नहीं। यह कहते हैं। भगवान की प्रतिमा है। तो शुभभाव में निमित्त है तो निक्षेपरूप से है। व्यवहाररूप से है। परन्तु उससे सम्यग्दर्शन होगा, ऐसा नहीं। **भिन्न लक्षण से रहित एक अपने चैतन्यलक्षणरूप जीवस्वभाव का अनुभव करने पर वे चारों ही अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं। इस प्रकार इन प्रमाण-नय-निक्षेपों में भूतार्थरूप से एक जीव ही प्रकाशमान है।** इसका विशेष स्पष्टीकरण होगा.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल १३, मंगलवार, दिनांक - २७-०९-१९६६
श्लोक-८, प्रवचन - ६०

स्वामी कार्तिकेय।

तिविहेण जो विवज्जदि चेयणमियरं च सव्वहा संगं।
लोयववहारविरदो णिग्गंथत्तं हवे तस्स॥४०२॥

दसलक्षण (धर्म के कथन में) मूल मुनि को लक्ष्य कर बात है न! चारित्र का आराधन है। चारित्र का नौवाँ बोल आकिंचन्य है। धर्मात्मा को मुनि को अन्य परिग्रह तो होता नहीं। स्त्री, पुत्र, वस्त्र, पात्र तो होते नहीं। मात्र उनके **शिष्य, संघ और अचेतन पुस्तक, पिच्छी, कमण्डल आदि धर्मोपकरण...** होते हैं। उनमें भी ममत्व नहीं करते।

मुमुक्षु : पिच्छी हो तो भी ममत्व नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य है। उसमें अपने को क्या?

मुमुक्षु : शिष्य तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शिष्य तो कहने में व्यवहार है। गुरु-शिष्य निश्चय में तो है ही नहीं।

कहते हैं कि लोकव्यवहार। लोक का व्यवहार—लौकिक व्यवहार से तो विरक्त है ही, परन्तु अपने में शिष्य, संघ आदि में ममता हो, उस लोकव्यवहार को भी छोड़ दे। चेतन में शिष्य, संघ आदि। अचेतन में मोरपिच्छी, कमण्डल, पुस्तक आदि। उनमें मेरा कुछ नहीं। विकल्प मेरा नहीं तो दूसरी कौनसी चीज़ मेरी है? ओहो! समझ में आया? जो चीज़ मुझसे छूट जाये, वह मेरी नहीं और मुझसे न छूटे, वह मेरी है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अपना स्वभाव अपने से छूटता नहीं। विकल्प, राग, शरीर आदि तो छूट जाते हैं। वह अपनी चीज़ नहीं। पंच महाव्रत के विकल्प भी अपने नहीं। ऐसा आकिंचन

में कहते हैं। समझ में आया? कुछ भी मेरा नहीं। मैं तो शुद्ध आनन्द, ज्ञानानन्द शुद्ध अनन्त स्वभाव से भरपूर सागर हूँ। मुझमें विकल्प भी नहीं तो मेरे शिष्यसम्पदा, संघ, कमण्डल, मोरपिच्छी या पुस्तक, वह मुझमें कहाँ से आये? ऐसा अन्तर में आनन्दस्वरूप का अनुभव करके सहज पर की ममता का छूट जाना, उसका नाम आंकिचन धर्म कहा जाता है। जो अनन्त काल में इसने कभी किया नहीं। समझ में आया? पहले श्रद्धा में तो लिया कि राग भी मेरा नहीं। श्रद्धा में लिया है, सम्यग्दर्शन हुआ है तब से। राग मेरा नहीं, शरीर मेरा नहीं, तीन काल में कोई परचीज़ मेरी नहीं। यह तो सम्यग्दर्शन होने के काल में ही हो गया है। यहाँ तो चारित्र की बात है। समझ में आया? स्वरूप की स्थिरता चैतन्यधाम अनन्त गुण का राम, आतमराम प्रभु मेरी चीज़ है। उसमें लीनता करके पर की ममता छोड़ दे। उसका नाम आकिंचन धर्म संवर और निर्जरा का कारण है। मोक्ष का कारण वह है। यह नौवाँ आकिंचन धर्म (हुआ)।

चलता अधिकार। १३वीं गाथा। कहाँ तक आया? सेठी! खबर नहीं। भावार्थ चलेगा? इतना याद रखा। थोड़ा बाकी रहा है उसमें। निक्षेप में थोड़ा बाकी है। स्पष्टीकरण बराबर नहीं हुआ। यहाँ क्या कहा? भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव वास्तविक तत्त्व का स्वरूप जो अनुभूति से भिन्न है, वास्तविक स्वरूप है, उससे भिन्न चीज़ है, वह चाहे पर्याय में भले हो। नौ तत्त्व के भेद वर्तमान में विकल्प में पर्याय में है। परन्तु वह है, इतना जाननेयोग्य है। आदरणीय तो मात्र चैतन्य ज्ञायक भूतार्थ स्वरूप शुद्ध चैतन्य की अनुभूति में नौ तत्त्व के भेद का अभाव है। समझ में आया? नौ तत्त्व असत्यार्थ हैं। पर्यायदृष्टि से नौ सत्य है। अनुभवदृष्टि से वे नौ असत्यार्थ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है, नौ है, ऐसा सत्यार्थ। आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न। उसमें नहीं? पर्याय है, भेद है। अभेद में दृष्टि में नहीं आते। सामान्य में लक्ष्य करने से भेद तो है थोड़ा, नहीं है,—ऐसा नहीं। सर्वथा अभेद हो जाये तो वीतराग हो जाये। समझ में आया? परन्तु अन्दर में अभेद में भेद दिखाई नहीं देते। पर्याय है,....

मुमुक्षु : विकल्प मिट गये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उनका आश्रय मिट गया। मात्र चैतन्य अनुभूति सत्यार्थ है। उसमें नहीं। पर्याय में है। पहले ज्ञान में लक्ष्य किया था कि है। स्वभाव का अनुभव करने में वे नहीं। समझ में आया ?

उसी प्रकार प्रमाण। प्रथम विचार करने में प्रमाण का ज्ञान होता है, विकल्पात्मक है। है। प्रत्यक्ष ज्ञान, परोक्षज्ञान निमित्त परोक्ष में है, यह सब है। ऐसा यथार्थ वस्तु सिद्ध करने को ज्ञान करना, अनुभव करने में ये प्रमाण, प्रमेय असत्यार्थ हो गये। एक स्वरूप भगवान आत्मा की अनुभूति करने में ये कोई भेद सहायक है नहीं।

इसी प्रकार नय। सामान्य द्रव्य का ज्ञान मुख्यरूप से करना, पर्याय को गौण करना। पर्याय का मुख्य ज्ञान, द्रव्य को गौण करना–ऐसे क्रमसर, भेदसहित पर्याय से द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक का ज्ञान होता है। है इतना, परन्तु अनुभव करने में वह भेद है नहीं। समझ में आया ?

अब निक्षेप। नामनिक्षेप है। नाम पाड़े - ऐसा ज्ञान करने में है। जैसे कोई भगवान का नाम ले तो ऐसा नामनिक्षेप है। ज्ञान करने में है, सम्यग्दर्शन का कारण नहीं। इसी प्रकार भगवान की स्थापना है और उनकी पूजा का शुभभाव है। हो, परन्तु उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। यही कहते हैं, यही याद करने को कहा। ... धवल में जो आया है कि जिनबिम्ब दर्शन करने से... जम्बूप्रसादजी ने वहाँ बहुत सुना है, जिनबिम्ब दर्शन करने से मिथ्यात्व के टुकड़े हो जाते हैं। हाथी को जैसे सिंह प्रहार करे (तो) टुकड़े हो जाते हैं, वैसे जिनबिम्ब से मिथ्यात्व के टुकड़े हो जाते हैं - ऐसा वहाँ लिखा है। समझ में आया ? यह तो व्यवहारनय के कथन हैं।

यहाँ कहते हैं कि जिनबिम्ब, वह स्थापनानिक्षेप है। वह स्थापनानिक्षेप है। ज्ञेय के चार भेद में नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, योग्यता वर्तमान है, परन्तु उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं; लिखा है, वह तो निमित्त से कथन है। जिनबिम्ब का

लक्ष्य (करता) है, फिर अपने जिनबिम्ब में दृष्टि हुई, तब सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : व्यवहार तो होता है, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार का अर्थ क्या? व्यवहार से कहने में आता है, ऐसा है नहीं, ऐसा है नहीं। व्यवहार उपचार से अन्यथा कहता है। ऐसा है नहीं। व्यवहार कहे ऐसा मान लेना, वह मिथ्यात्व है। समझ में आया? यह टोडरमलजी ने लिया है। एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में मिला दे, वह व्यवहार का लक्षण है। एक द्रव्य के भाव को दूसरे द्रव्य में मिला दे, एक कारण को दूसरे कार्य में मिला दे—ऐसे व्यवहार के कथन हैं, परन्तु ऐसा मान ले तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? एक द्रव्य का भाव दूसरे में मिलाकर व्यवहारनय कहता है। मात्र निमित्त का ज्ञान कराने की बात है। उसके आश्रय से आत्मा को लाभ होता है - ऐसा नहीं। देखो! यह जिनबिम्ब का ही याद आया था, भाई! यह स्थापना है, दर्शन है, शुभभाव है, (वह) जाननेयोग्य है; आदरनेयोग्य नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : जाननेयोग्य है...?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। ज्ञेय है, ज्ञेयरूप से है। (चार निक्षेप) ज्ञेय के चार भेद हैं। नाम, स्थापना, योग्यता वर्तमान प्रगट, वह प्रगट भी पर्याय है, उस पर्याय का जानना हो, वह बराबर है (परन्तु) आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? सुनो... सुनो!.... समझ में आया?

इन चारों निक्षेपों का अपने-अपने लक्षणभेद से (विलक्षणरूप से — भिन्न-भिन्नरूप से) अनुभव किये जाने पर वे भूतार्थ हैं,... अनुभव अर्थात् ज्ञान। ज्ञान करने में नाम निक्षेप, स्थापना, द्रव्य-भाव हैं। **और भिन्न लक्षण से रहित...** ये चार लक्षण जो भिन्न पड़े, उन्हें छोड़कर **एक अपने चैतन्यलक्षणरूप जीवस्वभाव का अनुभव करने पर...** भगवान चैतन्यस्वरूप एक स्वभाव है। उसका अनुभव करने पर ये चारों अभूतार्थ हैं। चारों निक्षेप सम्यग्दर्शन की अनुभूति में सहायक नहीं हैं। समझ में आया?

चारों ही निक्षेप से आत्मा का सम्यग्दर्शन नहीं होता - ऐसा कहते हैं। भावनिक्षेप

भी पर्याय है, भाई! सर्वज्ञ की पर्याय हो या अपनी पर्याय हो, उस पर्याय के आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता – ऐसा यहाँ कहते हैं। भावनिक्षेप है, द्रव्यनिक्षेप योग्यता है, स्थापना निक्षेप है, निमित्त है, नाम (है), वह जाननेयोग्य है। भगवान आत्मा...! वर्तमान पर्याय के चार भेद का लक्ष्य छोड़कर अकेला चैतन्यस्वरूप.. देखो! यहाँ कहते हैं। यहाँ कहते हैं, उसे झूठा कहकर वहाँ (धवल में) कहा है? कि भगवान के दर्शन से सम्यग्दर्शन होता है, तो क्या परलक्ष्य से होता है? अन्तर्मुख दृष्टि किये बिना कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता। बाहर के लक्ष्य में तो शुभराग है। समझ में आया? पद्मप्रसादजी! अन्तर में एकाग्र होना है, वहाँ बाहर में क्या लक्ष्य करे। जम्बूप्रसादजी! निर्णय करना, हों! भाई! बहुत दूर से आये हो, वहाँ जाने के बाद फिर गड़बड़ होगी। बराबर निर्णय तो करना चाहिए न?

चार निक्षेप, उनका विषय जाननेयोग्य है। व्यवहारनय, निक्षेप को जानता है। नय है, वह विषयी है; निक्षेप, विषय है। नय उस निक्षेप को जानता है कि यह व्यवहार है, स्थापना है, यह द्रव्य है, यह भाव है, परन्तु वह जाननेयोग्य है किन्तु अन्दर आदर करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी गड़बड़ी है। शास्त्र में ऐसा आवे कि भगवान के दर्शन से सम्यग्दर्शन होता है, वेदना से सम्यग्दर्शन होता है, जातिस्मरण से सम्यग्दर्शन होता है – ऐसा आता है। वह तो निमित्त के कथन हैं। ऐसा है नहीं। जातिस्मरण हुआ उससे–परलक्ष्य से सम्यग्दर्शन होता है? समझ में आया? पूर्व भव का जातिस्मरण हुआ, लो! तो क्या उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है? बिलकुल नहीं। समझ में आया? आहाहा! अवधिज्ञान हुआ, तो क्या अवधिज्ञान की पर्याय के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है?

भगवान तो नियमसार में तो ऐसा कहते हैं कि अपनी पर्याय क्षायिक हो, क्षयोपशम हो या उपशम हो, उसे तो हम हेय कहते हैं, परभाव कहते हैं और परद्रव्य कहते हैं – ऐसे तीन बोल लिये हैं। समझ में आया? नियमसार कहाँ गया? ५० वीं गाथा है। देखो! नियमसार ५० वीं गाथा। क्या कहते हैं? देखो!

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सग-दव्व-मुवादेयं अंतर-तच्चं हवे अप्पा॥५०॥

पूर्व में जो उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक ऐसे चार भाव कहे, वे हेय हैं। देखो! टीका में है। **शुद्धनिश्चयनय के बल से...** विभावगुण पर्याय के भेद हेय है। किस कारण से? **वे परस्वभाव हैं...** जरा सूक्ष्म बात है। क्षायिकसमकित की पर्याय को भी यहाँ परस्वभाव कह दिया है क्योंकि पर्याय के आश्रय से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। समझ में आया? ५० वीं गाथा बराबर लिख लेना। नियमसार की ५० गाथा।

'**पुव्वुत्तसयलभावा**' पूर्व में जो सकलभाव कहे, वे सब हेय हैं। पाठ में हेय है। पाठ में पहले '**परदव्वं**' है, बाद में '**परसहाव**' है, पश्चात् '**हेयं**' है। अर्थ में पहले लिया है कि हेय है क्योंकि परस्वभाव है क्योंकि परद्रव्य है। समझ में आया? अपनी पर्याय में क्षयोपशम-समकित हुआ, क्षायिकसमकित हुआ, उसे ही यहाँ तो हेय कहने में आया है। क्यों? कि जैसे परद्रव्य में से अपनी नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती, वैसे पर्याय में से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती तो उस पर्याय को भी यहाँ पाठ में परद्रव्य कह दिया है। ऐसा कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं।

'**सग-दव्व-मुवादेयं**' एक द्रव्य सामान्य ज्ञायक अन्तरसत्व परमात्मा, वही अपना '**अप्पा**' अन्तर उपादेय है। समझ में आया? जैसे कर्म और शरीर का लक्ष्य-आश्रय करने से सम्यग्दर्शन नहीं होता। इसी प्रकार पर्याय का क्षयोपशम ज्ञान है, उपशमभाव हो या क्षायिक (भाव हो), उसके लक्ष्य से, उसमें से नयी पर्याय नहीं आती। नयी पर्याय प्रगट होने में अपना '**अप्पा**' त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति है, उसे उपादेय करके नयी पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया? तो चार निक्षेप तो कहीं रह गये। उड़ गये।

भाई! यहाँ तो वहाँ तक कहते हैं कि चार भाव, हों! (मैं) नहीं। विभाव.. विभाव-चार पर्याय विशेष भाव है। भगवान आत्मा एक स्वरूप से चैतन्यबिम्ब बिराजमान है। उसका आश्रय करने से, वही एक उपादेय है। उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है, उसके आश्रय से चारित्र होता है, उसके आश्रय से शुक्लध्यान होता है, उसके आश्रय से केवलज्ञान होता है। पर्याय के आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं, चारित्र नहीं, शुक्लध्यान नहीं और केवलज्ञान नहीं। पर का आश्रय करने से विकल्प उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया? पर्याय का आश्रय करने से विकल्प उत्पन्न होता है, क्योंकि

पर्याय में पर्याय है नहीं। एक समय की पर्याय में दूसरी पर्याय नहीं। उस पर्याय का व्यय होता है और दूसरी पर्याय उत्पन्न होती है। उस पर्याय में पर्याय है नहीं; तो यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं कि उस पर्याय को तो हम हेय कहते हैं। चाहे तो उदय की-राग की पर्याय हो, चाहे उपशम हो, चाहे क्षयोपशम की, चाहे तो क्षायिक की हो; उसे हम हेय कहते हैं, उसे हम परभाव कहते हैं और उसे हम परद्रव्य कहते हैं। तीन बोल लिये हैं। **'हेयं परसहावमिदि परदव्वं'** समझ में आया? ओहो!

मुमुक्षु : क्षायिक सम्यग्दर्शन हेय?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षायिक समकित हेय है, क्योंकि समकित में से चारित्र की पर्याय नहीं आती। शान्ति की चारित्रपर्याय स्वभाव के आश्रय से होती है। (पर्याय के आश्रय से) चारित्र प्रगट नहीं होता, यह बात है। आहाहा! बात में इतना अन्तर है, मार्ग में बहुत फेरफार हो गया है।

भगवान! तेरा द्रव्य ही एक स्वरूप है, उसे ही हम तो परद्रव्य कहते हैं - ऐसा यहाँ आचार्य कहते हैं। परद्रव्य को तो परद्रव्य कहते ही हैं, देव-गुरु-शास्त्र, स्थापनानिक्षेप, साक्षात् समवसरण में बिराजमान प्रभु परद्रव्य है। उनके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता।

मुमुक्षु : दिव्यध्वनि से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिव्यध्वनि परद्रव्य है। यहाँ तो कहना है कि दिव्यध्वनि तो परद्रव्य है, भगवान परद्रव्य है, समवसरण परद्रव्य है, सम्मेदशिखर परद्रव्य है तो उनके आश्रय से सम्यग्दर्शन तीन काल में नहीं होता।

यहाँ तो कहते हैं कि अपने ध्रुव आत्मा के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन हुआ, उस सम्यग्दर्शन के आश्रय से भी शुद्धि की नयी पर्याय नहीं होती। अपने शुद्ध (स्वरूप के) आश्रय से नयी शुद्धपर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! अरे! चारित्र की पर्याय को यहाँ परद्रव्य कह दिया (कि) जो चारित्र अपने शुद्ध द्रव्य के अवलम्बन से उत्पन्न हुआ है। समझ में आया? ५० वीं गाथा समझे तो समझ में आये ऐसी है, हों! ऐसी बात है।

नियमसार, शुद्धभाव अधिकार, शुद्धभाव अधिकार। इस शुद्धभाव का अर्थ

पर्याय नहीं। शुद्धभाव अर्थात् त्रिकाल। जो शुभ-अशुभ और शुद्धपर्याय है, वह बात नहीं। यहाँ शुद्धभाव अधिकार है तो यहाँ पहली ही गाथा में लिया है कि भगवान आत्मा... पहले भी ३८ गाथा में लिया है। वही बात यहाँ ५० (गाथा में) ली है। समझ में आया? देखो! ३८।

'**जीवादिबहित्तच्चं हेयम्**' - ऐसा पाठ है। शुद्धभाव अधिकार की ३८ वीं गाथा है। वह ५० है, यह ३८ वीं है एक ही अधिकार है। '**जीवादिबहित्तच्चं हेयम्**' जीव, अजीव विकल्प परद्रव्य आदि, संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि पर्याय '**हेयम्**' '**जीवादिबहित्तच्चं हेयम्**' '**उपादेयमप्पणो अप्पा**' एक अपना '**अप्पा**' शुद्ध ध्रुवस्वभाव है, वही आदरणीय है, आश्रय करने योग्य है। यह ३८ वीं गाथा है, शुद्धभाव अधिकार की ३८ वीं, वह शुद्धभाव अधिकार की ५०वीं (थी) समझ में आया? अरे! परन्तु शास्त्र क्या कहते हैं यह समझना नहीं और अपना अभिप्राय छोड़ना नहीं, अपनी पकड़ छोड़ना नहीं। नहीं.. नहीं.. नहीं.. परन्तु सुन तो सही।

जहाँ भगवान आत्मा अपना शुद्ध चैतन्य ध्रुव पर दृष्टि देने से सम्यक्त्व हुआ, स्थिरता करने से चारित्र हुआ। उस चारित्र के आश्रय से भी शुक्लध्यान नहीं होता क्योंकि वह पर्याय है, उस पर्याय को भी यहाँ हेय कहा है, परभाव कह दिया, परद्रव्य कह दिया है। स्वद्रव्य शुद्धध्रुव को ही स्वद्रव्य कहा है। आहाहा! समझ में आया? भगवान परमात्मस्वरूप एक समय में पूर्ण है। शुद्ध ज्ञायक चिदानन्द प्रभु की अनुभूति करने से, उसका आश्रय करने से अनुभव होता है, उसका आश्रय करने से शुक्लध्यान होता है, उसका आश्रय करने से केवलज्ञान होता है। पर्याय का आश्रय करने से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। समझ में आया?

तीन बोल लिये हैं। हेय, परभाव, परद्रव्य। ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्यदेव की सिद्ध करने की पद्धति (गजब है)! भगवान आत्मा...! एक समय की उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय पर्याय है न? वह तो व्यवहार आत्मा है। क्या कहा? सुनो! और दूसरी बात आ गयी। राग तो आस्रव है, परन्तु सम्यक् शुद्ध चैतन्यद्रव्य के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन, क्षायिक चारित्र पर्याय उत्पन्न हुई, वह व्यवहार आत्मा है, पर्याय आत्मा है, पर्याय के अंशरूप व्यवहार आत्मा है; वह निश्चय आत्मा नहीं। आहाहा! जम्बूप्रसादजी!

मुमुक्षु : पर्यायदृष्टि करनेवाला पर्यायमूढ़ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें एकाकार हो तो मूढ़ है, परन्तु पर्याय है—ऐसा जानकर द्रव्य का आश्रय करे तो ज्ञानी है। समझ में आया?

यहाँ तो थोड़ा दूसरा कहना था कि भगवान आत्मा ध्रुव शुद्ध वस्तु है, उसे चार निक्षेप के आश्रय से उसे आनन्द की उत्पत्ति या सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति नहीं होती। अब यह शुद्ध भगवान आत्मा एक स्वभाव के आश्रय से जो दशा हुई, उस दशा को भी, आचार्य यहाँ कहते हैं कि हम उसे हेय कहते हैं, परभाव कहते हैं, परद्रव्य कहते हैं। व्यवहार से आत्मा (कहते हैं)। शुद्धपर्याय को व्यवहार से आत्मा (कहते हैं) न्याय सुनो!

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग की पर्याय, स्वभाव के आश्रय से उत्पन्न हुई, उस मोक्षमार्ग की पर्याय को हम व्यवहार आत्मा कहते हैं, व्यवहार आत्मा का अर्थ वह (कि) निश्चय आत्मा नहीं। निश्चय आत्मा का अर्थ-वह (पर्याय) परद्रव्य है। आहाहा! गजब बात है। राजबहादुरजी! बहुत सूक्ष्म है भाई! व्यवहार है न? भाई! व्यवहार अन्यथा कहता है, वास्तविक द्रव्य को (कहता नहीं)। आहाहा! गजब शैली है।

कहते हैं कि आश्रय करनेयोग्य नहीं, परन्तु उसे यहाँ परद्रव्य क्यों कहा यह सिद्ध किया। क्षायिकभाव स्वभाव के आश्रय से हुआ, स्वभाव के आश्रय से चारित्र हुआ, छठे गुणस्थान में चारित्र आदि; उस पर्याय को यहाँ हेय कहा, परभाव कहा, परद्रव्य कहा। व्यवहार से उस चारित्रपर्यायसहित शुद्ध निर्मल पर्याय है, वह व्यवहार आत्मा है। निश्चय आत्मा एक समय की पर्यायरहित त्रिकाली ध्रुव, वह निश्चय आत्मा है। आहाहा!

फिर से कहते हैं। ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्यदेव की कथन पद्धति कोई गजब शैली है! यह तो भाई! दूसरे प्रकार से कहा कि आत्मा एक समय का शुद्ध ध्रुव त्रिकाल चैतन्यमूर्ति वह निश्चय आत्मा है और उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय उत्पन्न हुई। अब हुई, राग तो अनात्मा है, उसे एक ओर रखो, अभी राग बाकी है न? पर्याय में पूर्ण वीतराग नहीं तो (राग है), वह तो अनात्मा है, आस्रव में गया परन्तु शुद्धपर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की-निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय उत्पन्न हुई, उसे

एक समय का अंश कहकर व्यवहार आत्मा कहा। एक समय की पर्याय है न? क्या कहा, समझ में आया?

जो प्रगट है, वह तो एक समय की पर्याय है, दूसरे समय में दूसरी होती है, तीसरे समय में तीसरी होती है। आहाहा! केवलज्ञान है, वह एक समय की पर्याय है। केवलज्ञान दो समय नहीं रहता। दूसरे समय दूसरा (होता है)। वैसा ही, परन्तु दूसरा (होता है)। जम्बूप्रसादजी! केवलज्ञान पर्याय है, गुण नहीं। गुण है, वह तो त्रिकाल सदृश रहते हैं, पर्याय विसदृश है। एक समय की केवलज्ञान पर्याय हुई, वह दूसरे समय में वही नहीं रहती, वैसा ही होता है परन्तु वह नहीं, पर्याय दूसरी है। अतः केवलज्ञान भी एक समय का अंश सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। ओहोहो! गजब बात है! सद्भूतव्यवहारनय का विषय है तो उसे व्यवहार आत्मा कहा। ओहोहो! गजब शैली है। समझ में आया?

कहते हैं कि नीचे साधकदशा में केवलज्ञान है नहीं। क्षायिक समकित हो, चारित्रपर्याय हो, एक समय के त्रिकाल ध्रुव को सत्यार्थ आत्मा कहते हैं, सत्यार्थ आत्मा कहते हैं। एक समय की पर्याय को असत्यार्थ कहते हैं। त्रिकाल की अपेक्षा से असत्यार्थ कहते हैं और व्यवहार की अपेक्षा से उसे व्यवहार आत्मा कहते हैं। ऐ... हिम्मतभाई! धीरे समझो, भाई! फिर से कहेंगे एकदम नहीं छोड़ देंगे। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा लगता है कि एक ही है, परन्तु प्रत्येक समय दूसरी पर्याय होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्येक समय दूसरी है। वह तो उत्पाद होता है न! समय-समय का उत्पाद नया-नया है।

यहाँ तो दूसरी बात कहनी है कि आत्मा में जो पर्याय उत्पन्न होती है, शुद्धपर्याय, शुद्धपर्याय। वह शुद्धपर्याय, शुद्धद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुई है, परन्तु उस शुद्धपर्याय को निश्चय आत्मा नहीं कहते; व्यवहार आत्मा कहते हैं क्योंकि अंश है। एक समय की पर्याय, चारित्र-मोक्षमार्ग की पर्याय, मोक्षमार्ग की पर्याय व्यवहार आत्मा है क्योंकि अंश है, त्रिकाल का एक भेद है। त्रिकाल को निश्चय आत्मा कहते हैं और अंश को व्यवहार आत्मा कहते हैं। व्यवहार कहा तो निश्चय से उसे परद्रव्य कह दिया। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रगट हुई तो पर-भिन्न है, भिन्न है। ध्रुव से भिन्न है। उत्पादरूप है। ध्रुव तो भिन्न रह गया। उत्पादरूप हुई तो उतनी पर्याय को-शुद्धपर्याय को निश्चय आत्मा नहीं कहते। निश्चय आत्मा तो कायम रहे,उसे निश्चय आत्मा कहते हैं। अरे! यहाँ तो दूसरा लेना है। यहाँ परद्रव्य कहा न? व्यवहार से आत्मा और निश्चय से परद्रव्य। आहाहा! गजब बात है, भाई! अभी कहेंगे, कहेंगे। ऐसे नहीं चला देंगे।

आत्मा है, वह एक समय में ध्रुव सदृश चिदानन्द अनादि-अनन्त एकरूप वस्तु है। उसमें उत्पाद-व्यय नहीं, उत्पाद-व्यय नहीं। उत्पाद-व्ययरहित जो ध्रुवस्वरूप है, उसे यहाँ निश्चय आत्मा कहते हैं। समझ में आया? परमात्मप्रकाश है? परमात्मप्रकाश की ४३ गाथा में ऐसा लिया है। पहला अधिकार और दूसरा अधिकार दोनों में ४३ (गाथा है)।

उत्पाद-व्ययरहित ध्रुव वही यथार्थ वास्तविक आत्मा है—ऐसा लिखा है। उसमें अपने आया न? नियमसार में आ गया, नियमसार में आ गया। क्या कहते हैं? नियमसार में वास्तविक आत्मा कहाँ आया? आया था न? शुद्धभाव में आया या किसमें आया? शुद्धभाव। यह आया, लो! भाषा देखो! अनादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाववाला सहज परमपारिणामिक जिसका स्वभाव ऐसा कारण परमात्मा वह वास्तव में आत्मा है। अनादि-निधन अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाव शुद्ध सहज परमपारिणामिकभाव स्वभाव कारणपरमात्मा ही वास्तव में आत्मा है। उसे ही आत्मा कहते हैं। त्रिकाल ध्रुव को वास्तविक आत्मा कहा। उत्पाद-व्यय को वास्तविक आत्मा (कहा) नहीं। आहाहा! समझ में आया? देखो, वास्तव में वह आत्मा है। यहाँ टीका में पाठ है न? एक समय का ध्रुव वास्तव में आत्मा है। वास्तव में कहो या सच्चा आत्मा कहो। एक समय की पर्याय वास्तव में आत्मा नहीं, वास्तविक आत्मा नहीं। वह पर्यायरूप व्यवहार आत्मा है। आहाहा! सेठ! बहुत सूक्ष्म है।

फिर से, यहाँ तो ऐसे का ऐसा कैसे जाने दें? बराबर पक्का करना चाहिए या नहीं? एक समय का जो ध्रुव है, उसे यहाँ वास्तविक आत्मा कहा है। वास्तविक तो एक समय की

पर्याय जो है, चारित्र की-मोक्षमार्ग की पर्याय, वह वास्तविक आत्मा नहीं। भाई! वास्तविक नहीं तो अवास्तविक आत्मा सिद्ध हुआ। अवास्तविक अर्थात् व्यवहार आत्मा हुआ। आहाहा! गजब बात है! सन्तों की कथनी..! समझ में आया? ऐसी बात दुनिया को सुनना कठिन (पड़े) ऐसी बात है। समझ में आया?

कहते हैं कि एक समय का भगवान आत्मा, उत्पाद-व्यय निकाल दो, उत्पाद-व्यय नहीं; उत्पाद-व्यय एक समय की पर्याय है। चाहे तो सिद्ध हो, परन्तु वह उत्पाद-व्यय पर्याय है। क्या (कहा)? सिद्ध भी एक समय की पर्याय है। द्रव्य त्रिकाली कायम है। तो एक समय की पर्याय वह उत्पाद-व्यय है। वर्तमान पर्याय व्यवहारनय का विषय हुआ और त्रिकालस्वरूप जो भगवान एक स्वरूप है, वह निश्चय-वास्तविक आत्मा है। आहाहा! यह परिणमन व्यवहार आत्मा हो गया। पर्याय है या नहीं? वह पर्याय है। पर की क्रिया तो कहीं जड़ में रह गयी, वह तो व्यवहार है ही नहीं। दया, दान का राग आया, वह व्यवहार है नहीं, वह तो पर विकार है, परन्तु यहाँ तो व्यवहार आत्मा किसे कहते हैं? आहाहा!

भगवान आत्मा एक समय में अनन्त गुण का एक स्वरूप ध्रुव चैतन्य प्रभु को वास्तविक आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं। दोपहर को यह चलता है। अकार्यकारण की शक्ति उसमें पड़ी है। उस आत्मा को वास्तविक आत्मा कहा और उस आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो पर्याय उत्पन्न हुई.. समझ में आया? अपने स्वभाव के आश्रय से निश्चय सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय, मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट हुई, वह एक समय का अंश है, उत्पाद-व्यय अंश है; वह वास्तविक त्रिकाल नहीं तो उसे व्यवहार आत्मा कहा, अवास्तविक आत्मा कहा। समझ में आया? आहाहा! अवास्तविक आत्मा कहो.. पर्याय, हों! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागी पर्याय जो कि त्रिकाल आत्मा के आश्रय से प्रगट हुई है, उस पर्याय को भगवान वास्तविक आत्मा नहीं कहते, क्योंकि एक समय की पर्याय है, वह व्यवहारनय का विषय हो गया। व्यवहार है, वह अभूतार्थ है। वह त्रिकाल भूतार्थ से भिन्न है। एक स्वरूप त्रिकाल है, उसे भूतार्थ आत्मा कहते हैं, सत्यार्थ आत्मा कहते हैं; एक समय की पर्याय को, अनित्यपने को व्यवहार आत्मा कहते हैं। उस व्यवहार आत्मा को ५० गाथा में कहा कि

हेय है, परभाव है, परद्रव्य है। आहाहा! गजब बात है! समझ में आया?

देखो! यह परमात्मप्रकाश। दोनों अधिकार में ४३ है। देखो! ४३। **आगे यद्यपि पर्यायार्थिकनयकर उत्पादव्ययकर सहित है, तो भी द्रव्यार्थिकनयकर उत्पादव्ययरहित है, सदा ध्रुव (अविनाशी) ही है, वही परमात्मा...** वही परमात्मा (अर्थात्) अपना (आत्मा)। **निर्विकल्प समाधि के बल से तीर्थंकरदेवों ने देह में भी देख लिया है,...** क्या कहते हैं? फिर से - अपनी पर्याय में जो उत्पाद-व्यय होता है, पर्याय में; कर्म अलग, शरीर अलग... अलग। पूरा परमात्मप्रकाश रेकार्डिंग में उतर गया है, सब रेकार्डिंग में उतर गया है।

देखो! पाठ है। **अथोत्पादव्ययपर्यायार्थिकनयेन संयुक्तोऽपि यः द्रव्यार्थिकनयेन उत्पादव्ययरहितः स एव परमात्मा निर्विकल्पसमाधिबलेन जिनवरैर्देहेऽपि दृष्ट इति निरूपयति**-भगवान आत्मा एक समय में अनन्त गुण का पुंज है। उसमें गुण तो अनन्त है—ऐसा ध्रुव, उत्पाद-व्यय की पर्यायरहित भगवान तीर्थंकरदेव ने देह में, देह का स्पर्श किये बिना आत्मा रहता है। ओहो! उसे देह का तो स्पर्श नहीं परन्तु उसे उत्पाद-व्यय का स्पर्श नहीं। सुनो! उत्पाद-व्यय का तादात्म्य स्पर्श नहीं। एक समय की पर्याय उत्पाद-व्यय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आनन्द जो मोक्ष का मार्ग, हों! शुद्ध द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए, उस एक समय की पर्याय को द्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहा! यह फिर आ गयी, १७२ गाथा, प्रवचनसार १७२ गाथा में कहते हैं कि पर्याय को द्रव्य आलिंगन नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

शुद्ध चैतन्यधातु, द्रव्यवस्तु जिसमें अनन्त गुण पड़े हैं। अकार्यकारण गुण आदि, ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुण का धाम, उसे सर्वज्ञ परमेश्वर वास्तविक आत्मा कहते हैं। ऐसे आत्मा को, देह का स्पर्श किये बिना भगवान उसमें रहते हैं, तो भगवान तीर्थंकरदेव ने उत्पाद-व्ययरहित पूरा आत्मा देह से भिन्न देख लिया है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा भगवान आत्मा उत्पाद-व्ययकर पर्याय से सहित है तो भी द्रव्यार्थिकनयकर उत्पाद-व्ययरहित है, सदा अविनाशी ही है। वही परमात्मा है, उसी वास्तविक आत्मा की अन्तर्दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। प्रथम में प्रथम धर्म की शुरुआत वहाँ होती

है। सिर फोड़कर मर जाये, क्रियाकाण्ड करके, व्रत पालन करके (मर जाये), परन्तु उसे सम्यग्दर्शन दूसरे प्रकार से नहीं होता। समझ में आया? मर जाये, उपवास कर-करके शरीर का चूरा हो जाये, महीने-दो महीने के मासखमण करके, दया के भाव करके मर जाये, चूरा हो जाये (तो भी) उसमें धर्म बिलकुल नहीं। भगवान आत्मा एक समय का ध्रुव चैतन्य प्रभु को पकड़ने से-उसके आश्रय से धर्म होता है। (उसका आश्रय) करने से धर्म होता है, दूसरी कोई पद्धति नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं कि जो धर्म प्रगट हुआ, वह भी उत्पाद-व्ययवाली पर्याय (है जो) व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! जिसे राग से मुक्ति होती है, वह तो व्यवहार है - ऐसा है नहीं। परन्तु निश्चयमोक्षमार्ग से मुक्ति होती है, वह निश्चयमोक्षमार्ग तो राग की अपेक्षा से कहा, परन्तु त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय व्यवहार है क्योंकि अंश-भेद है। समझ में आया? अरे! सर्वज्ञ ने क्या देखा और क्या कहा? उसका पता नहीं होता और उसे धर्म हो जाये... धूल में भी धर्म नहीं। मर गया अनन्त काल से। चौरासी के अवतार (किये)। जैन का दिगम्बर साधु निवृत्ति लेकर अनन्त बार हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ पै निज आत्मज्ञान बिना सुख लेश न पायौ।' भगवान आत्मा एक समय में अखण्डानन्द पूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड है, उसकी अन्तर्दृष्टि करने से, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। लाख बार चार निक्षेप से, भगवान की मूर्ति से और भगवान के दर्शन से सम्यग्दर्शन तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? जम्बूप्रसादजी! आहाहा! गजब बात, भाई!

भाई! क्या कहा? कि प्रभु आत्मा तो एक समय का (में) अनादि-अनन्त ध्रुव, जिसमें अनन्त परमात्मा स्थित हैं। किसमें? कि द्रव्य में। द्रव्य जो एक समय का है, उसमें तो अनन्त सिद्ध परमात्मा स्थित हैं। अनन्त सिद्ध! क्योंकि सिद्ध, वह पर्याय है। ऐसी अनन्त पर्याय, सिद्ध की अनन्त पर्याये, आत्मद्रव्य में अनन्त पर्याय पड़ी है। ऐसा भगवान आत्मा परमात्मा स्वयं है, उसका अनुभव करके उसका आश्रय करना, वह सम्यग्दर्शन है। इसके अतिरिक्त क्रियाकाण्ड करके मर जाये, लाख दूसरा करे और उसमें धर्म माने तो महामिथ्यात्व सेवन करता है। मिथ्यात्व-पाप क्षण-क्षण में (होता है)। महापाप तो वह है। मिथ्यात्व जैसा कोई पाप नहीं। आहाहा! समझ में आया? राग

से धर्म होता है और दया से धर्म होता है और मैं पर की दया पाल सकता हूँ... मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। पापी है, पापी - महा-बड़ा पापी है। मिथ्यात्व जैसा (बड़ा पाप कोई नहीं है)। सप्त व्यसन के पाप से भी मिथ्यात्व का पाप अनन्तगुना है। समझ में आया? ए.. शोभालालजी! यहाँ कठिन बात है।

मुमुक्षु : सरल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सरल है? सेठ भी अब प्रसन्न हो गया, लो!

भगवान आत्मा...! यहाँ ४३ वीं गाथा में तो ऐसा कहना है कि उत्पाद-व्ययरहित जो आत्मा, वह आत्मा है, वह वास्तविक आत्मा है। यहाँ भी यह कहा कि वास्तविक आत्मा, कारणपरमात्मा, एक समय में अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप, वही वास्तविक आत्मा है। जो पर्याय है, वह वास्तविक आत्मा नहीं। शरीर तो... आहाहा! देखो! मस्तिष्क में दूसरा प्रश्न आया। शरीर का प्रश्न हुआ था न? पण्डितजी! जयपुर... जयपुर..! पण्डित की उपस्थिति में वहाँ जयपुर में शरीर का प्रश्न हुआ था। क्या शब्द? जीवित शरीर से धर्म होता है या नहीं? ऐसा प्रश्न (हुआ था)। भगवान! सुन तो सही! आत्मा में एक ऐसा गुण है कि स्वधर्मव्यापक है। राग, शरीर में तो आत्मा कभी व्याप्त हुआ ही नहीं। आत्मा में एक स्वधर्मव्यापक नामक गुण है। सैंतालीस शक्ति में एक गुण है। समझे? सैंतालीस शक्ति है न? इस समयसार में पीछे है। समझ में आया? अपने अनन्त गुण में स्वधर्म में व्यापक है। कभी शरीर में, राग में आत्मा व्यापक नहीं है। आहाहा! उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, प्रभु!

यह दशलक्षणी का व्याख्यान है। यह मोक्षमार्ग का व्याख्यान है। आकिंचन का है न? यह उत्पाद-व्यय मेरे नहीं, ध्रुव मेरा है - यह आकिंचन है। लो! शरीर तो मेरा नहीं, वाणी मेरी नहीं, खाना-पीना सब जड़ की क्रिया है, मेरी नहीं और अन्दर में दया, दान का राग आवे, वह मेरा नहीं। वह तो नहीं परन्तु उत्पाद-व्यय की पर्याय मेरे त्रिकाल में है - ऐसी पर्याय मुझमें नहीं। मेरी हो तो कायम रहे। एक समय की है। एक समय का व्यवहार है, एक समय की है। एक समय की है, त्रिकाल नहीं—इस अपेक्षा से तो ग्यारहवीं गाथा में अभूतार्थ कह दी है। **ववहारोऽभूदत्थो** पर्याय असत्यार्थ है, इस

अपेक्षा से, हों! त्रिकाल में नहीं, इस अपेक्षा से। पर्याय तो पर्याय है। समझ में आया? आहाहा! अरे! इसे सत्य का पता नहीं होता और धर्म होता है और कल्याण होगा... मर जायेगा अब। चौरासी के अवतार में अनन्त बार गोते खाये। निगोद के रास्ते हो और माने कि हम कुछ धर्म के रास्ते हैं।

यहाँ तो कहते हैं, एक बार सुन तो सही! चैतन्य भगवान एक समय में ध्रुव बिराजमान है, उसे हम निश्चय आत्मा, वास्तविक आत्मा कहते हैं। क्यों? कि उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग और मोक्ष प्रगट होता है। उसके आश्रय से ही मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, वह भी उत्पाद-व्यय की पर्याय है। उस उत्पाद-व्यय की पर्याय के आश्रय से नयी शुद्धि उत्पन्न नहीं होती; इसलिए निश्चय मोक्षमार्ग को भी हम व्यवहार आत्मा कहते हैं। निश्चय से उसे परद्रव्य कहते हैं। आहाहा! गजब बात है! कहाँ की कहाँ बात आ गयी! कहो, जिनेश्वरदासजी! याद रहना जरा कठिन है। बोल थोड़ा सूक्ष्म आ गया है न!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रमाण, नय, निक्षेप चार। भगवान हो, स्थापना हो, योग्यता अपनी पर्याय में भावनिक्षेप हो, भगवान की पर्याय में केवलज्ञान भावनिक्षेप है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। भावनिक्षेप पर्याय है। वर्तमान प्रगट पर्याय को भावनिक्षेप कहते हैं। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता तो भगवान के दर्शन से और बाहर से सम्यग्दर्शन होता है—ऐसा तीन काल में नहीं। व्यवहार है अवश्य, शुभभाव है। हो - परन्तु उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है या ज्ञान होता है या चारित्र होता है—ऐसा तीन काल में नहीं है। कहो, समझ में आया? राजबहादुरजी! ए... वेणीप्रसादजी! गजब बात है! प्रभु! तेरी ऐसी लीला है, उसकी तुझे खबर नहीं। अभी खबर नहीं, बेखबरी अज्ञानी मूढ़ है और मानता है कि हमें धर्म होता है। कहाँ है तेरा धर्म? समझ में आया?

एक समय में भगवान आत्मा... यहाँ तो कहते हैं कि कोई ऐसा कहे कि भगवान के दर्शन से समकित होता है तो यहाँ कहते हैं कि विलक्षण व्यवहारनय के विषय में गया। उससे सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! **अपने चैतन्यलक्षणरूप जीवस्वभाव का अनुभव करने पर...** सम्यग्दर्शन होता है। अपने आश्रय से अनुभूति होती है। किसी भी

विकल्प से या पर के आश्रय से नहीं होती। साक्षात् परमेश्वर समवसरण में बिराजमान हो तो उनके आश्रय से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। दिव्यध्वनि के आश्रय से नहीं होता। पहले यह आता था न? दिव्यध्वनि से लाभ नहीं? सुन तो सही! दिव्यध्वनि सुनता है तो वह विकल्प-शुभराग है, क्योंकि वह परद्रव्य है। समझ में आया? उससे सम्यग्दर्शन नहीं होता। राग मन्द करके सुनता है, ज्ञान का क्षयोपशम है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा!

द्रव्य के आश्रय से होता है। अपने आश्रय से (होता है)। (दूसरे सब) निमित्त के कथन हैं। (भगवान की प्रतिमा के दर्शन से सम्यग्दर्शन हुआ) ऐसा कहा, परन्तु ऐसा है नहीं, है नहीं, परन्तु निमित्त का ज्ञान कराने को कहा। आरोप आता है। है नहीं (उसे कहा) व्यवहारनय का विषय ही ऐसा ही है कि है नहीं उसे कहना, उसका नाम व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया?

भाई! तूने तेरा आत्मा, सर्वज्ञ ने देखा, वैसा तूने कभी माना नहीं। माने तब तो सम्यग्दर्शन हो जाये और जन्म-मरण का अन्त आ जाये। चाहे तो ९६ हजार स्त्री के वृन्द में पड़ा हो, समझ में आया? आता है न? ९६ हजार। उसमें ८४ हजार है। उसमें पड़ा हो तो क्या है? भोग की वासना हो तो राग-दोष है। अन्तर में राग से भिन्न मेरी चीज़ अखण्डानन्द प्रभु है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ है तो बन्ध है ही नहीं, चल! समझ में आया? मिथ्यात्व से बन्ध पड़ता है, उसे ही बन्ध कहने में आया है। दोपहर को यह चलता है। आहाहा! अभी तो राग मन्द करे और ऐसा करे और वैसा करे... मन्द करना पड़े, करना पड़े। क्या करना पड़े? राग मन्द करना-ऐसी कर्ताबुद्धि है, तब तक मिथ्यादृष्टि है। भगवान आत्मा राग से भिन्न है। राग करना पड़ता है न! करना तो पड़ता है न! मूढ़ है। चैतन्य का खून करनेवाला मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? दूसरे की हिंसा करे, न करे; अपनी महान हिंसा करता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, अपने तो यह विषय जरा सूक्ष्म (चलता है) कि उत्पाद-व्यय-पर्याय को भी निश्चय से आत्मा नहीं कहा। व्यवहार आत्मा कहा। पर्याय है या नहीं? पर्याय को व्यवहार कहा, द्रव्य को निश्चय कहा, तो एक समय की सम्यग्दर्शन-

ज्ञान-चारित्र पर्याय प्रगट हुई, वह पर्याय है तो पर्याय का विषय व्यवहारनय का विषय हो गया। अतः व्यवहार आत्मा हुआ, निश्चय आत्मा नहीं हुआ। यह भारी गजब बात! तो दया, दान के विकल्प तो कहीं रह गये, वे तो धूल में गये। वह राग तो आस्रवतत्त्व में है। आहाहा! बहुत सत्य बात है, परन्तु यही सत्य है, यही सत्य है। शुरुआत का सत्य यही है। तीन काल-तीन लोक में दूसरा कोई सत्-यथार्थ है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : गहरा स्वरूप...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में गहरा स्वरूप भगवान आत्मा है, वहाँ गोता खाना पड़ेगा... वहाँ अन्दर बारम्बार दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होगा, दूसरा कोई उपाय नहीं है। लाख क्रियाकाण्ड करके मर जाये, अपवास और दया, दान और व्रत... आहाहा! राजबहादुरजी! क्या इसमें अकेला निश्चयाभास नहीं होता? अरे! सुन तो सही! तूने निश्चय क्या है, यह (सुना नहीं)।

भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु ही वास्तविक आत्मा है। उसके आश्रय से अनुभव करने से अनुभूति होती है। भगवान के निक्षेप से और सामने परमात्मा तीर्थंकर भावनिक्षेप हो तो भी उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया? तो फिर दया, दान के परिणाम से सम्यग्दर्शन होता है और मैं पर की क्रिया कर दूँ... समझ में आया? (ऐसा माननेवाला) महा-बड़ा पापी मूढ़ है। मैं परद्रव्य में कुछ संस्कार डालता हूँ, परद्रव्य में मैं कुछ सुधार करता हूँ (-ऐसा माननेवाला) बड़ा पापी मूढ़ मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : बहुत दूर की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत दूर की बात रही। हाँ, बहुत स्थूल मिथ्यात्व है। यह तो बड़ा स्थूल मिथ्यात्व है। समझ में आया?

यहाँ तो (कहते हैं) राग के विकल्प से मुझे लाभ होगा (-ऐसा माननेवाला) पापी मिथ्यादृष्टि (है) तेरी दृष्टि झूठी है, वह सत्य का खून करनेवाला है। समझ में आया? आहाहा! वह तो ठीक, परन्तु कहते हैं कि पर्याय के आश्रय से लाभ होगा—

(ऐसा माननेवाला) मूढ़ है। यहाँ तो राग एक ओर रह गया। क्षयोपशम ज्ञान है, क्षयोपशम ज्ञान है, क्षयोपशम दर्शन है, क्षयोपशम वीर्य है। पर्याय में है न? उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है (-ऐसा माननेवाला) पर्यायमूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? यह सब निक्षेप में से आ गया। यहाँ तो भावनिक्षेप ख्याल में था न! परन्तु भावनिक्षेप केवलज्ञान है। उसके आश्रय से भी नहीं। आहा!

पर्याय तो एक समय की दशा है। उसका आश्रय करे तो विकल्प होता है। एक समय की पर्याय में दूसरी पर्याय रहती है? एक समय की पर्याय में दूसरी पर्याय रहती है? अनन्त शुद्ध पर्याय तो द्रव्य में रहती है। द्रव्यस्वभाव त्रिकाल भगवान आत्मा की रुचि करने से, अनुभव करने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? ओहो!

इस प्रकार इन प्रमाण-नय-निक्षेपों में भूतार्थरूप से एक जीव ही प्रकाशमान है। नवतत्त्व में, प्रमाण, नय, निक्षेप में भगवान आत्मा अकेला सत्य प्रभु, सत्य प्रभु, सच्चिदानन्द ध्रुव प्रभु ही बिराजमान है। उसे सत्य आत्मा कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ - इन प्रमाण, नय, निक्षेपों का विस्तार से कथन तद्विषयक ग्रन्थों से जानना चाहिये; उनसे द्रव्यपर्यायस्वरूप वस्तु की सिद्धि होती है। क्योंकि जानने से द्रव्य क्या है, पर्याय क्या है? - उसका बोध होता है। बोध (अर्थात् यहाँ) यथार्थ ज्ञान की बात नहीं है। साधारण बोध होता है, ऐसा। **वे साधक अवस्था में तो सत्यार्थ ही हैं...** प्रमाण से, नय से वास्तविक वस्तु की लक्ष्य में सिद्धि करना, वह प्रथम अवस्था में सच्चा है। **क्योंकि वे ज्ञान के ही विशेष हैं। उनके बिना वस्तु को चाहे जैसे साधा जाये...** अपनी कल्पना से (साधने जाये और) भगवान ने कहा वैसे नय, निक्षेप से, प्रमाण से वस्तु की सिद्धि न करे तो विपरीत हो जाये, विपरीत हो जाये।

अवस्थानुसार व्यवहार के अभाव की तीन रीतियाँ हैं : प्रथम अवस्था में प्रमाणादि से यथार्थ वस्तु को जानकर ज्ञान-श्रद्धान की सिद्धि करना;... प्रमाण से केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक को देखता है। ऐसे पर्याय को पहले विकल्प से निर्णय करना। मति-श्रुत परोक्ष है, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान देशप्रत्यक्ष है—ऐसा विकल्प से बराबर निर्णय करना। ऐसा निर्णय करके, पश्चात् उसे छोड़कर मात्र ज्ञायकभाव का

आश्रय करने से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान होता है। यह धर्म की पहली सीढ़ी और पहली शुरुआत (है)। समझ में आया? इसके बिना तीन काल-तीन लोक में किसी क्षेत्र में दूसरे प्रकार से धर्म नहीं होता।

ज्ञान-श्रद्धान के सिद्ध होने पर श्रद्धान के लिये प्रमाणादि की कोई आवश्यकता नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान में वस्तु की प्राप्ति हुई, पश्चात् प्रमाण की कुछ जरूरत नहीं। **किन्तु अब यह दूसरी अवस्था में प्रमाणादि के आलम्बन से विशेष ज्ञान होता है...** सम्यग्दर्शन होने के बाद भी विशेष ज्ञान करने से, क्रम-क्रम से स्वरूप में स्थिरता करने से **राग-द्वेष-मोहकर्म के सर्वथा अभावरूप यथाख्यातचारित्र प्रगट होता है;...** क्योंकि प्रमाण का ज्ञान करना है न? द्रव्य सामान्य त्रिकाल है और पर्याय एक समय की है। उसमें आ गया कि द्रव्य के आश्रय से लाभ है। द्रव्य के आश्रय से लाभ हुआ - ऐसा विशेष ज्ञान करने से दृष्टि पहले तो जानती है, तो विशेष ज्ञान से **राग-द्वेष-मोहकर्म के सर्वथा अभावरूप यथाख्यातचारित्र प्रगट होता है; उससे केवलज्ञान की प्राप्ति होती है।**

केवलज्ञान होने के पश्चात् प्रमाणादि का आलम्बन नहीं रहता। तत्पश्चात् तीसरी साक्षात् सिद्ध अवस्था है, वहाँ भी कोई आलम्बन नहीं है। इस प्रकार सिद्ध अवस्था में प्रमाण-नय-निक्षेप का अभाव ही है। संक्षिप्त में क्या कहते हैं? पहले प्रमाण से पूरी चीज़ द्रव्य और पर्याय क्या है - यह निर्णय करना। नय से एक-एक धर्म और एक-एक गुण और एक-एक पर्याय को निर्णय करना और निक्षेप से नाम, स्थापना, योग्यता और भाव क्या है, यह निर्णय करना। बस इतना। यह निर्णय करने के बाद उसका लक्ष्य छोड़ देना और निज चैतन्य का आश्रय करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट करना। फिर प्रमाण, नय, निक्षेप की श्रद्धा-ज्ञान में आवश्यकता नहीं। पश्चात् चारित्र के लिये विशेष सिद्ध करना हो तो चारित्र स्वभाव के आश्रय से होता है, राग के आश्रय से नहीं होता। मजबूत संहनन शरीर हो तो चारित्र होता है, ऐसा नहीं है। ऐसा निर्णय करके चारित्र प्रगट करना। फिर प्रमाण-नय-निक्षेप की आवश्यकता नहीं है। फिर केवलज्ञान हुआ, वहाँ आवश्यकता नहीं है, सिद्ध हुए वहाँ आवश्यकता नहीं है। इसका कलश आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल १४, बुधवार, दिनांक - २८-०९-१९६६
श्लोक-९, प्रवचन - ६१

आत्मा आनन्दस्वरूप है। आनन्दस्वरूप में रुचि छोड़कर जितनी परद्रव्य में अथवा पुण्य परिणाम में रुचि करना, वही महा मिथ्यात्व का व्यभिचार है। उसे अब्रह्मचर्य कहते हैं। समझ में आया? जम्बूप्रसादजी! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब द्रव्य की बात है। जो कोई आत्मा अपना ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप, उसकी रुचि छोड़कर शरीर में सुखबुद्धि,... यहाँ स्त्री की मुख्यता क्यों कही है? कि परद्रव्य में मन से स्त्री की इच्छा विशेष होती है, तो उसे व्यभिचार गिनकर उसका यहाँ त्याग का नाम ब्रह्मचर्य कहा है। परन्तु वास्तव में तो आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप की रुचि करके ब्रह्मानन्द अर्थात् आनन्द में लीन होना, उसका नाम परमात्मा ब्रह्मचर्य कहते हैं। और जितना परद्रव्य में शरीर, वाणी, कर्म आदि या शुभाशुभ पुण्य-पाप में रुचि करके उसमें सुखबुद्धि है, उसमें सुख है, वे ठीक हैं, पुण्य आदि परिणाम हितकर हैं, यह मिथ्यात्व का व्यभिचार अब्रह्म गिनने में आया है। समझ में आया?

राग में सुख है, वह बुद्धि तो छूट गयी हो। परपदार्थ में सुखबुद्धि है, वह बुद्धि छूट गयी हो। स्वरूप में आनन्द है, ऐसी रुचि हुई। पश्चात् परपदार्थ में जो आसक्ति रहती है, जो चारित्रदोष है, उस दोष का यहाँ निषेध करते हैं। समझ में आया? परस्त्री तो नहीं, परन्तु स्वस्त्री में भी राग का होना, वह आसक्ति का—अस्थिरता का दोष है। समझ में आया? '**परिहरेदि संगं महिलाणं**'। स्त्री का संग छोड़ देना। राग से प्रीति छोड़ देना। राग की प्रीति छोड़ देना। उसे स्त्री का संग छोड़ा, ऐसा कहा जाता है। '**णेव पस्सदे रूवं**'। उसका रूप न देखे। भगवान आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्दरूप देखे या पर

का देखे ? समझ में आया ? सच्चिदानन्द निर्मल स्वरूप ज्ञायकभाव चैतन्यसूर्य जलहल ज्योति, जिसे दृष्टि में लेने से ज्ञायकभाव प्रगट-प्रगट प्रतीति में आता है। धर्मी ऐसे आत्मा का रूप देखे या स्त्री का रूप देखे ? समझ में आया ? चैतन्य जलहल ज्योति भगवान ज्ञानसूर्य है, उसकी दृष्टि करने से चैतन्यज्योति का रूप आत्मा देखता है। समझ में आया ? स्त्री का रूप किसलिए देखे ?

काम की कथा और स्मरणादि कैसे करे ? काम की कथा किसलिए करे ? स्वरूप के आनन्द की वार्ता करे या काम की कथा करे ? और स्मरण। स्त्री का विषय आदि लिया हो, उसका स्मरण भी न करे। स्मरण करने से भी राग उत्पन्न होता है। समझ में आया ? स्मरणादि रहित ऐसा नवधा ब्रह्मचर्य। मन-वचन-काया, करना, कराना, अनुमोदन से रहित जो ब्रह्मचर्य अन्दर रहता है, उसे दसवाँ ब्रह्मचर्य धर्म कहा गया है। लीन होना, आत्मा में लीन होना, वह ब्रह्मचर्य है। देखो ! उसमें लिखा है, हों ! परद्रव्य में आत्मा लीन हो, उसमें स्त्री में लीन हो, वह प्रधान है। क्योंकि काम मन में उत्पन्न होता है। अन्य कषायों से भी प्रधान है। इस काम का आलम्बन स्त्री है। संसर्ग छोड़ने से निज स्वरूप में लीन होता है। दृष्टि तो आनन्द की हुई है, परन्तु आसक्ति का त्याग करके स्वरूप में लीन होना, इसका नाम ब्रह्मचर्य कहा जाता है। इसलिए स्त्री की संगति करना, रूप निरखना, कथा करना, स्मरण करना छोड़ना। उसे ब्रह्मचर्य होता है। समझ में आया ? और वही ....

जो णवि जादि वियारं तरुणियणकडक्खबाणविद्धो वि।
सो चेव सूरसूरो रणसूरो णो हवे सूरो॥४०४॥

अन्तिम गाथा लगती है। तरुणी स्त्री के, स्त्रीजन के कटाक्ष से, उसके कटाक्षरूपी बाण से जिसके हृदय में आघात नहीं लगता, वही जगत में शूरवीर कहा जाता है। समझ में आया ? अपने आनन्द की दृष्टिसहित की बात है, हों ! मात्र स्त्री का त्याग, ऐसा नहीं। ऐसे स्त्री को छोड़ दे, वह तो परपदार्थ का द्वेष से त्याग किया है। अपने आनन्द की रुचि में लीन होकर स्त्री के प्रति आसक्ति छोड़ना, उसका नाम ब्रह्मचर्य कहा जाता है। आनन्द की रुचि है नहीं और स्त्री का त्याग करो, यह त्याग करो, वह तो परपदार्थ के

ऊपर द्वेष होता है। समझ में आया? आहाहा! कहो, राजबहादुरजी! द्वेष। अपने आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा की रुचि, दृष्टि बिना पर को छोड़ो, पर नुकसान करता है, पर छोड़ो नुकसान करता है, वह तो पर के ऊपर द्वेष हुआ। समझ में आया?

कहते हैं, शूरवीर उसे कहते हैं कि कटाक्ष के बाण से भी विकार न हो और आत्मा के आनन्द की प्राप्ति हो। ऐसे मात्र कटाक्ष, ऐसा नहीं। समझ में आया? वह शूरवीर में प्रधान है। रण में शूरवीर, वह शूरवीर नहीं। रण में तो सिर देनेवाले (मस्तक कटानेवाले) बहुत हैं। दूसरे का सिर छेदनेवाले भी बहुत हैं। परन्तु विकार को छेदकर आत्मा के आनन्द का अनुभव करनेवाले जगत में वीर शूरवीर कोईक हैं। समझ में आया? उसे यहाँ ब्रह्मचर्य कहा जाता है। वैसे तो काया से ब्रह्मचर्य बहुत बार पालन किया, अनन्त बार पालन किया। मन-वचन-काया से। दूसरे देवलोक की इन्द्राणी आवे तो डिगे नहीं। वह ब्रह्मचर्य नहीं। नौवें ग्रैवेयक गया। दिगम्बर साधु होकर। नग्न (हुआ)। मोरपिच्छी, कमण्डल भी नहीं। वस्त्र का धागा नहीं। और दूसरे देवलोक की इन्द्राणी आवे तो डिगे नहीं। परन्तु वह तो राग की मन्दता की बात है। स्वरूप के आनन्द की दृष्टि में पर का लक्ष्य छोड़कर स्थिर होना, इसका नाम यहाँ ब्रह्मचर्य कहा जाता है। समझ में आया? बाहर से पालनेवाले तो बहुत हैं। यह तो अनन्त बार पालन किया। और वह तो अभी भी क्रियाकाण्ड में हठ से पालता है। मन से, वचन से, काया से, हठ से (पालता है)। वह हठ से (पालन करे), वह ब्रह्मचर्य नहीं। आनन्दस्वरूप के प्रेम में राग छूट जाये, इसका नाम भगवान यथार्थ सहज ब्रह्मचर्य कहते हैं। यह दसवें (दिन का हुआ)।

★ ★ ★

कलश - ९

इस अर्थ का कलशरूप श्लोक कहते हैं :-

(मालिनी)

उदयति न नयश्री-रस्त-मेति प्रमाणं,
क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रम्।
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेऽस्मि-
न्ननुभव-मुपयाते भाति न द्वैतमेव ।।9।।

श्लोकार्थ : आचार्य शुद्धनय का अनुभव करके कहते हैं कि - [अस्मिन् सर्वंकषे धाम्नि अनुभवम् उपयाते] इन समस्त भेदों को गौण करनेवाला जो शुद्धनय का विषयभूत चैतन्य-चमत्कारमात्र तेजः पुञ्ज आत्मा है, उसका अनुभव होने पर [नयश्रीः न उदयति] नयों की लक्ष्मी उदित नहीं होती, [प्रमाणं अस्तम् एति] प्रमाण अस्त हो जाता है [अपि च] और [निक्षेपचक्रम् क्वचित् याति, न विद्मः] निक्षेपों का समूह कहाँ चला जाता है, सो हम नहीं जानते। [किम् अपरम् अभिदध्मः] इससे अधिक क्या कहें? [द्वैतम् एव न भाति] द्वैत ही प्रतिभासित नहीं होता।

भावार्थ : भेद को अत्यन्त गौण करके कहा है कि - प्रमाण, नयादि भेद की तो बात ही क्या? शुद्ध अनुभव के होने पर द्वैत ही भासित नहीं होता, एकाकार चिन्मात्र ही दिखायी देता है।

यहाँ विज्ञानद्वैतवादी तथा वेदान्ती कहते हैं कि - अन्त में परमार्थरूप तो अद्वैत का ही अनुभव हुआ। यही हमारा मत है; इसमें आपने विशेष क्या कहा? इसका उत्तर - तुम्हारे मत में सर्वथा अद्वैत माना जाता है। यदि सर्वथा अद्वैत माना जाये तो बाह्य वस्तु का अभाव ही हो जाये, और ऐसा अभाव तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। हमारे मत में नयविवक्षा है जो कि बाह्यवस्तु का लोप नहीं करती। जब शुद्ध अनुभव से विकल्प मिट जाता है, तब आत्मा परमानन्द को प्राप्त होता है; इसलिए अनुभव कराने के लिए यह कहा है कि - ''शुद्ध अनुभव में द्वैत भासित नहीं होता।'' यदि बाह्य वस्तु का लोप किया जाये तो आत्मा का भी लोप हो जायेगा और शून्यवाद का प्रसङ्ग आयेगा। इसलिए

जैसा तुम कहते हो, उस प्रकार से वस्तुस्वरूप की सिद्धि नहीं हो सकती और वस्तुस्वरूप की यथार्थ श्रद्धा के बिना जो शुद्ध अनुभव किया जाता है, वह भी मिथ्यारूप है; शून्य का प्रसङ्ग होने से तुम्हारा अनुभव भी आकाश-कुसुम के अनुभव के समान है।।9।।

कलश - ९ पर प्रवचन

(चलता विषय)। १३ गाथा का अधिकार। श्लोक आया, श्लोक। श्लोक आया न? कलश आया, कलश। १३वीं गाथा का कलश (९)। बोलो।

उदयति न नयश्री-रस्त-मेति प्रमाणं,
क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रम्।
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वङ्कषेऽस्मि-
न्ननुभव-मुपयाते भाति न द्वैतमेव॥९॥

क्या कहते हैं? देखो! पूरी १३वीं गाथा में जो प्रमाण, नय, निक्षेप के भेद निकालकर अनुभव बताया, उसका सार कहते हैं।

श्लोकार्थ :- आचार्य शुद्धनय का अनुभव करके कहते हैं... देखो! द्वैत भासित नहीं होता, ऐसा कहते हैं या नहीं? मुनि छठवें-सातवें गुणस्थान में अनुभव करते हैं। देखो! कोई कहे कि मुनि को अभी ऐसा अनुभव नहीं होता, आठवें गुणस्थान में होता है। अभी ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह कुन्दकुन्दाचार्य नहीं परन्तु अमृतचन्द्राचार्य अभी ९०० वर्ष पहले हुए, वे कहते हैं, क्या कहते हैं? देखो! उसमें पाठ में '**ननुभव-मुपयाते भाति न द्वैतमेव**' हम अन्तर में आनन्द ज्ञायकस्वरूप ज्ञायकस्वरूप पर दृष्टि और निर्विकल्प अनुभव करते हैं, तब मैं अनुभव करनेवाला और अनुभव, ऐसा द्वैत ही भासित नहीं होता। समझ में आया? द्वैत ही भासित नहीं होता—दो भासते नहीं। मैं अनुभव करनेवाला और यह अनुभव आनन्द, ऐसा द्वैत भी वहाँ नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : आचार्यदेव तो गाथा में....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं? **'न्ननुभव-मुपयाते भाति न द्वैतमेव'।** अन्तर में... क्या कहा? देखो! **शुद्धनय का अनुभव करके कहते हैं...** उसमें से निकाला है। मुनि को, अनुभव तो यहाँ चौथे-पाँचवें में होता है, परन्तु यहाँ तो मुनि की मुख्यता से और मुनि स्वयं कथन करते हैं न? तो अपने अनुभव की बात करते हैं। चौथे गुणस्थान में भी जब अनुभव होता है, तब तो आनन्द का अकेला अनुभव (होता है), दूसरे कोई भेद ही नहीं। अबुद्धिपूर्वक राग अन्तर में होने पर भी उसका भास नहीं होता। अकेला निर्विकल्प अनुभूति शुद्ध ज्ञायकमात्र। अकेला पूर्ण ध्रुव चैतन्यसूर्य। वर्तमान पर्याय को अन्तर में झुकाकर, पर्याय का ध्येय ध्रुव के ऊपर है, उस पर्याय का ध्येय पर्याय नहीं रही। राग, विकल्प तो नहीं, शरीर संहनन तो नहीं, परन्तु अपना शुद्ध चैतन्यस्वभाव ध्रुव ज्ञायकसूर्य के ऊपर दृष्टि होने से, दृष्टि पर्याय है, परन्तु वह पर्याय झुकती है स्वभाव के ऊपर। समझ में आया?

ऐसे चैतन्यसूर्य है न पूरा। ज्ञायकसूर्य स्वरूप है। पहले सब प्रकार की यथार्थ श्रद्धा की है। तो श्रद्धा साधन और अनुभव उसका साध्य है। श्रद्धा का अर्थ पहले ऐसा निर्णय किया है कि मैं एक रजकण आदि परद्रव्य की पर्याय तीन काल में कर नहीं सकता और मुझमें विकल्प आता है, वह भी मेरी चीज़ में नहीं। वह भी विकार है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। यहाँ तो श्रद्धा कहते हैं, अकेली साधारण श्रद्धा। विचार की श्रद्धा। श्रद्धा में राग जो है, वह मेरा नहीं, उसका मैं कर्ता हूँ, ऐसा वस्तु में नहीं। ऐसा निर्णय करता है, तब तक तो अभी अनुभव नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं। समझ में आया? जिसके निर्णय में परद्रव्य की पर्याय मैं कर सकता हूँ, ऐसा जिसका निर्णय है, उसकी तो परसन्मुख बहिर्बुद्धि तीव्र मिथ्यात्व है। समझ में आया? मैं पर की दया पाल सकता हूँ, पर की सहायता कर सकता हूँ, पर का मैं सुधार कर सकता हूँ—ऐसी जहाँ तक बुद्धि है, वह तो बहिर्बुद्धि तीव्र मिथ्यात्व है। तीव्र मिथ्यात्व महान पाप अनन्त संसार को उत्पन्न करनेवाला। वहाँ तो निर्णय भी नहीं किया कि मैं पर का कार्य कर सकता नहीं।

मुझमें विकल्प राग आया, वह भी मेरा कर्तव्य नहीं, मेरे स्वरूप में नहीं। और मैं शुद्ध चैतन्य अनन्त ज्ञायकमूर्ति की पर्याय का मैं करनेवाला, ऐसा विकल्प में श्रद्धा से निर्णय करता है, वहाँ तक सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! यह श्रद्धा में जिसकी विपरीतता है, उसकी तो आगे अनुभव करने की योग्यता ही नहीं। समझ में आया? कठिन बात, भाई!

कहते हैं, यह श्रद्धा पहले पक्की की। नय, निक्षेप, प्रमाण के ज्ञान से आत्मा ऐसा है, त्रिकाल शुद्ध है, पर्याय एक समय की है, राग है, परलक्ष्यी राग उत्पन्न होता है, परचीज़ है। सबकी यथार्थ श्रद्धा प्रमाणज्ञान, नय से की। वहाँ तक तो अभी विकल्पात्मक श्रद्धा है। वहाँ तक तो अभी मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? मन्द मिथ्यात्व है, मन्द मिथ्यात्व है। मैं पर का कर सकता हूँ, राग मेरा कर्तव्य है, पुण्य परिणाम से मुझे लाभ होगा, यह तीव्र मिथ्यात्व है। तीव्र मिथ्यात्व की बहिर्बुद्धि तो बाहर में घुसती है। उसकी अन्दर में आने की योग्यता नहीं। समझ में आया? पद्मप्रसादजी! आहाहा!

अन्तर भगवान आत्मा अकेला चैतन्यसूर्य ज्ञायकसूर्य है। राग शुभ आदि हो या नय, निक्षेप, प्रमाण के विकल्प से ज्ञान हो, वह विकल्पात्मक है, वह बन्ध का कारण है। समझ में आया? वह अधर्म है। आहाहा! राग की मन्दता परलक्ष्यी तो अधर्म है ही, परन्तु अपने प्रमाण से, नय, निक्षेप से विकल्पात्मक ज्ञान करना, वह भी अभी विकल्प है, तो अधर्म है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....वैसा ही जानना, ऐसा तो शास्त्र में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाने क्या? तब तो अन्दर ज्ञायक में गया। उस विकल्प को छोड़कर स्वरूप में गया। वह तो अन्तर दृष्टि हुई, उसे सम्यग्दर्शन हुआ। वह तो अभी पर्याय में विचार करता है कि यह आत्मा सामान्य ऐसा है, विशेष ऐसा है, राग ऐसा है, पर का लक्ष्य करने से राग होता है, राग मुझसे होता है, राग पर से नहीं होता, पर की पर्याय मैं नहीं कर सकता, पर मेरा काम नहीं कर सकता। ऐसा अभी ज्ञान—रागमिश्रित विचार है, वहाँ तक अभी अनुभव नहीं। वहाँ तक सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! उसे साधकपना कहा जाता है। क्योंकि वह अवस्था छोड़कर अन्दर में जाता है, इस अपेक्षा से। समझ में आया? गजब, भाई! ओहो!

अनन्त काल अनन्त काल बीत गया। बाह्य त्याग करके दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ। हजारों स्त्रियों का त्याग, जंगल में नग्न होकर बसे। समझ में आया? 'वनवास रह्यौ मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो।' समझ में आया?

यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग वैराग्य अथाग लह्यो,
वनवास रह्यो मुख मौन रह्यो, दृढ आसन पद्म लगाय दियो,

जप (जपे)। भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... बस, दूसरा कुछ नहीं। 'जप भेद जपे तप त्योंहि तपै।' तप—महीने-महीने के अपवास, बारह-बारह महीने के अपवास। जंगल में बारह महीने के अपवास में फल खा ले। जंगल में मिले वैसे। वैसे अचेतन फल भी होते हैं। ऐसा अनन्त बार किया है। समझ में आया?

जप भेद जपे तप त्यौंहि तपे, उरसे ही उदासी लही सबपै
सब शास्त्रनके नय धारी हिये, मत मंडन खंडन भेद लिये।
यह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो राग है, वह तो परसन्मुख का विकल्प है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा का ऐसा रहा।

अब क्यों न बिचारत है मनसे, कछु और रहा उन साधन से
बिन सद्गुरु कोई न भेद लहे, मुख आगळ है कह बात कहे।

समझ में आया? श्रीमद् गुजराती थे, परन्तु उन्होंने हिन्दी में बनाया है। श्रीमद् राजचन्द्र। समझ में आया? अनुभव होने के पश्चात् श्लोक बनाया। अरे! भगवान! तूने साधन तो बहुत किये, वे साधन नहीं। आहाहा! लोग माने कि हम ऐसे साधन करते हैं, व्यवहार शुद्ध रखते हैं, ऐसा साधन करते हैं, सरलता रखते हैं, सादगी रखते हैं। धूल में भी नहीं। सुन तो सही अब। ऐसी राग की मन्दता परलक्ष्यी मिथ्यादृष्टि सहित की तो अनन्त बार हो गयी। वह तो कुछ माल नहीं मिलता (कुछ कार्यकारी नहीं है)।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा अपना जैसा वस्तु स्वभाव पर से भिन्न स्वतन्त्र द्रव्य है, वह पर्याय में विचार करके ऐसा निर्णय किया, तब तक भी अनुभव नहीं। वह पर्याय जब अन्तर में झुककर शुद्धनय का अनुभव करके कहती है, **इन समस्त भेदों को गौण करनेवाला...** प्रमाण, नय, निक्षेप का विचार भी जहाँ गौण हो जाये। साधन नहीं। तो राग की मन्दता तो साधन है ही नहीं। तो निमित्त-फिमित्त साधन है नहीं। ओहोहो! **समस्त भेदों को गौण करनेवाला...** नहीं है—ऐसा नहीं। विकल्पात्मक ज्ञान में निर्णय किया था कि यह द्रव्य सामान्य है, विशेष पर्याय है। उसमें सामान्य का लक्ष्य करना, ऐसा सब निर्णय किया था। वह विकल्प, पर्याय आदि को गौण करके अन्तर्मुख होता है।

शुद्धनय का विषयभूत चैतन्य-चमत्कारमात्र तेजः पुञ्ज आत्मा है,... है। ओहोहो! समझ में आया? ज्ञान-सम्यग्ज्ञान जो शुद्धनय, उसका विषय... यहाँ विषय कहा, बाकी दोनों एक ही वस्तु है, चैतन्यचमत्कारमात्र। चैतन्यस्वरूप बिम्ब। चैतन्यसूर्य प्रकाश का पुंज चैतन्य ज्ञान का पुंज ऐसा चमत्कारमात्र तेज पुंज आत्मा है। ऐसी अनुभव दृष्टि हुई, तब आत्मा में साक्षात् आनन्द का स्वाद आया। समझ में आया? **उसका अनुभव होने पर...** अर्थात् वह आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द की ओर के झुकने से और विकल्पादि के भेद को गौण करने से जो स्वभाव-सन्मुख का अनुभव हुआ, उसमें आत्मा साक्षात् आनन्द का स्वाद लेकर अनुभव हुआ। समझ में आया? उस अतीन्द्रिय आनन्द का अन्दर में स्वाद लेना, उसमें प्रतीति करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। ओहोहो! गजब बात, भाई! उसे पहुँचने का कोई बाह्य साधन है या नहीं? बाह्य साधन है या नहीं कोई? राजबहादुरजी! बाहर के साधन का तो निषेध किया। वह तो तूने अनन्त बार किया। उसमें हुआ क्या?

छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़ा चक्रवर्ती अन्दर में आनन्द का अनुभव करता है तो उसे सब विकल्प छूट जाते हैं। चैतन्यबिम्ब प्रकाश महा प्रभु, महा चैतन्य पुंज का स्वभाव से भरपूर भगवान अकेला चैतन्य का पिण्ड। ध्रुव चैतन्य ध्रुव तारा। उसकी अन्तर दृष्टि करने से पर्याय के विकल्प को गौण करने से अन्तर अनुभव हुआ। साक्षात् आत्मा के आनन्द का प्रत्यक्ष वेदन होना, उसका नाम अनुभव कहा जाता है।

और वह अनुभव हुआ, उसमें प्रतीति हुई कि यह आत्मा। उसका नाम सम्यग्दर्शन है। यह प्रतीति, ऐसी प्रतीति।

मुमुक्षु : अनुभवपूर्वक।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। समझ में आया? इसने कभी सुना नहीं। लक्ष्य में लिया नहीं। और जाना हो पूर्व में और दौड़े पश्चिम में। आथमणे समझते हो? पश्चिम। जाना हो पूर्व में और दौड़े पश्चिम की ओर। उसी प्रकार जाना है स्वरूप में और क्रियाकाण्ड करे बाहर में ऐसा किया और वैसा किया। धूल में भी नहीं। मर जाये तो भी उसमें आत्मा हाथ नहीं लगता। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! देखो! आज तो अनन्त चतुर्दशी है। समझे? और ब्रह्मचर्य का दिवस है। ब्रह्मानन्द भगवान आनन्द की मूर्ति अकेली। चैतन्यचमत्कार क्यों लिया है? कि चैतन्यज्ञान की पर्याय प्रगट है न! उस पर्याय द्वारा अन्तर में एकाकार होने से आत्मा का अनुभव होता है, ऐसा कहा। आनन्द का अंश तो प्रगट है नहीं अनादि का। ज्ञान का अंश प्रगट है। ज्ञान का अंश प्रगट है, आनन्द का अंश (प्रगट) है नहीं। तो ज्ञान का अंश प्रगट है, उस ज्ञान को अन्तर में झुकाने से... समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पश्चात् थोड़ा आनन्द कायम रहता है।

मुमुक्षु : पश्चात् लब्ध में गया....

पूज्य गुरुदेवश्री : लब्ध में भले गया, परन्तु आनन्द तो अन्दर है न। जितना प्रगट हुआ उतना कायम है। जब अनुभव करता है, तब विशेष आनन्द आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी प्रतीति होती है कि यह आत्मा आनन्द है और परिपूर्ण है, ऐसा भान हो गया, उसका स्मरण (-लक्ष्य) कायम रहता है।

मुमुक्षु : कोई भी काम करें तो भी स्मरण नहीं छूटता।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। कायम रहता है न। वस्तु कहाँ चली जाये? उपयोग भले

राग में, अशुभ में बाहर आ गया। उसमें क्या है ? अन्तर में आनन्द का जो स्वाद आया था, वह दृष्टि (कायम रहती है)। समझ में आया ? 'चाखे रस क्यों करी छूटे, सूरीजन सूरीजन टोली चाखे रस क्यों करी छूटे' एक बार आनन्द का अनुभव सम्यग्दर्शन में आया 'चाखे रस क्यों करी छूटे, सूरीजन सूरीजन टोली' देव के झुण्ड उतरें तो भी आनन्द का जो भास हुआ है, उस आनन्द को निकालने के लिये जगत में कौन समर्थ है ? उसकी रुचि जो आनन्द में भास हुआ... आहाहा ! समझ में आया ? 'चाखे रस क्यों करी छूटे, सूरीजन सूरीजन टोली' देव के झुण्ड आवें और महा उपसर्ग और परीषह पड़े। नहीं, तुझे आनन्द नहीं, तेरा आत्मा आनन्द नहीं, तूने आनन्द का अनुभव नहीं किया, (ऐसा कोई कहे तो भी) तीन काल में डिगे नहीं। मैंने जाना है आनन्दस्वरूप, वह तीन काल में फिरे नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

अनुभवरस में रोग न शोका, लोकवाद सब मेट्या जी...
केवल अचळ अनादि अबाधित, केवल अचळ अनादि अबाधित
शिवशंकर का भेटा, अबधु अनुभव कलिका जागी...
मति मेरी आतम सुमरन लागी, मति मेरी चैतन्य स्मरण लागी,
अबधु अनुभव कलिका जागी....

जम्बूप्रसादजी ! यह अन्तर आनन्द का अनुभव। आहाहा !

गगनमंडल में अधबीच कुआं, जहाँ है अमी का वासा जी...
सुगुरा होवे सो भर भर पीवे, नुगुरा जाये प्यासा।

कुआँ, कुआँ है, आनन्द का कुआँ है। कूप भगवान आत्मा।

गगनमंडल में अधबीच कुआं, जहाँ है अमी का वासा जी...
सुगुरा होवे सो भर भर पीवे,....

विपरीतरहित दृष्टि कराने के लिये समझाया है कि तेरे विकल्प से भी तेरा पता नहीं लगता। आनन्दकन्द की दृष्टि हो... ऐसा 'सुगुरा होवे सो भर भर पीवे, नुगुरा जाय प्यासा।' समझ में आया ? कुएँ के पास जाकर भी वापस प्यासा जाये। उसे अन्दर कुछ असर नहीं होता। आहाहा ! समझ में आया ?

अनुभव होने पर नयों की लक्ष्मी उदित नहीं होती,... लो! नयों की लक्ष्मी। निश्चय से मैं सामान्य हूँ, पर्याय से विशेष हूँ, ऐसे जो नय के विकल्प थे, वे उत्पन्न ही नहीं होते। वे विकल्प उत्पन्न ही नहीं होते। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई! गाथा आयी है बहुत अच्छी। '**उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं**' आहाहा! भाई! इसकी पहली पद्धति है, विधि है, उसका तो इसे पक्का निर्णय का स्तम्भ रोपना चाहिए। पक्के निर्णय के स्तम्भ बिना, उसे अनुभव कभी नहीं होता। समझ में आया? **नयों की लक्ष्मी उदित नहीं होती,...** भगवान आत्मा निज शुद्धस्वरूप ज्ञायकस्वरूप एकरूप का अन्तर अनुभव करने से नय की उत्पत्ति नहीं होती। विकल्पात्मक नय तो पहले विचार करने के काल में थे। पहले थे।

मुमुक्षु : बाद में नहीं होते।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। यह तो दृष्टान्त दिया था न। माल लेते हैं तो पहले भाव पूछते हैं। तराजू। धड़ा करते हैं। और तौल। पाँच सेर, दो सेर तोल (बाट) होते हैं न? पक्का है या नहीं? सरकार की छापवाली पाँच सेरी। लाओ पाँच सेर माल। माल लिया, भाव दिया, भाव पूछकर उसे दे दिया। पाँच सेर के पच्चीस रुपये, लो। और धड़ा भी किया। पश्चात् खाते समय याद करे उसे? बाद में तो अकेला खाना ही रह गया। समझ में आया? सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : नय जो है, वह पहले है पहले।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले विचार के काल में थे। दूसरे से—अज्ञानी आत्मा कहते हैं उनसे, सर्वज्ञ जैसा कहते हैं ऐसे निर्णय के काल में साधक अवस्था में वे आते हैं। परन्तु उन्हें छोड़कर अकेला अनुभव करने में वह नय, निक्षेप रहते नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्णय तो पहले करे न। भाव पूछे, कितने रुपये सेर है? यह सालमपाक होता है न? सालमपाक। सर्दी में नहीं बनाते? शियाळा को क्या कहते हैं? सर्दी के दिन। सालमपाक नहीं बनाते? सालम, मूसलीपाक। दस-दस, पच्चीस-पच्चीस रुपये का सेर, हों! एक-एक सेर! सालम होता है न। पंजावाला सालम होता है। यह

सेठिया सर्दी में बहुत खाते हैं। शियाळा में। शियाळा समझते हो? ठण्डी में। दस-दस रुपये, पन्द्रह-पन्द्रह रुपये का एक सेर, हों! एक सेर। बादाम तो साधारण है। उसमें सालम होता है। सफेद सालम होता है, ऐसे पंजादार। हमारी दुकान में वह सब था न! जिसे पंजाबी सालम कहते हैं। उसे घोंटकर करते हैं तो बहुत महँगा पड़ता है। बहुत महँगा पड़े। दस-दस रुपये सेर। यहाँ एक बार तो सुना था। बहुत वर्ष पहले। सवा पाँच का सेर यहाँ गाँव में देते थे। सवा पाँच का सेर। अब तो दस, पन्द्रह, बीस रुपये का सेर हो गया। अभी बहुत महँगा हो गया। तो कहते हैं कि भाव पूछा कि कितने रुपये सेर? इक्कीस रुपये सेर। लाओ, पाँच सेर लाओ। पाँच सेर तोल दो। तराजू का धड़ा करो। सालमपाक होता है। तुमने सुना नहीं? यह किराने में गंधियाणा में एक सालम होती है, ऐसा पंचवाला। ऐसा पंजादार सालम, सालम। वनस्पति होती है। यह तो शब्द है। सालम बहुत ऊँची चीज़ होती है खाने की। हमने तो सब देखा है न, हमने तो सब देखा है। कहते हैं कि पहले भाव पूछ ले। पहले तोल ले, पहले निश्चित कर ले। फिर खाते समय (उसका स्वाद ही है)। समझ में आया?

ऐसा **अनुभव होने पर नयों की लक्ष्मी उदित नहीं होती,...** नय की लक्ष्मी उदय अर्थात् नय उत्पन्न ही नहीं होते कि मैं शुद्ध हूँ या आनन्द करता हूँ, ऐसा विकल्प भी वहाँ नहीं। समझ में आया? ओहोहो! अभी यह श्रद्धा की खबर नहीं कि ऐसा हो, पश्चात् अनुभव करे तो सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी जिसकी श्रद्धा नहीं और यह हम ऐसा करते हैं, ऐसा करते हैं, करते-करते सम्यग्दर्शन होगा। अध्यात्म होगा। धूल में भी नहीं होगा, मर जाये तो भी।

मुमुक्षु : यह तो सातवें गुणस्थान में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! चौथे गुणस्थान की बात है यहाँ। समझ में आया? चौथे की बात है। यह तो मुनि हैं, इसलिए मुनिपने की दृष्टि से बात करते हैं। यहाँ तो अनुभव की बात है। समझ में आया? कोई छहढाला में कहते हैं न कि मुनि को स्वरूप का अनुभव तो बाद में होता है। चौथे में नहीं। तुझे खबर नहीं, सुन तो सही।

अनन्त गुण आत्मा में हैं, उन सब गुणों का स्पर्श होने से पर्याय में सब गुणों का

अंश प्रगट न हो तो द्रव्य की दृष्टि हुई नहीं। समझ में आया? द्रव्य में जितने अनन्त गुण हैं, उतने गुण में जहाँ दृष्टि से स्पर्श हुआ तो अनन्त गुण के अंश की व्यक्तता उसमें आ जाती है। तो आनन्द व्यक्त होता है, वह चौथे गुणस्थान में द्रव्यदृष्टि में होता है, ऐसा सिद्ध करना है। क्या कहा? द्रव्य जो है, उसमें अनन्त गुण हैं। आनन्द है, शान्ति अर्थात् चारित्र है, प्रभुता है, स्वच्छता है, विभुता है सब। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, (अपादान और अधिकरण) षट्कारक की शक्तियाँ अन्दर पड़ी है। ऐसे अनन्त गुण हैं। तो अनन्त गुण के पिण्ड को द्रव्य कहते हैं। तो जब द्रव्य की दृष्टि हुई, विकल्प को तोड़कर द्रव्य पर दृष्टि हुई तो द्रव्य में जितने गुण हैं, उतने एक अंश में व्यक्त हुए बिना नहीं रहते। समझ में आया? वरना द्रव्य की दृष्टि हुई नहीं। आहाहा! द्रव्य की दृष्टि हुई तो आनन्द द्रव्य में है तो उतना प्रगट हुआ। चारित्र की शान्ति है तो उतना स्वरूपाचरण हुआ। प्रभुता है तो प्रभुता का अंश पर्याय में आया कि मैं प्रभु हूँ। ऐसा पूर्ण प्रभु द्रव्य है, ऐसा पर्याय में अनुभव में आया। समझ में आया? और मैं ही मेरे स्वरूप का कर्ता और स्वरूप का कार्य मेरा। क्योंकि कर्ता, कर्म शक्ति मेरे द्रव्य में है। तो द्रव्य की दृष्टि हुई तो द्रव्य में जितने गुण हैं, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, स्वस्वामीसम्बन्ध। सब अनुभव में आ गये। तो पर्याय में ऐसा आ गया कि मैं मेरे स्व का स्वामी हूँ। राग का, व्यवहार का मैं स्वामी नहीं। ऐसे स्व की-द्रव्य की दृष्टि होने से द्रव्य में जितने गुण हैं, वे सब आंशिक व्यक्त हो जाते हैं। तो आनन्द व्यक्त न हो तो द्रव्य की दृष्टि हुई नहीं। यह तो सिद्ध करना है, चौथे गुणस्थान से आनन्द। भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : .... स्वाधीन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, स्वतन्त्र द्रव्य है। एक समय में परिपूर्ण प्रभु पड़ा है। पहले दृष्टि कर। जितने गुण द्रव्य में हैं, वे दृष्टि प्रगट होने के काल में सब गुणों का अंश प्रगट हो जायेगा। आनन्द आया नहीं तो द्रव्य की दृष्टि हुई नहीं। चौथे गुणस्थान में (मात्र) प्रतीति... प्रतीति... (हुई है), ऐसा नहीं। प्रतीति तो एक श्रद्धागुण की पर्याय हुई। आनन्दगुण है, द्रव्यदृष्टि हुई तो आनन्दगुण का क्या हुआ? अकेला दुःख रहा?

मुमुक्षु : अकेला दुःख रहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। आहाहा! बात तो ऐसी है कि द्रव्य है या नहीं? वस्तु। तो वस्तु में अनन्त गुण हैं। आनन्द है, शान्ति है, श्रद्धा है, जीवत्व है, प्रभुता है, स्वच्छता है, विभुता है, सर्वज्ञ, सर्वदर्शि शक्ति है। ऐसी अनन्त शक्तियों का एकरूप द्रव्य, जब पर्यायदृष्टि थी, राग को और एक अंश को जब तक मानता था, तब तक तो किसी गुण का व्यक्त शुद्धता का अंश नहीं था। परन्तु जब अन्दर दृष्टि हुई, सम्यग्दर्शन (हुआ), चैतन्य में दृष्टि हुई तो उसमें अनन्त गुण हैं तो जैसे दृष्टि में श्रद्धागुण की पर्याय प्रगट सम्यक् हुई तो आनन्दगुण में भी प्रगट आनन्द आया। स्वच्छतागुण की स्वच्छता प्रगट हुई। सर्वज्ञशक्ति की प्रतीति हो गयी कि मैं सर्वज्ञ हूँ। सर्वदर्शी की प्रतीति हुई कि मैं सर्वदर्शी हूँ। समझ में आया? आहाहा! अपनी प्रभुता देखी। ओहो! यह आत्मा ऐसा प्रभु! दृष्टि में तो प्रभुता भी देखी। ओहो! तो प्रभुता का अंश भी पर्याय में आ गया। मैं पामर नहीं। वस्तु में मैं पामर नहीं। मैं प्रभु पूर्ण परमात्मा हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु : खजाना मिल गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : खजाना है। यह पद्मनन्दि आचार्य ने कहा है, हे नाथ! ऋषभदेव की स्तुति करते हैं। हे नाथ! आपने आत्मा का खजाना खोल दिया। कौन ऐसा प्राणी है कि जगत के खजाने को-धूल को छोड़कर आत्मा के आनन्द का खजाना क्यों न अनुभव करे? समझ में आया? आहाहा! तेरे पास विशाल खजाना पड़ा है। कम न हो। केवलज्ञान निकालकर अनन्त आनन्द, अनन्त चतुष्टय है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य और अनन्त आनन्द। वह एक समय का है। दूसरा निकाल, तीसरा निकाल, सादि-अनन्त काल निकाल तो भी अन्दर में खजाना कम नहीं होता। आहाहा! परन्तु खबर नहीं, इसे खबर नहीं। बाहर की महिमा आती है और अन्तर की महिमा नहीं आती। आहाहा! समझ में आया?

नयों की लक्ष्मी उदित नहीं होती,... अर्थात् अनुभव प्रगट हुआ, वहाँ विकल्प प्रगट नहीं होते, ऐसा कहते हैं। अनुभव प्रगट हुआ, वहाँ अनन्त गुण का पिण्ड जितने गुण हैं, उन सबका अंश वहाँ अनुभव में आया तो विकल्प उत्पन्न नहीं होते। आहाहा! **प्रमाण अस्त हो जाता है...** प्रमाण अस्त-अस्त हो जाता है। प्रमाण अस्त हो जाता है।

प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण के जो विकल्प थे, वे अस्त हो जाते हैं और नाश को प्राप्त हो जाते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : तब तो महाराज! आनन्द ही आनन्द रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द ही आनन्द रहता है। हाँ। आहाहा! वह वस्तु आनन्द है। प्रभु! वस्तु नित्यानन्द है, वह किसे कहे? आत्मा नित्यानन्द है, सच्चिदानन्द है। सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्दकन्द है। अन्तर दृष्टि बिना आनन्द न आवे तो द्रव्य की प्रतीति हुई कहाँ? द्रव्य के अनन्त गुण हैं और अनन्त गुण की एकरूप की प्रतीति कब आयी? अनन्त गुण हैं, वे आंशिक प्रगट हो गये। प्रतीति में आ गया कि ओहो! आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड ऐसा ही है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। बात अलौकिक है, लोकोत्तर की बात है। लौकिक तो पूरी दुनिया करती है, वीतराग के अतिरिक्त। सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त लौकिक तो पूरी दुनिया करती है। ऐसा करो और वैसा करो और ऐसे सुधारो और यह सुधारो और धूल करो। इस मिथ्यात्व को तो अनन्त काल से कर-करके मर गया। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु होवे तब न? छिलके कूटने से कहीं दाने निकलें?

भगवान आत्मा... आहाहा! हो, होते हैं विकल्प, परन्तु उनका आश्रय करके अन्दर में दृष्टि होती है, ऐसा नहीं। यहाँ तो प्रमाण, नय, निक्षेप के विकल्प का आश्रय करने से भी अनुभव नहीं होता तो दूसरे की तो बात कहाँ रही? यह तो बतलाया था, नहीं? नाटक समयसार का। नाटक (समयसार) का बताया था न? बनारसीदास का। इसमें ही है। '**उदयति न नयश्री**'। यह है न? आत्मानुभूति... **अनुभव की दशा में सूर्य का दृष्टान्त।** यह अनुभव कहा न।

'**जैसैं रवि-मंडल के उदै महि-मंडलमैं,...**' रवि का उदय हुआ यह महि मण्डल ऊपर। '**आतप अटल तम पटल विलातु है।**' प्रकाश होने पर तम का (-अन्धकार का) नाश होता है। तम का नाश हो जाता है। '**तैसैं परमातमकौ अनुभौ रहत जौलौं... तैसैं परमातमकौ अनुभौ रहत जौलौं, तौलौं कहूं दुविधा न कहूं पच्छपातु है।**' दो बातें—मैं

अनुभव करता हूँ, ऐसा विकल्प भी वहाँ नहीं। नय पक्षपात। **'नयकौ न लेस परवानकौ न परवेस, निच्छेपके वंसकौ विधुंस होत जातु है।'** यह इसी श्लोक का है। **'उदयति न नयश्री'** श्लोक का ही पद है।

'जो जो वस्तु साधक...' नय, निक्षेप, प्रमाण ऐसे वीतराग कहते हैं, ऐसा निश्चय करते हैं। दूसरे अज्ञानी कहते हैं वैसा नहीं। वीतराग सर्वज्ञ कहे वैसा। नय, निक्षेप, प्रमाण से निश्चय करते हैं। **'जो जो वस्तु साधक हैं तेऊ तहां बाधक हैं, बाकी राग दोषकी दसाकी कौन बातु है।'** दूसरे राग और कषाय मन्द और दया करे धूल करे, वहाँ तो है ही नहीं। उसका साधन-फाधन अन्दर में है नहीं। समझ में आया? यह इसका ही अर्थ है। **'उदयति न नयश्री'** का ही अर्थ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा है न। इसमें तो बहुत लिया है। समझ में आया? ऐसा करके बीच में याद किया। यह तो पूरा वाँचन हो गया है। देखो! क्या कहते हैं यहाँ?

'अस्मिन् धाम्नि अनुभवमुपयाते द्वैतमेव न भाति।' यह पहला शब्द है। **यह-स्वयंसिद्ध चेतनात्मक जीववस्तु...** भगवान स्वयंसिद्ध चैतन्यसूर्य **प्रत्यक्षरूप से आस्वाद...** अनुभव की व्याख्या। भाई! अनुभव का अर्थ **प्रत्यक्षरूप से आस्वाद...** आनन्द का स्वाद। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव-स्वाद (आना), उसका नाम सम्यग्दर्शन है।

मुमुक्षु : अनुभव प्रत्यक्ष है? महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, देखो! **प्रत्यक्षरूप से आस्वाद आने पर... 'उपयाते'।** अनुभव **'उपयाते'** है न यहाँ? यहाँ आया न? **अनुभव होने पर... आस्वाद आने पर... 'द्वैतम् एव' सूक्ष्म-स्थूल अन्तर्जल्प और बहिर्जल्परूप सब विकल्प नहीं शोभते।** वहाँ होते ही नहीं। वहाँ है ही नहीं। विकल्प की शोभा है ही नहीं। भगवान आत्मा... पहले निर्णय तो करे कि ऐसी दशा होती है, तब अनुभव होता है और सम्यग्दर्शन होता है। इसके बिना ऐसा माने कि ऐसा करे तो होता है, ऐसा तीन काल में नहीं है। समझ में आया? ९६ हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़ा हुआ चक्रवर्ती भी समकिती हो जाता है। इन्द्र के इन्द्रासन में पड़ा हुआ इन्द्र भी समकिती हो जाता है। वह तो समकिती है। बाहर की

वस्तु कहाँ उसमें कहाँ अवरोधक है? थोड़ा राग है वह आसक्ति चारित्र का दोष है। अन्तर में अनुभव में इस चारित्र के दोष का भी लेप है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है - अनुभव प्रत्यक्ष ज्ञान है, प्रत्यक्ष ज्ञान है अर्थात् वेद्य-वेदकभाव से आस्वादरूप है... क्या कहते हैं? वेदन करनेवाला मैं और वेदनयोग्य भी मैं। अनुभव करनेवाला मैं और अनुभव भी मैं। यहाँ अभेद को आनन्द का अनुभव कहते हैं। आहाहा! **वह अनुभव परसहाय से निरपेक्ष है।** वह अनुभव विकल्प और परसहाय से निरपेक्ष है। नय, निक्षेप, प्रमाण का ज्ञान विकल्प से किया, इससे भी निरपेक्ष। आहाहा! अरे! इस रीति की विधि भी इसकी श्रद्धा में न ले और उसे सम्यग्दर्शन हो जाये, (ऐसा) तीन काल-तीन लोक में नहीं होता। **ऐसा अनुभव यद्यपि ज्ञानविशेष है...** अनुभूति ज्ञानविशेष है। **तथापि सम्यक्त्व के साथ अविनाभूत है,...** अनुभूति ज्ञान की पर्याय है परन्तु सम्यग्दर्शन के साथ है। तो अनुभव से सम्यग्दर्शन का ख्याल कराते हैं।

क्योंकि वह सम्यग्दृष्टि के होता है... देखो! वह सम्यग्दृष्टि के होता है। **मिथ्यादृष्टि के नहीं होता, ऐसा निश्चय है।** समकिती को होता है। मात्र मुनि को होता है, ऐसा नहीं। **ऐसा अनुभव होने पर जीववस्तु अपने शुद्धस्वरूप को प्रत्यक्षरूप से आस्वादती है।** क्या कहा? **ऐसा अनुभव होने पर जीववस्तु अपने शुद्ध (-निर्मल) स्वरूप को प्रत्यक्षरूप से आस्वादती है।** कितना स्पष्ट किया है। इसमें से भूल निकालनी है। कल एक पत्र आया है कि कलशटीका में बहुत भूल है। रतनचन्दजी, उसमें से और पंचाध्यायी में भूल है, यह शोधकर निकालते हैं। कलकत्ता में। कलकत्ता से कल पत्र आया है। आहाहा! यह बात बैठती नहीं।

इसलिए जितने काल तक अनुभव होता है, उतने काल तक वचन-व्यवहार सहज ही बन्द रहता है,... नय, निक्षेप के वचन, विकल्प को व्यवहार कहते हैं। वचन-व्यवहार। **क्योंकि वचनव्यवहार तो परोक्षरूप से कथक है। यह जीव तो प्रत्यक्षरूप से अनुभवशील है।** अनुभवशील है, अनुभव ... स्वभाव हो गया। स्वरूप में निर्विकल्प अनुभूति हुई। अनुभवशील है, उसमें विकल्प है नहीं। **इसलिए (अनुभवकाल में)**

वचनव्यवहार पर्यन्त कुछ रहा नहीं। कैसी है जीववस्तु ? सब प्रकार के विकल्पों का... देखो! **'सर्व कषे' क्षयकरणशील है।** भगवान आत्मा की दृष्टि अनुभव करने से विकल्पमात्र का क्षयकरणशील आत्मा है। रागमात्र का, भेदमात्र का नाशकरणशील स्वभाव है। नाशकरणशील—उसका नाश करना, ऐसा आत्मा का स्वभाव है। राग को रखना, ऐसा स्वभाव नहीं। समझ में आया? बहुत सरस टीका की है। इसमें से लोग भूल निकालते हैं। भूल है, भूल है। इसमें लिखा है न? सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान में जीव कब मोक्ष जायेगा, इसकी नोंध है। नोंध है। कहा था न? चौथे कलश में। निश्चय है। नोंध अर्थात् ज्ञान में है। यह जीव इस भव में मोक्ष जायेगा, इस समय में जायेगा। केवलज्ञान में सब नोंध तीन काल की पड़ी है। समझ में आया? आहाहा! जीव अपने पुरुषार्थ से काम लेता है।

वैसे अनुभव भी समस्त विकल्पों से रहित ही है। यहाँ पर कोई प्रश्न करेगा कि अनुभव के होने पर कोई विकल्प रहता है कि जिसका नाम विकल्प है, वे सभी मिटते हैं ? समस्त विकल्प मिटते हैं। **जो अनुभव के आने पर प्रमाण-नय-निक्षेप भी झूठे हैं। वहाँ रागादि विकल्पों की क्या कथा ?** भाई! वस्तु ऐसी है। वस्तु ऐसी है, उसका पहले निश्चय तो करे—निर्णय तो करे। भूमिका शुद्ध तो करे। समझे? इसके बिना इसे अनुभव होगा नहीं। **रागादि तो झूठा ही है, जीवस्वरूप से बाह्य है। प्रमाण-नय-निक्षेपरूप बुद्धि द्वारा एक ही जीवद्रव्य का द्रव्य-गुण-पर्यायरूप अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप भेद किया जाता है, वे समस्त झूठे हैं।** सब झूठे हैं। यह द्रव्य, यह द्रव्य, यह गुण, यह पर्याय भेद विकल्प है वे तो, झूठे हैं। यह तो अभेद है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य झूठे हैं। आहाहा! चिल्लाहट मचाये।

इन सबके झूठे होने पर जो कुछ वस्तु का स्वाद है, सो अनुभव है। युगपद अनेक धर्मग्राहक ज्ञान, वह भी विकल्प है। वस्तु के किसी एक गुण का ग्राहक ज्ञान; वह भी विकल्प है। उपचारघटनारूप ज्ञान, वह भी विकल्प है। भावार्थ इस प्रकार है कि अनादि काल से जीव अज्ञानी है, जीवस्वरूप को नहीं जानता है। वह जब जीवसत्त्व की प्रतीति आनी चाहे, तब जैसे ही प्रतीति आवे, वैसी वस्तुस्वरूप साधा जाता है। वह साधना गुण-गुणीज्ञान द्वारा होती है। ऐसा कहते हैं। पहले ज्ञान द्वारा

निर्णय करता है। **इसलिए वस्तुस्वरूप का गुण-गुणीभेदरूप विचार करने पर प्रमाण-नय-निक्षेपरूप विकल्प उत्पन्न होते हैं। वे विकल्प प्रथम अवस्था में भले ही हैं, तथापि स्वरूपमात्र अनुभवने पर झूठे हैं।** कितनी टीका (स्पष्ट है)! १६०५ लगभग है। है न? तब बनायी है। भाई! कलशटीका १६०५ या १६०९ है। है न? नाग का नहीं हमारे पास? उसमें है यह। तीनों का। यह १६०५ और बनारसीदास ने बनाया वह १६९३। फिर यह समयसार नाटक १६९३, इसमें से निकाला है। यह है न, कल बताया था। यहाँ नहीं।

निक्षेपों का समूह कहाँ चला जाता है, सो हम नहीं जानते। आहाहा! भावपर्याय ऐसी है और स्थापना ऐसी है और द्रव्य ऐसा है। यह भगवान की मूर्ति है और भगवान के समवसरण में भावलिंगी भावपर्याय भावनिक्षेप से केवलज्ञानी है। वे सब विकल्प छूट जाते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : कहाँ चले जाते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : चले कहाँ जाये, नाश हो जाते हैं। अन्तर में उत्पन्न नहीं होते। आनन्द के अनुभव में विकल्प उत्पन्न नहीं होते।

मुमुक्षु : आनन्द का स्वाद लेते हैं निकालने का....

पूज्य गुरुदेवश्री : निकाले क्या, अन्दर में है नहीं। अभेद में है नहीं। अबुद्धिपूर्वक हो, भले रहे।

इससे अधिक क्या कहें? द्वैत ही प्रतिभासित नहीं होता। एक आत्मा के अतिरिक्त यह गुण है और यह गुणी, यह गुणी आत्मा और आनन्द उसका गुण — ऐसा द्वैत अनुभव में नहीं आता। द्वैत नहीं दिखाई देता। आहाहा! यह आत्मा आनन्दमूर्ति और मैं आनन्द अनुभव करता हूँ, ऐसा विकल्प नहीं। ऐसा द्वैत भी नहीं। आहाहा! वस्तु है, उस ओर की दृष्टि हुई, निर्विकल्प अनुभव हुआ, वहाँ दो भेद कहाँ हैं? कि यह आनन्द है और यह आत्मा आनन्ददाता है। आत्मा आनन्ददाता है और यह आनन्द है, यह तो विकल्प हुआ। समझ में आया?

मुमुक्षु : इतना विकल्प भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना भी नहीं। आहाहा! दुनिया को कहाँ जाना है और कहाँ मार्ग!

मुमुक्षु : जैनधर्म को समझे ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैनधर्म समझे ही नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा कहा और उस आत्मा की विधि कही, उसे समझे नहीं और उससे उल्टा माने। सर्वज्ञ को ही उल्टा माने। तुम कहते हो ऐसा नहीं, हम कहते हैं वैसा है। आहाहा! सीधे ऐसा न कहे, परन्तु मान्यता में सर्वज्ञ से विरुद्ध कहता है। एकबार कहा था न? 'देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा कहो कैसे रहे? कैसे रहे शुद्ध श्रद्धान आणो...' भगवान निर्विकल्प शुद्ध श्रद्धा में आनन्द का भास होता है, ऐसी श्रद्धा बिना 'देव-गुरु-धर्म की...' देव की श्रद्धा और कहाँ से हुई? देव ने तो यह कहा है। गुरु की श्रद्धा तुझे कहाँ रही? गुरु ने तो ऐसा कहा है, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन कहा, शास्त्र ने भी यह कहा।

देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा कहो कैसे रहे? कैसे रहे शुद्ध श्रद्धान आणो।
शुद्ध श्रद्धान बिन सर्व क्रिया करे, छार पर लीपना उसे जानो॥

छार समझते हो? राख। राख नहीं होती? राख। चूल्हे की भस्म। क्या कहते हैं? राख नहीं कहते? नहीं समझते? यह राख इतनी बिछाई हो। चूल्हे की राख, इतनी राख बिछाई हो फिर ऊपर लेप-गार करे, गार। गार को क्या कहते हैं? लींपण-लींपण रहे? कहाँ से रहे? राख के ऊपर लींपण नहीं रहती। दिखती नहीं, लींपण उखड़ जाती है, पापड़ा उखड़े। उसी प्रकार भगवान देव-गुरु-शास्त्र की भी तुझे श्रद्धा नहीं और आत्मा की शुद्ध श्रद्धा किये बिना तेरी क्रिया छार पर लींपण है। धूल में है राख में, तेरे आत्मा को कुछ लाभ नहीं। ऐसे अनुभव में द्वैत ही भासित नहीं होता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १, शुक्रवार, दिनांक - ३०-०९-१९६६
श्लोक-९-१०, प्रवचन - ६२

समयसार चलता है। १३वीं गाथा का ९वाँ कलश। इसका भावार्थ। ३६ पृष्ठ है। ९वें कलश में क्या कहा, इसका भावार्थ कहते हैं। जरा सूक्ष्म है। उसमें ऐसा कहा कि आत्मा अनन्त गुण सम्पन्न एक स्वरूप पदार्थ-द्रव्य है। उसमें अनन्त गुण की पर्याय है और रागादि भी है। परन्तु जब शुद्धनय का विषय करके अपना एकस्वरूप शुद्ध चैतन्य की अन्तर दृष्टि करके अनुभूति अर्थात् अनुभव किये जाने पर राग-द्वेष तो भासित नहीं होते, पर्याय भासित नहीं होती, नय, निक्षेप, प्रमाण के विकल्प भी भासित नहीं होते, परन्तु द्वैत भी भासित नहीं होता, ऐसा कहा है। यह उसका भावार्थ लिखते हैं। समझ में आया?

फिर से। आत्मा जब प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है, प्रथम में प्रथम धर्म दृष्टि, धर्म दृष्टि प्रथम होती है, उस समय आत्मा एक समय में शुद्ध अखण्ड अनेक गुण सम्पन्न परन्तु एकरूप है, ऐसा अन्तर में ज्ञायकभाव की ओर की एकत्व दृष्टि होने से अनुभव में राग तो भासित नहीं होता, पर्याय का भेद भासित नहीं होता, गुण-गुणी का भेद भासित नहीं होता, प्रमाण, नय, निक्षेप का विकल्प जो था, वह भासित नहीं होता, परन्तु द्वैत भासित नहीं होता। समझ में आया? ऐसा अद्वैत आत्मा अन्तर अनुभव में आता है। समझ में आया? अब इसका स्पष्टीकरण करते हैं। तुमने अद्वैत कहा तो वेदान्ती भी अद्वैत कहते हैं। वेदान्ती अद्वैत कहते हैं न?

भावार्थ :- भेद को अत्यन्त गौण करके कहा है... यह महा सिद्धान्त है। ऐसा का ऐसा वाँच जाये तो समझ में आये, ऐसी चीज़ नहीं। भावार्थ की पहली लाईन। **भेद को अत्यन्त गौण करके...** भेद गुण-गुणी है, पर्याय है, राग है। समझ में आया? तथापि भेद को, पर्याय को, राग को, गुण-गुणी भेद को अत्यन्त गौण करके। प्रमाण, नय, निक्षेप से जो वस्तु की सिद्धि भगवान के आगम प्रमाण से पहले की हो, उस विकल्प

को भी अत्यन्त गौण करके। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है। भेद को गौण करके, ऐसा नहीं लिया, भाई! अत्यन्त क्यों कहा है? क्योंकि वह द्वैत भासित नहीं होता, ऐसा कहा न? इसलिए यहाँ अत्यन्त शब्द प्रयोग किया है।

भगवान आत्मा निज शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द में जब अन्तर सम्यग्दर्शन प्रथम भूमिका प्रगट होती है, तब अनुभूति में आत्मा में द्वैत-दोपना भासित नहीं होता। दो अर्थात् यह गुणी है, यह गुण है, मैं अनुभव करनेवाला और अनुभव, ऐसा द्वैत भी अन्तर अनुभव में भासित नहीं होता। तब उसे आत्मा का अनुभव—अनुभूति हुई, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? तो कहते हैं, भेद कहाँ गये? यह अनन्त द्रव्य है। भगवान ने तो अनन्त आत्मा कहे हैं। अनन्त परमाणु कहे हैं, भेद कहाँ गये? और भगवान ने तो आत्मा में अनन्त गुण कहे हैं और अनन्त पर्याय एक समय में कही है। वह सब कहाँ गये? सुन तो सही। भेद को अत्यन्त गौण करके; अभाव करके नहीं। सुनो! अभाव करके नहीं। अनन्त द्रव्य अपने आत्मा से भिन्न हैं, उनका अभाव करके नहीं। अपनी पर्याय में अनन्त गुण की पर्याय है, उसका अभाव करके नहीं, अत्यन्त गौण करके। आत्मा में अनन्त गुण हैं, वह अनन्त गुण-गुणी का भेद है। वह भेद है, उसका अभाव करके नहीं, परन्तु उसे अत्यन्त गौण करके, लक्ष्य में नहीं लेना है, तो अत्यन्त गौण करके कहा है। समझ में आया? सेठ! बहुत सूक्ष्म बात है।

भेद को... भगवान आत्मा अपना एक स्वरूप अखण्ड गुण का पिण्ड प्रभु, जब अन्तर सम्यग्दर्शन में अनुभूति में एकपने का अनुभव होता है, तब वहाँ दोपने का भास, भान रहता नहीं। तो इसका अर्थ क्या हुआ? कि दो गुण-गुणी नहीं है? पर्याय नहीं है? राग नहीं है? अन्य द्रव्य नहीं है? है। समझ में आया? परन्तु उन सबको गौण करके, वहाँ से लक्ष्य छुड़ाकर एक स्वरूप चैतन्य के ऊपर दृष्टि कराने के लिये अनुभूति में सम्यग्दर्शन ऐसे होता है। समझ में आया? देरी क्यों लगी? सेठी! कितना समय चला गया। तत्त्व की बात चली गयी। वृद्ध है न, वृद्ध। समझ में आया? बहुत बात चली गयी। कितना समय हो गया? दस मिनिट। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आ गया।

भेद को अत्यन्त गौण करके कहा है... समझ में आया? **प्रमाण, नयादि भेद की तो बात ही क्या?** यहाँ तो यह बतलाना है। आत्मा पहले सम्यग्ज्ञान का प्रमाण, विकल्पात्मक ज्ञान हो, अभी, सम्यग्ज्ञान नहीं। विकल्प अर्थात् राग के ज्ञान द्वारा आत्मा केवलज्ञान में तीन काल-तीन लोक देखता है, एक समय में अनन्त द्रव्य और अपना त्रिकाल देखता है, ऐसे विकल्प द्वारा पहले केवलज्ञान का निर्णय किया है। ऐसे पाँच ज्ञान का निर्णय विकल्प द्वारा किया है। और नय द्वारा एक-एक गुण का और एक-एक भेद का निर्णय किया है और निक्षेप द्वारा ज्ञेय के चार प्रकार—संज्ञा, स्थापना, योग्यता और प्रगट (पर्याय), ऐसे प्रकार से पहले विकल्प से निर्णय किया है। उसकी तो बात ही क्या? उसका तो लक्ष्य छुड़ाया है।

शुद्ध अनुभव के होने पर... निज आत्मा आनन्दस्वरूप में पूर्वापर विरोधरहित पहली दृष्टि-श्रद्धा हुई है, पश्चात् जब अन्तर में अनुभव में आता है तो **द्वैत ही भासित नहीं होता,...** दोपना ही भासित नहीं होता। समझ में आया? **एकाकार चिन्मात्र ही दिखायी देता है।** भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन की पहली धर्मभूमि, प्रथम धर्मभूमि। पहली भूमिका में—धर्म की पहली सीढ़ी में एक एकाकार—एक आकार अर्थात् एक स्वरूप चिन्मात्र-ज्ञानमात्र अभेद, ऐसा दिखायी देता है। उसे अनुभूति और उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? नन्दलालभाई! यह सूक्ष्म है, भाई... दरकार करेगा या नहीं? कहो, समझ में आया?

यहाँ तो पण्डित जयचन्द्रजी उसमें से—श्लोक में से निकालते हैं। अब कहते हैं, देखो! **यहाँ विज्ञानाद्वैतवादी...** जगत में मान ले कि जगत विज्ञान ही है, ऐसा बौद्ध मानता है। पूरा जगत विज्ञान है, दूसरी कोई चीज़ नहीं। और वेदान्ती आत्मा एक ही है, अद्वैत है, ऐसा मानते हैं। **अन्त में परमार्थरूप तो अद्वैत का ही अनुभव हुआ।** हम कहते हैं कि एक है, ऐसे तुम्हें भी एक में आना पड़ा। समझ में आया? हम पहले से कहते हैं, आत्मा अद्वैत... अद्वैत। ब्रह्म एक ब्रह्म है, ब्रह्म के सब (अंश है)। एको अहं बहुस्यामि। मैं एक था, वह बहुरूप हुआ हूँ। तो एकरूप तुझे होना। एकरूप आत्मा है, यह तो हम कहते थे। ऐसा तुम जैन भी अन्दर में लाये। अन्ततः तो तुम यह लाये न। **अद्वैत का ही**

अनुभव हुआ। यही हमारा मत है;... वेदान्त कहता है। 'तुमने विशेष क्या कहा?' इसमें तुमने अलग क्या कहा? हम कहते हैं, एक ही आत्मा... एक ही आत्मा... एक ही आत्मा, यह तुमने कहा। **इसका उत्तर :-** सुनो! महा सिद्धान्त कहते हैं।

तुम्हारे मत में सर्वथा अद्वैत माना जाता है। तुम्हारे मत में सर्वथा एक माना जाता है। **यदि सर्वथा अद्वैत माना जाये...** एक ही स्वरूप सर्वथा माना जाये **तो बाह्य वस्तु का अभाव ही हो जाये,...** तो अनन्त आत्मायें हैं, अनन्त रजकण हैं। समझ में आया? उन सबका लोप हो जाये। ऐसा है नहीं। अभी कहेंगे। **बाह्य वस्तु का अभाव ही हो जाये, और ऐसा अभाव तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है।** अनन्त आत्मायें हैं, अनन्त रजकण हैं, असंख्य कालाणु हैं। स्वतन्त्र अनन्त द्रव्य अनादि से हैं। ऐसा सर्वज्ञ भगवान ने कहा है और ऐसा है। **हमारे मत में नयविवक्षा है...** देखो! हमारे में नय से कथन है। **जो कि बाह्यवस्तु का लोप नहीं करती।** अनन्त आत्मायें है, अनन्त परमाणु हैं, उनका लोप नहीं करती। समझ में आया? सब अनन्त आत्मायें हैं, अनन्त रजकण हैं, स्वतन्त्र अपनी पर्याय से सब परिणम रहे हैं।

जब शुद्ध अनुभव से विकल्प मिट जाता है, तब आत्मा परमानन्द को प्राप्त होता है... बाह्य वस्तु है। अभी कहेंगे। सुनो! यदि बाह्य वस्तु न हो... नीचे कहेंगे, हों! **यदि बाह्य वस्तु का लोप किया जाये तो आत्मा का भी लोप हो जायेगा...** ऐसा कहेंगे। इसमें बड़ा सिद्धान्त है। क्यों? कि आत्मा की एक पर्याय में छह द्रव्य जानने की सामर्थ्य है। यदि एक पर्याय को न माने, एक पर्याय में छह द्रव्य नहीं माने। सुनो! जरा सूक्ष्म बात है। जिसमें आत्मा की एक ज्ञान की पर्याय, एक ही पर्याय श्रुतज्ञान की को जिसने माना, उसने छह द्रव्य माने। छह द्रव्यों में अनन्त आत्मायें, अनन्त रजकण भिन्न-भिन्न अपने में कार्य कर रहे हैं। अनन्त माने न? अनन्त। तो अनन्त परमाणु अनन्तरूप से रहते हैं, अनन्त आत्मायें, कोई द्रव्य किसी दूसरे का कुछ करे, ऐसा श्रुतज्ञान की पर्याय में मानने में नहीं आता। समझ में आया? क्या कहा? अभी तो पर्याय की बात करते हैं। एक सम्यग्ज्ञान की नहीं, परन्तु साधारण ज्ञान की, सामान्य श्रुतज्ञान की पर्याय, एक पर्याय छह द्रव्य अनन्त आत्मायें, अनन्त रजकण हैं, ऐसा मानती जानती है। यदि ऐसा न माने तो अपनी पर्याय को ही नहीं माना। द्रव्य तो बाद में रहा। समझ में आया? यह कलशटीका

में पीछे बहुत स्पष्ट किया है। एक मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की एक समय की पर्याय अनन्त सिद्ध, अनन्त रजकण, अनन्त आत्मायें हैं और जब अनन्त हैं तो अनन्त अपनी-अपनी पर्याय का कार्य करते हैं। अपना अस्तित्व अनन्त रखते हैं तो किसी के अस्तित्व से किसी का अस्तित्व है नहीं। किसी पदार्थ की पर्याय से किसी पदार्थ की पर्याय का अस्तित्व है, ऐसा माने तो अनन्त, अनन्तरूप रहते नहीं। समझ में आया? आहाहा!

एक ज्ञान की पर्याय में इतनी स्वीकृति तो पहले आती है, अभी तो मिथ्यादृष्टि है भले, समझ में आया? अनुभूति (हुई) नहीं, तथापि छह द्रव्य जिसने नहीं माने, उसने अपनी पर्याय नहीं मानी। आहाहा! समझ में आया? और छह द्रव्य अनन्त हैं। छह द्रव्य तो जाति छह, संख्या से अनन्त हैं। तो अनन्त, अनन्तरूप से न माने, उसने अपनी पर्याय को नहीं माना। एक समय की पर्याय को, हों! अमरचन्दभाई! आहाहा! एक समय की पर्याय में इतनी सामर्थ्य है कि अनन्त ज्ञेय हैं, उन्हें जानने की शक्ति है। तो एक पर्याय को कब माना कहलाये? कि अनन्त द्रव्य, अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, उनके अनन्त-अनन्त गुण एक-एक के और अनन्त पर्यायें, सब अपने-अपने से अस्ति है। किसी द्रव्य से किसी की पर्याय होती है, ऐसा माने तो उसे अनन्त द्रव्य हैं, ऐसी पर्याय में प्रतीति हुई नहीं। तो पर्याय की सामर्थ्य अनन्त को पृथक्-पृथक् मानने की है। ऐसा जिसने नहीं माना, उसने अपनी पर्याय को ही नहीं माना। सूक्ष्म बात, गजब बात, भाई! समझ में आया? यह कलशटीका में बहुत आ गया है।

भगवान आत्मा, उसकी एक समय की ज्ञान की (पर्याय), श्रुतज्ञान, भले अज्ञान हो, पर्याय है न? एक समय की पर्याय। एक समय की पर्याय में छह द्रव्य, अनन्त आत्मायें, कितने? समझ में आया? जितने अभी तक सिद्ध हुए, उनसे अनन्तगुणे आत्मा संसारी हैं। और वे अनन्त अनन्तरूप से रहते हैं। अनन्त में एक आत्मा दूसरे आत्मा की पर्याय में घुस जाये और काम करे तो अनन्त नहीं रहते। और उससे अनन्तगुणे रजकण हैं। तो रजकण भी अनन्त परमाणु हैं। उनमें एक परमाणु की पर्याय को दूसरा करे तो अनन्त परमाणु की पर्याय स्वतन्त्र भिन्न नहीं रहती। एक परमाणु की पर्याय दूसरी पर्याय को करे तो ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायें पर को करे तो अनन्त द्रव्यों का लोप हो जाता है। यहाँ कहते हैं कि ऐसा अनन्त द्रव्य का लोप हमारे में नहीं है। आहाहा! समझ में

आया ? सूक्ष्म बात है, भाई ! जैन परमेश्वर सर्वज्ञ का मार्ग व्यवहार से समझना (भी) कठिन है। निश्चय से तो बात दूर रही। व्यवहार व्यवहार कहते हैं न ? व्यवहार व्यवहार। क्या व्यवहार तेरा ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि देखो ! **बाह्यवस्तु का लोप नहीं करती।** ज्ञान की पर्याय में अनन्त द्रव्य हैं, ऐसा हमारी पर्याय मानती है। जिनेश्वरदासजी ! आहाहा ! और मानती है तो कब माना कहलाये ? अनन्त आत्मा निगोद में भी है अनन्त आत्मा, तो अनन्त आत्मा अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में ही है। दूसरे के द्रव्य-गुण-पर्याय से उसमें कुछ नहीं आता। कर्म की पर्याय में से कोई आत्मा में आ जाये और आत्मा की पर्याय में से कोई जड़ में आ जाये, आत्मा की पर्याय से यह जड़ हिल जाये और जड़ की पर्याय हिले तो आत्मा हिल जाये, ऐसा होवे तो एक पर्याय दूसरी पर्याय में घुस गयी। तो अनन्त द्रव्य अपना अस्तित्व नहीं रखते। आहाहा ! समझ में आया ? हीराभाई ! समझ में आया या नहीं ? यह सब सूक्ष्म है, भारी सूक्ष्म, भाई ! ऐसा बहुत सूक्ष्म बोटाद में रखे तो चले नहीं, हों ! मुश्किल मुश्किल से समझे। आहाहा ! अभी तो प्रवृत्ति इतनी अधिक। निवृत्ति लेकर यह शान्ति से समझे तो समझ में आये। यह तो अलौकिक चीज़ है। इसका—जैन का व्यवहार समझना कठिन है।

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी ने व्यवहार जिसे कहा, वह व्यवहार किसे कहा ? कि एक समय की पर्याय में अनन्त द्रव्य पृथक्-पृथक् हैं, ऐसा माने तो उस पर्याय को व्यवहार कहा जाता है। क्योंकि त्रिकाल द्रव्य की दृष्टि को निश्चय कहते हैं। पर्याय की दृष्टि को व्यवहार कहते हैं। सुनो !

मुमुक्षु : आप तो व्यवहार मानते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं ? अत्यन्त भेद करके कहा। अनन्त मानते नहीं ? अनन्त पदार्थ, वे नहीं मानते कि जो अनन्त आत्मा हैं उनमें एक आत्मा दूसरे का कुछ कर दे। एक आत्मा दूसरे रजकण का कर दे, तो वह अनन्त मानता ही नहीं। तो उसे व्यवहार की खबर नहीं और उसकी व्यवहार की मान्यता खोटी है। तो निश्चय की दृष्टि है नहीं। मूढ़ है। समझ में आया ? सेठी ! अज्ञानी मूढ़। पण्डितजी ! समयसार में आता

है। पर को जिलावे, मारे तो अज्ञानी मूढ़। उससे विपरीत वह ज्ञानी है। मैं पर को जिला सकता हूँ, मैं पर को मार सकता हूँ, मूढ़ है। द्रव्य की पर्याय अपने-अपने से होती है तो तू उसकी पर्याय कर देता है? क्या वह द्रव्य, गुण-पर्याय से अस्तित्व नहीं रखता? प्रत्येक पदार्थ अपना द्रव्य, अपने गुण और अपनी पर्याय से अस्तित्व रखता है। तू कहाँ उसकी पर्याय का अस्तित्व रखने में घुस गया? मूढ़ है, ऐसा कहा है।

मुमुक्षु : परोपकारी जीव तो कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परोपकारी मूढ़ है। परोपकारी कैसा? मूढ़ जीव है। ऐ... सेठी! यह यहाँ कहते हैं, हमारा तो पर्याय में छह द्रव्य की मान्यता का व्यवहार है। समझ में आया? उस व्यवहार का लक्ष्य छोड़कर निश्चय का अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? जरा इसमें तो बहुत गूढ़ भर दिया है। इस श्लोक में तो। पण्डित जयचन्द्रजी ने भी ऐसे अर्थ किये हैं।

भाई! हमारे तो नय विवक्षा है। व्यवहारनय से पर्याय में छह द्रव्य और रागादि है, वह पर्याय जानती है। रागादि है, दया, दान का राग है, वह पर्याय जानती है। समझ में आया? और नय, निक्षेप, प्रमाण से विकल्पात्मक जो निर्णय किया, वह भी पर्याय जानती है। उस पर्याय में इतनी सामर्थ्य है। आहाहा! विषय ऐसा आया है जरा। यहाँ तो अद्वैत भासित होता है और द्वैत नहीं भासित होता, इसके ऊपर से निकाला है।

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सौ इन्द्रों की उपस्थिति में समवसरण में फरमाते थे। सुन! जिसे आत्मा की एक समय की पर्याय की श्रद्धा है, उसकी पर्याय में, छह द्रव्य अनन्त भिन्न-भिन्न हैं, ऐसी श्रद्धा उसे पर्याय में आ जाती है। तब तक अभी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? पर्याय को माना। ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड एक गुण है। ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड एक द्रव्य है। आहाहा! ऐ... सेठ! पैसे एकदम हो गये न, इसलिए मानो यहाँ शीघ्र धर्म हो जायेगा। ऐसा नहीं है। आहाहा!

भाई! तुझे अभी सर्वज्ञ के व्यवहार की भी खबर नहीं। निश्चय की तो खबर नहीं परन्तु सर्वज्ञ व्यवहार किसे कहते हैं, (उसकी भी खबर नहीं)। भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव समवसरण में महाविदेहक्षेत्र में फरमाते हैं, ऐसे अनन्त तीर्थंकर हो गये, यह

तो विराजमान हैं। सर्वज्ञ। अनन्त काल में कभी तीन काल में तीन काल को जाननेवाले का विरह नहीं रहा। क्या कहा ? तीन काल में तीन काल को जाननेवाले का विरह जगत में कभी नहीं रहा। तीन काल में तीन काल को जाननेवाले का अभाव कभी हुआ नहीं। अनादि से सर्वज्ञ है, अनादि से सर्वज्ञ हो रहे हैं। दूसरे सर्वज्ञ, तीसरे, ऐसे अनन्त हुए, अभी हैं और भविष्य में होंगे। किसी काल में जगत में सर्वज्ञ न हों, ऐसा तीन काल में नहीं होता। तीन काल में तीन काल को जाननेवाले भगवान जगत में न हों, ऐसा कोई क्षेत्र नहीं, ऐसा कोई काल नहीं। समझ में आया ? जिनेश्वरदासजी ! ऐसा कोई क्षेत्र नहीं। महाविदेहक्षेत्र में सदा ही केवलज्ञान है। किसी क्षेत्र में नहीं, किसी जगह केवलज्ञान है ही नहीं, सब ही क्षेत्र में कोई नहीं ही हो, ऐसा नहीं। अमुक क्षेत्र में तो सदा ही है और अमुक काल में नहीं, ऐसा भी नहीं। तीनों काल में सर्वज्ञ हैं। अनादि से सर्वज्ञ हैं, अभी सर्वज्ञ हैं, भविष्य में होंगे। समझ में आया ?

वे सर्वज्ञ भगवान वाणी द्वारा ऐसा फरमाते हैं, भगवान ! सुन तो सही। तेरी एक समय की पर्याय की सामर्थ्यता, एक समय की पर्याय की सामर्थ्ययता, पर्याय की सामर्थ्यता, हों ! छह द्रव्य अनन्त अनन्तगुणे। सिद्ध की अपेक्षा अनन्तगुणे संसारी, संसारी की अपेक्षा अनन्तगुणे परमाणु, समझ में आया ? उससे अनन्तगुणे त्रिकाल के समय, उससे अनन्तगुणे आकाश के प्रदेश, उससे अनन्तगुणे एक द्रव्य के गुण। उन सबको तेरी पर्याय में विकल्पसहित प्रतीति करने की सामर्थ्य है। आहाहा ! इतनी पर्याय की सामर्थ्य माने, तब तो अभी मिथ्यादृष्टि का व्यवहार है। आहाहा ! पण्डितजी ! ऐसी बात है, भगवान ! आहाहा !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि है। अभी द्रव्य की दृष्टि हुई नहीं। एक समय की पर्याय की बात चलती है। सम्यग्ज्ञानदीपिका में लिया है। छह द्रव्य जो न माने, उसे आत्मा का ज्ञान कभी नहीं होता। समझ में आया ? क्योंकि पर्याय का सामर्थ्य है कि जैसे भगवान ने छह द्रव्य देखे, अनन्त भिन्न-भिन्न आत्मा हैं। किसी के साथ किसी को सम्बन्ध नहीं। एक परमाणु दूसरे परमाणु को तीन काल में चूमता नहीं। तो रजकण

आत्मा को स्पर्श करे और आत्मा रजकण को स्पर्श करे, मूढ़ मिथ्यादृष्टि (है, उसे) अनन्त पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं, उनकी भी पर्याय में उसे मान्यता नहीं। तो उसके व्यवहार में भी मिथ्यादृष्टि तीव्र है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, उस वेदान्ती ने कहा कि अन्त में तो तुम अद्वैत लाये। अरे! सुन तो सही! अद्वैत हम किस प्रकार लाये? हमारे अद्वैत का प्रकार अलग है, तेरे अद्वैत का प्रकार अलग है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परमाणु स्पर्शता नहीं, चूमता नहीं। तीसरी गाथा में बताया था न! सभी पदार्थ अपने अनन्त धर्मों को चूमते हैं, परन्तु परपदार्थ को स्पर्श करे, ऐसा तीन काल में, तीन लोक में हुआ नहीं। दूसरे को स्पर्श करे तो दो पदार्थ एक हो जाते हैं। पृथक् नहीं रहते। ऐसा सर्वज्ञ भगवान ने कहा, ऐसा आगम में कहा, ऐसा द्रव्य में है। ऐसा न माने तो उसे तो अपनी पर्याय की प्रतीति नहीं। आहाहा! समझ में आया? हमारे तो नय विवक्षा है, ऐसा कहते हैं। हम व्यवहारनय से पर्याय में ऐसा है, ऐसा मानते हैं। अनन्त है, ऐसा मानते हैं, पर्याय में इतनी सामर्थ्य है, उसे हम मानते हैं। परन्तु इतनी सामर्थ्य मानने से सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? अमरचन्दभाई!

क्या कहा? देखो! **बाह्यवस्तु का लोप नहीं करती। जब शुद्ध अनुभव से विकल्प मिट जाता है...** पर्याय में ख्याल है कि छह द्रव्य हैं, अनन्त हैं, पर्याय ऐसा मानती है, राग आता है, उसे पर्याय जानती है। समझे? परन्तु उस पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, भेद का लक्ष्य छोड़कर, नय-निक्षेप-प्रमाण से अपनी वस्तु जैसी है, भगवान ने कहीं वैसी, ऐसा जो विकल्प से सिद्ध किया था, वह है, (उसका) लक्ष्य छुड़ाया है। **तब आत्मा परमानन्द को प्राप्त होता है...** अन्तर में अद्वैत चैतन्य के ऊपर दृष्टि होने से आत्मा के अनुभव में आनन्द आता है। **इसलिए अनुभव कराने के लिए...** कहा है। ऐसा अनुभव कराने के लिये कहा है कि '**शुद्ध अनुभव में द्वैत भासित नहीं होता।**' समझ में आया? लो, भाई! आज क्षमापना का दिवस है न!

सभी अनन्त द्रव्य हैं, ऐसे तू स्वतन्त्र है, ऐसा व्यवहार से मानना, तो उसने अनन्त

द्रव्यों को क्षमापना दी। क्षमा तेरी चीज़ को। तेरी पर्याय तुझसे स्वतन्त्र है, दूसरे से तेरी होती नहीं। ऐसा व्यवहार से तो क्षमापना पर को दी। आहाहा! समझ में आया?

यदि बाह्य वस्तु का... देखो, आया। **यदि बाह्य वस्तु का लोप किया जाये तो आत्मा का भी लोप हो जायेगा...** देखो! क्योंकि बाह्य वस्तु को जाननेवाली ज्ञान की एक समय की पर्याय है। बाह्य वस्तु नहीं है तो अपनी पर्याय नहीं, ऐसा हो जायेगा और पर्याय बिना द्रव्य होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? क्यों, धर्मचन्दजी! समझ में आया या नहीं? थोड़ा-थोड़ा। आहाहा! कहते हैं कि **यदि बाह्य वस्तु का लोप किया जाये तो आत्मा का भी लोप हो जायेगा और शून्यवाद का प्रसंग आयेगा।** शून्य हो जायेगा। आहाहा! तेरी दृष्टि में शून्य हो जायेगा, मिथ्यात्व तीव्र हो जायेगा। आहाहा! सत्ता को... जहाँ-तहाँ अनन्त स्वतन्त्र सत्ता पड़ी है। ऐसे अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, उनके अनन्त गुण, उनकी अनन्त पर्याय पृथक्-पृथक् अपना काम करती है तो अनन्तता अपने में रखती है। अनन्त अनन्तरूप से रहकर सत्ता का स्वीकार है, ऐसा पर्याय में स्वीकार न हो तो पर्याय का नाश होता है। तो आत्मा का भी नाश होता है। बाह्य वस्तु का नाश करने से तेरा नाश हो जायेगा। आहाहा! आत्मा ज्ञानप्रमाण, पण्डितजी! वह (आता है न)। ज्ञान ज्ञेयप्रमाण। ज्ञेय लोकालोक (प्रमाण)। देखो! लोकालोक है। आत्मा की पर्याय में भास्यमान इतना ज्ञान होता है। समझ में आया? लोकालोक है, ऐसा विकल्प से भी ज्ञानपर्याय की स्वीकृति न करे तो व्यवहार की श्रद्धा का ठिकाना नहीं। वह व्यवहार है। वे कहे, करो व्यवहार तो निश्चय हो जायेगा। मूढ़ है, मर जायेगा तो भी नहीं होगा। सुन न अब। वे कहते हैं कि कुछ व्यवहार करो न तो निश्चय प्राप्त होगा। वह व्यवहाराभासी नहीं। वह निश्चयाभासी नहीं। निश्चयाभासी तो व्यवहार से कुछ लाभ होता है, ऐसा माने तो निश्चयाभासी नहीं। व्यवहार से लाभ माने तो निश्चयाभासी (नहीं), व्यवहार से लाभ माने तो बराबर है, निश्चय व्यवहार बराबर है। अरे! सुन तो सही। तुझे एक भी भान नहीं होता। दया, दान के विकल्प व्यवहार की तो यहाँ बात भी नहीं। उनका ज्ञान करने की जो पर्याय है... आहाहा! समझ में आया? ज्ञान की पर्याय में सामर्थ्य है कि अपने को जाने और पर को जाने। उस पर्याय में पृथक्-पृथक् राग, पृथक् पर्याय, पृथक् गुण, पृथक् द्रव्य, पृथक् कार्य ऐसा स्वीकार करे, तब तो पर्याय को

माना कहा जाये। यदि बाह्य द्रव्य नहीं, ऐसा कहे तो तेरी पर्याय का लोप हो जाता है। पर्याय का लोप होने से तेरे द्रव्य का भी लोप हो जाता है। क्योंकि पर्याय बिना द्रव्य नहीं रहता। समझ में आया? बनारसीदासजी! बात ऐसी है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा... समझ में आया? आहाहा!

'द्रव्य, क्षेत्र अरु काल, भाव गुण राजनीति से चार जी, त्रास बिना जड़-चेतन प्रभु की कोई न लोपे कार जी...' देवचन्दजी शीतलनाथ की स्तुति करते हैं। 'द्रव्य, क्षेत्र अरु काल, भाव गुण' पदार्थ द्रव्य है। उसका क्षेत्र है, उसकी अवस्था है, उसकी शक्ति है। प्रत्येक 'द्रव्य, क्षेत्र अरु काल, भाव गुण राजनीति...' जगत की नीति अनादि से ऐसी है। 'त्रास बिना जड़ चेतन प्रभु की कोई न लोपे कार...' भगवान की आज्ञा सर्वज्ञ में जो ज्ञात हुआ, ऐसे जड़-चेतन अपनी पर्याय से वहाँ परिणम रहे हैं। आज्ञा बाहर कोई काम होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? 'त्रास बिना जड़ चेतन प्रभु की कोई न लोपे कार...' कार समझते हो? आज्ञा। सर्वज्ञ ने पर्याय में जैसे द्रव्य-गुण-पर्याय देखे हैं, वैसा वहाँ हो रहा है। स्वयं के कारण से। भगवान की आज्ञा विरुद्ध-सर्वज्ञ की पर्याय विरुद्ध कोई पर्याय दूसरे प्रकार से हो, ऐसा नहीं होता। वह भी त्रास बिना। उन्होंने देखा है इसलिए नहीं, अपनी पर्याय का वैसा स्वभाव है कि द्रव्य में गुण की पर्याय स्वतन्त्र अपनी पर्याय में प्रत्येक रजकण और आत्मा में होती है। समझ में आया? ऐसा कहे परन्तु वापस विचारे नहीं। और वापस (कहे), भगवान की पूजा करने से संवर होता है और ऐसा होता है। धूल में भी नहीं होता। सुन तो सही! ऐसा लगावे कि भगवान की पूजा करने से संवर होता है। अरे! भगवान तो परद्रव्य हैं। उनकी पूजा के लक्ष्य में तो शुभभाव है। संवर, निर्जरा कहाँ से आये? समझ में आया? आहाहा! परद्रव्य का दया का शुभभाव है, वह शुभ आस्रव है, पुण्य है। ऐसे भगवान की पूजा का भाव शुभ है, पुण्य है। धर्म-संवर, निर्जरा नहीं। समझ में आया? ऐसे एक समय की पर्याय में इतना जानना कि राग है, यह है, द्रव्य है, गुण है, पर्याय है और पुण्य भी बन्ध का कारण है, ऐसा एक समय की पर्याय जानती है, तब तो उसने आत्मा की एक पर्याय-एक अंश माना। तो भी वह सम्यग्दर्शन नहीं। क्योंकि अंश में सम्यग्दर्शन नहीं, पर्यायाश्रित सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरे! भगवान का मार्ग सर्वज्ञ का मार्ग

क्या, उसे व्यवहार की खबर नहीं होती। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि हमारे में व्यवहार उड़ जाता है, परन्तु व्यवहार रखकर उड़ जाता है। अनन्त है, अनन्त है। उसका लक्ष्य छूट जाता है। पर्याय है, परन्तु उसका लक्ष्य छूट जाता है। गौण, अत्यन्त गौण कर डालते हैं। नहीं है, ऐसा नहीं। पर्याय ही नहीं, अनन्त भी नहीं, वह तो व्यवहार भ्रष्ट है। समझ में आया? वह तो व्यवहार सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है। निश्चय सम्यग्दर्शन तो है नहीं। समझ में आया?

यदि बाह्य वस्तु का लोप किया जाये तो आत्मा का भी लोप हो जायेगा और शून्यवाद का प्रसंग आयेगा। शून्य हो जायेगा। क्योंकि वे जितने ज्ञेय हैं, तत्प्रमाण तेरे ज्ञान में जानने की सामर्थ्य है। यदि ज्ञेय को उड़ा दे तो तेरी ज्ञान की पर्याय उड़ जाती है। ज्ञान की पर्याय उड़ जाने से तेरी अनन्त पर्याय उड़ जाने से तेरा गुण उड़ जायेगा और तेरा द्रव्य भी उड़ जायेगा। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म है यह, नन्दलालभाई! आज बराबर सूक्ष्म आया है, भाई! आवे वह आवे न। जो ... वह हो न। आहाहा! गजब! द्वैत भासित नहीं होता, उसमें से इतना निकाला। समझे न? आहाहा! '**न्ननुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव।**' '**भाति न द्वैतमेव**'। अर्थात् इसका एकान्त न हो जाये, इसका स्पष्टीकरण किया है। समझ में आया?

सर्वज्ञ भगवान परमेश्वर के ज्ञान में अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु पृथक्-पृथक् अननतरूप से अनन्तरूप से अनन्त रहकर भासित हुए हैं। जैसे अनन्तरूप से हैं, वैसे अपनी पर्याय स्वीकार करे। वरना सत् का एक अंश है उत्पाद का, वह दूसरे से हो तो उसके उत्पाद के अंश का नाश होता है। दूसरे द्रव्य से दूसरे का उत्पाद हो—पर्याय हो—कार्य हो तो उसके उत्पादकार्य का नाश होता है। कार्य का नाश होने से अनन्त कार्य का नाश हुआ, अनन्त कार्य का नाश हुआ तो द्रव्य का भी नाश हो गया। तो तेरी पर्याय में जितने अनन्त द्रव्यों को भिन्न-भिन्न मानते हैं। पर्याय में स्वीकार करते हैं। पर्याय में है, ऐसी मान्यता हम वापस उड़ा देते हैं। अत्यन्त गौण कर डाला। पर्याय को गौण करके द्रव्य की दृष्टि की। पर्याय नहीं है, अनन्त द्रव्य नहीं है—ऐसा मानकर अनुभव किया, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यदि बाह्य वस्तु का लोप किया जाये तो आत्मा का भी लोप हो जायेगा.... क्या कहा, समझ में आया? माप करनेवाली ज्ञान की पर्याय प्रमाण है न? प्रमाण पर्याय। प्रमाण है या नहीं? पर्याय में ज्ञान प्रमाण है या नहीं? तो प्रमाण जितना प्रमेय है... समझ में आया? उतने अनन्त प्रमेय को जैसा है, वैसा (उतना) बराबर स्वीकार करता है। तो उस पर्याय में व्यवहार आ गया। वह पर्याय ही व्यवहार है। समझ में आया? **इसलिए जैसा तुम कहते हो, उस प्रकार से वस्तुस्वरूप की सिद्धि नहीं हो सकती...** तू कहता है कि अकेला आत्मा, अकेला आत्मा। ऐसी वस्तु-सिद्धि नहीं होती। अकेला विज्ञान है और एक आत्मा है और सब एक आत्मा है, एक ब्रह्म है, इस प्रकार से वस्तु की सिद्धि नहीं होती। तेरे आत्मा का इस प्रकार से पता लगेगा नहीं। मूढ़ हो जायेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

और वस्तुस्वरूप की यथार्थ श्रद्धा के बिना... देखो! वस्तुस्वरूप की... अनन्त आत्मायें हैं, अनन्त रजकण हैं, उन्हें जानने की पर्याय में सामर्थ्य है। साथ में राग है, परलक्ष्यी राग है, प्रमाण, नय, निक्षेप से निर्णय करने में भी राग है, ऐसी वस्तु है। ऐसी वस्तु की श्रद्धा बिना **जो शुद्ध अनुभव (-ज्ञान) किया जाता है, वह भी मिथ्यारूप है;...** हम शुद्ध अनुभव करते हैं। क्या अनुभव? शून्य-खाली है। सब कहते हैं न, विकल्प छोड़ दो, विकल्प छोड़ दो, परन्तु विकल्प छोड़े तो क्या वस्तु है? वस्तु का अस्तित्व क्या है? उसके अस्तित्व में मौजूदगी में एक समय की पर्याय में तीन काल-तीन लोक अनन्त द्रव्य जानने की मौजूदगी, ऐसी अनन्त पर्याय की मौजूदगी एक गुण में है। ऐसे अनन्त गुण की मौजूदगी एक द्रव्यरूप है। समझ में आया? ऐसी **श्रद्धा के बिना जो शुद्ध अनुभव किया जाता है...** मैं शुद्ध ही हूँ, शुद्ध हूँ, शुद्ध हूँ। तुझे शुद्ध अनुभव नहीं होगा। खरगोश के सींग जैसा हो जायेगा। बफम-बफम हो जायेगा, मर जायेगा, निगोद में चला जायेगा। हम ध्यान करते हैं, बस, शून्य हो गये, हमको तो दूसरा भासित ही नहीं होता। समझ में आया? पोपटभाई!

शून्य का प्रसंग होने से तुम्हारा अनुभव भी आकाश-कुसुम के अनुभव के समान है। आकाश के फूल का जैसे ज्ञान नहीं होता, (क्योंकि) वह जगत में है ही नहीं। ऐसे जगत में चीज़ ही उड़ा दे, कि सब द्रव्य नहीं, अनन्त नहीं, पर्याय इतनी सामर्थ्यवाली

नहीं, अकेला आत्मा है। आकाश के फूल जैसा तेरा अनुभव है। बस, हम तो अनुभव करते हैं। कुछ भासित नहीं होता। एक आत्मा। आकाश के फूल जैसा तेरा अनुभव है, मूढ़ जैसा अनुभव है। समझ में आया? आहाहा! पण्डित जयचन्द्रजी ने द्वैत भासित नहीं होता, इसमें से इतना निकाला। स्पष्ट करने के लिये। समझ में आया? वेदान्त आदि कहते हैं न? सर्व ब्रह्म... अहं एको, अहं ... सर्व व्यापक एक ही है। दूसरा कोई है ही नहीं। दो आत्मा नहीं, दो गुण नहीं, पर्याय नहीं। वह सब निश्चयाभासी व्यवहार की पर्याय की सामर्थ्य और अनन्त द्रव्य की सामर्थ्य पर्याय में नहीं मानता, उसका अनुभव तो आकाश के फूल जैसा है। अनुभव—आत्मा का साक्षात्कार हो गया। क्या है? छह द्रव्य हैं या नहीं? नहीं, नहीं, कुछ है नहीं। मूढ़ है तू।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लक्ष्य छोड़ना, परन्तु वस्तु नहीं? और ज्ञान की पर्याय में प्रतीति में आ गयी है। लक्ष्य छोड़ना अर्थात् कि वस्तु छोड़ना? है ही नहीं? यह तो कहा, **भेद को अत्यन्त गौण करके...** भेद का अभाव करके, ऐसा नहीं। आहाहा! शब्द में रहस्य भरा है। ऐसे का ऐसा वाँच जाये, ऐसा नहीं। एक-एक शब्द में सब रहस्य भरा है। समझ में आया? ऐसे तो समयसार बहुत वाँचते हैं। एक व्यक्ति कहता था, समयसार न? नौ तत्त्व न? पन्द्रह दिन में वाँच डाला। बहुत अच्छी बात है। एक श्लोक का एक अर्थ वाँचना तुझे आता नहीं। सुन न अब। वाँचा, धूल वाँचा? क्या भाव है, इसकी खबर नहीं। पन्द्रह दिन में वाँच गया। एक व्यक्ति कहता था। समयसार नौ तत्त्व की बात। है तो नौ नहीं, एक ही तत्त्व की। ले न! आत्मा की। भाई! आत्मा परमब्रह्म बादशाह, जिसकी एक पर्याय में तीन काल-तीन लोक को जानने की तो एक पर्याय में सामर्थ्य है। केवलज्ञान प्रत्यक्ष जानता है, श्रुतज्ञान परोक्ष जानता है। दोनों के जानने में अन्तर है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी पर्याय की सामर्थ्य है।

(कोई ऐसा माने) यह परमाणु का मैं कर देता हूँ, इस जीव को मैं सुधार देता हूँ, वह तो अनन्त द्रव्यों को मानता ही नहीं। इसका अर्थ कि अनन्त द्रव्यों की पृथक्ता पर्याय में मानना चाहिए, वह अपनी पर्याय को ही मानता नहीं। तो द्रव्य तो कहाँ से

माने? समझ में आया? आहाहा! अरे! अनन्त काल ऐसे मूढ़रूप से व्यतीत किया। मानता था कि मैं कुछ करता हूँ, मैं कुछ करता हूँ। मैं हूँ। मैं हूँ—आकाश का फूल। समझ में आया? देखो! **शून्य का प्रसंग होने से तुम्हारा अनुभव भी आकाश-कुसुम के अनुभव के समान है।** समझ में आया?

कलशटीका में तो ऐसा लिया है कि पर्याय मानी तो छह द्रव्य माने। पर्याय नहीं मानी, उसने छह द्रव्य नहीं माने। ऐसा लिया है। कलशटीका है न? राजमलजी ने बहुत भर दिया है। समझ में आया? यह तो सूक्ष्म बात है। यह तो चले, तब सूक्ष्म बात चले। यह तो एक समय की पर्याय को न माने तो छह द्रव्य नहीं माने। छह द्रव्य को माना उसे कहा जाता है कि पर्याय को माने। और उस पर्याय को माने, तब भी अभी मिथ्यादृष्टि पर्यायदृष्टि है। समझ में आया? यह व्यवहार है। व्यवहार का लक्ष्य छोड़कर... यह व्यवहार, हों! दया, दान, व्रत, भक्ति करना और कषाय मन्द की क्रिया करना, वह व्यवहार-फ्यवहार कहीं नहीं तेरा। सुन तो सही अब। वह तो विकार है। समझ में आया? सच्चे देव-गुरु-शास्त्र, उन्होंने कहे हुए तत्त्वों को यथार्थ माने, तब तो उसकी व्यवहार ज्ञान की पर्याय, उसने व्यवहार ज्ञान की पर्याय मानी। परन्तु वह भी अभी परलक्ष्यी है। समझ में आया? वह पर का लक्ष्य छुड़ाने के लिये भेद को अत्यन्त गौण करके अन्तर दृष्टि में द्वैत भासित नहीं होता, अद्वैत भासित होता है, ऐसा कहा गया है। तू कहता है, वैसा अद्वैत नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निषेध। पदार्थ है ही नहीं, मेरी पर्याय नहीं, गुण ही नहीं। एक है। मूढ़ है। मूढ़ हो जायेगा। निगोद में चला जायेगा शून्य होकर। समझ में आया? तेरी भूमिका निगोद में चली जायेगी। पर्याय की असातना करते हो? एक समय की पर्याय इतनी सामर्थ्यवाले की तू असातना करता है तो पूरे द्रव्य की बड़ी असातना की। समझ में आया? आहाहा! लो, इस भावार्थ का इतना अर्थ हुआ। भावार्थ है न। भाव अर्थ है न। इसमें है न!

द्वैत भासित नहीं होता। ... अन्त में तो एक होना है न। अरे! सुन तो सही। वह

तो विकल्प छुड़ाने को अद्वैत भासित होता है, ऐसा कहा है। वस्तु छूट जाती है और जगत में शून्य हो जाता है और तेरी पर्याय में छह द्रव्य को जानने की सामर्थ्य है, वह पर्याय चली जाती है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

★ ★ ★

कलश - १०

आगे शुद्धनय का उदय होता है, उसकी सूचनारूप श्लोक कहते हैं:-

(उपजाति)

आत्म-स्वभावं परभावभिन्न-
मापूर्ण-माद्यन्तविमुक्त-मेकम्।
विलीनसंकल्पविकल्पजालं
प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति।।10।।

श्लोकार्थ : [शुद्धनयः आत्मस्वभावंप्रकाशयन् अभ्युदेति] शुद्धनय आत्मस्वभाव को प्रगट करता हुआ उदयरूप होता है। वह आत्मस्वभाव को [परभावभिन्नम्] परद्रव्य, परद्रव्य के भाव तथा परद्रव्य के निमित्त से होनेवाले अपने विभाव - ऐसे परभावों से भिन्न प्रगट करता है। और वह, [आपूर्णम्] आत्मस्वभाव सम्पूर्णरूप से पूर्ण है-समस्त लोकालोक का ज्ञाता है-ऐसा प्रगट करता है; (क्योंकि ज्ञान में भेद कर्म संयोग से हैं, शुद्धनय में कर्म गौण हैं।) और वह, [आदि-अन्त-विमुक्तम्] आत्मस्वभाव को आदि अन्त से रहित प्रगट करता है (अर्थात् किसी आदि से लेकर जो किसी से उत्पन्न नहीं किया गया, और कभी भी किसी से जिसका विनाश नहीं होता, ऐसे पारिणामिकभाव को प्रगट करता है।) और वह, [एकम्] आत्मस्वभाव को एक-सर्व भेदभावों से (द्वैतभावों से) रहित एकाकार-प्रगट करता है, और [विलीनसंकल्प-विकल्प-जालं] जिसमें समस्त संकल्प-विकल्प के समूह विलीन हो गये हैं, ऐसा प्रगट करता है। (द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म आदि पुद्गलद्रव्यों में अपनी कल्पना करना, सो संकल्प है, और ज्ञेयों के भेद से ज्ञान में भेद ज्ञात होना, सो विकल्प है।) ऐसा शुद्धनय प्रकाशरूप होता है।।10।।

कलश - १० पर प्रवचन

आगे शुद्धनय का उदय होता है... लो। अब १४वीं गाथा का उपोद्घात करते हैं। १४वीं गाथा है न? उसका उपोद्घात करते हैं। यह तो ९वाँ श्लोक हो गया। अब १०वीं श्लोक है न? १४वीं गाथा का उपोद्घात, उपोद्घात। बोलो।

आत्मस्वभावं परभावभिन्न-
मापूर्णमाद्यन्तविमुक्तमेकम्।
विलीनसङ्कल्पविकल्पजालं
प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति॥१०॥

वाह! **श्लोकनार्थ :- शुद्धनय...** शुद्धनय का अर्थ जो ज्ञान का अंश वर्तमान पर्याय को छोड़कर, राग को छोड़कर, छह द्रव्य का लक्ष्य छोड़कर, गुणभेद का लक्ष्य छोड़कर, अनन्त एकरूप स्वभाव को जो लक्ष्य में लेता है, उसे यहाँ शुद्धनय कहा जाता है। **शुद्धनय आत्मस्वभाव को...** भगवान आत्मा परमपारिणामिकभाव अन्दर कहेंगे, हों! पारिणामिक त्रिकाल भाव। एक समय की पर्याय नहीं, गुणभेद नहीं। पारिणामिकभाव तो छहों द्रव्यों में है। परमाणु भी पारिणामिकभाव से है। और धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल भी पारिणामिकभाव से ही है। चार द्रव्य तो अकेले पारिणामिकभाव से ही है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल। द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों पारिणामिकभाव से है। एक पुद्गल में पारिणामिकभाव के उपरान्त कर्म की पर्याय जो होती है, तो उसे अपेक्षा से उदयभाव कहा है। धवल में, भाई! उन कर्म के रजकणों में विभावरूप पर्याय होती है। कर्म की, हों! कर्म की। जड़ की जड़ में। उसे पारिणामिक और उदय दो भाव कहे हैं। चार में तो अकेला पारिणामिकभाव है। और आत्मा में पाँच भाव हैं। समझ में आया? आत्मा में पर्याय में चार भाव हैं और वस्तु में एक पारिणामिकभाव त्रिकाल में है। आत्मा में पाँच भाव हैं। पर्याय में चार और त्रिकाल द्रव्य में एक पारिणामिकभाव।

यहाँ तो चार भाव का ही लक्ष्य छुड़ाना है। पर्याय अपने में है। उसका भी लक्ष्य छुड़ाना है और एकरूप चिदानन्द ज्ञायक, पारिणामिकभाव कहा। ज्ञायक पारिणामिक। पारिणामिक क्यों कहा? वह तो राग और चार भाव का निषेध करने के लिये। ज्ञायकभाव

एकरूप परमस्वभाव ज्ञायक। जिसमें गुणभेद नहीं, पर्यायभेद नहीं, राग नहीं, नय, निक्षेप, प्रमाण के विकल्प का जहाँ आश्रय नहीं। अकेला चैतन्यस्वभाव। आहाहा! परन्तु वह सब व्यवहार स्वीकार करने के बाद की बात है, हों!

आत्मस्वभाव को प्रगट करता हुआ उदयरूप होता है। प्रगट होता है। आत्मा शुद्धनय प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शुद्धनय हुआ, ऐसा कहा न? शुद्धनय प्रगट होता है, ऐसा कहा है। नय कैसा? शुद्धनय प्रगट होता है, ऐसा कहा। ऐई! पण्डितजी! शुद्धनय प्रगट होता है। इसका अर्थ कि स्वभाव की दृष्टि होती है तो शुद्धनय प्रगट होता है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! द्रव्य प्रगट हुआ न। दृष्टि में आया तो द्रव्य प्रगट हुआ, (ऐसा कहा)। दृष्टि में नहीं था, दृष्टि में आया तो प्रगट हुआ। ११वीं गाथा में कहा न? ज्ञायकभाव आविर्भाव होता है। तो कहीं ज्ञायकभाव आविर्भाव होता है? ज्ञायकभाव तो त्रिकाल है। परन्तु दृष्टि में नहीं था, दृष्टि में भेद, राग और निमित्त थे तो वह ज्ञायक अप्रगट-तिरोभाव हो गया था। आहाहा! वह दृष्टि में आया तो ज्ञायकभाव आविर्भाव हो गया। आविर्भाव तो पर्याय का होता है। परन्तु वह ज्ञायक त्रिकाल चैतन्यज्योति पर्याय की सामर्थ्य रखनेवाला, इतनी पर्याय की सामर्थ्य कि एक समय में तीन काल-तीन लोक और सभी द्रव्य। ऐसी अनन्त पर्याय जिसके अन्दर घुस गयी। ऐसा अकेला ज्ञायकभाव, परमपारिणामिकभाव। समझ में आया? वह प्रगट होता है। अर्थात् वह तो है ही। दृष्टि उसमें गयी तो प्रगट होता है, ऐसा कहा जाता है। जो तिरोभाव था, दृष्टि में तिरोभाव था, वह दृष्टि में आविर्भाव हो गया। वस्तु तो है वह है। वह कहीं पर्याय में आ जाती है और वस्तु ढँक जाती है, ऐसा तीन काल में नहीं है। समझ में आया?

फिर से। ज्ञायकभाव ध्रुव परमस्वभाव पारिणामिकभाव है, उसमें तो उदयभाव नहीं, उपशमभाव नहीं, क्षयोपशमभाव नहीं, क्षायिकभाव नहीं। क्योंकि चारों ही भाव तो पर्याय है। वह वस्तु तो जैसी है, वैसी ही है। उसे आवरण भी नहीं और प्रगटपना भी नहीं। आवरण भी नहीं और प्रगट भी नहीं होती। वस्तु को आवरण नहीं। वस्तु को आवरण होवे तो अवस्तु हो जाये। आहाहा! और वस्तु प्रगट होती हो तो वस्तु पहले नहीं थी और प्रगट हुई, ऐसा भी नहीं होता। आहाहा! अमरचन्दभाई! भाई! परमेश्वर सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ का व्यवहार और निश्चय समझना महा-महा (कठिन)। लोग तो बस, हम

व्यवहार करते हैं और व्यवहार श्रद्धा करते-करते निश्चय हो जायेगा। हमारा निश्चय भी सच्चा है, हमारा व्यवहार भी सच्चा है। और ये लोग तो एक निश्चय (कहते हैं)। व्यवहार से कुछ लाभ नहीं होता। दया, दान, भक्ति करते-करते कुछ लाभ होगा। तीन काल में लाभ नहीं। यह देरासर और मन्दिर, कोई ऐसा कहे कि हमने बनाये। मूढ़ है। कौन बनाता है? अपने आप परमाणु की पर्याय से रच गया है। पुद्गल की पर्याय परावर्तन होकर आ गयी है। दूसरा जीव कहे कि मैंने बनाया। मूढ़ है। और रोके, वहाँ बनती पर्याय को रोके कि मैंने रोक दी। वह भी मूढ़ पर पर्याय का कर्ता होता है। क्या रोके? किसे बनावे? किसे रोके? आहाहा! शुभभाव आता है। शुभ आता है, शुभ। तो भाव आया तो मन्दिर बना, ऐसा तीन काल में नहीं। तीन काल में नहीं। अपना शुभराग यहाँ है, वह जड़ की पर्याय वहाँ रही। उस शुभराग स्पर्श नहीं करता और बनाया कहाँ से तूने? पर्याय बनायी? मूढ़ है। कौन बनावे? वहाँ उस द्रव्य में पर्याय रचने की परमाणु में सामर्थ्य नहीं? परमाणु समय-समय में उत्पादरूप कार्य करते हैं। वह कार्य क्या तू कर देता है? तेरी व्यवहार की श्रद्धा का ठिकाना नहीं। आहाहा! समझ में आया? पहले यह कहा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु विज्ञान है। ऐसा मन्दिर बनाया, भगवान को ऐसे पधराया और सब लोग उसका लाभ लेंगे, उससे लाभ लेंगे। क्या उससे लाभ होता है? वह तो शुभभाव आता है तो वहाँ लक्ष्य जाता है। इतना है। परन्तु शुभभाव से वहाँ बन जाये, यह है तो शुभभाव होता है, ऐसा तीन काल में नहीं। जिनेश्वरदासजी! कहाँ गये या नहीं? जानेवाले थे न, क्या हुआ? यह बैठे अभी। कोई बनायेगा नहीं वहाँ। बनने का होगा, वह बने बिना तीन काल में नहीं रहेगा। मलूकचन्दभाई! भले यहाँ से वहाँ न जाये और ... करे। समझ में आया? दोनों बात आती है वहाँ। वह बनने के रजकणों का पुद्गलपरावर्तन परमाणु का समूह परावर्तन करते-करते जहाँ क्षेत्रान्तर होनेवाला है, वहाँ होता है और बनता है। दूसरा मूढ़ जीव कहे कि मैंने बनाया, वह व्यवहारश्रद्धा से भ्रष्ट है। निश्चयश्रद्धा तो है ही नहीं। ऐ... पोपटभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहते हैं समझ में आया? ... अभी दिक्कत नहीं, न बने तो। यह ऐसा कहते हैं, यह दलाल हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दूसरी बात करते हैं। यह तो हमारे मलूकचन्दभाई को मन्दिर बनवाना है न। तो बना सकता नहीं, ऐसा कहो तो इनसे हैयाधारण तो रहे कि वहाँ न बने तो दिक्कत नहीं। इनके पुत्र के पास दो करोड़ रुपये हैं। एक बड़े पुत्र के पास एक करोड़ हैं। वह स्वीट्जरलैण्ड रहता है। दूसरे पुत्र के पास दो करोड़ हैं। वह मुम्बई रहता है। उसके पास से पैसा माँगे कि थोड़ा दे तो यह मन्दिर... आहाहा! अरे! भगवान! वह तो होनेवाला होगा, वह होगा और नहीं होनेवाला, वह नहीं होगा। किससे बनता है? पैसे से भी मकान बनता है, यह बात खोटी है। पैसा भिन्न चीज़ है, परमाणु का मकान हुआ, वह भिन्न चीज़ है। अनन्त को अनन्त भिन्नरूप से न माने, उसकी व्यवहारश्रद्धा का ठिकाना नहीं। ऐई! न्यालभाई! परमसत्य? गिरनार जाये और सम्मेदशिखर जाये और वहाँ से मिलेगा। मिले कहाँ से? वह तो शुभभाव हो तो लक्ष्य जाता है। उसमें कहाँ वहाँ से मिलता है? कुछ अनुभव में आत्मा की शान्ति वहाँ नहीं। उसमें नहीं, वह तो यहाँ है। समझ में आया? लाख बार सम्मेदशिखर जाये और बार लाख शत्रुंजय पर चढ़े तो आत्मा का सम्यग्दर्शन होता है। (ऐसा) तीन काल-तीन लोक में नहीं। ऐई!

मुमुक्षु : सम्मेदशिखर न हो, वहाँ धर्म ही नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गया। अरे! भगवान! तुझे खबर नहीं। वह राग हो, वह चीज़ हो। उसके काल में होता है। इतना सम्बन्ध जानने लायक है। परन्तु आत्मा की अन्दर दृष्टि शुद्ध चैतन्य भगवान की दृष्टि अभेद किये बिना तीन काल में धर्म की— सम्यग्दर्शन की शुरुआत नहीं होती। वह कैसी है, यह बात करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मैं परमात्मा हूं ऐसा नक्की कर।
मैं परमात्मा हूं ऐसा निर्णय कर।
मैं परमात्मा हूं ऐसा अनुभव कर।